महाकवि माघ

महाकवि माघ

उनका जीवन तथा कृतियां

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डा० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, एम. ए. (हिंदी),
एम. ए (संस्कृत) पी. एच. डी. (संस्कृत)
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
सनातन धर्म गवर्नमेण्ट कालेज, ब्यावर-राज.

नवयुग प्रकाशन
दिल्ली—६

प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन,
बंगलो रोड, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९६३
मूल्य : रु० २०-००
मुद्रक : हरिहर प्रेस, दिल्ली-६

समर्पण

समर्पणम्

प्राच्या प्रतीच्यापि सतीव भाषा
भक्त्या स्वभर्त्तारमिवाश्रिता यम् ।
श्रीमज्जगन्नाथ गुरोः पदाब्जे
ग्रन्थोऽस्य माघार्कं करायतां मे ॥१॥

ग्रन्थकर्तृ वंशपरिचयः

राज्ये **शाहपुरा** भिधानप्रथिते लब्ध्वा जनिं यः सुधीः,
श्रीमद् **राजगुरोः** कुले प्रतिभयाऽसीत् शिक्षकः शासकः ।
काव्यं "वीरतरङ्ग रङ्ग" मकरोद् यो माघ-कल्पः कविः,
सोऽयं कीर्तिकलेवरेण **यमुनादत्तः** श्रिया राजताम् ॥१॥
एतस्यानुज एव **पडित जगन्नाथो** गुणी मे पिता,
हिन्द्यामाङ्गलवाचि काव्यकलने यः सिद्धहस्तः कविः ।
माता श्री **विजया** भिधा गुणवती व्यासान्वयाभूषणा,
प्रासूतेह यदादिमं गुणनिधिं श्री **भानुदत्तं** सुतम् ॥२॥
तस्यानुजोऽहं **मनमोहनाख्यो** द्वे मे भगिन्यौ गुणरूपशीले ।
जनुर्ममाष्टर्तुनिधीन्दु संख्ये (१९६८) वर्षेऽभवद् विक्रमतः प्रवृत्ते ॥३॥
श्री मेदपाटाधिपमुख्यमन्त्री विद्वान् धनीन यायद- **गोपिनाथः** ।
प्रदाय मे घाघुमिमां सुपुत्रीमियेष मां द्रष्टुमिहात्मतुल्यम् ॥४॥
एम्. ए. पदं संस्कृतवाचि हिन्द्यां मया यदाप्तं श्वसुरस्तदा मे ।
प्राध्यापकं मां प्रसमीक्ष्य हृष्टो मनोरथान् स्वान् सफलानमंस्त ॥५॥
रविर्महेन्द्रः क्रमशः प्र**मोदो विनोद** एते तनुजाः प्रवीणाः ।
सदाह्यमीषामुदयाभिलाषी विश्वेश्वरं प्रार्थयते जनोऽयम् ॥६॥

ग्रन्थ परिचयः

माघस्य जीवनमहो ! ग्रथितं सुरम्यं माघार्णवे विततकाव्यरसोर्म्मिरङ्गम् ।
आनन्ददं समवलोक्य मुदम्प्रयान्तु, धार्ष्टयं तथा प्यकरवं यदिदं क्षमस्व ॥१॥
स्फुरत्पताकं किल काव्यलोके विलोक्य माघं कमनीय काव्यम् ।
संगृह्य सारं सुखदं सुरम्यं तज्जीवनं संग्रथितं मयैतत् ॥२॥
विचारशैलीं निपुणं निरीक्ष्य सर्वांशतो ग्रन्थममुं परीक्ष्य ।
प्रामाणिकं शोभयुतं विचार्य **पी. एच. डि.** मानेन सभाजितोऽहम् ॥३॥
मयाऽत्र यद्वर्णितमस्ति वस्तु प्रकाशितं तत् सकलं तथैव ।
दोषानशेषानपहाय शेषान् गुणान् ग्रहीष्यन्ति बुधा दयार्द्राः ॥४॥

आमुख

अनूठी उपमाओं एवं प्रसादमधुरा वाणी द्वारा संस्कृत-साहित्य की रस-सरिता को प्रवाहित करने वाले कवि-सम्राट् कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत काव्य को जिस भाँति लघुत्रयी की संज्ञा दी गई है, भारवि-कृत किरातार्जुनीय, माघ-कृत शिशुपालवध और श्री हर्ष-कृत नैषधीय चरित काव्यों की गणना भी बृहत्त्रयी में उसी भाँति अभिव्यक्त की गई है। 'उपमा कालिदासस्य' से जग विश्रुत कालिदास, 'भारवेरर्थ गौरवम्' लोकोक्ति को चरितार्थ कर अत्यन्त मनोहारी रचना शैली से विद्वानों में समादरणीय भारवि एवं 'नैषधे पद-लालित्यं' तथा ग्रन्थ ग्रन्थि से 'प्राज्ञं मन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु' से चुनौती देने वाले श्री हर्ष का नाम जहाँ परम गौरव के साथ विद्वानों में लिया जाता है वहाँ महाकवि माघ का नाम भी अपनी काव्यगत विशेषताओं तथा उक्तियों के कारण अधिक लोक प्रसिद्ध है।

इस लोक प्रसिद्धि के संदर्भ में आज से लगभग ३९ वर्ष पूर्व जब मैं दरबार मिडिल स्कूल शाहपुरा (मेवाड़) में कक्षा षष्ठ का एक साधारण-सा छात्र था और 'बड़े माघ जी पण्डित आये हैं' इस वाक्य से जब अध्यापक पं० श्री नाथूलाल शर्मा द्वारा व्यंग्य में छात्रों के सम्मुख पुन: पुनः उच्चरित किया जाता था. मेरे शिशु-हृदय में उस महाकवि के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा हुई थी किन्तु अन्ततोगत्वा बाल्य-कालीन भावनायें ही तो थीं जो लहरों की भाँति उठतीं और लुप्त हो जाती थीं। वासना रूप में लुप्त वे हृद्गत भाव अन्त में जैसे-जैसे मैं संस्कृत का अध्ययन शाहपुरा में स्कूल के अवकासों पर घर ही रहकर अपने पूज्य पिता जी के चरणों में बैठ कर अथवा कालेज में कालेजीय संस्कृत का अध्ययन परिपक्व बुद्धि होने पर स्व० श्रद्धेय प्रो० श्री चन्द्रशेखर जी पांडेय के निकट सम्पर्क में आकर करने लगा तो 'काव्येषु माघः', 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः', 'मेघे माघे गतं वयः', 'मुरारिपद चिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु' आदि आदि सूक्तियों को पाकर एक बार और अग्नि में घृत का कार्य कर गये। वासना रूप में निहित भावों को मूर्त्तरूप देने का कार्य आश्रय विना सम्भव कहाँ ? विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के योग से रसोत्पत्ति कही गई है। विभाव का अनुभव कराने वाले सौभाग्यवश मेरे हितैषी मित्र एवं पथ प्रदर्शक महाराजा कालेज, जयपुर के तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रोफेसर श्री प्रवीण चन्द्र जैन सहसा आश्रय रूप में मुझको उस समय प्राप्त हुए जब मैं वर्षों से पी० एच० डी० वाली भावना को 'बिहारी' विषय लेकर हिन्दी में ही साकार करने का अभिलाषी था। इस प्रस्ताव को लेकर सम्मति ग्रहण करने के लिए उनके निवास स्थान पर परमोत्कंठा के सहित गया था। प्रिंसिपल जैन जैसे व्यक्ति मुझको विरले ही दृष्टिगत होते हैं जो अपने कार्य का

भी ध्यान न रखकर उन्होंने तत्काल मेरा मार्ग यह कह कर प्रशस्त किया कि हिन्दी नहीं तो संस्कृत विषय का पी० एच० डी० क्यों न कर लिया जाय जिसके लिए वे स्वयं प्रस्तुत हैं। मेरी भी इच्छा हुई और 'बाण' का विषय लेकर लिखने के लिए मैंने जैसे ही कहा कि उन्होंने 'महाकवि माघ' का नाम प्रस्तुत किया। फिर क्या था, सुषुप्त भावनायें जागरित हुईं। बाल्यकालीन भावनाओं का मूर्त रूप पाकर मुझ में प्रेरणा हुई और मैंने उत्साहपूर्वक इस महाकवि पर कार्य प्रारम्भ कर ही दिया। इस अध्ययन में मैंने आश्चर्य से देखा कि कालिदासादि महाकवियों के सम्बन्ध में समीक्षक जितने मुखर हैं उतने ही 'नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते' के आचार्य महाकवि माघ के विषय में वे मौन भी हैं।

महाकवि माघ की रचना की विशेषतायें और तथा कथित दोष जहाँ एक ओर ध्यान आकृष्ट करते जा रहे थे वहाँ विद्वानों का उनके सम्बन्ध में मौन प्रधान ईषत्कथन मुझे इस बात के लिये प्रेरित करने लगा कि महाकवि माघ की प्रामाणिक समीक्षा साहित्यिक जगत के समक्ष प्रस्तुत की जाय जिससे इस महाकवि के काव्य वैभव का प्रकाश समुचित रूप से प्रसृत हो सके।

इस प्रेरणा और तज्जन्य प्रयत्न के फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ राजस्थान विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. की उपाधि के लिये स्वीकृत हुए शोधपूर्ण प्रबन्ध का यत्किञ्चित् परिवर्तित मुद्रित रूप है जो अन्वेषकों एवं संस्कृत-साहित्य के विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत है। इस निबन्ध में मैंने महापण्डित, महावैयाकरण, वीरभोग्यावसुन्धरा राजस्थान प्रान्त की वीर-भूमि पुराण-विश्रुत तीर्थोपम श्रीमाल (भीलमाल) जो किसी समय संस्कृत विद्या तथा जैन व बौद्ध सम्प्रदायों की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था विद्यमानावस्था में जो राजस्थान के जोधपुर राज का एक उपजिला मात्र है, के तत्कालीन महामंत्री सुप्रभदेव के युधिष्ठिरोपम सर्वप्रिय कुमुद पंडित 'दत्त' के ज्येष्ठ आत्मज सरस्वती के वरदपुत्र, राजस्थान के गौरव, दानवीर, महाकवि माघ की जीवनी तथा रचना दोनों पर विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। इस भाँति यह प्रबन्ध स्वतः पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो बड़े पृथक्-पृथक् खण्डों में विभक्त हो गया था किन्तु प्रकाशन के समय इसके भारी भरकम से पुस्तक महंगी न होने पाय इस बात को ध्यान में रखकर तथा हिन्दी-संस्कृत के उच्चतम छात्रों की उपयोगिता के लिए भी इस ग्रन्थ को संक्षिप्त ही नहीं किया गया है, किन्तु कुछ अध्यायों को भी इसमें से इस भाँति रहित कर दिया गया है कि जिससे इसकी शोभा में अन्तर न आकर दोनों ग्रन्थ एक में समा जायें।

पूर्वार्द्ध चार बड़े अध्यायों में विभक्त है। इन अध्यायों में महाकवि माघ की जीवनी पर प्रामाणिक रूप से पूर्णतया प्रकाश डाला गया है। उत्तरार्द्ध [क] और [ख] दो विभागों में विभक्त है।

(क) भाग में महाकाव्य पर शास्त्रीय दृष्टि, उसके कथास्रोत, सर्गबद्ध कथा के अनुशीलन से प्राप्त तथ्य, स्रोतों से प्राप्त कथाओं की माघ काव्य की कथा से तुलना, परिवर्तन, उनका औचित्य तथा मौलिकता, संवाद और चरित्र-चित्रण आदि विषयों पर गम्भीर रूप से विवेचन किया गया है। (ख) भाग में महाकवि का काव्य सौष्ठव, बहुज्ञता, शैली, काव्य में

प्रतिबिम्बित सामाजिक, राजनीतिक जीवन, परवर्त्ती संस्कृत हिन्दी काव्य पर माघ का प्रभाव, माघ काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि, प्रचलित सम्मतियों पर विचार, माघ का महाकवियों में स्थान आदि बातों की आलोचना की गई है। इसी उत्तरार्द्ध के अन्त में एक परिशिष्ट भाग भी कुछ विशेष बातों की जानकारी हेतु रख दिया गया है जिसमें महाकाव्यों की परम्परा, शिशुपालवध के छन्द, चक्रबंधादि हैं। अन्त में काव्य के अध्ययन में उपयोगी भारत की विभिन्न स्थितियों का प्रदर्शन कराने वाले मानचित्र भी पाठकों की सुविधा के लिए दिये गये हैं।

महाकवि माघ के जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जा सका है वह पाठकों के लिये ध्यान से पढ़ने की एक चीज है। इससे महाकवि माघ के काल और कार्य क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यताओं में आवश्यक परिवर्तन हो सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है। कवि के काल तथा कार्य क्षेत्र का समुचित निर्णय हो जाने से तात्कालिक और तद्देशीय समाज के सांस्कृतिक इतिहास को भी इस समीक्षा से अनायास ही प्रामाणिक सहायता मिल सकेगी। इतिहास के उन छात्रों के लिये तो यह मार्ग प्रदर्शन है जो अंधकार युग कहकर सम्राट् हर्ष के पश्चात् की स्थिति बतलाने में पूर्ण असमर्थ हैं। कवियुग सम्बन्धी अनिश्चितता की भूलभूलैया में पड़े हुए पाठकों के लिये यदि इस प्रयत्न से कुछ भी मार्ग दर्शन हो सका तो लेखक इससे अपने आपको कृतकृत्य समझेगा।

मेरी यह ही कामना है कि माघ के जीवन तथा काव्य के सम्बन्ध में इस रूप में लिखा हुआ राजस्थान विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. के लिये स्वीकृत प्रथम शोध ग्रन्थ माघ सम्बन्धी गवेषणा को चालू रखने में सहायक सिद्ध हो।

पुस्तक लेखन में मुझे अपने मार्ग दर्शक, हितैषी डूंगर कालेज बीकानेर के प्रिंसिपल श्रद्धेय श्री प्रवीणचन्द्र जैन के सतत परामर्श और प्रोत्साहन से बल मिला है एवं राजस्थान पुरातत्व विभाग के उपसंचालक श्री बहुरा से अनेक ग्रन्थ प्राप्त कर समय-समय पर इस कार्य में सहयोग प्राप्त हुआ है। महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर के उद्भट विद्वान् प्रोफेसर श्री जगदीशचन्द्र जी साहित्याचार्य दाधिमथ ने विवेचन की विविध गूढ गुत्थियों को शंका समाधान द्वारा सुलझाया है। श्री जैन के प्रिय शिष्य श्री गोवर्धनलाल भट्ट एम. ए. तत्कालीन विधान सभा, जयपुर पुस्तकालयाध्यक्ष से तो पुस्तक संग्रह तथा लिखित पत्रों को टाइप कराके उनकी भूलों में सुधारादि से पदे पदे सहायता प्राप्त हुई है अतः इन महानुभावों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व्यक्त करना मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इनके अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित वरिष्ठ विचारकों और विद्वान् साहित्यकारों की कृतियों से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिये मैं उनका चिर ऋणी हूँ।

मैं अपनी समस्त भूलों, त्रुटियों और न्यूनताओं के लिए क्षमायाचना करता हुआ सहृदय सुधी पाठकों से प्रार्थना करूँगा कि वे धैर्य पूर्वक आद्योपान्त इस ग्रन्थ को देख जायं तत्पश्चात् यदि उनका परितोष हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

हनुमज्जयन्ती,   विदुषामापरितोषान्न
२०२० वि   साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।

राजगुरु डॉ. मनमोहनलाल शर्मा

प्रथम खण्ड

महाकवि माघ के जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की सामग्री—

प्रथम अध्याय — पृष्ठ

द्वितीय अध्याय

अन्तः साक्ष्य :— पृष्ठ

तृतीय अध्याय

अभिसाक्ष्य :—

चतुर्थ अध्याय

द्वितीय खण्ड

(क) भाग

(ख) भाग

महाकवि माघ के जीवन के संबंध में प्राप्त ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की सामग्री

—:o:o—

महाकवि का फैला हुआ यश—

संस्कृत के महाकवियों में जिस आदर और गौरव के साथ महाकवि कालिदास और भारवि का नामोच्चार किया जाता है वह आदर और गौरव महाकवि माघ को नहीं मिल सका है। आज कविकुल गुरु कालिदास अपने उपमा वैभव से, भारवि अपने अर्थ-गांभीर्य से और दंडी अपनी सुश्लिष्ट गद्य-रचना से संस्कृत साहित्य के सभी सहृदय पाठकों को प्रभावित कर रहे हैं। एक विशालकाय महाकाव्य की रचना करने के बाद भी महाकवि माघ से वे इतने प्रभावित क्यों नहीं हो सके—यह एक प्रश्न है जिसका समाधान आवश्यक है।

महाकवि माघ एक प्रकाण्ड पण्डित थे। कई विषयों का बहुत ऊँचा ज्ञान उन्हें प्राप्त था। उनके शिशुपाल वध महाकाव्य को समझने के पूर्व कई विषयों की जानकारी (बहुज्ञता) की आवश्यकता होती है। व्याकरण और शब्दार्थ शक्तियों का सूक्ष्म ज्ञान तो और भी अधिक अपेक्षित है। इस पृष्ठभूमि के बिना कोई भी पाठक इस महाकाव्य के साथ न्याय नहीं कर सकता इस प्रसंग में यह कह देना शायद अनुचित न होगा कि आज पाठ्यक्रम में इस महा-काव्य के प्रथम एक या दो सर्गों को स्थान देकर महाकवि के संबंध में पूरी जानकारी की अपेक्षा करली जाती है। अगले भागों को उसकी अपनी विशेषता वाली क्लिष्टता के कारण स्थान नहीं दिया जाता। नारद के चले जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव के संवाद मात्र को पढ़ने वाला वह विद्यार्थी, जिसने भारवि के किरातार्जुनीय के द्रोपदी, भीम और युधिष्ठिर के संवाद को पढ़ लिया है, इस संवाद में किसी विशेषता का अनुभव नहीं कर पाता और केवल यह धारणा बना लेता है कि वह तो भारवि के संवाद का एक अनुकरणमात्र है। इस प्रकार के अधूरे पाठ से माघ काव्य के मूल्यांकन को क्षति पहुँची है। यह बात द्रष्टव्य है कि जिन बहुज्ञ विद्वानों ने इस महाकाव्य का आद्योपान्त परिशीलन किया है उनकी सम्मतियाँ, दूसरे ही प्रकार की रही हैं। यह सम्मतियाँ, सौभाग्य से, बार-बार दुहराई गयी हैं। इनमें से कुछ जो अति प्रसिद्ध हैं वे ये हैं :—

(१) उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

(२) काव्येषु माघः कवि कालिदासः

(३) तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः

(४) मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु।
मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माऽघे रतिं कुरु ।।

(५) कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः ।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ।।

(६) माघेन विघ्नोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ।।

(७) मेघे माघे गतं वयः

(८) नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।

इन सम्मतियों को अलग-अलग लेकर देखें तो दृष्टिकोण की एकांगिता मिलेगी । पर यदि इन सबको मिलाकर देखें तो महाकवि माघ की उन बहुत सी विशेषताओं का निर्देश हो जायगा जिनका सम्बन्ध रस, भाव, सूक्ति, अलंकार और शैली सभी से है और जिन्हें महाकवियों की, कालिदास और भारवि जैसे पद्य-कवियों की, और दण्डी तथा बाण जैसे गद्य-कवियों की रचनाओं में बताया जाता है ।

ये सम्मतियाँ माघोत्तरवर्ती युगों में माघकाव्य के प्रशंसकों द्वारा कही गई हैं, और इनका अपना एक मूल्य है । माघकाव्य की प्रशंसा के लिए न तो यही आवश्यक है कि उनसे पूर्ववर्ती महाकवियों की निन्दा की जाय और न यही आवश्यक है कि उसके दोषों पर दृष्टि ही न डाली जाय। कोई भी काव्य निर्दोष नहीं हो सकता और एक प्रबन्ध काव्य में तो दोषों का न होना आश्चर्यकर है, दोषों का होना सर्वथा स्वाभाविक है, इसीलिए तो काव्याचार्यों ने—

'कीटानुविद्ध रत्नादि साधारण्येन काव्यता'

जैसी व्यवस्थाएं प्रस्तुत की हैं।

किसी भी कारण से सही, माघकाव्य की जब उपेक्षा होने लगी, उसका अत्यधिक निरादर किया जाने लगा तब सहृदय आलोचकों को उसकी प्रशंसा कालिदास, भारवि और दण्डी जैसे लब्धभगा महाकवियों की तुलना में करनी ही पड़ी । इसका तुरन्त लाभ तो यह हुआ कि माघकाव्य का अध्ययन और अध्यापन अधिक व्यापकता व सहानुभूति के साथ होने लगा और उसकी गणना प्रसिद्ध महाकाव्यों में कर ली गयी । काव्य रसिक पाठकों और काव्य मर्मज्ञ आलोचकों में माघ कवि का नाम न केवल प्रशंसा से प्रत्युत श्रद्धा से भी लिया जाने लगा । जब इस काव्य का व्यापक अध्ययन हुआ, देश के किसी एक भाग में ही नहीं बल्कि सभी भागों में हुआ तो उसके आधार से काव्य-सम्बन्धी चिंतना को भी व्यापकता मिली। देश और काल का काव्य-रचना पर जो प्रभाव पड़ा करता है उसकी चर्चा और गहराई के

साथ की जाने लगी। फलतः आलोचना के सिद्धान्तों में अधिक विस्तार और स्पष्टता आयी। भारतीय काव्य-साहित्य के विकास को जो स्वरूप देखने को मिला उसके कारणों के अनुसंधान में इस चर्चा से बड़ी सहायता मिली।

इतना सब होते हुये भी माघकाव्य पर आलोचकों की सर्वाङ्गीण दृष्टि नहीं पड़ पाई और यह कमी आज तक भी एक बड़ी कमी के रूप में मानी गयी है।

माघ के संबंध में जो सूक्ष्म-सामग्री मिली है, उसका परिचय दे देना सर्वप्रथम आवश्यक है।

---

(१) बहिः साक्ष्य

सर्व प्रथम हम बहिः साक्ष्य को लेंगे जिससे पाठकों को जब माघ सम्बन्धी बहुत सी बातों का ज्ञान होने लग जायेगा, फिर वे अन्तः साक्ष्य में प्रविष्ट होते ही स्वतः अनुभव करने लगेंगे कि माघ का यही युग है। कविवंश वर्णन में कवि ने वर्मल नाम का प्रयोग किया है जो बसंतगढ़ वाले शिलालेख में भी आया है अतः सर्वप्रथम उसी शिलालेख को प्रस्तुत किया जाता है जिससे बहुत सी बातों का पता चलेगा। उस पर कुछ टीका टिप्पणी करते हुए उसके सारांश को पाठकों के विचारार्थ रख कर हम संबंधित निबन्धों पर आ जायेंगे। इस भाँति शनैः शनैः हम अपने महाकवि के व्यक्तिगत जीवन पर आने के पूर्व कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रखते समय तात्कालिक राजाओं, महाराजाओं, विद्वानों, कवियों एवं उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं पर प्रकाश डालेंगे जिससे पाठक स्वतः माघ कवि के जीवन पर अपनी सम्मति प्रकट कर सकें।

(१) **बसन्तगढ़ का शिलालेख—इस लेख का काल** (विक्रम संवत ६८२)

१—ओं नमः ॥ धातुर्य्या योगनिद्रा (जलन)—(नस्या) कृतिव्विश्वयोनेः
4
कैलासोच्चाङ्कश्रिङ्ग प्रतिनियतमुदावासिनोर्द्धाङ्कसक्ता (❀) या

२—रात्रिस्सर्व्वलोके स्मृतिरमि च सतां या श्रुति ब्रह्मगीता सा देवी दुर्गमेषु प्रदिशतु
5
जगते मङ्गलानीह दुर्गाः ॥ (१) नियतमति प्रणतिपर—
6
३—स्याजौ यागे क्रयाफलेष्वसक्तम (।) क्षेमार्य्या क्षेमकरी विदधातु शिवानि
7 8
नस्सततं (२) जयति जय लक्ष्मलक्षितवक्षस्स्थलसंश्रित श्रियाधारः (।)

४—श्री वर्म्मलात नृपति—पतिरवनेरधिक बलवीर्य्यः ॥ (३) केचित्सन्देशमात्रै रति
9 10
विशदपद मुद्रया पारगंत्र्या केचिच्चान्ये प्रकामं प्रतिवचन युतेङ्क (।) (य्यं) जापैरजस्र (❀)

५—अन्ये वे मण्डलान्ते कृतबलिकुहकैर्मूतिदानेन चान्ये तेनेत्यं सन्नरेन्द्रव्रतमनुचरता
11
शासिता भूमिपालाः (४) तस्याशेषविशे (ष)

६—दोष रहितानुष्णाति भक्तया गुणान् (।) नाम्ना बज्रमटेति मृत्यपदवीमाश्रित्य सत्याश्रयः (।❀) ख्यातः कीर्तिमतामलंध्यचरितः श्रीमातुरप्यज्जने किन्न
15
७—(ज्ञा) तगुणः प्रभुर्हिमवतस्सूनोश्च संरक्षणे। (॥) (५) तस्य सूनुरधिकं

16

प्रिय ⌒ प्रियै ⌒ प्रश्रयादि सकलेम्महागुणै (।*) राज्जिलोभवदशेषराजक-
व्याप्तकीर्ति

18

८—रमले कुले नृपः (।।*) (*) आज्ञागातिथि-मृत्यादिकलावरगु विशेषतः (।*)

19 20 21

सौधिकं द्रविणै शश्ववटे वैश्रवणायते ।। (७*) तस्मिन्राजनि देव्याश्शासति
राज्यं

22

९—वटाकरस्थाने (।*) गोष्ठया कारितमेतद्भवनं भुवनस्य चिह्नमिव। (८)
कारापकस्तु सूनुः पितामहारव्यस्यः सत्यदेवाख्यः (।*) गोष्ठया प्रसादपरया
निरूपितो ज-

१०—(न्म)ना स वणिक्। (।।) (९) यावन्मेरोस्तटानि प्रचुरहिम कणोतुंग-
शैलाधिपश्च स्यन्दि (न्यौ) यावद्दु (क्वा) ग्रगतक (लु) पा–˘···˘–(*)
यावच्चन्द्रार्क्कमास—

११—(स्सु) तरलजलधे (रू) र्म्मयो यावदुच्चैस्ताव (द्दे) वालयं (निस्थि)

23 24

तमिह भवतु त्रेयस पौरजानां ।। (१०*) द्विरशीत्यधिके काले पण्णां वर्षशतोत्तरे
(।*) जगन्मातु—

25 26

१२—(रिदं) स (थ) नं स्था (पि) तं (गो) ष्ठिपुंगवैः ।।

27

(११) दिवाकरसुतस्येयं धूर्त्तराशेद्धिजन्मनः (।*) पूर्वातिमृदुभिर्व्वर्ण्णैः प्रोत्कीर्ण्णा
नागमुण्डिना (।।) (१२) ।।। :: ।।।।

28

१३—(गो) ष्ठिकात्र (।) राजिल। बकट। चन्द्रक। प्रतिहारबोटक।
राजस्थानीयादित्यभट। जा (१) ब (१) र्ण्ण। मातृदासंबंगदेव। कुलवर्द्धन।
धनदत्त (ब) सु (।)

१४—घुघक। धौन्धकपुत्रसत्यदेव (ककिलक) घनदत्त। गोमिक। हरिगुप्त। (ब)
पक। पपोट्ट। सत्यदेव। रेमिलाक। रतिदास। तरण। ·····दत्त

१५—दृढगुर। धनगर। बपाणान्दि।··········। राजक। भद्रदेव। रुद्रक। दत्रमिलब-
मालकुय। खिलकु। आर्य्यदिण्ड। णराु।
णण्णारटनाग—

१६—त-ता। भिलमालकु। सतमदेव।

बंगदास·········। श्रीमातागणिकाबूटानाम्नी ।। ।। एवमेषां गोष्ठिकाराणां ना

१७—···

बसन्तगढ़ का यह राजा वर्मलात सम्बन्धी शिलालेख इस समय अजमेर मेगजीन के राजपूताना म्यूजियम के अधीनस्थ प्राचीन मूर्तियों एवं अन्य शिलालेखों के साथ सुरक्षित है।

अर्बुदाचल (आबू) के निकट बसन्तगढ़ है। उसी के समीप प्राप्त हुआ यह प्राचीन शिलालेख पिंडवाडा के दक्षिण मार्ग में लगभग ५ मील की दूरी पर मिला। जनश्रुति के अनुसार यह शिलालेख वाला पत्थर उसी मंदिर के लगा हुआ था। बसन्तगढ़ इस समय उजड़ा हुआ है किन्तु यात्री देवी (खीमेलमाता या क्षेमकरी) के दर्शनार्थ आया करते हैं। देवी की मूर्ति की देखभाल समीपस्थ निवासी भील ही करते हैं। वे भील उस पत्थर का उपयोग अपने औज़ारों पर (भाला, बर्छी, कटारी, चाकू आदि) धार लगाने के हेतु करते थे। पण्डित सुखानन्दजी को इस शिलालेख की प्राचीनता का पता लगा। उन्होंने उस शिलालेख को सुरक्षित स्थान पर अर्बुदाचल के समीप स्टेट सिरोही में रखवा दिया।

इस शिलालेख में १७ पंक्तियाँ हैं। यद्यपि सभी उत्कीर्ण अक्षर लगभग अच्छी अवस्था में हैं किन्तु दाहिना भाग भीलों के औज़ारों से घिस जाने के कारण कुछ खंडित सा हो गया है। उस पत्थर के १ या २ भाग तड़के हुए हैं। इससे १, २, १० और ११ पंक्तियों के अक्षरों पर प्रभाव अवश्य पड़ा है। अक्षरों की मोटाई $\frac{३}{४}''$ से $२\frac{३}{०}''$ तक कम होती गयी है। इन अक्षरों की लिपि ७ वीं या ८वीं शताब्दी में प्रचलित होगी। इस शिलालेख की रचना श्लोकमयी है। वैसे प्राचीन काल में शिलालेखों को श्लोकमय लिखने की प्रथा सी थी। अपभ्रंश शब्द विरल ही हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। ग्यारहवाँ पद्य इस शिलालेख की स्थापना की तिथि को स्पष्ट रूप से निर्देशित कर रहा है जिसकी भाषा व्याकरण सम्मत है। शिलालेख में अशुद्धियाँ बहुत हैं अतः विद्वानों के मतानुसार उन शब्दों के स्थानों पर जिन पर हमने संकेतों में अंगरेज़ी के अंक लिख दिये हैं निम्न शब्द होने चाहिएं :—

४—कैलासोच्चांगशृंग पढ़िये।
५—दुर्गा पढ़िये—यह स्रग्धराछन्द है।
६—क्रिया पढ़िये।
७—आर्य्या छन्द है और इसके बाद वाला भी आर्या है।
८—श्र्याधार दूषित है, छन्द के अनुसार भी ठीक नहीं बैठता।
९—पदैर्मुद्रया पढ़िये।
१०—गन्त्र्या पढ़िये।
११—स्रग्धरा छन्द है।
१२—मलङ्घ्य पढ़िये।
१३—'प्य' अक्षर 'र' के साथ उसी पंक्ति में नहीं लिखा हुआ है जिसमें 'ज्ज' भी है किन्तु 'र' और 'ज्ज' इन दो अक्षरों के ठीक नीचे उत्कीर्ण है।
२४—'ज्ज' के स्थान पर कदाचित् 'च्च' हो।
१५—शार्दूलविक्रीडित छन्द है।
१६—गुणैः पढ़िये।
१७—रथोद्धता छन्द है।
१८—विशेषतः पढ़िये।
१९—द्रविणैः पढ़िये।
२०—शश्वद्वदे पढ़िये।

२१—अनुष्टप् छन्द है।

२२—आर्या छन्द है और इसके बाद का भी वही छन्द है।

२३—'य' अक्षर पंक्ति के नीचे उत्कीर्ण है।

२४—स्रग्धरा छन्द है।

२५—अक्षर, रिदं, बहुत ही अस्पष्ट है।

२६—श्लोक है।

२७—राशेद्धि अत्र पढ़िये।

२८—गोष्ठिका अत्र पढ़िये।

२९—नामानि पढ़िये।

शिलालेख के प्रथम दो श्लोक क्रमशः दुर्गा और क्षेमार्या (खीमेलमाता) से मंगल कल्याणकारिणी बातों की प्राप्ति के लिए लिखे गये हैं। अतः इन दो में स्तुति मात्र है। तृतीय पद्य में राजा वर्मलात की प्रशंसा की गई है एवं चतुर्थ भी इसीलिए लिखा गया है। पंचम श्लोक निर्देश करता है कि राजा वर्मलात के वज्रभट सत्याश्रय नाम वाला एक जागीरदार था। वह देवी का भक्त था तथा हिमालय के पुत्र अर्बुदाचल (आबू) के प्रदेश का स्वामी था और उसकी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ था। षष्ठ श्लोक में कहा गया है कि वज्रभट सत्याश्रय का पुत्र राज्जिल था जो ब्राह्मणों को, अतिथियों तथा सेवकों को व कलाकारों को अत्यधिक धन सम्पत्ति देने के कारण स्वरूप वटनगर (बसन्तगढ़) में कुबेर के रूप को धारण किए हुए था। सप्तम श्लोक में कहा गया है कि वर्मलात के शासन काल में वटाकर स्थान पर क्षेमार्या देवीः का मंदिर पंचों (कोष्ठी) द्वारा बनाया गया है। अष्टम श्लोक में पितामह नाम वाले किसी व्यक्ति के पुत्र को जो एक वणिक था, सत्यदेव जिसका नाम था पंचों द्वारा इस भवन के निर्माण के लिए कारापक के रूप में रखा गया। नवम श्लोक बताता है कि उन नगर-निवासियों के कल्याणार्थ वह मन्दिर, जब तक सुमेरु पर्वत, नदियों, सूर्य तथा चन्द्रमा इस पृथ्वी पर रहें, स्थित रहे। ग्यारहवें में समय दिया गया है कि पंचों द्वारा यह मन्दिर ६८२ में बनाया गया। (यह सम्वत् हमारी बुद्धि के अनुसार विक्रम संवत् या शक संवत् ही होगा यद्यपि शिलालेख में ६८२ वर्ष ही लिखे हैं। शक अथवा विक्रम वा किसी अन्य प्रचलित सम्वत् की ओर इसका कोई निर्देश नहीं है। यदि बिक्रम सम्वत् है तो इसके अनुसार सन् ६२५ ई० का है।) बारहवें श्लोक में कहा है कि यह प्रशस्ति दिवाकर के पुत्र धूर्तराश ब्राह्मण द्वारा लिखी गई और नाग मुण्डित ने इन बने हुए श्लोकों को शिला पर उत्कीर्ण किया। तेरहवाँ श्लोक नहीं है फिर तो अन्त तक पंचों के नाम दिये गये हैं उनमें तीन उल्लेखनीय हैं। **प्रथम बूटा नाम वाली स्त्री** जो या तो उस मन्दिर से सम्बन्ध रखती हो अथवा उस मन्दिर की माता का ही नाम हो। दूसरा **नाम प्रतिहार बोटक** का है। प्रतिहार य पढिहार एक राजपूतों की शाखा है। तृतीय नाम है **राजस्थानीय आदित्यभट**। राजस्थानीय का अर्थ तो राजस्थान का निवासी है। (स्मरण रखना है कि यदि वह मुसलमानों का समय था तो जैसा राजपूत या राजस्थान के लिए श्री ओझा जी और अन्य इतिहास विशेषज्ञों का कथन है कि इस शब्द की उत्पत्ति ही मुसलमानों के आगमन के पश्चात् हुई ठीक है किन्तु मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही राजस्थान शब्द लिखने लग गये तो फिर राज-

स्थान शब्द अति प्राचीन है जो विचारणीय है।) जहाँ पर वर्मलात राज्य करता था वह सीमा कदाचित् गुजरात या मालवे के ही अधिकार में थी उसका राजस्थान के अन्तर्गत होना इस शब्द से प्रमाणित नहीं होता। प्रो० किलहार्न या भण्डारकर माने हुए विद्वान् हैं। वे इस शब्द के लिए (राजस्थानीय) विदेश सचिव (Foreign Secretary) का अर्थ ले रहे हैं जो विचारणीय है। 'जैन परम्परानों' इतिहास में प्रतिहारों की उत्पत्ति मौर्यों से कही गई है— (देखिये जै. प. इ. लेखक त्रिपुटी महाराज पृ० ५३४)

बसन्तगढ़ के शिलालेख पर इतना लिख चुकने के पश्चात् हमको अधोलिखित तथ्यों की उपलब्धि हुई :—

(१) प्रथम श्लोक देवी से सम्बन्धित है जिसकी चौथी पंक्ति 'सा देवी दुर्गमेषु प्रदिशतु जगते मंगलानीह दुर्गा' इस बात की ओर संकेत कर रही है कि जिस स्थान में वह शिलालेख लगाया गया था वहाँ के अधिकांश निवासी देवी के उपासक होंगे। किसी का इष्ट विष्णु है तो किसी का शिव इसी भाँति नगर निवासियों की इष्ट यह देवी होगी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि दूसरे श्लोक में उसी देवी की तो स्तुति गायी गई है। किन्तु देवी के मंदिर में चूँकि वह शिलालेख स्थापित किया गया था अतः क्षेमकरी (खीमेल माता जो आज कहलाती है) से प्रार्थना की गई है कि वह हमारा सदैव ही कल्याण करती रहे। यदि उसी मंदिर वाली देवी के लिए प्रार्थना की जाती तो फिर एक श्लोक ही पर्याप्त था। दो से पुनरुक्ति है ठीक नहीं लगती अतः प्रथम में नगर निवासियों की श्री (देवी) की ओर संकेत है और कदाचित् वह नगर भी उसी के वरदान स्वरूप बना हो अतः उसको प्रथम प्रणाम करने के पश्चात् उसी के साकार रूप को स्थापित कर क्षेमकरी मंदिर की देवी क्षेमार्य्या (क्षेमकरी) से प्रार्थना की गई हो।

(२) उस स्थान का शासक अत्यन्त बलवान् श्री वर्म्मलात था जिसके अधीन माण्डलिक राजा थे उनमें वज्रभट नाम वाला सत्याश्रय की पदवी को धारण करने वाला अर्बुदाचल (आबू) की रक्षा के लिए नियत किया गया था। वज्रभट देवी का परम भक्त था।

(३) वज्रभट के पुत्र का नाम राज्जिल था। वह ब्राह्मण अतिथि आदि को विपुल धन देकर सत्कार करने से कुबेर के समान प्रसिद्ध था।

(४) बटाकर स्थान में मंदिर तो बना दिया गया किन्तु मूर्ति की प्रतिष्ठापना का कोई नाम नहीं अतः प्रतीत होता है कि मूर्ति तो पूर्व से ही उस स्थान पर थी किन्तु भवन की जब आवश्यकता हुई और उस मंदिर के चलाने के लिए व्यय कहाँ से किया जाय, उसका रक्षक कौन हो आदि प्रश्न सामने आए तब नगर के राजा ने भवन निर्माणोपरान्त कुछ व्यक्तियों की एक गोष्ठी स्थिर कर दी जिसको आज की भाषा में ट्रस्ट (Trust) कहते हैं। उस गोष्ठी में कौन-कौन थे उनके नाम अन्त में दे दिये गये हैं।

(५) मंदिर पर शिलालेख लगाया गया था उसका समय ६८२ वर्ष लिखा हुआ है। विक्रम संवत् था या शक इस ओर कोई संकेत नहीं। (हमारा मत है कि काठियावाड़, गुजरात, मालवा, मारवाड़ आदि की ओर उस युग में शक सम्वत् का अधिक प्रचार

था। जैसे हड्डाला गांव (काठियावाड़) में शक संवत् ८३६ का एक दानपत्र मिला है जिससे ज्ञात होता है कि बढ़वाण में धरणीवराह का राज्य था जो चांवडा-बंश का प्रतिहारों का सामन्त था। इस भांति शक संवत् के एक नहीं अनेक प्रमाण हैं। यदि यह शक संवत् का है तो फिर सन् ७६० ई० का हुआ किन्तु जैसा श्रद्धेय डा० गौरीशंकर हीराचन्द कहते हैं कि यह विक्रमी संवत् का है तो फिर सन् ६२५ ई० हुआ।

(६) शिलालेख के राजस्थानीय[1] और प्रतिहार शब्द इस दिशा में बड़े उपयोगी हैं। राजस्थान की उत्पत्ति और प्रतिहार का साधारण प्रयोग।

बसन्तगढ़ के शिलालेख पर उपर्युक्त तथ्यों की उपलब्धि के पश्चात् अब हम को उनकी परीक्षा आलोचनात्मक दृष्टि से करनी है। सर्व प्रथम हम यह देखें कि बसन्तगढ़ के शिलालेख पर लिखे गये वर्ष के अनुसार उसका कौन सा सन् होना चाहिए।

(१) शिलालेख में स्पष्ट है—

'द्वि रशीत्यधिके काले षण्णां वर्षशतोत्तरे'

इस भाँति शिलालेख का समय ६८२ सम्वत् है। महा महोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा इस भाँति शिलालेख का समय विक्रम संवत् होना मानते हैं। उनका कहना है कि इधर की ओर इसी विक्रमी संवत् का प्रचलन अत्यधिक था किन्तु उन्होंने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। यदि इसको विक्रमी संवत् स्वीकार कर लिया जाय तो फिर इन वर्षों मेंसे ५७ वर्ष निकाल देने पर ईस्वी सन् ६२५ आ जाता है। इस भाँति श्री ओझा उस शिलालेख का समय ६२५ ई० स्वीकार करते हैं। ओझाजी की देखा-देखी अन्य विद्वानों ने भी यह मत बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया है।[2]

हिस्ट्री आफ सिरोही स्टेट परिच्छेद षष्ठ का उद्धरण हम निम्नलिखित रूप में रहे हैं—

'The Chaoras of Bhinmal had included Sirohi in their dominions. A stone ins.ription dated 682 Vikrama Era (625 A. D.) of the time of Raja Varmalata found in Basantgarh mentions his feudatory Rajjil son of Vajrabhatta Satyashraya as being ruler of Arbud Desh.

---

(१) देखिये, वृहत् जैन शब्दार्णव द्वितीय खण्ड, अमरोहा पृष्ठ २८७ में अधिकरणिक का अर्थ मुख्य जज लिखते हुये लिखते हैं कि गुजरात में वल्लभी राजाओं का राज्य था, उस समय १८ अधिकारी नियत थे। उनमें राजस्थानीय भी एक अधिकारी था जो विदेशी राजमन्त्री के रूप में होता था। प्रो० किलहार्न भी कदाचित् इसी कोष अथवा अधिकारी की बात को ध्यान में रखते हुए लिख रहे हैं जो विचारणीय है।

(२)—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—चंद्रशेखर पांडेय, संस्कृत साहित्य का इतिहास—सीताराम जयराम जोशी, संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास—डा० मंगलदेव।

The inscription does not say to what race Varmalata belonged or what country he governed; but the famous poet Magh who was a native of Bhinmal writes in his Shishupalvadh that his grandfather Suprabha Deva was the Chief Minister of Raja Varmalata, possibly a ruler of Bhinmal. Brahma Gupta also writes that Vyaghramukh was then ruling in Bhinmal in Shak Samvat 550 (628 A. D.) Vyaghramukh thus appears to have been successor of Varmalata. The Chinese traveller Hasnt-sang states that Bhinmal was the capital of the territory of the Gurzars.

In 821 V. E., the Chaora King Vanraj founded the city of Anhil-pura and made it his capital. There the Chaoras ruled till 1017 V. E. (960 A.D. but Sirohi was never included within their dominions.

Basantgarh :—Basant Garh lies nearly three miles to the south of Ajari. It is also called Basantpur or popularly Vasantpura Garh which seems to be a corrupt form of Vasantpur Garh. This is probably one of the most ancient places in the state as the oldest inscription bearing date 682 V. E. (625 A. D.) has been founded here. The place seems to have been the site of the fort built on the top of a hill by Maharana Kumbha of Mewar. A temple dedicated to the goddess Kshemkari (Kshem-ariya) was erected on a hill by Satyadeva in 682 V. E. (625 A. D.) The temple has recently been restored. The inscription pertaining to this temple was found buried under a heap of stones. This shows that when this temple was built the country around was governed by Raja Varmalata and the territory round about Abu was under his fuedatory chief Rajjil son of Vajrabhatt Satyashrya. It is not clear to what race Varmalata belonged, but there is reason to believe that he was of the Chaora clan which claims to be a branch of the Parmars and their capital was Bhinmal (Shrimal) now in Jodhpur territories.

(see vol. IX. page 191 Epigraphy India)

उपर्युक्त उद्धरण लिखने का हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि ओझाजी की देखा देखी किस भाँति सिरोही के इतिहास में भी विक्रम सं० ६८२ दिया गया है। सिरोही के इतिहास लेखक से तो पूरी आशा की जाती कि वह गवेषणा के पश्चात् अपनी सीमा वाले शिलालेख के वर्ष को स्थिर करते क्योंकि भीनमाल (माघ की जन्मभूमि) सिरोही स्टेट ही के तो अन्तर्गत है। कुछ भी हो इस उद्धरण से भी हमारा कार्य कुछ निकला ही जिसका प्रकाश हम बाद में डालेंगे यद्यपि इसकी बहुत सी बातें हमारे शिलालेख वाली ही हैं।

उपर्युक्त ६८२ वर्ष विक्रम संवत् न होकर हमारे मत से शक संवत् ही होना चाहिए, इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(1) History of Mediaeval Hindu India vol. II Rajputs by C. V. Vaidya Chapter XII contemporary Arab writers—**Paragraph 2—**

Sulaiman further says that 'every prince in India is master in his own state......the Rastra Kutas always use the Saka era (Saka Sanvat) in their inscriptions : but possibly their coins had only regal years......the Kanauj empire extended into Kathiawar......we know that Bhoj first struck coins called the Adivaraha drama.

(१) उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट शक संवत् का प्रयोग सदैव ही अपने शिलालेखों व ताम्रपत्रों में करते थे किन्तु सिक्कों पर उस समय के राजा का शाही साल ही रक्खा जाता था। कन्नौज का साम्राज्य काठियावाड़ तक विस्तृत था और भोज ने ही प्रथम अपने सिक्कों पर आदिवराह खुदवाया था।

---

(१) पाठकों की सुविधा के लिए तथा उनको यह दृढ़ निश्चय हो जाय कि बसन्तगढ़ का शिलालेख शक संवत् का ही हो सकता हम शक संवत् के शिलालेखों की सूची रख रहे हैं (देखिये जैन साहित्य और इतिहास लेखक नाथूराम प्रेमी)

(क) काठियावाड़ के हड्डाला ग्राम में विनायकपाल के ज्येष्ठ भ्राता महीपाल के समय का शक सं० ८३६ (वि. स. ९७१) का एक दान पत्र प्राप्त हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि बढवाण में उसके सामन्त चापवशी धरणीवराह का अधिकार था।

(ख) प्रतिहार राजा महिपाल के समय का एक दानपत्र हड्डाला ग्राम (काठियावाड़) के शक संवत् ८३६ का मिला जिसमें उस समय बढवाण में धरणीवराह का अधिकार होना लिखा है जो चावड़ा वंश का था और प्रतिहारों का सामन्त था।

(ग) शक संवत् ८५३ बढवाण में हरिषेण आचार्य ने कथाकोश की रचना की जो पुन्नाट संघ के थे जिसमें जिनसेन हुए हैं।

(घ) राष्ट्र कूटों से पूर्व चौलुक्य सार्वभौम राजा थे जिनका अधिकार काठियावाड़ पर भी था। उनसे यह सार्वभौमत्व शक सम्वत् ६७५ के लगभग राष्ट्रकूटों ने छीना था।

(ङ) बडौदा में गुजरात के राष्ट्रकूट राजा कर्कराज का शक सम्वत् ७३४ का ताम्रपत्र मिला है उसमें कीर्तिवर्मा महावराह को हरिण बना दिया लिखा है (इंडियन ऐण्टिक्वेरी) भाग १२. पृ. १५९)

(च) शक संवत् ७०० में कुवलयमाला को उद्योतन सूरि ने जाबलिपुर या जालौर (मारवाड़ में एक दिन शेष रहने पर समाप्त किया है।

(छ) शक संवत् ७०५ में हरिवंश की रचना हुई।

(ज) सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू को शक संवत् ८८१ में पूरा किया और वादिराज ने शक संवत् ९४७ में पार्श्वनाथ चरित को पूरा किया।

(झ) मुलगुन्द धारवाड़ जिले की तहसील गदग में जहां पर इस समय भी चार जैन मन्दिर हैं उनमें शक संवत् ८२४, ८२५, ९०२, ९७५, १०५३, ११९७, १२७५, १५९७ के शिलालेख हैं।

(ट) उत्तरभारत, गुजरात, मालवा में दोनों संवतों को भी लिखने की प्रथा रही है किन्तु दक्षिण वाले तो शक संवत् ही लिखते थे। जिनसेन ने अपने ग्रन्थ रचना का समय शक संवत् में दिया है किन्तु हरिषेण ने शक और विक्रम दोनों में।

हड्डाला गाँव (काठियावाड़ में है) में शक संवत् ८३६ का दान पत्र प्राप्त हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि बढवाण में धरणीवराह का अधिकार था जो चावडा वंश का था और प्रतिहारों का सामन्त था।

इस भाँति शक संवत् के एक नहीं अनेक प्रमाण प्राप्त हैं। शक संवत् ७३४ वाला राजा कर्कराज का ताम्रपत्र प्राप्त है जिसमें कीर्तिवर्मा द्वितीय को हरिण बनाने का उल्लेख करने वाला श्लोक है। शक सं० ६७५ में राष्ट्रकूटों ने सार्वभौमत्व छीन लिया।

हड्डाला के दान पत्र से यह ज्ञात होता है कि प्रतिहार कहाँ तक विस्तृत थे और चाप (चावडा) वंश का उनके साथ कितना सम्बन्ध था। चावडों में प्रतिहारों में घनिष्ठ सम्बन्ध था। ये दोनों गुर्जर वंश के थे। अह्निलवाड में एक दूसरी गुर्जरों की शाखा जो चापोत्कट या चावडा या चाप कहलाती है सन् ७४६ में स्थापित हुई। वलमी के नाशोपरान्त ही इसकी प्रसिद्धि हुई। ये गुर्जर प्रतिहारों के अधीनस्थ थे।

(See A Political & Cultural History of India. Vol I by R. Sathianathaier) नागभट्ट प्रथम (सन् ७२५-७४०) प्रतिहार वंश का संस्थापक माना जाता है।

इसी का दूसरा प्रमाण एक और लीजिये। सिरोही स्टेट के इतिहास परिच्छेद षष्ठ में चावडा वंश वर्णन के अन्तर्गत लेखक लिखते हैं कि—

Brahma Gupta compiled his Brahmasphuta in Siddhanta in Saka 550 (628 A.D. Vyaghramukh of Chap clan was then ruling in Bhinumala (in Marwar). Dharanivarah of the Chap clan and a feudatory of the Parihar (Pratihar) Raja Mahipal of Kanuaj was a ruler of a part of Kathiawar in 971 V. E. (913 A. D.) Tod is of opinion that the chapas or chaoras were Sakas or Scythians, In modern researches the opinion is advanced that they are Gujars. The Chaoras of Bhinamal had included Sirohi in their dominions.

उपर्युक्त उद्धरण में ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता श्री ब्रह्मगुप्त के विषय में शक संवत् वाली बात स्पष्ट की है। इसके लिए तो श्री गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा भी लिखते हैं कि वह शक संवत् है क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कदाचित् उसके प्रचलन में अधिकता आ गई हो तो बसन्तगढ़ वाले ने लिखा हो तो आश्चर्य ही क्या है इससे विक्रम संवत् कैसे मान लिया जाय। आज विक्रम संवत् भी चल रहा है और ईस्वी सन् भी किन्तु जहाँ पर ई० सन् का प्रचलन प्रारम्भ ही हुआ था ऐसे समय में यदि किसी ने लिख दिया २००० तो वह वर्ष विक्रमी ही माना जायेगा क्योंकि भारत के अधिक भाग पर विक्रम सं० का तो प्रचलन था और ई० सन् तो नवीन रूप में ही आया। इस पर भी शक संवत् का लेखक ब्रह्मगुप्त भीनमाल का निवासी था अतः वहाँ पर शक संवत् का ही प्रचलन होना अधिक संभव है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जब राजा वर्मलात के शिलालेख का समय सन् ६२५ ई० स्थापित कर दिया, तो ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता ब्रह्मगुप्त वाले ५५० शक संवत् से चाप वंशीय व्याघ्रमुख के भीनमाल में शासनकाल का सम्बन्ध कैसे बैठ सकता है। ५५० शक संवत् से तो ६२८ ई० का ही समय हुआ। ६२५ ई० व ६२५ ई० तीन ही वर्ष का अन्तर ओझा जी भी बताते हुए कहते हैं कि इन **तीन वर्षों में भीनमाल का कौन शासक**

हुआ ? शासक कोई भी हो, वर्मलात किस भी वंश का हो हमको अभी इससे कोई तात्पर्य नहीं। हमें तो आश्चर्य इस बात का है कि क्या तीन वर्ष में ही उसी स्थान का संवत्-परिवर्तन हो जाया करता है ? एक ओर तो यह कहना कि उस ओर शक संवत् का प्रचार ही नहीं था और दूसरी ओर यह कहना कि तीन वर्ष में ही उसी का प्रचार हो गया वास्तविकता से मेल नहीं खाता। हमारी समझ में जब भिल्लमाललाचार्य ने शक संवत् स्पष्ट रूप में लिखा है तो फिर इस शिलालेख पर भी शक संवत् का होना ही प्रकट होता है। वह उसी प्रदेश का वासी था जिस प्रदेश के शिलालेख का हमने अभी तक इतना वर्णन किया है।

(१)[१] दूसरी बात प्रतिहार शब्द की है। प्रतिहार शब्द का प्रयोग ही कदाचित् आठवीं शती में आया। प्रतिहारों का संस्थापक नागभट का जिसका अस्तित्व ही सन् ७२५- ४० तक कहा जाता है। उसके पश्चात् ही प्रतिहार शब्द का प्रयोग नाम के साथ होने लगा यदि हम शिलालेख को ६८२ वि० सं० का मानकर सन् ६२५ का निर्दिष्ट करें तो फिर शिलालेख के गोष्ठिवकात्र राजिल। बकट। चंद्रक। **प्रतिहारवोटक।** राजस्थानीय आदित्य-भट। इन नामों में प्रतिहार शब्द का प्रयोग कैसे किया जाता ? इससे भी प्रतीत हो रहा है कि वह ६८२ संवत् विक्रम न होकर शक संवत् ही था जिसका सन् ७६० होता है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह प्रतिहार शब्द आठवीं शताब्दी के पूर्व था ही नही चाहे लोग इसका निकास राम के अनुज लक्ष्मण से क्यों न मानें। लक्ष्मण राम के प्रतिहार (DOOR KEEPER) थे किन्तु यह भावना बहुत पीछे की है। आठवीं सदी के मध्य राष्ट्रकूट राज के उज्जैन में यज्ञ किये जाने पर गुर्जर राजाओं ने प्रतिहार का कार्य भार सम्भाला था तभी से यह प्रतिहार शब्द कदाचित् गुर्जर राजाओं के साथ प्रयुक्त होने लगा हो। (देखिये An advanced History of India by Majumdar, Raichaudhari Datta Page 169, 'The Pratihar Empire) नागभट्ट प्रथम प्रतिहारवंश का संस्थापक सम्राट् था। ८३६ ई० के लगभग भोज प्रथम की अधीनता में प्रतिहार शक्ति पुनः जागृत हुई।

उपर्युक्त विचार इसी मत की पुष्टि करता है कि इस शिलालेख में जो संवत् दिया है वह विक्रम संवत् नहीं है, शक संवत् ही है जिसका अर्थ यह हुआ कि वह ७६० ई० सन् का है न कि ६२५ सन् का।

इस बात को निश्चित कर लेने के पश्चात् कि शिलालेख सन् ७६० ई० का था हमारे सम्मुख दूसरा प्रश्न राजा वर्मलात का आ जाता है कि वह किस वंश का था। ब्रह्मगुप्त स्वरचित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के २४ वें अध्याय पृ० ४०७ में लिखते हैं :—

श्री चापवंशतिलके श्री व्याघ्रमुखे नृपे शकनृपालात् पंचाशत् संयुक्तैर्वर्षशतैः पंचभिरतीतैः ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञ गोलवित्प्रीत्यै त्रिंशद्वर्षेण कृतो विष्णु-सुत ब्रह्मगुप्तेन इति लेखानुसारेण शके ५२० प्रादुरभूत्।

---

(१) देखिये जैन परंपरानो इतिहास भाग १ त्रिपुटी महाराज का पृ. ५३४ मौर्य पडिहार प्रतिहार मौर्यवंश माथी प्रतिहार वंश नीकल्यो छे। ते प्रतिहार वंश विक्रमी आठमी सदं थी। भिन्नमाल अने कन्नोजनी गद्दी ओ आव्यो छे। तेमा घणा राजाओं जैन धर्मी व जैन धर्म प्रेमी थबा छे। तेनी राजवली में नागावलोक के नागभट्ट ते भीनमाल नो राजा हतो।

हिस्ट्री ग्राफ सिरोही स्टेट के अध्याय ६ में 'चावडाज़' शीर्षक मे लिखा है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त को ६२८ ई० में भीनमाल का शासक चाप वंशीय व्याघ्रमुख चाप के समय में लिखा था । अतः सन् ६२८ ई० का भीनमाल का शासक चाप वंशीय व्याघ्रमुख ही था इसमें तो कोई संदेह नहीं है । इतिहास का कहना है कि ह्वेनसांग जब ६४१ ई० में भारत यात्रा में आया तो उसने भीनमाल में एक २० वर्षीय क्षत्रिय युवक को शासक के रूप में देखा । इतिहास विशारदों का कहना है कि वह और कोई नहीं था सिवाय व्याघ्रमुख के पुत्र के । एक ताम्रपत्र चालुक्य सामन्त पुलकेशी का कलचुरी संवत् ४९० (७४० ई०) का प्राप्त हुआ है उसमें यह प्रसंग आया है कि अरबों ने उसी समय के आस पास चावडा वंश के राज्य को नष्ट किया था। यदि वे भीनमाल के चावड़े ही थे तो कहना पड़ेगा कि ७३२ और ७४० के मध्य भाग में उन पर यह आक्रमण हुआ । इन चापों के पश्चात् ही हम भीनमाल प्रतिहारों का शासन देखते हैं । यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन प्रतिहारों के भीनमाल के चावड़ों को कब भीनमाल से निकाल बाहर किया । नागावलोक या नागभट प्रथम ही प्रथम प्रतिहार शासक भीनमाल का था जिसके राज्य की सीमा कन्नौज, बंगाल, मध्यभारत व पंजाब तक थी । श्री सी० बी० वैद्य का कहना है कि यह अरब आक्रमण सन् ७१२ के समीप हुआ । कुछ भी हो भीनमाल में व्याघ्रमुख व उसके पुत्र के पश्चात् चापवंशीय राजा का कोई नाम नहीं आया। चापवंशीय राजा शैव और शाक्त दोनों प्रकार के थे किन्तु ह्वेनसांग का तो कहना है कि वह २० वर्षीय युवक राजा बुद्ध धर्म के नियमों का पालनेवाला कट्टर बौद्ध विश्वासी था । हो सकता है कि राजा वर्मलात उसी २० वर्षीय युवक राजा के पुत्र या पौत्र रूप में हो जो अपने पिता या पितामह की भाँति ही शाक्त होते हुए भी बौद्ध धर्म का पालन करने वाला हो अन्यथा माघ अपने महाकाव्य शिशुपालवध में कविवंश वणन में नीचे लिखा श्लोक कभी न कहते । वे लिखते है :—

काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं, तथागतस्येव जनः सचेताः ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव, महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।।

उपर्युक्त में तथागत भगवान् बुद्ध के उपदेश की भाँति माघ के पितामह श्री सुप्रमदेव की बातों को वर्मल राजा बिना किसी संकोच के मानता था । इससे तो तात्पर्य यही हुआ कि राजा बुद्ध धर्म का भी अनुयायी था और शिलालेख की भाषा व लिपि भी इस बात का पर्याप्त प्रमाण दे रही है कि भीनमाल में उस समय बौद्ध धर्म का रूप अंतिमावस्था का सा था तथा जैन धर्म का विकास था और जहाँ लोग देवी की पूजा तथा सूर्य और विष्णु की भी अर्चना करने लग गये थे। हमारा निष्कर्ष राजा के विषय का यही निकला कि वह चाप वंशीय था जो बौद्ध धर्म का भी पालन करता था यद्यपि वंश परम्परा से वह पूर्ण शाक्त था । शंकर की स्त्री देवी दुर्गा का उसको इष्ट था और भीनमाल की भाग्य श्री (क्षेमार्या) को उसका दूसरा रूप कह कर वह उसकी उपासना करता था ।

बसन्तगढ़ के शिलालेख का सारांश

राजावर्मल (वर्मलात) भीनमाल के समीप अजारी से लगभग ३ मील दक्षिण की ओर बसन्त पुरगढ (बसन्तगढ) का शासक था । क्षेमकरी (क्षेमार्या) देवी का मन्दिर सत्य-

देव द्वारा सन् ७६० ई० में बसन्तपुर की पहाड़ी पर बनाया गया। जब इस मंदिर का भवन बन कर पूर्ण हुआ उस समय उसका शिलालेख वहाँ के राजा वर्मलात ने सन् ७६० ई० में स्थापित किया। उसमें पंचों के नाम भी दे दिये गये। राजा उस मंदिर का प्रधान रक्षक था। आबू पर्वत समीप में ही है। राजा वर्मलात का सामन्त वज्रभट सत्याश्रय का पुत्र राज्जिल उस प्रदेश का स्वामी था। राजा वर्मलात के अधीन ऐसे कितने ही सामन्त थे। राजा चाप वंश का था।

शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा वर्म्मलात के समय तक 'प्रतिहार' और 'राजस्थानीय' शब्दों का प्रयोग होने लग गया था। राजस्थान का प्रान्त उस समय गुर्जरभूमि के वायव्य कोने मारवाड़ (मरुधर) से लेकर आबू पर्यन्त का था।[1] भीनमाल कदाचित् इस समय चावड़ों के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के हाथ जा चुका था। इस समय चापवंश अनहिलपाटन व भीनमाल के आसपास के छोटे मोटे राजाओं के साथ ही रहा। हमारे मत से यह चापवंश का अन्तिम राजा था जो भीनमाल से अनहिलपाटण की ओर गये हुए राजा के ही वंश का था। अनहिलपाटण वाला ज्येष्ठ भाई हो और वर्मलात कनिष्ठ। यह कनिष्ठ अपनी छोटी सी जागीर को रखते हुए बसन्तगढ़ को ही प्रधान राजधानी स्थापित कर रखा था जब कि अरबों के अभियान या परस्पर विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। यह राजा शान्त प्रकृति का था अतः जो कुछ इसको प्राप्त था उसी में संतुष्ट रह कर अपना शेष जीवन अच्छे सलाहकारों के मतानुसार बिता रहा था।

---

(१) प्रो० सुधाकर द्विवेदी क्वीन्स कालेज बनारस सन् १६०२ ब्रजस्फुट सिद्धान्त की भूमिका में लिखते हैं—

अयं भिनमालनामा ग्रामो गुर्जर देशोत्तर सीम्नि मालव (मारवाड़) देशतः दक्षिण-भागे, आबूपर्वत लुणीमध्योर्मध्य तत् पर्वतात् वायुकोणे पंचयोजनान्तरे सम्प्रति प्रसिद्धः।

(२) भोज प्रबन्ध की साक्षी

बल्लाल पण्डित संकलिते भोजप्रबन्धेऽयम् प्रबन्धो दृश्यते

पुनश्च बल्लालनृपः प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। एवं तत्रैव स्थितः कालिदासः। अत्रान्तरे धारानगर्यांभोजं प्राप्य द्वारपालः प्राह। देव, गुर्जरदेशात् माघनामा पंडितवरः आगत्य नगराद्बहिरास्ते। तेन च स्वपत्नी राजद्वारि प्रेषिता। राजा तां प्रवेशयेत्याह। ततो माघपत्नी प्रवेशिता सा राजहस्ते पत्रं प्रायच्छत्। राजा तदादाय वाचयति, वनमपश्चि श्री मदम्भोज-गण्डं, त्यजति मुदमूलकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः। उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं, हत विधिललितानां ही विचित्रो विपाकः॥"

इति राजा तद्गतं प्रभातवर्णनमाकर्ण्य दत्वा माघपत्नीमाह। मातरिदं भोजनाथ दीयते प्रातरहं माघपण्डितमागत्य नमस्कृत्य पूर्णमनोरथं करिष्यामीति। ततः सा तदादाय स्वस्थानमागच्छन्ती याचकव्रातात्स्वभर्तुः शारदचन्द्रकिरणगौरान्गुणांकृत्वा तेभ्यो याचकेभ्यो निखिलमपि धारेन्द्रदत्तं वित्तं दत्तवती। दत्वा च माघपण्डितं प्राह—'नाथ, राज्ञा भोजेनाहं बहुमानिता, धनं चातिभूरि दत्तम्। मया च मार्गं आयान्त्या याचकमुखेभ्यो लोकोत्तरांस्तांस्तांस्तव गुणानाकर्ण्य तन्निखिलमपि वित्तं याचकेभ्यो दत्तम्।' माघः प्राह-देवि साधु कृतम्। परमन्ये याचका आयान्ति तेभ्यः किं दातव्यम्। ततो माघपण्डितं वस्त्रावशेषं विदित्वाकोऽप्यर्थी प्राह :—

"आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः॥

ततो माघः पत्नीं प्राह—

"अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
यांचा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन।
दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा
याचकाशाविधातान्तर्दाहः केनोपशाम्यते

देवि किं बहुना । चित्ते कष्टं किमपि नास्ति । परं तथाप्युच्यते—

"न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणं
लभन्ते कर्माणि द्विजपरिवृढान्कारयति कः ।
अदत्वैव ग्रांस ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्वयामः किं कुर्मी गृहिणि । गहनो जीवनविधिः

ततस्तथाविधामवस्थां माघस्य विलोक्य सर्वे याचका यथास्थानमगुः । याचकेषु यथास्थानं गच्छत्सु माघः प्राह—

"ब्रजत ब्रजत प्राणा दर्थिनि व्यर्थतां गते
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ।।

ततो माघपत्नी स्वामिनि परलोकं प्राप्ते प्राह—

सेवन्धे स्म गृहं यस्य दासवत्मभुज. पुरा ।
हाद्य मार्यासहायोयं मृतो वै माघपण्डितः ।।"

ततो राजा माघपण्डितं विपन्नं विदित्वा निजनगराद्ब्राह्मणशतावृतो मौनी पद्भ्यामेव तत्रागात् । ततो माघपत्नी राजानं वीक्ष्य प्राह--"राजन्, यदि पण्डितस्तत्र देशं प्राप्तस्तर्हि गृहमेव प्रातः । ततो देवेन कार्यशेषं सम्यवसंपादनीयम् ।' राजा तं विषन्नं माघपण्डितं नर्मदातीरं प्रापयामास । सा च माघपत्नी तेन सह वह्निवेशं कृतवती । ततो राजा माघस्योत्तरक्रियां पुत्र इव चक्रे । ततो दिवं गते माघे राजा शोकाकुलो विशेषण कालिदासविरहेण तथा सकलविद्वत्प्रवसनेन च दिने दिने कार्श्येन प्रतिपच्चन्द्रा- कृतिरासीत् ।

बल्लालकृत 'भोजप्रबन्ध' में माघ विषय लेख को पढ़ने पर हमारे सम्मुख निम्नलिखित बातें आती हैं—

(१) माघ गुजरात प्रान्त के किसी देश के निवासी थे ।

(२) गुजरात में दुर्भिक्ष पड़ा ।

(३) माघ अत्यन्त दानी थे अतः दान के कारण कदाचित् सब कुछ दुर्भिक्ष पीड़ितों को दे दिया हो परिणाम स्वरूप दरिद्रता से पीड़ित होकर राजा भोज के द्वार पर अपनी पत्नी को एक पत्र दे कर भेजा जिसमें 'बुमुदवनमपश्रि' वाला श्लोक था ।

(४) राजा भोज ने दरिद्रता से दुखी होने वाले माघ के लिए उसी समय तीन लाख रुपया दिया यह कहते हुये कि यह तो मैं भोजन के लिए दे रहा हूँ । प्रातःकाल मैं स्वयं जाऊँगा ।

(५) मार्ग में भिक्षुक माघ के दान की अति प्रशंसा कर रहे थे तो माघ की पत्नी ने प्रसन्न होकर वह सब द्रव्य मार्ग में ही भिक्षुकों को दे दिया ।

(६) पत्नी को शून्य हाथ लौटी देखकर माघ के कारण पूछा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि आपके गुणों की प्रशंसा सुन कर उन्हीं प्रशंसक भिक्षुओं को मान सहित दिये हुये धन को वितरण कर आई । माघ और भी प्रसन्न हुये किन्तु इतना ही दुःख हुआ कि और आने वाले भिक्षुओं को क्या दिया जायगा जबकि वस्त्रमात्र अवशेष हैं ।

(७) इतना होने पर भी याचकों को फिर भी कुछ देने की इच्छा माघ रखते ही हैं यदि किसी भाँति कहीं से धन प्राप्त हो जाय, परन्तु माँगना अपने आपको गौरव से गिराना है और इस दशा में यदि आत्मघात किया जाय तो वह भी महान् पाप है। दरिद्रता से वे दुखी हैं ऐसा नहीं क्योंकि उनको दरिद्रता तो संतोष से शांत हो सकती हैं परन्तु भिक्षुकों की आशा न पूर्ण कर सकने से उनको अतीव कष्ट है।

(८) स्त्री के प्रलाप में स्पष्ट है कि माघ बड़े धनी थे। राजा लोग जिसके यहाँ रहा करते थे आज वे केवल स्त्री के सहारे ही रह कर स्वर्ग गये। मरते समय कोई न था।

(९) मौन धारण किये हुये पैदल ही सौ ब्राह्मणों को साथ लेकर माघ पत्नी के निकट जब भोज गया तो माघ-पत्नी ने मृत-पति के शेष कार्य को स्वयं को ही सम्पन्न करने के लिये कहा, शव नर्मदा तीर पर ले जाया गया जहाँ पर माघ-पत्नी भी चिता में प्रवेश कर गई। भोज ने माघ की उत्तर क्रिया पुत्र-तुल्य की। **भोज माघ के मर जाने से दुखी रहा और विशेषकर कालिदास आदि विद्वानों के प्रवास कर जाने से** उनके विरह से और अधिक दुखी रहा।

ये बातें भोज प्रबन्ध से निकलीं। तर्क की कसौटी पर कसने से निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध हैं—

(१) राजा भोज विद्वान था, विद्वानों का सम्मान करता था अतः यदि माघ से भी उसका पूर्व परिचय हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसी परिचय को देख कर ही दरिद्रता से सताये हुए सुदामा की भाँति वे कृष्ण सम भोज के निकट गये। अन्तर केवल इतना सा ही था कि वहाँ पर स्वयं सुदामा गया था किन्तु यहाँ वे अपनी पत्नि सहित थे। नगरी में पहुँचे पर राज-द्वार पर पत्नी ही गई।

(२) धनी व दानी होने के साथ-साथ माघ स्वाभिमान से युक्त एवं धर्मसहिष्णु थे।

(३) कर्मकाण्ड का समय वह अवश्य रहा होगा। भिक्षुक वृत्ति भी नगर में होगी। सूर्योव्यापक माघ थे इसी लिये सूर्यग्रास निकालते हैं।

(४) ये गुजरात के निवासी थे। (भीनमाल गुजरात की सीमा पर है) जहाँ पर दुर्भिक्ष पड़ने पर वहाँ के मनुष्य कदाचित् गुजरात छोड़ कर मालवे की ओर प्रस्थान कर गये।

(५) धनी इतने थे कि राजा भी जिसके यहाँ पर आया जाया करते थे।

(६) माघ के कोई पुत्र न था। उस समय सती प्रथा की रीति थी अत: माघ-पत्नी चिता में प्रविष्ट कर गई।

(७) माघ ब्राह्मण अवश्य थे इसी लिए भोज मृत्यु समाचारों को श्रवण करते ही एक सौ ब्राह्मणों को साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँच गये।

भोजप्रबंध का सारांश (माघ को वार्ता)

माघ गुजरात के निवासी थे। गुजरात में दुर्भिक्ष पड़ जाने से इनको मालवे का ओर जाना पड़ा जहाँ पर राजा भोज राज्य कर रहा था। वह बड़े कवि थे, इसीलिगे एक

श्लोक भोज को लिखकर पत्नी द्वारा भजा और तीन लाख रुपये प्राप्त किये। पत्नी भी माघ की भाँति दानी निकली जिसने समस्त धन मार्ग में आए हुए भिक्षुकों को बाँट दिया। माघ दरिद्रावस्था में अन्त में स्वर्ग सिधार गये और उनकी पत्नी भी उन्हीं के साथ चिता में जलकर भस्म हो गई। इसके कोई पुत्र न था। माघ की पत्नी के वाक्य इस बात का स्मरण दिलाते हैं कि वे किसी समय इतने धनी थे कि राजा तक उनके घर पर आया करते थे। धनी होने के साथ ही वे धार्मिक, दानी, स्वाभिमानी एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे।

———

(३) प्रबंधचिन्तामणि की साक्षी

अथ श्री भोजः श्री माघपण्डितविद्वत्तां पुण्यवत्तां च सततमाकर्ण्य तद्दर्शनोत्सुकतया राजादेशैः सततं प्रेष्यमाणैः श्रीमालनगराद्धिमसमये समानीयस सबहुमानं भोजनादिभिः सत्कृत्य तदनु राजोचितान्विनोदान्दर्शयन्, रात्रावारात्रिकावसरानन्तरं सन्निहिते स्वसन्निभे पल्यंके माघपण्डितं नियोज्य तस्मै स्वशीतरक्षामुपनीय प्रियालापांश्चिरं कुर्वाणः सुखं सुखेन सुष्वाप। प्रातर्मांगल्यतूर्यनिर्घोषैर्विनिद्रं नृपं स्वस्थानगमनाय माघपण्डित आपृष्टवान्। विस्मयापन्न-हृदयेन राज्ञा दिने भोजनाच्छादनादिसुखं पृष्टः स कदन्नसदन्नवार्ताभिरलं शीतभारेण श्रान्तं विज्ञपयन्खिद्यमानेन राज्ञा कथं कथंचिदनुज्ञातः पुरोपवनं यावद्भूभुजानुगम्यमानः माघपण्डितेन स्वागमनप्रसादेन संम्भावनीयोऽहमिति विज्ञप्तो नृपानुज्ञातः स्वं पदं भेजे। तदनु कतिपयदिनैः श्रीभोजस्तद्विभवभोगसामग्रीदिदृक्षया श्रीमालनगरं प्राप्तः। माघपण्डितेन प्रत्युद्गमादियथोचित भक्त्याऽऽवर्जितः स सैन्यस्तन्मन्दुरायां ममौ। स्वयं तु माघपण्डितस्य सौधमध्यास्य संचारक-भुवं कांचनबद्धामवलोक्य स्नानादनु देवतावसथोर्व्यां मणिमरकतकुट्टिमशैबलवल्लरीयुग्जल-भ्रान्त्या धौताम्बरीयं संवृण्वन् सौवस्तिकेन ज्ञापितवृत्तान्तस्तदैव तद्देवतार्चानन्तरं निवृत्ते मंत्रावसरेऽशनसमयसमागतां रसवतीमास्वादयन् आकालिकैरदेशजैर्व्यंजनैः फलादिभिश्चित्रीय-मानमानसः संस्कृतपयः शालिशालिनीं रसवती माकण्ठमुपभुज्य भोजनान्ते चन्द्रशालामधिरुह्या-श्रुतादृष्टपूर्वकाव्य कथाप्रबन्धप्रेक्ष्यादीनि प्रेक्षमाणः शिशिरसमयेऽपि संजाताकस्मिकग्रीष्मभ्रान्त्या संबीतसितस्वच्चवसनस्तालबृन्तक रैरनुचरैर्वीज्यमानोऽमन्दचन्दनालेपनेपथ्यः सुखनिद्रया तां क्षणदां क्षणभिवातिवाह्य प्रत्यूषे शंखनिस्वनाद्विगतनिद्रो हिमसमये ग्रीष्मावतारव्यतिकरो माघ पण्डितेन ज्ञापितः प्रतिसमयं सविस्मयः कति दिनान्यवस्थाय स्वदेशगमनायापृच्छन् स्वय करिष्यमाणनव्यभोजस्वामिप्रसादप्रदत्तपुण्यो मालवमण्डलं प्रतिप्रतस्थे। तथा निजजन्मदिने जनकेन नैमित्तिकाज्जातके कार्यमाणे पूर्वमुदितोदितसमृद्धिर्भूत्वा प्रान्ते गलितविभवः किंचि-च्चरणयोराविर्भूतश्वयथुविकारः पंचत्वमाप्स्यति इति। निमित्तविदा निवेदितां बिभवसंभोरण तां ग्रहगति निराचिकीर्षुणा माघपित्रा सँवत्सरशतप्रमाणे मनुजायुषि षट्त्रिन्शत्सहस्राणि दिनानि भविष्यन्तीति विमृश्य नाणकर्षरिपूर्णान्स्तावत्संख्यान् ह्वारकान् कारितनव्यकोशेगु निवेश्य तदधिकां परां भूतिं शतशः समर्प्य प्रदत्तमाघनाम्ने सुताय कुलोचितां शिक्षां वितीर्य कृतकृत्यमानिना तेन विषेदे। तदनन्तरमुत्तराशापतिरिव प्राज्यसाम्राज्यो विद्वज्जनेभ्यः श्रियं तदिच्छया यच्छन्नमानैर्दानैरर्थिसार्थं कृतार्थयंस्तैर्भोगविधिभिः स्वममानुषावतारमिव दर्शयन् विरचितशिशुपालवधाभिधानमहाकाव्यचमत्कृतविद्वज्जनः स प्रान्ते पुण्यक्षयात्क्षीणवित्तो विपत्तिपाते स्वविषये स्थातुमप्रभूष्णुः सकलत्रो मालवमण्डले गत्वा धरायां कृतावासः पुस्तक-ग्रहणकार्पणपूर्वकं श्रीभोजात्कियदपि द्रव्यमानेयमिति तत्र पत्नीं प्रस्थाप्य यावत्तदाशया

---

१ कुमुदपण्डितसुतको माघ०

माघपण्डितश्चिरं तस्थौ। तावत्तथावस्थां श्रीभोजस्तत्पत्नीं विलोक्य ससंभ्रमः शलाकान्यासेन तत्पुस्तकमुन्मुथ काव्यमद्राक्षीत् ॥

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानांही विचित्रोविपाकः ॥ १ ॥

अथ काव्यार्थमवगम्य, का कथा ग्रन्थस्य केवलमस्यैव काव्यस्य विश्वम्भरामूलमल्पम्। समयोचि—तस्यानुच्छिष्टस्य 'ही' शब्दस्य पारितोषिकं क्षितिपतिर्लक्षद्रव्यं वितीर्य ताम् ससर्ज। सापि ततः संचरन्ति विदितमाघपण्डितपत्नी कैश्चिद्भिरार्थिभिर्याच्चमाना तत्पारितोषिकं तेभ्यः समस्तमपि वितीर्य यथावस्थिताग्रहमुपेयुषि तद्वृत्तान्तं विज्ञापनापूर्वं किंचितच्चरणस्फुरच्छोफाय पत्ये निवेदयामास। अथ त्वमेव मे शरीरिणी कीर्तिरिति श्लाघमानस्तदा स्वगृहमाघतं कमपि भिक्षुम वीक्ष्य भुवने तदुचितं किमपि देयमवश्यन् संजातनिर्वेद इदमवादीदत् ॥

अर्था न सन्ति न च मुँचति मां दुराशा
दानाद्धि संकुचति दुर्ललितः करो मे।
यांचा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिदेवितेन ॥ १ ॥
दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा।
दीनाशाभंगजन्मा तु केनायमुपशाम्यतु ॥ २ ॥
व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ॥ १ ॥
नभिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणं
लभन्ते कर्माणि क्षिति परिवृढान्कारयति कः।
अदत्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व यामः किं कुर्मो गृहिणि गहनो जीवितविधिः ॥ २ ॥
क्षुत्क्षामः पथिकोमदीयभवनं पृच्छन्कुतोऽप्यागतः
तत्किं गेहिनि किंचिदस्ति यदयं भुङ्क्ते बुभुक्षातुरः।
वाचास्तीत्यभिधाय नास्ति च पुनः प्रोक्तं विनैवाक्षरैः
स्थूलस्थूलविलोललोचनजलैर्वाष्पाम्भसां बिन्दुभि ॥ ३ ॥

इति तद्वाक्यान्त एवं स माघपण्डितः पंचत्वमवाप। प्रातस्तं वृत्तान्तमवगम्य श्रीभोजेन श्रीमालेषु सजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन्पुरुषरत्ने विनष्टे क्षुधाबाधिते सति भिल्लमाल इति तज्ज्ञातं नाम निर्ममे ॥

प्रबन्ध चिन्तामणि के उपर्युक्त उद्धरण से तो प्रतीत होता है कि राजा भोज ने माघ की विद्वत्ता और दानशीलता का हाल सुनकर एक समय शीतकाल में उन्हें श्रीमाल से अपने यहां आने के लिए आमन्त्रित किया था। माघ के वहाँ पहुँचने पर राजा भोज ने उनके खान पान और शयनादि आराम का सब भांति से उचित प्रबन्ध करवा दिया। परन्तु माघ ने

दूसरे दिन सोकर उठते ही घर लौट जाने की आज्ञा मांगी। यह देख कर राजा को महान् आश्चर्य हुआ और उसने माघ से खाने पीने और आराम के प्रबन्ध के विषय में पूछा। इस पर माघ ने कहा कि खाना तो जैसा कुछ भी बुरा भला था ठीक था परन्तु मैं तो रात्रि में शीत के मारे ठिठुर गया हूँ। यह सुनकर राजा को उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी और वह उनको नगर के बाहर तक पहुँचा आया। घर लौटते हुए माघ ने भी भोज से एक बार अपने यहाँ आने की प्रार्थना की। इसी के अनुसार जब राजा भोज अपने दलबल सहित उनके यहाँ पहुँचा, **तब उनके वैभव और प्रबन्ध को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।** वहाँ पर सर्दी में भी उसे शीत प्रतीत न हुआ। माघ ने उसका सत्कार करने में कोई बात उठा न रक्खी। कुछ दिन वहां रह कर जब भोज लौटा तब इस अतिथि सत्कार के फल में उसने अपने बनते हुए 'भोजस्वामी के मन्दिर का पुण्य' माघ को दिया।

कहते हैं माघ के जन्म के समय ज्योतिषियों ने उनके पिता से कहा था कि यहबालक पहले तो **वैभवशाली होगा** परन्तु **अन्त में दरिद्री हो जायेगा और पैरों पर सूजन आकर मरेगा** यह सुनकर माघ के पिता ने सोचा कि **पुरुष की आयु १०० वर्ष की होती है** और उन १०० वर्षों में ३६ हजार दिवस होते हैं। इसलिए उसने उतने ही पृथक् पृथक् गड्ढे करवा कर उनमें बहुमूल्य हार आदि रख दिए और जो कुछ बच रहा वह माघ को दे दिया। माघ भी **दान और भोग से** अपने जीवन को सफल बनाते हुये **अन्त में भाग्य की कुटिलता से दरिद्रावस्था को पहुंच गये और जब उनके लिए अपने नगर में रहना असंभव हो गया तब दुखी होकर घार की ओर वे चल पड़े। यहाँ पहुंचने पर अपनी स्त्री को अपना बनाया हुआ शिशुपालवध नामक महाकाव्य देकर राजा भोज के पास भेजा।** भोज भी माघ-पत्नी की सहसा ऐसी अवस्था देखकर आश्चर्य चकित हुआ। तदनन्तर जब उसने पुस्तक को जैसे ही खोलकर देखी तो प्रथम ही उसकी दृष्टि कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोज खण्डम् वाले श्लोक पर पड़ी जो प्रभातवर्णन में काव्य में ग्यारहवें सर्ग में आया है। राजा ने कविता के चमत्कार से और मुख्यतया चतुर्थपद के 'ही' शब्द के औचित्य से प्रसन्न होकर माघ की स्त्री का एक लाख रुपये दिये। परन्तु जैसे ही माघ की पत्नी लौट कर पति के निकट जाने लगी, वैसे ही कुछ याचकों ने उसको पहिचान लिया और उसके समीप **जाकर दान दाँगने लगे**। इस पर उसने वह समस्त द्रव्य उन्हें दे डाला और माघ के निकट पहुँच कर सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। यह सुनकर माघ ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उस समय माघ का **अन्तिम समय निकट आ जाने के कारण उनके पैरों पर कुछ-कुछ सूजन हो चली थी**। इतने में याचक और भी एक याचक वहाँ पर आ पहुंचा परन्तु माघ के पास उस समय देने को कुछ भी न था इस लिये उन्हों अपने प्राण देकर ही अपनी दानशीलता का निर्वाह किया।

जब भोज को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई तब उसको महान् दुःख हुआ और उसने **माघ की जाति वालों का जो श्रीमाल के नाम से प्रसिद्ध हैं और** जिन्होंने धनी होने पर भी माघ जैसे विद्वान की ऐसी दशा में कुछ सहायता न की, नाम परिवर्तन कर 'भिन्नमाल' कर दिया।

नीचे अब हम प्रबन्ध चिंतामणि व भोज प्रबन्ध के तथ्यों को एकत्र करते हुए प्रबंध चिन्तामणि व भोज प्रबन्ध में कितना साम्य है अन्त में इन तीनों से क्या सार निकला आदि बातों को लिखकर फिर सिद्धर्थि के प्रबन्ध को लेंगे।

(१) भोज प्रबन्ध महाकवि माघ को गुजरात प्रान्त से आया हुआ निर्देश कर रहे हैं और प्रबन्ध चिंतामणि स्पष्ट रूप से 'श्रीमाल' का निवासी बतला रही है। भोज ने माघ की विद्वत्ता को सुनकर शीतकाल में उन्हें श्रीमाल से अपने यहाँ पर आने के लिये आमन्त्रित किया था और अन्तिम समय में भी जब भोज ने दरिद्रावस्था में धन के अभाव स दुखी हो कर प्राण त्यागने की माघ सम्बन्धी बात सुनी तो उन्होंने श्रीमाल के स्थान पर भिन्नमाल नाम रख दिया।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि माघ गुजरात प्रान्त में भिन्नमाल के थे। ये बड़े विद्वान थे। राजा भोज के यहाँ पर ये उपस्थित हुए। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि कौन से युग वाले वे भोज राजा था। मालवा प्रान्त की बात दोनों प्रबन्धों में बतला कर धारा नगरी के राजा भोज की ओर अवश्य संकेत किया है किन्तु प्रसिद्ध धाराधीश का राज्यकाल राष्ट्रीय ११ वीं शताब्दी का अन्त है। (१०९२ सन् देखिए सबलमित्र बंगलामिधान) धनी भी थे तो अन्तिम समय दरिद्रावस्था कष्ट पूर्वक बीती क्योंकि इन्होंने दानी प्रकृति होने के कारण सब कुछ दान कर दिया था। ये बातें दोनों प्रबन्धों में समान हैं।

ये माघ कवि किस जाति के थे इस पर भी पूर्ण संकेत है। भोजप्रबंध तो गुप्त रूप से ब्राह्मण होने का संकेत कर रहा है अन्यथा राजा भोज की मृत्यु समाचार सुनते ही एक सौ ब्राह्मणों को उस घटनास्थल पर ले जाने की आवश्यकता ही क्या थी ? जातिवालों के यहाँ जातिवाला ही जब दाह संस्कार में सम्मिलित हो तब श्रेष्ठ समझा जाता है। माघ ब्राह्मण थे इसी लिए जातिवाले ही संस्कार के लिए ले जाये गये। प्रबन्ध चिन्तामणि तो खुले रूप में माघ को श्री माली ब्राह्मण उद्घोषित सी कर रही है। कुछ भी हो वे ब्राह्मण अवश्य थे अन्यथा हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड इस दुष्काल में कौन करायेगा ऐसी बात श्लोक में माघ के द्वारा नहीं कहलाई गई होती। इस पर भी सूर्य के लिए भोजन-समय ग्रास रखना भी, ब्राह्मणत्व का थोड़ा बहुत द्योतक अवश्य है यद्यपि ऐसा तो अन्य जातिवाले भी करते हुए देखे गये हैं। मग ब्राह्मण सूर्योपासक होते हैं जो भीनमाल में हैं, कदाचित् माघ भी मग द्विज हों।

(३) दोनों प्रबन्धों से यह भी ज्ञात होता है कि ये बड़े धनी थे, वैभवशाली थे। प्रबन्ध चिन्तामणि ने तो इतना कहा है कि इनके पिता भी धनी थे अन्यथा ज्योतिषियों से अंतिमावस्था दरिद्रता में निकलेगी ऐसा सुनकर १०० वर्ष की आयु में ३६ हजार दिवस होते हैं इसलिए उतने ही गड्ढे पृथक् पृथक् खुदवा कर उनमें बहुमूल्य हार रखवा दिये कैसे जाते ? इससे तो यह भी प्रमाणित होता है कि माघ के पिता भी धनी थे अन्यथा इतना धन माघ के पिता के पास भी कैसे आ सकता था। वृद्धावस्था में ही प्राण गए होंगे इसका प्रमाण इससे भी प्राप्त किया जा सकता है कि पिताजी ने ज्योतिषियों से ऐसी बात सुनी और कुलोचित शिक्षा प्राप्त करना भी तो साधारण बात नहीं है। कम से कम २५ वर्ष तक विद्याध्ययन किया ही होगा फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार के वैभवशाली दिनों को इन्होंने अवश्य देखे अन्यथा राजा भोज आश्चर्यचकित क्योंकर हो जाता। वहाँ पर भिन्न प्रकार के अदृष्ट-पूर्व काव्य, कथा प्रबन्ध एक ओर थे तो ऋतुओं के अनुसार वहां पर वे सब बातें थीं। ये सब बातें बड़े अनुभव के पश्चात् ही आया करती हैं। भोज ने जब चन्द्रशाला पर आरोहण करके काव्यों, कथाओं, इतिहासों और नाटकों को देखा उस समय तक तो 'शिशुपालवध महा-

काव्य' का कोई अस्तित्व ही न था अन्यथा माघ अथवा भोज इन दोनों में से किसी एक के द्वारा इस विषय की चर्चा अवश्य छिड़ी होती अतः शिशुपालवध महाकाव्य उस समय तक तो रूपरेखा में ही नहीं आया था। कदाचित् शिशुपालवध महाकाव्य राजा भोज के समीप आपत्ति के अन्तिम समय में जाने तक प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया हो। प्रबन्ध चिन्तामणि इस बात को स्पष्ट रूप में रख रही है कि माघ कुबेर की भाँति विशाल समृद्धि पाकर, विद्वज्जनों को उसकी इच्छानुसार धन देने लगे। अपरिमित दान से अर्थिजनों को कृतार्थ करते हुए और भोग विलास में तल्लीन रहते हुए, उन्होंने शिशुपाल वध नामक महाकाव्य बनाया। इस काव्य को लेकर विद्वानों का मन चमत्कृत हो गया। अन्त में पुण्य क्षय हो जाने पर जब उनका धन क्षीण हो गया और विपत्ति का समय आ गया तो उन्होंने अपने देश में रहना अयुक्त समझ कर, अपनी स्त्री के साथ मालवमंडल में जाकर धारानगरी में वास किया। यह शिशुपालवध महाकाव्य कैसा है इस पर भी भोज की सम्मति द्वारा पूर्ण संकेत मिल रहा है कि सारे ग्रंथ की तो बात ही क्या है, इस एक काव्य के मूल्य के लिए पृथ्वी भी दे दी जाय तो वह कम है। समयोचित और अनुच्छिष्ट इस 'ही' शब्द के पारितोषक में ही एक लाख रुपये देकर राजा ने उनकी पत्नी को विदा किया। इससे सिद्ध होता है कि शिशुपालवध महाकाव्य में जो कुछ लिखा गया है समयोचित तो है ही किन्तु कवि ने जैसे 'ही' शब्द के औचिन्य पर ध्यान दिया है इस भांति स्थान स्थान पर शब्द और अर्थ के औचित्य पर भी ध्यान दिया गया है और इसी एक औचित्य गुण के कारण ही यह कवि अन्य कवियों की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है।

(४) यह दानी थे और यह गुण कदाचित् पिता और पितामह से प्राप्त होता है। वर्षाती गुण छूट नहीं जाता। यही हाल इनका था।

(५) कदाचित् यह पिता के इकलौते पुत्र थे अतः लाड प्यार से पाले गये।

(६) इनके कोई पुत्र न था यदि होता तो वह भी आपत्ति में साथ होता।

(७) प्रबन्ध-चिन्तामणि का लिखना है कि कुछ दिन वहां पर रह कर जब भोज लौटा तब इस अतिथि-सत्कार के फल में उसने अपने बनते हुए भोजस्वामी के मन्दिर का पुण्य माघ को दिया।

'राजा भोज' लेखक 'विश्वेश्वरनाथ रेउ' अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि भोज बड़े धार्मिक थे अतः उसके बनाये हुए स्थानों में चित्तौड़ के किले पर शिव का मन्दिर है। उसमें प्रतिष्ठित की गई शिव की मूर्ति का नाम अपने नाम पर भोजस्वामि-देव रक्खा। यह बात चित्तौड़ से प्राप्त हुए वि. सं. १३५८ के लेख में लिखे 'श्री भोजस्वामी देव जयति' इस वाक्य से सिद्ध होती है। राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुन नारायण था इसलिए इस शिवमूर्ति को 'त्रिभुवन नारायण देव' भी कहते हैं। चीरवासे में मिले वि. सं. १३३० के लेख में लिखा है :—

'श्री चित्रकूट दुर्गे खलारतां यः पितृक्रमायतां।

* * *

श्री भोजराज रचित त्रिभुवननारायणाख्य देव गृहे।
यो विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वशिव लिप्सुः॥

(बिएना ओरियण्टल जर्नल, भा. २१, पृ. १४३)

आजकल मंदिर अदबदजो (अद्भुतजी) का अथवा महाराणा मोकलजी ने जीर्णोद्धार ई० सन् १४२८ में कराया था अत: मोकलजी का मन्दिर कहलाता है।

उपर्युक्त से हमारी यह धारणा बनती है कि चित्तौड दुर्ग अति प्राचीन है। मौर्यों ने भी यहाँ पर राज्य किया था फिर बप्पा रावल के वंशज मेवाड़ वालों का राज्य रहा। मेवाड़ वाले अपने को एकलिंग का दीवान मानते हुए आज तक भी आ रहे हैं। उनका इष्ट शिव है अत: चित्तौड़ में यह शिव की मूर्ति अति प्राचीन है इसका जीर्णोद्धार एक ने नहीं कितनों ही ने कराया है। जिस जिस राजा ने जीर्णोद्धार कराया उसी ने अपने नाम को मंदिर के नाम के साथ जोड़ दिया। चित्तौड पर भी भोज ने शासन किया जो गुहलोत-वंशीय बाप्पा की संतान में से था। धारवाले भोज व मिहिर मौज का भी यहाँ तक आधिपत्य रहा था। पाठकों को निर्णय करना है कि माघ के साथ किस भोज का सम्पर्क है। चित्तौड़ से भीनमाल समीप ही है। धार जितनी दूरी पर नहीं।

"भोजस्वामी के मंदिर का पुण्य माघ को दिया" इससे दूसरी धारणा यह बनती है— राजा भोज स्वयं विष्णु वा सूर्य का उपासक था जो प्रतिहार भोज के नाम से प्रख्यात है जिसको मिहिर भोज भी कहते हैं। मिहिर का अर्थ ही सूर्य है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि उसने सूर्य मन्दिर की स्थापना की जो जगत् स्वामी का मन्दिर भी कहलाता है इससे ही त्रिभुवन (जगत्) नारायण भी कह दिया जाय तो कोई अनौचित्य न होगा।

"The Glory That Gurzardesh Has–Part—III" में लेखक श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी ने लिखा है कि भीनमाल में मघ ब्राह्मण रहते हैं जो सूर्योपासक हैं यह मघ शब्द फारसी मगी का रूप है। ये ब्राह्मण ईसा की छठी शताब्दी तक तो श्रीमाल में ही थे तत्पश्चात् वहाँ पर नहीं बस सके। यक्षकू और जगत्स्वामी का मन्दिर (सूर्यमन्दिर) वहाँ पर है।

हमने यह भी देखा कि 'न भिक्षा-दुर्भिक्षे' वाले श्लोक में 'अदत्वैव ग्रासं ग्रहपति (सूर्य) रसावस्तमयतै', माघ स्वयं कह कर पश्चात्ताप कर रहे हैं। भोजन करने के पूर्व सूर्य के लिए ग्रास निकालना इस बात का क्या द्योतक नहीं है कि माघ सूर्योपासक थे। ऐसा होने के नाते क्या हम माघ को मघ ब्राह्मण स्थिर कर दें ? श्रीमाली तो श्रीमाल के रहने से ही हो गये जैसे दाधिमथ क्षेत्र के निवासी या वहाँ से निकले हुए ब्राह्मण दाहिमा हैं ही (दाधिपथ, दाधिमथ, दाहिमा, दायमा)। श्री माल से श्री माली जैसे दाधिमथ से दाधिमथ। माघ सूर्योपासक थे मिहिर भोज भी सूर्योपासक फिर सूर्य मन्दिर का पुण्य माघ को ही देना था।

श्री मुन्शी उसी पुस्तक में बप्पा या काल भोज का समय (७३९।७५३) का बता रहे हैं जब उन्होंने चित्तौड़ को मौर्यों से छीन लिया। इतिहासवेत्ता बताते हैं कि बापा रावल का शासन ७६३ ई० में समाप्त हो चुका था। उसके पश्चात् गुहिल गद्दी पर बैठे तत्पश्चात् भोज नाम वाले शासक फिर महेन्द्र, नाग, शील, अपराजित, महेन्द्र द्वितीय फिर कालभोज (८३६ ई०)। हम इस पर भोज के विषय में लिखते समय विचार करेंगे कि

माघ के समय में चित्तौड़ की गद्दी पर कौन से शासक थे। क्या वहाँ पर शील के पश्चात् वाले भोज अथवा काल भोज ? धारा-नगरी के प्रसिद्ध भोज तो हो ही नहीं सकते।

(८) गुजरात में दुर्भिक्ष पड़ा इसलिए माघ को भोज के समीप अपनी स्त्री को श्लोक या शिशुपालवध देकर उपस्थित कराया। यहाँ यह प्रश्न उठता है—**भीनमाल में कब दुर्भिक्ष पड़ा** ? दुर्भिक्ष पड़ने के समय को देखने के पूर्व हम कब कब वह उजड़ा व बसाया गया इस पर लिखेंगे।

काव्यमीमांसा भाग द्वितीय के लेखक आचार्य हेमचन्द्र की श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई वाली पुस्तक में रसिकलाल पारिख की भूमिका का निम्न लेख भी इस विषय में कुछ प्रकाश डालता है :—

'According to the dates preserved by the local tradition, the first temple of Jagat Swami or the Sun was built in 222 S. V. (166 A.D.) The city was destroyed in S. V. (209 A.D.), In S. V. 494 (438 A.D.) the city was sacked second time by a Rakshasa. In S. V. 700 (643 A.D.) the city was rebuilt. In S. V. 900 (844 A.D.) it was destroyed for the third time. In S. V. 955 (896 A. D.) the city was again restored and it was followed by a period of prosperity till the beginning of the 14th century (B.G.P. 143)'.

"Albureni Days (A.D. 1020) that the ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त was composed by ब्रह्मगुप्त the Son of जिष्णु from the town of भिन्नमाल between मुलतान and अह्लिलवाड़"

इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि भीनमाल, जो गुजरात की सीमा पर है अथवा गुजरात में है, कितनी ही बार उजड़ा और बसाया गया। सन् ८४४ में यह नगर तीसरी बार उजाड़ अवस्था में रहा। फिर तो सन् ८९६ में वह अपनी अच्छी अवस्था पर पहुँचा। सन् ८४४ में प्रतिहार मिहिर भोज का राज्य था। अरबों के आक्रमणों की तो समाप्ति हो चुकी थी अतः बाहरी आक्रमण से वह नगर नष्टभ्रष्ट कर दिया गया हो ऐसी तो कोई बात दिखलाई नहीं पड़ती और पारस्परिक राज्यों के भी झगड़े अब वैसे न थे जिनसे भीनमाल नगर नष्टभ्रष्ट कर दिया गया हो। हो सकता है कि भीनमाल में उस समय महामारी दुर्भिक्ष अथवा कोई ऐसा दैवीप्रकोप आया हो जिससे लोग मारवाड़ की सीमा को छोड़-२ कर मालव भूमि की ओर उदर-भरण के निमित्त जाने लग गये हों जैसे आज भी मारवाड़ी पशु-पालक लोग अपनी गायों, भैंसों, पशुओं आदि को लेकर गरमी की ऋतु में उस सरसब्ज भूमि में चले आते हैं। भूमि उजड़ सी जाती है। यदि यही अवस्था सन् ८४४ के भीनमाल की हो और माघ भीनमाल को छोड़ कर किसी के आश्रय की खोज में गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। वह स्थान धार ही हो अथवा चित्तौड़ या कन्नौज किन्तु गये वे अवश्य होंगे और इस समय तक वे वृद्धावस्था में कष्टपूर्ण दरिद्रता के दिनों को गिन रहे होंगे। 'भीनमाल' लेख जो आगे दिया गया है उसमें स्पष्ट है कि ८३४ ई० से भीनमाल गुर्जरों की राजधानी न

रहा,[१] कन्नौज राजधानी हो गया अतः वह शनैः शनैः वैभवहीन तो हो ही गया था फिर ८४४ की इस घटना ने उसे और भी नष्ट कर दिया होगा। इसके अतिरिक्त ९वीं शती से गुजरात की राजधानी पाव्यु हो जाने से व वहाँ की श्रीवृद्धि होने से हजारों कुटुम्बों ने यहाँ से उधर जाना प्रारम्भ किया होगा। तभी से गुजरात के इतिहास में श्रीमाल व पोरवाड़ जैनों का प्रभाव बढ़ने लगा होगा इस भांति उधर इस नगर के श्रीहीन होने व यहाँ के लोगों के गुजरात की ओर जाने के निर्देश से इस बात की तो पुष्टि हो जाती है कि श्रीमाल के स्थान पर अब वह भिन्नमाल हो गया जैसा भोज ने माघ कवि की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा था।

इन बातों को देखते हुए महाकवि माघ नवम शती के पूर्वार्द्ध तक अवश्य जीवित होने चाहिएँ। आगे लिखे गये आचार्यों के जीवन से भी इस बात की पुष्टि में सहायता मिलेगी।

---

१ See Kavyanusasana by Acharya Hemchandra Vol. II Part I Introduction by R. C. Parikh Page XCIX—In the Copporplate grant of the Chalukya Samanta Pulakesin of the Kalachuri Samvat 490 (740 A.D.) there is a reference to Chaotakas being attacked by the Mussalmans. If they were the Chapas of Bhinnamala, we can say that Bhinnamala must have been attacked between the year 732 & 740 A.D. After the Chaotakas we find Pratiharas reigning in Bhinnamala. It is not known when the Chapas were displaced by the Pratiharas· Pandit Gauri Shankar Oza puts this event between 740 & 809 A.D.........Page C—Vatsa Raja conquered the Gauda Kings of Bengal......Vatsa Raja succeeded by his son Nagabhatta II. He was also called Nāgavaloka. He defeated Chakrāyudha the King of Kanouj & thus became the lord of an empire. We know from the Gwaliar inscription that he conquered the kings of Andhra, Saindhava, Vidarbha, Kalınga and Vanga and took the mountain-Castles of Anartta, Māeavā; Kirāta, Turushka, Vatsa and Matsya. We have an inscription of him V. S. 772 (=716 A.D,) found from Buchakala a village in the Jhodhpur State. He was a great devotee of Bhagavati. This Nagabhatta is alsa called Ama by the Jaina writers. According to Prabhavakacharita he died in V. S. 890 (=834 A.D.). Probably it was in his time that Bhinnamala ceased to be the capital of Gurjara empire and only remained a provincial capital. The seat of Gurjara empire then became Kānyakubja.

(४) पुरातन प्रबंध-संग्रह की साक्षी

पुरातन-प्रबंध-संग्रह में भाघ पंडित-प्रबंधः—

नोट—प्रबन्ध चिंतामणी प्रबन्धों के साथ सम्बन्ध और समानता रखने वाले अनेकानेक पुरातन प्रबन्धों का संग्रह।

अथ दत्तमूनोर्माघस्योच्यते। माघस्य जन्मनि पित्राजातकं कारितम्। आयुर्वर्षाणां चतुरशीतिः, परं प्रान्ते चरणशोफेन मृत्युः। पित्रा ऋद्धिप्राग्भारकलितेन षोड़शवर्षा दूर्ध्वं दिनदिन सम्बन्धी लहितो हारको द्रम्भाणां मुक्तः। अतिव्ययवानपीयता सुखं निर्वहिष्यते। स प्रौढ़ः सन् पठितुं प्रवृत्तः। कवित्वं कृत्वा षितुर्दर्शयति। ईदृशानि कवित्वानि कुरुषे, पूर्वं कवित्वानां शतांशेनापि न प्रभवन्ति। पुत्रेण शिशुपालवधो नामकाव्यं कृत्वा चुल्हकोपरिच्छन्नं धृतम्। एकदापितुः पुस्तकं जीर्णप्रायं धूमेन कृत्वा दर्शितम्। पिता वाचन् शिरोऽवधूनन् आह-वत्स। ईदृशानि कवित्वानि क्रियन्ते। तेनोक्तम् तात! मव्यानि? किमुच्यते। तर्हि मया कृतानि। जनकेनोक्तम् मया छलः कृतोऽतस्ते इयता कवित्व-सीमा जाता। अतः परंतव कवित्वं न। स अधीत्य पितर्युपरते बिलसितं प्रवृत्तः जन्मपत्रिकां दृष्ट्वा सशिखं हारकं व्ययीकुरुते।

तस्य भोजपतिना मालवाधीशेन मैत्री जाता। एकदा श्रीभोजेन मिलितुमाकारितो माघस्तत्र गतः। नृपेण सगौरवं धवलगृहे स्थापितः। स्नानं कुर्वता पंडितेन मुखं कूणितम्। नृपेण भोक्तुमुपविष्टस्य दिव्यरसवतीसमाना रसवती परिवेषिता। स मुखमेव कूणयति। नृपेण चिन्तितम्—स्वगृहे किम सौ मुनक्ति। उत्थितः। पृष्टो नृपेण—रसवती की दृशी? देव। कदशनेनोदरंपूर्त्तम्। भव्यशीतरक्षा पार्श्वे हसंतिका च रात्रौ सुप्तः। पंडितो नृपस्य नातिदूरे। रात्रौ पंडितः शय्यायां पुनः पुनः पार्श्वेघातं करोति। नृपेण—किमसौ भुनक्ति, कथं शेतेऽस्य गृहें? अवलोकनीयं गत्वा एतत्। प्रातरुत्थिते नृपेण पृष्टम्—सुखेन निद्रा समायाता? देव। रासभवद्भारितानां निद्राकुतः। दिनचतुष्कं स्थित्वा पंडितेन नृपो मुत्कलाषितः। **राज्ञा श्रीमाले भोजस्वामिप्रसादः कारितः**। तस्य पुण्यं पंडितस्य प्रदाय पंडितः सम्प्रेषितः। पंडितेनोक्तम्—देव। कदाचिन्ममोपरि प्रसादं विधायास्मत्पुरे पादमवधारणीयम्। एवमित्यभिधाय सम्प्रेष्य नृपः प्रत्यावृत्तः। स्वगृहमायातः। इतो द्वितीये शीतसौ नृपः प्रौढ कटकेन श्रीमालं प्राप्तः। माघेन सम्मुखं गत्वा नृपः स्वगृहे एव सकऽभ्युत्तारितः। नृपस्तु आवासमवलोकितुं प्रवृत्तः। स्थाने स्थाने विचित्रकौतुकानि पश्यन्, स्थाने स्थाने धूपघटीपरिमलमाजिघ्रन्, संचारभूमिमतीव परिमलाढ्यां दृष्ट्वा पृष्टवान्—किमेण देवतासरोपवरकः देव? एष संचारकोऽपवित्रः। नृपोलज्जितः। इतो मज्जावसरे पूर्वं मर्दनिकैर्मर्दनं दत्तं यथा नृपोऽतिरंजितः। स्नानपीठे स्वर्णमये महाविच्छित्या स्नानं कारितः। तदनु देवदूष्यसमानि नासानिः श्वासहार्याणि वस्त्राण्याजग्मुः। महद्वर्यानिदेवान् नत्वा भोक्तुमुपवेशितः। स्वर्णस्थाले द्वात्रिंशत्कच्चोलकैवृते मंडिते क्षीरमयं पक्वान्नं परिवेषितम्। क्षीरतन्दुलमयः कूरः। एवं कटकान्यपि तस्यैव। अपराणि नानाव्यंजनानि परिवेषितानि। नृपश्चिन्तयति स्म-यईदृशीं रस-

वतीं भुनक्ति तस्यमे रसवती कथं रोचते । भुक्तोत्तरं पंचसुगन्धिनाम ताम्बूले जाते वार्ता विदधतो रात्रिरजनि । सर्वोपरितनभूमौ नृपाय पल्यंकः सज्जितः । राज्ञोक्तम्-मित्र । शीतकालं न जानीथ ? । देव । जानीमः । चन्दनं सज्जितम् । नृपस्तत्र शैयामलंचक्रे । तत्र महान् तापश्चन्दनमर्षितम् । तालवृन्तैर्वज्यिमानस्य निद्राऽऽयाता । प्रातः पंडितेन पृष्टम्-देव । शीतकाल उष्णाकाली वा ? : उष्णकाल इति प्रत्युत्तरं ददौ । पंडितप्रीत्या कियन्ति दिनानि स्थित्वा मुत्कलाप्य नृपः स्वपुरीं ययौ ।

क्रमेणैवंविलसतः पंडितस्य धनं क्षीणं वार्द्धक्यमपि चागतम् । इतः पंडितेन प्रिया उक्ता—

'न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्था ....'

इति निर्वाहमविमृश्येतौ माघेन माघकाव्यपुस्तकमर्पयित्वा प्रिया माल्हणादेवी नाम्नी धारायां नृपसमीपे ग्रहिता—यदमुं ग्रन्थं ग्रहणके अंगीकृत्य लक्षत्रयं द्रम्भाणां ददत । सातत्र गता नृपेण शुद्धिः पृष्टा । पुस्तकमर्पितम् लक्षत्रयी याचिता । राज्ञा शलाका क्षेपिता । प्रातर्वर्णने पंडितस्वरुपसूचकं काव्यं निस्सृतम् ।' कुमुदवनमपत्रि श्रीमदम्भोजखण्डं... 'नृपेण विमृश्य 'ह्रीं' इति—अक्षरस्य लक्षत्रयं दत्तम् । ग्रन्थस्तावत् दूरेऽस्तु काव्यं च । पंडितपत्न्या नृपकुलादुत्तरन्त्या पंडित विरुदान्यधीयानानां लक्षत्रय्मपि दत्तम् । नृपेण पुनराहूयोक्ता—पुनर्द्रव्यं गृहणेत्युक्तोवाच-अधिकं नानायितमतोऽहं न गृह्णे । सा क्रमेण स्वगृहं प्राप्ता । यथा गता तथा आगता । पंडितेनोक्तम्-पुस्तकं राज्ञा किमिति नातम् ? तयावृत्ते उक्ते पंडितेनोक्तम्-सत्यं आवयौर्योगौ विधिना कृतः । अद्यत्वं परीक्षाशुद्धा निवृत्ता । एतावन्ति दिनानि चेतस्येवं विकल्प आसीत् यन्मे गेहिनी ममानुरूपा न वा अद्य सन्देहो मग्नस्तव दानेन । यत्त्वया गृहदौस्थ्यं न गणितम् ।' अर्थी न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा......' इतो दर्भस्रस्तरसुप्तः चरणयोः श्वयथुर्जातः । अस्मिन्नवसरे कोऽपि विप्रः क्षुधार्थी पंडिता-वासे प्रविष्टः । भोजनं याचितम् । पंडितेनोक्तम्—'क्षुत्क्षामः पथिको मदीय भुवनं पृच्छन् कुतोऽप्यागतः ।

इतोऽर्थी विमुखीभूय गतः । पंडित आह—

'व्रजत व्रजत, प्राणा अर्थिनि व्यर्थतांगते... ....।'

इति कथनादनु प्राणैस्त्यत्यजे । पत्न्यानुसहगमनमकारि । इतः श्री भोजराजो वित्तस्य करमीर्मृत्वा त्वरितमाययौ । पृष्टम्-पंडितः क्व ?। जनैवृत्तमुक्तम् । नृपः प्राह-रेरे इदं श्रीमालं न, मिल्लमालमिदम् । यत्र मम मित्रस्य मयि सत्यमि केनाप्युद्धारकेपि किमपि नार्पितम् । अतः पुरेष्वपि (अप) वित्रमिदम् । शेष कार्याणि तस्यार्थस्य व्ययेन विधायेति विमृशन् मनसि—

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजंगविहंगमबन्धनम् ।
मतिमतां च समीक्ष्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।।'

क्रमेण स्वपुरीं गतः ।

'उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः तदपि न चलतीयं भाविनी कर्मरेखा ।।

(ख) प्रबन्धचिंतामणि गुम्फित कतिपय प्रबंध संक्षेप

(३१२ पृष्ठ १३० पुरातन प्रबंध संग्रह सम्पादक मुनिजिनविजय)

श्रीमालपुरे माघपंडितः। पित्राऽपि (टि. कुमुदपण्डितेन) स्वपुत्रापन्निराकरणाय वर्ष-शतदिनमितनाणकहारकान् दत्वा भोगायानेकशो दत्वा च विपेदे। तद्दिदृक्षयागतं श्री भोजं सबलं रञ्जयामास। मरकत बद्धा भूमिर्दिव्या। काचबद्धा संचारकभूः। दैवज्ञोक्त प्रान्ते पादेश्वययुः। पुण्यक्षये देशमोचः। यतः—

देशंस्वमपि मुंचन्ति मानम्लाने महाशयाः। दिवावसाने व्रजति द्वीपान्तरमहर्मणिः॥ धारायांगतः। पुस्तकग्रहणकार्षणपूर्वं श्री भोजात्कियद् द्रव्यमानेयमित्युक्ता भार्या गतोपलक्षिता नृपेण। विषादः। पुस्तकाद्यपत्रे काव्यम्—

कुमुदवनमयपश्रि···' अस्यैव काव्यस्य सर्वोर्वीमूल्यम्। परंलक्षं? सा मार्गे याचकैः। नाक्षराणि—प्रस्मृतः किमथवा। गृहागता पत्या प्रशंसिता। अन्यदाभिक्षा-अर्था न सन्ति न च मु०॥ 'दारिद्रयानल संताप······।' व्रजत व्रजत प्राणाः। ततोमृतः। नृपेण तज्जातेर्भिल्ले-माल इति॥ पंडितमाघ प्रबन्धः।

प्रबन्ध चिन्तामणि, ग्रन्थ सम्बद्ध 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' (प्रबन्ध चिंतामणि ग्रन्थगत प्रबन्धों के साथ सम्बन्ध और समानता रखनेवाले अनेकानेक पुरातन प्रबन्धों का विशिष्ट संग्रह सम्पादक—जिनविजय मुनि) में 'माघ पंडित प्रबन्ध' लेख को पढ़ लेने पर हमारे सम्मुख 'प्रबन्धचिन्तामणि' में लिखित कुछ बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातें भी आती हैं :—

(१) माघ 'दत्त' के पुत्र हैं जिनका नाम कुमुद पंडित भी था।

(२) उनकी ८४ वर्ष की आयु जन्मपत्री के अनुसार है और मृत्यु समय पैरों में सूजन का होना बताया है।

(३) माघ प्रौढ़ होने पर पढ़ने लगे।

(४) कविता रच कर वे अपने पिता को उसे दिखाते किन्तु पिता उन्हें कहते कि तुम ऐसी कविता करते हो पूर्व पुरुषों की कविता की तुलना में तो तुम्हारी यह कविता शतांश भी तो नहीं है। इस पर माघ ने 'शिशुपालवध' नामवाला काव्य बनाया और उसको चूल्हे पर छिपे हुए रूप में रख दिया। एक दिन माघ ने धुँए से धूमिलवर्णवाली पुस्तक को अपने पिता को दिखाया। पिता ने उसको जैसे जैसे पढ़ा अपने शिर को आनंद में हिलाते हुए कहा, अरे पुत्र, यह है कविता। ऐसी कविताएँ किया करो। माघ ने कहा पिताजी, क्या इतनी सुन्दर है?

पिता; क्या कहना?

माघ ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो ये श्लोक तो मेरे द्वारा रचे गये हैं। पिता ने कहा कि तुमने धोखा दिया है अतः अब भविष्य में तुम्हारी कविता की सीमा इतनी ही

रहेगी। अब से आगे तुम्हारा कोई कवित्व न होगा। माघ पढ़ लिख कर जैसे ही संसार के योग्य हुए कि पिता की मृत्यु हो गई। मृत्यु होने पर माघ भी विलास में डूब गये।

(५) मालवाधीश भोज के साथ माघ की मैत्री थी। अतः भोज से मिलने के लिए माघ भोज के घर पर गये और भोज भी माघ के यहाँ सेना सहित सहसा जा उपस्थित हुए। इन दोनों के परस्पर की अतिथि सत्कार वाली बातें प्रायः वैसी ही हैं जैसी बातों का संकेत प्रबन्धचिन्तामणि कर रही है। निष्कर्ष दोनों ग्रन्थों के लेखों से यही निकलता है कि माघ एक अच्छे राजसी ठाट- बाट से रहने वाले और मनमौजी जीव थे। उनकी शान शौकत के आगे बडे बड़े रईस भी कुछ नहीं थे। राजा ने जाते समय श्रीमाल में जो भोज स्वामी का मन्दिर बन रहा था उस मन्दिर को माघ को दान में देकर पुण्य लाभ प्राप्त किया। प्रबन्ध में श्रीमाल में मन्दिर के बनने का स्पष्ट उल्लेख है।

(६) इस भाँति मन मौजी तबियत से रहते हुए माघ के धन का अन्त होने लगा और उधर वृद्धावस्था भी आ गई थी।

(७) माघ ने आपत्ति के समय को जान कर माघकाव्य पुस्तक को अपनी स्त्री सुश्री माल्हणादेवी को देकर धाराधीश के समीप भेज दिया कि इसको तीन लाख मुद्रा में उन्हें दे देना। पत्नी गई और काव्य के लिए अर्पण करते समय तीन लाख मुद्राओं की याचना की। शलाका से उस पुस्तक को देखा तो 'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखंडं'—के 'ह्री' के औचित्य पर तीन लाख मुद्रायें दे दीं।

(८) माघपत्नी जैसे ही उतर रही थी कि मार्ग में ही विरुदवाले व्यक्तियों को जब तीन लाख रुपये दे दिये तब भोज ने फिर उसको बुला कर कहा कि तुम फिर रुपये ले लो। माघपत्नी ने कहा कि मैं मांगने से अधिक नहीं चाहती अतः अब और अधिक की याचना नहीं करती। वह घर गई। जैसे गई वैसे ही खाली हाथ आ गई। माघ ने जब पूछा तो उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। माघ बड़े प्रसन्न हुए यह देखकर कि पत्नी भी उसके ही अनुरूप है।

(९) दर्मा पर सोने से चरणों में सूजन भी आ गई। इसी अवसर पर कोई अर्थी माघ के निकट आया किन्तु जैसे ही वह उदासीन होकर लौटने लगा माघ ने भी प्राण त्याग दिये।

(१०) भोज भी धन लेकर जैसे ही माघ के निकट आया तो मनुष्यों से उनकी मृत्यु का हाल सुन कर भिन्नमाल नाम दिया और कहा कि अब श्रीमाल यह न रहा, क्योंकि माघ जैसों की, धनी होने पर भी उसके जाति बन्धुओं ने, सहायता न की। अतः यह अब सब नगरों में अपवित्र होगा। शेष कार्य को भोज ने किया।

प्रबंधचिंतामणि तथा पुरातन प्रबंध संग्रह से प्राप्त तथ्यों का सारांश

श्रीमाल नगर के निवासी कुमुद पंडित 'दत्त' के पुत्र माघ हैं। माघ के जन्म दिन ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि माघ की आयु ८४ वर्ष की होगी और अन्तिमावस्था में पैरों में जब सूजन आजायगी माघ की मृत्यु हो जायगी। युवावस्था जैसी आनन्द पूर्वक निकलेगी वृद्धावस्था वैसी ही निर्धनावस्था के हो जाने से महान् कष्टप्रद रहेगी। दुःखावस्था

में इनके शरीर का अन्त होगा । पिता ने यह जान कर इनके लिए इतना धन छोड़ दिया था कि वह खर्च करने पर भी समाप्त न हो । सोलह वर्ष के उपरान्त माघ ने उचित रीति से पढ़ना लिखना प्रारम्भ किया । कवि हृदय प्रारम्भ ही से थे अतः कविता रच कर वे अपने पिता को बताया करते थे । पिता उन कविताओं को देख कर पुत्र में जोश उत्पन्न करने के लिए कह देते कि क्या ये ही तुम्हारी कवितायें हैं । और पूर्व कवियों की समता में तो ये शतांश भी नहीं हैं । ऐसी भी कहीं कविता होती है ? माघ के हृदय को पिता की बात स्पर्श कर गई । माघ ने शिशुपालवध की रचना की और धोखे से दूसरों की पुस्तक कह कर उसे उन्हें बताया । पिता ने जब उस पुस्तक की भूरि भूरि प्रशंसा की और कहा कि कविता करना इसको कहते हैं इस पर माघ ने स्पष्ट कर दिया कि वह कविता उन्होंने ही बनाई है । धोखा देने से क्रुद्ध पिता ने पुत्र को शाप रूप में कह दिया कि भविष्य में न तो इससे बढ़ कर तुम्हारी कोई कविता होगी और न ही अब से तुम कविता कर पाओगे । माघ ने कुलोचित विद्या प्राप्त कर ही ली थी । विद्वानों में वह आदरणीय हो ही रहे थे कि पिता की मृत्यु हो गई । माघ अब बिलास में डूब गये ।

एक बार माघ भोज के घर पर गये और वहाँ के अतिथिसत्कार से अरुचि उत्पन्न होने से ही अपने घर की ओर वह भोज से आज्ञा लेकर आ रहे थे, तब भोज उन्हें मार्ग तक विदा करने आये । उस समय उन्होंने भोज को भी निमन्त्रण दिया कि किसी दिन वे भी मित्र के घर को पवित्र करें । भोज समय देख कर सेना सहित चले ही गये । माघ ने अच्छा अतिथि सत्कार किया । भोज स्वयं माघ के उस रहने के ढंग को देख कर अवाक् हो गये । माघ के प्रासाद में आंगन ऐसा था कि वहाँ पर जल का भ्रम होता था । ऋतुओं का ध्यान ही न रहता था । वह किसी बड़े से बड़े रईस से भी बढ़ कर थे । भोज ने मन ही मन जब स्वीकार किया कि अब माघ का इस भाँति रहन सहन है तब मेरा घर मेरा भोजन तथा मेरा रहन सहन इन्हें कैसे रुचिकर हो । जाते समय श्रीमाल में जो भोजस्वामि का मंदिर बन रहा था उसे माघ को देकर पुण्य-लाभ प्राप्त किया ।

माघ को वार्द्धक्य ने आ दबाया । दान करने तथा शान शौकत से रहने के कारण घर की पूंजी अब नष्टप्राय: थी अतः दुःखावस्था जानकर भोज के निकट अपनी पत्नी माल्हणा देवी को शिशुपालवध काव्य के साथ भेजा । जिससे वह तीन लाख रुपया ले आये । भोज दानी थे ही । उसी समय तीन लाख रुपये दे दिये जिनको महल से नीचे उतरते उतरते ही माल्हणा ने याचकों को बाँट दिया । इस पर फिर राजा ने देना चाहा किन्तु स्त्री चरित्र वाली थी जितना माँगा था उसमे अधिक उसने न लिया । चाहे सूर्य इधर से उधर हो जाय । घर पर पहुँच कर माल्हणा देवी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया । इस पर माघ बड़े प्रसन्न हुए किन्तु याचकों के लिए कुछ भी देने को जब न रहा तब उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये । पत्नी ने भी पति का अनुकरण किया । भोज धन लेकर आया किन्तु माघ की मृत्यु का समाचार सुन कर बड़ा दुखी हुआ । इसी दुःख मे उसने श्रीमाल का नाम भिन्नमाल या भिल्लमाल कर दिया तथा माघ का अंतिम संस्कार पुत्रवत् किया ।

---

(५) प्रभावक चरित की साक्षी

प्रभावक चरित्रेऽयम् प्रबन्धो दृश्यते (श्री सिद्धर्षि का प्रबन्ध)

श्रीसिद्धर्षिः श्रियो देयाद्धियामध्यानधामभूः ।
निर्ग्रन्थग्रन्थता मापुर्यद्ग्रन्थाः सांप्रतं भुवि ॥ १ ॥
श्रीसिद्धर्षिप्रभोः पांतु वाचः परिपचेलिमाः ।
अनाद्यविद्यासंस्कारा यदुपास्ते भिदेलिमाः ॥ २ ॥
सुप्रभुः पूर्वजो यस्य सुप्रभः प्रतिभावनाम् ।
बन्धुर्बन्धुरभाग्यश्रीर्यस्य माघः कवीश्वरः ॥ ३ ॥
चरितं कीर्त्तयिष्यामि तस्य त्रस्यज्जडाशयम् ।
भूभृच्चक्रचमत्कारि वारिताखिलकल्मषम् ॥ ४ ॥
अजर्जरश्रियां धाम वेषालक्ष्यजरज्जरः ।
अस्ति गुर्जरदेशोऽन्यसज्जराजन्य दुर्जरः ॥ ५ ॥
तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुरं मुखमिव क्षितेः ।
चैत्योपरिस्थकुम्भालिर्यत्र चूड़ामणीयते ॥ ६ ॥
प्रासादा यत्र दृश्यन्ते मत्तवारणराजिताः ।
राजमार्गाश्च शोभन्ते मतवारणराजिताः ॥ ७ ॥
जैनालयाश्च सन्त्यत्र नबंधूपगमं श्रिताः ।
महर्षयश्च निःसंगानबंधूपगमं श्रिताः ॥ ८ ॥
तत्रास्ति हास्तिका स्वीयापहस्तिततरिपुव्रजः ।
नृपः श्रीवर्मलाताख्यः शत्रुमर्म भिदक्षमः ॥ ९ ॥
तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मन्त्री मित्रं जगत्यपि ।
सर्वव्यापारमुद्राभृन्मुद्राकृद्दुर्जनानने ॥ १० ॥
देवार्योशनसौर्यस्य नीतिरीतिमुदीक्ष्य तौ ।
अवलंब्य स्थितौ विष्णुपदं कर्तुं तपःकिल ॥ ११ ॥
तस्य पुत्रावुभावंसाविव विश्वम्भरक्षमौ ।
आद्यो दत्तः स्फुरद्वृतो द्वितीयश्च शुभंकरः ॥ १२ ॥
दत्तवित्तोनुजीविभ्यो दत्तचित्तसुधर्मधीः ।
अप्रवृत्तः कुकृत्येषु तत्र सुत्रामवत् श्रिया ॥ १३ ॥
हर्म्यकोटिस्फुरत्कोटिध्वजजालान्तरस्थिताः ।
जलजन्मतयेव श्रीर्यस्मादासीदनिर्गमा ॥ १४ ॥

तस्य श्रीभोजभूपाल बाल-मित्रं कृतीश्वरः ।
श्री माघो नंदनो ब्राह्मीस्यंदनः शीलचन्दनः ॥ १५ ॥
ऐदंयुगीनलोकस्य सारसारस्वतायितम् ।
शिशुपालवधः काव्यं प्रशस्तिर्यस्य शाश्वती ॥ १६ ॥
श्री माघोस्ताघधीः श्लाघ्यः प्रशस्यः कस्य नाभवत् ।
चित्तजाड्यहरा यस्य काव्यगंगोर्मिविप्रुषः ॥ १७ ॥
तथा शुभंकरश्रेष्ठी विश्वविश्वप्रियंकरः ।
यस्य दानाद्भुतैर्गीतैर्हर्यश्वो हर्षभूरभूत् ॥ १८ ॥
तस्याभूद्गेहिनी लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेरिव ।
यया सत्यापिताः सत्यः सीताद्याः विश्वविश्रुताः ॥ १९ ॥
नंदनो नंदनोत्तंसः कल्पद्रुम इवामरः ।
यथेच्छादानतोऽर्थिभ्यः प्रार्थितः सिद्धनामतः ॥ २० ॥
अनुरूपकुलां कन्यां धन्यां पित्रा विवाहितः : ।
भुंक्ते वैषयिकं सौख्यं दोगुंदग इवामरः ॥ २१ ॥
दुरोदरभरोदारो दाराचारपराङ्मुखः ।
अन्यदासोऽभवत्कर्म दुर्जयं विदुषामपि ॥ २२ ॥
पितृमातृगुरूस्निग्धबन्धुमित्रैर्निवारितः ।
अपि नैव न्यवर्त्तिष्ट दुर्वारं व्यसनं यतः ॥ २३ ॥
अगूढातिप्ररूढेऽस्मिन्नहर्निशमसौऽवशः ।
तदेकचित्तधूर्तानाम् सदाचारादभूद्बहिः ॥ २४ ॥
सपिपासोशनायाति शीतोष्माच्च विमर्शतः ।
योगीव लीनचित्तोऽत्र व्यत्रस्यत्साधुवाक्यतः ॥ २५ ॥
निशीथातिक्रमे रात्रावपि स्वकगृहागमी ।
बध्वा प्रतीक्ष्य एकस्यास्तया नित्यं प्रतीक्ष्यते ॥ २६ ॥
अन्यदा रात्रिजागर्यानिर्यातवपुरुद्यमाम् ।
गृहव्यापारकृत्येषु विलीनांगस्थितिं ततः ॥ २७ ॥
ईदृक् ज्ञातेयसम्बन्धवशकर्कशवाग्भरम् ।
श्वश्रूरश्रूणि मुंचन्ती वधूं प्राह सगद्गदम् ॥ २८ ॥
मयि सत्यां पराभूतिं कस्ते कुर्यात्ततः स्वयम् ।
विद्यते कुविकल्पैस्त्वं गृहकर्म भरालसा ॥ २९ ॥
श्वशुरोऽपि च ते व्यग्रो यदा राजकुलादिह ।
आगंता च ततो देवावसरादावसज्जिते ॥ ३० ॥
मामेवाक्रोक्ष्यति त्वं तत्तथ्यम् मम निवेदय ।
यथा द्रागभवदीयार्त्तिप्रतीकारं करोम्यहम् ॥ ३१ ॥
सा न किंचिदिति प्रोच्य श्वश्रू निर्बन्धतोऽवदत् ।
युष्मत्पुत्रोऽर्द्धरात्रातिक्रमेऽभ्येति करोमि किम् ॥ ३२ ॥

श्रुत्वेत्याह तदा श्वश्रूः किं नाग्रेऽजल्पि मे पुरः ।
सुतं स्वं बोधयिष्यामि वचनैः कर्कशप्रियैः ॥ ३३ ॥
अद्य स्वपिहि वत्से त्वं निश्चिन्ताहम् तु जागरम् ।
कुर्वे सर्वं भलिष्यामि नात्र कार्याधृतिस्त्वया ॥ ३४ ॥
ओमित्यथ स्नुषाप्रोक्ते रात्रौ तद्द्वारि तस्थुषी ।
विनिद्रा पश्चिमे यामे रात्रेः पुत्रः समागमत् ॥ ३५ ॥
द्वारम् द्वारमिति प्रौढस्वरोऽसौ यावदूचिवान् ।
इयद्रात्रौ क आगन्ता मातावादीदिति स्फुटम् ॥ ३६ ॥
सिद्धः सिद्ध इति प्रोक्ते तेन सा कृतकक्रुधा ।
प्राह सिद्धं न जानेऽहमप्रस्तावविहारिणम् ॥ ३७ ॥
अधुनाहं क्व यामीति सिद्धेनोक्ते जनन्यपि ।
अन्यदा शीघ्रमायाति यथास्मात्कर्कशं जगौ ॥ ३८ ॥
एतावत्यां निशि द्वारं विवृतं यत्र पश्यसि ।
तत्र यायाः समुद्घाटद्वारा सर्वापि किं निशा ॥ ३९ ॥
भवत्वेवमिति प्रोक्ते सिद्धस्तस्मान्निरीय च ।
पश्यन्ननावृतद्वारो द्वारेणादनगारिणाम् ॥ ४० ॥
सदाप्यनावृतद्वारं शालायां पश्यति स्म सः ।
मुनीन् विविधचर्यासु स्थितान्निष्पुण्यदुर्लभान् ॥ ४१ ॥
कांश्चिद्वैरात्रिकं कालं विनिद्रस्य गुरोः पुरः ।
प्रवेदयत उत्साहान्कांश्चित्स्वाध्यायरङ्गिणः ॥ ४२ ॥
उत्कटिकासनान् कांश्चित् कांश्चिद्गोदोहिकासनान् ।
वीरासनस्थितान् कांश्चित्सोऽपश्यन्मुनिपुंगवान् ॥ ४३ ॥
अचिंतयच्छमसुधानिर्झरे निर्जरा इव ।
सुस्नातशीतला एते तृष्णाभीता मुमुक्षवः ॥ ४४ ॥
मादृशा व्यसनासक्ता अभक्ताः स्वगुरुष्वपि ।
मनोरथद्रहस्तेषां विपरीतविहारिणः ॥ ४५ ॥
धिग्जन्मेदमिहामुत्र दुर्यशो दुर्गतिप्रदम् ।
तस्मात्सुकृतिनी वेला यत्रैते दृष्टिगोचराः ॥ ४६ ॥
अमीषां दर्शनात्कोपिन्याप्युपकृतं मयि ।
जनन्या क्षीरमुत्तप्तमपि पित्तं प्रणाशयेत् ॥ ४७ ॥
ध्यायन्नित्यग्रतस्तस्थौ नमस्तेभ्यश्चकार सः ।
प्रदत्तधर्मलाभाशीर्निर्ग्रन्थः प्रभुराह च ॥ ४८ ॥
को भवानिति तैः प्रोक्ते प्रकटं प्राह साहसी ।
शुभंकरात्मजः सिद्धो द्यूतान्मात्रा निषेधितः ॥ ४९ ॥
उद्घाटद्वारि यायास्त्वमोकसीयन्महानिशि ।
इयन्ती वाचना दत्ता प्रावृतद्वारि संगतः ॥ ५० ॥

तन्नः प्रभृति पूज्यानां चरणौ शरणौ मम ।
प्राप्तं प्रवहणे को हि निस्तितीर्षति नांबुधिम् ॥ ५१ ॥
उपयोगं श्रुते दत्वा योग्यताहृष्टमानसाः ।
प्रभावकं भविष्यंतं परिज्ञायाथ तेऽवदन् ॥ ५२ ॥
अस्मद्वेषम् बिना नैवास्मत्पार्श्वे स्थीयतेतराम् ।
सदा स्वेच्छाविहाराणां दुर्ग्रहः स भवादृशाम् ॥ ५३ ॥
धार्यं ब्रह्मव्रतं घोरं दुष्करं कातरैर्नरैः ।
कापोतिका तथा वृत्ति समुदानापराभिधा ॥ ५४ ॥
दारुणः केशलोचोऽथ सर्वाङ्गीणव्यथाकरः ।
सिकतापिंडवच्चायं निरास्वादश्च संयमः ॥ ५५ ॥
उच्चावचानि वाक्यानि नीचानां ग्रामकण्टकाः
सोढव्या दशनैश्चर्वणीया लोहमया यवाः ॥ ५६ ॥
उग्रं षष्ठाष्टमाद्यं तत्तपः कार्यं सुदुष्करम् ।
स्वाद्यास्वाद्येषु लब्धेषु रागद्वेषौ न पारणे ॥ ५७ ॥
इत्याकर्ण्यावदत्सिद्धो मत्सदृग्व्यसनस्थितः ।
छन्नकर्णोष्ठनासादिबाहुपादयुगा नराः ॥ ५८ ॥
क्षुधाकरालिताभिक्षा चौर्यादिवृत्तिधारिणः ।
अप्राप्तशयनस्थानाः पराभूता निजैरपि ॥ ५९ ॥
नाथ किं तदवस्थाया अपि किं दुष्करो भवेत् ।
संयमो विश्ववंद्यस्तन्मूर्ध्नि देही करं मम् ॥ ६० ॥
यददत्तं न गृह्णीमो वयं तस्मात्स्थिरो भव ।
दिनमेकंयथा विज्ञापयामः पैतृकं तव ॥ ६१ ॥
ततः प्रमाणमादेश इत्युक्त्वा तत्र सुस्थिते ।
परं हर्षं दधौ सूरिः सुविनेयस्य लाभतः ॥ ६२ ॥
इतः शुभंकरश्रेष्ठी प्रातः पुत्रं समाह्वयत् ।
शब्दादाने च संभ्रान्तः पश्यन् पत्नीं नताननाम् ॥ ६३ ॥
अद्य रात्रे कथं नागात्सिद्ध इत्युदिता सती ।
लज्जानम्रावदद् द्यूती शिक्षितोऽथ सुतो ययौ ॥ ६४ ॥
श्रेष्ठी दध्यौ महेलाः स्युरु तानधिषणा ध्रुवम् ।
न कर्कश वचोयोग्ये व्यसनी शिक्ष्यते शनैः ॥ ६५ ॥
ईषत्करं ततः प्राह प्रिये भव्यं त्वया कृतम् ।
वयं किं प्रवदामोऽत्र वणिजां नोचितं ह्यदः ॥ ६६ ॥
गृहाद्वहिश्च निर्याय प्रियासांगी कृतः स्थितः ।
व्यलोकयत्पुरं सर्वमहो मोहः पितुः सुते ॥ ६७ ॥
इतश्चरित्रिशालायामसावुपशमोर्मिभिः ।
आप्लुतोऽपूर्वसंस्थानं ततोऽवादि च तेन सः ॥ ६८ ॥

यद्येवं शमिसामीप्यस्थितिं पश्यामि ते सुतः ।
अमृतेनेव सिच्येत नन्दनानन्दनस्थिते ।। ६९ ।।
द्यूतव्यसनिनां साध्वाचारातीत कुवेषिणाम् ।
संगतो मम हृदुःखहेतुः केतुरिव ग्रहः ।। ७० ।।
आगच्छ वत्स सोत्कण्ठा तव माता प्रतीक्षते ।
किंचिन्मद्वचनैर्दूना संतप्ता निर्गमात्तव ।। ७१ ।।
स प्राह तात पर्याप्तं गेहागमनकर्मणि ।
मम लीनं गुरोः पादारविंदे हृदयं ध्रुवम् ।। ७२ ।।
जैनदीक्षाधरो मार्गं मार्गं निष्प्रतिकर्मतः ।
आचरिष्यामि तन्मोहो भवद्भिर्मा विधीयताम् ।। ७३ ।।
याया अपावृतद्वारे वेश्मनीत्यंबिकावचः ।
शमिसंनिध्यवस्थानं मतं नस्तदभूद्वचः ।। ७४ ।।
यावज्जीवं हि विदधे यद्यहं तत्कुलीनता ।
अक्षता स्यादिदं चित्ते सम्यक्तात विचिंतय ।। ७५ ।।
अथाह संभ्रामाच्छ्रेष्ठी किमिदं वस्तु चिन्तितम् ।
असंख्यध्वजविज्ञेयं धनं कः सार्थयिष्यति ।। ७६ ।।
विलस त्वं यथा सौख्यं विदेहि निजयेच्छया ।
अविमुंचन्सदाचारं सतां श्लाघ्यो भविष्यसि ।। ७७ ।।
एकपुत्रा तवाम्बा च निरपत्या बधूस्तथा ।
गतिस्तयोस्त्वमेवासीजीर्णं माजीगणस्तु माम् ।। ७८ ।।
पित्रेत्थमुदिते प्राह सिद्धः सिद्धशमस्थितिः ।
संपूर्णं लोभिवाणीभिस्तत्र मे श्रुतिरश्रुतिः ।। ७९ ।।
ब्रह्मणीव मनो लीनं ममातो गुरुपादयोः ।
निपत्य ब्रूहि दीक्षां हि पुत्रस्य मम यच्छत ।। ८० ।।
इति निर्बंधतस्तस्य तथा चक्रे शुभंकरः।
गुरुः प्रादात्परिव्रज्यां तस्य पुण्ये स्वरोदये ।। ८१ ।।
दिनैः कतिपयैर्मासमाने तपसि निर्मिते ।
शुभे लग्ने पंचमहाव्रतारोपणपर्वणि ।। ८२ ।।
दिग्बन्धं श्रावयामास पूर्वतो गच्छ सन्ततिम् ।
सत्प्रभुः श्रृणु वत्स त्वं श्रीमान् वज्रप्रभुः पुरा ।। ८३ ।।
तच्छिष्यवज्रसेनस्याभूद्विनेयचतुष्टयी ।
नागेंद्रो निर्वृतिश्चन्द्रः ख्यातो विद्याधरस्तथा ।। ८४ ।।
आसीन्निर्वृत्तिगच्छे च सुराचार्यो धियां निधिः ।
तद्विनेयश्च गर्गर्षिरहं दीक्षागुरुस्तव ।। ८५ ।।
शीलांगानां सहस्राणि त्वयाष्टादश निर्भरम् ।
वोढव्यानि विविश्राममाभिजात्यफलं ह्यदः ।। ८६ ।।

ओमिति प्रतिपद्याथ तप उग्रं चरन्नसौ ।
अध्येता वर्तमानानां सिद्धान्तानामजायत ॥ ८७ ॥
स चोपदेशमालाया वृत्तिं बालावबोधिनीम् ।
विदधेऽवहितप्रज्ञः सर्वज्ञः इव गीर्भरैः ॥ ८८ ॥
सूरिर्दाक्षिण्यचंद्राख्यो गुरुभ्रातास्ति यस्य सः ।
कथां कुवलयमालां चक्रे शृङ्गारनिर्भराम् ॥ ८९ ॥
किंचित्सिद्धकृतग्रन्थसोत्प्रासः सोवदत्तदा ।
लिखितैः किं नवोग्रन्थस्तदवस्थागमाक्षरैः ॥ ९० ॥
शास्त्रम् श्रीसमरादित्यचरितं कीर्त्यते भुवि ।
यद्रसोभिप्लुता जीवाः क्षत्तृडाद्यं न जानते ॥ ९१ ॥
अथोत्पत्तिरसाधिक्यसारा किंचित्कथापि मे
अहो ते लेखकस्येव ग्रन्थः पुस्तकपूरणः ॥ ९२ ॥
अथ सिद्धकविः प्राह मनो दूनोपि (षि) नो खरम् ।
वयोतिक्रांतपाठानामीदृशी कविता भवेत् ॥ ९३ ॥
का स्पर्द्धा समरादित्यकवित्वे पूर्वसूरिणा ।
खद्योतस्येव सूर्येण मादृग्मन्दमतेरिह ॥ ९४ ॥
इत्थमुद्वेजितस्वांतस्तेनासौ निर्ममे बुधः ।
अन्यदुर्बोधसंबद्धां प्रस्तावाष्टकसंभृताम् ॥ ९५॥
रम्यामुपमितभवप्रपंचाख्यां महाकथाम् ।
सुबोधकथितां विद्वदुत्तमांगविधूननीम् ॥ ९६ ॥
ग्रन्थव्याख्यानयोग्यं यदेनं चक्रे शमाश्रयम् ।
अतः प्रभृति संघोऽत्र व्याख्यातृविरुदं ददौ ॥ ९७ ॥
दर्शिताथास्य तेनाथ हसितुः स ततोऽवदत् ।
ईदृक कवित्वमाधेयं त्वद्गुणाय मयोदितम् ॥ ९८ ॥
ततो व्यचिंतयत्सिद्धो ज्ञायते यदपीह न ।
तेनाप्यज्ञानता तस्मादध्येतव्यं ध्रुवं मया ॥ ९९ ॥
तर्कग्रन्था मयाधीताः स्वपरेऽपीह ये स्थिता ।
बौद्धप्रमाणशास्त्राणि न स्युस्तद्देशमन्तरा ॥ १०० ॥
आपप्रच्छे गुरुं सम्यग्विनीतवचनैस्ततः ।
प्रान्तरस्थितदेशेषु गमनायोन्मनायितः ॥ १०१ ॥
निमित्तमवलोक्याथ श्रौतेन विधिना ततः ।
सवात्सल्यमुवाचाथ नाथ प्राथमकल्पिकम् ॥ १०२ ॥
असन्तोषः शुभोऽध्याये वत्स किंचिद्वदामि तु ।
स त्वमत्र न सत्वानां समये प्रमये धिया ॥ १०३ ॥
भ्रान्तं चेतः कदापि स्याद्धेत्वाभासैस्तदीयकैः ।
अर्थी तदागमश्रेणेः स्वसिद्धान्तपराङ्मुखः ॥ १०४ ॥

उपार्जितस्य पुण्यस्य नाशं त्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ।
निमित्तत इदं मन्ये तस्मान्मात्रोद्यमी भव ॥ १०५ ॥
अथ चेदवलेपस्ते गमने न निवर्त्तते ।
तथापि मम पार्श्वं त्वमागा वाचा ममैकदा ॥ १०६ ॥
रजोहरणमस्माकं व्रतांगं न समर्प्पये ।
इत्युक्त्वा मौनमातिष्ठद्गुरु चित्तव्यथाधरः ॥ १०७ ॥
प्राह सिद्धः श्रुती च्छादयित्वा शान्तं हि कल्मषम् ।
अमंगलं प्रतिहतमकृतज्ञः क ईदृशः ॥ १०८ ॥
चक्षुरुद्घाटितं येन मम ज्ञानमयं मुदा ।
पुनस्तद्व्यामयेत्कोहि धूमायितपरोक्तिभिः ॥ १०९ ॥
अन्त्यं वचः कथं नाथ मयि पूज्यैरुदाहृतम् ।
कः कुलीनो निजगुरुक्रमयुग्मं परित्यजेत् ॥ ११० ॥
मनः कदापि गुप्येत चेद्धतूरभ्रमादिव ।
तथापि प्रभुपादनामादेशं विदधे ध्रुवम् ॥ १११ ॥
इत्युदित्वा प्रणम्याथ स जगाम यथेप्सितम् ।
महाबोधाभिधं बौद्धपुरमव्यक्तवेषभृत् ॥ ११२ ॥
कुशाग्रीयमतेस्तस्याक्लेशेनापि प्रबोधतः ।
विद्वद्दुर्भेदशास्त्राणि तेषामासीच्चमत्कृतिः ॥ ११३ ॥
तस्यांगीकरणे मन्त्रस्तेषामासीद्दुरासदः ।
तमस्युद्योतको रत्नमाप्य माध्यस्थ्यमाश्रयेत् ॥ ११४ ॥
तादृग्वचःप्रपंचैस्तैर्वर्द्धकैर्गर्द्धकैरपि ।
तं विप्रलम्भयामासुर्मीनवद्धीवरा रसात् ॥ ११५ ॥
शनैर्भ्रांतिमनोवृत्तिर्बभूवासौ यथा तथा ।
तदीयदीक्षामादत्त जैनमार्गातिनिस्पृहः ॥ ११६ ॥
अन्यदा तैर्गुरुत्वेऽसौ स्थाप्यमानोऽवदन्ननु ।
एकवेलं मया पूर्वं संवीक्ष्या गुरवो ध्रुवम् ॥ ११७ ॥
इति प्रतिश्रुतं यस्मात्तदग्रे तत्प्रतिश्रवम् ।
सत्यसंधस्त्यजेत्तात्कस्तत्र प्रहिणुताथ माम् ॥ ११८ ॥
इति सत्यप्रतिज्ञत्वमतिचारु च सौगते ।
मन्यमानास्ततः प्रैषुः स चागादगुरुसन्निधौ ॥ ११९ ॥
गत्वाथोपाश्रये सिंहासनस्थं वीक्ष्य तं प्रभुम् ।
ऊर्ध्वस्थानशुभा यूयमित्युक्त्वा मौनमास्थितः ॥ १२० ॥
गर्गस्वामी व्यमृक्षच्च संजज्ञे तदिदं कुलम् ।
अनिमित्तस्य जैनीवाग् नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ १२१ ॥
अस्माकं ग्रहवैषम्यमिदं जज्ञे यदीदृशः ।
सुविनेयो महाविद्वान् परशास्त्रप्रलंभितः ॥ १२२ ॥

तदुपायेन केनापि बोध्योऽसौ यदि भोत्स्यते ।
तदस्माकं प्रियं भाग्यैरुदितं किं बहूक्तिभिः ॥ १२३ ॥
ध्यात्वेत्युत्थाय गुरुभिस्तं निवेश्यासनेऽर्पिता ।
चैत्यवंदनसूत्रस्य वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥ १२४ ॥
ऊचुश्च यावदायामः कृत्वा चैत्यनतिं नयम् ।
ग्रन्थस्तावदयं वीक्ष्य इत्युक्त्वा तेऽगमन् बहिः ॥ १२५ ॥
ततः सिद्धश्च तं ग्रन्थं वीक्ष्यमाणो महामतिः ।
व्यमृशत्किमकार्यं तन्मयारब्धमचिन्तितम् ॥ १२६ ॥
कोऽन्य एवंविधो मादृगविचारितकारकः ।
स्वार्थभ्रंशैः पराख्यानैर्मणिं काचेन हारयेत् ॥ १२७ ॥
मदोपकारी स श्रीमान् हरिभद्रप्रभुर्यतः ।
मदर्थमेव येनासौ ग्रंथोऽपि निरामाप्यतः ॥ १२८ ॥
आचार्यो हरिभ्रदो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्य निवेशितः ॥ १२९ ॥
अनागतं परिज्ञाय चैत्यवंदनसंश्रया ।
मदर्थं निर्मिता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥ १३० ॥
विषं विनिर्धूय कुवासनामयं व्यचीचरःद्य कृपया महाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥१३१॥
किं कर्ता च मया शिष्याभासेनाथ गुरुर्मम ।
विज्ञायैतन्निमित्तेनोपकर्त्तुं त्वाह्वयन्मिषात् ॥१३२॥
तदङ्घ्रिरजसा मौलिं पावयिष्येऽधुना निशम् ।
आगः स्वं कथयिष्यामि गुरुः स्यान्नह्यनीदृशः ॥१३३॥
तथागतमतिभ्रान्तिर्गता मे ग्रन्थतोऽमुतः ।
कोद्रवस्य यथा शस्त्राघाततो मदनभ्रमः ॥१३४॥
एवं चिन्तयतस्तस्य गुरुर्वाह्यभुवस्ततः ।
आगतस्तदृशं पश्यन् पुस्तकस्थं मुदं दधौ ॥१३५॥
नैषेधिकी महाशब्दं श्रुत्वोर्द्ध्वः संभ्रमादभूत् ।
प्रणम्य रूक्षयामास शिरसा तत्पदद्वयम् ॥१३६॥
उवाच किं निमित्तोयं मोहस्तव मयि प्रभो ।
कारयिष्यन्ति चैत्यानि पश्चात्किं मादृशोऽधमाः ॥२३७॥
उन्मीलाद्दूषकास्फोटस्फुटवेदनविग्रहः ।
स्वादविघ्नाश्चला दन्ताः कुशिष्याश्च गताशुभाः ॥१३८॥
आहूतो मिलनव्याजोद्बोधायैव ध्रुवं प्रभो ।
हारिभ्रद्रस्तथा ग्रन्था भवता विदधे करे ॥१३९॥
भग्नभ्रमः कुशास्त्रेषु प्रभुं विज्ञपते ततः ।
स्वस्यान्तेवासिपाशस्य पृष्ठे हस्तं प्रदेहि मे ॥ १४० ॥
देवगुर्वाद्यवज्ञोत्थमहापापस्य मे तथा ।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छाद्य दुर्गतिच्छित् कृपां कुरु ॥ १४१ ॥
अथोवाच प्रभुस्तत्र करुणाशरणाशयः ।
आनन्दाश्रुपरिश्रुत्या परिक्लिन्नोत्तरीयकः ॥ १४२ ॥
मा खेदं वत्स कार्षीस्त्वं को वनी वद्यतेनवा ।
पानशौण्डैरिवाभ्यस्तकुतर्कमदविह्वलैः ॥ १४३ ॥
नाहं त्वां धूर्तितं मन्ये यद्वचो विस्मृतं न मे ।
मदेन विकलः कोऽपि त्वां बिना प्राक्श्रुतं स्मरेत् ॥ १४४ ॥
वेषादिधारणं तेषां विश्वासायापि सम्भवेत् ।
अतिभ्रान्तिं च नात्राहं मानये तव मानसे ॥ १४५ ॥
प्रख्यातवक्तृकप्रज्ञा ज्ञातशास्त्रार्थमर्मकः ।
कः शिष्यस्त्वादृशो गच्छेऽतुच्छे मच्चित्तविभ्रमः ॥ १४६ ॥
इत्युक्तिमिस्तमानन्द्य प्रायश्चित्तं तदा गुरुः ।
प्रददेऽस्य निजे पट्टे यथा प्रातिष्ठिपच्च तम् ॥ १४७ ॥
स्वयं तु भूत्वा निस्संगस्तुंगद्रंगभुवं तदा ।
हित्वा प्राच्यर्षिचीर्णाय तपसेऽरण्यमाश्रयत् ॥ १४८ ॥
कायोत्सर्गी कदाप्यस्थादुपसर्गसहिष्णुधीः ।
कदापि निर्निमेषाक्षः प्रतिमाभ्यासमाददे ॥ १४९ ॥
कदाचित्पारणे प्रान्ताहारधारितशंबरम् ।
कदाचिन्मासिकाद्यैश्च तपोभिः कर्म सोऽक्षिपत् ॥ १५० ॥
एवं प्रकारमास्थाय चारित्रं दुश्चरं तदा ।
आयुरन्ते विधायाथानशनं स्वर्ययौ सुधीः ॥ १५१ ॥
इतश्च सिद्धव्याख्याता विख्यातः सर्वतोमुखे ।
पाण्डित्ये पण्डितंमन्यःपरशासनजित्वरः ॥१५२ ॥
समस्तशासनोद्योतं कुर्वन्सूर्य इव स्फुटम् ।
विषेशतोऽवदानैस्तु कृतनिर्वृतिनिर्वृतिः ॥ १५३ ॥
असंख्यतीर्थयात्रादिमहोत्साहैः प्रभावना ।
कारयद्धार्मिकैः सिद्धो वचःसिद्धिं परां दधौ ॥ १५४ ॥
श्रीमत्सुप्रभदेवनिर्मलकुलालंकारचूडामणिः ।
श्रीमन्माघकवीश्वरस्य सहजप्रेक्षापरीक्षानिधिः ।
तद्वृत्तं परिचिन्त्य कुग्रहपरिष्वंगं कथंचित्कलिः
प्रागल्भ्यादपि संगतं त्यजत भो लोकद्वये सिद्धये ॥ १५५ ॥
श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-
चंद्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीरामलक्ष्मीभुवा
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ सिद्धर्षिवृत्ताख्यया ।
श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः श्रृङ्गो जगत्संख्यया ॥ १५६ ॥

१५७ । ग्रं १६० उभयं ३३८०

इति श्रीसिद्धर्षिप्रबन्धः ।

(६) सिद्धर्षि की प्रशस्ति

द्योतिताखिलभावार्थः सद्भव्याब्जप्रबोधकः ।
सूरा (र्या) चार्योऽभवद्दीप्तः साक्षादिव दिवाकरः ॥ १ ॥
स निवृत्तिकुलोद्भूतो लाट देशविभूषणः ।
आचारपंचकोद्युक्तः प्रसिद्धो जगतीतले ॥ २ ॥
अभूद् भूतहितो धीरस्ततो देल्लमहत्तरः ।
ज्योतिर्निमित्तशास्त्रज्ञः प्रसिद्धो देशविस्तरे ॥ ३ ॥
ततोऽभूदुल्लसत्कीर्तिब्रह्मगोत्रविभूषणः ।
दुर्गस्वामी महाभागः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥ ४ ॥
प्रव्रज्यागृह्णता येन गृहं सद्धनपूरितं ।
हित्वा सद्धर्ममाहात्म्यं क्रिययैव प्रकाशितम् ॥ ५ ॥
यस्य तच्चरितं वीक्ष्य शशांककर निर्मलम् ।
बुद्धास्तत्प्रत्ययादेव भूयांसो जन्तवस्तदा ॥ ६ ॥
सद्दीक्षादायकं तस्य स्वस्य चाहं गुरूत्तमम् ।
नमस्यामि महाभागं गर्गर्षिमुनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥
क्लिष्टेऽपि दुःषमाकाले यः पूर्वमुनिचर्यया ।
विजहारेव निःसंगो दुर्गस्वामी धरातले ॥ ८ ॥
सद्देशनांशुभिर्लोके द्योतित्वा भास्करोपमः ।
श्रीभिल्लमाले यो धीरः, गतोऽस्तं सद्विधानतः ॥ ९ ॥
तस्मादतुलोपशमः सिद्ध (सद्) षिरभूदनाविलमनस्कः ।
परहितनिरतैकमतिः सिद्धान्तनिधिर्महाभागः ॥ १० ॥
विषमभवगर्तनिपतितजन्तुशतालम्बदान दुर्ललितः ।
दलिताखिल दोषकुलोऽपि सतत करुणपरीतमनाः ॥ ११ ॥
यः संग्रहकरणरतः सदुपग्रहनिरतबुद्धिरनवरतम् ।
आत्मन्यतुल गुणगणैर्गणधरबुद्धिं विधापयति ॥ १२ ॥
बहुविधमपि यस्य मनो निरीक्ष्य कुन्देन्दुविशदमद्यतनाः ।
मन्यन्ते विमलधियः सुसाधुगुणवर्णकं सत्यम् ॥ १३ ॥
उपमितिभवप्रपंचा कथेति तच्चरणरेणुकल्पेन ।
गीर्देवतया विहिताभिहिता सिद्धाभिधानेन ॥ १४ ॥
आचार्यहरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्ये निवेदितः ॥ १५ ॥

विषं विनिर्धूयकुवासनामयं, व्यचीचरद्यः कृपया मदाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां, नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्र सूरये ॥१६॥
अनागतं परिज्ञाय चैत्यवंदन संश्रया ।
मदर्थैव कृतायेन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥ १७ ॥
यत्रातुलरथयात्राधिकमिदमिति लब्धवरजयपताकम् ।
निखिल सुरभुवनमध्ये सततं प्रमदं जिनेन्द्र गृहम् ॥ १८ ॥
यथार्थष्टंकशालायां धर्मः सद्द्वधामसु ।
कामोलीलावतीलोके सदास्ते त्रिगुणोमुदा ॥ १९ ॥
तत्रेयं तेनकथा कविना निःशेष गुणगणाधारे ।
श्रीभिल्लमालनगरे गदिताग्रिम मण्डपस्थेन ॥ २० ॥
प्रथमादर्शे लिखिता साध्व्याश्रुतदेवतानुकारिण्या ।
दुर्गस्वामीगुरूणां शिष्यिकयेयं गणाभिधया ॥ २१ ॥
संवत्सर शतनवके द्विषष्टिसंहितेऽतिलंघिते चास्याः ।
ज्येष्ठे सित पंचम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत्॥२२॥
ग्रन्थाग्रमस्या विज्ञाय कीर्तयन्ति मनीषिणः ।
अनुष्टुभां सहस्राणि प्रायसः सन्ति षोडश ॥२३॥

'सिद्धहस्त युगप्रधान श्री सिद्धर्षि' लेखक मोतीचंद गिरधरलाल तापड़िया की गुजराती भाषा व तिथि में यह पुस्तक देखने को प्राप्त हुई। इसमें उपर्युक्त प्रशस्ति थी। प्रशस्ति के हरिभद्रवाले श्लोक सिद्धर्षि के प्रबन्ध वाले श्लोकों से अविकल मिल रहे हैं। प्रशस्ति में:— प्रथम तेरह श्लोकों में पूर्व पुरुषों, (गुरुओं) के विषय में कुछ कहा गया है कि भडौंच प्रदेश के इधर-उधर लाट प्रदेश है। सूराचार्य वा सूर्याचार्य उस देश के अति प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उन्हीं सूर्याचार्य के शिष्य देल्लमहत्तर ज्योतिष शास्त्र में पारंगत थे। उनके पीछे दुर्गस्वामी हुए जो जन्म से ब्राह्मण थे। दीक्षा लेने पर इन्होंने धन से परिपूर्ण घर को छोड़ दिया। गर्गर्षि सिद्धर्षि के दीक्षाप्रदायक गुरु थे। गर्षि के पास इन्होंने दीक्षा ली। प्रशस्ति में दुर्गस्वामी की प्रशंसा में उन्होंने ५, ६ श्लोक लिखे हैं और अपने को उनका चरणरेणु कल्प लिखा है, जबकि गर्गर्षि को उन्होंने केवल एक श्लोक में नमस्कार मात्र किया है। साथ में दुर्गस्वामी को भी दीक्षा देने वाले गर्गर्षि को ही बताया गया है अतः कदाचित् गर्गर्षि मूल सूराचार्य के शिष्य और देल्लमहत्तर के भाई हों और दुर्गस्वामी को उन्होंने दीक्षित किया हो। सिद्धर्षि को भी उन्होंने या तो दुर्गस्वामी के ही नाम से दीक्षा दी होगी अथवा अपने नाम से दीक्षा देकर भी उनको दुर्गस्वामी के अधीन कर दिया होगा जिससे शास्त्राभ्यास आदि सब कार्य उन्होंने उन्हीं के पास किया होगा और इस कारण से सिद्धर्षि ने मुख्य कर उन्हीं को गुरुरूप से स्वीकृत किया होगा। **इस भांति सिद्धर्षि के गुरु दुर्गस्वामी हुये।** प्रशस्ति के १४ वें श्लोक में सिद्धर्षि ने 'उपमिति भवप्रपंच कथा' रची इसका संकेत स्पष्ट है। श्लोक १५–१७ हरिभद्र संबंधी हैं। हरिभद्रसूरि को सिद्धर्षि धर्म का बोध कराने वाले गुरु मानते हैं। बात भी सत्य है क्योंकि सिद्धर्षि जब बौद्धधर्म में आस्था रखने वाले हो गये थे तब गुरु गर्गर्षि ने इनको हरिभद्रसूरि की 'ललित विस्तर' नाम वाली पुस्तक पढ़ने के लिए दी। उसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि सिद्धर्षि फिर जैन धर्म में दीक्षित हुए। 'अनागतं परिज्ञाय' तथा 'धर्मबोधकरो गुरुः' इन शब्दों से स्पष्ट है कि हरिभद्रसूरि सिद्धर्षि से पूर्व हुए हैं। श्लोक १८–२० में 'उपमिति भव प्रपंच कथा' ग्रंथ लिखने का स्थान भिल्लमाल बताया है। श्लोक २१ में दुर्गस्वामी की शिष्या गणा नाम की साध्वी ने इस 'उपमितिभव प्रपंच कथा' को प्रथम ही लिखा। श्लोक २२ में कहा है कि संवत् ९२६ जेष्ठ शुक्ला पंचमी गुरुवार को पुनर्वसु नक्षत्र के योग में यह ग्रंथ समाप्त हुआ।

सिद्धर्षि पर आलोचनात्मक दृष्टि:—

प्रभावक चरित में सिद्धर्षि का प्रबंध है और सिद्धर्षि संबंधी प्रशस्ति ऊपर दी गई है। इसके आधार पर तथा कुछ अन्य ग्रन्थों के आधार पर सिद्धर्षि के संबंध में आवश्यक तथ्य प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

राजा वर्मलात के सुप्रभदेव नामवाला मंत्री था। भीनमाल वर्मलात का राज्य था। सुप्रभदेव के दो पुत्र थे, दत्त और शुभंकर। दत्त का बालमित्र कृतीश्वर राजा भोज था। उसी

दत्त के शिशुपालवध काव्य के कर्त्ता माघ कवि ब्राह्मी के गर्भ से हुए। दूसरे पुत्र शुभंकर श्रेष्ठी (विश्व को प्रिय लगनेवाले एवं दानी व्यक्ति) की लक्ष्मी नामवाली स्त्री के गर्भ से सिद्धनामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी सिद्ध का विवाह धन्या नामवाली अति रूपवती स्त्री के साथ हुआ। यौवन, प्रभुता तथा धनसम्पत्ति ने सिद्ध के जीवन को दोषपूर्ण कर दिया। जुआरी तथा वेश्यागामी यह सिद्ध रात्रि को बड़ी देर से आने लगा। धन्या पतिव्रता थी। वह मन ही मन व्यथा से परिपूर्ण रहती। एक दिन सिद्ध की माता लक्ष्मी ने देर से आने वाले अपने पुत्र सिद्ध के लिए किवाड़ नहीं खोले और कहा कि जहाँ पर तुम्हारे लिए इस समय द्वार खुले हैं वहीं पर चले जाओ। सिद्ध एक जैन उपाश्रय में चले गये जहाँ पर द्वार खुले पड़े थे। प्रातः काल शुभंकर उसे ढूंढते २ उपाश्रय में आ पहुँचे। सिद्ध ने घर न जाकर पिता से दीक्षा के लिये आज्ञा लेने की जब हठ की तो शुभंकर ने अन्त में आज्ञा दे ही दी। वज्रस्वामी के शिष्य वज्रसेन के चार शिष्य थे :—योगेन्द्र, निर्वृ ति, चन्द्र और विद्याधर। इन चारों से चार शाखायें निकलीं, उनमें निर्वृ ति शाखा से सूराचार्य हुए। सूराचार्य के शिष्य गर्गर्षि हुए हैं और इन्हीं गर्गर्षि से सिद्ध ने दीक्षा लेकर सिद्धर्षि नाम प्रसिद्ध किया। सिद्धर्षि ने प्रसिद्ध ग्रन्थ उपमितिभव-प्रपंच कथा लिखी। इन सिद्धर्षि के गुरुभाई 'कुवलयमाला' ग्रन्थ के रचयिता दाक्षिण्य-चन्द्र जिनका उपनाम उद्योतनसूरि है। इनकी रचना की समाप्ति शक संवत् ७०० में जब एक दिन कम था हुई (शक ६९९ के चैत्रकृष्ण १४) उल्लेखकर्ता ने स्वयं प्रशस्ति में लिखा है—'·········अह चोद्दसीए चित्तस्स किण्हपक्खम्मि निम्मविया बोहकरी भव्वाणं होउ सव्वाणं ॥'

सगकाले बोलीणे वरिसाण सएहिं सतहिं गएहिं।
एगदिणे णूणेहिं एस समता वरण्हम्मि ॥

प्रभावकचरितकार ने दाक्षिण्य चन्द्र और सिद्धर्षि के मध्य वार्तालाप करवाया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह काल्पनिक है। दोनों व्यक्ति समकालीन हो नहीं सकते क्योंकि दोनों के मध्य पर्याप्त वर्षों का अन्तर है।

बात यह है कि श्वेताम्बराचार्य उद्योतनसूरि ने जब 'कुवलय माला' नामक प्राकृत कथा को जाबालिपुर (जालौर मारवाड़ जो भीनमाल के समीप है) में समाप्त किया था उस समय मारवाड़ का अधिकारी वत्सराज था, ऐसा कहा जाता है। हरिवंश की रचना के समय (शक ७०५)तो मारवाड़ इन्द्रायुध के अधिकार में था और कुवलय माला की रचना के समय (शक ७०० में) मारवाड़ पर अधिपति वत्सराज था। (१) वत्सराज का पुत्र नागभट था। शक सं० ७०० से तो विक्रम सं० ८३५ आता है अतः उस समय इतिहास के अनुसार वत्स का राज्य होना चाहिए जिसने केवल २५ वर्ष राज्य किया। दाक्षिण्यचंद्र (उद्योतनसूरि)और सिद्धर्षि में इस भाँति १२७ वर्ष का अन्तर आता है किन्तु डा० मिरोनी (Dr. Mirronow) ने Bulleten de 7, Academic Imperiale des Sciences de st. Pettserburg, 19. में सिद्धर्षि पर लिखते हुए चंद्रकेवली चरित्रनाम ग्रन्थ के दो श्लोकों को उद्धृत किया है—

वस्वङ्केषु (५९८) मिते वर्षे श्री सिद्धर्षिरिदं महत्।
प्राक् प्राकृत्चरित्राद्धि चरित्रं संस्कृतं व्यधात् ॥

तस्मान्नानार्थसंदोहादुद्धृतेयं कथात्र च ।
न्यूनाधिकान्यथायुक्तेर्मिथ्या दुष्कृतमस्तु मे ॥

इन श्लोकों के अनुसार सिद्धर्षि ने संवत् ५९८ में प्राकृत भाषा में बने हुए पूर्व के श्री चंद्रकेवली चरित से संस्कृत में नया चरित्र बनाया था। कुछ विद्वानों का मत है कि यह गुप्त संवत् है अतः ३७६ वर्ष मिला देने से ९४७ हो जाता है और यह समय ९६२ आता है। इस भाँति सिद्धर्षि के समय के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं।

जैन परंपरानो इतिहास भाग १ लेखक मुनि श्री दर्शन, ज्ञान, न्याय विजय (त्रिपुटी महाराज) के पृष्ठ ५६२ में आचार्य सिद्धर्षि की गुरुपरंपरा इस भाँति है—

प्रभावकचरित और सिद्धर्षि की प्रशस्ति के अनुसार हरिभद्रसूरि भी सिद्धर्षि के धर्म-बोध कराने वाले गुरु कहलाये। सिद्धर्षि हरिभद्रसूरि राजपुरोहित चित्तौड़ के भानजेभी कहे जाते हैं। यदि कुवलयमाला के लेखक दाक्षिण्यचिह्न (उद्योतनसूरि) ने दुर्ग स्वामी से सिद्धर्षि के साथ साथ ही विद्या पढ़ी तब ये सिद्धर्षि के गुरु भाई हो जाते हैं।

पेज—

(१) देखिये जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी पृष्ठ ४२६

(२) जैन साहित्य संशोधक भाग १ अंक १ पृष्ठ ३४.

(७) हरिभद सूरि संबंधी जीवनवृत्त

हरिभद्रसूरि : जैन साहित्य संशोधक भाग १ अंक १ पूना में मुनि श्री जिन विजयजी पृष्ठ ४४ पर लिखते हैं कि हरिभद्र को शक संवत् ७०० अर्थात् विक्रम संवत् ८३५ ई० सं० ७७८ से तो अर्वाचीन किसी तरह नहीं मान सकते। अतः सिद्धर्षि के समकालीन हरिभद्रसूरि नहीं ठहरते। अब हम नीचे समय सम्बन्धी बातें लिखेंगे—

(१) सिद्धर्षि author of उपमितिभवप्रपंच कथा which he wrote in the year 962. From the fact that he tells us 3 App. P. 148 that हरिभद्र wrote his ललितविस्तर for his edification, it would appear that this is the Vira date; and that book was therefore written in 962 V. Samvat 592, A. D. 536 (Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society XLIXA. N. p. C. XXIX.

(२) मेरूतुंगाचार्य रचित विचार श्रेणी में लिखा है कि वि० सं० ५८५ में हरिभद्र-सूरि का स्वर्गवास हुआ, देखिए—

पंचसए पणसीए विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ।
हरिभद्सूरि सूरो भवियाणं दिसउ कल्लाणं॥

विक्रम सं० ५८५ में हरिभद्रसूरि रूपी सूर्य अस्त हो गया। मेरूतुंगाचार्य ने अपना प्रबंध चिंतामणि ग्रन्थ सं० १३६० में समाप्त किया। विचार श्रेणि में वि० सं० १३७१ में समरासाह ने शत्रुंजय का उद्धार किया।

(३) मुनिसुंदर सूरि ने हरिभद्र सूरि को मानदेवसूरि (द्वितीय) का मित्र कहा है। मानदेव का समय छठी शती समझा जाता है। मुनिसुंदर सूरि तपागच्छ की पद्यबद्ध गुर्वावली (सं० १४६६) के लेखक हरिभद्र के लिए कहते हैं :

अभूद् गुरुः श्रीहरिभद्रमित्रं, श्रीमानदेवः पुनरेव सूरिः।
यो मान्द्यतो विस्मृतसूरिमंत्रं, लेभेऽम्बिकास्यात्तपसोज्जयन्ते॥

(४) प्रभाचन्द्र सूरि ने विक्रम सं० १३३४ में प्रभावकचरित ग्रन्थ की रचना की उसमें नवम प्रबंध हरिभद्रसूरि का है। उसके अनुसार हरिभद्र चित्तौड़ (मेवाड़) के निवासी थे और वहाँ के राजा के ये पुरोहित थे अतः ये ब्राह्मण थे। याकिनी नामिका साध्वी के मुख से श्लोक सुन कर विचार में पड़ गये फिर जैन धर्म की दीक्षा ली। प्रभावक चरित में सिद्धर्षि का प्रबंध आया है उसमें इनको सिद्धर्षि (९६२) को धर्म का बोध कराने वाला गुरु बताया है। अतः सिद्धर्षि से येपूर्व के अवश्य हैं। सिद्धर्षि के ये परम्परा गुरु थे अथवा उपदेश करने वाले गुरु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है।

(५) हरिभद्र ने उनसे पूर्व के अनेकों विद्वानों के नाम लिखे हैं, किन्तु शंकराचार्य के लिए वे मौन हैं जो अपने समय के अन्य विद्वानों से योग्यतम थे। क्या हरिभद्र ऐसे योग्य व्यक्ति की उपेक्षा कर सकते थे यदि वे हरिभद्र के समय में रहे अथवा हरिभद्र उनके पीछे हुए ? शंकर का काल ७८८-८२० कहा जाता है। शंकराचार्य के विचारों का खण्डन या मण्डन करने का बहाना तो हरिभद्र को स्वतः ही मिल जाता क्योंकि शारीरक भाष्य के दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद में बादरायण के नेकस्मिन्नसम्भवात् ।३३। एवं चात्मा कार्त्स्न्यम् ।३४। न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।३५। अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वाद-विशेषः ।३६।

इन उपर्युक्त सूत्रों से शंकर ने जैन धर्म के मूल और मुख्य सिद्धान्त स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) के ऊपर अनेक असत् आक्षेप किए हैं। क्या हरिभद्र अनेकान्त जयपताका के लेखक होते हुए शंकर के लिए मौन रहते ? (देखिए हरिभद्र सूरि का समय निर्णय, जैन साहित्य संशोधन पृ. ५७) शंकर के पहले मायावाद अज्ञातावस्था में था। शंकराचार्य के गुरु गौडपाद ने ही इसकी स्थापना की थी।

(६) पडिवाल गच्छ की एक 'प्राकृत पट्टावली' को देखने से ज्ञात होता है कि मुनि धनविजयजी ने 'चतुर्थ स्तुतिनिर्णय शंकोद्धार' पुस्तक में कहा है कि हरिभद्र सूरि बौद्धमत के बड़े भारी ज्ञाता थे। गर्गाचार्य ने हरिभद्र को कहा कि 'ऐसा उपाय किया जाय जिससे सिद्धर्षि का मन जैन धर्म में स्थिर हो जाय। हरिभद्र ने तर्कपूर्ण 'ललितविस्तरा' पुस्तक इसी निमित बनायी और फिर मृत्यु को प्राप्त हो गये। मृत्यु समय उस वृत्ति को गर्गाचार्य को सौंप दी यह कहते हुए कि यदि सिद्धर्षि आवे तो उसे वह पुस्तक पढ़ने के लिए दी जाय। गर्गाचार्य ने भी ऐसा ही किया, सिद्धर्षि जैन धर्म में दीक्षित हो गये। इसी लिए हरिभद्र को अपना गुरु मानते हुए उस ललित विस्तर के लिए कहा है "मदर्थं निर्मिता"। इससे तो ज्ञात होता है कि सिद्धर्षि से हरिभद्र का साक्षात्कार तो नहीं हुआ किन्तु प्रबन्ध-कोष कहता है कि सिद्धर्षि को हरिभद्र ही से दीक्षा मिली थी। गर्गमुनि का कोई सम्बन्ध ही न था।

(७) सिद्धर्षि हरिभद्र के भागिनेय (भाणेज) थे ऐसा जैन श्वे० कान्फ्रेन्स हेरल्ड नामवाली मासिक पत्रिका के सन् १९१४ के जुलाई अक्टोबर मास के संयुक्त अंक में गुजराती में तपागच्छ की अपूर्ण पट्टावली है उसमें हरिभद्र का वर्णन किया गया है।

(८) हरिभद्र सूरि के ग्रन्थों में जिन दार्शनिकों और शास्त्रकारों के नाम आये हैं उन्हें भी पाठक देखें तो बात समझ में आ जायगी।

भर्तृहरि—वैयाकरण, कुमारिल मीमांसक, दिङ्नागाचार्य, धर्मकीर्ति, धर्मपाल, सिद्धसेन दिवाकर, जिनदास महत्तर, जिनभद्रगणी, समन्तभद्र कुमरिल का समय ८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मान लिया जाय तो हरिभद्र का समय भी क्या वही मान लें ? कुवलय-माला (७७८ ई.) में हरिभद्र का नाम आया है।

(९) कुवलयमाला के लेखक उद्योतनसूरि उपनाम दाक्षिण्यचिह्न स्वयं हरिभद्र के एक भांति के साक्षात् शिष्य थे। दाक्षिण्यचिह्न ने अपने को तत्तायरियका भी शिष्य परंपरा गु र्वावलि से बताया है। दाक्षिण्यचिह्न का समय कुवलयमाला के अनुसार ७७८ ई. है।

(१०) जैन परंपरानो इतिहास भाग १ (त्रिपुटी महाराज द्वारा लिखित) में भी हरिभद्र सूरि की जीवनी व तिथिनिर्णय की बातें देखने को प्राप्त हुईं। इसके अनुसार ये हरिभट्ट या हरिभद्र भट्ट अग्निहोत्री ब्राह्मण चित्तौड़ के राजा जितारि के पुरोहित थे। जैन साध्वी के नवीन श्लोक से प्रभावित होकर आचार्य जिनदत्त सूरि के पास गये और उनके शिष्य बन गये। साध्वी याकिनी महत्तर को अब ये माता रूप में मानने लगे। इनके हंस और परमहंस दो भानजे थे जो आगे चल कर इनके शिष्य हो गये। हंस मारा गया था किन्तु परमहंस सूरपाल राजा की शरण में जाकर रहने लगा। सूरपाल ने बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। किन्तु कथावली में हरिभद्र के लिए लिखा है कि हरिभद्र सूरि पिवंगुई नामक ब्रह्मपुरी के निवासी थे। उनके पिता का नाम शंकर भट्ट और माता गंगा नाम की थी। ये याकिनी साध्वी द्वारा जिनदत्त या जिनभट्ट के निकट पहुँचे। आचार्य हरिभद्र जिनभद्र और वीरभद्र के शिष्य थे। वीरभद्र आठवीं शती के बहुश्रुत आचार्य उद्योतनसूरि के समय के थे। जिनभद्र वीरभद्र के चाचा (पितृव्य) थे किन्तु जिनभद्र और वीरभद्र हरिभद्र के शिष्य थे (देखिये—अनेकान्त मार्च १६४० में हरिभद्र सूरि लेख)

आचार्य हरिभद्र सूरि अवश्य ही वि० सं० ७८५ के लगभग रहे हैं क्योंकि बौद्धाचार्य, धर्मकीर्ति, शैवाचार्य भर्तृहरि तथा कुमारिल भट्ट आदि भी विक्रम की आठवीं शती के विद्वान् थे जिनका हरिभद्र सूरि के ग्रन्थों में उल्लेख स्पष्ट है। इससे स्पष्ट है कि हरिभद्र सूरि उनके पीछे हुए। जिनभद्र के ये विद्याशिष्य थे किन्तु जिनदत्त से इन्होंने दीक्षा ली अतः दीक्षा-शिष्य हुए। दाक्षिण्यचिह्न (उद्योतनसूरि) वि० सं० ८३५ में कुवलयमाला की प्रशस्ति में लिखते हैं कि वीरभद्रसूरि मेरे सिद्धान्त-गुरु थे तथा हरिभद्र न्यायशास्त्र के। सिद्धर्षि भी हरिभद्र को गुरु मान रहे हैं।

हरिभद्र के विषय में इतना सब कुछ कह देने के पश्चात् हमको केवल एक शंका उत्पन्न होती है। हरिभद्रभट्ट जो अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं और जिन्होंने वृद्धावस्था में याकिनी साध्वी के श्लोक को सुनकर जैनधर्म में दीक्षित होना चाहा था, चित्तौड़ के राजा जितारि के राजपुरोहित थे। चित्तौड़ के इतिहास में जितारि शब्द देखने को नहीं मिला। हाँ, जैन परंपरानो इतिहास भाग १ में त्रिपुटी महाराज पृष्ठ ४४१ पर लिखते हैं कि तुरमणी नगरी में जो पव्वईया कहलाती थी आचार्य कालक का भाणेज दत्त राजा हुआ। आचार्य की भविष्यवाणी का प्रभाव उस समय के जितारि आदि बहुत से राजाओं पर पड़ा। भविष्यवाणी की घटना वीर सं० ६५० की है। राज पुरुषों ने दत्त को मार कर जितारि को राजा बना दिया। इसके पश्चात् तुरमणी नगरी तोरमाण के हाथ में आ गई। तुरमणी का वास्तविक नाम पव्वईया है। मिहिरकुल तोरमाण जैनधर्म का प्रेमी था जिसने आचार्य कालक और आचार्य हरिगुप्तसूरि को गुरु-रूप में माना। इससे स्पष्ट है कि हरिभद्र सूरि के समय के ये राजा जितारि नहीं थे। क्योंकि न तो समय का ही मेल खाता है और न उनका नाम ही है। उस समय में तो हरिगुप्तसूरि अवश्य थे। तब ये जितारि चित्तौड़ वाले महाराणा ही हो सकते हैं जिसका स्पष्टीकरण आगे हरिभद्र के जीवनवृत्तसार में ही किया जायगा।

इससे स्पष्ट है हरिभद्र सूरि आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक तो अवश्य रहे होंगे।

हरिभद्र सूरि के जीवनवृत्त का सार—

चित्तौड़गढ़ एक प्राचीन प्रसिद्ध दुर्ग है जहाँ पर मौर्य वंश के पश्चात् गुहिलवंश-शिरोमणि बापा रावल ने दीर्घकाल तक राज्य किया। कहा जाता है वनराज चावड़ा की बहिन का विवाह इसी बापा रावल से हुआ था। जिस समय हरिभद्र सूरि चित्तौड़ में थे राजा जितारि वहाँ के शासक थे। हरिभद्र सूरि उसी राजा के राजपुरोहित थे, अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि हरिभद्र सूरि का जन्म ब्राह्मण-कुल में शंकरभट्ट के यहाँ गंगा के गर्भ से हुआ था। यह जितारि राजा कौनसा था, इतिहास इसके उत्तर में मौन है। हो सकता है कि जितारि महाराणा का उपनाम हो। अपराजित को ही जितारि की संज्ञा दे दी गई हो जो बापा रावल के पश्चात् राज्यसिंहासनारूढ़ हुए अथवा बापा रावल ने कितने ही शत्रुओं को जीता और चित्तौड़ पर अधिकार करके राज्य करना प्रारंभ कर दिया, अतः इसी बापा रावल का नाम जितारि रख दिया गया हो। कर्नल टाड के अनुसार इस बापा रावल ने चित्तौड़ के मौरी (मौरिया) राजा को केवल १५ वर्ष की आयु में पराजित किया था। सन् ७२८ ई० में मौरी राजा को हराया, इस भाँति गुहिल वंश की नींव मेवाड़ में (७१४ : १४)७२८ ई० में पड़ी। बापा ने चित्तौड़ को विजय करने के पश्चात् ही सौराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया वहाँ पर अनहिलपाटण के बसाने वाले वनराज चावड़ा की बहिन से विवाह किया था जिससे अपराजित का जन्म हुआ। इसी अपराजित के दो पुत्र हुए खल-भोज और नन्दकुमार। खलभोज के पश्चात् खुमान सिंहासनारूढ़ हुए। इस भाँति हम देखते हैं कि खुमान के समय सन् ८३६ तक तो जितारि नाम वाला चित्तौड़ का कोई शासक न था। कुवलयमाला के अनुसार हरिभद्रसूरि के गुरु दाक्षिण्यचिह्न का समय सन् ७७८ ई० है। इसी कुवलयमाला (७७८ ई०) में हरिभद्रसूरि का नाम है अतः हरिभद्रसूरि ७७८ ई० के पीछे न रह कर आगे ही रहे होंगे। कर्नल टाड बाप्पा रावल को ७६४ ई० में ईरान की ओर जाने का संकेत कर रहे हैं और लिखते हैं कि बापा रावल की आयु दीर्घ रही है। सौ वर्ष से किसी अवस्था में न्यून न थी, किन्तु इन्होंने संन्यास ले लिया था और तब अपराजित राजा हुआ। अतः हो सकता है हरिभद्रसूरि बापा रावल व अपराजित के समय में अवश्य रहे हों। वनराज चावड़ा भी उसी समय में विद्यमान था। वनराज चावड़ा ने १०९ वर्ष २ महीने और २१ दिन की आयु प्राप्त की थी। इस भाँति प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार सं० ८०२ (सन् ७४५ ई०) तक वनराज जीवित रहे थे।

हरिभद्रसूरि कदाचित् वृद्धावस्था में जैन साधु हो गए और अन्तिम समय में गुजरात की राजधानी भीनमाल में रहने लग गये थे। वहाँ पर ये उद्योतन के शिक्षा-गुरु रहे। कल्याण विजयजी के अनुसार हरिभद्रसूरि ने पोरवाल (प्राग्वाट) जाति को जैनधर्म में दीक्षित किया था। ये हरिभद्र विद्याधरगच्छ की शाखा से सम्बन्धित थे। इन्होंने भारत भर में भ्रमण किया था। जिनभद्र सूरि से इन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली थी। इस बात की प्रेरणा इन्हें चित्तौड़ में रहते हुए याकिनी साध्वी के श्लोक को सुनकर हुई थी।

सिद्धर्षि महाकवि माघ के पितृव्यपुत्र थे। कहा जाता है कि सिद्धर्षि हरिभद्रसूरि के य (   ) थे। (देखिये जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स हैरल्ड मासिक पत्रिका सन्

१९१५ जुलाई-अक्टोबर संयुक्त अंक 'गुजराती' में तपागच्छ की अपूर्ण पट्टावली जिसमें हरिभद्र का वर्णन दिया गया है) । सिद्धर्षि से हरिभद्र बहुत बड़े थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। यदि सिद्धर्षि हरिभद्रसूरि के भानजे थे जो चित्तौड़ के राजा के पुरोहित थे तो कोई संदेह नहीं कि महाकवि माघ के चाचा शुभंकर का विवाह चित्तौड़गढ़ हुआ था । अतः यह संभव है कि महाकवि माघ का आवागमन चित्तौड़ में रहा हो। हरिभद्रसूरि अपने अन्तिम समय में अपने बहनोई शुभंकर के यहाँ अथवा किसी जैन उपाश्रय में (क्योंकि भीनमाल जैनधर्म का गढ़ था) रहने लग गये होंगे।

इस भाँति हम देखते हैं कि महाकवि माघ का चित्तौड़ नगरी से पूर्ण सम्पर्क था। चित्तौड़ के भोज से भी इसी भाँति सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

उस समय के युग-प्रधान जैन साहित्यकार हरिभद्र सूरि ही थे जिन्होंने २६ ग्रन्थों की रचना की थी।

(८) बप्पभट्टिसूरिचरित (सन् ७४३ से ८३८ ई०)

प्रभावकचरित में ११वाँ प्रबन्ध 'बप्पभट्टिसूरिचरितम्' है। बप्पभट्टि का जन्म तथा उनकी मृत्यु कौन से संवत् में हुई, इसका प्रमाण प्रबन्ध का यह अन्तिम श्लोक है—

विक्रमतः शून्यद्वयवसुवर्षे (८००) भाद्रपदतृतीयायाम्।
रविवारे हस्तर्क्षे जन्माभूद् बप्पभट्टिगुरोः ॥ ७३९ ॥
षड्वर्षस्य व्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता।
पंचाधिकनवत्या च प्रभोरायुः समर्थितम् ॥ ७४० ॥
शरनन्दसिद्धिवर्षे (८९५) नभः शुद्धाष्टमीदिने।
स्वातिभेऽजनि पंचत्वमामराजगुरोरिह ॥ ७४१ ॥

उपर्युक्त से स्पष्ट ही विदित होता है कि बप्पभट्टि का जन्म विक्रमी संवत् ८०० में हुआ था और ९५ वर्ष की एक लम्बी आयु प्राप्त करके संवत् ८९५ में इनका देहावसान हुआ था। इससे तो हम इस तथ्य पर आ जाते हैं कि बप्पभट्ट आदिवराह प्रतिहार भोज के समसामयिक अवश्य थे। मिहिरभोज (आदिवराह उपनामधारी) जब सिंहासनारूढ़ हुए उस समय वे पूर्ण युवक थे। उन्होंने सन् ८१५ से सन् ८८५ तक राज्य किया था। उत्तरराम-चरित के रचयिता महाकवि भवभूति के विषय में आगे लिखते हुए हमने बताया है कि बप्पभट्टि से भवभूति का साक्षात्कार हुआ था और बप्पभट्टि ने भवभूति को जैन धर्म में दीक्षित करने की चेष्टा की थी। भवभूति यशोवर्मा के समय में भी थे। यशोवर्मा के समय में वाक्पतिराज, जिन्होंने गौडवहो लिखा है, सभा-पंडित थे और इन्हीं के साथ भवभूति का भी नामोल्लेख है। प्रभावकचरित के पढ़ने से भी ज्ञात होता है कि कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्म्मा मौर्य-कुलभूषण के दो पत्नियाँ थीं। यशोवर्मा की एक स्त्री गर्भावस्था में अपनी सौत के मत्सर से वन में इधर-उधर भटकती रही। एक दिन अपने नवजात शिशु के साथ भ्रमण करती राजा यशोवर्मा की यह कुटुम्बिनी भद्रकीर्ति जैन मुनि द्वारा देख ली गई। भद्रकीर्त्ति जी ने उस स्त्री से समस्त वृत्तान्त जानकर उसको अपने आश्रम में रहने के लिए आश्रय दिया जहाँ पर नवजात शिशु 'आम' नाम से पोषित होकर बढ़ता हुआ सब शास्त्रों में निपुण होता गया। किसी कारणवश जब सपत्नी का देहांत हो गया तब राजा यशोवर्मा ने दूतों द्वारा अपनी खोई हुई पत्नी को ढुंढ़वाया। राजा को सूचना प्राप्त हुई कि भद्रकीर्त्ति के आश्रम में वह अपने पुत्र-सहित रह रही है तब वह राजप्रासाद को लाई गई। बप्पभट्टि भद्रकीर्त्ति का शिष्य था और 'आम' का छोटा बालसखा था। आम के राजघर लौटने पर आम ने जाते समय कहा था—'बप्पभट्टे! प्रदास्यामि प्राप्तं तव राज्यं ध्रुवम्।' (देखिये बप्पभट्टिसूरिचरितम् का ७५वाँ श्लोक)। आम के राज्यसिंहासनारूढ़ होने पर बप्पभट्टि परम आदर के साथ राज्य में बुलवाया गया। श्री सिद्धसेन मुनि भी साथ थे। ये जिनभद्र तथा हरिभद्र के समकालीन थे (देखिये जैन परंपरानो इतिहास)।

बप्पभट्टि ने विक्रम संवत् ८११ में जब सूरि-पद प्राप्त किया था उस समय उनकी आयु केवल ११ वर्ष की ही थी। उन्होंने पर्याप्त भ्रमण किया था। गौडदेश की ओर भी ये गये जहाँ पर राज्य-कवि वाक्‌पतिराज ने इनका सत्कार किया था। गौडदेश का राजा उस समय राजा धर्म था। बप्पभट्टि की वाद-विवाद संबंधिनी वार्ता गौडदेश में हुई। शास्त्रार्थ-प्रणाली उस समय बड़ी जोरों पर थी, यह 'बप्पभट्टिसूरिचरितम्' से स्पष्ट है। कान्यकुब्ज में बप्पभट्टि और वाक्‌पतिराज साथ-साथ भी रहे थे इसका प्रमाण देखिये—

यशोवर्मनृपो धर्ममन्यदा चाभ्यषेणयत्।
तस्माद् द्विगुणतन्त्रस्तं भूपं युद्धेऽवधीद् बली॥
तदा वाक्‌पतिराजश्च बंदे तेन निवेशितः।
काव्यं गौडवधं कृत्वा तस्माच्च स्वममोचयत्॥
कान्यकुब्जे समागत्य संगतो बप्पभट्टिना।
स राजसंसदं नीतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम्॥

इन्हीं बप्पभट्टि के समय राजा भोज भी हो चुका है जो आमराजा का पौत्र और दुन्दुक का पुत्र था। आम राजा के दुन्दुक नाम वाला पुत्र था। दुन्दुक के भोज नामधारी राजा हुआ। दुन्दुक कंट्या नामवाली वेश्या में इतना आसक्त था कि वह अपने पुत्र भोज को वेश्या के सिखाने से मार डालना चाहता था। समय पाकर भोज ने कंटिका वेश्या के साथ बैठे हुए उस दुन्दुक को वेश्या-सहित शस्त्र के घात से मार डाला। भोज ने फिर अनेक राज्यों को अपने में मिला कर राजा आम से भी अधिक जैनधर्म की उन्नति की। इन बप्पभट्टि सूरि की मृत्यु वि० सं० ८८५ में हो चुकी थी जब दुन्दुक जीवित था। बप्पभट्टि के शिष्य आ० गोविंदसूरि को ग्वालियर का राजा मिहिर भोज गुरु-रूप से मानता था (देखिये जै० प० इ० पृ० ५३४)।

इतिहास के अनुसार यशोवर्मा मुक्तापीड ललितादित्य के हाथों ७३६ और ७४७ ई० के मध्य मार डाला गया था। वाक्‌पतिराज और भवभूति उस राजा के सभा-कवि थे। हमने ऊपर बता दिया है कि वाक्‌पतिराज और बप्पभट्टि समसामयिक थे, अतः भवभूति और बप्पभट्टि भी समसामयिक हों तो कोई सन्देह नहीं है। 'भवभूति' पुस्तिका के लेखक का कहना यथार्थ ही था कि बप्पभट्टि ने भवभूति को जैन धर्म में दीक्षित होने के लिए बाध्य किया था जब भवभूति बंगाल की ओर गये थे। बप्पभट्टि गौड़ देश में पर्याप्त दिन रहे थे।

R. Sathianathaier in his history—A political and cultural History Vol. I to A. D. 1200 में लिखते हैं, "Literature mentions Ama, a Jain and Dunduka, a reprobate murdered by his son Bhoj, as a successor of Yasovarman, but their histrocity is not clear."

बप्पभट्टि के उर्युपक्त कथन से यह निष्कर्ष निकला कि बप्पभट्टि के समय में जैन धर्म का विस्तार बढ़ता जा रहा था। सिद्धर्षि के लेख से भी यह बात प्रमाणित है।

सिद्धर्षि महाकवि माघ का चचेरा भाई था। बप्पभट्टि के समय भवभूति और गौडवहो के रचयिता वाक्पतिराज विद्यमान थे। बप्पभट्टि सन् ७४३ ई० से ८३८ ई० तक विद्यमान थे जैसा प्रबन्ध के श्लोक से ज्ञात होता है। भवभूति का भी लगभग यही समय था बल्कि इस से भी आगे का हो सकता है क्योंकि बप्पभट्टि भवभूति से आयु में अधिक थे। बप्पभट्टि के समय में वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) हुआ ही करते थे [1]

बप्पभट्टसूरिचरित से प्राप्त तथ्यों द्वारा कुछ अन्य बातों का मेल—

(१) बप्पभट्टि भद्रकीर्ति के शिष्य थे। भद्रकीर्ति के आश्रम में यशोवर्मा की स्त्री ने आम राजा को जन्म दिया। बप्पभट्टि और आम राजा इस भाँति बालसखा थे। आम राजा के पुत्र दुन्दुक वेश्यागामी थे। दुन्दुक के पुत्र प्रतिहार भोज थे। इन्हीं भोज के गुरु आ० गोविंदसूरि थे जो बप्पभट्टि के शिष्य थे। बप्पभट्टि ने ९५ वर्ष की एक लम्बी आयु प्राप्त की थी। बप्पभट्टि इस भाँति यशोवर्मा और प्रतिहार भोज के समय में अवश्य थे। यशोवर्मा के समय में 'गोडवहो' के रचयिता वाक्पतिराज इतिहासों के अनुसार आते ही हैं और भवभूति यशोवर्मा के समय में थे। भवभूति से बप्पभट्टि का साक्षात्कार हुआ है। बप्पभट्टि उस समय अति वृद्ध थे। भवभूति का इस भाँति भोज के समय में होना युक्तियुक्त है (स्मरण रखना है कि प्रतिहार राजा के पुत्र महेन्द्रपाल और महेन्द्रपाल के भी पुत्र महीपाल के संस्कृत-साहित्य के विद्वान् राजशेखर गुरु थे। इन्हीं राजशेखर के समकालीन तीसरे कालिदास 'पद्मगुप्त परिमल कालिदास थे जो परमार राजा भोज के पिता सिंधुल, विक्रम के सभा-कवि थे। इन्होंने शृङ्गार रसमय—'नवसाहसांकचरित' काव्य लिखा है।) संभवतः यह वह कालिदास थे जिनका भवभूति के साथ समागम हुआ है।

(२) बप्पभट्टि की आयु लंबी थी। पीछे के लेखों में हमने देखा है कि सिद्धर्षि, हरिभद्र सूरि उद्योतनसूरि ने भी एक लंबी आयु प्राप्त की थी। आगे के लेखों में बताया गया है कि बनराज चावड़ा, बापारावल, प्रतिहार भोज आदि नरेशों ने भी अच्छी आयु प्राप्त की थी; फिर ऐसी अवस्था में यदि वाक्पतिराज, भवभूति, भोज, माघ तथा पद्मगुप्त परिमल कालिदास ने एक अच्छी आयु प्राप्त करते हुए साहित्यिक मनो-विनोद में भाग लेते हुए, अच्छा समय निकाला हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मनुष्य की पूर्ण आयु ज्योतिष शास्त्र के अनुसार १२० वर्ष की होती है। वनराज १०९ वर्ष और बापा रावल भी १०० से ऊपर ही होकर दिवंगत हुए तब उन कवियों का होना भी संभव है। (देखिये हिन्दुस्तान २६ नवम्बर सन् १९५५ श्री छज्जूराम विद्यासागर का 'तीन कालिदास' शीर्षक लेख)

(३) उस समय जैन धर्म का प्रचार जोरों पर था।

(९) वनराज चावड़ा से संबंधित ऐतिहासिक तथ्य

प्रबन्धचिन्तामणि में 'वनराज' का प्रबन्ध आता है। पाठकों की सुविधा के लिए हम उसे अविकल रूप से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"तस्य कान्यकुब्जस्यैक देशो गुर्जरधरित्री, तस्यां गुर्जरभुवि बढ़ीयाराभिधानदेशे पंचासरग्रामे **चापोत्कटवश्यं** झोलिकासंस्थं बालकंवण (बाण) नाम्नि वृक्षे निधाय तन्मातेन्धनमवचिनोति। प्रस्तावात्तत्रायातैर्जैनाचार्यैः श्रीशीलगुणासूरिनामभिरपराह्णेऽपि तस्य वृक्षस्य छायामनमन्तीमालोक्य, झोलिकास्थितस्य तस्यैव बालकस्य पुण्यप्रभावोऽयमिति विमृश्य जिनशासनप्रभाव कोऽयं भावीत्याशया वृत्तिदानपूर्वं तन्मातुः पार्श्वात् बालो जगृहे। वीरमतीगणिन्या स बालः परिपाल्यमानो गुरुभिर्दत्तवनराजाभिधानोऽष्टवार्षिको देवपूजाविनाशकारिणां मूषकाणां रक्षाधिकारे नियुक्तः। स तान् बाणेन निघ्नन् गुरुभिर्निषिद्धोऽपि चतुर्थोपायसाध्यांस्तानेवं जगौ। तस्य जातके राजयोगमवधार्याऽयं महानपतिरेव भावीति निर्णीय स तन्मातुः पुनः प्रत्यर्पितः। मात्रा समं कस्यामपि पवित्रभूमौ स्वमातुलस्य चौरवृत्त्या वर्तमानस्य (सम्मानपात्रतां प्राप्तौ जनपदस्यान्तरस्खलितपौरुषवृत्तिर्नगरग्रामसार्थकिव······?) सर्वत्र धाटीप्रपातमकरोत्।

कदाचित् काकरग्रामे खात्रपातनपूर्वं कस्यापि व्यवहारिणो गृहे धनं मुष्णन् दधिभाण्डे करे पतिते सत्यत्र भुक्तोऽहमिति विचिन्त्य तत्सर्वस्वं तत्रैव मुक्त्वा विनिर्ययौ। परस्मिन्नहनि तद्भगिन्या श्रीदेव्या निशि गुप्तवृत्त्या सहोदरवात्सल्यादाहूतः। पृष्टः —"कथं मद्गृहे प्रविश्य सर्वसारं (गृहीत्वा) त्वया पुनरेव मुक्तम्?" तेनोक्तं—

कह नाम तस्स पावं चिंतिज्जइ वि कोवम्मि।
उप्पलदलसुकुमालो जस्स घरे अल्लिओ हत्थो॥

सापि तद्वचनमाकर्ण्य तच्चरित्रेण चमत्कृता भोजनवस्त्रदानादिकमुपकारं चकार। मम पट्टाभिषेके भवत्यैव भगिन्या तिलकं विधेयमिति प्रतिपेदे।

अथान्यस्मिन्नवसरे तस्य चरटवृत्त्या वर्तमानस्य चौरैः क्वाप्यरण्यप्रदेशे रुद्धो जाम्बाभिधानो वणिक् तं चौरत्रयं दृष्ट्वा स्वबाणपंचकमध्याद्बाणद्वयं भंजंस्तैः पृष्ट इति प्राह—"भवत्रितयाधिकं बाणद्वयं विफलमित्युक्ते, तदुक्तं चलवेध्यं बाणेनादृत्य तैः परितुष्टैरात्मना सह नीतस्तद्योधविद्याचमत्कृतेन श्रीवनराजेन" "मम पट्टाभिषेके त्वं महामात्यो भावीत्यादिश्य विसृष्टः।

अथ कान्यकुब्जादायातपंचकुलेन तद्देशराज्ञः सुतायाः श्रीमहणकामिधानायाः कंचुकसम्बन्धे पितृप्रदत्तगुर्जरदेशस्योद्ग्राहणकहेतवे समागतेन सेल्लभृद्वनराजाभिधानश्चक्रे। षाण्मासीं यावद्देशमुद्ग्राह्य चतुर्विंशतिसंख्यान् पारुथकद्रम्मलक्षांस्तेजोजात्यांश्चतुःसहस्रसंख्यांस्तुरं-

गमान् गृहीत्वा पुनः स्वदेशं प्रति प्रस्थितं पंचकुलं सौराष्ट्राभिधानघाटे वनराजो निहत्य कस्मिन्नपि वननिकुंजे तद्राजभयाद्वर्ष यावद्गुप्तवृत्त्या तस्थौ ।

अथ निजराज्याभिषेकाय राजधानीनगरनिवेशचिकीः शूरां भूमिमवलोकमानः पीपलुलातडागपाल्यां सुखनिषण्णेन भारूयाडसाखडसुतेनाणहिल्लनाम्ना पृष्टः—"किमवलोक्यते" "नगरनिवेशयोग्या शूरा भूमिरवलोक्यते" इति तैः प्रधानैरभिहिते, "यदि तस्य नगरनिवेशस्य मन्नाम दत्त ततस्तां भुवमावेदयामी" त्यभिधाय जालिवृक्षसमीपे गत्वा यावतीं भुवं शशकेन श्वा त्रासितस्तावतीं भुवं दर्शयामास । तत्र प्रदेशे **अणहिल्लपुर-मितिनाम्ना** नगरं निवेशयामास ।

८०२ द्व्यधिकाष्टशतसंवत्सरे (ए० डी० संवत् ८०२ वर्षे वैशाखसुदि २ सोमे) श्री विक्रमार्कतस्तस्य जालितरोर्मूले धवलगृहं कारयित्वा राज्याभिषेकलग्ने काकरग्रामवास्तव्यां तां प्रतिपन्नभगिनी श्रियादेवीमाहूय तया कृततिलकः श्रीवनराजो राज्याभिषेकं पंचाशद्वर्षदेश्यः कारयामास । स जाम्बाभिधानो वणिग् महामात्यश्चक्रे । पंचासरग्रामतः श्री शीलगुणसूरीन् सभक्तिकमानीय धवलगृहे निजसिंहासने निवेश्य कृतज्ञचूडामणितया सप्तांगमपि राज्यं तेभ्यः समर्पयंस्तैं निःस्पृहैर्भूयोभूयो निषिद्धस्तत्प्रत्युपकारबुद्ध्या तदादेशाच्छ्रीपार्श्वनाथप्रतिमालंकृतं पंचासराभिधानं चैत्यं निजाराधकमूर्तिसमेतं च कारयामास तथा धवलगृहे कण्टेश्वरी प्रासादश्च कारितः ।

"गुर्जराणामिदं राज्यं वनराजात्प्रभृत्यपि, जैनैस्तु स्थापितं मन्त्रैस्तद्वेषी नैवनन्दति ।।"

संवत् ८०२ पूर्वंनिरुद्ध वर्ष ५९ मास २ दिन २१ श्रीवनराजेन राज्यं कृतम् । **श्री वनराजस्य सर्वायुर्वर्ष १०९ मास २ दिन २१ ।**

प्रबन्धचिंतामणि में जो लेख है उसके अतिरिक्त भी वनराज के विषय में जो बातें दी गई हैं, वे ये हैं:—

अनहिलपुर के संस्थापक वनराज चावड़ा हैं । इनके पिता की जागीर पहले पंचासर में थी । भीनमाल, बढवान, और पंचासर में चावड़ों का राज्य था किन्तु उनका कोई परस्पर सम्बन्ध हो ऐसी निश्चयात्मक बात आज तक न हो सकी । अनहिलपुर के संस्थापक वनराज जो वहीं के मूल पुरुष भी हैं, स्वयं कोई राजपुरुष थे अथवा किसी राज्य के उत्तराधिकारी थे, प्रमाण के रूप में कुछ नहीं कह सकते । जब उन्होंने अनहिलपुर बसाया तब वह प्रदेश भिन्नमाल वा कन्नौज के अधीन था । कहा जाता है कि वनराज भी वहीं के राजा की सेना में सैनिक थे । उन्होंने विद्रोह किया, कर-ग्राहक को लूटा और लूट के धन से अपने रहने के लिए एक नया ग्राम बसाया जिसको एक दूसरे के वंश वालों ने छीन लिया और उसको अपनी राजधानी बनाया । कृष्णकवि की रत्नमाला में पंचासर के चावड़ा राजा जयशेखर का वर्णन आया है । इसके अनुसार जयशेखर पर कल्याण कटक के भूयाड् ने वि० सं० ७५२ (६९६ ई०) में आक्रमण किया था । आक्रमणकारियों ने पंचासर को घेर लिया यह घेरा ५२ दिन तक रहा । जयशेखर ने देखा कि वह अधिक दिन तक शत्रु-सेना का सामना नहीं कर सकेगा तो उसने अपनी गर्भवती रानी रूपसुन्दरी को उसके भाई सूरपाल के साथ जो सेनापति भी था, निकट के ही अरण्य में पहुँचा दिया । फिर जयशेखर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ । वन में

रूपसुन्दरी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो आगे चल कर वनराज के नाम से विख्यात हुआ। वनराज के माता-पिता के विषय में कछ अन्य बातें भी प्रचलित हैं। एक के अनुसार उनका जन्म अम्बासर गाँव में चामुण्ड या चापोत्कट वंश की एक परित्यक्ता स्त्री के गर्भ से हुआ। कुछ का कहना है गुर्जरदेश (कान्यकुब्ज का भाग) में विहार जिले के पंचासर गाँव में एक माता अपनें बच्चे को वन वृक्ष के नीचे कपड़े के झूले में रखकर लकड़ियाँ चुनने लगी।

कुछ भी हो, इन सब बातों से वनराज का सम्बन्ध पंचासर से अवश्य है। वनराज के विषय में कुछ भी बातें प्रचलित हों, किन्तु यह तो सब ही स्वीकार करेंगे कि उन्होंने भारूकड साखड गडरिये के पुत्र अनहिल्ल के कहने पर वहाँ एक नगर बसाया और इस तरह वे अनहिलवाड़ा राज्य के संस्थापक हुए। यह साधन कान्यकुब्ज साम्राज्य के सैनिक होकर और एक पहाड़ी मार्ग में सुराष्ट्र नामक कर एकत्र करने वाले को, जब वह गुजरात से ६ मास के राजस्व के २४ लाख सोने के सिक्के और तेजा जाति के चार हज़ार घोड़े लेकर राजधानी को लौट रहा था, मारकर प्राप्त किया था।[1]

वनराज ने ५६ वर्ष राज्य किया और १०६ वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण किया। उसके राज्य की सीमा कहाँ तक थी, कुछ भी ज्ञात नहीं होता। उसकी गद्दी पर योगराज वैठा जिसने १० वर्ष से भी अधिक राज्य किया। चाप वंश के ८ राजाओं ने १६० अथवा १६६ वर्ष तक राज्य किया। आठवें राजा भूयगढ या भूभृत के पश्चात् उनकी बहिन के पुत्र चालुक्यवंशीय गद्दी पर बैठे।

---

(१) देखिये आबू-समिति प्रतिवेदन का सारांश, राज्य-मुद्रणालय, जयपुर

(१०) श्रीमाल (भीनमाल) नगर की अवस्थिति, उसका तत्कालीन संस्कृति के निर्माण में योग, माघ के साथ उसका संबंध

यह गूजरों के देश गुजरात की प्रथम राजधानी है। आजतक भी गुजरात के अधिनिवासी अपना निकास **श्रीमाल** अथवा आसपास के छोटे-छोटे गाँवों से लेते हैं। ह्वेनसांग की भारत-यात्रा में वह लिखता है कि बलमी के ठीक १५० कोस (३०० मील) उत्तर में भीनमाल है। यहाँ की जमीन की उपज और मनुष्यों का रहन-सहन सौराष्ट्र से मिलता-जुलता है। आबादी अत्यधिक है। इस यात्रा के वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भीनमाल, जो आबूपहाड़ से ५० मील पश्चिम में है, गुजरात की राजधानी था जिसका घेरा ८३० मील था। ६ठी शताब्दी तक यहाँ गुर्जरों का शासन था। किन्तु पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार ह्वेनसांग के आने के पूर्व तक भीनमाल में गुर्जरों का शासन समाप्त हो गया था अथवा **ब्रह्मगुप्त** जो **भिल्लमालाचार्य था** उसके ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना की। समाप्ति के पूर्व तक समाप्त हो गया था; क्योंकि उस समय भीनमाल का राज्य व्याघ्रमुख के आधीन था जो चापवंश का था (राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १३२-१३३)। कहा जाता है चाप, चावड़ा, पढ़ियार, सोलंकी ये सब गुर्जर हैं। जैक्सन महोदय की मोनोग्राफ ऑन भीनमाल, बम्बई गजेटियर पुस्तक प्रथम के परिशिष्ट में भीनमाल के विषय में बहुत-कुछ लिखा है। इसको देखने से ज्ञात होता है कि भीनमाल किसी समय में एक बहुत ही शानदार समृद्धशाली नगर होगा। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में यह कितने ही मीलों तक फैला हुआ था। लगभग एक मील पश्चिम में चामुण्डा देवी (श्री) जो भीनमाल का भाग्य कहलाती है, की मूर्ति है (बी० जी०, वोल्यूम, १, पेज ४४९)। श्रीमाल जिसको भीनमाल कहते हैं कैसा नगर था, कैसी स्थिति थी, उत्पत्ति कैसे हुई आदि-आदि बातें श्रीमाल पुराण (श्रीमाल माहात्म्य) से ज्ञात होती हैं जो पुराण जैक्सन महाशय के अनुसार ४०० वर्ष प्राचीन है। प्रारम्भ में श्रीमाल गौतमाश्रम कहलाता था। शिवजी ने गौतम मुनि से त्र्यम्बक झील जाने के लिए कहा। वह झील सौगन्धिक पर्वत के, जो आज नासिक कहलाता है, उत्तर की ओर है और आबू के उत्तर-पश्चिम में—

"अस्ति सौगन्धिकादद्रेरुत्तरस्यां दिशि द्विज। वायव्यामर्बुदारण्यात् सिद्धगांधर्वसेवितम्।
सरस्त्र्यम्बकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥" अ० २ श्लोक २२-२३

इस झील के निकट ही वरुण कानन है क्योंकि वरुण ने तप करके पश्चिम का स्वामित्व प्राप्त किया था। गौतम ने अपनी कुटिया वहाँ बनादी जिसका क्षेत्रफल ५ गव्यूति (२०मील) था। अहिल्या तथा शिष्यों सहित वे वहीं रहने लगे। वही स्थान, बाद में जाकर, श्रीमाल कहलाया जाने लगा। श्रीमाल नाम कैसे हुआ, इस पर जिस किसी की भी जो धारणा हुई, वह अतीव रोचक है। श्री जिसको दूसरे शब्दों में लक्ष्मी कहते हैं वह भृगु ऋषि की पुत्री थी

जो विष्णु के साथ ब्याह दी गई। जैसे ही वह अपने स्वामी तथा दूसरे देवताओं के साथ जा रही थी वे सब एक स्थान पर ठहर गए। झील में स्नान करने के पश्चात् ही श्री को वास्तविकता का ध्यान आया। श्री के उस आत्मबोध के अवसर पर देवताओं ने उस सम्पूर्ण स्थान को दैविक पुष्पों की मालाओं से आच्छादित कर दिया। शनैःशनैः पाँच कोस पर्यन्त जो देवताओं के विमानों से घिरा हुआ था, वह स्थान **"श्री की प्रार्थना पर श्रीमाल रखा गया।"** श्री ने उस स्थान को ब्राह्मणों को पुरस्कार में दिया और उन्हें अपनी भावना इस बात से प्रकट की कि वे वहाँ पर उसका भी एक स्थान रखें। विष्णु ने गणों से देश के विभिन्न भागों मे पवित्र ब्राह्मणों को बुलाने के लिए कहा और इस मध्य में विश्वकर्मा से उस स्थान पर एक नगर बसाने के लिए कहा। श्रीमाल पुराण में इस बात का बहुत ही सुन्दर वर्णन है कि उस शिल्पी ने वहाँ पर कितने सुन्दर नगर का निर्माण किया। विष्णु तथा अन्य देवताओं ने गगन-मण्डल से उस नगर का निरीक्षण किया और वे प्रसन्नचित्त होकर उस नगर की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे (देखिए, अध्याय ९, पद्य १-२२, पद्य २-२४ और ७२, पद्य १-१५) विष्णु ने वरदान दिया कि सर्वोत्तम ब्राह्मण इस विद्या का अध्ययन करेंगे ये तुम्हें स्मरण करेंगे। वास्तव में देखा जाय तो गुजरात की शिल्पकला विश्वकर्मा का स्मरण कराती है। पवित्र ब्राह्मणों ने गौतम के मुखियापन को स्वीकार नहीं किया, अतः वे वहाँ से निकाल दिये गये। वही नगर कालान्तर **में श्रीमाल नगर हुआ। यह नाम सतयुग में था, त्रेता में पुष्पमाल और कलियुग में भिन्नमाल या भीलमाल या भीनमाल हुआ।**

पुष्पमाला मया कण्ठे कश्यपस्य निवेशिता।
त्रेताऽदौ पुष्पमालेति नाम्ना श्रीमालमास्त्विति ॥

इसका चौथा नाम पुराण और प्रबन्धचिन्तामणि में सम्राट् श्रीपुंज और उसकी पुत्री श्री माता के सम्बन्ध में कहानी में 'रत्नमाल' कहा गया है (अध्याय ६६)। वह पाँच योजन (१५ या २० मील) के विस्तार में चारों ओर से समभाग में थी 'पंचयोजन विस्तारं चतुरस्रं समन्ततः।" (अध्याय १०, पद्य ५८) पुराण में लिखा है कि १००० गणपति, ४००० क्षेत्रपाल, ८४ चंडिका देवी, १००० झील, ११००० शिवलिङ्ग, ९९९ मुख्य देवालय और १८००० दुर्गामन्दिर इस श्रीमाल में हैं जो श्रीमालिका सर्वसंख्या नाम से हैं। वहाँ ४००० ब्रह्मशालाएं थीं और ८०० दूकानें व १००० समितियाँ। नगर के चारों ओर परकोटा था जिसमें ८४ दरवाजे थे। जो वैश्य पूर्वीय भाग में रहते थे वे प्राग्वाट कहलाते थे; दक्षिण वाले घनोत्कट, पश्चिम और उत्तर वाले श्रीमाली। इस श्रीमाल या भीलमाल का वर्णन ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-वर्णन व प्रभाचन्द्र सूरि ने अपने प्रभावकचरित में किया है। जैक्सन महाशय **यक्षाकूप और जगत्-स्वामी** (सूर्य) के मन्दिर का वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि **झील के निकट विशालकाय टूटी-फूटी मूर्ति है जो श्रीमाल का सबसे पुराना अवशेष है। जगत्स्वामी का मन्दिर सन् १६६ में बनाया गया था।** नगर की बरबादी २०९ सन् में की गई थी। दूसरी बार नगर राक्षस से लूटा गया। सन् ६४३ में नगर फिर से बनाया गया। सन् ८४४ में फिर तीसरी बार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। सन् ८९६ में फिर नगर का जीर्णोद्धार किया गया और तब से १४वीं शताब्दी तक सुख-समृद्धि और धन-धान्य से परिपूर्ण रहा। (बी० जी०, पृष्ठ ४६३)।

प्रथम जो पुष्ट प्रमाण भीनमाल के विषय का प्राप्त हो रहा है वह वर्मलात का शिलालेख है। राजा वर्मलात भीनमाल का राजा बताया जाता है, ऐसा प्रभावकचरित में आता है। यह शिलालेख ६८२ का लिखा हुआ है। संवत् अज्ञात है। वह वर्मलात कदाचित् वही हो जिसका उल्लेख माघकवि ने अपनी शिशुपाल की प्रशस्ति में किया है। वंशवर्णनानुसार सुप्रभदेव, जो माघ के पितामह थे, कुछ विद्वानों की सम्मति में वर्मलात राजा के प्रधान मन्त्री थे; किन्तु किन्हीं विद्वानों के अनुसार वे सुकृत कार्यों के सर्वाधिकारी अध्यक्ष होंगे। माघ के पिता अपने मैत्रीमय सद्व्यवहार से प्रजा में सर्वाश्रय नाम से पुकारे जाते थे जिनका वास्तविक नाम कुमुद पंडित (दत्तक) था। यह हो सकता है कि **माघ ने अपने काव्य के प्रति सर्ग को 'श्री' शब्द से समाप्त इसीलिये किया कि अपनी नगरी श्रीमाल का उस महाकाव्य में प्रशंसात्मक रूप में वर्णन आ जाय और इसी लिए वह माघ श्र्यङ्क के नाम से भी पुकारा जाता है। १९वें सर्ग का अन्तिम श्लोक 'माघकाव्यमिदं शिशुपाल' वधः चक्रबंध में स्पष्ट बतला रहा है कि माघ अपना नाम चाहता था, इसीलिये काव्य का नाम अपने नाम पर रखा, अथवा अपने काव्य को श्र्यङ्क के नाम से रखने का यह भी अभिप्राय हो कि उस नगरी के नाम से ज्ञात हो जाय कि श्रीमाल में एक कवि ऐसा भी हुआ था।** यह केवल यश-लिप्सा थी।

महाशय जैक्सन ने भीनमाल का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि वहाँ की जीर्ण रूप में बिखरी पड़ी हुई ईंटें इस बात को स्पष्ट करती हैं कि कभी उस स्थान पर विद्याशाला या संस्कृत कालेज होगा। श्रीमाल पुराणानुसार वहाँ पर १००० ब्रह्मशालाएँ थीं और ४००० मठ थे जहाँ पर विभिन्न विद्याएँ सांगोपांग पढ़ाई जाती थीं।

(देखिये श्रीमालपुराण माहात्म्य, अध्याय १२, पद्य २२ और अध्याय ७१ भी) उसमें लिखा है--

> चतुर्वेदाः सांगाश्च-त्वुपनिषत्सहितास्तथा।
> सर्वशास्त्राणि वर्तन्ते श्रीमाले श्रीनिकेतने॥

यह इस बात का प्रमाण है कि भीनमाल (श्रीमाल) विद्या का केन्द्र था। इसी नगर में माघ पोषित होकर बड़ा हुआ और वहीं पढ़-लिख कर उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। हम यह भी जानते हैं कि ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त के रचयिता ज्योतिषी भिन्नमालाचार्य ब्रह्मगुप्त ने भी यहीं पर अपनी पुस्तक को ५५० शक संवत् (सन् ६२८) में समाप्त किया। अलबरूनी (१०२० A. D.) का कहना है कि ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्त ने लिखा। वह भीनमाल का निवासी था। भीनमाल मुल्तान और अनहिलवाड़े के मध्य में है।

[1]श्रीमाल जैन विद्या का भी प्रधान स्थान रहा है। सिद्धर्षि की प्रसिद्ध उपमितिभव प्रपंचकथा इसी भीनमाल में सन् ९०३ में समाप्त की गई थी। जैन दर्शन शास्त्र की अनेक पुस्तकों के रचयिता श्री हरिभद्र सूरि की साहित्यिक हलचल का यही मुख्य केन्द्र था।

१ (क) जैन परंपरानो इतिहास भाग १ त्रिपुटी महाराज का देखिये वे लिखते हैं

पृ० ५४१ "प्रतिहार वंशना घणा राजाओं जैनधर्म प्रेमी थया छे। राजा आम अने राजा

प्रभावकचरित में लिखा है कि सिद्धर्षि (९०५) **हरिभद्रसूरि के शिष्य थे।** ललित-विस्तरा कुवलयमाला कथा, जो प्राकृत में है, भीनमाल में, समाप्त किया गया था। श्रीमाल में साहित्यक चर्चा की जैसी धूमधाम थी, वह उपर्युक्त बातों से सिद्ध है। जिनविजय का **वसन्तराज महोत्सव** देखने योग्य है जिसमें **हरिभद्र सूरि की तिथि का निर्णय किया गया है** (इनका काल जिनविजयजी ने सन् ७०० तक अर्थात् वि० सं० ७५७ से ८२७ तक निश्चित किया)

उपर्युक्त उल्लेखों से पता चलता है कि इस नगरी के नाम भिन्नमाल, भीनमाल, श्रीमाल, पुष्पमाल और रत्नमाल हैं। इनमें माल शब्द सब में आया है। 'माल' शब्द के तीन अर्थ हैं—दो गाँवों के मध्य का वन, पर्वतीय ऊंचा भूमिभाग, म्लेच्छ जाति (माला भिल्ल-किराताश्च सर्वेऽपि म्लेच्छजातयः)। भिल्ल और माल जाति सर्वप्रथम वहाँ पर रही होगी

भोज आ. बप्पभट्टसूरिना अनन्य उपासको हता। मंडोवरनो कक्कुक पण जैन राजा हतो राजा खुमाण (श्रीने) ब्राह्मणोना पक्षकारोना विरोधी हता। ऐटले के तेओ शैवधर्मी न हता वि० सं० ८९२।" इस भांति इस इतिहास से पता लगता है कि चित्तौड़ भीनमाल, मारवाड़ आदि स्थान जैनियों के गढ़ थे। यशोवर्मा का पुत्र आम जैनी था और आम का पुत्र दुंदुक जिसका नाम रामभद्र था और जो नागावलोक के मरने के पीछे राजगद्दी पर बैठा उसका विवाह पाटलिपुत्र की राजकन्या से हुआ और उसी से प्रतिहार भोज ने जन्म लिया तथा वेश्यागामी अपने पिता दुंदुक को मार कर कन्नौज की गद्दी पर बैठ गया। यह जैन धर्म का बड़ा प्रेमी था। बप्पभट्टि की मृत्यु तथा आम की मृत्यु पर इसको इतना दुःख हुआ कि यह स्वयं चिन्ता में जलने लगा फिर बप्पभट्टिसूरि के शिष्य गोविन्द सूरि तथा विमलचन्द्र सूरि को इसने अपना गुरु माना।

(ख) जीवराज जैन ग्रन्थमाला संख्या २ 'यशस्तिलक खण्ड इंडियन कलचर' में श्री के० के० हांडिक पृष्ठ २९, ३२७, ४३९ पर लिखते हैं कि सोमदेव काव्य-साहित्य में महाकवि माघ के एक अच्छे योग्य उत्तराधिकारी हुए हैं। आगे पृष्ठ ३२७ पर लिखते हैं कि जैन धर्म अति प्राचीन है यहाँ तक कि भारवि, माघ और भवभूति के ग्रन्थों में इस धर्म की ख्याति पर्याप्त है।'............'राजशेखरादि महाकवि काव्येषु............कथं तद्विषया महती प्रसिद्धिः।' पृष्ठ ४३९ में भी महाकाव्यों के कवियों के नाम गिनाते हुए 'माघ' को भी लाते हैं और कहते हैं कि इनके ग्रन्थ में जैन धर्म की ख्याति का एक अच्छा प्रमाण है।

(ग) जैन साहित्य संशोधक स्टडीज नं० २ 'दी जैन्स इन हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर' में डा० मोरिस विण्टरनिट्ज लिखते हैं कि काव्य और महाकाव्य दोनों ही जैन कवियों द्वारा लिखे गये हैं। माघ का शिशुपालवध महाकाव्य तथा हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय इस दिशा की ओर झुके हुए कहे जाते हैं।

इन उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि चितौड़, भीनमाल, मारवाड़, जालौर तथा इनके इधर-उधर के स्थान जैन धर्म के गढ़ थे तथा वहाँ पर पर्याप्त साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। भीनमाल इनमें प्रमुख था।

अतः भीनमाल पड़ा। किन्तु जैसे नगर समृद्धिशाली होता गया, वहाँ के स्वाभिमानी नागारिकों ने **भीनमाल के स्थान पर श्रीमाल** नाम रखने का प्रयत्न किया, यद्यपि प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त जो ७वीं शताब्दी के प्रथम भाग में हुआ था, अपने-आप को भिल्लमालाचार्य कहता है। पुराणों से और लोगों की कही हुई इन कपोलकल्पित गाथाओं से, कि वह नगर बार-बार राक्षस से नष्ट-भ्रष्ट किया गया—केवल इस बात की सिद्धि होती है कि भील और माल जातियों ने, जिसका अधिकार छिन गया था, परस्पर बग़ावत की। श्रीमाल पुराण में एक किरात भील का भी वर्णन आता है, जो तीर्थ स्थान था। **किरात भील को भी कहते हैं।** धार्मिक इतिहास बताता है कि वह स्थान **वैष्णवों की पूजा का था,** किन्तु उसी श्रीमाल पुराण में वर्णित है कि कलियुग में जैनधर्म की प्रधानता होगी जैनधर्म च श्रीमाले चरिष्यन्ति कलौ युगे। (देखें अध्याय ७)—ह्वेनसांग कहता है कि बौद्ध भी वहाँ रहने लग गये थे।

वर्मलात (६२६ ई०) के पश्चात् चापवंशीय व्याघ्रमुख (६२८ ई०) भीनमाल का शासक था, यह बात हमारे मत के प्रतिकूल है, क्योंकि वर्मलात ६८२ शक सं० का था, अतः व्याघ्रमुख उसके पूर्व हुआ होगा। **जब ह्वेनसांग लगभग ६४१ ई० में वहाँ पर आया उस समय एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था जिसकी आयु २० वर्ष की थी। वह कदाचित् व्याघ्रमुख का पुत्र हो।** इससे तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि-लगभग ७ वीं शताब्दी के अंत तक चापवंश अवश्य वहाँ पर था। ताम्रपत्र में लिखा है कि चापोत्कट पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। यदि वे भीनमाल के चाप हों तो कह सकते हैं कि **भीनमाल पर ७३२ ई० और ७५० ई० के मध्य में आक्रमण हुआ।**

चापोत्कटों के पश्चात् प्रतिहारों का राज्य भीनमाल में पाते है। यह पता नही कि प्रतिहारो ने चापों को कब हरा दिया। महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस घटना को सन् ७४० और सन् ८०९ के मध्य में हुई स्वीकार करते हैं। प्रथम प्रतिहार राजा के विषय में हम इतना ही जानते हैं उसका नाम नागभट्ट या नागावलोक था। यदि यह वही नागभट्ट है जिसका वर्णन सन् ८१३ ताम्रपत्र में मिलता है जिसमें चौहान राजा भर्तृवृद्ध द्वितीय अपने आप को नागावलोक का सामन्त बताते हैं तो हम कह सकते हैं कि उसका राज्य उत्तर में मारवाड़ से लेकर दक्षिण में भड़ौच तक फैला हुआ था। उसी के समय बिलोचियों ने आक्रमण किया किन्तु वे पराजित कर दिये गये। इसके पश्चात् ककुत्स्थ और देवराज नामक दो राजा हुए, फिर वत्सराज हुआ। उसने बंगाल के गौड़ राजा को पराजित किया। जब मालवा के राजा के साथ वत्सराज लड़ रहा था उस समय उस पर राष्ट्रकूटों के राजा ध्रुवराज ने आक्रमण किया और वत्सराज को मारवाड़ की ओर, जो उसके आधीन था, भागना पड़ा। **कविराजमार्ग के लेखक अमोघवर्ष के** गुरु जिनसेन के बनाये हुए हरिवंशपुराण में उसका वर्णन है। उद्योतन सूरि ने भी कुवलयमालाकथा में यह घटना दी है।

वत्सराज का पुत्र नागभट्ट द्वितीय फिर गद्दी पर बैठा। इसने कन्नौज के राजा चक्रयुद्ध (धर्मवंश का अंतिम राजा) को हराया। यह भगवती का बड़ा भक्त था। उसकी मृत्यु सन् ८३४ में हुई। **इस के समय भीनमाल गूजरों की राजधानी नहीं रहा, कन्नौज राजधानी हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र रामभद्र हुआ, फिर भोज राजा हुआ** जो बहुत ही

शक्तिशाली शासक था। वह प्रतिहार वंश का था। इसके पाँच शिलालेख मिलते हैं, सन् ८४४ से सन् ८८३ तक के। **उसके रजतपत्रों और ताम्रपत्रों के एक ओर महादिवराह है** तो दूसरी ओर चाप है। यह भी भगवती का भक्त था। काठियावाड़ में भी ६ठा शिलालेख मिला है इससे ज्ञात होता है कि उसका राज्य वहाँ तक भी था। इसके राज्य की सीमा वैसे सतलज सरिता के पूर्वीय पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजपूताना और ग्वालियर का प्रदेश और कदाचित् मालवा, गुजरात और काठियावाड़ तक थी। पीछे के वे तीन प्रदेश निश्चित ही उसके उत्तराधिकारी के अधीन रहे हैं। इस भाँति गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य हर्ष या गुप्त साम्राज्य की समानता इसी के समय में कर सकता था। कुछ **इतिहासकार इसको विष्णु और सूर्य का उपासक मानते हैं। आदिवराह तो इसका पद था** ही, किन्तु प्रभास (ज्योतिर्मान्) इसका उपनाम भी बताते हैं। इसी ने भोजपुरा की नींव डाली। अरब यात्री लिखता है कि गुर्जरों के सम्राट् के पास अनगिनत सेना थी, और उसके पास पर्याप्त-सम्पत्ति थी और हाथी-घोड़े भी पर्याप्त मात्रा में थे। भारत में जितनी देश की रक्षा इसने की, उतनी रक्षा अन्य किसी से न हो सकी। इस मिहिर भोज ने, कहा जाता है ५० वर्ष तक (८३६-८८५ ई०)शासन किया, इसके पश्चात् **महेन्द्रपाल हुआ। काव्यमीमांसा के लेखक राजशेखर इसके गुरु थे** (हेमचन्द्र ने बहुत-सी पंक्तियां काव्यमीमांसा से ली हैं) फिर महीपाल राजा हुआ। इसको राष्ट्रकूट के राजा इन्द्रराज द्वितीय से लड़ना पड़ा। एक ताम्र-पत्र (९१४ ई० सं०)इनका काठियावाड़ के हड्डाला ग्राम में मिला है जिससे पता चलता है कि धरणीवराह नाम वाला इसका सामंत वहाँ का शासक था। फिर तीन राजा हुए: **भोज द्वितीय**, विनयपाल (भोज द्वितीय का कनिष्ठ भ्राता) और महेन्द्रपाल द्वितीय (विनयपाल का पुत्र)। मूलराज सोलंकी के शासन काल में गुजरात स्वतन्त्र हो गया। तब महेन्द्रपाल राजा था। **इस समय में ९५३ ई० तक भीनमाल गुजरात का प्रधान नगर समझा जता था। इसके पश्चात् ही भीमसेन के शासन-काल में १८,००० गुर्जर भीनमाल से चल दिये। श्रीमाल पुराण का कहना है कि श्री ने उस देश को छोड़ दिया(११४७ ई०)।** इसका परिणाम यह हुआ कि अब इस भीनमाल के स्थान पर अनहिलवाड़ा मुख्य नगर हो गया (बी० जी० ४६९)। दुष्काल की बात, जो गुजरात के विषय की आती है, भीनमाल में सं० १०७५ में घटी, तब सब लोग बस्ती छोड़ कर गुजरात या मालवा की ओर चल पड़े।

गुर्जर और गुर्जर प्रदेश :

बाणकवि के 'हर्षचरित' में ही सर्वप्रथम गुर्जर शब्द देखने को मिलता है जहाँ पर हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन को 'गुर्जर-प्रजागार' शब्द से सम्बोधित किया है, जिसका टीकाकारों ने अर्थ किया है गुर्जरों की निद्रा को खोने वाला अथवा गुर्जरों की सुरक्षा के लिए सदैव सजग रहने वाला। हर्ष का समय ६०६ से ६७३ ई० तक था अतः छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग को भी देखना है। हर्षचरित से पूर्व लिखे हुए किसी ग्रन्थ में अथवा महाभारत में यह शब्द कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। इतिहास-विशेषज्ञ यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि ये गुर्जर विदेशी आगन्तुक हैं और हो सकता है कि उनका श्वेत हूणों से रक्त का सम्बन्ध हो। ये

गुर्जर पंजाब में गुजरानवाला और गुजरात में तथा राजस्थान में भीनमाल से आकर बस गये। इस भाँति गुर्जर शब्द ५०० ई० से पूर्व कहीं न था। गुर्जर भारतीय संस्कृति में घुलमिल गये। इन्होंने आनर्त और लाट को ७०० ई० में और वलभी के राजाओं को ७५० ई० में अधीन किया। पाँचवीं शताब्दी के अन्त में भारत में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन बहुत हुए। उनमें गुर्जरों का उद्‌भव सहसा हुआ। वे इतने शक्तिशाली हो गये कि प्रभाकर-वर्धन (५६९-६०१) को उन्हें पराजित करने के लिए जाना पड़ा था। उनके प्राचीनतम शिलालेख ५८० से ७३५ तक के मिले हैं। आनर्त उनका प्रथम विजित देश था जो गुर्जर देश या गुजरात अथवा गुर्जरत्रा कहलाया, जिसका शाब्दिक अर्थ गुर्जरों द्वारा रक्षित (भूमि) है। गुर्ज्जरत्रा का यह संस्कृत-रूप है जो भाषा-विज्ञान के अनुसार विकसित होते-होते वर्तमान में गुजरात बन गया। राजस्थान के वर्तमान जोधपुर, पाली, जालौर अर्थात् प्राचीन आनर्त देश का उत्तरी भाग ईसा की छठी शताब्दी से गुर्जर देश या गुजरात के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। इस भाँति सम्पूर्ण पश्चिमी राजस्थान गुर्जर देश या गुजरात का अंग था। इस गुजरात के इतिहास में भीनमाल का महत्त्व कम नहीं है। भीनमाल इस गुर्जरत्रा भूमि की पहली राजधानी था। गुर्जरदेश के भीनमाल और सौराष्ट्र के बढवाण में चाप-वंश का राज्य था, किन्तु अरबों के आक्रमण पर भीनमाल के चापों की शक्ति कुछ नष्ट-सी हो गई और गुर्जर प्रतिहार भीनमाल के शासक के रूप में सामने आये। गुर्जर-प्रतिहारों का साम्राज्य लगभग सारे उत्तरी भारत में फैल गया। दसवीं सदी तक ये शक्तिशाली रहे। अनहिलपुर के चालुक्य जिनका प्रथम शासक मूलराज था, आबू-मालवा के परमार, शाकम्भरि (साँभर) और नदुल (नाडौल) के चाहमान, मेदपाट (मेवाड़)के गुहिल आदि राजा तथा अन्य राजपूत राजवंश, जो एक प्राचीन मान्यता के अनुसार आबू की यज्ञाग्नि से उत्पन्न हुए थे, गुर्जर प्रतिहारों के जागीरदारों के रूप में अपने छोटे-छोटे राज्य बसाते हुए फैल रहे थे। जिस समय माघ थे उस समय राजाओं के राज्यों में परिवर्तन हो रहे थे। एक शक्ति नष्ट होती और दूसरी शक्ति का आतंक छा जाता। यह थी भीनमाल और आसपास की भूमि की राजनैतिक अवस्था, उस युग में, जिसमें माघ विद्यमान थे।

निष्कर्ष—श्रीमाल-पुराण के अनुसार श्रीमाल नगर भी किसी समय बहुत बड़ा समृद्ध नगर रहा है। ब्राह्मणों का कदाचित् बहुत प्रभाव रहा था, अतः उन्होंने स्कंदपुराण में श्रीमाल-माहात्म्य भी सम्मिलित कर दिया। कहा जाता है गौतम का आश्रम यहीं पर था। एक दिन गौतम ऋषि को अन्य ब्राह्मणों ने अप्रसन्न कर दिया। परिणामस्वरूप वे पंजाब (काश्मीर) की ओर चले गये और वहाँ गौरी के पुत्र (महावीर) के शिष्य होकर पुनः यहाँ पर आये और जैन धर्म का जोरों से प्रचार किया। इसी समय यहाँ की अवस्था बिगड़ने

---

१ प्रबंधचिंतामणि में श्रीमाल का भिन्नमाल नाम माघ की दरिद्रावस्था पर भोज ने किया, किन्तु उपर्युक्त भीनमाल शीर्षक में जैनधर्म के बढ़ने के समय लक्ष्मी की कमी होने से अथवा इस नगर के श्रीहीन होने से वहाँ के मनुष्य जब स्थान को छोड़-छोड़ कर गुजरात की ओर जाने लगे तब श्रीमाल वैसे ही भिन्नमाल हो गया, किन्तु ये सब बातें ९वीं शती की हैं जब भीनमाल श्रीहीन हुआ। माघ भी उसी समय थे।

जब से वहाँ जैन धर्म बढ़ा लक्ष्मी की कमी होने लगी और अंत में लोग यहाँ से गुजरात को चले गये। श्रीमाल में जैन धर्म का वास्तविक समय वि० सं० ८३५ में उद्योतन सूरि की कुवलयमाला-कथा से ज्ञात होता है। इसकी प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा को बतलाते हुये वे लिखते हैं कि उनके पूर्वज शिवचन्द्र गणी महत्तर पंजाब के पछइया नगर से जिन नन्दिन की तीर्थ यात्रा के प्रसंग में भिन्नमाल नगर पधारे और यहीं रहने लगे। इस उल्लेख से जहाँ गौतम ऋषि के द्वारा यहाँ पर जैन धर्म के प्रचार का उल्लेख है, उक्त उल्लेख से वह कार्य शिवचंद्र गणी और उनकी शिष्य सन्तति द्वारा अग्रसर हुआ। शिवचंद्र भी पंजाब से यहाँ आये।

भिन्नमाल के निवासी श्रेष्ठि तोड़ा की १६ वीं सदी की वंशावली के अनुसार उस वंश के पूर्वज ने सं० ७७५ में जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था। उक्त वंशावलि का आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—भारद्वाजगोत्रे सं० ७९५ वर्षे प्रतिबोधित श्री माली ज्ञातीय श्री शान्तिनाथ गोष्ठिक श्री भिन्नमाल नगरे भारद्वाज गोत्रे श्रेष्ठि तोडा तेहनोवास पूर्बिलीपोली भट्टनई······

श्री माल माहात्म्य की रचना का समय बहुत पीछे का है। माहात्म्य में तपागच्छ का दो बार उल्लेख आया है जो श्वेताम्बर जैनियों के ८४ गच्छों में एक है। संवत् १२८५ में तपागच्छ की उत्पत्ति हुई थी और १४वीं शती में इसका प्रभाव बहुत अधिक विस्तार में हुआ। उधर इस नगर के भी हीन होने व यहाँ के लोगों के गुजरात की ओर जाने के निर्देश से भी इसकी पुष्टि होती है यद्यपि ९वीं शताब्दी से गुजरात की राजधानी पव्वु हो जाने से व वहाँ की श्री वृद्धि होने से हजारों कुटुम्ब यहाँ से उधर जाने लगे थे और गुजरात के इतिहास में श्री माल व पोरवाड़ जैनों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था पर १४वीं शती तक श्रीमाल नगर के अच्छी अवस्था में विद्यमान होने का यहाँ के प्राप्त शिलालेखों व खण्डहरों से पता लगता है अतः इसे श्री माल पुराणनिर्माण की पूर्व सीमा मानना चाहिए।

श्रीमाल माहात्म्य में श्रीमाल का नाम भीनमाल १३वीं शती में श्रीहीन होने से पड़ा। प्रभावक चरित व प्रबन्ध-संग्रह के अनुसार श्रीमाल का भिन्नमाल नामकरण माघ कवि को निर्धनावस्था में देख कर भोजराज ने किया। पर वि० सं० ७३३ में रचित निशीर्थ चूर्णि (उल्लेख-रूप्यमयं जहाँ भिल्लमाले वम्भलातो) से सं० ८३५ की कुवलयमाला वि० सं० ९६२ के उपमितिभवप्रपंचकथा (तत्रेयं तेन कथा कविना निःशेष गुणगणाधारे, श्री भिल्लमालनगरेगदिताग्रमण्डलस्थेन) में इसका नाम भिल्लमाल ही मिलने से उपर्युक्त दोनों कारण काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं। भिल्लों की बस्ती होने से इसका नाम भिल्लमाल प्राचीन व प्रसिद्ध रहा होगा (देखिये—शोधपत्रिका भाग ३ अंक १ उदयपुर आश्विन २००८, राजस्थान का एक प्राचीन नगर श्रीमाल नगर)।

(११) माघ का भोज से सम्बन्ध

भोजप्रबंध, प्रबन्धचिन्तामणि, पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह, प्रभावकचरित तथा अन्यान्य बहुत सी कहानियों वा बातों से माघ कवि के भोज के साथ सम्पर्क का परिचय मिलता है। किसी कथा में माघ को भोज का बालमित्र बताया गया है तो किसी कथा में वह भोज राजा के दरबारी कवि के रूप में उपलब्ध होते हैं। कुछ भी हो इन सब ग्रन्थों में अथवा जनश्रुतियों में भोज का सम्बन्ध माघ से जो बताया गया है उसका कोई सत्य आधार अवश्य है। एक ग्रन्थ में कोई बात कल्पित अथवा निराधार भी हो किन्तु जब अधिकांश ग्रन्थों में माघ और भोज सम्बन्धी बातें मिलती हों तो फिर इस सम्बन्ध की सत्यता पर विचार करना ही होगा। जनश्रुतियों में माघ और भोज की बड़ी चर्चा है, जो पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही है। यह माना जा सकता है कि इस भोज-माघ संपर्क को अतिरंजना के साथ प्रस्तुत किया गया हो। अतिरंजना को निकाल देने पर भी भोज और माघ समकालीन थे इतना तो स्पष्ट ही है। प्रबन्धों का जब हम प्रामाण्य देंगे वहाँ पर पाठक देखेंगे कि स्वयं माघ-कवि भोज के लिए कुछ बातें लिख रहे हैं। भोज भी कई हो गये हैं और कालिदास नामधारी पंडित भी कई, अत: माघ को व कालिदास को भोज के साथ लाकर जब रख देते हैं या इनके समकालिक बताते हैं तब सुननेवालों को वह कुछ अटपटा सा लगता है। भोज-प्रबन्ध में अनेकों कवियों को भोज के दरबार में लाकर उपस्थित किया गया है उनमें कुछ तो अवश्य ही होंगे। इन कवियों के साथ वाले भोज चाहे उज्जैन नगरी के सातवीं शती वाले हों चाहे चित्तौड़ वाले भोज, चाहे प्रतिहार भोज तथा चाहे कोई अन्य भोज। माघ किस भोज के समय में थे इसे स्पष्ट करने के लिए भोज-चर्चा आवश्यक हो गयी है।

भोज इस नाम के अनेक राजाओं की स्थिति :—

भारतवर्ष में जैसे कितने ही कालिदास, व्यास तथा विक्रमादित्य हो चुके हैं वैसे ही भोज नाम वाले भी राजा अनेक हुए हैं। भोज नामक वंश भी चला आता है जिसमें कुछ राजा हुए हैं वे भी भोज नाम से प्रसिद्ध हैं। किन्हीं राजाओं ने उपाधि के रूप में भी अपने नाम के साथ में भोज जोड़ा है। ठीक उसी तरह जैसे कुछ राजा अपने आपको विक्रमादित्य की उपाधि से भूषित करते रहे हैं। इन प्रख्यात भोज राजाओं में कहा जाता है कि केवल तीन ही अत्यधिक प्रसिद्ध हुए हैं जो अपनी बुद्धि, बल तथा वैभव में अद्वितीय थे। प्रथम हम धारनगरी वाले भोज को लेंगे जो परमार (पंवार) वंश के शिरोमणि हुए हैं।

(क) परमार राजा भोज—परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, मालवचक्रवर्ती, त्रिभुवननारायण धारेश्वर परमार नरेश भोज मुंज (वाक्पति राज द्वितीय) के भ्रातृज थे। मुंज ने जीवितावस्था में ही भोज को गोद लिया था अत: मुंज की मृत्यु के पश्चात् भोज गद्दी पर बैठे। अल्पायु होने के कारण भोज के वास्तविक पिता सिन्धुराज मालवे

की गद्दी पर बैठे। सिन्धुराज युद्ध में जब मारे गये तब भोज ई० सन् १०१० में मालवा के सिंहासन पर बैठे। यह विद्वान् थे। विद्वानों के आश्रयदाता एवं प्रतापी शासक थे। दन्तकथाओं के आधार पर शकारि विक्रमादित्य के पश्चात् इन्हीं का नाम लिया जाता है। इनका राज्य हिमालय से मलयाचल तक और उदयाचल से अस्ताचल तक विस्तृत था—

"आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयाद्वा।
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन॥"

(एक्ग्रिाफिया इंडिया, भा० १ पृ० २३५)

यही बात उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में लिखी है। राजा भोज के चाचा मुंज ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और वहाँ के आहाड़ नामक गाँव को नष्ट किया था। तब से ही चित्तौड़ और मालव दोनों से मिला हुआ मेवाड़ का प्रदेश मालव नरेशों के अधिकार में था।

भोज बड़े धार्मिक थे। उनके बनाये हुए धर्म स्थानों में से एक शिव का मन्दिर है जो चित्तौड़ के किले में है। उसमें प्रतिष्ठित शिव की मूर्ति का नाम अपने नाम पर "भोज-स्वामी देव" रक्खा। यह बात चित्तौड़ से, प्राप्त हुए वि० सं० १३५८ के लेख में लिखे "श्री भोजस्वामी देव जयति" इस वाक्य से सिद्ध होती है। राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुवननारायण देव भी कहते हैं। चीरवासे में मिले वि० सं० १३३० के लेख में लिखा है—

श्री चित्रकूट दुर्गेरचित त्रिभुवन नारायणाख्यदेव गृहे।
श्री भोजराजरचित त्रिभुवननाराणाख्यदेव गृहे।
यो विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वशिवलिप्सुः॥

(विएना ओरियण्टल जर्नल, भा. २१ पृ. १४३)

आजकल यह मन्दिर अद्बद्जी (अद्भुत्जी) के नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराणा मौकल ने ई० सं० १४२८ में कराया अतः इसे मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं। भोपाल (भोजपुर) की बड़ी झील भी इस भोज की बनाई हुई है। राजा भोज शैव मतानुयायी था। मेरूतुंग ने अपनी प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ की कथा में लिखा है कि माघ कवि ने राजाभोज का घर आने पर सत्कार किया और उसने ऐसा करने में कोई बात उठा न रक्खी। कुछ दिन वहाँ रहकर राजा भोज जब लौटा तब इस अतिथिसत्कार की एवज में उसने अपने बनते हुए भोजस्वामी[1] के मन्दिर का पुण्य माघ को दिया।

---

[1] भोज ने चित्तोड़ के किले पर जो शिव मन्दिर बनाया था उस मन्दिर का नाम भोजस्वामी देव रक्खा जो त्रिभुवननारायण देव भी कहलाया और आज वही अद्बद्जा का मन्दिर या मोकलजी का मन्दिर जीर्णोद्धार करने से कहलाता है। माघ की कथा में भोजस्वामी के मन्दिर का पुण्य माघ को दिया: "स्वयं करिष्यमाणनव्य भोजस्वामी प्रसाद प्रदत्त पुण्यो मालव मण्डलं प्रति प्रतस्थे।" धाराधिपति इस भोज के समय में तो हमारे महाकवि माघ का होना असम्भव सा है। इसके कितने ही प्रमाण प्राप्त हो चुके अतः यह भोज दूसरे थे। भोजस्वामी के मन्दिर की कथा का माघ के साथ लगना एक रहस्योद्घाटन अवश्य है जो भोज नामधारी राजाओं पर विचार करते हुए किया जायगा।

इन धाराधिपति भोज की दान-सम्बन्धी कथायें जैसी इतस्तत: बिखरी पड़ी हैं वैसे ही इसकी विद्वद्गोष्ठियों की कहानियाँ भी लोक में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इसकी सभा भी विक्रमादित्य की सभा की ही भाँति थी। धारा नगरी में संस्कृत के पठन-पाठन के लिए भोजशाला (शारदा-सदन) नाम वाली पाठशाला बनवाई। स्वयं भोज ने विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। वह स्वयं एक अच्छे कवि तथा प्रसिद्ध साहित्य-समालोचक थे। विद्वानों के वह आश्रय-दाता थे। उनकी सभा में कवियों का जमघट सा लगा रहता था। कहते हैं वह स्वयं ऐसे कवि थे कि "सरस्वती कण्ठाभरण" पुस्तक का निर्माण उन्होंने ही किया जिसमें शिशुपालवध महाकाव्य के ११ वें सर्ग के ६४ वें श्लोक "कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्" उद्धृत किया है। आलोचक ऐसा मानते हैं कि माघ कवि राजा भोज के बाल्यकालीन मित्र थे और वे धार (उज्जेन) जिसको अवन्ति या मालवा भी कहते हैं, नगरी के शासक थे। परमार वंश में एक ही भोज हुए हैं। महाकवि माघ के शिशुपालवध को मान देने के लिए ही उक्त श्लोक कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्—स्व-रचित सरस्वती-कण्डाभरण में उद्घृत किया प्रतीत होता है। धारवाले राजा भोज को छोड़ कर राजा भोज कोई अन्य न थे। उक्त धार नगरी वाले राजा भोज का समय ख्रीष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग (१०६२ ई० देखिये सुबलमित्र का बंगलाभिधान) था। दसवीं शताब्दी के उत्पन्न हुए "कातन्त्रवृत्तिकार" श्री दुर्गसिंह भारवि और बाणभट्ट के उद्धरण तो देते हैं पर माघ का उद्धरण नहीं देते। वह देते भी कैसे, क्योंकि जो स्वयं पहिले उत्पन्न हुआ हो वह पीछे आने वालों का नाम कैसे लिख सकता है? नवम शताब्दी में होने वाले काश्मीरी पण्डित आनन्दवर्धनाचार्य के बनाए हुए ध्वन्यालोक ग्रन्थ के द्वितीयोद्योत में माघ-पद्य के उल्लेख को देखने से, (हो सकता है ध्वन्यालोक में वह श्लोक प्रक्षिप्त हो) ऐसी भी संभावना की जा सकती है। माघ कवि को आनन्दवर्धन से पहले का मानें अथवा जर्मनी के क्लाट पंडित के अनुसार दशम शताब्दी से भी पूर्व का मानें वा जर्मनी के जैकोबी पण्डित के अनुसार माघ को खष्टीय ६ठी शताब्दी के मध्यवर्ती भाग का मानना स्वीकार करलें तो भोजदेव का समय भी उसी ६ठी शताब्दी में मानना पड़ेगा। यदि ऐसा हो तो उसी भोजदेव ने अपने बनाये सरस्वती-कण्ठाभरण ग्रन्थ में सप्तम शताब्दी के अन्त में उत्पन्न हुए भवभूति के वीरचरित से और उत्तररामचरित से जो प्रमाण लिखे हैं वे किसी प्रकार भी संगत न होंगे। इससे माघ को भोज के समकाल १०६२ ई० अथवा ११वीं शताब्दी के अन्त में मानना ही उचित प्रतीत होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों से तो यही प्रतीत होता है कि इन आलोचकों का भी यही मत है कि हमारे महाकवि माघ भोज राजा के समय में हुए थे। राजा भोज के साथ जो माघ सम्बन्धी बातें हमने ऊपर दी हैं उनसे भी स्पष्ट है कि माघ राजा भोज के सम-सामयिक थे किन्तु यह तो स्पष्ट नहीं है कि सरस्वती-कण्ठाभरण के लेखक धार-नगरी के राजा ११वीं शताब्दी वाले भोज ही थे। यह कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि उनकी रचित सरस्वती-कण्ठाभरण में अमुक-अमुक श्लोक हैं अत: माघ उसी भोज के समय के थे। ये भोज माघ से इतने वर्षों पश्चात् हुए कि यदि शिशुपालवध काव्य का श्लोक अपनी रचित पुस्तक में रखदें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। पीछे आने वाला अपने पूर्वजों के ग्रन्थों की उदाहरण योग्य बातें अपने ग्रन्थ में रख सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि परमारकुल के भोज जब भारतभूमि पर शासन कर रहे थे उस समय उनके अधिकार में महेश्वर (महिष्मती) धारा, मांडु, उज्जयिनी, चन्द्रभागा, चित्तौड़, आबू, चन्द्रावती मंडु आदि राज्य सम्मलित थे। परमार कुल में भी तीन राजा भोज नामधारी हुए थे उनमें से प्रथम राजा भोज का समय वि. सं. ६३१ है, द्वितीय का वि. सं. ७२१ है और तृतीय का वि. सं. १०४४ से लेकर वि. सं. ११०० है। कहते हैं ये ही अन्तिम भोज मालवा के परमारों में प्रसिद्ध हुए हैं, अन्य दो भोजों के विषय में विद्वानों की धारणा है कि वे परमार नहीं थे अन्य वंशों से उनका सम्बन्ध था।

"भोज प्रबन्ध" में भोज के सम्बन्ध की कहानियों को एकत्र कर माघ, कालिदास भवभूति, बाण, दंडी, मयूरादि कवियों को लाकर लेखक ने जिस भाँति रक्खा है, हमारे मत में वे सब अविश्वसनीय नहीं कही जा सकती। उनमें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है "नह्यमूला जनश्रुति" के आधार पर वे सब सत्य हैं किन्तु बात केवल इतनी ही है कि भोज-प्रबन्ध में जिस विद्याव्यसनी, दानी, यशोलिप्सा वाले भोज का वर्णन है वह भिन्न-भिन्न युगों वाले भोज थे। जैसा पहले कहा गया है कि कई भोज हैं। भोज एक उपनाम या उपाधि भी रही है। जैसे विक्रमादित्य की पदवी को भाँति-भाँति के राजाओं ने वीरता के कार्य दिखला कर प्राप्त की, भोज-पदवी को भी इसी भाँति विभिन्न राजाओं ने धारण की हो। समस्त भोजों ने जो जो सुन्दर कार्य किए उन्हीं का वर्णन भोजप्रबन्ध में है। भोजप्रबन्ध का अर्थ यही तो हो सकता है कि भोज के सम्बन्ध में बातें बताने वाले प्रबन्ध जिसमें विद्यमान हों। बल्लाल कवि ने भोजप्रबन्ध में भोज के विषय की ही बातें लिखी हैं न कि धार नरेश भोज के कार्यों की प्रशंसा। यह बात अवश्य है कि उसमें धार नगरीवाले भोज राजा की बातें भी आ गयी हैं। जैसे आकाश में विभिन्न भाषा वाली बोलियाँ विद्यमान हैं किन्तु वैज्ञानिक उन समस्त का अन्वेषण करके जिस प्रकार स्वकार्योपयोगी बातों को एकत्र करके एक नई वस्तु को सामने ले आता है उसी भाँति इस भोज प्रबन्ध में भोज राजाओं की सुनी सुनाई बातों का ही एक ऐसा सम्मिश्रण बल्लाल कवि ने लाकर उपस्थित कर दिया है कि सहसा उन पर विश्वास ही नहीं किया जा सकता क्योंकि कहाँ कालिदास और कहाँ भारवि और मयूर। ये सब बातें परस्पर विरोधिनी सी लगती हैं किन्तु हमको एकत्र करना है और बतलाना है कि भोज-प्रबन्ध को यद्यपि ऐतिहासिक रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता किन्तु उसमें जो कुछ भी लिखा है वह सत्य नहीं है तो असत्य भी नहीं कहा जा सकता। कुछ तथ्य उसमें अवश्य हैं। भोजप्रबन्ध की भाँति मेरुतुंगाचार्य ने अपने निबन्ध में "भोज और माघ"*का निर्देश किया है। प्रबन्धचिन्तामणि और प्रभावकचरित के लेखकों पर जिन्होंने भोज और माघ के सम्बन्ध में थोड़ा सा लिखा है, सहसा अविश्वास नहीं किया जा सकता। प्राचीन पंडित विद्वान् होने के साथ-साथ सत्यवक्ता अवश्य थे। उनके चरित्र ही महान थे। वे बहुश्रुत विज्ञ थे। अत: जो कुछ उन्होंने लिखा है उस सबको उस समय की जनश्रुति का आधार पाकर अतीव सोच समझ के साथ लिखा है। फिर माघ को अभी इतने वर्ष भी तो नहीं हुए थे कि उन्हें सर्वथा भुला दिया जाता। राणा प्रताप और शिवाजी की गाथायें आज भी मौजूद हैं। बताइये आज से कितने वर्ष हुए हैं? उतने वर्ष तो माघ को दिवंगत हुए भी इन लेखकों के समय में नहीं हुए। फिर प्राचीन परिपाटी कुछ बातों को कण्ठस्थ रखने की सी थी और कहानियों को

सुनाने का अधिक प्रचार था। अतः भोज के साथ माघ का सम्बन्ध अवश्य था किन्तु कौन से भोज का था यही बात हमको देखनी है।

धारनगरी वाले भोज का सम्बन्ध माघ के साथ निम्नलिखित कारणों से नहीं स्थापित हो सकता :

(१) सोमदेव अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ ई०) में "तथा उर्वभारवी, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेन्ठ, गुणाढ्य, व्यास, बोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ, राजशेखरादि, महाकवि काव्येषु तत्र तत्रावसरे भरतप्रणीते काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषु तेषूपाख्यानेषु च कथं तद्विषया महती प्रसिद्धिः"

सोमदेव का—यशस्तिलक आ० ४, पृ० ११३

इस भाँति माघ का उल्लेख करते हैं।

(२) श्री आनन्दवर्धन (८५० ई०) में अपने ध्वन्यालोक में शिशुपालवध के दो श्लोकों (सर्ग तृतीय, श्लोक ५३ तथा सर्ग पंचम, श्लोक २६) को उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं। श्लोक ये हैं—

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्द्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥ (स० ३. ५३)

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाभि
राकर्णपूर्णनयनेषुहतेक्षणश्रीः ॥ (स० ५. २६)

(३) राष्ट्रकूटों के राजा नृपतुंग (सन् ८१४ ई०) में अपनी कन्नड़ भाषा में जो ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' लिखा है उसमें माघ को कालिदास का समकालीन स्वीकार किया है। इससे ज्ञात होता है कि नृपतुंग के समय नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माघ ने साहित्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। नृपतुंग ८१४ से ८८० ई० तक विद्यमान थे। ये ही अमोघवर्ष प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(४) माघकवि शिशुपालवध महाकाव्य के बीसवें सर्ग के अन्त में कविवंश वर्णनम में लिखते हैं कि उनके पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मल (वर्मलात) थे। राजा वर्मलात का एक शिलालेख बसन्तगढ़ (सिरोही राज्य में) से प्राप्त हुआ है जिसका वर्णन पहले दिया जा चुका है। वह शिलालेख, जैसा पहले स्थिर किया जा चुका है शक संवत ६८२ का है अतः ईस्वी सन् ७६० का हुआ। सुप्रभदेव, जो वर्मलात के प्रधान सचिव थे, सन् ७६० ई० के समीप अवश्य विद्यमान थे इससे उनके पुत्र दत्तक सन् ८०० ई० के लगभग विद्यमान होने चाहिएं। सन् ७६० तक वर्मल युवावस्था को पार कर रहे होंगे और जब वे वृद्ध होंगे तब सुप्रभदेव मंत्री होंगे। सुप्रभदेव सन् ७८० तक होंगे तब माघ शैशवावस्था में होंगे।

इस भाँति बहिरंग प्रमाणों से तो माघ को ११वीं शताब्दी में किसी भी अवस्था में नहीं रखा जा सकता, फिर धारा नगरी के राजा भोज के समय में कैसे रखा जा सकता है। धार-नगरी के राजा भोज के समय में महाकवि माघ का होना नितान्त असंभव सा

है। उपरोक्त प्रमाणों की साक्षी में श्री विद्याधर जी विद्यालंकार ने शिशुपालवध काव्य की टीका की भूमिका में धारानगरी के भोज के साथ माघ का जो संबंध स्थापित किया है वह, और धर्मयुग पत्रिका के नवम्बर सन् १९५४ के अंक में श्री मदन गोपाल ने "महाकवि माघ की दानवीरता" इस लेख में धार नगरी के ११वीं शताब्दी के भोज को जो लाकर रक्खा है वह दोनों ही असंगत लगते हैं। श्री मदन गोपाल के लेख में तो माघ को भोज के समक्ष लाकर उपस्थित उस समय किया गया है जब नगरी में उत्सव मनाया जा रहा था, कालिदासादि कवि विद्यमान थे। कवि ने श्लोक लिखकर उसे किसी व्यक्ति द्वारा भोज के निकट प्रेषित कराया। लेखक ने उस लेख में यह भी लिखा है कि माघ के कितने ही बच्चे थे जो दरिद्रावस्था में मौत के शिकार होने ही वाले थे किन्तु अपनी स्त्री द्वारा माघ धार जाने के लिए प्रेरित किये गये। अन्तिम समय में स्त्री थी और उनकी एक कन्या जिस को भोज ने धन दिया। ये सब बातें तथ्यों से मेल नहीं खातीं।

(ख) भोज (कर्ण)—कहा जाता है कि बापा रावल ने चित्तौड़ पर विजय पा लेने के पश्चात् सौराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया और उधर बनराज चावड़ा की बहिन के साथ विवाह किया। इस रानी से अपराजित का जन्म हुआ। अपराजित अपराजित ही रहे और कुछ ही समय राज्य किया। इनके दो पुत्र हुए ज्येष्ठ खलभोज और कनिष्ठ नन्दकुमार। खलभोज युद्धप्रिय थे। वह अपराजित के पश्चात् चित्तौड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठे हैं। इनकी वीरता की बातें नागदा की घाटी के शिलालेख में लिखी हुई हैं। खल-भोज ही कर्ण के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने एक झील बनाई और एकलिंगजी के मन्दिर का निर्माण कराया जहाँ पर हारीत ऋषि का आश्रम था। उन्होंने ७८६ ई० से ८०९ ई० तक राज्य किया। टाड ने इनके विषय में केवल इतना ही लिखा है किन्तु इतना भी हमारे लिए पर्याप्त है।

उपर्युक्त लेख से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चित्तौड़ के यह भोज बड़े दान-वीर थे इसीलिए ये कर्ण के नाम से ही पुकारे जाते होंगे जैसे माघ के पिता सबको सदा आश्रय देते रहने से सदाश्रय नामवाले ही कहलाये। एकलिंग के मंदिर जो अद्बद्जी का मंदिर और भोजस्वामीदेव का मंदिर भी कहलाता है तथा सूर्य का अति प्राचीन मंदिर जो आज कालिका का कहलाता है कदाचित् इन्हीं भोज का बनाया हुआ वह मंदिर हो। यदि ऐसा है तो फिर इन्हीं चित्तौड़ वाले भोज के साथ माघ का स्नेहभाव हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। उसके बदले में भोज के चीरवासे के शिलालेख का वर्णन किया जा चुका है। इनका राज्य भी मालवा की ओर अवश्य फैला हुआ था। जिस समय ये थे उस समय भोज प्रतिहार सिंहासनासीन न थे। हरिभद्र सूरि कर्णभोज के पिता के पुरोहित होंगे। माघ और चित्तौड़ के भोज में अवश्य मैत्री-भाव रहा होगा किन्तु मिहिर भोज के वह आश्रित रहे होंगे। जो बातें माघ विषयक प्रबन्धों में आई हैं वे सब मिथ्या नहीं हैं उनमें कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है। संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखक श्री सीताराम जयराम जोशी लिखते हैं कि 'द्वितीय भोज ६५० से ६७५ ई० तक चित्तौड़ का राज्य कर रहा था और माघ उन्हीं के काल के थे।' यह सब असंभव है। बापा ७३९ ई० में चित्तौड़ आये। पहले कोई भोज न था।

(ग) मिहिरभोज का परिचय :

मिहिरभोज के पूर्व कन्नौज के शासक :—मिहिर भोज का वृत्तान्त लिखने के पूर्व पाठकों के लिए परिचयात्मक रूप से भोज के पूर्व कन्नौज के कौन-कौन शासक हुए इसका भी थोड़ा बहुत चित्र उपस्थित कर देना यहाँ पर समीचीन होगा कारण इसका यह है कि आज भारत की राजधानी जिस भाँति दिल्ली बनी हुई है प्रतिहार गुर्जरों के समय में कन्नौज भी इसी भाँति उत्तरी भारत की राजधानी बन चुका था। कन्नौज का महत्व इस समय में वैसा ही था जैसा मौर्यों और गुप्तों के काल में पाटलिपुत्र का तथा मुसलमानों के समय में दिल्ली का।

आठवीं शताब्दी के आरंभ में यशोवर्म्मन् नामक एक प्रतापी शासक का उल्लेख हम को उपलब्ध होता है जिसमें ७३० से ७४० ई० अथवा ७२५ ई० से ७५२ई० तक यहाँ के सम्राट् के रूप में शासन किया। **वाक्पतिराज को गौडवहो** (गौड बंगाल के राजा का वध) यशोवर्मन् ग्रन्थ में दिया हुआ है कि वह पराजित राजा के दरबारी कवि वाक्पतिराज को अपने साथ ही ले आया और अपने यहाँ उसको कविराज की उपाधि से विभूषित किया। यह गौडवहो यशोवर्मन् की मृत्यु के उपरान्त लिखा गया था। वाक्पतिराज ने लिखा है कि काश्मीर नरेश ललितादित्य और दक्षिण के चालुक्यों से इन्हें हार खानी पड़ी। भवभूति भी इनके शासन-काल में थे। भवभूति और वाक्पतिराज दोनों ही यशोवर्मन् के दरबारी कवि रहे थे। यशोवर्मन् मौखरि या मौर्य के नाम से भी प्रसिद्ध है किन्तु यह किस वंश का था यह अभी तक अज्ञात है। कुछ इसको मालवा का यशोवर्मन कहते हैं। चीन के साथ सन् ७३१ में इसका राजनीतिक संबंध था। नालन्द के बिना तिथि संवत् वाले शिलालेख में R. Sathianathaier भारत के इतिहास प्रथम भाग में यशोवर्मन कन्नौज पृष्ठ ३२३ पर लिखते हैं 'The guardian of the world shining like the sun, with his foot on the head of all kings.' ललितादित्य का नाती जयापीड़ इस वंश का दूसरा प्रतापी राजा हुआ जिसने कन्नौज नरेश वज्रायुध को हराया। जयापीड़ के समय में **उद्भट, वामन, दामोदरगुप्त** आदि विद्वान् हुए।

बंगाल में पालवंश का राज्य था। हर्ष के पश्चात् बंगाल पर आसाम, कन्नौज, और काश्मीर के राजाओं में आक्रमण हुए। इसी अराजकता के समय में गोपाल नामक व्यक्ति ने बंगाल में अपने वंश का राज्य स्थापित किया जो ७६५ से ७७० ई० तक माना जाता है। इसी गोपाल के उत्तराधिकारी प्रतापी राजा धर्मपाल ने कन्नौज के वज्रायुध के पश्चात् होनेवाले **इन्द्रायुध को ८१० में गद्दी से उतार दिया और चक्रायुध को शासक बनाया। यह धर्मपाल बौद्ध था।**

नागभट प्रथम (७२५ ई० से ७४० ई० तक) प्रतिहार वंश के जन्मदाता हुए हैं। इन्होंने **सिंध के अरबों से मुकाबला किया। यह नागभट प्रथम भीनमाल का राजा था।** कन्नौज तक इस राजा का राज्य था। ऐसा कहा जाता है कि इसकी राजधानी मारवाड़ (राजस्थान) में मंडौर थी। राठोड़ों के पूर्व मंडौर मारवाड़ की राजधानी था। भीनमाल और मंडोर कुछ भी हो मारवाड़ में हैं और **मारवाड़ को पहले गुजरात कहा जाता था। भीनमाल में इस प्रतिहार वंश के पूर्व चापवंश के व्याघ्रमुख का राजा था। (देखिये हिस्ट्री**

ऑफ मैडिकल इंडिया, वी. १. पृ. ३५७ वाई सी. वी. वैद्या) इसलिए यह संभव नहीं कि नागभट प्रथम भीनमाल के राजा उस समय हो चुके थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जब व्याघ्रमुख सन् ६२८ (शक सं. ५५०) में भीनमाल में राज्य कर रहे थे तब कदाचित् नागभट प्रथम कहीं अन्यत्र राज्य कार्य या सैनिक कार्य में व्यस्त होंगे या इस रूप में उनका अस्तित्व ही न होगा। वैद्य ने लिखा है कि नागभट भीनमाल में उस समय शासक थे। भीनमाल उसकी राजधानी थी। अस्तु, नागभट के पश्चात् उसका भतीजा ककुत्स्थ (७४० ई० से ७५५ ई०) राजा हुआ। उसका भाई देवराज फिर गद्दी पर बैठा और देवराज के पश्चात् (७५५ से ७७० ई०) वत्सराज उसका पुत्र गद्दी पर बैठा (७७० ई०–८०० ई०)। वत्सराज बड़ा पराक्रमी था। इसने कन्नौज के राजा को पराजित किया। कन्नौज का वर्मवंश का साम्राज्य वत्सराज मंडोर वाले के हाथ से सदा के लिए छीन लिया गया। कन्नौज में उस समय **इन्द्रायुध** का ही राज्य था जैसाकि शिलालेख के श्लोक से प्रकट है—

शाकेष्वब्द शतेषु सप्तसुदिशं पंचोत्तरेषूत्तराम्, पातीन्द्रायुधनाम्निकृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां **श्रीमदवन्तिभूभृतिनृपे** वत्सादि राजेऽपराम्, सौराणामधिमण्डले जययुते, वीरेवराहेऽवति

शक संवत् ७०३ में जब उत्तर में इन्द्रायुध राजा था और श्री कृष्ण का पुत्र (गोविंद० द्वि०) श्रीबल्लभ दक्षिण में राज्य कर रहा था, अवन्ति तथा पूर्व दिशा में राजा वत्सराज और पश्चिम में उस समय सौराष्ट्र की सीमा की रक्षा जयवराह कर रहा था।

बंगाल के गोपाल को भी इसी वत्सराज ने पराजित किया था। गौड और बंग नाम वाले क्षेत्रों (देशों) को उसने छीन लिया। किन्तु राष्ट्रकूट के राजा ध्रुव ने उससे छीन लिया और फिर नागभट्ट द्वितीय ने, जो वत्सराज का पुत्र था वापस उन्हें छीना और चक्रयुध को कन्नौज की गद्दी से ८१६ ई० के लगभग हटा कर दिग्विजय करते हुए भीनमाल के उस नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज को गुर्जर प्रतिहारों की राजधानी बना दिया। इसके पश्चात् रामभद्र (८३४ से ८४० ई०) गद्दी पर बैठा। तत्पश्चात् प्रतिहारवंश के सुप्रसिद्ध, महान् शक्तिशाली सम्राट् मिहिर भोज सम्राट् हुए।

मिहिर भोज (८३५ से ८८५ ई०)

आदिवराह तथा प्रभास के उपनामों को धारण करने वाले परम भागवत भोज जब राज्य कर रहे थे उस समय उनके राज्य की सीमा उत्तर प्रदेश, पूर्वी सतलज का पंजाब प्रान्त, उज्जैन, सम्पूर्ण राजस्थान, ग्वालियर, मालवा, गुजरात और काठियावाड़ थी। बुंदेलखंड के चंदेल उनके सामन्त थे। उनके शासक और राज्य की सीमा को देखते हुए हम को सहसा हर्ष तथा गुप्तकालीन साम्राज्य का स्मरण हो आता है। भोज के शिलालेखों में बहुत सी बातें मिलती हैं। इसके समय के चाँदी के बहुत से सिक्के पाये जाते हैं। **भोज विष्णु या सूर्य का उपासक था।** इसकी पताका में वराह का चिह्न था। भोजपुरा ग्राम की नींव इसी ने डाली। अरब यात्री सुलेमान (८५१ ई.) का कहना है कि गुर्जर के नृप भोज के

पास असंख्य सेना थी। भारत के और राजाओं के पास इतनी अधिक और शक्तिशाली घुड़सवार सेना न थी जितनी भोज के पास थी। ऊँट भी अनगिनत थे। इसके पास पर्याप्त धन था। उसी की अधीनता में भारत लुटेरों से जितना बचता रहा भारत और किसी राजा की अधीनता में नहीं बचा। कन्नौज जब आयुध नामधारी भण्डि के वंशज वर्माओं के हाथ में था तब गज-सेना अधिक थी किन्तु प्रतिहारों के हाथ में आते ही ऊँटों और घोड़ों की सेना बढ़ी क्योंकि प्रतिहार मारवाड़ (गुजरात) से आये थे जो सिंध के रेगिस्तान के समीप ही है। संस्कृत साहित्य का विद्वान् राजशेखर जिसने माघ महाकवि के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं राजा भोज के पुत्र महेन्द्रपाल का गुरु था और महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल का भी। गुणभद्र जो जैन लेखक था वह इसी भोज का समसामयिक है क्योंकि राष्ट्रकूट मलदेव के वंशज अमोघवर्ष के (८१४ से ८८० ई.) प्रथम जिन्होंने कविराजमार्ग लिखा है उत्तराधिकारी कृष्णाद्वितीय (८८० से ९१२ ई.) के साथ भोज का युद्ध हुआ है। इस युद्ध में कोई विशेष बात दोनों ओर से नहीं हुई। उत्तरी भारत में भोज जब उन्नति पर था अमोघवर्ष प्रथम (८१४–८८० ई.) अपनी धार्मिक एवं शान्त प्रवृत्ति में रहते हुए जैनधर्म को आश्रय दे रहे थे। इन्हीं अमोघवर्ष प्रथम ने (नृपतुंग) कन्नड़ भाषा में लिखे हुए अपने कविराजमार्ग में महाकवि माघ को कालीदास का समकक्ष स्वीकार किया है। अमोघवर्ष के धर्मगुरु जिनसेन थे। राजा भोज के पाँच शिलालेख मिलते हैं (८४४ से ८८३ई०)। उसके चाँदी और ताम्रपत्र के एक ओर महादिवराह है तो दूसरी ओर धनुष (चाप) है। कहते हैं यह भी नागभट्ट द्वितीय की भाँति भगवती का बड़ा भक्त था। राजा भोज के पुत्र महीपाल का ताम्रपत्र काठियावाड़ के हड्डाला नामक ग्राम में मिला है (९१४ ई) जिससे पता चलता है कि धरणीवराह (९०० ई०) वडवान के चापवंशीय राजा महीपाल के सामन्त थे। पहले चापवंश का राज्य भीनमाल में शक्तिशाली था। जब अरब के मुसलमानों का आक्रमण ७३२–७४० ई. के आस-पास हुआ उस समय भीनमाल के चापों ने वीरता प्रदर्शित की। इन्हीं चापों के पश्चात् प्रतिहार भीनमाल में आये। इतिहास बतलाता है कि वर्मलात राजा के पश्चात् जो माघ कवि के पितामह के आश्रयदाता थे, चापवंशीय व्याघ्रमुख शासक हुए। किन्तु यह बात असंगत प्रतीत हो रही है क्योंकि व्याघ्रमुख के विषय में ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी लिखते हैं कि शक संवत् ५५० (अर्थात् सन् ६२८ ई०) में उनका ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त राजा भीनमाल के व्याघ्रमुख के शासन काल में लिखा गया। वर्मलात का लेख ६८२शक संवत् का है जिसको डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार सब ही विक्रमी संवत् मान कर सन् ६२५ ई० का बताते हैं। हूवेनसांग जब भारत में आया उस समय इस भीनमाल पर क्षत्रिय राजा राज्य कर रहा था जिसकी आयु २० वर्ष की थी। हो सकता है वह व्याघ्रमुख का पुत्र हो। ताम्रपत्र पर लिखा हुआ है कि चापोत्कट पर मुसमानों का आक्रमण हुआ। ऊपर बता दिया गया है कि राजा भोज के ताम्रपत्र पर भी एक ओर चाप है। चाप शिवजी के धनुष का चिह्न है। चापोत्कटवंशी शिवजी के उपासक हों अथवा उत्कट चापधारी हों। कुछ भी हो नाभट्ट प्रतिहार ने भीनमाल पर राज्य किया। राजा भोज के समय में भीनमाल और कन्नौज प्रमुख नगर थे। भोज के प्रपौत्र द्वितीय तक भीनमाल शक्तिशाली हर पर जब महेन्द्रपाल द्वितीय राज्य कर रहा था, गुजरात मूलराज सोलंकी के राज्यकाल

में स्वतंत्र हो गया। इसके पश्चात् ही (६५३ ई०) भीमसेन के शासन-काल में १८,००० गूजर भीनमाल से चल दिये। श्री ने उस देश को त्याग दिया जो भीनमाल श्रीमाल कहलाता था अब भिन्नमाल हो गया।

(घ) भोज का चित्तौड़गढ़ दुर्ग पर अधिकार—

"उदयपुर राज्य का इतिहास पहली जिल्द में" महामहोपाध्याय डा० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा, राजप्रशस्ति महाकाव्य, सामोली गाँव का वि. सं. ७०३ (ई. स. ६४६) के शिलालेख जयपुर राज्य चाकसू नामक प्राचीन नगर से ११ वीं शताब्दी के आस-पास की लिपि का एक बड़ा शिलालेख, अजमेर जिले के खरवा ठिकाने के अधीनस्थ नासूण गाँव से बि. सं. ८८७ (ई. स. ८३०) वैशाख वदी २ के एक खंडित शिलालेख कूडां की (कुंडेश्वर के मन्दिर की) वि. सं. ७१८ की प्रशस्ति, वीर विनोद, नैणसी की ख्यात, चित्तौड़ के किले के निकट पूठौली गाँव के समीप मानसरोवर तालाब जो मौरी (मौर्यवंशी) राजा मान का बनाया हुआ बतलाते हैं उस पर वि. सं. ७१३ (ई. सं. ७१३) का राजा मान का शिलालेख के आधार पर लिखते हुए कहते हैं कि चित्तौड़ का दुर्ग वि. सं. ७७० (ई. सं. ७१३) तक तो मान मौरी के अधिकार में था। तत्पश्चात् बापा नाम धारी ने चित्तौड़ का राज्य मान मोरी से ले लिया। कर्नल टाड ने वि. सं. ७८४ (ई. स. ७२७) में बापा का चित्तौड़ लेना स्वीकार किया है। राज-प्रशस्ति का मनुराज राजा मान का ही सूचक है। राज प्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३ का श्लोक १८ नीचे देखिये—

ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरीजातीयभूपं मनुराज-संज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रित चित्रकूटं चक्रेऽत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती॥

श्री ओझा लिखते हैं कि कन्नौज के राजा हर्ष के समय में मेवाड़ का शासन राजा शीलादित्य कर रहा था (देखिये सामोली का लेख)। गुहिल श्री शीलादित्य का पांचवा पूर्व पुरुष था गुहिल (गुहदत्त), भोज, महेन्द्र, नाग, शील (शीलादित्य) अपराजित, महेन्द्र (दूसरा) और कालभोज (बापा)। हूण राजा मिहिरकुल के पश्चात् गुहिल के ही सिक्के प्राप्त होते हैं। दुःख है कि गुहिल के पीछे शील का ही वर्णन सामोली के शिलालेख में मिलता है। सामोली से थोड़े ही मील दूर सिरोही राज्य का वट-नगर (बसन्तपुर या बसन्तगढ़) है। शील के पश्चात् अपराजित महान पराक्रमी नृप हुआ (कुंडेश्वर का लेख देखिये)। इसके पीछे कालमोज (बापा) का नाम अधिक सुनाई देता है। सोने के सिक्के भी बापा के प्राप्त हुए हैं और कई शिलालेख भी। बप्प, बोप्प, बप्पक, बप्प, बप्पाक, बाप्प, और बापा नाम मिले हैं। इसका वास्तविक नाम काल भोज था। ले०* यमुनादत्त षट् शास्त्री, शाहपुरा-राज, पिता स्वरूप वा बीज बोने वाले को बापा कहा है। सन् ८८४ ई. में इसी ने चित्तौड़ दुर्ग मान मोरी से लिया। एकलिंग माहात्म्य में बापा के पुत्र का नाम भोज और भोज का खुमाण मिलता है। नैणसी की ख्यात में बापा के पुत्र का नाम खुमाण दिया है। आटपुर (आहाड) की प्रशस्ति में कालभोज के पुत्र का नाम खुमाण दिया है। श्री ओझा दृढ़ विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं कि काल-भोज ही बापा के नाम से प्रसिद्ध था। वह

---

*यश्चैकलिंगकृपया गुहिलाऽन्वयस्य, विस्तारवीजमवपत्स बभूव वापः।
चित्ताद्रिमेव विजयान्निजराजधानीं, संस्थाप्य यो विजयमाप समासु दिक्षु॥८॥ वीरतरंग रंग,

सन् ७५३ ई० में था। कर्नल टाड सन् ७१३ में बापा का जन्म मानते हैं। श्री ओझा बापा के पश्चात् खुम्माण फिर भट्ट, भर्तृभट् (भर्तृभट्ट), सिंह, खुम्माण द्वितीय, खुमाण तृतीय, भर्तृभट (दूसरा) अल्लट, नरवाहन, शालिवाहन, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद आदि का होना लिखते हैं किन्तु श्री सी० बी० वैद्य ने हिस्ट्री ऑफ मेडीकल हिन्दू इंडिया जिल्द दूसरा भाग (राजपूत) में लिखते हैं कि बापा के पश्चात् गुहिल फिर भोज, शील, कालभोज, भर्तृभट्ट, सिंह, महायक, खुम्माण आदि हुए। वैद्य महाशय का कहना है कि बापा जन्म नाम था और संभव था कि वंश के नाम से गुहादित्य* भी कहलाया। वलभी वंश जो नागदा में शासन कर रहा था बापा उसी वंश से अवश्य था श्री ओझा इस बात के लिए निषेध करते हैं किन्तु वैद्य महाशय का कहना है कि आदित्य शब्द अन्त में लगाना वलभी वंश से आया और १४ पीढ़ी तक यह चल कर बापा पर समाप्त हुआ। वलभी के त्याग के पश्चात् आदित्य नामवाले वलभी के नृप नागदा की ओर हुए। बापा का जन्म सन् ७०० या ७१३ में हुआ और उन्होंने चित्तौड़ का राज्य सन् ७३० में पाया तथा सन् ७५० तक राज्य किया और फिर संन्यास ले लिया। उसके पश्चात् कालभोज नामधारी अधिक सुप्रसिद्ध हुआ जो चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। कर्नल टाड के अनुसार बापा के पश्चात् अपराजित फिर खलभोज, खुम्माण, भर्तृभट्ट, सिंह आदि चित्तौड़ के शासक हुए। श्री वैद्य के अनुसार कालभोज सन् ८३३ ई० तक या उससे भी अधिक आ जाते हैं जबकि वे खुम्माण का समय अटपुरा शिलालेखानुसार सन् ८३६ बता रहे हैं। अटपुरा में कालभोज के बाद ही खुम्माण नाम आया है। श्री टाड के अनुसार भी जो खलभोज नामधारी है वह खुम्माण के ही पूर्व है। खुम्माण टाड के मतानुसार सन् ८३३ ई० के हैं अतः खलभोज (कालभोज) ८०० के लगभग चित्तौड़ के आसपास थे जिस समय मिहिरभोज बाल्यावस्था में कालयापन कर रहे होंगे। खलभोज का जो कुछ वर्णन मिला है उसे हमने मिहिरभोज पर लिखने के पश्चात् ही लिख दिया है। खलभोज नामधारी राजा चित्तौड़ के शासन पर थे तत्पश्चात् परमार भोज हुए जो धाराधिपति थे और वे कुछ ही समय तक रहे। श्री ओझा उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखते हैं (पृ० १३१) कि मुंज ने आहाड़ को तोड़ा और चित्तौड़ पर अपना अधिकार जमाया। मुंज का उत्तराधिकारी और छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र भोज चित्तौड़ के किले में रहा करता था जिसने 'त्रिभुवन नारायण' इस उपनाम की स्मृति में त्रिभुवननारायण नामक शिव का मन्दिर भी बनवाया था जो आज मोकल (समिद्धेश्वरजी) का मन्दिर कहलाता है।

निष्कर्ष निकला कि चित्तौड़ के किसी भी भोज नामधारी या उपनामधारी वह चाहे कालभोज हो चाहे खलभोज हो, राजा भोज के समय में माघ अवश्य थे। प्रतिहार भोज तथा चित्तौड़* के भोज के साथ इनका संपर्क था।

---

* विशेष के लिए लेखक के पितृव्य राजगुरु यमुना दत्त षट्शास्त्री रचित 'वीरतरङ्ग रङ्ग' काव्य के ६, ७ श्लोक को देखें।

* तत्राभवद्विविधि-नीति-गुण-प्रयोगे, वाचस्पतेरपि सुविस्मयमादधानः।
चित्राङ्गदः शुचि-चरित्र-पवित्र-कीर्तिः शुक्लीकृताखिलधरावलयोऽवनीशः ॥६॥
उत्तुङ्गभूमिधरमूर्द्धनि वैरिवर्ग-वित्रासनं दृढ़तमं विनिवेश्य दुर्गम्।
चित्रांगद क्षितिपतिर्निजनामधेयमुद्राङ्कितं तदकरोत्किल चित्रकूटम् ॥१०॥
'वीरभूमि' शोभालाल शास्त्री

(ङ) मिहिरभोज और माघ—

मिहिरभोज (८३५-८८५ ई०) के विषय में जो कुछ हमने लिखा है उससे माघ का सम्बन्ध कहाँ तक है इसी को हम निम्न पंक्तियों में स्पष्ट करेंगे—

(१) मिहिरभोज ने अपना उपनाम आदिवराह भी रक्खा था यह बात पाठक मिहिरभोज पर लिखी हुई परिचयात्मक टिप्पणी से जान गये होंगे। यही नहीं उसकी पताका में वराह का चिह्न भी रहता था। उसके शासन काल के (८३५-८८५ ई०) पांच शिलालेख प्राप्त हुए हैं और अनेक चांदी, सोने के सिक्के तथा ताम्रपत्र भी मिलते हैं। सिक्कों पर एक ओर महादिवराह है तो दूसरी ओर धनुष (चाप) का चिह्न है।

माघ कवि ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध में स्थान-स्थान पर बराह, आदिबराह महावराह शब्दों का प्रयोग तो श्लोकों में किया ही है, जैसा अधोलिखित श्लोकों से ज्ञात हो जायगा, किन्तु एक श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया है कि सब प्रकार से सुयोग्य आप जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा है जो क्षत्रिय राजाओं के स्वरूप के अनुरूप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है (अर्थात् कोई नहीं) भला इस धरती को ऊपर उठाने की क्षमता श्री वराह को छोड़कर अन्य किस पुरुष में है? (अर्थात् किसी में नहीं) देखिये वह श्लोक यह है—१४वें सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा कहे गये दसवें श्लोक का उत्तर श्रीकृष्ण के मुख से महाकवि माघ इस रूप में दिला रहे हैं :—

"तत्सुराज्ञि भवति स्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता॥"

उपर्युक्त श्लोक से संकेत मिलता है कि माघ श्रीवराह नामधारी किसी नृप के आश्रय में रहे होंगे और वह नृप भी युधिष्ठिर की ही भाँति, दानी, धार्मिक, गुणग्राही एवं सम्राट् की पदवी को सुशोभित कर रहा होगा। धरती को ऊपर उठाने की क्षमता पराक्रमी यशस्वी एवं सब भाँति से सुयोग्य पुरुष में ही होती है। मिहिरभोज का पृथक् रूप में परिचय देते समय हमने प्रदर्शित कर दिया था कि उसकी राज्य सीमा कहाँ तक थी, वह कितना पराक्रमी था तथा भगवती का उपासक होने के साथ-साथ विष्णु और सूर्य का भी परमभक्त था। शिलालेखों से तो उसके दान का परिचय प्राप्त होता है किन्तु सिक्कों के एक ओर के चाप-चिह्न से उसके पराक्रमी होने का अथवा चापवंश (प्रतिहार की एक शाखा) का होने का पता लगता है। यदि माघ कवि बराह के समय में न होते तो अपने श्लोकों में जैसे सर्ग के अन्त में श्री शब्द को किसी भी रूप में ला रक्खा है उसी भांति वराह शब्द को भी लाकर न घसीटते। देखिये—

(१) प्रथम सर्ग	श्लोक	३३ या ३४	**हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।**
(२) चौदहवां सर्ग	श्लोक	१४	**श्री वराहमपहाय योग्यता।**
(३] ”	श्लोक	४३	**आद्यकोलतुलितां।**
(४) ”	श्लोक	७१	**स्थूल नासिकवपुर्वसुन्धराम्।**
(५) ”	श्लोक	८६	**यः कोलतां बिभ्रत् दंष्ट्राम्।**
(६) पन्द्रहवां सर्ग	श्लोक	५	**प्रलयार्णवोत्थित इवादिशूकरः**

(७)	अठारहवां सर्ग	श्लोक	२५	मण्डलं गोर्वराह ।
(८)	"	श्लोक	६८	कौलकेलिकिल: ।
(९)	उन्नीसवां सर्ग	श्लोक	११६	समुद्धृतरसो (वराह अवतारधारण करने से पृथ्वी का भार उतारा)
(१०)	बीसवां सर्ग	श्लोक	३३	सलिलाद्रवराहदेह ।

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि माघ कवि भोज राजा के समकालीन थे जैसा भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि और प्रभावकचरित में भोज और माघ की चर्चा करते हुए बताया है। वे बातें कहां तक सत्य से सम्बन्ध रखती हैं अभी इस दिशा की ओर हमको नहीं जाना है किन्तु हमको तो पाठकों के समक्ष यह लाकर रखना है कि भोजराज और माघ कवि के परस्पर चाहे मैत्रीभाव का सम्बन्ध हो चाहे आश्रयदाता और आश्रित का किन्तु सम्बन्ध अवश्य था अन्यथा माघ कवि इस भाँति स्थान स्थान पर भोज उपनाम वराह का अपने महाकाव्य में उल्लेख नहीं करते। आनन्दवर्धन (८४० ई०) ने अपने ध्वन्यालोक में शिशुपालवध के दो श्लोकों को उद्धृत किया है।

अमोघवर्ष प्रथम (नृपतुंग) ने (८१४–८८० ई०) ने अपनी **कविराजमार्ग** ग्रन्थ रचना में माघ को कालिदास का समकक्ष कहा है।

इन उपर्युक्त दो भाँति के विभिन्न वर्णनों से इतना तो ज्ञात होता ही है कि माघ इस समय के पूर्व के ही हो सकते हैं पश्चात् के नहीं। मिहिरभोज का समय राज्यारोहण का ८३५ या ८३८ ई० का स्वींकार कर लिया गया है। उसने ४० वर्ष राज्य किया। जब वह राज्यसिंहासनारूढ हुआ उसकी आयु लगभग ५० या ३५ वर्ष की थी। यदि ऐसा है तो उसका जन्म सन् ८०० ई० के लगभग आता है और हमने वर्मल राजा के शिलालेख पर संवत् सम्बन्धी बातें लिखी है उस स्थान पर शक संवत् निर्धारित करते हुए स्पष्ट किया है कि सुप्रभदेव यदि ७६० ई० तक थे तो उनके पौत्र माघ उस समय तक अपने बाल्यकाल का जीवन अवश्य व्यतीत कर रहे होंगे। मुख्य मंत्री के पौत्र का सम्पर्क यदि राजा से हो तो कोई आश्चर्य भी नहीं। किन्तु कहाँ बर्मल राजा और कहाँ भोज ? हो सकता है कि पिता दत्तक का सम्बन्ध भोज के पिता से रहा हो फिर छूट चुका हो और पुत्र का सम्बन्ध वापिस भोज के साथ बँध गया हो अथवा किसी अन्य कारण से या विद्वता से माघ और भोज में सम्बन्ध स्थापित हो गया हो। ठीक से कहा नहीं जा सकता किन्तु सम्पर्क अवश्य रहा होगा। भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावक चरित के अनुसार माघ भोज की जीवितावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हुए क्योंकि भोज ने ही माघ का दाह संस्कार पुत्रवत् किया अतः माघ ८८५ ई० के पूर्व ही रह जाते हैं पश्चात् नहीं, और हो सकता है आनन्दवर्धन तथा अमोघवर्ष माघ के ही समय में रह रहे हों और उनके कर्ण पुटों तक माघ लिखित साहित्य आ चुका हो जिससे आनन्द में विभोर होकर प्रशंसा के रूप में श्लोक भी कह दिये हों, या प्रशंसा में यदि दो शब्द भी अपने ग्रन्थों में लिख दिये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। उत्तर भारत के विद्वान् परस्पर मिला करते थे ! काश्मीर तो पण्डितों का घर था। वहाँ तक ख्याति का पहुँचना कोई कठिन कार्य न था क्योंकि भोज का वहाँ तक राज्य था अतः रात-

दिन के समाचार इधर-उधर को पहुँचा ही करते थे फिर राजा स्वयं गुणग्राही था अत: उसके साथ भी तो विद्वान् व नीतिनिपुण पुरुष रहा ही करते थे । जिस भोज ने इतना शासन किया तो क्या कोई ऐसा समय ही न आया कि भोज के द्वारा आनन्दवर्धन या अमोघवर्ष प्रथम का माघ से सम्मिलन न हुआ हो । काठियावाड़, सौराष्ट्र उसके राज्य में थे जो वहाँ से अधिक दूर नहीं हैं । बंगाल बिहार तक भोज का राज्य रहा है इसलिये लोग कन्नौज, बिहार या गुजरात तक आते रहते थे । अमोघवर्ष के धर्मगुरु काठियावाड़ (बढवाण) निवासी जिनसेन भी भोज ही के समय में रह रहे थे । अमोघवर्ष दक्षिण में और मिहिरभोज उत्तर में बड़े शक्तिशाली शासक थे । अमोघवर्ष का शासनकाल ८८० ई० तक रहा है । अमोघवर्ष प्रथम के पश्चात् कृष्ण द्वितीय (८८०-६१२ ई०) जो गद्दी पर बैठे उनके साथ भोज का युद्ध हुआ था । कृष्ण पराजित हुए किन्तु वराहभोज विजयी । कृष्ण अमोघवर्ष की ही भाँति जैनधर्म के प्रेमी थे ये प्रसिद्ध जैन लेखक गुणभद्र के प्रभाव में थे । गुजरात के राष्ट्र कूट की ओर जैन धर्म का प्रचार अधिक हुआ होगा और यह धर्म भीनमाल की ओर भी अधिक हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि पड़ौस में जब ये बातें हों तो भीनमाल कैसे जैनधर्म से अछूता रह सकता है, पाठक "भीनमाल" वाले भाग को देखेंगे तो ज्ञात हो जायगा कि श्रीमाल या भीनमाल जैन विद्या का केन्द्र रहा है । हरिभद्रसूरि सिद्धर्षि ने उपमितिभव प्रपंचकथा को सन् ६०६ में समाप्त किया । पाठक देखेंगे कि साहित्यिक हलचल भीनमाल में रही है । सिद्धर्षि वे ही हैं जिनका वर्णन प्रभावक चरित में आया है जिससे ज्ञात हो गया होगा कि प्रबन्धानुसार तो वे माघकवि के चाचा शुभंकर श्रेष्ठी के पुत्र थे । युवावस्था में किस भाँति द्यूतव्यसनी रहे । इधर-उधर मारे-मारे फिरे, फिर उन्होंने बौद्ध धर्म के ज्ञान की पिपासा को फिर उस उपाश्रय में रह कर शान्त की और जैनधर्म की दीक्षा ली तत्पश्चात् ग्रंथावलोकन किया होगा और पारंगत हुए होंगे तब ही अन्त में उपमितिभव-प्रपंच-कथा को ६०६ ई० में समाप्त की होगी । इस भाँति सरलतया माघ के चचेरे भाई सिद्धर्षि का समय भी प्रबन्धानुसार वहीं पर जाकर मिल जाता है जहाँ माघ का था । सन् ६०६ ई० में सिद्धर्षि पर्याप्त वृद्ध हो गये होंगे क्योंकि युवावस्था के ३० या ४० वर्ष तो उन्होंने वैसे ही व्यतीत किए फिर कहीं ज्ञान आया और साधु संतों के सम्पर्क में रहे तब ग्रन्थ लिखा इसका अभिप्राय यह हो जाता है कि वे कुछ भी हों अधिक के न होंगे तो ७० या ७५ वर्ष के तो होंगे ही इस भाँति वे सन ८३१ तक पहुँच जाते हैं ।

इन बातों को लिखने से हमारा तात्पर्य इतना ही है कि आलोचक आनन्दवर्धन और अमोधवर्ष की माघ सम्बन्धी बात को लेकर जो माघ को सप्तम शतक में लाकर उपस्थित करते हैं कहाँ तक ठीक है । अमोघवर्ष (जिनसेन के शिष्य) माघ के समय में रहे, वे भीनमाल के जैनियों की हलचल से प्रभावित हुए साधुओं का सम्पर्क प्राप्त कर, अपने शेष जीवन को सुन्दर रूप में बिताते रहे । अमोघवर्ष का राज्य और भीनमाल में जैनियों का सम्पर्क ही माघ प्रसिद्धि को ले जाने में पर्याप्त रहा होगा । अमोघवर्ष विद्वान् था, फिर वह राजा था । माघ के यहाँ राजा भी तो आकर ठहरा करते थे । गोष्ठी होती होगी तो उस समय साहित्य सुनने को प्राप्त हुआ होगा इस भाँति परस्पर मिलने के कितने ही प्रसंग उपस्थित हो सकते हैं । रही आनन्दवर्धन की बात, उसके लिए हमने बताया था कि काश्मीर पण्डितों का क्षेत्र रहा है

और नासिक, बलभी, श्रीमाल व उज्जयिनी उसी समय में विश्वविद्यालय वाले प्रसिद्ध नगर रहे हैं (देखिये दी ग्लोरी दैट गुर्जरदेश हैज पार्ट ३) फिर यह क्या सम्भव नहीं हो सकता कि प्रसिद्ध कवि भीनमाल निवासी माघ का नाम काश्मीर के पण्डितों में न पहुँचा हो जहाँ तक गमनागमन सरल व सम्भव था।

सिद्धर्षि की बात को उपस्थित करके भी हमने बता दिया कि माघ भोज के समय में अवश्य थे क्योंकि सिद्धर्षि माघ के चचेरे भाई सन ८३० से ९०६ ई० में जब विद्यमान थे तब भला माघ क्या उस समय में न होंगे और यह समय तो मिहिरभोज का था ही (८३५–८८० ई०)।

हमने यह भी देखा कि सिद्धर्षि को **बौद्धज्ञान प्राप्त करने की पूरी अभिलाषा** थी। शिशुपालवध महाकाव्य में वंशवर्णन में माघ लिख रहे हैं, राजा वर्मल माघ के पितामह सुप्रभदेव की बातों को तथागत (बुद्ध) के उपदेश की भाँति ही स्वीकार करते थे इससे यह पता लग जाता है कि माघ के समय तक बौद्ध धर्म फैला हुआ होते हुए भी शिथिल अवस्था में अन्तिम श्वास ले रहा होगा, क्योंकि जैन अपने धर्म में लग रहे थे तो हिन्दूधर्म अलग अपना विकास करने में लगा था। माघ ने अपने ग्रन्थ में बौद्ध धर्म की बहुत सी बातें कही हैं "सर्वकार्य शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपंचकम्। सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम्॥ २-२८॥"

उपर्युक्त श्लोक बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रख रहा है। सुप्रभदेव बौद्धधर्म में आस्था रखने वाले होंगे यही कारण हैं कि वे इतने दयालु, दानी और अहिंसक थे। दत्तक भी वैसे ही निकले, फिर माघ भी वैसे क्यों न हों? पितामह के बौद्धधर्म के विचार माघ में जैसे थे वैसे सिद्धर्षि में भी सहसा बौद्धधर्म के ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की उत्सुकता के रूप में फूट ही निकले। सिद्धर्षि में यह भावना भी माघ का भाई होना प्रमाणित करती हुई माघ की तिथि के निर्णय में सहायक अवश्य है।

आनन्दवर्धन और अमोघवर्ष के पश्चात् राजशेखर की बात आती है क्योंकि राजशेखर ने भी माघ की प्रशंसा में दो बातें लिखी हैं। पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि राजशेखर भोज के पौत्र के गुरु ही थे अतः भोज से प्रशंसित हुए माघकवि के विषय में अपनी सुन्दर सम्मति प्रस्तुत करना स्वाभाविक ही है।

यशस्तिलक चम्पू के रचयिता सोमदेव तो सन ९५९ में हुए थे जिन्होंने माघ कवि का उल्लेख किया था। ऐसा करना उनके परवर्ती होने के कारण बिल्कुल उचित है।

(३) माघकवि राजा वर्मल या वर्मलात का नाम २० वे सर्ग के अन्तिम भाग में कविवंश वर्णन करते हुए लिखते हैं। राजा वर्मलात का बसन्तगढ़ का लेख, जिसकी प्रतिलिपि हमने यथास्थान दी है, ६८२ संवत् का है। वह संवत् कौनसा है इसके लिए इतिहासज्ञ भिन्न-भिन्न कल्पनायें कर रहे हैं। श्रद्धेय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने उसको विक्रमी संवत् मान कर इस लेख को ६८२ ई० का मान लिया है। श्री ओझाजी उस समय के निस्संदेह अनुसंधान करने में तथा शिलालेखों को पढ़ने में, जहाँ तक हमारा अनुमान है, एक ही थे। राजस्थान विषयक की इतिहास सम्बन्धी कोई भी बात आती है तो प्रामाणिक रूप में ओझाजी को ही इतिहासज्ञ लेते हैं क्योंकि उन्होंने राजपूताना का इतिहास रियासतों को पृथक्-

पृथक् रूप में लेकर तैयार किया भी है। भीनमाल, राजपूताना में सिरोही के अन्तर्गत है। सिरोही का भी इतिहास ओझाजी ने लिखा है। इतिहास में उनकी देखा देखी अपने-अपने इतिहासों में जहाँ बसंतगढ़ का या माघ वंश या प्रतिहार वंश का वर्णन आया राजा वर्मल व व्याघ्रमुख को सामने लाकर तिथि निर्णय करने लग जाते हैं। वे बसन्तगढ़ का लेख सन् ६८२ ई० अथवा वि. सं. ६८२ का है इस आधार पर आगे बढ़ते हैं।

भोजप्रबन्ध में बाण और मयूरादि कवियों का उज्जैन के भोज के पास जाना लिखा है, यह सत्य है। वाण और मयूर दोनों उज्जैन चले गए थे और वि. सं. ७२१ वाले भोज की सभा में रहें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'चरितावली' पुस्तक में इनके विषय में लिखा है कि ये उज्जयिनी के राजा थे और जैन ग्रन्थों के अनुसार कालिदास इन्हीं की सभा के एक रत्न थे। मानतुंग हर्षकालीन के समय में विद्यमान थे। हो सकता है हमारे माघ उन्हीं भोज के सम सामायिक हों जो ७२१ वि. सं. में पैदा हुए थे। किन्तु ऐसा करने से आदिवराह नामधारी भोज में अवश्य अन्तर पड़ जायगा। वि. सं. ७२१ वाले भोज न तो आदिवराह नाम से ही प्रसिद्ध हैं और न उनका शासनकाल ही दीर्घ समय का रहा है और न वे इतिहास में इतने सुप्रसिद्ध ही रहे हैं जैसे धाराधिपति राजा भोज (१०९२ ई०) और कन्नौजाधिपति मिहिरभोज (८३५–८८५ ई०)। अस्तु विक्रम संवत की बात समझ में नहीं आती।

मिहिरभोज के समय के तथा धरणीवराह वडवाणराजा के उस प्रान्त के जो सिक्के उस समय के उपलब्ध हुए हैं वे सब शक संवत् के हैं अतः हमारी सम्मति में उस समय शक संवत लिखने का ही अधिक प्रचार था विक्रम संवत का प्रचार अति अल्प मात्रा में था अतः कोई आश्चर्य नहीं कि बसन्तगढ़ का शिलालेख भी शक संवत ६८२ का हो जैसा हमने पूर्व में ही इसके सम्वत को निर्णय करते हुए लिख दिया है, पाठक पीछे के उस भाग को देखें। प्रचलित सम्वत होने से शिलालेख में केवल ६८२ वर्ष ही कर दिया गया था। शक सम्वत ६८२ में ७८ वर्ष जब मिलायेंगे तब ईस्वी सन आजायगा। इस भाँति वह शिलालेख सन् ७६० ईस्वी का लिखा हुआ होना चाहिये। शिलालेख को देखने से विदित होता है कि जैनियों वाली अर्धमागधी भाषा का भी कुछ कुछ प्रचार उस समय रह गया था क्योंकि भीनमाल और उसके निकटवर्ती प्रान्त जैन विद्याशाला के एक भाँति गढ़ थे। अधिकांश जैनाचार्य वहीं के विद्यालयों से निकले हुए थे अतः कोई आश्चर्य नहीं कि ८वीं शताब्दी तक भी वह भाषा प्रचार में हो। जब वर्मलात सन ७६० ई में आ जाते हैं तो उसके प्रधानमन्त्री सुप्रभदेव के पौत्र महाकवि माघ सन् ८८० के समीप होने ही चाहिएं क्योंकि यह लेख जब लिखा गया था उस समय सुप्रभदेव उच्चासन पर थे, मन्त्री वा प्रधानमन्त्री। इस भाँति ये मिहिरभोज के मित्र भी हो सकते हैं और माघ के आश्रयदाता भी।

(४) अरब यात्री सुलेमान ने लिखा है कि मिहिरभोज की सेना असंख्य थी। हाथी और ऊंटों की सेना सुव्यवस्थित और सुन्दर थी क्योंकि वह राजा मारवाड़ (गुजरात) का था और कन्नौज के राजा अधिकांश हाथी रखते थे। हम देखते हैं कि शिशुपालवध काव्य में जब श्रीकृष्ण युद्धभूमि में आते हैं तो एक ओर तो हाथियों के आक्रमण की छटा दिखायी देती है तो दूसरी ओर घोड़ों और ऊँटों की सेना भी एक अपूर्व ही दृश्य उपस्थित करती है।

माघ ने सुलेमान यात्री के अनुसार ही मिहिरभोज की सेना का चित्र उपस्थित किया है फिर कैसे इस बात को स्वीकार नहीं किया जाय कि माघ भोज के सम सामयिक थे।

(५) माघ ने शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के साथ जो शिशुपाल का युद्ध बीसवें सर्ग में कराया है वह देखने योग्य है। यह तो वैसा दृश्य उपस्थित करता है मानों वह युग परस्पर के युद्ध का ही हो और कवि ने भी या तो ऐसे युद्ध देखे हों, भाग लिया हो अथवा उनके विषय में सुना हो। प्रत्यक्ष अनुभव रखने वाला व्यक्ति ही इस युद्ध वाले भाग का सजीव वर्णन कर सकता है। पाठकों को स्मरण होगा कि हर्ष के समय तक सन ६४७ ई तक तो शान्ति रही किन्तु उसकी मृत्यु के कुछ वर्षों के बाद ही पारस्परिक युद्ध प्रारम्भ हो गए थे। मनोमालिन्य, अहंकार तथा शक्ति प्रदर्शन की दुर्भावनाएं बाद में प्रबल हुईं पहले इतनी प्रबल न थीं। अन्तिम तीन सर्गों का युद्ध चित्रण इन्हीं भावनाओं को चित्रित कर रहा है यदि सन ६९५ ई का शिलालेख स्वीकार कर लिया जाता है तो माघ ६७० ई तक आते हैं जब ये दुर्भावनाएं इतनी प्रबल न थीं। ये दुर्भावनाएं नागभट्ट प्रतिहार के समय से प्रारंभ होकर मिहिरभोज तक रहीं। भोज ने शान्ति-स्थापना का प्रयत्न किया था, अतः वह शिलालेख सन् ७९० ई का है।

एक दूसरी बात जो हमको युद्ध के विषय की दिखलाई पड़ती है वह है श्रीकृष्ण का शिशुपाल के साथ युद्ध। शिशुपाल पक्षीय सेना श्रीकृष्ण को घेर लेती है। नाग श्रीकृष्ण की सेना के चारों ओर हैं। आकाश पृथ्वी सब नागों के अस्त्रों से व्याकुल हैं। यह सब क्या है? इतिहासज्ञ जानते हैं कि नागभट्ट का कृष्ण प्रथम के साथ युद्ध हुआ था, फिर नागभट्ट के पौत्र मिहिरभोज ने भी राष्ट्रकूट के राजा श्रीकृष्ण द्वितीय के साथ युद्ध किया था, क्या उसी का तो प्रत्यक्ष रूप में कवि वर्णन नहीं कर रहा है? शिशुपाल ने नागास्त्र चलाया कृष्ण की सेना मूर्छित हो गई किसी को ज्ञान नहीं रहा, वहाँ पर गुर्जर प्रतिहार की नागावलोक वाली सेना कृष्ण की सेना के पीछे पड़ गई तो कभी कृष्ण ने उन नागों से पीछा छुड़ा कर फिर युद्ध किया क्योंकि कवि ने वराह, आदिवराह और श्री शब्दों का प्रयोग भी कहीं सार्थक तथा कहीं पर निरर्थक रूप में भी प्रयुक्त करके अपना कार्य सिद्ध करना चाहा है। हो सकता है कि नागास्त्र को भी इसी भाँति प्रयोग में लाकर भोज का कृष्ण के साथ अथवा नागभट्ट का कृष्ण के साथ युद्ध कराया हो।

इस भाँति माघ मिहिर भोज के समकालीन थे यह बात सिद्ध हो जाती है तब चित्तौड़ की गद्दी पर भी भोज नाम वाले महाराणा राज्य कर रहे थे। चित्तौड़ के भोज का दूसरा नाम कर्ण था कदाचित् वह भी कर्ण की भाँति ही दानी हो। इन्होंने एकलिंग का मन्दिर हारीताश्रम में बनवाया। इनके विषय में पाठक पृथक् रूप में वहाँ पर देखें जहाँ पर हमने भोजों का परिचय दिया है।

---

(१२) प्रबन्धों का प्रामाण्य

[१] भोज और माघ एक ही युग के थे तथा इनका पारस्परिक सम्पर्क रहा है यह बात तो तीनों ही प्रबन्धों (भोज-प्रबन्ध, प्रबन्ध चिंतामणि, और प्रभावक चरित) से स्पष्ट हो रही है, किन्तु माघ-विरचित "शिशुपाल-वध" काव्य में भी "भोज" का नाम स्पष्टतया अथवा श्लेषात्मक रूप में मिलता है। पाठकों ने पीछे प्रबन्धों में पढ़ा होगा कि दरिद्रता पीडित माघ द्वारा प्रेषित उनकी पत्नी (माल्हणादेवी) स्वयं राजा भोज के निकट "कुमुदवनमपश्रि श्री मदम्भोजखण्डम्" इस श्लोक को अथवा "शिशुपालवध" काव्य को ही, (जिसको शलाका-परीक्षा द्वारा देखा गया तो कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्" निकला) लेकर गयी। प्रबन्धों में यह भी मिला कि माघ के पिता का नाम दत्त, दत्तक या कुमुद पण्डित भी था [पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में माघ का संक्षिप्त प्रबन्ध तथा प्रभावक चरित में सिद्धर्षि का प्रबन्ध देखिये)। प्रबन्धों में यह भी उल्लिखित मिला कि जब राजा भोज के घर माघ गये उस समय माघ के खाने की विधि को भोज ने देखा तो उन पर उपहास रूप में उन्होंने कुछ कह दिया (देखिये पुरातन प्रबन्ध-संग्रह), तथा रात्रि को सोते समय रजाई ओढ़ने पर माघ ने दूसरे दिन प्रत्युत्तर में राजा भोज को चुभता हुआ एक उत्तर दिया (पुरातन प्रबन्ध-संग्रह तथा प्रबन्ध-चिंतामणि देखिये], तथा तीन दिन ठहर कर जब माघ कवि अपने घर लौटने लगे, उस समय भोज को भी, जो उन्हें पहुंचाने के लिए नगर सीमा तक साथ-साथ आये थे, अपने घर पर किसी भी समय आने का निमन्त्रण दिया। कुछ दिनों बाद भोज को सहसा वह बात स्मरण हो आयी तब वह अपने कटक सहित माघ के स्थान पर जा पहुँचे। उस समय माघ कवि ने जो अतिथि-सत्कार भोज का किया तथा सर्दी में भी अपने घर की छत पर भोज को सुला कर ग्रीष्म के दिनों का जो आनन्द दिलाया इन सब को देखकर राजा भोज अपने द्वारा किये गये माघ के प्रति सत्कार पर लज्जित से हुए। भोज सात दिन तक माघ के घर पर ठहर कर पराभूत से अपने नगर को लौटे। भाग्य के विपर्यय से स्थिति बिगड़ी। उन्होंने अपनी इसी बिगड़ी स्थिति का चित्र * ऊपर के श्लोक में अंकित करके भेजा। यह श्लोक शिशुपालवध

---

* अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इसी चित्र के श्लोक को चतुर्थ अङ्क के दूसरे श्लोक में देखिये किन्तु महाकवि माघ ने 'कुमुदवनम्' शब्द की उस स्थान पर प्रयुक्त कर तथा 'ह्री' का औचित्य लाकर श्लोक में प्राण फूंक दिये। भोज के सम्मुख चित्र उपस्थित हो गया। शाकुन्तल का श्लोक—

'यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीनाम्। आविष्कृतो ऽ रुणपुरःसर एकतोऽर्कः॥
तेजोद्वयस्य युगपद व्यसनोदयाभ्याम्। लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु॥४-२॥ अभि'

इस भाँति दैव चन्द्र और सूर्य के व्यसन और उदय के द्वारा मानों मनुष्यों के विभिन्न दशाओं के विषय में शिक्षा देता है।

काव्य में ग्यारहवें सर्ग में प्रातःकाल वर्णन के प्रसंग में बड़ी सुन्दरता से रखा गया है। भोजपक्ष का अर्थ देखिये जिसका प्रमाण हमको यहाँ पर देना है। प्रातःकाल का वर्णन तो स्पष्ट है ही।

माघ के पिता कुमुद पण्डित कितने धनी थे और उनका घर (वन) इस लक्ष्मी (श्री) से कितना शोभाशाली था। कुमुद ने अपने इकलौते पुत्र माघ (वन) में उस श्री को विराजमान किया जिससे कुमुदवन श्री-सम्पन्न होकर शोभायमान हुआ तथा एक दिन भोज भी जिसकी श्री को देखकर लज्जित हो गये थे। किन्तु आज वही कुमुदवन माघ अथवा कुमुद-पण्डित का अटूट धनवाला घर श्री-विहीन, धन रहित, भाग्य रहित हो गया (और महा दुःखी है) तो दूसरी ओर भोजवन अथवा भोज परिवार (खण्डष्-वन या घर निवास स्थान) श्री से मद पूर्ण है [जो किसी समय माघवन के सम्मुख निष्प्रभ सा था)। उलूक लक्ष्मी का वाहन (लक्ष्मी का घर) कहलाता है। उस लक्ष्मी के निवास वाले स्थान ने भी दरिद्रता के कारण प्रसन्नता को आज त्याग दिया है। लक्ष्मी-सम्पन्न घर श्री हीन होने से आज सूना-सूना सा खाने के लिए दौड़ रहा है। (दारिद्रयाप्रियमेति) उलूक बुद्धिवाला मैं माघ जो दिन को दरिद्रता की लज्जा के कारण निकलने का साहस नहीं करके दिन में घुघघु (उल्लू) की भाँति छिपा-सा रहता हूँ तथा कंगाली के कारण बुद्धि भी अब घग्घु जैसी भ्रष्ट हो रही है ऐसे मैं आज चित्त की प्रसन्नता को त्यागे हुए हूँ और महादुखी हूँ। उधर भोज का भाग्य कैसा है यह जो चक्र (सामन्त मण्डल) वाक् (को आज्ञा देने वाले) हैं बहुत ही प्रसन्नचित्त (निश्चिन्त) तथा प्रेम प्रदर्शित करने की क्षमता रखने वाले हैं। मेरे शरीर की, संताप के कारण, ये उष्ण रूप से निरन्तर निकलने वाली किरणें (लम्बी-लम्बी गर्म श्वासें) उदय (उत्पन्न, आना) हो रही हैं तो दूसरी ओर भोज की जड़ता नष्ट हो चुकी है। श्री सम्पन्नता से चारों ओर प्रकाश छा रहा है उस प्रकाश के सम्मुख सब हतप्रभ से हैं !! हाय ! हाय !! दुर्भाग्य व दरिद्रता के मारे हुए श्री-सम्पन्नतावालों का निश्चय ही यह कैसा विचित्र परिणाम है !

भोज बुद्धिमान ही नहीं था, सहृदय भी था सारी स्थिति सामने आ गयी। इस एक 'ही' शब्द के अर्थ व गति मात्र से उसने तुरन्त दयार्द्र होकर तीन लाख रुपये दिये। यह समझ कर कि यह महादानी हैं, शान शौकत से रहने वाले हैं, कहीं ऐसा न हो कि थोड़े रुपयों से उनका निर्वाह न हो। साथ ही यह भी कहला भेजा कि अभी तो यह ले जाओ मैं भी कल शीघ्र ही स्वयं आऊँगा।

यह कहना अति कठिन है कि राजा भोज कुमुद पंडित (माघ के पिता) के बाल मित्र थे अथवा माघ के ही वे सहृदयी सखा थे, किन्तु मित्रता का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में अवश्य था, क्योंकि हमने भोजों के प्रसंग में लिखते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि चित्तौड़ के भोज सन् ७८६ से ८०० तक रहे उस समय माघ के पिता दत्तक (कुमुद पंडित) उनकी आयु के होंगे क्योंकि दत्तक के पिता सुप्रभदेव के आश्रयदाता सन् ७६० ई० में बसन्तगढ़ के शिलालेख में बर्मलात् नाम से आते हैं। ये बर्मलात माघ द्वारा कवि-बंश वर्णन में प्रथम श्लोक में निहित हैं। उस वर्मलात् के सुप्रभदेव सर्वाधिकारी थे। कुछ अन्य मनुष्यों का जहाँ

पर नाम दिया गया है जैसे प्रतिहार बोटकं, राजस्थानीय आदित्यभट्ट सुप्रभदेव का उस शिला-लेख में नाम नहीं है। भंडारकर तथा अन्य अंग्रेज विद्वान् राजस्थानीय का तात्पर्य विदेश सचिव लेते हैं। माघ काव्य कहता है कि सुप्रभदेव सर्वाधिकारी मन्त्री थे जिनको समस्त सुकृत कार्य करने का पूर्ण अधिकार था, और राजा वर्मल उनकी कही हुई बात को निषेध करके टाल नहीं सकते थे। भगवान् तथागत के उपदेशों की भाँति बिना संकोच के स्वीकार कर लेते थे। फिर मन्दिर के कार्य में इनका हाथ न होना एक विचारणीय बात है। उस समय गोष्ठी का रूप था। संभवत: उन्हें ट्रस्टी के रूप में न लिया हो अथवा मन्दिर बनने के समय सुप्रभदेव मन्त्री न हुए हों। वृद्ध पुरुष की बातों का ही आदर तथागत के उपदेशों के समान होता है और वृद्ध पुरुष ही रजोगुण से रहित सांसारिक राग से कोसों दूर धार्मिक वृत्ति वाले होते हैं, इस बात को कवि वंश वर्णन में माघ ने दिया है अत: संभव है कि शिलालेख सुप्रभदेव के मन्त्री पद प्राप्त करने के पूर्व का हो। प्राचीन काल में जब मनुष्य परिपक्वावस्था का हो जाता था, ज्ञान वृद्ध, अनुभव से पूर्ण एवं सद्वृत्तियों वाला नीतिमान् हो जाता था, तब ही ऐसे उत्तरदायी पद प्राप्त होते थे। अत: सुप्रभदेव निश्चित रूप में वयोवृद्ध होंगे और उस समय दत्तक किशोर अवस्था में होंगे अत: उनका चित्तौड़वाले भोज से बालमैत्री सम्बन्ध प्रबन्ध चिंतामणि के अनुसार स्थापित किया जा सकता है। (इसकी पुष्टि में) बसन्तगढ़ चित्तौड़ से उतना दूर नहीं है जितना धार या कन्नौज। इसके अतिरिक्त माघ के पिता के भाई शुभंकर का विवाह भी तो चित्तौड़ के पुरोहित हरिभद्र भट्ट की भगिनी से हुआ था जिसका पुत्र सिद्धर्षि हुआ। मिहिर भोज ८३५ में सिंहासन पर बैठे जिनका जन्म सन् ८०० ई० का है अत: दतक के साथ इनका सम्पर्क संभव नहीं है। हाँ, माघ से सम्पर्क हो सकता है। मिहिरभोज के समय में माघ आ जाते हैं और मिहिरभोज की ही भाँति एक लम्बी आयु ज्योतिषियों के अनुसार, वे भोगते हैं।

(२) भोज के सम्बन्ध में इतना लिखने के पश्चात् अब प्रबन्धों में प्राप्त उन तथ्यों के प्रमाणों पर विचार करते हैं जो शिशुपालवध काव्यकार माघ के विषय में साक्षी रूप से उपलब्ध होते हैं। सम्वत् १३६१ में लिखी हुई प्रबन्ध चिंतामणि की बात इस प्रकार है—
"तथा निज जन्मदिने जनकेन नैमित्तिकाज्जातके कार्यमाणे पूर्वमुदितोदित समृद्धिर्भूत्वा प्रान्ते गलितविभव: किञ्चिच्चरणयोराविर्भूतश्वयथुविकार: पंचत्वमाप्स्यति इति। निमित्तविदा निवेदितां विभव संभारेण तां ग्रहगतिं निराचिकीर्षुणा माघपित्रा सम्वत्सर शतप्रमाणेमनुजायुषि षट्त्रिंशत्सहस्राणि दिनानि भविष्यन्तीति विमृष्य नाणकपरिपूर्णास्तावत्संख्यान् हारकान् कारित नव्यकोशेषु निवेश्य तदधिकां परां भूतिं शतश: समर्प्य······

इन उपर्युक्त पंक्तियों से विदित होता है कि दत्तक ने माघ की दरिद्रावस्था के लिये गड्ढ़ों को खोद कर खजाना गाडा था ताकि धन की समाप्ति पर वह धन दु:ख के समय काम में लिया जाय। इस बात का साक्षीभूत शिशुपाल वध का यह श्लोक देखिये, कवि किस चातुरी से अपने मनोगत भावों को कथा के प्रवाह में रख देता है। यदि प्रसंग न होता तो यह बात मालूम भी न होती। "नह्यमूला जनश्रुति", जनश्रुतियों का आधार प्रबन्ध हैं। जनश्रुतियाँ यहाँ मुंह से बोल रही हैं। माघ काव्य के प्रथम सर्ग के २८वें श्लोक में श्रीकृष्ण

के मुख से नारद की प्रशंसा के रूप में ये शब्द आये हैं—

कृतःप्रजा क्षेमकृता प्रजासृजा,
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो,
निधिः श्रुतिनां धनसम्पदामिव ॥२८॥

अर्थ : प्रजावर्ग (संतान) का कल्याण करने वाले, (सुपात्र कटाह आदि दृढ़ भाजन जिनमें धन रख कर गाड़े जा सकें तिजोरी आदि) ने शास्त्रों का सदा अध्ययन अध्यापन आदि में (दान भोगादि में) उपयोग करते रहने पर भी सर्वदा ही कभी क्षय न होने वाले अनन्त श्रुतियों के निधि (धरोहर अथवा भण्डार) आपको धनी बनाया है। स्पष्ट भाव— जिस भाँति अपनी संतति का शुभचिंतक पिता उनके भविष्य के उपयोग के लिये बहुत-सी धन सम्पत्ति एकत्र करके लोहे की तिजोरियों अथवा कड़ाहों में रख कर निश्चिन्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने के कारण सर्वदा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं चुकता, उसी प्रकार निखिल विश्व की प्रजा के मंगलकारी भगवान् ब्रह्मा ने आपको (नारदजी को) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेदों की अमूल्य निधि को सौंप कर वे बिलकुल निश्चिन्त हो गये हैं। इस प्रकार आप श्रुतियों के अक्षय निधि हैं और सर्वदा घूम-घूम कर उपदेश देने पर भी आपकी वह ज्ञान निधि समाप्त नहीं होती। ऐसे वेदनिधि देवर्षि का दर्शन किसके लिए मंगलकारी न होगा ?

कृष्ण की इस युक्ति में माघ के विषय में पाठकों को जो संकेत मिला है उसी को अब हम और स्पष्ट कर के लिख रहे हैं, पाठक, विचार करें।

प्रभावक चरित का श्लोक, संख्या १५, माघ की माता का नाम "ब्राह्मी" बतला रहा है "श्री माघो नन्दनो ब्राह्मी स्यन्दनः शील चन्दनः।" नारद के अर्थ में "प्रजासृजा" का अर्थ (ब्रह्मणा) ब्रह्मा के द्वारा स्पष्ट है, कोई आपति नहीं। अब हम माघ अर्थ में प्रजासृजा ब्राह्मी जिसने माघ जैसी प्रजा (संतान) का सृजन किया उस ब्राह्मी द्वारा अर्थ लगा लें तो क्या कोई आपति है ? गुरुः का अर्थ महान् है श्लेष से द्वयर्थक, गुरुः का अर्थ पिता (दत्तक) और महान् लिया जा सकता है। प्रजासृजा और गुरु के इन अर्थों से प्रयोजनीय अर्थ कहीं दूर न जा पड़े अतः हम यहाँ पर एक दूसरा अर्थ और दे रहे हैं।

दूसरा अर्थ : हे माघ तुम, अपनी संतान के लिए कल्याण भावना की इच्छा करने वाले (दरिद्रावस्था के लिए) तिजोरियों में अपनी संतान के लिए धन रख कर फिर निश्चिन्त हो कर रहने वाले संतान को उत्पन्न करने वाले (पिता दत्तक) के द्वारा धन सम्पत्तियों की भाँति शास्त्रों, वेदों, पुराणों आदि श्रुतियों के भी अक्षय निधि कर दिये जिसका चाहे जितना उपयोग हो फिर भी वह तुम्हारा निधि अक्षय ही रहेगा।

उपर्युक्त अर्थ से स्पष्ट है कि दत्तक ने ज्योतिषियों से जब माघ की दरिद्रावस्था सुनी तो धन सम्पति को भविष्य के लिए पुत्र माघ को दे ही दी, गाड़ कर और प्रत्यक्ष रूप में।

किन्तु धन का क्या विश्वास ? अतः उसको पढ़ा लिखा कर विद्वान् भी बना दिया क्योंकि विद्या धन एक ऐसा धन है जो खर्च करने पर भी अक्षय ही रहता है। अटूट खजाना गाड़ा यह सोच कर कि माघ चाहे जितना धन, दान और विलास की सामग्री में व्यय करे किन्तु वह बना ही रहे इसी भाँति विद्या, धन भी उस माघ में इतना भर दिया कि उसके वह महान् ही बने रहे।

प्रबन्ध चिंतामणि में इसी लिये उन पंक्तियों के आगे लिखा है, "परांभूति शतशः समर्प्य प्रदत्त माघ नाम्ने सुताय कुलोचितां शिक्षां वितीर्य कृतकृत्यमानिना तेन विपेदे" इस बात का और अधिक प्रमाण शिशुपाल वध के उसी सर्ग में श्रीकृष्ण की उक्ति में देखिये—

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना
नयन्नियन्तु समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतै
रदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ।। स १। २७।।

अर्थ—संसार में असंख्य किरणों वाला सूर्य (भी) जिस (अज्ञान) अन्धकार को दूर करने में समर्थ न हो सका सब की अपेक्षा अधिक उस अन्धकार (मोहादि) को संख्यातीत तेज (प्रभाव) के द्वारा बल पूर्वक आपने (नारद, पिता दत्तक ने) उसको दूर किया।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सूर्य केवल भौमिक अन्धकार को दूर कर सकता है, अज्ञान को दूर करने की क्षमता तो तेज में ही है।

तात्पर्य निकला कि पिता दत्तक ने माघ को विद्या देकर सर्वगुण सम्पन्न करा दिया जिससे अपने संख्यातीत तेज से वह भासित हो। सूर्य जिस भाँति सांसारिक अन्धकार को ही दूर कर सकता है हृदय के अन्धकार मोह आदि को नहीं। इसी भाँति धन सम्पति केवल सांसारिक आपत्तियों को दूर कर सकती है किन्तु यदि उसकी प्राप्ति के द्वारा मनुष्य सबसे मोह आदि का शिकार हो जाय तो फिर आपत्ति नष्ट होने के बजाय वह उलटे बढ़ जाती है। अतः हृदय के अज्ञान को दूर करने के लिए माघ में विद्या का ऐसा तेज पैदा किया कि धन से मोह न हो जाय, विलास की बातें न करे, और इस कारण आपत्ति में न फंस जाय। १८वें सर्ग का ३१वाँ श्लोक भी धन की रक्षा तथा विपत्तियों से बचने के लिए कहा गया है।

(२) प्रबन्ध चिन्तामणि और भोज प्रबन्ध इस बात को लिख रहे हैं कि माघ अन्तिम समय में द्रव्य हीन हो गये। उन्होंने भोज से तीन लाख रुपये प्राप्त किये किन्तु वे भी भीख माँगने वालों को दान में दे दिये गये। इसका चित्रण नवम सर्ग में बहुत अच्छा किया गया है—

उपसंध्यमास्त तनु सानुमतः शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः।
करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम् ।।९:५।।

अर्थ—सन्ध्या के समीप आने पर सूर्य की सूक्ष्म किरणों का समूह तुरन्त पर्वतों के शिखरों पर जाकर टिक गया। सच ही है, सज्जनों को विनाश के समय भी ऊँचा ही स्थान प्राप्त होता है।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि माघ अति वृद्ध हो चुके थे। यह उनका अन्तिम समय था और अतिदान के कारण अब उनके धन की श्री भी प्राय कृश हो चली थी फिर भी उनकी दान-भावना कम न हुई थी। उनका कहना है कि सज्जन पुरुषों का पद विनाश के समय भी ऊँचा ही रखता है; गिरता नहीं। माघ स्वयं भी सूर्य की भाँति आयु भर सम्पत्ति रूपी तेज लुटाते रहे और लुटाते-लुटाते वह कृशकाय भी हो गये। अब समय निकट था कि श्री विहीन होकर उनको सूर्य की भाँति ही अस्त हो जाना है, पर अन्तिम क्षण तक भी उनका तेज उनके साथ रहेगा, जब जीवन में अब तक ही कृपणता का नीचा पद प्राप्त न किया तो इस अन्तिम अवस्था में आपत्ति से व्याकुल होकर अपनी उदारता को त्यागना वह कैसे ठीक समझ सकते थे अत: माघ को देखते हैं कि वह धनाभाव से स्वयं के भोजन के लिए कुछ न रहने पर भी, क्षीण वित्त होने पर भी क्षीणकाय माघ ने दान देना नहीं छोड़ा चाहे वह मृत्यु को ही प्राप्त हो गये।

प्रतिकूलता-मुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥६।६॥

अर्थ—दैव के प्रतिकूल होने पर अनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते है। देखो न, गिरते हुए सूर्य के अवलम्ब के लिए उसकी सहस्र (कर) किरणें भी कुछ नहीं कर सकतीं।

इन उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि पिता दत्तक ने दरिद्रता को दूर करने के लिए और ज्योतिषियों ने जो दैव की भविष्यवाणी जन्मपत्री बनाकर कही थी कि वह माघ अन्तिम अवस्था में धन के बिना दुखी होकर मरेंगे उसके लिए जो खजाना गाड़ा था वह भी दैव के प्रतिकूल हो जाने पर काम न आया। पिता की बहुत सी साधनता किसी काम की न रही जब उसका भाग्य ही विपरीत हो गया। वे मित्र, वे राजा, वे सम्बन्धी, वे नगरनिवासी इस दुरवस्था में कहाँ गये ? यह सब भाग्य की प्रतिकूलता है।

यदि हम उपर्युक्त दोनों श्लोकों कों भोज की कहानी पर घटाते हैं कि अन्तिम् समय में भी दान की ऊँची भावना माघ के हृदय में थी। याचक उनके पास आते रहे और वह देते रहे। माघ को भोज से जो मुद्राएँ प्राप्त हुईं वे सब इस भाँति देने में नष्ट हो गई और फिर भी माघ वैसे ही रहे, तो इसे भाग्य की विपरीतता ही कहिये। इससे हम इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं कि भोज से धन प्राप्त करने के भी कुछ वर्षों बाद माघ जीवित रहे होंगे। इस भाँति कुमुद पण्डित दत्तक के गाडे हुए धन की तथा पुत्र माघ के दान की बातों में सत्यता प्रतीत होती है।

कुछ भी हो इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं कि एक तो यह कि वह अतिदानी थे और दूसरे यह कि वृद्धावस्था उनकी दुखमयी रही।

३. प्रबन्ध चिंतामणि में उल्लेख है कि ज्योतिषियों ने माघ को मनुष्य की पूर्ण आयु वाला (शतायु) बतलाया। शिशुपाल वध काव्य में एक प्रकार से उसकी आत्मकथा सी है।

बिरलातपच्छविरभूष्मतनुः परितोऽतिपाण्डु दधदभ्रशिरः ।
अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः ।।६।३।।

अर्थ—समाप्ति, (वृद्धावस्था) को प्राप्त, विरल उष्ण आतप की छवि से युक्त (क्षीणकान्ति) उष्णता से रहित शरीर को धारण किए हुए (श्लेष्मा आदि के कारण जिसका शरीर बहुत गर्म नहीं रहता) तथा चारों ओर से सफेद बादलों जैसे (सफेद बालों से युक्त) सिर को धारण किये हुए प्रशान्त (अर्थ ग्रहण करने में असमर्थ) सूर्य रूपी नयनों वाला दिन अवसानोन्मुख होकर शिथिल हो गया।

(ख) इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि माघ को अपनी वृद्धावस्था का ध्यान है उन्होंने धन का अपव्यय अधिक नहीं किया, दान आदि सत्कर्मों में उसका व्यय अवश्य किया। सारा धन चला गया। वृद्धावस्था अत्यन्त दुःखमय बीती। यह बात भोज प्रबन्ध व प्रबन्ध चिंतामणि से तो ज्ञात हुई ही थी, माघ काव्य से भी विदित हो गयी।

४. प्रबन्ध चिंतामणि में कहीं-कहीं पर तत्सम्बन्धी घटना के लिए उस घटना का सम्वत्, मास, दिन, वार तथा नक्षत्र तक दिए हुए मिलते हैं। इसकी तिथियों आदि की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में जो भ्रम फैले हुए हैं उनका निवारण करने के लिए हमको गहरा उतरना पड़ा है। ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार उन तिथियों, नक्षत्रों और वारों पर दृष्टिनिक्षेप की गम्भीरता से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रबन्ध चिंतामणि की लिखी हुई वे तिथियाँ अधिकांश में शुद्ध हैं। कुछ ही ऐसी होंगी जो अशुद्ध होंगी। जैसे मूलराज का राज्याभिषेक विक्रमी सम्वत् ९९३ आषाढ़ शुक्ला १५ गुरुवार का दिया हुआ है। उस समय अश्विनी नक्षत्र और सिंह लग्न था और जन्म से इक्कीसवें वर्ष में मूलराज का राज्याभिषेक हुआ। यह ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार बिलकुल ठीक ही निकलता है।

हमको मूलराज के राज्याभिषेक से कोई तात्पर्य नहीं किन्तु वनराज चावड़ा के विषय में भी इतिहास विशारद जो जनश्रुति बताकर प्रबन्ध चिंतामणि या पुरातन प्रबन्ध संग्रह के लेखों को मिथ्या अथवा भ्रम से परिपूर्ण बताते हैं, उसकी तिथि भी सत्य निकली, और यही हाल सिद्धर्षि की "उपमिति-भव-प्रपंच कथा" की समाप्ति की तिथि का है जो विक्रमी सम्वत् ९६२ की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी गुरुवार है। सिद्धर्षि महाकवि माघ के चचेरे भाई शुभंकर के पुत्र थे। वनराज चावड़ा की राज्याभिषेक तिथि विक्रमी सम्वत् ८०२ वैशाख शुक्ला २ सोमवार थी। जिस तरह भोज प्रबन्ध या अन्य प्रबन्धों की बातें माघ काव्य में स्पष्ट हैं, इसी तरह राजा भोज व माघ के पिता दत्त कुमुद पण्डित तथा तत्सम्बन्ध तिथियों के सम्बन्ध में भोजप्रबन्ध, दूसरे प्रबन्ध, तथा माघ काव्य में मिलते-जुलते तथ्य प्राप्त हैं। यह बात दूसरी है कि कई तिथियों में एक दो दिन का अन्तर आ जाता है जो नक्षत्रों के अथवा तिथियों के

---

१ माघ सर्ग १४-४५, ४६, ४८ में युधिष्ठिर के रूप में उन्होंने दान के प्रति अपनी भावना व्यक्त की है।

घटने बढ़ने के फलस्वरूप है देखिये–(भारतीय काल-गणना पंडित देवकी नन्दन खेडवाल कृत)

इससे यह स्पष्ट होता है कि भोज-प्रबन्ध, प्रबन्ध-चिंतामणि, और प्रभावक चरित का निबन्ध सर्वथा अप्रामाणिक नहीं हैं उनमें सार अवश्य है, यह बात दूसरी है कि कहीं-कहीं अतिरंजना हो गयी है। किसी कवि या लेखक के अज्ञात जीवन के परिचय सूत्र उनकी कृति के अन्तर्गत अवश्य निहित रहते हैं। माघ काव्य इसका अपवाद नहीं है, उसके उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर हमने प्रबन्धों की सत्यता का परिचय दिया है। विशेष परिचय आगे यथा स्थान दिया जायगा। अब जो-जो अन्य कवियों या लेखकों की बातें आई हैं उनको भी इस प्रकरण में सम्मिलित करना चाहते हैं। इनसे माघ के जीवन का अध्ययन करने में सहायता मिलेगी।

समकालीन तथा परवर्ती साहित्य में माघ का उल्लेख

जिस भाँति महाकवि माघ ने अपने से पूर्ववर्ती विद्वान् और कवियों का उल्लेख किया है उसी भाँति समसामयिक लेखकों तथा परवर्ती व्यक्तियों ने भी अपनीं रचनाओं में माघ का नामोल्लेख इस भाँति किया है—

राष्ट्रकूटों के राजा नृपतुंग ने जो नवम शताब्दी में विद्यमान थे, अपने ग्रन्थ "कविराज-मार्ग" में माघ कवि को कालिदास का समकक्ष स्वीकार किया है। (देखिये के. बी. पाठक की भूमिका, संस्कृत साहित्य के इतिहास चन्द्रशेखर पाण्डे, बलदेव उपाध्याय तथा कृष्णामाचारी आदि) इसी तरह काश्मीरी पंडित श्री आनन्दवर्धन ने जो नवम शताब्दी में विद्यमान थे, अपने "ध्वन्यालोक" में शिशुपाल वध के दो श्लोकों (सर्ग ३ का ५३, सर्ग ५ का २६) को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

क—श्री हरदत्त एक अच्छे प्रामाणिक वैयाकरण हो गये हैं। कील हार्न के अनुसार जिनेन्द्र बुद्धि ने इनकी रची हुई पदमंजरी की खुले रूप में नकल की है। (देखिये कृष्णमाचारी का इतिहास जहाँ पर वे माघ के विषय में लिख रहे हैं) जिनेन्द्र * बुद्धि ने "काशिका" की व्याख्या को "न्यास" के रूप में रखा है जैसा प्रायः सभी विद्वान् कहते हैं। जिनेन्द्र बुद्धि से कुछ ही वर्ष पूर्व के ये हरदत्त हो गये हैं और इन्हीं हरदत्त ने अपनी बनाई हुई "पदमंजरी" में माघ का एक बार नहीं अनेक बार नाम सहित निर्देश किया है। माघ के पूर्व समय तक टीकाएँ अधिक नहीं लिखी जाती थीं। श्री हरदत्त ने तो व्याकरण की बहुत सी टीकाएँ लिखी हैं अतः कोई आश्चर्य नहीं कि हरदत्त माघ के ही युग के वैयाकरण हों और जिनेन्द्र बुद्धि भी जो दूसरे वैयाकरण हैं श्री हरदत्त के समसामयिक हों। तभी यह हो सकता है कि हरदत्त की पदमंजरी के बहुत से भागों को जिनेन्द्र बुद्धि ने अपनाया हो। जिनेन्द्र हरदत्त माघ से आयु में बड़े होंगे। ये तीनों समसामयिक न होकर एक ही युग के हों तब भी कोई आश्चर्य नहीं। इन महावैयाकरणों ने कदाचित् एक ऐसा वातावरण उपस्थित कर दिया हो कि जिससे उस युग में अधिकतर व्याकरण की ही अधिक धूम रही हो और यह भी हो सकता है कि कवि माघ को ऐसे ही पुरुषों से प्रेरणा प्राप्त हुई हो। माघ ने अपने आप को महावैयाकरण लिखा है। जब वे युवा थे हरदत्त और जिन्द्रबुद्धि काफी वृद्ध होंगे।

ख—श्री सोमदेव जो दशम शताब्दी के हैं अपने यशस्तिलक-चम्पू में माघ का उल्लेख इस प्रकार कर रहे हैं—

"तथा उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, बोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ, राजशेखरादि महाकवि काव्येषु तत्र तत्रावसरे भरतप्रणीते

---

* देखिये—जैन साहित्य और इतिहास, लेखक नाथूराम प्रेमीपृष्ठ ९७—'जिनेन्द्र बुद्धि नाम के एक और वैयाकरण हो गये हैं जिनका बनाया हुआ पाणिनी व्याकरण की काशिकावृत्ति पर न्यास है। वे बोधिसत्वदेशीयाचार्य या बौद्ध—साधु थे।' देवनन्दि (जिनेन्द्रबुद्धि) इनसे भिन्न थे जो ६ ठी शतक में थे।

काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषूपस्थानेषु च कथं तद्विषया महती प्रसिद्धि।" सोमदेव यशस्तिलक चम्पू (आ० १. पृ० ११३)

ग—राजशेखर ने भी स्पष्ट रूप में माघ का निर्देश किया है :

कृत्स्न प्रबोध कृद्वाणी भारवेरिव भारवे: ।
माघेनैवच माघेन कम्प: कस्य न जायते ।।

स्मरण रखना चाहिए कि यह राजशेखर भोजप्रतिहार के पुत्र के गुरु थे ।

घ—राजा भोज की आज्ञा से तिलकमंजरी के लिखने वाले श्री धनपाल ने राजशेखर का ही दूसरे शब्दों में समर्थन किया है, देखिये—

"माघेन विघ्नोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव कवय: कपयो यथा ।।"

च—एक कन्नड़ी शिलालेख में माघ के लिये कहा गया है कि वह एक अनुभवी कवि है और उन्हें शाकुन्तल के कवि कालिदास की पंक्ति में बैठाया जा सकता है (देखिये कृष्णाभाचारी का इतिहास) ।

छ—श्री प्रभाचन्द्र ने प्रभावक चरित में "सिद्धर्षि" का लेख लिखकर माघ की वंश परम्परा का कुछ वर्णन किया है (देखिये इसी प्रबन्ध में माघ-विषयक सामग्री) ।

ज—प्रबन्ध चिंतामणि में मेरुतुंगाचार्य ने, तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह में जैसा पहले लिखा जा चुका है, माघ तथा भोज के विषय की जानकारी दी है ।

झ—बल्लाल कवि ने भी भोज प्रबन्ध में माघ और भोज की कथा लिखी है । (देखिये माघ विषयक सामग्री) ।

ट—भोज ने "सरस्वतीकण्ठाभरण" में शिशुपाल वध के नवें सर्ग के छठे श्लोक को लिख कर माघ की ओर संकेत किया है । चित्र प्रकरण में भी माघ के १६ वें सर्ग के ३, २६, ३३, ४४, ६६, ६०, १२० श्लोकों को लिया है ।

ठ—छेमेन्द्र ने "औचित्य विचार चर्चा" में माघ के नाम का एक श्लोक उद्धृत किया है ।

ड—श्री बल्लभदेव ने सुभाषिताबलि में माघ के नाम वाले श्लोक लिखे हैं, फिर तो माघ के श्लोकों को कई विद्वानों ने उद्धृत करना आरम्भ कर दिया । टीकाकारों ने टीकाएँ लिखीं और आलोचकों ने माघ के कविता की चर्चा आरम्भ की ।

अब तो माघ कवि पर एक अध्ययन के रूप में गवेषणात्मक दृष्टि से कुछ पुस्तकें भी निकलने लगी हैं जैसे "महाकविमाघ" गौरीनाथ शर्मा ने ३१ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तिका शारदा भवन काशी से निकाली है तथा संस्कृत साहित्य के इतिहासों, "कवि-चर्चा" और "संस्कृत कविदर्शन" जैसी पुस्तकों में माघ के विषय में काफी छानबीन हो रही है । प्रस्तुत प्रबन्ध भी इसी तरह का एक प्रयत्न है ।

महाकवि माघ पर इस भाँति लिखित रूप में लेखकों के विचार प्रकट कर दिये जाने से कवि तिथि के निर्णय पर, तात्कालिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक स्थिति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला जा सकता है ।

माघ के काल के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत

महाकवि माघ किस काल में हुए यह एक समस्या है विद्वानों के विभिन्न मत यहाँ रखे जा रहे हैं—

(१) 'संस्कृत कवियों का समय निरूपण' बंगला भाषा में लिखी हुई पुस्तक है। श्री सरयू प्रसाद मित्र ने हिन्दी अनुवाद किया है। इसमें माघ कवि को भारवि से भी प्राचीन माना है। ५०६ शकाब्द (५८४ ई०) का उत्कीर्ण लेख मिल चुका है जिसमें भारवि का नाम लिखा है।

(२) पं० याकोबी बीयेना ओरियन्टल जरनल (त्रैमासिक पत्रिका) के द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड में लिखते हैं—

"We therefore cannot place Magh later than about the middle of the sixth century."

(३) डा० भोला शङ्कर व्यास अपने संस्कृत कवि दर्शन मेंमाघ को श्री माली ब्राह्मण बताते हैं और उन्हें राजस्थान के पार्वत्य प्रदेश डूँगरपुर-बाँसवाडा के निवासी लिखते हैं। उनकी सम्मति में माघ का समय सातवीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर (६७५ ई०) भट्टी से लगभग ५० साल बाद मानना अधिक संगत है। भट्टी का समय उनके हिसाब से सातवीं शती का प्रथम चरण (६१० ईस्वी से ६१५ ई० के लगभग) है।

(४) डा० कीथ अपनी हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर में लिखते हैं कि माघ कवि सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए होंगे।

(५) पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ कवि को सातवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में हुए स्वीकार करते हैं।

(६) महामहोपाध्याय डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा 'महाकवि माघ' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका में महाकवि माघ को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए स्वीकार करते हैं।

(७) पं० सीताराम जयराम जोशी तथा विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ का समय ६६० ई० से ६७५ ई० तक बताते हैं।

(८) एस. के. डे. अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि महाकवि माघ सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए होंगे।

(९) श्री हंसराज अग्रवाल अपने संस्कृत साहित्येतिहास में लिखते हैं कि माघ ६५० ई० से ७०० ई० तक रहे हैं।

(१०) श्री भूपनारायण दीक्षित ने अपने 'हिन्दी शिशुपाल वध' या 'माघ काव्य' की भूमिका में लिखा हैं कि बाह्य प्रमाणों से तो सिद्ध है कि महाकवि माघ नवमीं शताब्दी के पहले कभी रहे होंगे किन्तु आन्तरिक प्रमाण उनको सातवीं शताब्दी के मध्य या आठवीं शताब्दी के आरम्भ का बताते हैं।

(११) पं० तारा नाथ अपने एन्साइक्लोपीडिया में उद्भट पंडित की एक पंक्ति को उद्धृत कर रहे हैं "तभाद् वा भारवेर्भाति।" उद्भट पण्डित जयापीड के समकालिक थे जो सन् ८१३ तक काश्मीर के शासक रहे हैं।

(१२) एम. एस. भंडारे अपनी शिशुपाल वध की प्रथम चार सर्ग की आंग्ल भाषा में किये हुए अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं कि माघ कवि आठवीं शताब्दी के उतरार्द्ध तक ही रहे थे इसके पश्चात नहीं।

(१३) पं० छज्जू रामजी विद्यासागर अपने "संस्कृत का सम्पूर्ण इतिहास" में लिखते हैं कि महाकवि का समय आठवीं शताब्दी निश्चित है।

(१४) प्रोफेसर के. बी. पाठक "ओन दी डेट ऑफ माघ" शीर्षक में जो जे. बी. बी. आर. ए. एस. वोल्यूम २० पेज ३०३ से ३०६ में लिखते है, माघ को आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए बताते हैं।

(१५) श्री चन्द्रशेखर पांडे प्राफेसर सनातन धर्म कालेज कानपुर अपनी संस्कृत साहित्य की रूपरेखा में माघ कवि के लिए लिखते हैं कि उनका आविर्भाव काल ८०० ई० के पश्चात का नहीं हो सकता।

(१६) महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद का लिखना है महाकवि माघ नवमीं शताब्दी से तो किसी भी अवस्था में भी अर्वाचीन नहीं है।

(१७) श्रीमान् रामावतार शर्मा अपने "भारतीय इतिवृत में जयापीड़ के पूर्वकालिक कवि को बतलाते हुए माघ को नवमी शताब्दी के आरम्भ में हुआ बताते हैं क्योंकि जयापीड़ ने काश्मीर में शक सम्बत् ७०१ से ७३५ तक शासन किया था।

(१८) पं० नागरदास भावनगर निवासी "श्रीकृष्ण सुभाषित रत्नमंजूषा" में लिखते हैं कि माघ का समय ई० सन् ८५० के लगभग अवश्य है।

(१९) एम. एम. डफ. का लिखना है कि माघ ८६० ई० में थे।

(२०) पं० मैकडोनल्ड का कहना है कि माघ कवि नवमी शताब्दी में तो निश्चित ही थे और वे दशवी शताब्दी के पहले विद्यमान थे।

(२१) बेबर पं० लिखते हैं कि गहाकवि दशवी शताब्दी में रहने वाले हलायुध से कुछ पूर्व हुए हैं (देखिये कृष्णाभाचारी का इतिहास)। अर्थात् इनका कहना है कि माघ नवमी शताब्दी में हुए हैं।

(२२) पं० क्लाट (प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् तथा प्राफेसर) के अनुसार माघ कवि दशम शतक के आरम्भ में थे।

(२३) प० रमेशचन्द्र दत्त अपनी हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन इन्डिया बुक ५ अध्याय १२ मे लिखते है कि माघ कवि १२ वी शताब्दी के है।

इस तरह विद्वानो की सम्मति मे माघ का काल ५ वी शताब्दी से चलकर १२ वी शताब्दी तक पहुँचा है।

अन्तः शाक्ष्य

शिशुपालवध मे कविवशख्याति :—

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः ।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ।। १
कालेमितं तथ्यमुदर्कपथ्य तथागतस्येव जन.सचेताः ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।। २
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तःक्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूज. ।
य वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ।। ३
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन ।
यश्च द्वितीय स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।। ४
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्र चारु (चारु माघ) ।
तस्यात्मजःसुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यव्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।। ५

——:o:——

शिशुपालवध

का

कवि नाम व काव्यनाम वाला चक्रबन्ध श्लोक

सत्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्यभव्यः पुरो
लब्ध्वा धक्षय शुद्धिरुद्धुरतर श्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः सनादहरे—
रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ।। १९-१२०

उपरिलिखित कवियश. प्रशस्ति मे महाकवि माघ ने अपने विषम में तथा अपने कुल के विषय मे सकेत रूप मे सब कुछ बता दिया है। तात्कालिक राजनैतिक, सामाजिक तथा

धार्मिक स्थिति की पृष्ठभूमि में शिशुपालवध काव्य के आत्मकथा वाले ये श्लोक महाकवि माघ की जीवनी पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालते हैं।

माघ काव्य में आई हुई कवि यश: प्रशस्ति माघ के जीवन काल को सुनिश्चित करने में तो योग दे ही रही है किन्तु साथ ही में कवि के काव्य लिखने के उद्देश्य को भी बता रही है। इन पाँचों श्लोकों की व्याख्या हम टीकाकारों के अनुसार ही कर रहे हैं।

यहां पर प्रथम १९वें सर्ग का अन्तिम श्लोक ही लेंगे जो एक रहस्यमय चक्रबंध है। इस श्लोक में कवि ने बड़ी चतुराई से "माघ काव्यमिदं" और "शिशुपालवध:" तो लिखा ही जो स्पष्ट है किन्तु साथ ही उसमें उन्होंने उसी चतुराई के साथ अपने जन्म स्थान का भी नाम रख दिया है। कवि ने जब-जब भी अपने विषय में कहा है वहीं पर कभी समासोक्ति का अथवा अन्य किसी ऐसे ही अलंकार का प्रयोग किया है। इस श्लोक को ध्यान से पढ़ने पर स्वत: ज्ञात होता है कि कवि यहाँ गुर्जर प्रतिहार राजा की ओर संकेत कर रहा है जिसने सन् ७५५ से ८०० ई० तक भीनमाल, जालौर, कन्नौज और मालबा पर अपनी सुदृढ़ शक्ति से शासन किया था।

बहि: साक्ष्य से पता चलता है कि महाकवि माघ का जन्म सन् ७४४ से ८८० ई० के मध्य में कभी हुआ और इसी काल के आसपास उनकी मृत्यु हुई। माघ कवि को सन् ८८० से न आगे रख सकते हैं और न सन् ७४४ ई० के पूर्व ही रख सकते हैं। यह युग भारतीय इतिहास में आन्तरिक संघर्षों का युग है। जब तक वे जीवित रहे उन्होंने अपने सम्मुख कितनी ही लड़ाइयों को होते हुये देखा। उनके जीवन काल में उन्होंने प्रतिहारों की शक्ति को देखा। वत्सराज प्रतिहार अपूर्व शक्तिशाली था [देखिये श्री कन्हैयालाल माणिक-लाल मुन्शी की दी ग्लोरी दट गुर्जर देश हैज़]। वत्सराज ने अपना प्रभुत्व उस भूमि की ओर इतना जमा लिया था कि वह भूमि वत्सभूमि ही थी जिसकी ओर आँख उठाने की किसी की सामर्थ्य नहीं थी। वह उस वत्सभूमि की सीमा को आगे से आगे बढ़ाता जा रहा था। भीनमाल उस वत्सभूमि की राजधानी थी। यह वह वत्सदेश नहीं हे जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। इस वत्सराज ने वीरतापूर्वक युद्धों में विजय प्राप्त करके वत्सभूमि को सदा ही उन्नतशाली बनाया और कन्नौज तक अपना अधिकार प्राप्त किया। सन् ८०० के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय सिंहासनारूढ हुआ जिसकी नागावलोक वाली सेना अजेय थी। उसने अधिक समय तक राज्य नहीं किया। सन् ८३४ ई० में लगभग ३५ वर्ष की अवस्था में मिहिरभोज प्रतिहार वंश के नाम को सूर्य की भाँति प्रकाशित करने के लिए सिंहासनासीन हुए। नागभट्ट द्वितीय, जिसको इतिहास में दंदुक भी कहा जाता है, भोज प्रतिहार आदिबराह का पितामह था। दंदुक का पुत्र रामभद्र गद्दी पर बैठा। वह वेश्यागामी था। दो तीन वर्ष ही राज्य कर पाया कि अपने बेटे मिहिरभोज द्वारा मार डाला गया। हमारे महाकवि माघ उस समय में अवश्य थे। हो सकता है रामभद्र का संसर्ग प्राप्त कर माघ भी विषयाभिलाषी अधिक रहे हों अत: भोज ने गद्दी पर बैठते ही रामभद्र के साथियों को अथवा उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को निकाल दिया हो। महाकवि माघ ने आत्मकथा के रूप में ऐसे कई श्लोक रचे हैं जिनसे उनके देश निर्वासन, अनादर और पुन: राज्याश्रय में आने की बात विदित होती

है।* महाकवि माघ वत्सराज प्रतिहार से लेकर आदिवराह भोज तक जीवित रहे और उन्हीं राजाओं के समय की बहुत-सी बातें इस शिशुपालवध महाकाव्य में किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। प्रतिहार राजा की प्रशंसा में अपनी जन्मभूमि का भी संकेत उन्होंने वत्सभूमि के रूप में किया है जो भीनमाल वा श्रीमाल है। इस श्लोक का श्लिष्ट अर्थ इस प्रकार है—

श्रीकृष्णपक्ष में—

कल्याणमूर्ति, अघविनाशकारी, शुद्धता को प्राप्त, श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित, उन्नत हृदय, अत्यन्तनिर्भय, शत्रु-रूपी हरिणों के लिये व्याघ्र स्वरूप, नित्य अभ्युदयशील भगवान् श्री कृष्ण ने पहले युद्ध के अनुराग से प्रेरित होकर अहंकार युक्त बल का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंहनाद। करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंक कर तत्काल आकाश को आच्छादित कर दिया।

प्रतिहार-राज-पक्ष में—

अत्यन्त योग्य, पापात्मा शत्रुओं के नाश कर देने से निश्चिन्तता को प्राप्त, श्री सम्पन्न वत्सभूमि (भीनमाल, जालौर आदि का प्रान्त) को उन्नति पर पहुँचाने वाले, अत्यन्त निर्भय, शत्रु रूपी हरिणों के लिये व्याघ्र स्वरूप, नित्य ही अभ्युदयशील उस गुर्जर प्रतिहार राजा (वत्सराज अथवा नागभट्ट द्वितीय अथवा मिहिरभोज) ने प्रथम युद्ध की विजय से प्रोत्साहित होकर अहंकार युक्त बल का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंह-गर्जना करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंककर उसी समय आकाश को ढक दिया।

गुर्जर प्रतिहार वंश की नींव डालने वाले यद्यपि नागभट्ट प्रथम थे किन्तु उनके पश्चात् वत्सराज बड़े ही शक्तिशाली शासक हुए हैं जिनकी धाक उस समय चारों ओर थी फिर नागभट्ट द्वितीय भी वैसे ही शक्तिशाली हुए हैं। उन्होंने पिता के राज्य को और अधिक बढ़ाया, यद्यपि इनका शासन काल इतना लम्बा न रहा। वत्सराज का प्रभाव इतना था कि उन्हीं के नाम से वह देश कुछ काल तक 'वत्सभूमि' कहलाने लगा। इस वत्सभूमि की सीमा को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाने वाले नागभट्ट द्वितीय थे जो नागावलोक अथवा नाहड़ भी कहलाते हैं। इन्होंने कन्नौज का महाराज्य प्राप्त किया। आन्ध्र, सैन्धव, विदर्भ, कलिंग और बंगाल के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स (कौशाम्बी जिसकी राजधानी है) और मत्स्य आदि देशों के पार्वत्य गढ़ों को अपने अधिकार में किया।

हो सकता है महाकवि माघ इन्हीं प्रतिहार-राज का गुणानुवाद कर रहे हों जो अपने पता की भूमि (वत्सभूमि) को उन्नति पर पहुँचा रहे थे।

---

*माघ की जीवनी वाले प्रकरण को देखिये।

टीकाकारों का अभिमत—

माघ विषयक प्रथम उपादेय तथ्य इस उपर्युक्त कवि वंश विवरण (वर्णन) से हमको मिलता है। मल्लिनाथ ने इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की केवल वल्लभदेव कृत व्याख्या ही हमको देखने को मिली। अतः शंका स्वतः ही हो जाती है कि कवि वंश वर्णन के श्लोक कहीं प्रक्षिप्त तो नहीं हैं क्योंकि पन्द्रहवें सर्ग में प्रथम ३९ श्लोक के पश्चात् द्वयर्थक ३४ श्लोक रखे गये हैं फिर चालीसवाँ श्लोक आया है वहाँ से मल्लिनाथ ने अपनी व्याख्या दी है। उन ३४ श्लोकों की व्याख्या वल्लभदेवकृत है। जिस तरह प्रक्षिप्त मान कर मल्लिनाथ ने उन श्लोकों की व्याख्या नहीं की उसी तरह इन कवि वंश वर्णन के पाँच श्लोकों की व्याख्या भी उन्होंने सम्भवतः यही मान कर नहीं की कि वे माघकृत नहीं हैं। इस बात की संभावना पर पहले विचार कर लेना चाहिये।

(अ) सन्देहविषौषधि नाम्नी टीका के प्रणेता वल्लभदेव, देवी-शतक के निर्माता आनन्दवर्धन के पुत्र थे। इनके पौत्र कैय्यट के रचित श्लोकों से ज्ञात होता है कि यह दशम शतक के पूर्वार्ध में थे। सर्वंकषा नाम्नी टीका महामहोपाध्याय श्री मल्लिनाथ कृत है। इनका समय चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर १६६० ई० तक माना गया है।

(आ) दोनों टीकाकारों में वल्लभदेव पूर्व के हैं और इन्होंने सब श्लोकों की व्याख्या की है यदि उनको ज्ञात होता कि ये प्रक्षिप्त हैं तो इस बात का कोई न कोई संकेत अवश्य करते चाहे व्याख्या भले ही उन्होंने कर दी हो। मल्लिनाथ ने न तो द्वयर्थक श्लोकों की व्याख्या की और न इन कविवंशवर्णन वाले ५ श्लोकों की ही व्याख्या की। हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला, काशी-संस्कृत सीरीज़ संस्था काव्य ६९ के "शिशुपाल वध" दोनों (टीका सहित) के ३९ वें श्लोक में नीचे लिखा गया है कि "श्लोकोऽयं मुद्रित-पुस्तकान्तरे मल्लिनाथेन प्रक्षिप्त-तयोपेक्षितानां चतुस्त्रिंशच्छलोकानामग्रे दृश्यते" फिर जो एक श्लोक दिया गया है उसके नीचे "इत आरभ्यचतुस्त्रिंशच्छलोकान् मल्लिनाथः प्रक्षिप्तान् मत्वा न व्याख्यातवान्। मोहमय्यां मुद्रित-पुस्तके तु वल्लभदेव-व्याख्यया सहेते संगृहीताः। परं सा व्याख्या अस्मदादर्श-पुस्तकाद्भिन्नरूपेति द्विविधापि संगृहीतास्माभिरत्र।"

(इ) मल्लिनाथ ने न मालूम किस आधार पर इन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। हो सकता है कि ये ५ श्लोक प्रथम पुरुष में हैं उत्तम पुरुष में नहीं अतः प्रक्षिप्त मान लिये गये हों। मल्लिनाथ के समय तक आते-आते माघ कवि पर निबन्ध भी लिखे जाने लग गये थे। प्रभावकचरित्रकार ने लिखा है कि मैंने माघ के विषय में जो कुछ लिखा है वह सब जनश्रुति के आधार पर है। जनश्रुतियों में चाहे बहुत सी बातें इधर-उधर की होती हैं किन्तु फिर भी सत्य का अंश तो कुछ न कुछ होता ही है। "कवि वंश वर्णन" चाहे कवि की तूलिका से न भी निकला हो किन्तु उसमें जो वर्णन है उसमें सत्य का अंश सम्भव है क्योंकि कवि को दिवंगत हुए इतना लम्बा समय न हुआ था कि नवमी या दशवीं शताब्दी के विद्वान् उनके नाम, ग्राम, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि के विषय में नितान्त अनभिज्ञ हों। अतः कवि वंश का वर्णन कवि का ही लिखा हुआ है जिसका प्रमाण है पाँचवाँ श्लोक जिसमें स्पष्ट

कहा गया है कि उसी दत्तक के पुत्र माघ ने सुकवि-कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से शिशुपाल वध नामक काव्य को बनाया जिसमें श्री कृष्ण का चरित्र है और प्रति सर्ग की समाप्ति पर "श्री" अथवा उसका पर्यायवाची कोई दूसरा शब्द अवश्य दिया गया है।

(ई) जिस कवि ने १६ सर्ग के अन्तिम श्लोक संख्या १२० में चक्रबन्ध में किसी रूप में "माघ काव्यमिदम्" "शिशुपाल वधः" तक लिख दिया तो फिर वह अपने वंश का वर्णन भी सूक्ष्म रूप से कर दे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

(उ) यश की अभिलाषा रखने वाला कवि अपने वंश का वर्णन सूक्ष्म रूप में अवश्य करेगा यदि वह उच्चवंशावतंस है। बहुत ही पूर्व के कवियों में नाम बताने की रीति नहीं थी। किन्तु जिस युग में माघ थे वह युग प्रतिद्वंद्विता का युग था। तू बड़ा कि मैं ? फिर कवि अपने वंश का वर्णन करके युगों तक प्रसिद्धि लूटने का श्रेय क्यों न ले लेता।

चाहे प्रक्षिप्त हों अथवा कवि के स्वयं के लिखे हों, इन श्लोकों से माघ के विषय में हमें निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं—

(१) माघ के पितामह सुप्रभदेव थे। वे सर्वाधिकारी (महामन्त्री) पुण्यकर्मों में सहज अधिकार रखने वाले (धर्माधिकारी) राजा की ही भाँति थे। सब टीकाकारों ने सुप्रभ-देव को मुख्य आमात्य माना है। इससे हम भी सहमत हैं कि वर्मल नाम के राजा के वे सर्वाधिकारी थे किन्तु "सुकृताधिकार" शब्द एक ऐसा आ जाता है इससे हमारी सम्मति कुछ भिन्न हो जाती है। आज सुकृताधिकार तो देवस्थान अधिकारी के हाथ रहता है जो सर्वाधिकारी है। राजा वर्मल ने यह समझ कर कि श्री सुप्रभदेव परम धार्मिक निरासक्त दृष्टि वाले सात्विक स्वभाव के अपरदेव (ब्राह्मण) हैं अतः इनको सर्वाधिकारी (मुख्य अधिष्ठाता) करके इनके अधिकार में सुकृत कर्मों का ही अधिकार रखा। देवस्थान, अतिथि सत्कार, दान, पुण्य आदि का विभाग इनको देकर उसी का अध्यक्ष नियत कर दिया था। सुप्रभदेव समय-समय पर राजा को उपदेश भी देते रहते थे जिसको महाराज बिना आपत्ति के स्वीकार करते थे। सुकृत कर्म में वे सर्वाधिकारी तो थे ही।

(२) माघ के पिता का नाम दत्तक या कुमुद पण्डित था। दत्तक परम उदार क्षमा-शील, कोमल प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ थे। युधिष्ठिर को देखिये या दत्तक को देखिये। सब को आश्रय देने के कारण ये दत्तक "सर्वाश्रय" भी कहलाते थे। पृथ्वी के निवासियों को प्रसन्न करने के कारण कदाचित् इनको साहित्य रसिक 'कुमुद पण्डित' नाम से सम्बोधित करते थे।

(३) उनके पितामह के समय में जहाँ पर सुप्रभदेव रहते थे वर्मलात या वर्म्मल नाम का राजा राज्य कर रहा था।

(४) दत्तक या कुमुद पण्डित के पुत्र माघ है जिन्होंने लक्ष्मीपति (श्रीकृष्ण) के चरित्र का कीर्तन करते हुए शिशुपालवध नाम का महाकाव्य बनाया और इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री शब्द को किसी न किसी रूप में लाया गया। काव्य बनाने का उद्देश्य केवल "सुकवि कीर्ति" प्राप्त करना था जिसकी उपलब्धि सरल नहीं थी।

(५) प्रत्येक सर्ग के अन्त में लिखा हुआ मिलता है "इति श्री भिन्नमालव वास्तव्य-दत्तकसूनोर्महा वैयाकरणस्य माघस्य कर्तौ शिशुपालवध महाकाव्ये" (श्री दत्तक का पुत्र भिन्न-माल का रहने वाला व्याकरण शास्त्र में निष्णात है उसी माघ ने शिशुपाल वध महाकाव्य का यह सर्ग समाप्त किया)।

(६) माघ की सब कृतियों में राजा का नाम वर्म्मल है तो कुछ में वर्म्मलात। कुछ प्रतियाँ ऐसी भी प्राप्त हैं जिसमें धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ दीख पड़ता है, तो कुछ प्रतियों में धर्मलात, चर्मलात, धर्मदेव, धर्मलाख्य, चर्मनाभ, निर्मलान्त है।

(७) वंश वर्णन में तो राजा किस देश का था, सुप्रभदेव कहाँ का निवासी था कोई संकेत नहीं। राजा के यहाँ नौकरी करने के लिये किसी देश से आकर बस गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

(८) प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर जो लिखा हुआ मिलता है केवल इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि माघ कवि "भिन्नमालव" का रहने वाला था। चक्रबन्ध (१९-१२०) श्लोक से भी ज्ञात होता है कि वह वत्सभूमि का था जिसको भीनमाल कहा जाता है।

(९) वंशाबलि में माघ का पिता दत्तक है और प्रति सर्गान्त भी दत्तक सूनू है अतः यह तो सुनिश्चित हुआ कि दत्तक उसके पिता थे जो भिन्नमाल में रहा करते थे।

सारांश

"शिशुपाल वध" महाकाव्य के रचयिता व्याकरण-शास्त्र के दिग्गज पंडित माघ थे। माघ का जन्म स्थान भिन्नमाल था। ये दत्तक के पुत्र थे। दत्तक परम उदार, क्षमाशील, कोमल प्रकृति एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। दत्तक में ये गुण थाती के रूप में अपने पिता सुप्रभ-देव जो उस समय दूसरे युधिष्ठिर के तुल्य थे क्रमागत हुए थे। ये निरासक्त दृष्टि वाले रजोगुण रहित शुद्ध प्रकृति के ब्राह्मण थे। सत्यवक्ता एवं धर्मात्मा इतने थे कि इन्होंने अपने गुणों से युधिष्ठिर को भी विस्मृत करा दिया था। यदि दत्तक पिता के गुणों से युक्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? भूदेव सुप्रभदेव राजा वर्म्मल (राजा वर्मलात) के यहाँ "सर्वाधिकारी" के पद पर आसीन थे और जितने भी सुकृत कार्य थे उन कार्यों के बिना राजा के पूछे हुए सुप्रभदेव को करने का अधिकार राजा से प्राप्त था। राजा वर्मलात सुप्रभदेव के वाक्यों को तथागत (बुद्ध). के उपदेश की भाँति बिना संकोच या अनुरोध के स्वीकार करते थे। इन्हीं सुप्रभदेव के पौत्र दत्तक के पुत्र माघ ने कठिनता से प्राप्त करने योग्य सुकविकीर्ति के निमित्त ही श्री कृष्ण के चरित्र के कीर्तन का आश्रय लेते हुए शिशुपाल वध नाम का काव्य बनाया जिसकी मोटी सी पहचान "श्री" शब्द प्रत्येक सर्ग के अन्त में मिलती है। इस शिशुपाल वध काव्य का नाम कवि ने "माघ-काव्य" भी किया है। १९ वें सर्ग के अन्त का चक्रबन्ध है यदि इसे ध्यान से पढ़ें तो "माघ काव्यमिदम्" "शिशुपाल वधः" ये दो पद स्पष्ट दीख पड़ेंगे।

काव्य में आई हुई अन्तर्कथाओं से सम्बद्ध घटनाएँ तथा समसामयिक व्यक्ति

प्रबन्धों तथा शिलालेख आदि वहि:साक्ष्य के द्वारा माघ सम्बन्धी तथ्यों को उपस्थित करने के पश्चात् अब अन्त:साक्ष्य का भी उपयोग कर लेना आवश्यक है। कवि वंश ख्याति के प्रकरण में जो कुछ कहा गया है वह भी अन्त:साक्ष्य ही है उसे सीधे कवि के जीवन वृत्त के निर्माण में बहुमूल्य सहायता मिलती है पर उसके प्रामाण्य की संदिग्धता से दूसरी बातों के अनुसंधान की भी आवश्यकता है यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

महाकवि माघ ने शिशुपाल वध के द्वितीय सर्ग के श्लोक संख्या ११२ में राजनीति का वर्णन करते हुए कहा है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबंधना।
शब्दविद्येव नोभाति राजनीतिरपस्पशा ॥११२॥ २ सर्ग।

अर्थ—नियम के विरुद्ध एक पैर भी जिसमें रखा नहीं जाता हो, भृत्य आमात्य आदि की जो उत्तम जीविका हो और जिसमें कार्य के अन्त में पारितोषिक आदि की व्यवस्था हो ऐसी राजनीति गुप्तचरों के बिना ऐसे व्याकरण शास्त्र की भाँति शोभा नहीं देती जिसमें सूत्रों के अनुसार पदों का न्यास का प्रतिपादन सूत्र-व्याख्यान रूप काशिकादि ग्रन्थ और उत्तम महाभाष्यादि निबन्धन तो हों पर (आरम्भ में उसका) पस्पश (महाभाष्य के प्रथमाध्याय का प्रथम आह्निक) न हो।

स्पष्टीकरण : जिस भाँति अपस्पशा अर्थात् शास्त्रारम्भ समर्थक प्रयोजन ग्रन्थ के बिना व्याकरण विद्या "अनुत्सूत्रपदन्यासा" "सद्वृत्ति" और "सन्निबन्धना" होकर भी नहीं सुशोभित होती उसी प्रकार उपर्युक्त गुणों से युक्त राजा की नीति भी अपस्पशा (अर्थात् योग्य गुप्तचरों की सुव्यवस्था से रहित होकर) नहीं सुशोभित होती। पंतजलि ने व्याकरण-शास्त्र का प्रयोजन बतलाते हुए अपने महाभाष्य में कहा है—

रक्षोहागमलघ्वसन्देहा: प्रयोजनम् इसी को पस्पशाह्निक भाष्य कहा जाता है। जब तक यह प्रयोजनात्मक पस्पशाह्निक भाष्य नहीं होता, तब तक व्याकरण विद्या की सार्थकता पूर्णत: परिलक्षित नहीं होती क्योंकि—

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥

अर्थात् सभी शास्त्रों अथवा कर्मों का अब तक प्रयोजन नहीं बतला दिया जाता तब तक उनमें कौन प्रवृत होता है, कोई नहीं। इस श्लोक में अपस्पशा में शब्दश्लेष, सद्वृति और

सन्निबन्धना में अर्थश्लेष तथा अनुत्सूत्रपदन्यासा में उभय श्लेष तथा शब्द-विद्येव इसमें पूर्णोपमा अलंकार है। "न्यास" "काशिका" और महाभाष्य ये पाणिनीय व्याकरण के अन्यतम प्राचीन ग्रंथ हैं।

(१) उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो गया होगा कि "काशिका और न्यास इन दो व्याकरण ग्रंथों की ओर महाकवि माघ ने संकेत किया है। "काशिकावृत्ति" का मल्लिनाथ और वल्लभदेव दोनों टीकाकारों ने भी स्पष्ट उल्लेख किया है। "काशिकावृत्ति" की रचना वामन और जयादित्य ने ६५० ई० में की थी। अतः यह निश्चित है कि माघ इस समय के बाद ही हुए होंगे, किन्तु उक्त श्लोक में "न्यास" शब्द से किस ग्रंथ विशेष की ओर संकेत है, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रो० के. बी. पाठक महोदय (इण्डियन एन्टीक्वेरी १९१२ पृ. २३५ और जे. बी. आर. ए. एस. वाल्यूम २३ पृष्ठ १८) का कहना है कि उक्त न्यास से अभिप्राय काशिकावृत्ति की जिनेन्द्रबुद्धि रचित न्यास नामक टीका से है जिसकी रचना लगभग ७०० ई. में हुई है। **उनके मतानुसार माघ का समय इस आधार पर ६५० ई० के आसपास सिद्ध होता है।**

श्री सीताराम जयराम जोशी अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में चित्तौड़ के द्वितीय भोज के ६५० ई० से ६७५ ई० तक के राज्यकाल के आधार पर, सप्तम शतक के उत्तरार्द्ध में हुआ बताते हैं। श्री ओझा जी भी बसन्तगढ़ के शिलालेख की तिथि सन ६२५ ई० निर्धारित करते हुए माघ को सप्तम शतक के उत्तरार्द्ध का सिद्ध करते हैं। यदि इस बात को सत्य मानें कि माघ ने जिनेन्द्रबुद्धि से न्यास की ओर संकेत किया है तो उनका समय ६५० ई. से ७०० ई० के बीच का नहीं हो सकता।

माघ ने जिनेन्द्रबुद्धि के न्यास की ओर संकेत किया है इस पर विद्वानों को सन्देह इसलिये होने लग गया कि जिनेन्द्रबुद्धि के पूर्व भी तो बहुत से न्यास ग्रंथ लिखे जा चुके थे। जिनेन्द्रबुद्धि ने स्वयं कुणि, चुल्लि तथा नल्लूर आदि के न्यास-ग्रंथों का उल्लेख किया है। बाण भट्ट ने जो इस न्यास की रचना के पहले अवश्य हो चुके थे अपने हर्ष-चरित में ठीक इसी श्लेष की उद्‌भावना की है—कृतगुरु-पदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि। "

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि माघ का बौद्ध तथा जैन मान्यताओं के प्रति कुलक्रमागत प्रेम था। इन दोनों धर्मों को उनके पितामह सुप्रभदेव ने उदारता से देखा तथा दत्तक ने भी, जो माघ के पिता थे। माघ के चचेरे भाई "सिद्ध" पर तो बौद्ध और जैन धर्म का साक्षात् प्रभाव था ही। (इस बात का वर्णन पहले किया जा चुका है।) इस बात को समक्ष रखते हुए यह कहा जा सकता है और ऐसा कहना ठीक भी है कि माघ ने विद्वान् जिनेन्द्रबुद्धि के ग्रंथों का अवलोकन किया होगा और उक्त श्लोक में उन्हीं के न्यास की ओर संकेत किया होगा। दूसरे हर्ष के पश्चात् वे हुए होंगे क्योंकि उनके नागानंद नाटक का उसको ज्ञान था। इन आधारों से माघ का सप्तम शतक में होना संभव नहीं लगता। चाहे कितने ही न्यास ग्रंथ जिनेन्द्रबुद्धि के पूर्व क्यों न लिखे गये हों इससे माघ ने जिनेन्द्रबुद्धि के न्यास की ही ओर संकेत किया है इस बात पर असर नहीं पड़ता। **अतः माघ का समय ७४४ ई० से ८४४ के आसपास का हो सकता है।**

संस्कृत व्याकरण साहित्य के इतिहास के लेखक युधिष्ठिर मीमांसक काशिका और शिशुपालवध पर लिखते हुए "अनुत्सूत्रपदन्यासा" के श्लोक का उल्लेख करते हैं। वे लिखते हैं, इसमें सद्वृत्ति से काशिका की ओर संकेत है। शिशुपालवध के टीकाकार सद्वृत्ति और न्यास पद से काशिका और जिनेन्द्रबुद्धि विरचित न्यास का संकेत मानते हैं और उसी के आधार पर न्यास के सम्पादक भट्टाचार्य ने माघ का काल ८०० ई. (८५७ बिक्रमी) माना है (देखिये न्यास की भूमिका पृष्ठ २६) सीरदेव के अनुसार भागवृतिकार ने माघ के कुछ प्रयोगों को अपशब्द माना है (अतएव तत्रैव सूत्रे १-१-२७ भागवृत्ति–पुरातन मुने मुनिनाम्–किरात ६।१६ इति "पुरातनी नदी:" माघ १२।६०, इति च प्रमाद पाठावेतौ, गतानुगतिकतया कवयः प्रयुज्यते, न तेषां लक्षणं चक्षुः, परिभाषावृत्ति पृष्ठ १३७) ।" भागवृत्ति की कुछ ही रचना सं० ७०१-७०५ के मध्य हुई। सब की नहीं।

"महाकवि माघ और न्यास पर इसी इतिहास में लिखते हुए मीमाँसकजी लिखते हैं कि जयादित्य और वामन विरचित सम्मिलित वृत्ति काशिका नाम से प्रसिद्ध है। काशिका की सबसे बड़ी प्राचीन व्याख्या जिनेन्द्रबुद्धि विरचित काशिका विवरण पंजिका है। वैयाकरण निकाय में यह न्यास नाम से प्रसिद्ध है। यह व्याख्या जयादित्य और वामन (८०० ई.) की सम्मिलित वृति पर है। (काशयति प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका जयादित्य विरचिता वृत्तिः) जयादित्य की मृत्यु विक्रमी संवत् ७१८ के लगभग हुई बताते हैं, वामन को ८०० ई. के लगभग बताते हैं। काशिका १. ३. २३ में भारवि का एक पद्यांश उद्धृत है (संशय्यकर्णादिषु तिष्ठतेयः किरात ३।१४)। महाराज दुर्विनीत ने किरात के पंद्रहवें सर्ग की टीका लिखी थी। दुर्विनीत का राज्य काल ५३६ से ५६६ ई० तक है अतः भारविः सन् ५३६ के पूर्ववर्ती है। युधिष्ठिरजी का कहना है कि यही काशिका की पूर्व सीमा है। काशिकावृत्ति की रचना काशी में हुई। यह व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस काशिका की विशेषता है कि काशिका से प्राचीन कुणि आदि वृत्तियों में गणपाठ नहीं था, इसमें गणपाठ का यथा स्थान सन्निवेश है इसके अतिरिक्त अष्टाध्यायी की प्राचीन विलुप्त वृत्तियों और ग्रंथाकारों के अनेक मत इस ग्रंथ में उद्धृत हैं जिनका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता, इनमें अनेक सूत्रों की व्याख्या प्राचीन वृत्तियों के आधार पर लिखी है अतः उनसे प्राचीन वृत्तियों के सूत्रार्थ जानने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके अन्तर्गत उदाहरण, प्रत्युदाहरण प्रायः प्राचीन वृत्तियों के अनुसार हैं जिनसे अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान होता है।

न्यास का अर्थ मल्लिनाथ ने "वृतिव्याख्यान ग्रंथ विशेषो" और वृत्ति का अर्थ "काशिकाख्य-सूत्र-व्याख्यान-ग्रंथ-विशेषो" लिखा है। ऐसा ही अर्थ दूसरे टीकाकारों ने भी किया है अतः माघ काशिका और न्यास की रचना के पश्चात् ही हुए।

इन सब का सार यह निकला कि जयादित्य और वामन सातवीं शताब्दी के मध्यकाल में और जिनेन्द्रबुद्धि आठवीं के आरम्भ में थे अतः माघ सन् ८०० के कुछ वर्ष आगे तक आ जाते हैं।

(२) श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु (चारुमाघः) ।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।।५।। (वंशवर्णनम्) ।।

उपर्युक्त श्लोक किस उद्देश्य को लेकर बनाया है उस पर टीकाकार श्री बल्लभदेव लिखते हैं, "कया हेतुना सुकविकीर्तिदुराशया सुकवीनां श्रेष्ठ-विदुषां वररुचि-सुबन्धु-सोमनाथ-भवभूतिः क्रीड़ाचन्द्र-कालिदास-विल्हरण-भारवि-बाण-मयूरादि- कवीनां या कीर्त्तिः तत्र या दुराशा दुरभिलाषस्तया महाकविकीर्ति-लिप्सयेत्यर्थः । दुष्टत्वं त्वाशया स्वल्पबुद्धित्वेन सुकवि-कीर्तेरप्राप्त्यत्वात् ।" टीकाकार श्री बल्लभदेव ने भवभूति का नाम लिखा है कि जैसे उपर्युक्त कवियों ने यश प्राप्त किया ऐसे यश की प्राप्ति में मुझ माघ के लिए आशा एक दुराशा मात्र होगी क्योंकि कहाँ तो मेरी स्वल्प बुद्धि और कहाँ उक्त कवियों की भाँति मेरी सुकवि यशप्राप्ति लिप्सा । इससे तो स्पष्ट है कि भवभूति माघ के पूर्ववर्ती अवश्य हैं चाहे वे कुछ ही वर्ष पूर्व के हों । इतना हो सकता है कि भवभूति की वृद्धावस्था हो और माघ युवावस्था में अपने वैभव के दिनों को आनन्द में मग्न होकर बिता रहे हों किन्तु माघ के पूर्व उन्होंने, जैसा टीकाकार भी लिखते हैं ख्याति अवश्य प्राप्त कर ली होगी । यहाँ पर उक्त श्लोक से सम्बन्धित माघ के समकालीन भवभूति के विषय में कुछ लिखना समीचीन होगा ।

संस्कृत के महान नाटककारों में भवभूति का नाम कालिदास के पश्चात् ही लिया जाता है । उनके स्थिति-काल के विषय में वे अधोलिखित प्रमाण उपस्थित करते हैं—

(१) मम्मट (११०० ई०) धनंजय (९९५ ई०) और सोमदेव (९५९ ई०) ने अपनी रचनाओं में भवभूति के ग्रन्थों से उदाहरण दिये हैं ।

(२) राजशेखर (९०० ई०) ने अपने को भवभूति का अवतार बताते हुए कहा है—

"वभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि-भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ।। १ ।। १९ । बा० रा० ।।"

(३) वामन (८०० ई०) नें अपनी काव्यालंकार सूत्रवृति में भवभूतिकृत उत्तर-रामचरित के इयं गेहे लक्ष्मी' (१।३८) इस श्लोक को उद्धृत किया है । अतः भवभूति के स्थितिकाल की नीचे की सीमा ७५० ई० के लगभग सिद्ध होती है ।

(४) बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास, कालिदास जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ भवभूति का उल्लेख नहीं किया है । बाण का समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था अतः यह भवभूति के समय की उपरि सीमा है और वे ६५० से ७५० ई० के मध्य हुए होंगे ।

(५) कल्हणकृत राज-तरंगिणी (११४८ ई०) से विदित होता है कि भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे । वे लिखते हैं—

"कविवक्पति राजःश्री भवभूत्यादि सेवितः
जितौ ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिबन्दिताम् । ४।१४४।।

इसके पहले (४।१३४) कल्हरा ने बतलाया है कि काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ ने इन्हीं यशोवर्मा को परास्त किया था। डा० स्टीन का मत है कि यह घटना ७३६ के पूर्व की नहीं हो सकती (देखिये राजतरंगिणी का अनुवाद स्टीन का लिखा हुआ पृष्ठ ८९ और उसके नोट-चतुर्थ अध्याय का १३४) राजतरंगिणी के उक्त पद्य (४।१४४) में भवभूति के साथ वाक्पति-राज का नाम आया है। वाक्पति राज ने अपने प्राकृत काव्य गौंड़वहो में यशोवर्मा का यशोगान किया है। इस काव्य के अधूरे होने से प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज ने अपने काव्य की रचना यशोवर्मा के विजयी दिनों में प्रारम्भ की थी, किंतु काश्मीर के राजा ललितादित्य के हाथों में वाक्पतिराज ने भवभूति की इस भाँति प्रशंसा की है—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृत रसकरणइवस्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषुकथा निवेशेषु ।।७९९।।

इस पद्य के 'अद्यापि' शब्द से प्रतीत होता है कि भवभूति वाक्पतिराज के पहले हुए थे और यशोवर्मा के राज्य के पूर्वार्द्ध में उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। इन प्रमाणों के आधार पर पाण्डेयजी भवभूति को ७०० ई० के समीप ही हुए बताते हैं।

गंगापुस्तक माला का ३८ वां पुष्प 'भवभूति' में लेखक ज्वालादत्त शर्मा ने जे० एफ० वाटसन् और जोन विलियम के नाम के पाश्चात्य पण्डित ऐतिहासिक रिसर्च ने नवें खण्ड के २०३ पृष्ठ पर चामुण्डा के सम्बन्ध में लिखा है।

"हिन्दू लोग चामुण्डा के सामने नरबलि तक करते थे। आठवीं शताब्दी के प्राचीन हिन्दू कवि भवभूति मालतीमाधव नाटक में लिखते हैं कि अघोरघण्ट मालती को चामुण्ड पर चढ़ाने के लिए ले गया था।"

श्री शर्मा भवभूति के प्रादुर्भाव को लिखते हुए राजतरंगिणी के चौथे अंक के "श्लोक संख्या १४४ में जो लिखते हैं (श्री पाण्डेयजी ने भी ऊपर उद्धृत कर दिया है) उसका अर्थ है "वाक्पतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवित यशोवर्मा ने ललितादित्य से पराजित होकर उसकी स्तुति की।" इस श्लोक के अनुसार भवभूति कान्यकुब्जाधिपति यशोवर्मा की सभा में विद्यमान थे। यशोवर्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने हराया था। डा० रजनीकान्त सेन एन० डी० ने इस मन्तव्य के प्रकाश के समय कहा था कि ललितादित्य के समसामयिक कान्यकुब्ज नरेश यशोवर्मा आठवीं शताब्दी में नहीं हुए हैं। वे आठवीं शताब्दी के आरम्भ में विद्यमान थे। उन्होंने यह भी कहा था कि हर्षवर्द्धन और श्री ललितादित्य एक व्यक्ति नहीं है। ये यशोवर्मा से पहले और पीछे यथाक्रम कान्यकुब्ज के राजा हुए थे। हुएनत्सांग शीलादित्य के समय में भारत आये थे। जनरल कनिंघम के मत में ललितादित्य ने ६६३ ई० से ७२९ ई० तक राज्य किया था इस हिसाब से भवभूति आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में कान्यकुब्ज की सभा में विद्यमान थे।

राजतरंगिणी के मत में वाक्पतिराज नाम के एक और कवि **यशोवर्मा** की सभा में विद्यमान थे। वाक्पतिकृत "गौडवहो" से ज्ञात होता है कि यशोवर्मा ने **गौड** राज्य को पराजित किया था। इस वाक्पतिराज ने अपना परिचय देते हुए लिखा है, "भवभूति-समुद्र से जो काव्यामृत निकाला गया है उसकी कुछ एक बूंदें उसके गौडवहो काव्य में स्पष्ट पड़ेंगी। इस "गौडवहो" काव्य के प्रमाण से तो यह बात दृढ़ हो गई है कि **भवभूति आठवीं शताब्दी में थे**। बालरामायण नाटक में राजशेखर ने लिखा है कि पहले बाल्मीकि फिर भर्तृहरि भूमण्डल पर उत्पन्न हुये तत्पश्चात् भवभूति के नाम से जो कवि पृथ्वी पर पैदा हुआ वही राजशेखर रूप में अब वर्तमान है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि **राजशेखर से पूर्व भवभूति की मृत्यु हो गई थी**। श्री माधवाचार्य ने शंकरदिग्विजय में लिखा है, बालरामायण-प्रणेता राजशेखर शंकराचार्य के समसामयिक थे।" इस मत से निर्णय होता है कि आठवीं शताब्दी के अंत में या नवमीं शताब्दी के आरम्भ में राजशेखर जीवित थे। **शंकराचार्य ने ७८५ ई० में जन्म लिया था।**

श्रीयुत बाबू नगेन्द्रनाथ व वसु द्वारा संकलित विश्वकोष में **कुमारिल भट्ट** के प्रस्ताव में-मालतीमाधव की विशेष प्रतियों की बात है। विभिन्न प्रतियों में "इति कुमारिल शिष्य कृते' इति कुमारिल स्वामी प्रसाद प्राप्त वाग्वैभव श्रीमदुम्बेकाचार्य विरचिते मालती माधवे षष्ठोऽङ्कः आदि देखकर भवभूति को कुमारिल का शिष्य बताते हैं। कुमारिल भट्ट सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में विद्यमान थे। उनके शिष्य श्रीकण्ठ, भवभूति, आठवीं शताब्दी के होंगे। मन्तव्य पढ़ते समय श्रीनगेन्द्रनाथ ने कहा था कि आजमगंज में कुछ जैनग्रन्थों की आलोचना से उन्हें मालूम हुआ है कि बंगाल के **जैन पंडित बप्प भट्ट के साथ भवभूति का साक्षात्कार हुआ था। बप्प भट्ट ने भवभूति को जैन संप्रदाय में सम्मिलित करने की चेष्टा की थी।** मिहिर भोज पर परिचयात्मक टिप्पणी लिखते समय इसने यह बात प्रदर्शित की थी कि भीनमाल जैन धर्म का गढ़ था और माघ के चचेरे भाई सिद्धार्थ उपाश्रय में रात भर रहे और दूसरे दिन ही जैनधर्म में दीक्षित हो गये। हमने वहाँ बताया था कि वह बौद्ध धर्म के पूर्णह्रास का युग था और उस समय वहाँ जैन धर्म का प्रचार था। भवभूति और बप्प भट्ट से भी यही बात प्रदर्शित हो रही है कि जैन धर्म का प्रचार था। स्मरण रखना चाहिये कि हर्ष सम्राट् तक बौद्ध धर्म जोर पर था किन्तु उनकी मृत्यु के कुछ समय पश्चात् से बौद्ध धर्म का ह्रास आरम्भ होने लगा था। यही कारण है कि हम वर्मलात राजा में तथागत के उपदेशों में श्रद्धा की बात देख रहे हैं। माघ के पितामह सुप्रभदेव, हो सकता है बौद्ध धर्म को उदार दृष्टि से देखते हों। कुलक्रमागत संस्कारों के कारण उनके पौत्र के हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति सद्भाव हो सकता है। सिद्धर्षि का जैन धर्म में दीक्षित होना और भवभूति को भी जैन धर्म के प्रभाव में लाने की चेष्टा इस बात का प्रमाण है कि माघ और भवभूति एक दूसरे के निकट के युग में ही थे। माघ ने भी एक जगह श्रीकृष्ण को जिनः शब्द से सम्बोधित किया है—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः॥ १९। ११२॥

इसके अतिरिक्त जैनियों में माघ काव्य के पढ़ने की परम्परा अधिक पायी गयी है। इस बात की चर्चा हमने परिशिष्ट भाग में की है कि तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक माघ काव्य की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ जैनाचार्यों ने ही अपने शिष्यों के द्वारा अधिकतर करायी हैं। डा० हाण्डिक ने अभी-अभी 'यशस्तिलकचम्पू' पर जो एक ग्रन्थ लिखा है उसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि जैन कवियों ने अनेक काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इन्हीं काव्यों में उन्होंने माघ महाकाव्य का नाम भी लिया है। इससे यह अनुमान होता है कि वह युग ही कदाचित जैनियों का रहा है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भवभूति और माघ प्राय: एक ही समय के थे, भवभूति कुछ पहले और माघ कुछ बाद में, अधिक अन्तर नहीं। भवभूति बंग राजधानी में आये थे, हो सकता है माघ भी इसी भाँति इधर-उधर पर्यटन करते हुए आनन्दवर्धन व अमोघवर्ष के सम्पर्क में आ गये हों।

भवभूति से कुछ समय पहले और उनके समय में कौन-कौन ग्रन्थकार हुए इस पर विचार करना है। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुबन्धु ने वासवदत्ता, बाण भट्ट ने हर्ष-चरित, कादम्बरी और चण्डिकाशतक की रचना की। हर्षवर्धन के समय में बाण के श्वसुर मयूर कवि ने सूर्यशतक बनाया। बंगाल में फरीदपुर है उस जिले में कोडकन्दी ग्राम के निवासी मयूर समझे जाते हैं, ऐसा बी० एस० आप्टे का मत है (देखिये भवभूति पृष्ठ ४१) माधवाचार्य के मत में दण्डी बाण के समय में थे। मि० तैलंग के मत में विशाखदत' मुद्रा-राक्षस के प्रणेता सातवीं या आठवीं शताब्दी में विद्यमान थे। इस लिये यह विशाखदत भी भवभूति के समसामयिक या कुछ ही पहले के हुए।

सातवीं शताब्दी में जितने ग्रन्थकारों का जन्म हुआ है वे सभी दीर्घ समासप्रिय थे। दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है, काव्य की असली शक्ति समास-बहुलता पर निर्भर है। भवभूति का जन्म इन कवियों के कुछ समय बाद हुआ था। अत: वे इस रीति का त्याग नहीं कर सके। उनके काव्य में भी दीर्घ समास हैं। यही बात महाकवि माघ में भी मिलती है।

भवभूति के काव्य का उनके समय में विशेष आदर नहीं हुआ। उस समय कदाचित् कठोर समालोचक रहे होंगे। कवि बनना साधारण बात न होगी। मालती माधव के नवें अंक में भवभूति लिखते हैं—

> ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्
> जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
> उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
> कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

उत्तर रामचरित के पहले अंक में भी "सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्यवचनीयता······" से कवि का आशय है कि अपनी इच्छा के अनुसार निर्भय हो कर कविता करनी चाहिये, कविता कैसी ही अच्छी क्यों न हो, उसमें से दोष निकाले ही जा सकते हैं। दुष्ट मनुष्य स्त्रियों के सतीत्व और वाक्य के साधुत्व की सदा निन्दा करते रहते हैं। इतना होने पर भी हम देखते हैं कि भवभूति प्रतिपक्षियों के आक्षेपों से मग्नोत्साह नहीं हुए उल्टे उससे उनका आत्माभिमान

ही जाग्रत हुआ। यह बात हम महाकवि माघ में भी पाते हैं। उन्होंने कहा है, मैं सुकवि कीर्ति को, जिसका प्राप्त करना कठिन है, पाना चाहता हूँ। सुकविकीर्ति दुराशया "से माघ का यही तात्पर्य है। चाहे उस युग के कवियों ने इनको स्वीकार न किया हो, किन्तु बाद के कवियों ने तो उसे अवश्य स्वीकार कर लिया। जनश्रुतियों से तो ज्ञात होता है कि वे दो बातों में तो अपने समय में ही यशस्वी हो चुके थे—दान में और कवित्व में। "माघ कवि आये हैं," 'ऐसी सूचना द्वारपाल ने आकर भोज को दी, इससे स्पष्ट है कि वे तब तक उनकी प्रसिद्धि कवि रूप में हो चुकी थी और अब वह 'महाकवि' बनना चाहते थे। 'सुकवि' शब्द का प्रयोग यही सूचित करता है। 'शिशुपालवध' काव्य में ऐसे श्लोक तो बहुत प्राप्त होते हैं जिनमें उनके अनादर या अपमान के संकेत हैं। (देखिये माघ की जीवनी) किन्तु वह अनादर किस बात से हुआ इन्होंने शास्त्रार्थ में किसी प्रतिपक्षी को पराजित किया, या प्रतिपक्षी ने इनको ही कहीं पराजित किया ? अतः शिशुपाल-वध के आठवें सर्ग श्लोक संख्या ८ और ९ इस बात की ओर अप्रत्यक्ष रूप में सकेत कर रही है—

"बुद्ध्वावा जितमपरेणकाममाविष्कुर्वीत स्वगुणमपत्रप: क एव ॥७॥"
"पाषाणस्खलन विलोलमाशुनूनं वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः॥८॥"

श्लोक संख्या ८ में भी बताया है कि दूसरे लोग भी प्रतिद्वन्द्वियों से पराजित होकर लज्जा के कारण वेगपूर्वक वहाँ से भाग निकलते हैं।

"प्रादुःष्यात्क इव जितः पुरः परेण ॥१२॥

काव्य में स्थान-स्थान पर इस तरह के संकेत पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे जनश्रुति तो ऐसी है कि माघ के पिता दत्तक ही किसी शास्त्रार्थ में पराजित हुए थे उसका बदला महाकवि माघ ने आगे चलकर शास्त्रार्थ के द्वारा चुकाया। पराजित होने पर प्रतिपक्षी नें मुँह ही न दिखलाया, वह वहाँ से भाग गया। कह नहीं सकते कि इसमें वास्तविकता क्या और कितनी है ? किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि वह युग जिसमें भवभूति और माघ थे विद्वत्ता का एवं प्रतियोगिताओं का युग रहा होगा, अन्यथा न तो भवभूति ऐसा लिखते और न माघ ही।

बोधिचर्यावतार, शिक्षा-समुच्चय, राष्ट्रपाल-परिपृच्छा आदि संस्कृत ग्रन्थों के लेखक बौद्ध कवि शान्तिदेव के ग्रन्थों का भी समसामयिक विद्वानों ने आदर नहीं किया, इसका परिचय बोधिचर्यावतार ग्रन्थ के आदि में मिलता है।

भवभूति के तीनों ही नाटक भगवान् कालप्रियनाथ (शिव) के सामने खेले गये थे। भवभूति जिस समय प्रादुर्भूत हुए थे उससे कुछ ही काल पूर्व भारत में न्याय-शास्त्र की चर्चा चल पड़ी थी। अध्यापक कावेल साहब के मत में पक्षिल स्वामी या वात्स्यायन ने छठी शताब्दी के आरम्भ में न्याय-सूत्र पर भाष्य लिखा। छठी शताब्दी के मध्य भाग में सुप्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग ने न्यायसूत्र पर एक और सूत्र लिखा था। मेघदूत में दिङ्नाग शब्द का प्रयोग कालिदास ने किया है (पूर्व मेघ श्लोक (१४)

"स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदंमुखः खं—
दिङ्नागानां* पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥

इस श्लोक में कालिदास के सहाध्यायी और रसिक निचुल कवि का तथा उनके प्रतिपक्षी दिङ्नाग के नाम आये हैं। दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक थे। कालिदास को छठी शताब्दी के मध्य भाग वाला स्थापित कर दें तो वह भवभूति के कुछ ही वर्ष पूर्व रहे होंगे। कुछ लोग उन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक बताते हैं ही। किन्तु नवीन गवेषणा इस बात को सिद्ध कर रही है कि वे शैव थे और गुप्त राजा वैष्णव। अतः मालवा के शैव राजाओं के ही आश्रित कालिदास रहे होंगे न कि वैष्णव-गुप्त नरेशों के आश्रय में। उज्जयिनी के महेन्द्रादित्य के पुत्र परमार वंशी विक्रमादित्य ही वह विक्रमादित्य थे जिनके आश्रय में कालिदास रहे। अतः इनका समय प्रथम शताब्दी ई० सन् पूर्व का होता है। इसका संकेत हमने विशेष रूप से कालिदास के महाकाव्यों के प्रकरण में कर दिया है। आश्चर्य है कि जनश्रुति के अनुसार भवभूति अपने नाटक उत्तररामचरित को समाप्त कर कालिदास के पास गये और अपने ग्रन्थ के विषय में उनकी सम्मति माँगी। कालिदास उस समय चौसर का खेल खेल रहे थे अतः उन्होंने भवभूति से कहा कि अपने काव्य को ऊँचे स्वर से पढ़िये। कालिदास ने उस काव्य को सुन कर बहुत सन्तोष प्रकट किया किन्तु कहा कि चौथे चरण, "रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्" में "रेवं" शब्द में एक अनुस्वार अधिक है। भवभूति ने इसे "एव" कर दिया। यह जनश्रुति इस बात का द्योतक अवश्य है कि मेघदूत के कवि कालिदास अवश्य ही उस युग में होंगे

*कालिदास के विषय में डा० सरकार लिखते हैं कि कालिदास ने दिङ्नागों का संकेत अपनी मेघदूत में इन चार दिशा के नामों से किया होगा—१— दक्षिण के नागार्जुन २—पूर्व में नागबोधि (जो नागार्जुन का शिष्य था और बंगाल का था) ३—पश्चिम में नागसेन (जिसने पश्चिम से आक्रमण करने वाले ग्रीक राजा मिनांडर को धर्मोपदेश दिया था) ४—उत्तर में नागाह्व (जो धर्म प्रचारार्थ उत्तर एवं चीन गया था)।

तिब्बती ग्रन्थों में नागार्जुन का विशेष महत्व है। ई० के पूर्व पहली दूसरी शती में वह भारत का प्रसिद्ध व्यक्ति रहा है। उसका समय ई० पू० १४४ से ई० पू० ३८ तक है। इसलिए शुंगभद्र का समकालीन था। नागार्जुन का स्थान नागपुर का रामगिरि है।

वीमकुसलकदफिस ने वाराणसी के राजा की कन्या बासंती से विवाह किया था। यही कालिदास का आश्रयदाता था जो शकारि विक्रम है। उसने प्रथम गंगा की घाटी में अपना प्रभुत्व जमाकर, पीछे शुंगों अथवा काण्वों एवं पश्चिम के शकों को पराजित कर उज्जेन प्राप्त की थी। शुंग विदिशा के शासक थे। मेघदूत में विदिशा को राजधानी कहा है। अशोक के समय को छोड़कर कभी इसे महत्व न मिला। कालिदास की किसी भी रचना में शुंग का वर्णन नहीं है जबकि यवन व हूणों का है। अतः कालिदास शकों के आक्रमणों के पूर्व शुंग काल में थे। इस भाँति मेघदूत वाले कालिदास ई० पूर्व की प्रथम शती के बाद के नहीं हो सकते।

जिस युग में भवभूति रह रहे होंगे अन्यथा न निचुल का नाम आता और न बौद्ध विद्वान् दिड़नाग का और न भवभूति के साथ कालिदास की इस वार्ता का। रघुवंश के कालिदास मेघदूत के कालिदास से भिन्न हैं। कालिदास नाम के व्यक्ति क्या एक हुए हैं ? यदि भवभूति के समय में कालिदास थे, और समकालीन थे तो महाराज भोज के दरबार में भवभूति, माघ, और कालिदास जैसे विद्वानों का होना संभव है। भोजप्रबन्धकार ने यह नहीं बताया वह भोज कौन थे, और वह कालिदास कौन ? दुःख है हमारे संस्कृत कवियों के जन्म, काल, स्थान, तथा कार्य क्षेत्र आदि के विषय में आज तक भी अन्धकार चला ही आ रहा है।

दिङ्नाग के पश्चात् छठी शताब्दी के अन्त में उद्योतकर ने न्यायसूत्र पर वार्तिक लिखा। वासवदत्ता के लेखक सुबन्धु ने लिखा है कि न्यायशास्त्र को स्थापित करने के लिये ही उद्योतकर ने जन्म लिया था। सातवीं शताब्दी के आरम्भ में धर्मकीर्ति ने दिङ्नाग के न्यायभाष्य पर वार्तिक बनाया था। सुबन्धु ने धर्मकीर्ति के बौद्ध संगीत नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, सुरेश्वराचार्य आदि मीमांसकों ने दिङनाग और धर्मकीर्ति के मत को उद्धृत किया है और उनका खण्डन भी किया है। पहले बताया गया है कि भवभूति कुमारिल के शिष्य थे, धर्मकीर्ति सातवीं शताब्दी के पूर्व या मध्य के हुए तब भवभूति आठवीं शदी के अन्त में। माघ कवि के समसामयिक या कुछ ही वर्ष पूर्व के होंगे। न्याय शास्त्र सम्बन्धी इन बातों को कहने का सारांश केवल यही है कि जिस समय हिन्दू और बौद्ध सम्प्रदायों में इस भाँति न्यायचर्चा ज़ोरों पर थी उस समय भवभूति ने जन्म लिया था। पुनर्जागरण आरम्भ हो चुका था। बौद्धों ने हिन्दू देवी-देवताओं की उपासना प्रारम्भ कर दी थी। मालतीमाधव में कामन्दकी की चर्या पर हिन्दू मान्यताओं का प्रभाव स्पष्ट है।

माघ काव्य में पूर्वकालीन कवियों का प्रसंग——

"श्री शब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्मलक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तन चारु माघ।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥५॥

कवि वंश वर्णन का यह अन्तिम श्लोक है। मल्लिनाथ ने इन श्लोकों की टीका नहीं लिखी किन्तु वल्लभदेव ने ही प्रथम टीका लिखी है और उन्होंने कविवंश वर्णन की भी टीका की है। बल्लभदेव मल्लिनाथ से पूर्व हो चुके हैं अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि कवि वंश वर्णन के आदि में जो "अधुना कविः श्री माघो निजवंशवर्णनं चिकीर्षुराह" लिखा है वह सत्य है। किसी अन्य द्वारा लिखा हुआ यह "कवि वंशवर्णन" नहीं है।

श्री वल्लभदेव अपनी टीका में लिखते हैं "क्या सुकविकीर्तिदुराशया सुकवीनां श्रेष्ठविदुषां वररुचि-सुबंधु-सोमनाथ-भवभूति-क्रीड़ाचंद्र-कालिदास-विलहण-भारवि-बाणमयूरा-दीनां या कीर्तिः ख्यातिर्यशस्तत्र या दुराशा दुरभिलाषस्तया। महाकविकीर्तिलिप्सया इत्यर्थः इस भाँति वल्लभदेव ने उपर्युक्त कवियों के नाम लिखकर व्यक्त किया है कि इन कवियों ने जैसी ख्याति कवि रूप में पाई है वैसी कीर्ति की आज मैंने आशा रखकर इस शिशुपाल वध को किया है जो कहीं अनधिकारचेष्टा तो मुझसे नहीं हो गई है। उन जैसा यश प्राप्त करना तो मेरे लिए दुराशामात्र है।

कवि ने उपर्युक्त बात क्यों लिखी ? हमको ऐसा लगता है कि महाकवि कालिदास जो इसकें पूर्व हो चुके हैं कहीं इनकी स्मृति में तो इस रूप में आकर "सुकविकीर्तिदुराशयादः" नहीं लिखा रहे हैं—

"मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः॥ रघुवंश॥ १-३॥

कालिदास भी कवियश के इच्छुक हैं इसलिये रघुवंश लिख कर वह इसकी प्राप्ति चाहते हैं इधर माघ भी कदाचित् कालिदास की ही भाँति माघ काव्य लिख कर सुकवि-कीर्ति की अभिलाषा कर रहे हैं। दोनों के भाव एक ही हैं अतः माघ ने ही कालिदास के इन भावों को लेकर अपने कविबंश वर्णन में लिखा है। भोजप्रबन्ध में सब कवियों का जमघट हो गया है जो तथ्यों के विपरीत है। कालिदास माघ के समकालीन कवि नहीं हो सकते। वल्लाल ने भोजों को एक में मिला कर कदाचित् भोजप्रबन्ध नाम रख दिया हो। कालिदास वाला भोज कोई अन्य भोज होगा। श्री वल्लभदेव ने भी कालिदास का नामोल्लेख कर यह प्रमाणित कर दिया है कि कालिदास भोज के पूर्व के कवि हैं अन्यथा ऐसा प्रसंग कैसे आता ? कालिदास का स्थितिकाल श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय के अनुसार प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व का है।

भारवि का समय ६०० ई० के आस-पास माना जाता है। सुबन्धु का समय ६०० ई० या इससे भी पूर्व का माना गया है। हर्ष चरित और कादम्बरी के लेखक बाण का समय ६४८ ई० से कुछ वर्ष पश्चात् तक रहा होगा। मयूर शतक के रचयिता मयूर का समय भी बाण के आस-पास का ही है। कहा जाता है कि मयूर और बाण ये दोनों ही अपनी वृद्धावस्था में उज्जैन नगरी की ओर चले गये जहाँ पर भोज राज्य कर रहा था।

इन उपर्युक्त कवियों तक तो हम सहमत हो सकते हैं कि ये पूर्व कवि हैं जिनके सामने माघ अपने आप को अयोग्य मानते हैं। किन्तु भवभूति और बिल्हण आदि को वल्लभदेव ने जो माघ कवि से पूर्व का बताया है वह ठीक नहीं। विक्रमांकदेवचरित नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के रचयिता बिल्लहण कवि का स्थिति काल १०८५ ई० के लगभग है। इतना तो ठीक है कि अन्य कवि वल्लभदेव के पूर्व के हैं। भवभूति ८०० ई० के आस-पास हुए होंगे। सोमनाथ और क्रीडाचन्द्र का स्थितिकाल क्या था और इन्होंने कौन से ग्रन्थ लिखे हैं, पता नहीं। यह सही है कि माघ उस समय यश के अभिलाषी होंगे जो उनसे पूर्व भारवि अथवा कालिदास को मिल गया था।

यहाँ तक हमने कवि वंश वर्णन के वल्लभदेव लिखित कवियों का परिचय कराया है जिनमें कालिदास, भारवि, सुबन्धु, बाण और मयूर तो माघ के पूर्व के कवि हैं और भवभूति उनके समकालीन।

शिशुपाल वध महाकाव्य में जिन-जिन पूर्व रचयिताओं का परिचय मिलता है वे हैं—

(१) भरत—

"दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकवि प्रणीत काव्य ग्रथितांका इव नाटक प्रपंचाः ॥ २०-४४ ॥"

उपर्युक्त श्लोक में तो महाकवि माघ ने स्पष्ट रूप से भरत का नाम ही लिख दिया है जिन्होंने एक नाट्य शास्त्र लिखा है जो आज भरत के नाट्य शास्त्र के नाम से सुप्रसिद्ध है। यह भरत कालिदासादि नाट्यकारों से भी अति प्राचीन हैं। भरत ने ही सर्व प्रथम नाटक कैसा होना चाहिये आदि बातों को शास्त्र रूप में लिखा। माघ के समय में भरत के नाट्य-शास्त्र तथा काव्य के लक्षणों में रस का ध्यान अधिक दिया जाता था।

(२) नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥२।८६॥

उपर्युक्त में शब्द और अर्थ दोनों की उपेक्षा करने वाले सुकवि की भाँति कहकर "शब्दार्थौ काव्यम्" इस काव्य-लक्षण की ओर संकेत है। अग्निपुराणकार भामह और रुद्रट् तीनों में शब्दार्थौकाव्यम् कहा है। वामन और मम्मट का लक्षण मल्लिनाथ ने अपनी टीका में उद्धृत किया है। मल्लिनाथ के 'सदोषौ सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यम्—इति वामन-' लिखा है। भामह का समय ६५०ई० और रुद्रट् ८५० ई० के लगभग हुए हैं (देखिये संस्कृत साहित्य का इतिहास सीताराम जयराम जोशी)। वामन आठवीं शताब्दी में हुए हैं। मम्मट तो माघ के बहुत पीछे के हैं।

(३) महाकवि माघ ने द्वितीय सर्ग में श्लोक संख्या ११२ में राजनीति का वर्णन करते हुए कहा है—

> अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्ति सन्निबन्धना ।
> शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।।

उपर्युक्त श्लोक का पूर्ण स्पष्टीकरण माघ विषयक सामग्री में दिया गया है । यहाँ तो इतना ही कह देना पर्याप्त है कि महाकवि ने "काशिका" और "न्यास" इन दो व्याकरण के ग्रन्थों की ओर संकेत किया है । मल्लिनाथ और वल्लभदेव "काशिकावृत्ति" के लिये वामन और जयादित्य का नामोल्लेख कर रहे हैं । वामन और जयादित्य के सम्मिलित प्रयास ने ही काशिका को जन्म दिया । वामन और जयादित्य के भिन्न भिन्न मतों के होते हुए भी माघ के कुछ ही वर्ष पूर्व के ठहरते हैं । हो सकता है इनके व्याकरण ग्रन्थों की उस समय बड़ी ख्याति रही हो । महाकवि माघ भी महा वैयाकरण ठहरे अत: कुछ ही वर्ष पूर्व के उन ग्रन्थों का अवलोकन भी उन्होंने किया होगा ।

न्यास के लिये जिनेन्द्रबुद्धि का ही नाम प्रथम आता है । युधिष्ठिरजी मीमांसक का कहना है कि काशिका की सबसे प्राचीन व्याख्या जिनेन्द्रबुद्धि विरचित काशिका विवरण पंजिका है जो वैयाकरण निकाय में न्यास नाम से प्रसिद्ध है । यह व्याख्या जयादित्य और वामन की सम्मिलित वृत्ति पर है । जयादित्य की मृत्यु इत्सिंग के अनुसार सन् ६६१ ई० में हुई और श्री के. बी. पाठक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जिनेन्द्रबुद्धि की प्रसिद्धि इत्सिंग के भारत से प्रस्थान और जयादित्य की मृत्यु तक जिसका अन्तर लगभग ४४ वर्ष का है नहीं हुई थी (देखिये हिस्ट्री—ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर कृष्णमाचारी द्वारा लिखित) वामन को कुछ विद्वानों ने ८०० ई० का माना है । अभी अभी हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली विश्व-विद्यालय, दिल्ली की ओर से आचार्य विश्वेश्वर देव ने हिन्दी काव्यालंकार निकाला है उसमें वे लिखते हैं कि वामन का आविर्भाव काल ७५० ई० और ८५० ई० के मध्य ८०० ई० के लगभग निर्धारित किया जा सकता है । इन्होंने काव्यालंकार सूत्र-वृत्ति ही लिखी है । जयादित्य की मृत्यु ६६१ ई० में हुई । इन दोनों ने मिल कर जब काम किया तब काशिका का रचना-काल ६५० ई० के आस पास ही हो सकता है और फिर उसकी व्याख्या जो न्यास नाम से प्रसिद्ध है उसकी रचना तो और भी पश्चात् होनी चाहिये । हिस्ट्र ऑफ अलंकार लिटरेचर पृष्ठ ३६ का प्रसंग देते हुए प्रोफेसर चन्द्रशेखर पाण्डेय लिखते हैं कि काणे महोदय ने लिखा है कि बाण (६२० ई० ने अपने हर्ष चरित में न्यास का उल्लेख किया है) । "कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि ।" अब यहाँ देखना है जब काशिकावृत्ति की व्याख्या ही "न्यास" को कह रहे हैं और काशिकावृत्ति जयादित्य और वामन के सम्मिलित योग द्वारा बनी हो तो फिर न्यास काशिका से पूर्व का ग्रन्थ कैसे हो सकता है ? यह तो तभी सम्भव है जब या तो वामन और जयादित्य बाण से भी पूर्व हुए हों अत: बाण ने न्यास शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप में किया या न्यास वामन और जयादित्य की काशिका की व्याख्या नहीं हो और दूसरी भी कोई काशिकावृत्ति बन चुकी हो या न्यास किसी दूसरे व्याकरण ग्रन्थ की व्याख्या हो । विद्वान् इस

सम्बन्ध में मौन हैं। सभी ने वामन और जयादित्य की काशिका की व्याख्या को "न्यास" बताया है। अतः बाण ने किस न्यास की ओर संकेत किया है ? जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास तो बहुत पीछे का है लगभग ७०० के पश्चात् का। तब बाण का किस न्यास की ओर संकेत है यह एक ऐसी बात है जो अधिक अनुसन्धान की अपेक्षा रखती है। कुछ भी हो इन सब बातों को लिखने का हमारा तो यहाँ पर यही आशय है कि माघ ने काशिका और न्यास, दो व्याकरण ग्रन्थों का भरत के नाट्य शास्त्र की ही भाँति अपने शिशुपाल वध काव्य में उल्लेख किया है। इनके लेखक चाहे वामन जयादित्य और जिनेन्द्रबुद्धि हों चाहे कोई व्यक्ति, किन्तु जो प्रकाश रूप में वामन जयादित्य और जिनेन्द्रबुद्धि आ रहे वे तो माघ के युग के ही हैं जो आयु में माघ से सम्भवतः बड़े हों।

जिनेन्द्रबुद्धि के विषय में श्री कृष्णमाचारी—हिस्ट्री आफ क्लासिक संस्कृत लिटरेचर में लिखते हैं कि इन्होंने किलहार्न के अनुसार हरदत्त की पदमंजरी से बहुत सी बातों को वैसे की वैसे ही रख दिया। वे कहते हैं हरदत्त ने अपनी पदमंजरी में माघ का नामोल्लेख एक से भी अधिक बार किया है इससे यह बात निकलती है कि जिनेन्द्रबुद्धि माघ के भी पश्चात् के व्यक्ति हैं। श्री कृष्णमाचारी न्यास को अष्टम शतक के प्रथमार्द्ध भाग में लेकर माघ को अष्टम शतक के अन्त में होना बता रहे हैं न कि सप्तम शतक के अन्त में। अस्तु, वह जिनेन्द्रबुद्धि कदाचित् दूसरे हों जिन्होंने हरदत्त की पदमंजरी की खुले रूप में नकल की। न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि तो दूसरे ही कोई व्यक्ति हैं।

(४) नागानन्द के लेखक श्री हर्ष के विषय में हम माघ की जीवनी वाले प्रकरण में लिख चुके हैं। कामदेव की सेना का उल्लेख कर और हरि (श्रीकृष्ण) को बुद्ध या बोधिसत्व के रूप में वर्णन कर यह प्रमाणित करते हैं कि माघ ने काव्य लिखने के पूर्व नागानन्द नाटक को भी देखा होगा। श्री हर्ष (६४८ ई०) तो माघ के पूर्व के कवि व नाट्यकार हैं, यह निर्विवाद है।

(५) पंचतन्त्र का भी एक प्रसंग आया है।

पतिते पतंगमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत् परितस्तमांसि परितस्तरिरे ॥९।१८॥

इस श्लोक में सूर्य रूपी सिंह पश्चिम समुद्र के जल में अपने प्रतिविम्ब को देख कर गिर पड़ता है। एक सिंह अपनी परछाईं को दूसरा सिंह समझ कर क्रोध से कूए में कूद पड़ा था उसी की यह कथा पंचतंत्र में आती है—

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्तो शशकेन निपातितः ॥पंचतंत्र ।२३७॥

पंचतंत्र के श्लोक भी इसमें आये हैं और कहीं उनका भाव साम्य है जैसे—

पदाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥

अभिसाक्ष्य

माघ से संबद्ध युगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (इतिहास के आधार पर)

किसी समय भारत विश्व का गुरु था। उसकी सभ्यता विश्व के अन्यान्य देशों की सभ्यता से अतीव प्राचीन है। उस सभ्यता में पोषित होकर भारतीयों ने जीवन के समस्त क्षेत्रों में अपनी प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय समय समय पर दिया है। मनुस्मृति अतीव प्राचीन ग्रन्थ है, मनु महाराज ने इसी भावना को इस भाँति व्यक्त किया है—

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

मनु महाराज का यह श्लोक इस बात को प्रमाणित करता है कि भारतीयों ने दर्शन, धर्म, विज्ञान, साहित्य, कला, राजनीति, गणित, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, तंत्र, मंत्र आदि विभिन्न विषयों में प्रकाण्ड विद्वता का परिचय देते हुए उच्च कोटि के चरित्र का निर्माण इस भाँति किया कि विदेशी भी उनकी सभ्यता तथा संस्कृति को देख कर मंत्रमुग्ध से हुए यहीं पर आकर यहाँ के निवासियों के चरणों में बैठ कर चरित्र-निर्माण की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। ह्वेनसांग चीनी यात्री, इसका ज्वलन्त प्रमाण है। वह भी कैसा युग रहा होगा। दुःख है बहुमुखी इस प्रगति का इतिहास भारतीयों ने प्रामाणिक रूप से नहीं छोड़ा अतः अन्धकार में भटकते हुए किसी वस्तु को हाथ से स्पर्श किया मानों वही वस्तु हमारी अभिलषित हो गई। यदि हमारे पास क्रमबद्ध ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण होता तो भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भवभूति, माघ आदि ग्रन्थकारों के काल के विषय में हमारी जानकारी असंदिग्ध होती और उनके साहित्य का रसास्वादन करते हुए उस काल की झांकी का आनंन्द कितनी सरलता से प्राप्त करते। इतिहास की जानकारी के साधन जो साहित्य, अभिलेख, स्मारक, सिक्के और विदेशी लेखक हैं उनके माध्यय से यद्यपि पुरातत्व विशारदों तथा विभिन्न विद्वानों ने अनेक प्रयत्न किये, फिर भी हमारे साहित्यकारों की जीवनियाँ नहीं बन सकी और उसके अभाव में आज तक भी उलझनें सुलझ नहीं पाई हैं।

भिन्न भिन्न आलोचकों, विद्वानों एवं पुरातत्वविशेषज्ञों ने महाकवि माघ के सही काल के निर्धारण के अभाव में माघकालीन संस्कृति काल के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किये और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करने में कई बाधाएँ आ उपस्थित हुईं। महाकवि माघ राजा भोज के सम सामयिक थे। भोज कई हुए हैं—उनमें वह भोज कौन से थे जिनका सम्बन्ध माघ कवि से है। प्रसिद्ध भोज धार में ११ वीं शताब्दी में हुए थे जो स्वयं महाकवि संस्कृतज्ञ, आलोचक एवं गुणग्राही, परम विद्वान् एवं दानवीर थे। इन्हीं के दरबार में कवियों की भीड़ सी लगी रहती थी। भोज-प्रबन्ध, यद्यपि कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, के अनु-

सार माघ, कालिदास, भवभूति, मयूर और बाण आदि भोज के राज्य में थे। इस आधार से यदि हम माघ को कालिदास का समकालीन स्वीकार कर लेते हैं तो कालिदास का काल महाराज विक्रम का अथवा महाराज चन्द्रगुप्त का काल मानना होगा। फिर कालिदास नाम के व्यक्ति कई हुए हैं। राजतरंगिणी में मातृगुप्त को ही कालिदास बताया गया है। जैसा पहले कहा गया है, एक जनश्रुति के आधार पर कालिदास और भवभूति को एक जगह मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। भवभूति राजा ललितादित्य के दरबार में थे। तब क्या कालिदास भवभूति के काल की देन हैं ? ऐसी संभावना-पूर्ण कई बातों को समक्ष रख कर हम महाकवि माघ की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। कालिदास के समकालीन तथा धार के राजा भोज के मित्र होने के नाते हम एक ओर गुप्तकाल की ओर दृष्टि दौड़ाते हैं तो दूसरी ओर बलात् राजपूतकाल तक जाना ही पड़ता है जिस काल में माघ के पितामह सुप्रभदेव के स्वामी राजा वर्मलात तथा माघ कवि के सम सामयिक भोजनामधारी राजा हुए हैं। अत: हम गुप्त साम्राज्य से लेकर राजपूत राज्यों तक के कालों का ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करेंगे जिनके अन्तर्गत ४ थी शताब्दी से वि० सं० १२०० तक पूरी ६ शताब्दियाँ आ जाती हैं।

गुप्तकाल भारतवासियों का सुपरिचित एक स्वर्णकाल है जिसमें प्राय: सब ही बातों की बहुमुखी उन्नति हुई थी। कितने ही प्रमाण इस बात के उपलब्ध हैं कि माघ कवि उस युग की देन किसी भी रूप में नहीं है किन्तु फिर भी सांस्कृतिक जागृति का वह एक ऐसा युग था जिसकी कई परंपराएँ राजपूत काल तक ही नहीं आधुनिक काल तक चलती आयी हैं।

गुप्त समय का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

गुप्त युग के पूर्व भारत विदेशियों के अधिकार में था। गुप्तों ने जब अधिकार किया उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। चार सौ वर्ष के विदेशी शासन ने इस विशालकाय देश की जो दुरवस्था की वह अत्यन्त शोचनीय थी। गुप्त साम्राज्य के राजाओं ने देश में राजनैतिक एकता लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। देश इस समय स्वतन्त्र था। चारों ओर शान्ति थी। श्रेष्ठ शासन-प्रबन्ध होने से केन्द्रीय शक्ति दृढ़ हुई। सुव्यवस्था से व्यापार में वृद्धि हुई। विदेशी व्यापार अत्युच्च शिखर पर था। चीन, मध्य एशिया, कोचीन जावा, सुमात्रा, अनाम, बोर्नियो आदि तक उस समय में भारतीय धर्म और संस्कृति का व्यापक प्रसार रहा है। भारतीय मस्तिष्क के धनी एवं प्रथम श्रेणी के सदाचारी रहे हैं। अपनी प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास एवं अभूतपूर्व बौद्धिक उत्कर्ष जैसा इस युग के स्रष्टाओं ने करके दिखाया वह चिरस्मरणीय है। भारत के अच्छे अच्छे कवि एवं नाट्यकार कहा जाता है, इसी युग की देन हैं। पौराणिक साहित्य का नवीन रूप धारण करना, बौद्धों के प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक आसङ्ग, बसुबन्धु, दिङ्नाग और आर्यदेव तथा जैन दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर, समन्तभद्र जैसे व्यक्तियों का उत्पन्न होकर मौलिक विचार प्रदान करना तथा विज्ञान के क्षेत्र में दशांश गणना पद्धति और दिल्ली का लोहस्तम्भ स्थापित करना इसी

युग की शोभा है । ललित कलाओं में जो चरम उन्नति दिखलाई पड़ती है वह इसी गुप्तयुग की है । अजन्ता के विश्वविख्यात भित्तिचित्र, स्थान स्थान पर देवताओं तथा अवतारों की इतनी सजीव प्रतिमाएँ एवं सुन्दर विशालकाय भवनों का इतने प्रचुर परिणाम में यदि किसी एक युग में निर्माण हुआ है तो वह यग केवल गुप्त-युग ही है । आध्यात्मिक अभिव्यंजना के साथ अलंकारों का सुन्दर समन्वय तथा ज्योतिष, गणित, रसायनशास्त्र, धातु विज्ञान, वैद्यक, खगोलविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या सैंकड़ों विषयों पर इसी काल में ग्रन्थ लिखे गये एवं हिन्दू धर्म नवीन रूप को धारण कर सबको अपनी ओर आकर्षित करने लगा । सर्वांगीण सांस्कृतिक उन्नति का वास्तव में यही एक युग रहा है ।

सामाजिक स्थिति—वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय समाज की मूल आधार शिला समझी जाती है किन्तु गुप्त युग में वर्ण-व्यवस्था पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था अतः वह सुदृढ़ न होकर कुछ शैथिल्य को धारण किए हुए थी । बाद के युग में जैसी कठोर व्यवस्थाएँ खानपान, विवाह एवं आजीविका में हैं वैसी उस समय न थीं । वे सबके साथ खाते पीते थे यदि निषेध था तो केवल शूद्रों के साथ ही । इस पर भी कृषक, नापित तथा ग्वाले व पारिवारिक मित्र इस बात के अपवाद थे । सवर्ण और असवर्ण दोनों भाँति के विवाह होते थे । वर्णों की तो बात जाने दीजिये विभिन्न वर्णों तक में इस युग में विवाह होते थे जिसके प्रमाण हैं आन्ध्र के ब्राह्मण । इक्ष्वाकु राजाओं ने उज्जयिनी के शक राजपरिवार की कन्या को स्वीकार किया था । वर्णों में वाकाटक राजा रुद्रसेन जो कट्टर ब्राह्मण था उसने प्रभावती गुप्त का विवाह वैश्य जातीय गुप्तकुल में किया ।

विवाह के अतिरिक्त आजीविकोपार्जन में भी यही बात थी । ब्राह्मण अपने कर्म के अतिरिक्त व्यापार तथा नौकरी भी करता था । वह युद्ध में लड़ता तो शिल्पी का भी कार्य करता था । यही अवस्था दूसरे वर्णों की थी ।

उस युग के समाज की पाचन शक्ति सुदृढ़ थी । इसके फल - स्वरूप उन्होंने विदेशी जातियों का जो भारत में आकर रहने लगीं अपने में पचा लिया और वे स्वेच्छापूर्वक हिन्दू बन गये । जिस समाज की पाचनशक्ति इतनी तीव्र हो तो वह समाज क्या भारत तक ही सीमित रहेगा ? परिणाम स्वरूप हमारी भारतीय संस्कृति ईराक, सीरिया, सुमात्रा, बोर्नियो, आदि टापुओं में भी विकसित हुई । इस युग में दो दोष थे—एक तो अस्पृश्यता और दूसरा बाल-विवाह का । ध्रुव देवी का विवाह प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस तरह के दोषों के रहते हुए भी इस युग के भारतीयों का सामाजिक और वैयक्तिक जीवन एक अद्भुत संतुलन को लिये हुए था । इस युग में अर्थ और काम की महता उसी भाँति थी जैसे धर्म और मोक्ष की । गुप्तयुग के पश्चात् और भी चार प्रधान धर्म की प्रमुखता हुई जिसमें अधिकांश समय व्रत कथा पूजा पाठ को दिया जाने लगा । वे परलोक के सुख के लिए इहलोक की उपेक्षा करने लगे थे ।

इस भांति उन्होंने एकाधिराज्य स्थापित किया । विद्वानों, कलाकारों एवं प्रजा के सेवक बन कर उन्होंने दीर्घकाल तक शांतिमय राज्य किया । उसके पश्चात् गुप्तसाम्राज्य पर संकट के बादल घिर आये । कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त उस साम्राज्य को सम्भाल न सके ।

कुमारगुप्त के समय में विनाशकारी आक्रमण प्रारम्भ हुए। स्कन्दगुप्त को हूणों से युद्ध करना पड़ा। यद्यपि युद्धों में गुप्तों को विजय श्री प्राप्त हुई, किन्तु स्कन्दगुप्त के पश्चात् ही गुप्तसाम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। स्कन्दगुप्त के पश्चात् के शासकों में इतना योग्य कोई न हुआ जो इतने बड़े साम्राज्य को एक सूत्र में बाँध रखता। इधर भारतीय इतिहास में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की दो परस्पर विदेशी प्रवृत्तियाँ निरन्तर संघर्ष करने लगीं।

हर्षकाल—गुप्तकाल के पश्चात् हूण राजा तोरमाण तथा मिहिरकुल का नाम आता है। ये आक्रमणकारी थे। भारत इस भाँति आक्रमणकारियों से दुर्बल हो गया। अतः अनेकों स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ उनमें बलभी, सौराष्ट्र, कन्नौज, मालवा, बंगाल व आसाम आदि कई राज्य थे। बलमी का राज्य इनमें प्रमुख था। सातवीं शताब्दी के आरम्भ में इन स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना से उत्तरी भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त डावांडोल हो गयी थी। छोटे छोटे राज्य परस्पर लड़ते थे। चारों ओर राजनैतिक अव्यवस्था थी। ऐसे समय में एक ऐसे सम्राट् की आवश्यकता हुई जो बिखरी हुई शक्ति को एक सूत्र में फिर से बाँध सके। महाराज हर्षवर्धन ने यह कार्य कर दिखाया। इसका विस्तृत उल्लेख ह्वानसाँग के लेखों व बाणभट्ट के हर्षचरित व कादम्बरी में हुआ है। हर्ष स्वयं विद्वान् थे। नागानन्द, प्रियदर्शिका व रत्नावली उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं जिनमें उस काल के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन का सजीव चित्र अंकित है।

हर्षकालीन राज्य—कपिशा (काबुल या काफिरीस्तान) का शासन प्रबन्ध क्षत्रिय बौद्ध के हाथ में था जिसके अधीन लम्पाक (लवमन) नगर (जलालाबाद), गान्धार (पेशावर) थे। **उदयन** (स्वगत) के राज्य में तक्षशिला (रावलपिंडी), सिंहपुर (शाहपुर) और उर्स (हरिपुर) थे। ये राज्य पहले कपिशा के अधीन थे किन्तु अब काश्मीर में हैं।

दक्षिणपूर्व काश्मीर—इसमें पुंछ और राजपुर (राजोरी) हैं जो काश्मीर के अधीन हैं।

टेक्क—यह आकल (श्यालकोट) की राजधानी है।

चिनाभुक्ति, जालन्धर, कुलूत (कूलू), शतद्रु, पारियात्र (बैराट), मथुरा, स्थानेश्वर, कन्नौज यहाँ का शासक हर्ष वैश्य जाति का था। आयुत (अयोध्या), प्रयाग, कौशाम्बी, स्रावस्ती, कपिलवस्तु, बनारस, वैशोली, नेपाल, मगध, नालन्दा चम्पा (भागलपुर) कामरूप (आसाम) वहाँ ब्राह्मण शासक भास्करवर्मा था, कर्णसुवत्र (मुर्शिदाबाद) यहाँ अशोक राजा था। कलिंग, आन्ध्र, कोशल, चोल, महाराष्ट्र में पुलकेशी का राज्य था, भडोकच्छ, मालवा जहाँ पर ६० वर्ष पूर्व शिलादित्य राजा था, बलभी यहाँ पर शिलादित्य का भतीजा और हर्ष के जामाता का राज्य था जिसका नाम ध्रुवभट था, आनन्दपुर यह मालवा के अधीन था, सौराष्ट्र भी मालवा में था, **पूर्व गुर्जर बलमी** के जिसकी राजधानी मीनमाल थी यहाँ पर क्षत्रिय युवक राज्य करता था, गुर्जर के दक्षिण पश्चिम में उज्जयिनी थी जहाँ पर ब्राह्मण राज्य करता, सिंध में शूद्र राजा था।

उपर्युक्त लगभग ७२ राज्यों का वर्णन ह्वेनसांग ने सन् ६३० में अपनी यात्रा के

विवरण में किया है। हमको अन्य राज्यों से कोई तात्पर्य नहीं है किन्तु जहाँ पर उसने **भीनमाल** का वर्णन किया है उस देश से हमारा सम्बन्ध है। सन् ६२८ में यहीं पर ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के लेखक प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने यहीं पर क्षत्रिय राज्य व्याघ्रमुख का होना स्वीकार किया है। ह्वेनसांग का कहना है कि भीनमाल गुर्जरों की मुख्य राजधानी थी जो आज गुजरात में न होकर राजस्थान के सिरोही जिले में है। चीनी यात्री लिखता है कि भीनमाल का राजा क्षत्रिय युवक था जो बुद्धि व साहस का पूर्ण धनी था तथा बौद्ध धर्म में उसका अटूट विश्वास था। ह्वेनसांग भीनमाल की ओर सन् ६४१ ई० के लगभग आया था। इतिहास लेखकों का कथन है कि वह युवक चापवंशी क्षत्रिय व्याघ्रमुख का ही उत्तराधिकारी पुत्र था क्योंकि ब्रह्मगुप्त के समय में व्याघ्रमुख वृद्ध थे। हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन ने गुर्जर पर विजय प्राप्त की थी (देखिये हर्ष चरित पृ० १७४ गुर्जर प्रजागार :—प्रतापशील :—इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराज :)। हर्ष ने अपनी दिग्विजय में गुर्जर नाम नहीं दिया किन्तु चीनी यात्री का भीनमाल के राजा का वर्णन ही इस बात का प्रमाण है कि सिंध और काश्मीर की भाँति गुर्जर नाम मात्र से हर्ष के साम्राज्य में थे। भीनमाल के उस युवक क्षत्रिय का वर्णन जैसा चीनी यात्री ने किया है बलात् हमारी दृष्टि को उस ओर आकर्षित कर लेता है क्योंकि महामहोपाध्याय श्री ओझा उसी युवक का उल्लेख करते हुए जो समय निर्धारण कर रहे हैं माघ कवि के समय निर्धारण में असंगति हो गयी है। वर्मलात के शिलालेख में केवल ६८२ वर्ष दिया है जिसको इन्होंने विक्रमी संवत् मान कर सन् ६२५ बताया है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता ने अपनी पुस्तक में शक संवत् दिया है इससे तो उधर विक्रमी संवत् का प्रचलन न होकर शक संवत् का प्रचलन ही सिद्ध होता है। तीन ही वर्षों में कोई नया संवत् का प्रचलन नहीं पा सकता। व्याघ्रमुख वृद्ध थे अत: सन् ६२५ में भी भीनमाल के वे ही शासक थे न कि बर्मलात। सन् ६४१ में व्याघ्रमुख का पुत्र शासक था जो लगभग २२ या २३ वर्ष का होगा, उसी समय ह्वेनसांग अपनी भारत यात्रा के प्रसंग में उधर गया होगा। व्याघ्रमुख के पुत्र ने जब तक राज्य किया भीनमाल का क्या हाल रहा। इस समय की कोई बात हमारे सम्मुख तब तक नहीं आती जब तक प्रतिहार वंश के प्रवर्तक नागभट्ट गुर्जर प्रतिहार का भीनमाल पर राज्य नहीं हो जाता। फिर उसकी सन्तान भोज प्रतिहार के समय में भीनमाल और कन्नौज का नाम सुनने में आता है। राजा वर्मलात का वह शिलालेख सन् ७६० ई० का है जब वर्मलात भी स्वयं वृद्ध थे और देवतुल्य माघ के पितामह सुप्रभदेव भी लगभग ७० या ७५ वर्ष के होंगे। माघ द्वारा लिखित वंश वर्णन से यह बात भली भांति समझ में आ जाती है। सुप्रभदेव विरक्त धार्मिक व्यक्ति थे तथा उनके वाक्य तथागत के उपदेश की ही भाँति राजा वर्मलात नि:संकोच ग्रहण करते थे। ब्याघ्रमुख का पुत्र लगभग ६६५ ई० तक अवश्य जीवित रहा होगा। हो सकता है कि वर्मलात व्याघ्रमुख चापवंशीय क्षत्रिय का पौत्र हो। अरबों के आक्रमण को रोकने वाले उस समय केवल दो ही थे या तो भीनमाल के गुर्जर प्रतिहार या चित्तौड़ के बापा वंशीय राजा। वर्मलात साधु स्वभाव के थे अत: शान्तिमय जीवन बिताते रहे। हर्ष की मृत्यु (सन् ६४८ ई०) के पश्चात् अराजकता छा गई। अराजकता के समय व्याघ्रमुख का पुत्र भीनमाल का स्वामी

था। हो सकता है कि ये चापवंशीय फिर इधर-उधर चले गये हों। भीनमाल पर गुर्जर प्रतिहारों का अधिकार सन् ७३४ के आसपास हुआ। राजा वर्मलात उस समय बसन्तगढ़ के स्वामी थे जिसके अधीन अर्बुदाचल और इधर-उधर के सामंत थे। शिलालेख में भीनमाल के व्यक्तियों का भी नाम आया है अतः भीनमाल पर तो राजा वर्मलात का अधिकार नहीं रहा होगा किन्तु वसन्तगढ़ भिन्नमाल के अधीन रहा होगा। माघ अपने को भिन्नमाल वास्तव्य लिख रहे हैं क्योंकि उसके पूर्व पुरुष भिन्नमाल ही के थे। समय ने माघ को भिन्नमाल छोड़ने के लिए बाध्य किया हो। जिस समय माघ थे उस समय भिन्नमाल पर गुर्जर प्रतिहारों का राज्य था। व्याघ्रमुख का युवक क्षत्रियपुत्र ह्वेनसाँग के मतानुसार बौद्धधर्म में पूर्ण आस्था रखनेवाला था। यदि वर्मलात उसी का पौत्र सुप्रभदेव के वाक्यों को तथागत की शिक्षा के तुल्य मान लेता है तो आश्चर्य ही क्या है? वर्मलात का बौद्ध धर्म की ओर स्पष्ट झुकाव है किन्तु अधिक नहीं क्योंकि उसके समय तक देवी के मन्दिरों की प्रतिष्ठा होना फिर प्रारंभ हो चुका था। उसने खीमेल माता के लिए शिलालेख रूप में गोष्ठिकों की सूची वहाँ पर लगवाई थी। सूर्य-मन्दिर का इस समय तक कोई जिक्र ही नहीं अतः यह बात सातवीं शताब्दी तक की तो है नहीं आठवीं शताब्दी में देवी के मन्दिर की बात हमारे सम्मुख है। गुर्जर प्रतिहार सूर्य के उपासक थे। अतः भीनमाल में सूर्य का मन्दिर बना। यह कोई आश्चर्य नहीं कि बनते हुए उसी भोजस्वामी (सूर्यमन्दिर) के मन्दिर का पुण्य माघ को दिया गया हो।

हर्ष कालीन धार्मिक स्थिति—यह एक ऐसा युग था जिसमें धार्मिक सहिष्णुता बहुत ऊँचे स्तर की थी। हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म एक साथ मिलकर मानव की आध्यात्मिक उन्नति कर रहे थे। एक ही राज्य, एक ही नगर यहाँ तक कि एक ही परिवार में हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायी परम शान्तिपूर्वक मित्र-भाव से मनुष्य और परमात्मा का सम्बन्ध स्थिर करते हुए कभी-कभी शास्त्रार्थ कर बैठते थे। आज के इस स्वतन्त्र भारत का ही भाँति जिसमें पिता गांधीवादी हैं तो स्त्री समाजवादी व उन दोनों का एक मात्र पुत्र दोनों से ही भिन्न भावनावाला कट्टर साम्यवादी है फिर भी कोई अशान्ति का कारण नहीं, हर्ष युग में भी पिता शैव है तो पुत्र बौद्ध, फिर भी पारिवारिक सुख और सामाजिक शान्ति थी। जाति का कोई विचार न था। कोई भी जाति वाला जैन व बौद्ध व शैव हो सकता था। रीतिरिवाज, खानपान प्रायः एक से थे फिर कैसा विवाद? इस समय क्या बौद्ध व क्या हिन्दू और क्या जैन सभी मूर्ति पूजक बनते जा रहे थे। बुद्ध भी इस समय तक परमात्मा का एक अवतार बन गये थे। इतना ही नहीं बौद्धधर्म में अन्य देवता भी सम्मिलित होने लगे थे जैसे बोधिसत्व। हिन्दुओं में इस समय विशेष रूप में शिव, विष्णु और सूर्य की पूजा अत्यधिक थी। बनारस का शिव मन्दिर और मुल्तान का सूर्य मन्दिर इस समय प्रसिद्ध था। मन्दिरों के निर्माण के अतिरिक्त बौद्धों और हिन्दुओं में अंध श्रद्धा का प्रवेश हो चला था। ब्राह्मणों का अग्निहोत्र और क्षत्रियों का अश्वमेध जैसे यज्ञ भी अधिकता से होने लगे थे घर-घर में अग्निहोत्र प्रातः सायं होते थे। हर्ष के मरते ही वैदिक धर्मावलंबियों ने फिर उन्नति प्राप्त की। इस युग में बौद्धों को जिन मतावलंबी कहते थे बौद्धों का इस समय इतना प्रभाव था

कि दूसरे लोग जिनों को भी बौद्ध ही मानने लगे थे और जैनियों को अर्हत्। बुद्ध जिन के नाम से अधिक प्रख्यात थे। नागानंद नाटक में प्रथम अंक के प्रथम ही श्लोक में कहा है— 'बोधो जिन: पातु व: ।' इस युग में कर्म तथा आवागमन में पूर्ण विश्वास था। कुछ भी हो इस युग की धर्म भावना मानव चरित्र के निर्माण में बड़ी सहायक थी। अहिंसा का सिद्धान्त प्राय: सर्वमान्य हो गया था।

सामाजिक स्थिति—ह्व नसांग वस्त्र धारण करने के विषय में कहता है कि हर्ष के समय तक भारत में सिले हुए वस्त्र अधिक नहीं पहने जाते थे। मनुष्य धोती पहनते और एक दुपट्टा रखते जो कंधे के चारों ओर होता हुआ एक भुजा को आधे भाग में ढकता हुआ जाता था। स्त्रियाँ एक लम्बी धोती पहिन लेती। सिर के बाल मध्य भाग के तो गोल रूप में बँधे रहते किन्तु अन्य बचे हुए इधर-उधर लटकते रहते थे। कुछ मूँछों को काटते किन्तु कुछ की मूँछें अजीब सी रहती थीं। सिर पर माला तथा शरीर पर हार पहना जाता था। अरब लोग जब भारत में आठवीं शताब्दी में आए तब से सिले हुए वस्त्रों का प्रचार बढ़ने लगा और कदाचित् ९वीं १०वीं और ११वीं शताब्दी में इसका प्रचार और भी बढ़ा। माघ ने स्त्रियों को घाघरे (लहंगे) व चोली पहिने भी वर्णित किया है। यह भी इस बात का साधक है कि माघ सातवीं शताब्दी में न होकर आठवीं के अन्त अथवा ९वीं के मध्य भाग में होंगे। पुरुष सफेद वस्त्र धारण करते। स्त्रियाँ विभिन्न रंग के वस्त्र धारण करतीं। किन्तु विधवा स्त्रियाँ सफेद वस्त्र पहना करती थीं। अधिकांश मनुष्य जूते धारण नहीं करते थे। विधवा का विवाह नहीं होता था किन्तु सती* प्रथा अवश्य थी। माघ ने तो इस प्रथा की प्रशंसा की है। पर्दा प्रथा थी। माघ काव्य में भी घूँघट निकालना, शिविरों में स्त्रियों को पहुँचाना जहाँ कोई देख नहीं सकता था आदि मिलते हैं जो पर्दा प्रथा के लक्षण हैं। विवाह संस्कार आज भी प्राय: उसी प्रकार चलता हुआ आ रहा है। एक बार जो विवाहित हो चुकी उस स्त्री का विवाह फिर नहीं होता। हर्ष चरित में विधवा के लिये एक पृथक् वेणी कहा है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ माथे पर तीन चोटियाँ गूँधतीं थी एक नहीं। आत्म-त्याग कुछ दूसरी ओर से भी था, ऊपर गिर कर मर जाना अथवा विष खा जाना दाह संस्कार तथा श्राद्धकर्म आज जैसे ही थे। उस समय के भारतीयों में स्वच्छता और शुद्धता के प्रति एक विशेष प्रकार का आग्रह था। भोजन से पूर्व हाथ मुंह धोते। बचे हुए भोजन का फिर प्रयोग न करते और न दूसरों को देते। मिट्टी तथा लकड़ी के बर्तनों का दुबारा प्रयोग नहीं करते। लकड़ी से दाँत साफ करते। लहसुन और प्याज का अल्प प्रयोग था। दूध, घी, मक्खन, शक्कर तथा रोटी मुख्य भोजन था, मांस मछली का प्रयोग था। गाँवों तथा नगरों के चारों ओर दीवालें बनी रहती थीं सड़कों के दोनों ओर दूकानें रहतीं। सड़कें अधिकांश कच्ची होती थीं। कसाई मछुए, नट, जल्लाद, भंगी शहर से बाहर रहते थे।

हमने उत्तरी भारत के हिन्दू सम्राट महाराज हर्षवर्धन के समय की धार्मिक, सामाजिक, स्थितियों को लेकर सूक्ष्म रूप में विचार-विमर्श किया है। इनके विषय में ह्व नसांग की यात्रा के विवरण से और भी बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं।

---

* शिशुपाल बध सर्ग ९ का १३ वाँ श्लोक।

शिलालेख और ताम्रपत्र, सिक्के आदि भी उस समय की स्थिति का दिग्दर्शन करा देते हैं। यहाँ मुख्य-मुख्य बातों को ही बताना है। हर्ष ने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। वे राज्य जिन पर उनका आधिपत्य इस प्रकार हुआ पंजाब, कन्नौज, मिथिला, बंगाल, उड़ीसा, काश्मीर, सिन्ध, नैपाल, सौराष्ट्र और कामरूप थे। लगभग समस्त आर्यवर्त पर जैसा शासन इन्होंने किया इनके पश्चात् किसी भी हिन्दू नरेश ने नहीं किया। इसीलिए हर्षवर्धन को हिन्दुओं का अन्तिम सम्राट् कहते हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही उनका सब कार्य इस भाँति नष्ट हो गया मानो बालू की दीवार हो। परिश्रम से किया हुआ साम्राज्य निर्माण नष्ट हो गया। चारों ओर अराजकता की शक्तियाँ फिर से सक्रिय हो उठीं। इतिहास पुरानी स्थिति को दुहराने लगा। नरेशों में परस्पर प्रतिशोध की भावनाएं जागृत हो उठीं। अवसर के प्राप्त होते ही उन्होंने सिर उठाया और सेना लेकर आक्रमण करना प्रारम्भ कर किया। हर्ष की मृत्यु ने एक नवीन युग को निमन्त्रण दिया। वह युग था मध्य युग जिसको इतिहास विशेषज्ञ राजपूत काल की संज्ञा देते हैं और इसी से हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है।

जैसे ही केन्द्रीय शक्ति नष्ट हो गई वैसे ही अनेकों छोटे-छोटे राज्य खड़े हो गये। वे सब पारस्परिक युद्ध में तल्लीन थे। जनता में ऐसे युग में शान्ति कहाँ ? जनता युद्ध की इच्छा रखने वाली सामन्तीय भावनाओं के नीचे बुरी तरह पिसती जा रही थी। एक नहीं अनेक नवीन राजवंश उठ खड़े हुए। जिनको जहाँ जितना प्राप्त हो गया उन्होंने वहीं पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। ये नरेश अपने को क्षत्रिय न कह कर राजपूत कहते थे। ह्वेनसांग ने भीनमाल में क्षत्रिय युवक का वर्णन किया है, न कि राजपूत युवक का। वह व्याघ्रमुख का पुत्र था जो चापवंशीय (चापोत्कट चावड़ा) क्षत्रिय था। राजपूत काल में जिनका नाम तक इतिहास में हर्ष के समय तक नहीं आया वे वंश सामने आये। उनमें प्रथम गुर्जर प्रतिहार (पढियार) राजपूत वंश के नागभट का भीनमाल से सम्बन्ध था। भीनमाल पर प्रतिहारों का राज्य हुआ। यह राज्य भीमदेव के शासन तक चला। प्रतिहार राजपूत वंश में मिहिरभोज प्रख्यात हुए। हाँ, तो ये चापवंशीय क्षत्रिय भी समय के झोंकों से इधर-उधर बिखर गये और जो जहाँ पर गया वहीं पर एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर शासन चलाने लगा।

वर्मलात राजा भी चापवंशीय क्षत्रिय ही थे किन्तु उनको भी ऐसी स्थिति में भीनमाल का मुख्य स्थान छोड़कर बसंतगढ़ का आश्रय लेना पड़ा जिसके अधीन अर्बुद प्रान्त (आबू) हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि वर्मलात के समय में प्रतिहारों ने अपनी धाक जमा ली थी। शिलालेख में "प्रतिहार बोटक" का नाम आया है। अत: कोई सन्देह की बात ही नहीं रह जाती कि वर्मलात नागभट्ट के बाद व समकालीन राजा एक छोटे से ग्राम के रहे हों जिसमें अर्बुद हो। भीनमाल उनके हाथ से निकल चुका था। शिलालेख उसका प्रमाण है जिसमें भीनमाल के व्यक्तियों का भी नाम है। शिलालेख की अन्तिम गोष्ठी के व्यक्तियों वाली सूची जैनी भाषा पाली से मिलती जुलती है। बौद्ध धर्म पलायमान तो हो चुका था किन्तु वर्मलात में बौद्ध धर्म के प्रति आदर भाव था। यद्यपि जैन, हिन्दू उसके लिए सब समान थे।

राजपूत काल (सन् ७५० से सन् ९९५ ई० तक)

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् अराजकता फैली। कई राज्य बने। इन राज्यो के अधिकारी राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा वर्मलात महाकवि माघ के पितामह के स्वामी के समय के शिलालेख में "राजपूत" शब्द की ही भाँति "राजस्थानीयादित्यभट" का नाम आया है हर्ष के समय तक "राजस्थान" शब्द सुनाई देने लगा। जो राजस्थान इस समय है और जिसको ब्रिटिश भारत मे राजपूताने की सज्ञा दी गई थी और जिसके निवासी राजस्थानी कहलाया करते थे वह स्थान गुर्जर भूमि अथवा मालव भूमि था। राजस्थान शब्द कहाँ से आया, यह बात तो राजपूत शब्द कैसे प्रचलित हुआ, ये राजपूत कौन थे, कहाँ से आये और उन्होने इस भारत पर किस भाँति अपना राज्य स्थापित कर लिया इन प्रश्नो पर पूर्ण प्रकाश डालने पर ही स्पष्ट होगी।

महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशकर हीराचन्द ओझा का मत है कि जैसे राजपूताना नाम अँग्रेजो के पश्चात् प्रसिद्ध हुआ था वैसे ही राजपूत शब्द भी एक जाति या वर्ण या वर्ण विशेष के लिये मुसलमानो के इस देश मे आने के पश्चात् प्रचलित हुआ था। राजपूत या रजपूत शब्द सस्कृत के राजपुत्र का अपभ्र श अर्थात् लौकिक रूप है। प्राचीन काल मे राजपुत्र शब्द जातिवाचक नही किन्तु क्षत्रिय राजकुमारो या राजवशियो का सूचक था। इसका कारण यह था कि बहुत प्राचीन काल से सारा भारतवर्ष प्राय. क्षत्रिय वर्ण के अधीन था। प्राचीन ग्रन्थो शिलालेखो तथा दानपत्रो में राजकुमारो और राजवशियो के लिए राजपूत शब्द का प्रयोग पाया जाता है। ईस्वी सन् ६२९-६४५ तक चीनी यात्री ह्यूनसॉग ने भारत भ्रमण किया। उसने भी कई राजाओ का नामोल्लेख कर उनको क्षत्रिय ही लिखा है राजपूत नही। मुसलमानो के राजत्व काल मे क्षत्रियो के राज्य क्रमश: अस्त हो गये और जो शेष रहे उनको मुसलमानो की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी अतएव वे स्वतन्त्र राजा न होकर सामन्त से बन गये। ऐसी अवस्था मे मुसलमानी समय मे राजवशी होने के कारण उनके लिए राजपूत नाम का प्रयोग होने लगा, तत्पश्चात् शनै शनै: यह शब्द जाति सूचक होकर मुगलो के काल अथवा उससे पूर्व सामान्य रूप से क्षत्रियो के लिए प्रचार मे आने लगा। कर्नल टाड तथा स्मिथ आदि यूरोपीय इतिहासकारो ने राजपूतो की उत्पति के विषय मे बहुत कुछ अन्वेषण किया है। वे तो इस निष्कर्ष तक पहुचे कि यह राजपूत शब्द किसी जाति विशेष का सूचक है ही नही। स्मिथ लिखते है जब हम राजपूत शब्द का प्रयोग किसी सामयिक समूह के लिए करते है तो उससे किसी जाती, वश, परम्परा अथवा रक्त-सम्बन्ध का बोध नही होता। उसका अर्थ एक ऐसे जन समुदाय से है जो युद्धप्रिय है और जो अपने को ऊँचे कुल का मानता है तथा जिसे ब्राह्मणो द्वारा वही सम्मान प्राप्त है जो प्राचीन क्षत्रियो को था। इसका तो यह अभिप्राय है कि "राजपूत" वे सभी लोग है जिन्होने राजकाज तथा युद्ध को अपना कार्य ही बना लिया। यूरोपीय इतिहास विशेषज्ञ कहते है कि ईसा की दूसरी शताब्दी पूर्व केलशभग से भारत के उत्तरी भाग से निरन्तर विदेशियो के आक्रमण होते रहे। प्रथम आक्रकण यूनानियो का हुआ। फिर शक और पल्लव आये। तत्पश्चात् कुषाण फिर हूणो ने तो उत्तरी भारत पर अपना

प्रभाव जमा ही लिया। जिनमें तोरमाण और मिहिरकुल हैं। वे राजा हो गये किन्तु अपनी संस्कृति और सभ्यता को फैलाने और मानने के स्थान पर भारत की उदार नीति होने से वे यहाँ की सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराओं को मानने लगे और भारतीय समाज में उन्होंने अपने आपको सम्मिलित कर लिया। उस समय राज-सत्ता उनके साथ में थी अत: उस समय में पूज्य समझे जाने वाले ब्राह्मणों ने उन्हें क्षत्रिय स्वीकार कर लिया। यही नहीं उनका सम्बन्ध प्राचीन वैदिक तथा महाकाव्य कालीन क्षत्रियों से स्थापित कर दिया। भारतीय समाज में इस भाँति यूनानी, सिथियन और कुषाणों का पूर्ण रूप से विलय हो गया। किन्तु हूणों से उत्पन्न कुछ जातियाँ फिर भी स्पष्ट रूप से विद्यमान थीं और गुर्जर इनमें सबसे प्रभावशाली थे, जिनका वर्णन हम भीनमाल (श्रीमाल) पर लिखते समय कर चुके हैं। कई राजपूत वंश मूलत: गुर्जर थे जैसे प्रतिहार। जाटों को भी इसी प्रकार इन्हीं विदेशी जातियों का वंशज बतलाया जाता है। ये सब इस भाँति विदेशी रक्त से उत्पन्न हुई जातियाँ कालान्तर में हिन्दुत्व के रंग में ऐसी रंग गई कि उनका विदेशीपन पूर्णतः नष्ट हो गया। इन इतिहासकारों के अनुसार इस भाँति अधिकतर राजपूत वंशों में विदेशियों का रक्त सम्मिलित है। किन्तु भारतीय दृष्टिकोण इससे भिन्न है। श्री सी. बी. वैद्य ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि गुर्जर और जाट विदेशियों की सन्तान नहीं है। राजपूत ही तो सच्चे आर्य हैं। उनका सम्बन्ध प्राचीन आर्य क्षत्रियों से है। इनमें लव कुश की सन्तान होने से सूर्यवंशी और कुछ श्रीकृष्ण की सन्तान होने से यदुबंशी अथवा चन्द्रवंशी हैं।

इस राजपूत शब्द पर एक दूसरा मत और है जो मनोरंजक होने के साथ ही साथ अधिकांश रूप में आज प्रचलित भी है। परशुराम प्राचीन काल में परम योद्धा ब्राह्मण हो चुके हैं। उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों में परस्पर वैमनस्य सा था। परशुराम ने उस समय के सभी क्षत्रियों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। केवल वे ही क्षत्रिय जीवित रहे जिन्होंने या तो इनकी अधीनता स्वीकार कर ली अथवा स्त्री रूप धारण करके अपने-अपने अन्त:पुर में रहने लग गये। क्षत्रियों में "रज" रूप से उत्पन्न हुए ये फिर राजपूत कहलाये। क्षत्रियों के न होने से अराजकता, अव्यवस्था, तथा अशान्ति फैल गई क्योंकि परशुराम सैनिक ही तो थे, शासक नहीं। भू-लोक में ऐसा भ्रष्टाचार देखा तो देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने आबू पर्वत पर यज्ञ किया और उसी यज्ञ-कुण्ड से प्रतिहार, पंवार, सोलकी तथा चौहान ये चार क्षत्रिय जातियाँ उत्पन्न हुई। इस मत में कल्पना का अंश अधिक प्रतीत होता है। इसका यह तात्पर्य हो सकता है कि ब्राह्मणों ने अन्त में विदेशी जातियों को यज्ञ द्वारा शुद्ध किया और फिर उन्हें हिन्दुत्व की दीक्षा दी हो।

एक मत और भी है। आर्यों तथा द्राविड़ों के आने से पूर्व इस भारत में गोंड, भील, भार आदि असभ्य जंगली जातियाँ रहा करती थीं। आर्यों की विजय होने पर ये जातियां पहाड़ों और वनों में चली गयी थीं जहाँ पर वे आज भी रह रही हैं। उन्हीं जातियों के कुछ लोग आर्यों के सम्पर्क में आये। शनै शनै वे सभ्य हुए और उनमें से कुछ ने राजसत्ता प्राप्त कर क्षत्रियत्व धारण किया। चन्देले राजपूत गोंडों और भारों से सम्बन्धित हैं। कन्नौज के गहरवालों का भी भारवालों से सम्बन्ध है। बुन्देले और उत्तरी राठौर इन्हीं गहरवालों की शाखाएँ हैं। इसी भाँति दक्षिण के राष्ट्रकूट भी प्राचीन आदिम जातियों की संतान हैं।

यदि राजपूतों को गुर्जरों की सन्तान माना जाय तो चूँकि गुर्जर विदेशीय बताये जाते हैं अत: राजपूत भी विदेशियों की ही संतान हुए। किन्तु गुर्जर विदेशी नहीं हैं। वे भी आर्य हैं। इसीलिए यदि राजपूत गुर्जरों की सन्तान भी हों तो भी वे अनार्यों में सम्मिलित नहीं किए जा सकते। श्री सी. वी. वैद्य का कहना है कि राजपूत गुर्जरों की सन्तान ही नहीं किन्तु सीधे क्षत्रियों से उनका सम्बन्ध है। वे वैदिक क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्वालियर का भोज सम्बन्धी जो शिलालेख प्राप्त हुआ है उससे तो विदित होता है कि कन्नौज के प्रतिहार राजवंशी अपने को राम के भ्राता लक्ष्मण की सन्तान बताते हैं क्योंकि लक्ष्मण राम के प्रतिहारी (द्वारपाल) थे। एक राजवंश के नाम के लिए यह "प्रतिहार" शब्द का प्रयोग पीछे के युग की देन है। जब "क्षत्रिय" शब्द उठ सा गया और अराजकता में क्षत्रियत्व प्रदर्शित करने वाले युद्धप्रिय नेता को या तो ब्राह्मणों ने इस भाँति लक्ष्मण (प्रतिहारी) के वंशज बना दिया या वे ही बन गये और फिर उसी नेता के परिवारी व साथी प्रतिहार कहलाये। यह हर्ष के बाद की बात है न कि उसके समय की व उससे पूर्व की। समझ में नहीं आता कि चन्दवरदाई फिर प्रतिहारों को अग्निकुल से उत्पन्न हुआ कैसे बताते हैं? इस भाँति हर्ष के एक शिलालेख के अनुसार चौहान सूर्यवंशी की सन्तान हैं। नवमीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक चौहान सूर्यवंशी कहे गये हैं। पृथ्वी राज रासो हम्भीर महाकाव्य तथा अजमेर के म्यूजियम का शिलालेख प्रमाण हैं। अन्हिलपाटन के सोलंकी और चालुक्य चन्द्र-वंशी बताये गये हैं। राजपूतवंश में ३६ इस भाँति की शाखाएँ हैं।

इतिहास मे लिखा हुआ मिलता है कि गुर्जरों की भाँति राजपूत जाति भी हूणों और अन्य-अन्य जंगली जातियों से, जिन्होंने ईसा की पांचवीं छठी शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया, निकली और अन्त में वह यहीं के निवासियों में घुल-मिल गई। ब्राह्मणों ने कदाचित् इन्हीं तथा कथित क्षत्रियों अथवा राजपूतों को अग्निकुल से उत्पन्न कर दीक्षित किया। किन्तु कुछ राजपूत जाति यहीं की असभ्य जाति जैसे गोंड़, भार हैं उनमें सम्मिलित हो गई। कुछ ऐसे भी थे जो ब्राह्मणों द्वारा स्थापित किए गए और कालान्तर में उनका विवाह सम्बन्ध क्षत्रियों में होते रहने से तथा क्षत्रियोचित गुणों के कारण अथवा राजसत्ता के हाथ में आ जाने से क्षत्रिय कुलोत्पन्न कहलाये। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इस भाँति वे मिश्रित जाति बनकर राजपूत कहलाये। यह निश्चित करना कठिन सा है कि वास्तविक क्षत्रिय कुल कौन से हैं जिसको हम राजपुत्र, राजपूत अथवा रजपूत कहते हैं। इन मतों के होते हुए भी यह ठीक है कि राजपूत शब्द राजपुत्र का अपभ्रंश है। राजपूतों में रजोगुण ब्राह्मणों से अत्यधिक है। उनकी अभिरूचि जैसे युद्ध करना, राज्य बनाने, बढ़ाने, उस पर शासन करने आदि में अधिक हैं। सैंकड़ों वर्षों तक विदेशियों के सम्पर्क से और जातियों के समान इनमें भी मिश्रण हुआ है। आदान प्रदान सम्मिश्रण प्रगतिशीलता का अनिवार्य चिन्ह है।

इस तरह सातवीं शताब्दी के अन्त के भाग से ही उत्तरी भारत में राजपूत सत्ता का उत्कर्ष हुआ। इस समय किसी एक का तो राज्य नहीं था। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जो सब अपने आपको स्वतन्त्र समझते थे। राजा वर्मलात भी उनमें एक था। अरबों के आक्रमण पर भीनमाल के चाप इधर-उधर हो गये। (भीनमाल का लेख देखिये)। इस समय

में कन्नौज की ही महत्ता सर्वोपरि थी क्योंकि वह उत्तरी भारत की राजनैतिक, धार्मिक, एवं सामाजिक शक्तियों का प्रभावशाली केन्द्र था। प्रतिहार राजा यहाँ राज्य कर रहे थे। उस समय कौन-कौन राज्य थे इसका वर्णन संक्षेप में अधोलिखित है।

उत्तरी भारत के राज्यों का परिचय

सम्राट् हर्षवर्धन के कोई पुत्र नहीं था। उनके पश्चात् माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने मगध में स्थापित हो फिर अपने को समूचे उत्तर भारत का सम्राट् बना लिया। उसने दक्षिण पर भी चढ़ाई की और पूर्वी तट के साथ-साथ वह चोल देश तक पहुँच गया। उसने अश्वमेध यज्ञ किया और महाराजाधिराज, परम भट्टारक की पदवी धारण की। इसके पश्चात् तीन शासक और हुए। आदित्यसेन के पुत्र देवगुप्त को जो समूचे उत्तर भारत के स्वामी थे, विक्रमादित्य (प्रथम) चालुक्य के पुत्र बिनयादित्य (६८० ईस्वी ६९६ ईस्वी) ने हराकर एक ओर तो उसका साम्राज्य ही नहीं गंगा-यमुना के चित्रों से अंकित झंडा छीन लिया और दूसरी ओर उसने सिंहल को जीता। आदित्यसेन के वंश का अन्तिम राजा जीवितगुप्त द्वितीय था। उसने सातवीं शताब्दी के अन्त तक राज्य किया। बहुत से इतिहासकार कहते हैं कि हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसका मन्त्री अर्जुन राज्य करने लगा। शासक होने से पूर्व का राजनैतिक इतिहास अन्धारमय है। तब तक उत्तरी भारत में सर्वत्र अराजकता रही हो यह सत्य तहीं है। चाहे अर्जुन हो व आदित्यसेन, अथवा उसके वंशज उन्होंने स्थिति को संभाले रखा। हिन्दू धर्म प्रबल होता गया। बौद्ध धर्म अब पलायमान हो रहा था। चीनी यात्री इत्संग ने ६९१ की भारत यात्रा में स्पष्ट लिखा है कि उस समय भारत में बौद्ध धर्म अवनति पर था। सातवीं शताब्दी में हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तरी सीमान्तों पर नवीन शक्तियाँ प्रकट हो रही थीं जिससे राज्य-व्यवस्था में असंतुलन पैदा हो गया था। इन शक्तियों का वर्णन राज्यानुसार दिया जाता है—

कन्नौज—सिन्ध में अरब राज्य के स्थापित होने के कुछ ही वर्ष पश्चात् मगध और गौड़ में गुप्त राज्यवंश का अन्त हुआ। कन्नौज का राजा इस समय यशोवर्मा था। उसने मगध और गौंड पर आक्रमण किया और वहाँ के गुप्त राजा को मार डाला और पूर्वी समुद्र तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। कन्नौज की महत्ता हर्ष के समय से सर्वोपरि समझी जाती थी। इस समय में कन्नौज का वही महत्व था जो मौर्यों और गुप्तकाल में पाटलिपुत्र का और मुसलमानों के समय में दिल्ली का। अतः उत्तरी भारत का प्रत्येक महत्वाकांक्षी शासक कन्नौज को ही अपनी राजधानी बनाना चाहता था। कन्नौज पर अधिकार करने के लिए सब ही लालायित भी रहते थे। यशोवर्मन् ने भी यही किया। यशोवर्मन् का समय सन् ७२५ से ७५२ के मध्य तक का माना जाता है। इसकी दिग्विजय का वर्णन **वाक्पतिराज** लिखित गौंडवहो में है। भवभूति को प्रोत्साहन तथा संरक्षण देने वाला यही यशोवर्मन था। जिसने सन् ७३३ से सन् ७६९ तक राज्य किया। इसी ललितादित्य ने कन्नौज सम्राट् यशोवर्मा से लोहा लिया और यशोवर्मा को पराजित करके कुछ देश छीन लिए। ललितादित्य से पराजित होने के पश्चात् कन्नौज साम्राज्य की शीघ्र ही अवनति हुई। यशोवर्मा के समय

मे प्राचीन हिन्दू धर्म का प्राधान्य स्थापित हो गया । **पूर्व मीमांसा का महान् प्रवर्तक कुमारिल भट्ट भवभूति का शिक्षक और वाक्पतिराज का गुरु था ।** कन्नौज प्राचीनतावादियो का केन्द्र बन गया था और समूचे उत्तरी भारत मे कन्नौजिये ब्राह्मणो का प्रभाव स्थापित हो गया था। वेदो और पूर्व मीमासा के अध्ययन का फिर से प्रचलन हुआ । वैदिक कर्मकाण्ड के सिद्धान्तो और दर्शन का प्रसार, इसी समय मे दक्षिण तक पहुँच गया और वहाँ बौद्धधर्म को अपदस्थ होकर लुप्त होना पडा । यशोवर्मन् के उत्तराधिकारी निर्बल सिद्ध हुए और काश्मीर तथा बगाल के राज्यो के दबाव ने उनकी स्थिति को नगण्य बना दिया । यशोवर्मा कौन थे ? किस वश से इसका सम्बन्ध था, सो मालूम नही हुआ । उसका नाम और सिक्के मौखरियों की शैली के है । इसके बाद के राजा भण्डिकुल के थे । हर्ष के मामा का लडका और सेनापति भण्डि था । जान पडता है यशोवर्मा के पश्चात् कन्नौज का साम्राज्य उस सेनापति के वश के हाथ मे चला गया किन्तु ललितादित्य के अधिकारी जयापीड ने कन्नौज के नये सम्राट् वज्रायुद्ध को भी हरा दिया । पहला कन्नौज साम्राज्य जब इस भॉति काश्मीरियो के आक्रमण से जीर्ण शीर्ण हो रहा था, तब उसके पूर्व, दक्षिण और पश्चिम मे नवीन शक्तियॉ उठी थी । इस समय पाल, गग, राष्ट्रकूट और प्रतिहार राज्यो का उदय (लगभग सन् ७४३ से ७९० ई० तक) हो रहा था । **इस समय अरबो ने सिन्ध से और आगे बढने के उपाय किये ।** सन् ७३९ मे उनकी सेना ने कच्छ, सौराष्ट्र आदि को जीता । आगे पहुंचने पर चालुक्यो ने उनकी शक्ति को नष्ट कर दिया । **भीनमाल राज्य के साथ तो अरबो को प्राय: लगातार मुठ-भेड़ होती रही । अरबों के आक्रमण के पूर्व तक भीनमाल पर चापो का राज्य था जिसका अन्तिम राजा वर्मलात का नाम सन् ७६० ई० के बसन्तगढ़ के शिलालेख मे मिलता है ।** वह बसन्तगढ को राजधानी बनाकर रह रहा था क्योकि इस समय अरबो के आक्रमण से चापो की बहुत सी शक्ति नष्ट हो चुकी थी और नवीन राज्यो मे जैसे कन्नौज का राज्य क्षीण सा हो चुका था । बारम्बार के आक्रमण से भीनमाल के चाप भी शक्तिहीन से हो चुके थे । वे इधर-उधर बिखर गये क्योकि इस समय राष्ट्रकूट और प्रतिहार राजा शक्ति मे आगे बढ रहे है । चालुक्य राजा से सन् ७५४ मे उसके सामन्त दतिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया । राष्ट्रकूट का अर्थ है प्रान्त का शासक । इसी से राठोड हो गया । दतिदुर्ग के पश्चात् सन् ७६० से ७७५ तक कृष्ण के समय मे राष्ट्रकूट सत्ता जब स्थापित हो गई उस समय गुर्जर देश के राजा नागभट्ट ने सिन्ध के मुसलमान शासको को हराकर ख्याति प्राप्त की । **नागभट्ट ने अपनी राजधानी भीनमाल रक्खी** और मारवाड से भडौच तक उसका राज्य था । उसके पुरखा किसी राजा के प्रतिहार (द्वारपाल) थे । यह प्रतिहार शब्द उनके वशजो का उपनाम हो गया । मगध और गौड राज्यो मे गोपाल का उत्तराधिकारी धर्मपाल सन् ७७० से ८०९ ई० लगभग हुआ । कन्नौज का सम्राट् तब इन्द्रायुध था । सन् ७८३ ई० के पश्चात् धर्मपाल ने उसे गद्दी से उतार कर उसके स्थान पर चक्रायुध को बैठाया । चक्रायुध के अभिषेक के समय कन्नौज साम्राज्य के सामन्तो ने उसे सम्राट् स्वीकार किया । इनमे पजाब, गाधार और कीर (कागडा) के राज्यो तक की गणना थी । इसको देखते हुए कन्नौज का साम्राज्य यद्यपि अब उतना शक्ति सपन्न नही था फिर भी उसका शासन दूर-दूर तक माना जाता था।

नागभट्ट के भाई के पोते प्रतिहार राजा वत्सराज ने धर्मपाल को युद्ध में पराजित किया, किन्तु उन दोनों पर राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र ध्रुव धारावर्ष (७८३-७९३ ई०) ने चढ़ाई की। लाट और मालवा प्रान्तों के लिए राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के मध्य लड़ाई रहती थी। ध्रुव ने अपना राज्य तो बढ़ाया किन्तु जब ध्रुव के दो बेटों स्तम्भ और गोबिन्द में घरेलू युद्ध हुआ तब उस अवसर से लाभ उठाकर वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने जो राजस्थान की ख्यातों में नाहडदेव नाम से प्रसिद्ध है चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को हराकर कन्नौज पर (लगभग सन् ७९२-९ ई०) अधिकार कर लिया। अब प्रतिहार वंश के शासक ही उत्तरी भारत के महान् शक्तिशाली सम्राट् थे। उनके पूर्व वर्मा वंश का अन्तिम सम्राट् चक्रायुध कन्नौज का शासक था। प्रतिहार वंश का सर्व प्रथम यशस्वी एवं शक्तिशाली शासक नागभट्ट प्रथम था जो मंडोर का स्वामी था। इसने सन् ७२८ से ७४० तक राज्य किया। मंडौर पृथ्वीराज के समय में प्रतिहार वंश की राजधानी कहलाता भी था। राठौड़ों के पूर्व मंडोर मारवाड़ की राजधानी था। राठौड़ों ने मंडौरों के प्रतिहारों के यहाँ पर एक बार शरण भी ली थी। राठौड़ों ने फिर जोधपुर को अपनी राजधानी बनाया जो उसके समीप ही है। भीनमाल और मंडौर दोनों ही मारवाड़ में हैं। मारवाड़ का पूर्व नाम गुजरात था और आजकल गुजरात तो पहले लाट नाम से प्रसिद्ध था। ये प्रतिहार गुर्जर नहीं थे किन्तु गुर्जर भूमि के अधिपति थे। अतः गुर्जर प्रतिहार कहलाये। इसी नागभट्ट ने जैसा पूर्व में लिखा जा चुका है सिन्ध के (७१२ ई० में) लेने के पश्चात् भीनमाल की ओर होने वाले आक्रमणों को रोका। कोई आश्चर्य नहीं कि चाप वंश इसकी शक्ति को देखकर भीनमाल को छोड़कर बसन्तगढ़, अनहिल पाटण, बढवाण आदि स्थानों में बस गये हों पर यह बात नागभट्ट प्रथम तक तो होती हुई दिखलाई न दी क्योंकि इनमें कोई वैमनस्य पाया नहीं गया। दोनों ने मिलकर अरबों का मुकाबला डट कर किया हो। भीनमाल पर अधिकार नागभट्ट द्वितीय ने ही सन् ८१६ के पूर्व कर लिया होगा। नागभट्ट प्रथम के पश्चात् उसका भतीजा ककुत्स्थ (कक्कुक) शासक हुआ। (७४० से ७५५ ई० तक) उसके पश्चात् उसके भाई देवशक्ति (देवराज) शासक हुए फिर उसके पुत्र वत्सराज (७७० से ८०० ई० तक)। वत्सराज ने कन्नौज लिया। नागभट्ट द्वितीय वत्सराज के पश्चात् कन्नौज के शासक हुए। नागभट्ट ने दिग्विजय की और सन् ८१० में कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। इसने ८१० से ८२५ तक राज्य किया। फिर रामभद्र शासक हुआ (८२५ से ८३५ ई० तक) तत्पश्चात् उसके पुत्र मिहिरभोज ने राज्य किया। (इस पर मिहिरभोज का लेख देखिये)

कन्नौज की उपर्युक्त हलचल इस निष्कर्ष पर पहुँचने में अवश्य सहायक सिद्ध होगी कि राजा बर्मलात और भीनमाल वाले प्रतिहार वंश में इतना अन्तर कैसे पड़ चुका? व्याघ्रमुख तक चापवंश का नाम था जो भीनमाल का शासक था। इस बात का प्रमाण ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी भीनमाल वाले ने अपनी ब्रह्मस्फुट सिद्धांतके २४ अध्याय पृष्ठ४०७ में लिखते हैं 'श्री चापवंश तिलके श्री व्याघ्रमुखे नृपेशकनृपालात् पंचाशत् संयुक्तेवर्षशतैः, पंचाभिरतीतैः ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीतों। त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुगुप्तसुत-ब्रह्मगुप्तेन।" इस लेख के अनुसार व्याघ्रमुख शक सम्वत् ५२० में थे। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की भूमिका में

श्री सुधाकर द्विवेदी प्रोफेसर क्वीन्स कालेज ने सन् १९०२ में लिखा है कि अधिकांश विद्वानों के मत से "विष्णुगुप्त, जिष्णुगुप्त इस भाँति गुप्त पद के अन्त में होने से ब्रह्मगुप्त को वैश्य-कुलोत्पन्न बताते हैं जो रीवा नगर के व्याघ्र भट्टेश्वर के प्रधान ज्योतिषी थे। (देखिये गणक तरंगिणी पृ० १६-१७) किन्तु इस समय योरोपीय देशों के विद्वानों ने अनुसन्धान करके यह निश्चित कर दिया है कि गुर्जर देश के मध्य भाग में भीनमाल नामक ग्राम है वही ब्रह्मगुप्त का जन्मस्थान है। (देखिये इण्डियन एन्टक्वेरी भाग १७ पेज १९२ जुलाई १८८८)। इसने अपने को वरुणकृत खण्डखाद्य की टीका लिखते समय "भिल्लमालकाचार्य" विशेषण से विभूषित किया है। गुर्जर देश के ज्योतिषी भी कहते हुए आए हैं कि ब्रह्मगुप्त का जन्मस्थान भिन्नमाल है जो आज भीनमाल कहलाता है जो गुर्जर देश की सीमा (उत्तर) पर मालव देश के दक्षिण भाग में आबू पर्वत और लूणी नदी के मध्य भाग में और उस पर्वत से वायु-कोण में पाँच योजन के अन्तर विद्यमान है। (देखिये भीनमाल सम्बन्धी लेख) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के परीक्षाध्याय में पृथूदक टीका पृ० १६० में "कुल शोभेयमाचार्यस्येति" लेख से भील आदि नीच जातियों का पुरोहित होने से भीलमालकाचार्य इस विशेषता से प्रसिद्ध हुआ। इससे नीच कुलोत्पन्न प्रमाणित हुए। किसी देश का आचार्य कोई हुआ नहीं करता ऐसा प्रोफेसर सुधाकर जी का मत है। किन्तु किसी देश के राजा के जो पुरोहित या जामाता होंगे वे उस देश के ही गुरु, व्यास, पुरोहित, जामाता आदि कहलायेंगे। अतः हो सकता है कि ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के लेखक भीनमाल के महाराज व्याघ्रमुख के राज-पुरोहित हों और इसीलिए आप भिल्लमालकाचार्य विशेषण से प्रसिद्ध हुए हों। भीलों और माल आदि पहाड़ी जातियों की वहाँ विशेषता रही होगी अतः यह देश भिल्लमालक कहलाया। (भीनमाल का लेख पढ़ें)। इस समय ताम्रपत्रादि के लेख स गुर्जर देश में खीष्ट शक ७५६-९४१ के मध्य में चावड़ वंशीय राजा थे तथा चीन देशी यात्री ह्वेनसांग के लेख के अनुसार उनकी राजधानी भीनमाल थी। चावड़ वंशीय ही ब्रह्मगुप्त द्वारा कहे हुए चापवंशीय राजा इतिहासकारों के अनुसार थे। प्रोफेसर महोदय लिखते हैं कि चापवंशीय व्याघ्रमुखनाम वाले कोई राजा सिन्धु (पंजाब) देश में हुए हैं (दखिये आर्चिलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट् वाल्यूम १४ पेज ६५ सुनित) चापवंशवाली मुद्रा सिन्धु (पंजाब) देश के लुधियाना नामक स्थान में प्राप्त हुई है और उन्हीं के आदेशानुसार कोई विद्वान् बगदाद नगर में खलीफा आलमन्सर के पास गया। (देखिये अलबरूनी का भारत, डा० ई. सी. सचाउ कृत वाल्यूम २ पृष्ठ १५)। इस समय भी ब्रह्मगुप्त का ग्रन्थ सिन्धु देश में ही अधिक प्रसिद्ध है। प्रायः उसीकी की हुई खंड-खाद्य सारणी से ज्योतिषी लोग अपने पचांग बनाते हैं। इसकी बनाई हुई सिद्धान्त ग्रन्थ की एक प्रति काशी के राजकीय पाठनालय से और दूसरी डा० थीबो महोदय से और तीसरी अयोध्या नरेश के प्रधान ज्योतिषी श्री यज्ञदत्त शर्मा से प्रोफेसर सुधाकर जी ने प्राप्त की। यह भीनमाल जिसके लिए हमने पूर्व में भी लिखा है गुजरात में था। यह गुर्जर भूमि थी अतः प्रतिहार गुर्जर कहलाये। छठी शदी में उत्तर भारत में गुर्जर जाति यकायक प्रबल हो उठी। पंजाब में गुजरात और गुजराँवाला जिले उसके राज्य का स्मरण कराते हैं। दक्खिनी मारवाड़ में उनकी एक बड़ी राजधानी भिन्नमाल थी। उनका एक और छोटा सा राज्य

भरुच में भी था। उनके नाम से इस देश का नाम भी गुर्जरत्रा (गुजरात) पड़ गया। गुर्जरत्रा में तब मारवाड़ की भी गणना थी। सच पूछा जाय तो यह नाम इसी युग में पड़ा। हर्ष चरित्र में गुर्जर शब्द आया है। गुर्जरों का यह वंश अपनी उन्नति और शक्ति के शिखर पर मिहिरभोज (८३५ ई० ८८० ई०) और महेन्द्रपाल के समय पहुँचा। इसके राज्य का अधिकांश भाग पंजाब और राजपूताना, अवध तथा मध्यभाग तक विस्तृत था। कन्नौज प्रतिहारों के समय में फिर से उन्नति पर था। महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी के समय में प्रतिहारों की शक्ति नष्ट हो गई। राष्ट्रकूटों तथा बंगाल के पालों के आक्रमण हुए। चालुक्यों, चंदेलों, परमारों तथा चौहानों आदि पड़ौसी राजवंशों ने गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के बड़े भाग को हड़प लिया। अन्त में महेन्द्रपाल के पौत्र राज्यपाल के शासनकाल में महमूद गजनवी ने भी बची खुची प्रतिहार सत्ता को भी दो आक्रमणों से नष्ट भ्रष्ट कर दिया। प्रतिहार वंश का इस भाँति ह्रास हुआ। अब ११वीं शताब्दी के अन्त में कन्नौज पर गहरवारवंश के एक शासक चन्द्रदेव ने अपने वंश का प्रभुत्व स्थिर किया। गहरवार वंश राठौर वंश के नाम से प्रसिद्ध है। जोधपुर के राजा ने घोषित किया कि वह गहरवार वंश के अन्तिम राजा जयचन्द्र से सम्बन्धित हैं। अस्तु, चन्द्रदेव के उत्तराधिकारी गोविन्दचन्द्र तथा विजयचन्द्र शासक हुए। फिर इतिहास प्रसिद्ध जयचन्द्र शासक हुआ जो दिल्ली के प्रसिद्ध चौहान नरेश सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन था। जयचन्द्र ने देवगिरि के यादवराज, अन्हिलवाड़ा के सिद्धराज तथा मुसलमान शहाबुद्दीन को हराया किन्तु यह मिथ्या है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में कन्नौज के राजा जयचन्द्र का नाम स्मरणीय है। क्योंकि इसने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि नैषधकार श्री हर्ष को आश्रय दिया था। कन्नौज की श्री वृद्धि जयचन्द्र के समय में हुई। महाकवि माघ सन् ११९१ ई० से आगे किसी भी रूप में नहीं जाते। अत: कन्नौज के इस विवरण को यहीं पर समाप्त करना उचित है।

गुर्जरत्रा (मारवाड़ा) के प्रतिहार मुहणौत नैणसी की ख्यात भाग के प्रथम अनुवादक रामनारायण दूगड़, काशीनागरी प्रचारिणी सभा के पृष्ठ २२८ के नीचे नोट में दिया गया है कि पहले ये पढियार राजा अपने को अग्निवंशी नहीं मानते थे। जोधपुर राज्य के घटियाला ग्राम में मिले हुए पढियार राजा कक्क (कर्क) और उसके पुत्र बाउक के सम्वत् ८९८ व ९१८ विक्रमी के लेखों में पढिहारों की उत्पत्ति ऋषि हरिश्चन्द्र की क्षत्राणी पत्नी भद्रा से बतलाई है। भद्रा के पुत्र भोगभट्ट कक्क, रज्जिल और दद्द ने अपने बाहुबल से माँढव्यपुर का गढ़ लेकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की।

कन्नौज के पढियार महाराज भोज देव (सं० ९०० से ९४० विक्रमी) के लेखमें दिया है कि कुकुत्स्थ वंश में राम हुए जिनका छोटा भाई सौमित्रि (लक्ष्मण) प्रतिहार था। उसका वंश प्रतिहार नाम से प्रसिद्ध है। ऋषि हरिश्चन्द्र की ब्राह्मण स्त्री से ब्राह्मण प्रतिहार हुए। मारवाड़ के पुष्करणे ब्राह्मणों में प्रतिहार गौत्री ब्राह्मण मिलते हैं।

प्रतिहारों का मूल स्थान भीनमाल (मारवाड़) और मांडव्यपुर (मंडौर) था। भीनमाल के पढिहार राजाओं ने विक्रम की नवीं शताब्दी में कन्नौज के महाराज को जीता और दो सौ वर्ष से अधिक उत्तरी भारत के बड़े विभाग पर शासन किया।

मंडोर के प्रतिहार राजा कक्क, राज्जिल, नरभट्ट राज्जिल का पुत्र, नागभट्ट या नाहड थे। पढियार राजा बाउक के लेख में उसका (नाहडका) राजस्थान मेडतंक (मेडता) में होना लिखा है। सम्भव है कि कन्नौज का महाराज्य भीनमाल के पढियारों को मिला तब उन्होंने मंडोर अपने मेडतेवाले भाइयों को दे दिया हो जिससे फिर मेड़ता और मंडोरका राजा एक हो गया हों।

तात—नागभट्ट का पुत्र, अपने छोटे भाई को राज देकर मांडव्य ऋषि के आश्रम में जाकर तपस्या करने लगा।

भोज—तात का छोटा भाई पुत्र यशोवर्धन राजा हुआ। यशोवर्धन के पश्चात् चन्दुक।

शिलुक—यह चन्दुक का पुत्र है जिसने बल्लमंडल के स्वामी भट्टिक देवराज को (जैसलमेर का भाटी राजा विक्रम की नवमीं शती में था) जीतकर उसका छत्र छीना और त्रेता तीर्थ में नगर बसाकर पुष्करिणी आदि बनवाये।

झोट—शिलुक का पुत्र अन्तिम अवस्था में त्यागी होकर गंगा तट पर भजन करने चला गया।

भिल्लादित्य—झोट के पुत्र ने मद्गगिरि (मुगेर) के पास गोडो पर विजय पाई। वह न्याय, व्याकरण और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता, कला-कुशल और नामी था। भट्टिवश की राणी पाउनी से बाउक और दूसरी दुर्लभ देवी से कक्कुक नामी पुत्र हुए।

बाउक—सं० ८९२ में राज्य करता था। कक्कुक ने मरुमाड (मारवाड) बल्लमंडल (जैसलमेर राज्य) तमणी व गुजरात के लोगों की प्रीति प्राप्त सम्पादन की। घटिवाले में एक जैन मन्दिर बनवाकर धनेश्वर गच्छवालों को सौंप दिया। कक्कुक के पीछे मंडोर के पढिहारों का कोई प्रामाणिक वृत्तान्त नहीं प्राप्त होता है।

कन्नौज के पढिहार राजाओं में वत्सराज बड़ा प्रतापी हुआ। जैन हरिवंश पुराण में **वत्सराज** का **समय शक सम्वत् ७०५ दिया है**। वत्सराज नागभट्ट के छोटे भाई **देवराज का** पुत्र था। वत्सराज की सुन्दरी देवी से नागभट्ट हुआ।

नागभट्ट—कन्नौज का महाराज्य प्राप्त किया। आन्ध्र, सैंधव, विदर्भ, कलिंग, और बंगाल के राजाओं को जीता। आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स्य, आदि देशों के पर्वती गढ़ लिए। संभव है नागावलोक यह नागभट्ट है जो सम्वत् ८७२ में था। उसका पुत्र रामभद्र हुआ।

रामभद्र—यह सूर्य का उपासक था। इसकी राणी अप्पा देवी से **भोज** हुए।

भोजदेव—इनका विरद **आदिवराह व मिहिर है**। राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, मालवा, मध्य हिन्दुस्थान और गौड आदि इनके अधीन थे। (अधिक के लिए" मिहिर भोज अंश को देखिये)।

श्री कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुँशी 'दी ग्लोरी दैट गुर्जर देश' भाग तीन में जो वंशावली है दे रहे हैं, वह निम्नलिखित है—
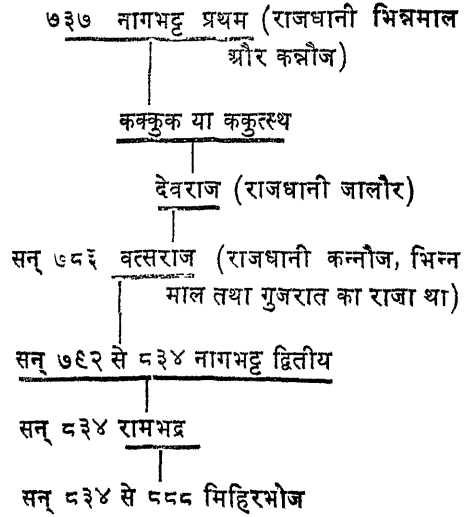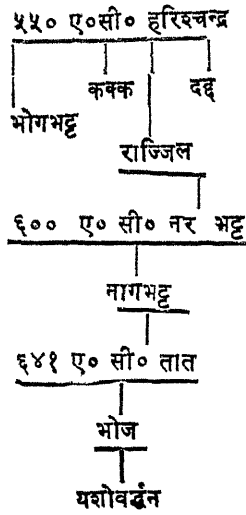
जैन परम्परानो इतिहास भाग १ में त्रिपुटी महाराज ने इन्हीं प्रतिहारों के सम्बन्ध में लिखा है। यशोवर्धन की बात यहाँ आकर स्पष्ट हो जाती है और भोज के विषय में भी उपर्युक्त वर्णनों के अनुसार अन्धकार में नहीं भटकना पड़ता।

देखिये—

पृ० ५३४ मौर्य पडिहार प्रतिहार राजाबली

'मौर्यवंश माथी प्रतिहार वंश नीकल्या छै। ते प्रतिहार वंश विक्रमनी आठवीं सदीं थी। भिन्नमाल अने कनोजनी गीद्दीए आव्यो छै। तेमां घणा राजओ जैनधर्मी के जैनधर्म प्रेमी थया छै, तेनी राजबली नीचें मुजब छै। १ नागाबलोक के नागभट्ट ते पिन्नमालनो राज हतो। तेणे वि० सं० ८१३ लगभग मां पाटण, भइय लाट अने मालवा सुधी पोतानी आणा वर्तावी हती।) (गुजरातना ऐतिहासिक लेखो—भा० ३ नं० २३३ अ)

२. ककुत्स्थ—ते नागलोकनो भतीजे हतो। तेनां कक्कुक अने काकुत्स्थ नामो मणे छै।

३. देवराज—ते ककुत्स्थनो नानो भाई हतो, ते परम भागवत हतो।

४. वत्सराज—आ राजा बहु पराक्रमी हतो। तेना समय मां शाके ६९९ मां जलोर मां हारिलवंश ना आ उद्योतन सूरिए 'कुवलयमाला चम्पू' नी रचना करी छै, तेम ना दिगम्बराचार्य जिनसेने शक सम्वत् ७०५ मां 'हरिवंशपुराण' बनाव्यो छै। तेमां तेओ जणावे छे के आजे उत्तर दिशामां इन्द्रायुद्धनुं राज्य छै। पूर्व मां मालव राज नुं राज्य छै। दक्षिण मां कृष्णना पुत्र कलिबल्लभ याने ध्रुव नु राज्य छै। अने पश्चिम मां वत्सराज नुँ राज्य छै। आ समये 'हरिवंश पुराण' बनाव्युं छै। वत्सराज वि० सं० ८४० मां भिन्नमाल तथा गुजरात नो राजा हतो। (माघ १९वें सर्ग के अन्तिम श्लोक में इसी वत्सभूमि को बढ़ाने की बात कर रहे हैं। श्री वत्सभूमि को इस रूप में लिखने में स्पष्ट है कि माघ उसी भूमि के निवासी थे।)

५. यशोवर्मा—ते ना समये प्रतिहार वंश ना हाथमांथी गुजरात छूटी गयुं हतुं । अेटले तेणे कन्नौज जई त्याना राजा चक्रायुध ने भारी कन्नौज मां ज कायम ने माटे पौतानी गद्दी स्थापी । आ घटना वि० सं० ८६० नी आसपासमां बनेल छै ।

राष्ट्रकूट वंश ना राजा ध्रुवे वि० सं० ८५० लगभग मां यशोवर्मा ने हरावी लाट उपर पोतानी सत्ता जमावी हती ।

त्रीज गोबिन्द पण वि० सं० ८६० लगभग मां यशोवर्मा ने भगाड़ी गुजरात मां पौतावी सत्ता ने खूब मजबूत करी हती अने पोताना नाना भाई इन्द्र ने गुजरा-तनो राजा बनाव्यो हतो । आ परिस्थिति मां यशोवर्मा अे गुजरातनी ममता छोडी कन्नौज पर चढ़ाई करी हशे अने त्यानां राजा ने हराबी त्यां पोतानी गद्दी स्थापी । अस्तु ।

६. बीजे नागावलोक—जे ना बीजूं नामो नागभट्ट अने आमराजा छे । यशोवर्मा राजअे बीजूं राणी नी खटपट थी एक सगर्भा राणी ने काढ़ी । ते राणी अे भिन्नमाल थी नीकली रामसेनमां आवी एक बालक ने जन्म आप्यो जैनूं नाम आम राखबामां आव्यूं । आमने युवराज पद आप्यूं । आम राजा ने अेक वैश्य राणी हती जैना वंश जे द्दोशीना नाम थी ।

७. दुंदुक—आम राज नुं बीजो नाम रामभद्र छै । नागाबलोकना मरणपद्दी कन्नौज नो अे राजा थयो । ते पाटलीपुत्र राजकन्या परण्यो हतो । तेना थी तेने भोज नामे पुत्र थयो । दुंदुक राज वेश्यागामी हतो । मिहिरभोजे पिताने मारी ते राजसिंहासन उपर चढी बैठो ।

इस भाँति यशोवर्मा और प्रतिहार भोज आदि राजाओं के काल तथा वर्णन के विषय में इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत है किन्तु निष्कर्ष यही है कि प्रतिहार भोज वही हैं जो यशोवर्मा के आम के पुत्र दुंदुक को मार कर गद्दी पर बैठे ।

अह्निलवाड पाटण के चावड़ा

पाटण के चावड़ावों ने अपना राज्य सारस्वत मण्डल (उत्तरी गुजरात) में स्थिर किया था जब बलभी राज्य का पतन हो चुका था । यद्यपि ये स्वतन्त्र समझे जाते थे किन्तु सदैव कन्नौज राज्य के अधीन रहे । बंबई गजेटियर भाग तीन, सुकृत-संकीर्तन तथा प्रबन्ध चिन्तामणि के लेखों के आधार पर इनके विषय में नीचे लिखी बातें विदित होती हैं । ये चावड़ा भीनमाल के चापोत्कट या चापवंश की एक शाखा है । पंचासर में चापों का एक छोटा सा राज्य था । चापों का अन्तिम सम्राट् भूयाड़ मार डाला गया था । यह भूयाड़ कौन था इस विषय में कुछ नहीं कह सकते । गर्भवती स्त्री जंगलों में भटकती रही जहाँ पर[1] उसने बनराज चावड़ा को जन्म दिया । यह कहानी बाप्पा रावल चित्तौड़ की ही भाँति की है । इसी वनराज ने सन् ७४६ ईस्वी में अनहिलपुरा की नींव डाली । यह

(१) जयसिंह पंचासर का राजा मार डाला गया जिसकी विधवारानी रूपसुन्दरी से बनराज हुआ ।

समय वह था जब कन्नौज की राजवंशीय शाखा का पतन हो रहा था। कितने ही स्वतन्त्र राज्य राजपूत योद्धाओं द्वारा स्थापित किए जा रहे थे। बाप्पा ने चित्तौड़ के राज्य की स्थापना करली थी। सामन्त देव ने सांभर की ओर, नागभट् ने मंडौर राज्य की। बनराज को अरबों से युद्ध करना पड़ा या नहीं किन्तु हम यह कह सकते हैं कि नवसारी के एक लेख के अनुसार अरबों ने दक्षिण पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ना चाहा तो चापों ने रोकना चाहा किन्तु अरबों के बार-बार के आक्रमण को रोकने से उनकी शक्ति नष्ट सी हो गई थी इसलिए किसी चाप राजा को उसी के साम्राज्य में पराजित होना पड़ा। कन्नौज साम्राज्य के विवरण में स्पष्ट है कि व्याघ्रमुख चापवंशी का एक पुत्र ह्वेनसांग के समय में था। सन् ६४२ के लगभग उसका पुत्र या पौत्र वर्मलात भीनमाल पर शासन करता था। बसन्तगढ़ के लेख के अनुसार राजा वर्मलात महाकवि माघ के पितामह श्री सुप्रभदेव के स्वामी थे जिसके अधीन अर्बुद तो था ही और अन्य सामन्त भी थे। चापवंशीय राजा वर्मलात ने आक्रमणों से कदाचित् परिचित होकर ही अपनी राजधानी भीनमाल को छोड़ा और बसन्तगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। उस समय नागभट् मंडौर पर अपना अधिकार स्थापित कर रहा था। वह शक्तिशाली था अत: अन्त में भीनमाल का शासन प्रतिहार वंश के वैद्य अधीन हो गया। चाप वंशीय इधर-उधर बिखर गये। यह वर्मलात भीनमाल के किसी चाप राजा के छुटभाई रहे हों यह संभव है और ज्येष्ठ भ्राता संभवतया आक्रमण में मारे गये। जब जयसिंह की स्त्री ने बनराज को जन्म दिया। उसी समय बाप्पा रावल भी चित्तौड़ की गद्दी पर आया। सन् ७४६ के लगभग उसका पौत्र भोज शासन करता था। चित्तौड़ भीनमाल से अधिक दूर नहीं है। बनराज ने बापा की ही भांति एक लम्बा शासन किया। (७६५-८०५ ई० तक) अन्हिलवाड की स्थापना तो इसके पूर्व ही हो चुकी थी और उनका शासन सन् ७६५ में यह बात समझ में नहीं आती। फिर योगराज (जोगराज) शासक हुए जो भोज प्रतिहार की अधीनता (सन् ८०६ से ८४१ तक) में राज्य करते रहे। (देखिये सी० बी० वैद्य का इतिहास-राजपूत काल) फिर रत्नादित्य और बैरिसिंह, खेमराज (८५६) फिर मुदराज (भूयाड़ भी कहलाते थे) सन् ८८१ में थे। फिर राहप ९०८ ई० अन्तिम राजा ने सन् ९३७ में शासन किया। फिर मूलराज सोलंकी ने जो भाणजा ही था छीनकर राज्य किया। महाकवि माघ का भी यही समय है।

चावड़ा लोग सूर्य के उपासक समझे जाते हैं। वह सम्भवत: शैव थे और जैन पंडितों को प्रोत्साहन तथा संरक्षण देते थे। इन्हीं का एक छोटा सा राजवंश चापवंश काठियावाड़ के वर्धमान पर शासन करता था। इसी प्रकार एक अन्य शाखा चड़ासम वामनस्थली (यानथली या बनस्थली) में ८७५ ई० में राज्य कर रही थी। मूलराज के पश्चात् भीमराजा प्रथम हुआ जो मालवे के राजा भोज और चेदिवंश के राजा कर्ण का समकालीन था। भीम के पुत्र कर्ण ने कर्णावतीनगर बसाया जो आगे चलकर अहमदाबाद के रूप में विकसित हुआ। जयसिंह सिद्धराज इस सोलंकी वंश का शक्तिशाली राजा था। वह विद्वानों का आदर करता था। जैन पंडित हेमचन्द्र इसी के शासन में था। फिर कुमारपाल हुआ (११४६ ई.—११७३ तक)।

मूलराज सोलंकी के शासनकाल में गुजरात स्वतन्त्र हो गया जब वहाँ का राजा महेन्द्रपाल था। इस समय से सन् ९५३ ई. तक भीनमाल गुजरात का प्रधान नगर समझा जाता था। इसके पश्चात् ही भीमसेन के शासन काल में १८,००० गुर्जर भीनमाल से चल दिये। श्रीमाल पुराण का कहना है कि श्री ने उस देश को तब त्याग दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अह्लिलवाड भीनमाल के स्थान पर मुख्य नगर हो गया। (१) अब अन्हिवाडा में चापवंश का राज्य था और भीनमाल के व्याघ्रमुख की बात भी चापवंश की प्रदर्शित की किन्तु काठियावाड़ के बढवाण प्रान्त में भी धरणीवराह चाप का नाम आता है जो कन्नौज के अधीन था। ये चापोत्कट राजा हैहयवंश के कहलाते हैं। कृष्णकवि की रत्नमाला में पंचासर राज्य के जयशेखर की कहानी है। जयशेखर पर कल्याणकटक के राजा का ६९६ में आक्रमण हुआ। रूपसुन्दरी को उसने जंगल में भेज दिया जहाँ पर उसके बनराज नामक पुत्र हुआ जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। इस पंचासर के द्वारा भीनमाल के चावड़ा का अणहिलवाड़ पुरा के चावड़ा से सम्बन्ध था। बनराज की मृत्यु ८०६ ई. में हुई। वह ११० वर्ष जीवित रहा। वह इस भाँति सन् ६९६ में पैदा हुआ। इस समय गुजरात कान्यकुब्ज की सीमा न हो सका। प्रतिहारों द्वारा चाप भीनमाल से निकाल बाहर कर दिये गये। उत्तरी गुजरात में सन् ७९३ ई० तक चावड़ा शासक थे। फिर भीनमाल से पंचासर चले गये। वहाँ भी प्रतिहारों ने उन्हें पंचासर में हरा दिया। उस अन्हिलवाडा को बनराज ने बसाया।

कन्नौज और अन्हिलवाडा के विषय में इतनी जानकारी का हमारे लिए उपयोगी निष्कर्ष—

(१) ह्यूनसांग सन् ६४१ में भीनमाल के लिए लिखता है कि २० वर्ष का एक क्षत्रिय युवक वहाँ पर राज्य कर रहा था जो बौद्ध धर्म को मानता था।

(२) ब्रह्म गुप्त ज्योतिषी लिखता है कि सन ६२८ ई० में व्याघ्रमुख चाप भीनमाल का शासक था। अत: सन ६४१ का युवक राजा व्याघ्रमुख चाप का पुत्र था।

(३) ताम्रपत्र में लिखा हुआ है कि चापोत्कट पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। इतिहासकार कहते हैं कि अरबों के आक्रमण के पूर्व तक भीनमाल पर चापों का राज्य था। ये चाप प्रतिहारों द्वारा भीनमाल से निकाल बाहर कर दिये गये। उत्तरी गुजरात में सन ७९३ तक चावड़ा शासक थे फिर भीनमाल से पंचासर चले गये। फिर प्रतिहारों ने पंचासर में उस समय कोई भूयाड राजा का होना कहते हैं तो कोई जयशेखर का (जयसिंह)। उसकी विधवा रानी ने वनराज को जन्म दिया जिसने अन्हिलपाटन बसाया।

भीनमाल पर अरबों के आक्रमण का समय सन ७३२-७४० के मध्य का था। नागभट्ट प्रतिहार वंश के संस्थापक मंडोर (जोधपुर) के शासक ने भीनमाल की ओर बार-बार होते हुए आक्रमणों को रोका। इन आक्रमणों को रोकने में दोनों (चाप प्रतिहार) शक्तियां मिलीं। किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि अरबों ने किसी चाप राजा को पराजित किया।

---

(१) देखिए बम्बई गजेटियर पृष्ठ ४६९

अरबों के आक्रमण भीनमाल पर ही बार-बार हुए। नागभट्ट तक प्रतिहारों और चापों में कोई वैमनस्य नहीं दिखता। नागभट्ट ने सन ७४० तक शासन किया। भीनमाल उसकी राजधानी थी। हो सकता है कि चाप उसकी शक्ति से पृथक् हो गये हों, किन्तु उत्तरी गुजरात में सन ७९३ तक चावड़ा का शासन होना इस बात का प्रमाण है कि नागभट्ट प्रथम तक ऐसी कोई बात न हुई होगी। वत्सराज प्रतिहार ने सन ७७० से ८०० तक राज्य किया। उसी ने कन्नौज लिया। हो सकता है वही चावडों के पीछे पड़ गया और उसी ने चापों को भीनमाल से निकाल बाहर किया हो, यहाँ तक कि पंचासर से भी। अरबों के आक्रमण ने चापों को इधर-उधर अवश्य कर दिया होगा पर भीनमाल को फिर भी उन्होंने नहीं छोड़ा। प्रतिहारों ने ही छुड़ाया। अत: यदि वर्मलात सन ७६० ई० में भीनमाल का शासक हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं और नागभट्ट प्रथम ने ही ७४० ई० में भीनमाल पर अधिकार कर लिया हो तो राजा वर्मलात, हो सकता है, बसन्तगढ़ को लेकर ही सन्तुष्ट हो गया हो। हमको यह बात होती हुई इसलिए नहीं दिखलाई देती है कि माघ कवि भीनमाल का निवासी अपने को बताता है और उसके राजा वर्मलात को अपने पितामह का स्वामी। राजा वर्मलात सन ७६० ई. में था। अत: राजा वर्मलात भीनमाल का शासक था जो चाप था। चापों को भीनमाल से हटाने वाले ही प्रतिहार राजा थे। प्रतिहारों में राजा वर्मलात का नाम नहीं आया और फिर भीनमाल राजधानी के शासक के रूप में। अतः यही निष्कर्ष फिर भी निकला कि राजा वर्मलात सन ७६० में भीनमाल का शासक था जो चापवंशीय था। पंचासर में जो चाप थे वे सगोत्रीय थे, सम्बन्धी थे, किन्तु राजा वर्मलात से उनका कोई विशेष सम्पर्क न रहा। अरबों के आक्रमण ने पंचासर के चाप को ही पराजित किया हो, न कि भीनमाल के किसी चाप राजा को। अत: उन्होंने अन्हिलपाटण बसाया होगा न कि भीनमाल के चापों ने।

इस काल का राजनैनिक जीवन

यह समय राजनैतिक अव्यवस्था तथा अराजकता का था। यह देश इस समय अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभाजित था। जिस राजपूत ने जहाँ पर अवसर पाया वहीं पर उसने अपने बाहुबल से राज्य स्थापित कर लिया। इन शासकों में अलंकार तथा मिथ्या आत्मसम्मान की भावनायें कूट-कूट कर भरी हुई थीं। ये अपने बंश की कीर्ति, आत्मसम्मान तथा धर्म-विजय के नाम पर युद्ध करना ही जीवन का उद्देश्य समझते थे। ब्राह्मणों ने इनकी स्थिति को दृढ़ किया। ये ब्राह्मण ऊंचे-ऊंचे राज्यपदों पर नियुक्त किए गये।

इस युग के राजपूत राजा निरंकुशता के साथ-साथ स्वेच्छाचारिता के भाव वाले भी थे। वे अपने को देवतातुल्य समझते और अपनी पूजा करवाते थे। ब्राह्मण मन्त्रियों का जो कुछ प्रभाव उन पर था, वह वैयक्तिक था। राजाओं के नीचे सामन्त और जागीरदार होते थे जिनको या तो वेतन मिला करता था या जागीरें दी जाती थीं। वातावरण युद्ध का ही रहता। राज्यों की सीमाएं नित्य प्रति ही परिवर्तन होती रहतीं। सुदृढ़ शासन और राज्य-व्यवस्था का प्राय: अभाव ही था। सामन्त अधिकांश राजा के ही वंश वाले होते थे जो वार्षिक कर या सैनिक सहायता समय पर दिया करते थे। स्वामी के प्रति इनकी स्वाभाविक

स्वामीभक्ति थी। राजा यदि दुर्बल तथा अयोग्य प्रमाणित हो जाता तो ये सामन्त ही उसके राज्य को लूटकर अपनी सत्ता स्थापित करने में न चूकते। भीनमाल में चापों का प्रबल राज्य था। निकटवर्ती स्वतन्त्र राजा लोग सामन्त रूप में रहकर भीनमाल के राजा को कर देते रहे होंगे किन्तु अरबों के बार-बार के आक्रमण ने जब चाप शक्ति को निर्बल बना दिया होगा तो मंडोर के शक्तिशाली गुर्जर प्रतिहार नागभट्ट ने प्रथम तो सामन्त के रूप में चापों के साथ अरबों से मुठभेड़ की होगी, फिर हो सकता है कि अन्त में समय पड़ने पर अपने वंश की कीर्ति को बढ़ाने के लिए भीनमाल को हड़प लिया हो और इस भांति वह भीनमाल का शासन बन बैठा हो। वत्सराज प्रतिहार तक भीनमाल प्रतिहारों की राजधानी हो चुका अथवा उनके अधिकार में आ गया था।

राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि कर था। व्यापार तथा उद्योग धन्धों या सामन्तों पर लगाये जाने वाले करों से भी राज्य की अच्छी आय हो जाती थी।

राज दरबारों के षड्यन्त्र, नित्य प्रति की हत्या की घटना, सामन्तों के विद्रोह, रानियों व राजकर्मचारियों के भ्रष्टाचार आदि बातों ने देश को इतना शक्तिहीन बना दिया कि विदेशी आक्रमण के होते ही यह देश बहुत स्थानों पर असहाय सिद्ध हुआ क्योंकि सब मिलकर यदि विदेशियों से लोहा लेते तो विदेशी इस भूभाग पर पैर नहीं रख सकते किन्तु अलग-अलग अपने संकुचित स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए उनसे वे लड़ते रहे, फिर सिन्ध पर अरबों की विजय कैसे न होती। दाहिर बेचारा अकेला क्या करता ? जब तक चाप व प्रतिहारों से सम्मिलित होकर अरबों से टक्कर ली तब तक तो भारत में अरबों का अधिकार न हो सका पर जैसे ही प्रतिहारों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थिर करनी चाही, अरबों ने फिर आक्रमण किया और वे चाप-राज्य को पराजित करने में सफल हुए। फिर तो महमूद गौरी आदि जयचन्द के समय तक आते ही गये। ये राजपूत दुर्गमस्थानों में अपने लिए दृढ़ दुर्ग बनाते थे और एक दूसरे से निरंतर संघर्ष करते रहते थे। उस काल के नगर चारों की ओर से सुरक्षित थे। सार्वजनिक और निजी युद्ध यद्यपि इस युग का एक व्यसन (फैशन) सा था किन्तु फिर भी देश के विभिन्न भागों के मध्य आदान-प्रदान और सम्पर्क के पर्याप्त साधन विद्यमान थे। व्यापार सम्पन्न अवस्था में था। कवि, चारण, और विद्वान राजाओं के दरबार में जाते थे और वहाँ उन्हें पर्याप्त संरक्षण तथा प्रोत्साहन मिलता था। मंदिरों की संख्या बहुत थी। मंदिरों की देख-रेख, गांव की खेती, सिंचाई, कर की वसूली, अपराधियों को पकड़ना यह सब पंचायत का काम था। मंदिर उन पंचायतों के सभा-भवन का काम देते थे। राजा वर्मलात के शिलालेख में कुछ मनुष्यों की गोष्ठी का उल्लेख है। यह गोष्ठी पंचायत सरीखी है।

इस युग की इन आरम्भिक शताब्दियों में देश धार्मिक मतभेदों और जातीय ईर्ष्या-द्वेष से बचा हुआ था। जब कोई राजा अपने पड़ौसी राजा पर विजय प्राप्त कर लेता तो पराजित राजा को ही वहाँ का शासक नियत कर दिया जाता था या उसी के परिवार वाले किसी अन्य व्यक्ति को, किन्तु शर्त इतनी सी होती कि वह पराजित राजा विजय प्राप्त राजा को अधीनता स्वीकार के रूप कुछ भेंट अथवा कर देता रहे। प्रतिहार वंश के सम्बन्ध में

इतनी ही जानकारी पाते हैं कि उन्होंने बढबाण के चापों पर विजय प्राप्त करके उनसे कर लिया। हो सकता है, भीनमाल के चापों के साथ भी कुछ वर्षों तक ऐसी ही बात रही हो और अन्त में उन्हें भीनमाल से निकाल कर बाहर कर दिया गया हो। इन सब प्रमाणों से अरबों के आक्रमणों के पश्चात् का चाप राजा वर्मलात था। तभी महाकवि माघ ऐसे नैतिक वातावरण में पोषित होकर प्रतिहार राजकुल की संरक्षता को स्वीकार करते हुए शिशुपाल-वध महाकाव्य के युद्धभाग को यथावत् लिखने में समर्थ हो सके और अहंकार एवं पूजा की उस भावना का तथा उस समय की अन्य राजनैतिक तथा सेना सम्बन्धी मान्यताओं और परम्पराओं का यथावत् चित्रण करने में समर्थ हो सके।

सामाजिक स्थिति

इस युग में वर्ण व्यवस्था ने जाति पाँति का रूप धारण कर लिया था। सामाजिक परिधि के संकीर्ण होने से ये लोग विदेशियों को अपने में पचा न सके। जाति बन्धन अब इतने कठोर हो गये कि उनमें नवीन तत्वों का प्रवेश अब कठिन था। खान-पान, विवाह तथा आजीविका के नियम इस युग में बदल चुके थे। इतना होने पर भी अपवाद अवश्य थे। स्मृतिकारों ने ब्राह्मणों को कृषि करने तथा अवसर आने पर शस्त्रग्रहण करने का अधिकार दे रखा था। वैश्य भी राजकार्य करने, राजमन्त्री होने, सेनापति बनने व युद्ध में लड़ने के लिए कटिबद्ध होते। क्षत्रिय महत्वपूर्ण रचनायें भी करते थे। विवाह बन्धन बड़ा बन्धन था। सातवीं शताब्दी के बाद अपनी ही जाति में विवाह करने का बंधन हो गया था। बाणभट्ट ने शूद्र से उत्पन्न अपने पारशव भ्राता का विवरण हर्ष चरित्र में लिखा है। राजशेखर ब्राह्मण थे जिन्होंने चौहान कन्या अवन्ति सुन्दरी से सम्बन्ध किया था जो बड़ी विदुषी थी। ऐसे असवर्ण विवाह १२वीं शती तक होते थे, पर अपवाद रूप में ही। शनैः शनैः विवाह में वर्ण और जाति की ही नहीं उपजाति की समानता भी आवश्यक प्रतीत होने लगी यद्यपि स्मृतिकार इसके सम्बन्ध में मौन हैं। ब्राह्मण पहले एक थे फिर इनमें प्रदेश तथा पेशे के अनुसार विभेद हो गये और उपजातियाँ भी बन गईं। वर्ण-व्यवस्था प्रथम कर्मणा थी किन्तु अब उसके स्थान पर वह जन्मना हो गई, आरम्भ में तो यह लाभप्रद अवश्य सिद्ध हुई। इससे धर्म और समाज की रक्षा हुई। विदेशी इसी कारण यहाँ की संस्कृति और सभ्यता को नष्ट नहीं कर सके। यदि भारतीय जातियाँ उनमें विलीन हो गई होतीं तो आज हिन्दू सभ्यता तथा आर्य-संस्कृति का नाम भी नहीं रहता। इस युग में जातीय सहयोग की भावना इतनी दृढ़ हो गई कि उन्होंने अपने लेखों में अपने गोत्रों तक का उल्लेख करना बन्द कर दिया। इसलिए कालान्तर में राजपूतों को एक जाति समझा जाने लगा। वे शूरत्व के साक्षात् अवतार थे। निर्भयता तथा साहस में किसी से पीछे न थे। युद्ध में मृत्यु प्राप्त करना एक राजपूत के लिए गौरव की बात मानी जाती थी।

इस युग की स्त्रियों का जीवन भी अत्यन्त साहस तथा वीरता से पूर्ण था। पुरुषों की भाँति वे भी वीरता से ओतप्रोत थीं। पतिभक्ति उनमें उच्चकोटि की पाई जाती थी। पति की मृत्यु के उपरान्त सती होना वे अपना कर्तव्य समझती थीं। पति के मारे जाने तथा शत्रु से घिर जाने पर अथवा पति के असह्य रोग से पीडित होने से मरणोन्मुख पति के

सम्मुख सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में हँसते-हँसते भस्म होना उनके बायें हाथ का खेल था। हर्ष चरित्र में सती दाह का वर्णन है। महाकबि माघ ने इसका वर्णन किया है। वे पढ़ी लिखी होती थीं। राज्यश्री का तो वर्णन आता ही है परन्तु मंडनमिश्र की स्त्री ने शंकर को भी निरुत्तर कर दिया था। इन्दुलेखा, मारुला, मोरिका, विज्जिका, शीला, सुभद्रा, पद्मिनी, मदालसा, लक्ष्मी, लीलावती आदि विदुषी महिलाओं के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। अक्का देवी शासन करने वाली एक वीर स्त्री थी जो विक्रमादित्य सौलंकी की भगिनी थी। पर्दा प्रथा थी, परन्तु उसका स्वरूप एक विशेष प्रकार का था। माघ काव्य में कई स्थानों पर स्त्रियों के परदे का वर्णन आता है। विधवाओं का विवाह शनैः शनैः बन्द हो रहा था। स्त्रियों की पुरुषाधीनता बढ़ रही थी, वे इस युग में आकर विलास की सामग्री बन रही थीं। मदिरपान इस युग में था अत: अधिकतर पुरुष और कभी-कभी स्त्रियाँ दोनों ही विशेष अवसरों पर मदिरा में मस्त रहकर भोगमय जीवन बिताते थे। शिशुपालवध महाकाव्य में एक सर्ग में मदिरा-पान का सजीव वर्णन मिलता है।

इस युग में कला और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। भाषा में चमत्कार लाने और उसको सुन्दर बना कर पाठकों के सम्मुख सजाकर रखने की रीतियाँ साहित्य में प्रतिष्ठित हो गयी थीं। भारवि से अलंकार शैली का विकास हुआ। माघ ने उसको पूर्णता दी। मौलिकता तथा नवीनता तो अब इस युग की देन न रही अत: पूर्व के कवियों जैसी भाव अथवा रस प्रधान कविता तो रही नहीं, रस-सौन्दर्य के स्थान पर अलंकारों के कृत्रिम सौंदर्य वाली शैली चल पड़ी। यह अवश्य था कि संस्कृत साहित्य के प्राय: सभी अंगों की उन्नति इस युग में हुई क्या काव्य, क्या नाटक, क्या चम्पू (गद्य-पद्यात्मक काव्य) अलंकार शास्त्र, व्याकरण, कोष, दर्शन आदि लिखे गये। भवभूति, माघ, भट्टनारायण, श्री हर्ष, मुरारि, राजशेखर, दण्डी, बाण, धनपाल, कल्हण, बिल्हण, जयानक, हेमचन्द्र, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, जयादित्य, भर्तृहरि, क्षेमेन्द्र, सोमदेव, वाग्भट्ट, विज्ञानेश्वर, भास्कराचार्य, वात्सयायन, शार्ङ्गदेव, शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट आदि प्रसिद्ध संस्कृत साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग में प्राय: सब ही कथानक रामायण अथवा महाभारत से लिये जाते थे। कुछ कवि अपने आश्रयदाताओं के चरित्रों को लिखकर ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा डाल रहे थे किन्तु ये माघ के पश्चात् के हैं, पूर्व के अथवा तत्कालीन भी नहीं। इनमें बहुत से कवि राज-सम्मानित थे इसलिए इनकी रचनाओं में यत्र तत्र तात्कालिक राज-प्रभाव देखने को मिलता है। इस दृष्टि से देश के राजनैतिक इतिहास के निर्माण में इनसे सहायता मिली है।

धार्मिक जीवन में कला की अभिव्यक्ति

यह युग हिन्दू धर्म की पूर्ण विजय तथा बौद्ध धर्म के पराभव का काल था। मूर्ति निर्माण कला का यह युग था अत: बुद्धदेव को अवतार मानकर उनकी भी मूर्तियाँ बनने लगीं और मूर्ति पूजा होने लगी। स्वर्ग नरक की कल्पना चित्रमय रूप धारण करने लगी। सैकड़ों कला पूर्ण मन्दिर बने। भित्ति चित्र अंकित

किये गये। धार्मिक क्रिया कलापों और अनुष्ठानों का महत्व बढ़ गया। आचार की अपेक्षा भक्ति और पूजा पाठ पर जोर दिया जाने लगा। इस सबने स्थापत्य तथा चित्रकला को प्रोत्साहित किया।

महात्मा बुद्ध के कई वर्षों पश्चात् भारत में बौद्ध धर्म रहा। ईसा की सातवीं शती से चौदहवीं शती तक उद्योतकर, कुमारिल, शंकर, वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य, रामानुज और सायनाचार्य आदि दार्शनिकों तथा भवभूति और माघ जैसे कवियों ने भारत भूमि में एक बार फिर ब्राह्मणधर्म का पुनरुद्धार किया और वैदिक क्रिया कलाप का पौराणिक संस्करण हुआ। धर्म समन्वय का भाव अब भी भारतीय हृदय में बद्धमूल था। शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माघ एक ओर बौद्धधर्म की सुन्दर-सुन्दर बातों को लिखकर पाठक का ध्यान उस ओर आकर्षित करते हैं तो दूसरी ओर यज्ञ, हवन, कर्मकाण्ड आदि की बातें लिखकर ब्राह्मण धर्म को पुनर्जीवित रूप में प्रस्तुत करते दृष्टिगत होते हैं। धर्म का यह समन्वय-भाव हमको महाकवि माघ रचित शिशुपालवध महाकाव्य में पूर्णतया दिखाई देता है। महाकवि भवभूति की वैदिक मार्ग के पुनरुद्धार की चेष्टा की शैली का रूप भिन्न था। उससे उनकी मौलिकता का परिचय अवश्य प्राप्त होता है। बौद्धों से साक्षात् युद्ध ठानने तथा वैदिक क्रिया-कलाप की साक्षात् प्रशंसा करने के बजाय भवभूति ने प्राचीन और पवित्र वैदिक समाज के आदर्श चरित्र को उपस्थित करते हुए पतितावस्था वाले हिन्दू समाज की स्थिति को पाठकों के सम्मुख रखकर अपना कर्तव्य निभाया।

माघ के समय में बौद्ध समाज की अवस्था हीन हो चली थी और हिन्दू धर्म का अभ्युदय होना प्रारम्भ हो गया था। कहीं पर हिन्दू देवी देवताओं की उपासना बौद्धों ने प्रारम्भ करदी थी तो कहीं हिन्दूधर्मावलम्बियों ने भी बुद्ध की। "भक्ति शतक" के रचयिता रामचन्द्र कवि भारती लिखते हैं—

"ज्ञानं यस्य समस्त वस्तु विषयं यस्यानवद्यं वचः।
यस्मिन् रागलवोऽपि नैव न पुनर्द्वेषो न मोहस्तथा॥
यस्या हेतुरनन्त सत्वसुखदाऽनल्पाकृपा माधुरी।
बुद्धो वा गिरिशोऽथवा स भगवांस्तस्मै नमुस्कुर्महे॥"

उपर्युक्त में बुद्ध को श्लेष के द्वारा नमस्कार किया गया है। यह है धर्म का समन्वय! माघ ने भी शिशुपालवध के १८वें सर्ग के ११२ श्लोक में कहा है—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः॥

श्रीकृष्ण को "जिनः" शब्द से अलंकृत किया है। नागानन्द में प्रथम अंक के प्रथम-श्लोक के अन्त में "जिनः" शब्द का प्रयोग करते हुए हर्ष लिखते हैं—"बौधौ जिनः पातु वः" जिनः शब्द का अर्थ उस समय बुद्ध भगवान भी लिया जाता था। तत्पश्चात् जब भीनमाल की ओर जैनधर्म का प्रचार अधिक हुआ तब यह शब्द जैन धर्म और उसके तीर्थंकर महा-

वीर स्वामी के लिए अधिकता से प्रयुक्त किया जाने लगा। "जयति वा जानातीति जिनः सर्वज्ञः इति।" सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागत इत्यमरः" इन उद्धरणों से उस समय का धर्म-समन्वय की भावना का भी परिचय मिलता है। उस समय में क्या हिन्दू, क्या जैन, क्या बौद्ध सब परस्पर में एक दूसरे से मिले जुले थे। इन सम्प्रदायों में बैरभाव का नाम तक न था। राजपूत युग का यह प्रारम्भिक काल था जैसा हमने राजनैतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है।

इस युग में ही धर्म के दो महान् आचार्य हुए—कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य। कुमारिल ने बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया और अपने पांडित्य तथा अकाट्य तर्कों से बौद्ध आचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। शास्त्रार्थ शैली यहाँ से प्रारम्भ हो गई थी। ये पूर्व-मीमांसा के अनुयायी थे। वैदिक कर्मकाण्डों में उनकी आस्था थी। उनका समय सातवीं शताब्दी माना जाता है सन् ७०० में कुमारिल ने वेदों और वैदिक कर्मकाण्ड की श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया। शंकर कुमारिल से एक शती पश्चात् हुए। जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म ईसा सम्वत् ७८८ में हुआ था। उपनिषदों पर इन्होंने टीकाएँ एवं भाष्य लिखे। ये वेदान्त दर्शन के अनुयायी थे। अद्वैतवाद का उन्होंने प्रतिपादन किया जिसके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है। गोचर जगत् उसी का मायामय रूप है। माया रूप जगत् हेय है। इन्होंने हिन्दू-वर्ण-व्यवस्था की जड़ों को मजबूत किया। इस युग के प्रमुख हिन्दू देवता शिव, विष्णु, शक्ति और गणपति आदि थे। राम तथा कृष्ण को विष्णु का अवतार इसी युग में माना जाता था। शिशुपालवध काव्य इसका प्रमाण है। तीर्थ-यात्रा का अधिक प्रचार था। नदियों को पवित्र माना जाता। गंगा यमुना की पूजा, होली, दिवाली का मनाया जाना इस युग में खूब प्रचलित हुआ।

शंकराचार्य कब हुए, कहाँ हुए आदि आदि प्रश्नों पर अब तक भी भिन्नमत हैं। श्री बलदेव उपाध्याय "श्री शंकराचार्य" ग्रन्थ के आविर्भाव काल में कहते हैं (१) कांची कामकोटि पीठ के अनुसार आचार्य का जन्म २५९३ कलि या युधिष्ठिर सम्वत् (५०९ ईस्वी पूर्व हुआ था, तथा उनका देहावसान २६२५ कलि सम्वत् (२७६ ई० पूर्व) के ३२ वर्ष की अवस्था में माना जाता है। कामकोटि के मठाम्नाय का कहना है कि उस पीठ पर ५ शंकर नामधारी हुए, जिनका मृत्युकाल विभिन्न समय का है। आद्य शंकराचार्य (मृत्यु २६२५ कलि सम्वत्), कृपा शंकर ६९ ईस्वी, उज्ज्वल शंकर का ३६७ ईस्वी में मूकशंकर का ४३७ ई० में और अभिनवशंकर का ८४० ई० में। आधुनिक आलोचक आद्य शंकर के जन्म को ७८८ ई० में कहते हैं जो उपर्युक्तानुसार अभिनवशंकर के जन्म ग्रहण करने का है।

निष्कर्ष—(१) काम कोटि परम्परा शंकराचार्य को ईस्वी पूर्व ५०८ से लेकर ई० पूर्व ४७६ बता रही है। मृत्यु के विषय में अधिकांश ३२ वर्ष बता रही है किन्तु वेंकटेश्वरका मत है कि वह ८५ वर्ष तक जीवित रहे। (१)

(२) शंकराचार्य धर्मकीर्ति (६३५-६५० ई०) के ग्रन्थों से परिचित थे (पृष्ठ ३४)

(३) डा० के. बी. पाठक गवेषणा के पश्चात् इस निष्कर्ष पर जाते हैं कि शंकराचार्य (७८८ ई० ८२० ई०) ८४५ विक्रमी से ८९७ विक्रमी तक थे।(२)

(४) जिनसेन ने अपने 'हरिवंश" की रचना (७८३ ई० में) की। इन्होंने अपने ग्रन्थों में विद्यानन्द की ओर संकेत किया है विद्यानन्द ने अपनी "अष्ट साहस्री" में सुरेश्वराचार्य (५० ई०) के वचनों को वृहदारण्यक भाष्य वार्तिक से उद्धृत किया है। सुरेश्वर के गुरु शंकर थे (पृष्ठ ३८)।
उपर्युक्त मत से तो बलदेव उपाध्याय शंकर का ७८८ ई० में होना असम्भव सा सिद्ध कर रहे हैं।

(५) कुमारिल से शंकर की भेंट हुई है। कुमारिल के शिष्य मंडनमिश्र थे जिनके साथ शंकर का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। कुमारिल अतिवृद्ध थे और शंकर की आयु १६ वर्ष की थी तब वे परस्पर मिले। कुमारिल धर्मकीर्ति (६३५-६४०) के समकालीन थे ऐसी तिब्बत में जनश्रुति है। धर्मकीर्ति नालान्दाचार्य धर्मपाल के शिष्य थे। इन कुमारिल के शिष्य भवभूति थे। इसमें कोई संदेह नहीं है। भवभूति कान्यकुब्ज नृप यशोवर्मा (७२५-७५२ ई०) के सभा पंडित थे जिनको ७३३ ई० में काश्मीर नृप ललितादित्य मुक्तापीड के हाथों पराजित होना पड़ा ३।

निष्कर्ष—कुमारिल धर्मकीर्ति के समकालीन थे अतः कुमारिल का समय ७०० ई० तक आता है। भवभूति को जब शिष्य ठहराया जाता है तब तो फिर अवधि और भी बढ़कर आठवीं शती के अन्त तक पहुँच जाती है।

[६] श्री उपाध्याय ने पृष्ठ १०४ पर राजा राजशेखर से शंकराचार्य का मिलान कराया है। उनकी भेंट बड़ी रोचक है। राजा संस्कृत-काव्य का बड़ा प्रेमी था। उसने तीन नाटक लिखे थे। श्री उपाध्याय ना. प्र. प. भाग ६ का संकेत देकर कहते हैं कि यह राजशेखर यायावर ब्राह्मण था जिसका घर विदर्भ में था और कर्मक्षेत्र कान्यकुब्जनगर। उधर श्री पाण्डेय अपनी 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' में राजशेखर को यायावर नामक क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुआ बताते हैं जिनकी माता का नाम शीलवती और पिता दुर्दुक थे। विवाह चौहान जाति की क्षत्रिय कन्या अवन्ति सुन्दरी के साथ हुआ है जिसको तो श्री उपाध्याय भी स्वीकार करते हैं। भेद इतना है किश्री उपाध्याय तो राजा राजशेखर को केरल प्राप्त का बताते हैं उधर अन्य इतिहासज्ञ राजा महेन्द्रपाल के राजगुरु बताते हैं। महेन्द्रपाल कान्यकुब्ज के प्रतिहार बंशी राजा थे जो मिहिरभोज के पीछे शासक हुए।

---

[१] श्री शंकराचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३८

[२] धर्मकीर्ति और शंकराचार्य बी. बी. आर. ए. एस. XVIII पृष्ठ ८८-९६
भर्तृहरि और कुमारिल B. B. R. A. S. XVIII पृष्ठ २१०-२३८

[३] राजतरंगिणी।

निष्कर्ष—राजशेखर वे ही हैं जो महेन्द्रपाल के गुरु [संरक्षक] थे। गुरु कह देने से ब्राह्मण स्वीकार कर लें ऐसा नहीं, फिर उसने उस समय चोहान कन्या से विवाह किया जब जाति प्रथा प्रबल थी। राजशेखर क्षत्रिय अवश्य होंगे और शंकर के साथ जब उनकी भेंट हुई तो फिर शंकर का समय स्वत: माघ के समय की सीमा में आ जाता है।

इन उपर्युक्त पंक्तियों के देख लेने पर यही सार निकलता है कि कुमारिल और शंकर माघ के ही युग के थे। अन्तर इतना ही है कि माघ वाल्यावस्था में अथवा किशोरावस्था में होंगे और ये माघ से अवस्था में बहुत बड़े।

पूर्व वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों में व्याप्त माघयुग की सांस्कृतिक चेतना

यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक तत्वों से अछूता नहीं रह सकता फिर भी उसमें मानवीय विचार-धाराओं की अपेक्षा घटनाओं की अधिक प्रधानता रहती है, जब कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण कभी तो इतिहास का निर्माण करता है और कभी इतिहास की घटनाओं के मानव-विकास पर जो प्रभाव होते हैं, उन्हें प्रस्तुत करता है इस युग का सांस्कृतिक स्वरूप महाकवि माघ की साहित्यिक चेतना को समझाने में सहायक होगा।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (६०० ई०–१२०० ई०) में राय बहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर श्री गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि भारतवर्ष का प्राचीन धर्म वैदिक धर्म था, जिसमें यज्ञ यागादि की प्रधानता थी और बड़े-बड़े यज्ञों में पशु-हिंसा भी होती थी। मांस भक्षण का प्रचार भी बढ़ा हुआ था। जैनों और बौद्धों के जीवदया सम्बन्धी सिद्धान्त पूर्व से ही विद्यमान थे, परन्तु उनका लोगों पर विशेष प्रभाव न था। बुद्ध-धर्म के प्रयास से याज्ञिक हिंसा बन्द हुई। आत्मनिरोध के द्वारा ही आत्मा की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ और निर्वाण के लिए तृष्णा के नाश का मार्ग भी आवश्यक समझा जाने लगा। बुद्ध धर्म के पंचस्कन्धों में जो विज्ञानस्कन्ध है उसी को हम आत्मा का स्थान दे सकते हैं। मनुष्य धर्मानुसार पुनर्जन्म के चक्र में पड़ता है। बौद्धधर्म की विशेषता है १–अहिंसा परमो धर्म: २–ईश्वर की उपासना के बिना भी अष्टांग धर्म के पालन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, ३–वर्णाश्रम व्यवस्था व्यक्ति के जीवन के विकास के लिए निर्वाण की प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं है। हर्ष शीलादित्य ने बौद्ध धर्म की पूर्ण रक्षा की। जिस समय चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ पर आया था भारत में बौद्ध धर्म उन्नति को प्राप्त था किन्तु हर्ष की मृत्यु पश्चात् यह धर्म भेद-भावों में पड़कर अवनति को प्राप्त होने लगा। अरबों के आक्रमण (सन् ७१२) के बाद तो फिर यह धर्म इतना अवनति को प्राप्त होने लगा कि युद्ध-वृति वाले व्यक्ति इसे पसन्द नहीं कर सके। सोया हुआ क्षत्रियत्व प्रधान हिन्दू धर्म पुनर्जीवित हो गया। यहाँ तक हुआ कि बौद्ध धर्म पर हिन्दुधर्म का प्रभाव पड़ने लगा और महायान सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। बौद्धों ने इस समय कई अनिवार्य कारणों से भक्तिमार्ग का आश्रय लिया। स्वयं बुद्ध को उपास्यदेव मानकर उनकी भक्ति करने का प्रतिपादन किया और बुद्ध की मूर्तियाँ बनने

लगीं। नष्ट होता हुआ यह बुद्धधर्म हिन्दूधर्म पर भी गहरा प्रभाव डाले बिना न रहा। हिन्दुओं ने बुद्ध को भी विष्णु का नवां अवतार मान लिया। इस युग में क्या राजा और क्या प्रजा वैदिक धर्म के अनुयायी होते हुए भी बौद्धधर्म के प्रति सद्भाव अवश्य रखते थे। वि० सं० ८४७ (ईस्वी सं० ७९०) के शेरगढ (कोटा राज्य) के शिलालेख से पाया जाता है कि नाग-वंशी देवदत्त ने क्रोश वर्द्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्धमन्दिर और मठ बनावाया जिससे अनुमान होता है कि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। बसन्तगढ का शिलालेख जो अजमेर म्यूजियम में सुरक्षितावस्था में रक्खा हुआ है सं० ६८२ शक का (७६० ई०) है उसमें स्पष्ट है कि राजा वर्मलात ने जो हमारे महाकवि माघ के पितामह सुप्रभदेव का स्वामी था और जो सुप्रभदेव के बचनों को "तथागत" के उपदेश की भांति स्वीकार करता था खीमेल माता की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई और उस मन्दिर के लिए गोष्ठी की नियुक्ति की। माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध में एक ओर तो सब अवतारों के नाम और उनके कार्यों का वर्णन किया और यज्ञ, संध्या-वन्दन की चर्चा करते हुए वैदिक जीवन का दिग्दर्शन कराया है तो दूसरी ओर उसी महाकाव्य के दूसरे भाग में नीतिका वर्णन करते ही बौद्ध धर्म की चर्चा कर बैठे "सर्व-कार्यशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपंचकम्। सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम्॥" बौद्धों के पाँच स्कन्ध हैं १—रूप, २—वेदना, ३—विज्ञान, ४—संज्ञा, ५—संस्कार। इसी विज्ञान स्कन्ध को बौद्ध आत्मा मानते हैं। वे आत्मा नाम की कोई वस्तु इससे पृथक् स्वीकार नहीं करते। माघ ने इस उपमा द्वारा राजाओं के लिए पंचांग मन्त्र का असाधारण महत्व निर्दिष्ट कर दिया।

जैनधर्म यद्यपि बौद्ध धर्म से अति प्राचीन है, फिर भी इसका प्रचार प्रसार बौद्ध धर्म की जैसी प्रगति नहीं पकड़ सका। ई० सन् पाँचवीं शती में जब बलभी की धर्म परिषद् में धर्म-ग्रन्थों को लिपि बद्ध कराया गया तब से इसका प्रचार आरम्भ हुआ। दक्षिण में यह धर्म बहुत फैला किन्तु चालुक्यों और दक्षिण राष्ट्रकूटों (ई० सन् ८००) के समय के पश्चात् वहाँ शैवधर्म प्रचार से इस धर्म का ह्रास हुआ और पश्चिम में यह धर्म बढने लगा। राज-पूताना, मालवा और गुजरात में यह धर्म बहुत बढ़ा, यद्यपि इन प्रदेशों के राजा भी शैव थे। जैनचार्य हेमचन्द्र (सन् १०८४ ई० में जन्म गुजरात में) के समय में यह धर्म अपने विकसित रूप में था।

हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा की कल्पना बौद्ध धर्म से आई। बौद्धधर्म में ईश्वर की सत्ता नहीं मानी गई थी इसलिए बुद्ध की उपस्थिति में भक्ति के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश नहीं दिया जा सकता था। महात्मा बुद्ध के पश्चात् बौद्ध भिक्षुओं ने देखा कि सब लोग गृहस्थी त्यागकर भिक्षु नहीं बन सकते और न शुष्क तथा निरीश्वर संन्यास मार्ग ही उनकी समझ में आ सकता, इसलिए स्वयं बुद्ध की मूर्ति बनाकर उपासना करते-करते उन्हें २४ अतीत, २४ वर्तमान, २४ भावी बुद्धों की कल्पना हुई। बौधिसत्व तथा अनेक देवियों आदि की कल्पना की गई और इन सबकी मूर्तियाँ अब अधिकता से बनने लगीं। नगरी के शिलालेख (ई० पूर्व २००) में संकर्षण और वासुदेव की मूर्तिपूजा के लिए मन्दिर बनाने का उल्लेख है। इस राजपूत युग में विष्णु, शिव, गणेश, और सूर्य की पूजा का अधिक

प्रचार था। सूर्य-मन्दिर के पुजारी ईरानी मग ब्राह्मण हैं जो शाक द्वीपी कहलाते हैं सूर्य के भी कितने ही मन्दिर हैं जिनमें सबसे विशाल और सारे प्राकार सहित संगमरमर का बना हुआ सिरोही राज्य के बरमाण गाँव में है। यह मन्दिर अति प्राचीन और इसके स्तम्भों पर नवीं और दसवीं सदी के लेख उत्कीर्ण हैं। जिनमें उस मन्दिर को दिये हुए दानों का उल्लेख है। सूर्य के विद्यमान मन्दिरों में सबसे पुराना मन्दसोर का सूर्य-मन्दिर है जो ई० सन् ४३७ में बना। मुलतान में सूर्य मन्दिर का उल्लेख ह्वेनसांग ने किया। भीनमाल (सिरोही राज्य) में भी सूर्य-मन्दिर है जिसका उल्लेख यथास्थान हो चुका है और जगत्स्वामी के मन्दिर का पुण्य राजा भोज ने माघ कवि को दिया यह बात भी वहीं बता दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि भीनमाल, वरमाण जो सिरोही के गाँव रह गये हैं वहाँ पर सूर्योपासक ब्राह्मण अधिक रहते होंगे। पुराण में राजा सांब की सूर्योपासना सम्बन्धी कथा आती है उसमें सूर्य की उपासना अन्य ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते हैं केवल शाकद्वीप (मग ब्राह्मण) ही इसकी पूजा करते हैं। सूर्य जगत् का स्वामी है अत: सूर्य मन्दिर का पुण्यलाभ माघ कवि को दिया इससे सम्भावना होती है कि माघ कहीं शाकद्वीपी ब्राह्मण (मग ब्राह्मण) तो नहीं है, क्योंकि सूर्यपूजक को ही सूर्य-मन्दिर की उपासना का काम दिया जा सकता है। भोज-प्रबन्ध में और प्रबन्ध-चितामणि में भी माघ को सूर्योपासक बताया गया है। हिन्दुओं में मूर्ति-पूजा का प्रचार जब चल पड़ा तो ग्रह, नक्षत्र, प्रात:, सायं, नदी आदि की भी उपासना होने लगी। प्रथम सर्ग के श्लोक संख्या ४६ में त्रिकाल संध्या का वर्णन है और नवम सर्ग के श्लोक संख्या १४ में तो संध्या की मूर्ति ही प्रस्तुत है।

इन धर्मों के विषय में लिखने का यही अभिप्राय है कि जिस समय महाकवि माघ विद्यमान थे वह राजपूत युग था। अरबों के आक्रमण के पश्चात् बौद्ध धर्म चाहे पलायमान हो रहा था और उसके स्थान पर हिन्दू धर्म फिर से प्रसार पा रहा था, दक्षिण से जैनधर्म राजपूताना की ओर बढ़ा। इन धर्मों के प्रसार के उपरान्त भी धार्मिक सहिष्णुता पर्याप्त रूप में विद्यमान थी। विचार-सहिष्णुता और समन्वय भारतीय संस्कृति के प्रधान लक्षण हैं और वे भारत के उत्थान और पतन और पुनरुत्थान के सभी युगों में किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगोचर होते रहे हैं।

अब हम खान-पान पर दृष्टि-निक्षेप करते हैं। भारतीयों का भोजन गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा, दूध, घृत, गुड, और शक्कर था। इस भाँति हिन्दू धर्म के पुनरभ्युदय के समय जब बहुत से बौद्ध हिन्दू हुए, तो अहिंसा और शाकाहार का धर्म भी साथ लाये। किन्तु धर्म में मांसाहार पाप समझा जाने लगा। मांस के प्रति बहुत विरक्ति हो गई थी। मसऊदी लिखता है कि ब्राह्मण किसी पशु का माँस नहीं खाते थे। स्मृतियों में भी ब्राह्मणों के मांस न खाने का विधान होने पर कुछ पिछली स्मृतियों के श्राद्ध के समय मांस खाने की आज्ञा दी गई है। शनै:-शनै: मांस खाने की प्रवृत्ति फिर बढ़ी और ब्राह्मणों के एक भाग ने माँस-भक्षण आरम्भ कर दिया। उत्तरीय भारत की अपेक्षा दक्षिण में माँस का प्रचार बहुत कम था। शिशुपाल वध काव्य में यद्यपि खुले रूप में तो माँस खाने के लिए कोई संकेत नहीं है किन्तु पाँचवें सर्ग के २५ और २६ वें श्लोकों में इस बात की ओर संकेत अवश्य है। उनमें कहा

है कि वृक्षों की झुरमुट से निकले हुए किसी खरगोश को ठेला और डंडा लेकर लोग चारों ओर मारते हुए जुट पड़े और एक व्यक्ति ने बड़े जाल को उठाकर उस बड़े खरगोश को फांस लिया। भीड़भाड़ को देखकर भागते हुए हिरणों का किसी धनुषधारी पुरुष ने यद्यपि पीछा नहीं किया—आदि बातों में मृगया वृत्ति का संकेत है, किन्तु विशेष नहीं क्योंकि अभी तक बुद्ध धर्म की छाप हिन्दू धर्म पर थी। यद्यपि पारस्परिक युद्धों के रूप में हिंसक भावना प्रबल हो चुकी थी, किन्तु मांसाहार को सामाजिक मान्यता अभी प्राप्त न हुई थी। मदिरा का प्रचार भी अरबी यात्री सुलेमान के अनुसार नहीं था पर वात्स्यायन के कामसूत्र से ज्ञात होता है कि श्रीमन्त नागरिक लोग बाग बगीचों में जाते थे और जहाँ आसव अथवा मद पीते थे। महाकवि माघ यदि हर्ष के कुछ ही वर्षों बाद के होते तो मदिरा का प्रयोग शिशुपालवध काव्य में देखने को न मिलता किन्तु वे तो बाद के हैं [आठवीं शती के अन्तिम चरण से नवमीं के प्रथम चरण के] जब युद्ध भावना पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। इस समय राजपूत योद्धाओं में मदिरा-पान एक प्रथा सी चल पड़ी थी और वैश्याओं को युद्ध के समय अथवा विदेशगमन के समय में साथ रखने का प्रचलन हो गया था। श्री ओझा का मत है कि हरिश्चन्द्र की क्षत्राणी रानी भद्रा से उत्पन्न होने वाले मद्य को पीने में अत्यधिक रुचि रखने वाले प्रतिहार राजपूत कहलाये। यही कारण है कि शिशुपाल वध महाकाव्य में खुले रूप में मदिरा पान तथा मदिरा की दुकान का वर्णन मिलता है वैश्याओं का वर्णन भी वहाँ है।

आस्तीर्णतल्परचितावसथः क्षणेन वेश्याजनः कृतनवप्रतिकर्मकाम्यः
खिन्नानखिन्नमतिरापततो मनुष्यान् प्रत्यग्रहीच्चिरनिविष्ट इवोपचारैः।५। २७॥

चाहे इस युग के भारतीय भौतिक जीवन की ओर अग्रसर हो रहे थे, पर आध्यात्मिक विकास की ओर से भी वे विमुख न थे। पंचमहायज्ञ गृहस्थों के लिए आवश्यक कर्त्तव्य था और अतिथि सत्कार तो बहुत बढ़ा हुआ था। शिशुपालवध में भी श्री कृष्ण द्वारा नारद के सत्कार का और युधिष्ठिर द्वारा श्री कृष्ण का सत्कार इन्द्रप्रस्थ पहुंचने पर मिलता है। यज्ञों में पशुहिंसा बौद्धधर्म के कारण कम हो चुकी थी। उसके साथ यज्ञों का होना भी कम हो गया था परन्तु हिन्दूधर्म के अभ्युदय के साथ फिर यज्ञ आरम्भ हो गये थे और हवन करना फिर दिखलाई पड़ने लगा था।

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां, विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सांनाय्यमग्निः
॥शिशु० ११।४१॥

साहित्य और विज्ञान की अत्यन्त उन्नति होते हुए भी साधारण जनता में रूढ़िपूजा तथा अंधविश्वास बहुत फैले थे। रूढ़िपूजा और अन्धविश्वास को मिथ्यात्व कहा गया है। शकुन, अपशकुनों की चर्चा भी इसी कारण बढ़ी। लोक जादू टोनों तथा भूत-प्रेत आदि में विश्वास करने लगे। मालती माधव और गौडवहो में इनका वर्णन मिलता है। शिशुपालवध काव्य में भी छींकने, चूड़ी टूट जाने आदि के अपशकुनों का वर्णन है। उच्च घरों की

स्त्रियाँ, कहा जाता है पढ़ी लिखी थीं, फिर भी उनमें यह मिथ्यात्व घर कर गया था। उनमें पर्दा-प्रथा भी मिलती है जो पूर्व में न थी। राजाओं की स्त्रियाँ दरबारों में आती थीं। चीनी यात्री लिखता है कि जिस समय हूण मिहिरकुल हारकर पकड़ा गया था उस समय बालादित्य की राजमाता उससे मिलने गई थी। [देखिये वाटर्स आन युवनच्वांग, जिल्द १ पृ० २८८/८९] राज्यश्री, विलासवती, अक्कादेवी आदि देवियों का वर्णन पर्दा न करने का आता है। डा० ओझा का कहना है कि मुसलमानों के आने के बाद से पर्दे का प्रसार हुआ। मुसलमानों के आक्रमण सन ६३२ के बाद से भीनमाल पर होने लग गये थे सिंध पर तो उनका अधिकार हो ही गया था। इससे हमारे महाकवि माघ जिन्होंने इस प्रथा का वर्णन अपने काव्य में स्थान-स्यान पर किया है राजपूत युग के प्रमाणित होते हैं:—

देखिये पांचवा सर्ग का १७ वां श्लोक—

यानाञ्जनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरापनयनाकुलसोविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ॥

विवाह के बंधन भी इस युग में बढ़ गये थे। पहले तो यहाँ तक था कि किसी से भी विवाह हो सकता था। प्रतिहार वंश में हरिश्चन्द्र ब्राह्मण का बिवाह भद्रा क्षत्राणी से हुआ किन्तु अब राजपूत युग में आकर नियम बन चुके थे। महाकवि माघ ने तो स्पष्ट किया नवम सर्ग के ८० श्लोक में "गोत्रभिदा" शब्द लिखकर। उन्होंने बताया है समान गोत्र में विवाह हो नहीं सकता। यही नहीं उस काव्य में दहेज प्रथा की भी पूरी झलक है। सती प्रथा का वर्णन तो स्पष्ट रूप में है। स्त्री इस समय तक आते-जाते केवल घरेलू तथा पुरुषाधीन बन गयी थी।

वेश भूषा आदि के सम्बंध में आगे सविस्तार वर्णन दिया जा रहा है।

परम्परागत भारतीय वेशभूषा तथा माघ काव्य में उसका चित्र

साहित्य समाज का दर्पण है। जिस भाँति वह काव्य, नाटक, उपन्यास कहानी एवं एकांकियों आदि के द्वारा अपने समय का चित्र उपस्थित कर देता है उसी भाँति कलाकृतियों, सौन्दर्य के प्रसाधन तथा वेशभूषा आदि समाज के चित्र यथावत् उपस्थित करने में योग देते हैं। दोनों में भिन्नता केवल इतनी ही है कि एक साहित्यिक अपने शाब्दिक माध्यम से युग का स्वरूप प्रकट करता है और एक कलाकार भवनों, चित्रों, मूर्तियों, प्रसाधन के अनेक साधनों, वेषभूषाओं तथा अलंकरण के प्रसाधनों के द्वारा उस युग के चित्र को सामने लाता है। पुरातत्ववेत्ता तथा इतिहासकार के लिए दोनों ही प्रकार की रचनाएं अनिवार्यतः आवश्यक होती हैं।

माघकालीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अधूरी ही रह जायगी यदि हम सभ्यता के इन प्रतीकों [वेषभूषा तथा वास्तुकला की सामग्री] को पृथक रूप में स्पर्श करते हुए शिशुपालवध महाकाव्य से इनका सामंजस्य स्थापित करते हुए उस युग के चित्र को उपस्थित न करेंगे। वेशभूषा सदा एकसी नहीं रही। इसकी परिवर्तनशीलता सामाजिक प्रगतियों का बोध कराती है।

जैसे पर्दा प्रथा पर आज भी मनुष्यों का विश्वास है कि इसका सूत्रपात मुसलमानों के आगमन पर ही भारत में हुआ था उसी भांति सिले हुए कपड़ों पर भी मनुष्यों की दृष्टि सहसा उसी शताब्दी की ओर जा पड़ती है जब मुसलमान भारत में आये और अपने देश से इस देश में सिले हुए कपड़े लाये। कहा जाता है कि भारतीय बिना सिले हुए कपड़ों का ही प्रयोग अपने देश पर किया करते थे अत: काव्यों में धोती, चादर, दुपट्टा तथा पगड़ी के ही बोधक शब्द अधिक देखने को मिलते हैं। हमारा यह देश उष्ण प्रधान है अतः ढीले वस्त्रों के धारण करने की प्रथा यहाँ अति प्राचीनकाल से ही चलती हुई आ रही है। यह कहना ठीक नहीं है कि मुसलमानों के आगमन पर ही सिले वस्त्रों का प्रचलन हुआ। वैदिक युग से लेकर ईसा की ७ वीं शताब्दी तक तो इसके उल्लेख साहित्य से मिलते हैं। चित्रों में भी सिले कपड़ों का जिक्र है। स्त्रियों के कंचुक तथा चौली धारण करने की बात जैसे साहित्य में आती है वैसे भित्तिचित्रों और दूसरे चित्रों में भी उनका आह्वान हुआ है। भारत एक विशालकाय देश रहा है इसके विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के धारण करने की प्रथा रही है। इसके कुछ भाग शीतमय हैं जैसे पंजाब, गंधार और हिमालय के निकटवर्ती प्रदेश तो कुछ अति उष्ण जैसे मद्रास और दक्षिण प्रान्त। शीत प्रदेशवासी ढीले वस्त्रों का प्रयोग न करके शीत निवारणार्थ शरीर से सटे हुए सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग करते रहे हैं। यह बात

अवश्य हुई है कि विदेशियों के आगमन पर भारतीयों ने उनकी संगति में से वस्त्रों के धारण करने की कला में परिवर्तन अवश्य किये हैं। सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग भारत में मुसलमानों के आगमन से बहुत पूर्व का है। यह बात नीचे दिये हुए विवरण में भी स्पष्टता से देखी जा सकती है।

अधिकांश व्यक्तियों के मुखों से यह कहते हुए सुना जाता है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रतीक थे भित्तिचित्र जब अर्ध नग्नावस्था में हमारे समक्ष हैं तो फिर हम इस बात को क्यों न स्वीकार करलें कि हमारे देश में वस्त्रों के धारण करने की प्रथा थी ही और यदि थी भी तो बिना सिले हुए वस्त्र ही का उपयोग होता रहा होगा। यह तर्क प्राप्त तथ्यों के विपरीत है। संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के ग्रन्थों में जो पर्याप्त सामग्री है और भित्तिचित्रों पर नर्तकियों आदि की वेशभूषा में जो देखने को मिलता है वह इस भ्रान्ति को दूर कर सकता है। सूचिका, स्थूल, प्रोत, ओतु (बाना), तंतु (सूत), तंत्र (ताना) वेमन (करघा) प्राचीनतान (आगे खीचाताना), वाय (बुनकर) मयूख (ढरकी) जैसे शब्दों का प्रयोग इस बात को सिद्ध करता है कि भारत में प्राचीन काल से इन वस्त्रों का उपयोग होता था। वस्त्रों के एक नहीं अनेक नाम हमारे कोषों, आख्यायिकाओं एवं वैदिक, बौद्ध व जैन ग्रन्थों में आए हैं।

वैदिक साहित्य के देख लेने पर ऐसा लगता है कि क्या स्त्री और क्या पुरुष दोनों ही अपने शरीर को ढाँकने के लिए उपवसन, पर्याणहन, द्रापि, उल्क, प्रतिधि (स्तनपट्ट) उष्णीष, वद्गरिणापाद [जूते], उपानह [जूते] काम में लाते थे [देखिये प्राचीन भारतीय वेशभूषा, डा० मोतीचन्द्र भारतीय भण्डार प्रयाग] आश्वालायन श्रौतसूत्र में हमको कपास का सर्व प्रथम प्रयोग देखने को मिलता है। मोहनजोदड़ो की सभ्यता में भी वस्त्रों का प्रयोग है यद्यपि सिले हुए वस्त्र अति अल्प मात्रा में देखने को मिले हैं। मौर्यकालीन कौटिल्य ने दस भाँति के ऊनी कपड़ों का वर्णन किया है। दुकूल वृक्षों की छाल से बने हुए वस्त्र दुकुल कहलाते थे मुलायम चिकने होते थे, कहीं पर सफेद होते तो कहीं पर रंग विरंगे। काशी और पौड़ू के क्षौम प्रसिद्ध थे। इस समय तक विदेशी कपड़े भी आने लग गये थे कौशकार देश का कौशेय और चीन पट्ट रेशमी कपड़ों में अच्छे कहे जाते थे। कपड़े की रंगाई किंशकु, कुसुंभ और कुंकुम के रंगों की होती थी। इस काल की वेशभूषा के रूप यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियों और भरहुत के अर्धचित्रों में मिलते हैं। पीछे शुंगकाल में भी वस्त्रों के धारण करने में बहुत कुछ परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। अजन्ता के भित्तिचित्र, गंधार की मूर्तियाँ, मथुरा की मूर्तियाँ, अमरावती और गोल्ली के अर्धचित्र इसके प्रमाण हैं। कुषाण युग में अच्छी मलमल भी बनने लग गई थी, ऊनी और रेशमी कपड़ों में भी सुन्दरता परिलक्षित थी। काशी की मलमल बहुत ही बारीक होती थी। अब तो पहिनने के कपड़े बहुत कीमती बनाये जाने लग गये थे। कपड़े का व्यापार होने लग गया था। सिर पर विभिन्न प्रकार की बँधी हुई पगड़ियाँ व साफे बँधे हुए चित्र मिले हैं तथा धोती, चद्दर और उत्तरीय देश के भाग पर रहते थे कंचुक धारण करने की प्रथा इस समय तक भी चलती हुई आ रही थी। स्त्रियाँ कंचुक, साड़ी और दुपट्टा धारण किया करती थीं। अब तो यवन भी भारत में रहने लग गये थे अतः यवनियाँ भार-

तीय और यूनानी दोनों भाँति की वेशभूषा धारण किया करती थीं । कंचुक, घघरा और कमरबन्द और सिर पर टोपियाँ यह यूनानी वेशभूषा है किन्तु भारतीय सेविकाएँ साड़ी कमर-बन्द और चादर पहनती थीं । इसी भाँति विदेशी राजा और सिपाही, कंचुक, सलवार, टोपी और जूते पहिनते थे । ईरानी और शक टोपियाँ पहिनते थे । कुषाण युग के पश्चात् लहंगा भी प्रयोग में आने लगा । मथुरा की मूर्तियों में एक ग्वालिन लहंगा पहिने हुए हैं । लहंगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पड़ा है । [प्राचीन भारतीय वेशभूषा, डा० मोतीचन्द्र भूमिका पृष्ठ १५ पर देखिये] । स्त्रियाँ कभी-कभी ओढ़नी भी ओढ़ लेती थी । पुरुष चूड़ीदार पजामे के साथ ढीले बाँह का कंचुक और टोपी भी पहिनने लगे थे । वेश-सज्जा प्रथा प्राक् गुप्तयुग से ही चल पड़ी थी । गुप्तयुग भारतीय वेशभूषा में समन्वय का युग है । जिसमें विदेशी वस्त्रों के पहिराव का भी भारतीयकरण हो गया था । गुप्तयुग से लेकर हर्ष के समय तक का इतिहास तो आज पर्याप्त रूप में प्राप्त है । बाण भट्ट के हर्ष चरित में अनेक बहुमूल्य कपड़ों का विवरण आया है ।

डा० मोतीचन्द्रजी अपनी पुस्तक प्राचीन भारतीय वेशभूषा में लिखते हैं कि गुप्तयुग के सिक्कों में स्त्रियाँ साड़ियाँ, कंचुक, स्तनपट्ट, चादर और कूर्पासक पहिने दिखलाई गई हैं । एक जगह एक स्त्री कुरता और घाघरा पहने दिखाई गई है आगे और लिखते हैं अजन्ता के चित्रों में रानियाँ साड़ी और घघरी पहिने हुए हैं । साड़ी बहुधा धारीदार है । कहीं वे चोली भी पहने हुए हैं । एक जगह रानी चोली और कामदार घघरी पहने हैं, और एक जगह कंचुक और स्तनपट्ट भी पहना गया है । घघरी गोटदार भी होती थी । चोली के साथ छोटी घघरी भी पहनी जाती थी । [पृष्ठ २३]

विदेशी दासियाँ लहंगे पहिनती थीं जिनके झालर लगी रहती थी । चोलियों पर मोती व गोटे लगे रहते थे । गुप्तयुग से पूर्व पुरुष धोती पहिनते थे । धोती पहिनने की विभिन्न शैलियाँ हैं ।

डा० मोतीचन्द्र ने बड़े परिश्रम से भारतीय वेशभूषा के विभिन्न चित्र अपनी पुस्तक में दिये हैं जिनमें पृष्ठ २१६ का ३८४ वां चित्र में स्पष्ट रूप से आज के से घघरे व लुगड़ी [ओढ़नी] अंकित हैं । उन्होंने इसको गुप्तयुग का बताया है । इसी भाँति चोली धारण किए हुए दो चित्र पृष्ठ २१७ पर हैं, वैसे अधिकांश स्त्रियों के चित्र एक धोती और स्तनपट्ट पहिने हुए हैं ।

कमर में करधनी, हाथों में कलाई पर एक दो धातुवाले गहने [जैसा पृष्ठ २२६ पर ४१३वें चित्र है] गले में कंठा, कानों पर कर्णफूल, हाथों में भुजबन्ध, पैरों में बड़े बड़े कड़े ये अलंकार प्रायः उपयोग में आते थे ।

गुप्तकाल तक पुरुषों की वेशभूषा में धोती और पगड़ी का समावेश अधिकांश रहा है । राजाओं की वेशभूषा बहुमूल्य होती थी । धारीदार सुन्दर धोती होती जिस पर पड़ी हुई करधनी शरीर को और भी सुशोभित करती थी । ये राजा जड़ाऊदार त्रिकूट मुकुट

धारण करते थे। पैरों के मध्यभाग तक लटकता हुआ दुपट्टा और कमरबन्द के छोर लटके हुए रहते थे। विदेशी बादशाहों की वेशभूषा में जड़ाऊ टोपी और कोट होते थे।

उपर्युक्त वेशभूषा का वर्णन मूर्तियों, चित्रों, अर्धचित्रों और भित्तिचित्रों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इन मूर्तियों, गुफा के चित्रों तथा अन्य स्थानों के भित्तिचित्रों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। हर्ष काल तक के चित्रों में सुसज्जित महल, करीनेदार नगर अनेकों जातियों वाले वर्णों वाले दास-दासी मिलते हैं तथा राजसभाओं के चित्रों में प्रसाधन के विभिन्न भाँति के गंध द्रव्य, अलंकरण के लिए नाना प्रकार के चटक मटक वाले आभूषण तथा बहुत ही बारीक सुन्दर रंग विरंगे वस्त्रों का उपयोग करती हुई नर्तकियाँ दृष्टिपात होती हैं। ये चित्र सम्पन्न लोगों की वेशभूषा को बताते हैं। सर्व साधारण की वेशभूषा बहुत ही सादी थी। पुरुष केवल धोती, दुपट्टा व साफा या पगड़ी पहनते थे। स्त्रियाँ केवल धोती और दुपट्टा का प्रयोग करती थीं। उनके सिर के केश पास गुथे हुए न होकर एक फीते से बँधे हुए रहते थे। चित्रों में कहीं-कहीं पर घाघरे व लूगड़ी पहिने हुई स्त्रियों के भी दृश्य हैं। संस्कृत ग्रन्थों के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे ऊपर के विवरण की सत्यता और भी स्पष्ट हो जायगी।

स्त्रियों का उत्तरीय वस्त्र—

भास ने "भासनाटकाख्यानचक्रम्" में गोप बालाओं के उत्तरीय वस्त्रों को नदी में खिसकाया। [संभ्रान्त गलितोत्तरीयवसना]। 'अविमारक' नाटक में नायिका उत्तरीय वस्त्र को फाँसी के रूप में काम लाती है। (देखिये पंचम अंक का ३३वाँ श्लोक]

कालिदास ने रघुवंश के १६वें सर्ग के ४३वें श्लोक और १७वें में भी स्तनोत्तरीय शब्द का प्रयोग किया है। कुमारसम्भव के पंचम सर्ग के १६वें श्लोक में 'त्वगुत्तरासङ्ग' शब्द आया है। शकुन्तला नाटक में 'उत्तरीय' शब्द व्यवहृत हुआ है। [देखिये प्रथम, सप्तम और अष्टम अंक] ऋतुसंहार में कहा है, बसंतऋतु में स्त्रियाँ बहुत ही बारीक नारंगी रंग का वस्त्र कुचों को ढकने के लिए पहना करती थीं। [षष्ठ का चतुर्थ श्लोक] फिर प्रथम के ७वें श्लोक में कहा है—स्तनेषु तन्वांशुकम्। दंडी के दसकुमार चरित में रानी वसुमती उत्तरीय वस्त्र का फन्दा डालकर मरना चाहती है [उत्तरीयार्धेन बंधनम् विरच्य]। दश कुमार चरित में उत्तरीय वस्त्र के लिए कितनी ही बार कहा गया है। भारवि ने भी किरात में चतुर्थ सर्ग के २८ श्लोक में 'उत्तरीय' वस्त्र के लिए संव्यान शब्द का प्रयोग किया है। एक स्थान पर 'हृतोत्तरीयम् प्रसभम् सभायामाजातह्रिय:' आया है। भर्तृहरि भी शृङ्गारशतक में स्तनोत्तरीयेन शब्द का प्रयोग किया है।

भवभूति ने महावीर चरित में कहा है कि सीता का उत्तरीय वस्त्र आकाश मार्ग से जाते समय जो गिरा उसने अंशुक का नाम धारण कर लिया। [देखिये महावीर चरित अंक ५, पृष्ठ १८२] मालतीमाधव में स्तनांशुक शब्द आया है। (देखिये तृतीय और सप्तम अंक)।

इसी प्रसंग में महाकवि माघ के शिशुपालवध में आये हुए कुछ स्थल हैं

प्रियमभि कुसुमोद्यतस्य बाहोर्नवनखमण्डनचारु मूलमन्या।
मुहुरितर कराहितेन पीनस्तनतटरोधि तिरोदधेंऽशुकेन ।७-३२॥

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र के लिए 'अंशुक' शब्द आया है।

"प्रसकलकुचबन्धुरोद्धुरोर: प्रसभविभिन्नतनूत्तरीयबन्धा।
अवनम दुदरोच्छ्वसद्दुकूल स्फुटतरलक्ष्यगभीररामि मूला ।७-३४॥"

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र शब्द आया है। इसी भाँति ग्यारहवें सर्ग के ५२वें श्लोक में 'उत्तरीयम्', आठवें सर्ग के ३०वें श्लोक में कौशुम्भंपृथु कुचकुंभसंगि वासः' उत्तरीय वस्त्र के लिए और तेरहवें सर्ग के ३६वें श्लोक में 'पवनावधूतवसनान्तयैकया' का व्यवहार कर उत्तरीय वस्त्र का वर्णन किया है।

अमरुशतक में "भ्रष्टम् कुंकुमोत्तरीयं" कहा है। 'जयदेव' 'उरसि दुलम्' बारहवें के ३ श्लोक में और दूसरे के १२वें श्लोक में उत्तरीय का वर्णन है। श्री हर्ष ने नैषध के ६ठे सर्ग के १८वें श्लोक में और १५वें सर्ग के ७४वें श्लोक में 'स्तनांशुकम्' का प्रयोग किया है।

संक्षेप में उत्तरासंग, उत्तरीयवसन, उत्तरीयवासस, उदरांशुक, संब्यान, स्तनांशुक, स्तनोत्तरीय ये शब्द स्तनपरिधान के लिए व्यवहृत हुए हैं।

स्त्रियों के स्तनों पर रहनेवाली चोली (कंचुकी-प्रान्तीय कांचली)—हाल लिखित गाथा सप्तशती का २५वां श्लोक देखिये उसमें 'कुसुंभरागयुक्त कंचुकाभरणगात्रा:' से तात्पर्य है कि स्त्रियों की स्तनों पर रहनेवाली चोली रंगीन होकर उनके स्तनों की सुन्दरता को बढ़ा रही है। आगे चतुर्थ का ९६ श्लोक में भी नीले रंग की चोली का वर्णन है जिसमें पीनकाय स्तन पूरे न आकर कुछ बाहरभी दिखलाई पड़ रहे हैं। सप्तम के २०वें श्लोक में तो चोली का वर्णन क्या है उसकी एक परिभाषा ही कर दी गई है।

ऋतु संहार के कूर्पासक (प्रातीय कांचली) को हेमन्त और शिशिर में धारण करने के लिए कहा है (देखिये ४ का १६वां, ५ का ८वां) भर्तृहरि ने "वक्षःसु उत्कंचुकेषु" में कंचुक शब्द वही है जो कूर्पासक है। यह चोली सामने से बाँधी जाती है। कांचली की भाँति पीठ पीछे से नहीं।

बाण भट्ट ने हर्षचरित में राज्यश्री के विवाह समय में चोली के बनाने का भी उल्लेख किया है (हर्ष चरित पृष्ठ २०३) स्थाणीश्वर की स्त्रियाँ कंचुकी पहिना करती थीं (हर्ष चरित पृष्ठ १४८)।

शिशुपालवध में महाकवि माघ चिपकी हुई चोली के निकालने का वर्णन कर रहे हैं—

प्रस्वेदवारिसविशेषविषक्तमङ्गे, कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती।
आविर्भवद्घनपयोधरबाहूमूला, शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत् ॥२३॥

यहाँ "कूर्पासक" शब्द का प्रयोग हुआ है। बारहवें सर्ग के २०वें श्लोक में 'कंचुक'

शब्द व्यवहृत हुआ है। तेरहवें के ३२वें श्लोक में **कांच्यः** शब्द का प्रयोग हुआ है। दसवें सर्ग के ४२ वें श्लोक में स्तनों के ढकनेवाली चोली के खींच लिए जाने का वर्णन है।

अमरूशतक में भी 'कंचुक' शब्द आया है (देखिये पंचम का ११ वां) यशोवर्धन के दरबारी कवि वाकपतिराज ने स्थान-स्थान पर कांचली के लिए प्राकृत शब्द का व्यवहार किया है। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी के प्रथम के १३ वें में कूर्पासक का प्रयोग किया है, फिर प्रथम के २०७वें में कंचुलिका का प्रयोग है। संक्षेप में चोली को कंचुक, कंचुलिका, कूर्पास, कूर्पासक इन शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

स्त्रियों की अधोवस्त्र वाली वेशभूषा—

गाथा सप्तशती के ७ वें के ४६ वें श्लोक में **वस्त्रग्रन्थि** का उल्लेख है जिसके द्वारा अधोवस्त्र अपनी स्थिति में रहता है। यह अधोवस्त्र इस रूप में पहना जाता है कि उसका एक भाग ऊपर के भाग को आच्छादित किए रहता है (बलादाकृष्टवस्त्रार्धान्तप्रस्थिते । यदि प्रेमी केवल उत्तरीय वस्त्र के अन्त के भाग को ही जो ढीला पड़ा रहता है पकड़ लेता तो स्त्री उस पकड़े हुए वस्त्र को छोड़ कर वहाँ से भाग जाती। इस रूप में तो यह एक भाँति की साड़ी ही हो सकती है, घाघरा नहीं। अधोवस्त्र इस भाँति पहना जाता है कि वह नाभि को ढकले।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में राजा जब उर्वशी की खोज में है तो उसकी उपमा उर्वशी के नीचे ढीले पड़कर खिसकते हुए सफेद अधोवस्त्र से दी है (अंक ५, ४ के ५२ को देखिये)। रघुवंश १६ वें के सर्ग ६५ वें श्लोक में वस्त्र के चिपकने का वर्णन है। अधोवस्त्र वसन कहलाया है (शकुन्तला के ७ वें अंक के पंचमदृश्य के २१ वें श्लोक को देखिये) इसको निवसन भी कहा जाता है [शकुन्तला ४ में देखिये]। ऋतु संहार में अधोवस्त्र के रंगीन और रेशमी होने का उल्लेख है [सरागकौशेयविभूषितोर्वः] ऋतुसंहार के पंचम का ८ वाँ श्लोक देखिये। मृच्छकटिक मे दो वस्त्रों के होने की बात आई है। चारुदत्त कहता है कि बसन्तसेना के दोनों वस्त्र पानी से भीग गये हैं [वाससी] अत: विदूषक को कहता है कि उसके पहिनने के लिए दोनों ऊँची श्रेणी के वस्त्र [प्रधानवाससी] ले आओ [मृच्छकटिक पंचम अंक ३८]। ये दोनों वस्त्र तो चारुदत्त के यहाँ से भी दिये जा सकते थे यदि सिले हुए न होते किन्तु इनमें एक सिला हुआ और दूसरा ओढ़नी के रूपवाला होगा। आलोचकों का कहना है कि उनमें साड़ी का रूप हो जिसके पहिन लेने पर कुचों में से एक तो खुला हुआ ही रह जाता है अत: वर्षों से एक का भीग जाना और दूसरे का न भीगना स्वाभाविक है। इस भाँति दोनों ही बिना सिले हुए थे। घाघरे का रूप न था।

दशकुमार चरित में भी दो वस्त्रों के पहिनने का उल्लेख आया है जब एक वेश्या एक साधु की सेवा में आश्रम में दिखलाई जाती है। भारवि के किरातार्जुनीयम् में अंशुक और अन्तरीय शब्द आये हैं—

> लोलदृष्टि वदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमेरभसेन।
> व्रीडया सह विनीविनितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ॥९-४७॥

ह्रीतया गलितनीवि निरस्यन्नन्तरीयमवलम्बितकांचि ।
मण्डलीकृतपृथुस्तनभारं सस्वजे दयितया हृदयेशः ।।६-४८।।

इस उपर्युक्त श्लोक से तो स्पष्ट है कि अधोवस्त्र घाघरे (लहंगे) का रूप है जिसमें नाड़ा पड़ा हुआ है जो पति देव द्वारा खोल दिया गया किन्तु तागड़ी से रुक गया। और देखिये—

सरभसमवलम्ब्य नीलमन्या विगलितनीवि विलोलमन्तरीयम् ।
अभिपतितुमनाः ससाध्वसेव च्युतरसनागुणसंदितावतस्थे ।।१०-५४।।

नीवी खुल गई अतः अधोवस्त्र जो नीला था खिसक गया।

किरातार्जुनीयम् में भारवि ने अष्टम सर्ग के १६वें, २४वें तथा दशम सर्ग के ४५वें श्लोक में भी अधोवस्त्र का प्रयोग किया है।

भर्तृहरि ने 'मंजिष्ठवासोभृताः' कह कर सर्दी में स्त्रियों के लाल रंग के अधोवस्त्र का वर्णन किया है।

बाण राज्यश्री के विवाह के लिए रंगे हुये अधोवस्त्र का वर्णन करता है। रत्नावली में भी ऐसा ही वर्णन आता है।

माघ कवि शिशुपालवध में दो वस्त्रों का वर्णन कर रहे हैं। श्री कृष्ण को देखने की उत्सुकता में इन्द्रप्रस्थ की स्त्रियाँ कितनी ही ऐसी बातें कर बैठती हैं जो उपहास के योग्य हैं। उनमें से एक तो यही है कि कुछ स्त्रियाँ दोनों वस्त्रों (उत्तरीय और अधोवस्त्र) को इस रूप में पहिन लेती हैं जो हँसी दिलाने योग्य है अधोवस्त्र को वह ऊपर रख लेती हैं और उत्तरीय को नीचे। उत्तरीय का अर्थ यहाँ कुचांशुक है और अधोवस्त्र परिधान है (देखिये शिशुपालवध के १३वें सर्ग का ३२वाँ श्लोक) इससे तो यह अवश्य ज्ञात होता है कि दोनों वस्त्रों में भिन्नता अवश्य है अन्यथा हँसी की बात ही कौनसी थी यदि दोनों का रूप धोती जैसा होता? फिर देखिये—

कररुद्धनीवि दयितोपगतौ गलितं त्वराविरहितासनया ।
क्षणदृष्ट हाटकशिला सदृशस्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे ।।६-७५।।

प्रियतम के सहसा आ जाने पर शीघ्रतापूर्वक आसन छोड़कर उठती हुई किसी सुन्दरी का वस्त्र जब छूट गया तब उसने तुरन्त अपने हाथों से नीवी (नाडे) को पकड़ लिया। इस प्रकार क्षण भर के लिए सुवर्ण की शिला के तुल्य उसकी चमकती हुई दोनों जंघायें दिखाई पड़ गई और फिर उसने अपनी साड़ी पहिन ली यहाँ पर अधोवस्त्र के लिए 'वसन' शब्द आया है। और देखिये—

अप्रभूतमतनीयसि तन्वी कांचिधाम्नि पिहितैकतरोरु :
क्षौममाकुलकरा विचकर्ष क्रान्तपल्लवममीष्टतमेन ।।१०-८३।।

प्रियतम द्वारा किसी कृशांगी सुन्दरी का वस्त्र के अंचल के खींचने पर जब विशाल

करघनी का स्थल [उरु प्रदेश] उघड़ गया तो वह अपने चंचल हाथों से एक उस भाग को ढकने वाले अपने दूकूल को खींचने लगी। आठवें सर्ग के ६ठे श्लोक में 'कौशेयं व्रजदपि गाढ़तामजस्रं'। सस्स्रं से विगलितनीवि नीरजाक्ष्याः नीवी बंधन फिर भी ढीले हो गये और दुपट्टा नीचे की ओर खिसकने लगा। संक्षेप में अधोवस्त्र के लिए अम्बर, अंशुक, अन्तरीय, जघनांशुक, निवसन, परिधान, वसन, वस्त्रम्, वासस् और सौलि आदि शब्द साहित्य के ग्रन्थों में व्यवहृत हुए हैं।

स्त्रियों की करघनी का वर्णन—

मृच्छकटिक में "ताराविचित्ररुचिरम् रसनाकलापम्" वसन्तसेना की करघनी के लिए आया है। कालिदास ने करघनी का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। मेघदूत में सरिता के जल पर बैठी हुई जो चिड़ियाँ चिल्ला रहीं थीं उसकी कल्पना सरितारूपी स्त्री पर पड़ी हुई करघनी से की गयी है। कांची शब्द का प्रयोग हुआ है। रघुवंश में १३वें सर्ग का ४२वाँ, १०वें सर्ग का ८वाँ, १६वें सर्ग का ४० और ४५वाँ और कुमारसंभव में पहले सर्ग का ३८वाँ, ८वें सर्ग का ८१वाँ, ३रे सर्ग का ५५वाँ तथा ऋतुसंहार में १ का ६ठा और ६ का २४वाँ श्लोक मेखला और करधनी के लिए आया है।

मालविकाग्निमित्र में रसना शब्द प्रयुक्त हुआ है।

दशकुमार चरित में भी रसना शब्द चार पाँच स्थानों पर है।

किरातार्जुनीयम् में भारवि 'कांची' शब्द का प्रयोग करते हैं (देखिये किरातार्जनीय के ८वें का ५१वाँ ६वें का ४८ वाँ, १०वें का ५४वां और ८वें का २३वाँ श्लोक।

भर्तृहरि के शृङ्गारशतक में 'मेखला' शब्द का प्रयोग किया है। बाण ने कादम्बरी में 'मणिमेखला' और 'कांचीदाम'-'महार्हहेममेखला' शब्दों का व्यवहार किया है। भवभूति ने मालती माघ में 'मेखलावलय' शब्द का और माघ कवि ने शिशुपाल वध के १०वें के ६२, ८३, ८५वें और १३ के ३२, ३४वें में मेखला, कांची, कंचन-कांची शब्दों का प्रयोग किया है।

पुरुषों की वेशभूषा संस्कृत के ग्रन्थों के अनुसार

शिरो वस्त्र—

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशसिनः ।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ॥१ ४२ ॥रघुवंश॥

रानी सुदक्षिणा खुले सिर थी अतः अलक और राजा दलीप सिर पर पगड़ी बांधे हुए था अतः 'वेष्टन' शब्द का प्रयोग हुआ है।

फिर देखिये—

तमरण्यसमाश्रयोन्मुख शिरसा वेष्टनशोभिना सुत ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः । ८-१२ रघुवश॥

अज सिर पर पगडी बाघे हुए है 'वेष्टनशोभिना शिरसा' आया है। मृच्छकटिक मे शकार ने अपने पगडी बधे हुए सिर से बसन्तसेना के चरण को स्पर्श करते हुए कहा—शिरसा सवेष्टनेन (देखिये मृच्छ ८वे अंक का ३१वाँ)

बाण भट्ट के हर्षचरित के पृष्ठ ३० पर अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव सुमेरो, कादम्बरी के पृष्ठ २१५ पर 'धवलदुकूलपल्लवकल्पितोष्णीषग्रन्थिः' इस बात का प्रमाण है कि सिर पर पगड़ी रक्खी जाती थी सक्षेप मे महाकवि माघ ने शिशुपालवध मे श्रीकृष्ण के मस्तक पर मुकुट रखा है जो रंग बिरंगी मण्यिो से दमक रहा है, देखिये—

चित्राभिरस्योपरि मौलिभाजां भाभिर्मणीनामनणीयसीभिः ।
अनेकधातुच्छुरिताश्मराशेर्गोवर्धनस्याऽऽकृतिरन्वकारि ॥३ ५॥
मुकुटांशुरंजित परागमग्रतः स न यावदाप शिरसा महीतलम् ॥१३ ६॥

इस शिर पर धारण करने के वस्त्र के लिए उष्णीष, किरीट, पट्ट, वेष्टन, वेष्टनपट्ट, शिरोवेष्टन आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है।

उत्तरीय—

दूतवाक्यम् नाटक मे भास ने दुर्योधन को सफेद रेशमी वस्त्र उत्तरीय के रूप मे पहनाया है। कालिदास के कुमारसभव के तेरहवे सर्ग के २१वे श्लोक मे पुरुषो के उत्तरीय का उल्लेख है।

हर्षचरित में हर्ष जब लौटता है और अपने पिता की स्थिति से दुखी होता है तो व्याकुलावस्था में बिस्तर पर पड़ जाता है और अपने देह को उत्तरीय से ढक लेता है 'शयनीये निपत्योत्तरीय वाससा'। कादम्बरी में भी (मूर्धानम् आवृत्योत्तरीयेन)। कादम्बरी में उत्तरीय का प्रयोग स्थान स्थान पर आया है। (देखिये पृष्ठ ४७४, ५६३, ३१३)। हर्ष ने रत्नावली में भी विदूषक द्वारा उत्तरीय से चित्र को ढकने का काम लिया है।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में सूर्य की धूप से स्त्रियों को बचाने के लिए उनके नायकों द्वारा उत्तरीय का प्रयोग उनके सिरों पर फैलाने में कराया है [देखिये शिशु का ८ सर्ग का ५ वां श्लोक] दूसरे सर्ग के १९ में भी नीले व कृष्णवर्ण के उत्तरीव का उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य में स्त्री की वेषभूषा पर आलोचनात्मक दृष्टि—

वेशभूषा के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के और उनमें भी विशेषत: माघ के शिशुपालवध के आधार पर कुछ जानकारी देने के बाद यह उचित प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि से भी थोड़ी चर्चा की लाय। हम सबसे पहले संस्कृत साहित्य में स्त्री की वेशभूषा—इसी प्रसंग को लेते हैं

भास के स्वप्नवासवदत्ता, चारुदत्त, आदि नाटकों, कालिदास के मालविकाग्निमित्र और शकुन्तला, बाणभट्ट के पार्वती-परिणय, भवभूति के मालती-माधव, राजशेखर के कर्पूर-मंजरी, हर्ष की रत्नावली और नागानन्द तथा श्री हर्ष के नैषध चरित आदि ग्रंथों के वर्णनों से यह बात स्पष्ट है कि वेषभूषा स्त्री के सौन्दर्य को निखार देती है [देखिये श्री हर्ष के नैषध चरित के १३ वें सर्ग का ४७ वां श्लोक]। कहीं-कहीं ऐसा कहा गया गया है कि स्त्री का अपना सौन्दर्य ही पुरुषों के आकर्षण का कारण है, न कि उसको बाह्य वेषभूषा [देखिये राजशेखर की कर्पूरमंजरी के तीसरे का ६, १६]। कर्पूरमंजरी में स्त्रियों के आभूषण वेशभूषा आदि का प्रदर्शन हमको द्वितीय अंक में वहाँ पर मिलता है जब राजा को नायिका की सखी से वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है। सखी नायिका का शृङ्गार करने का संकेत करती है। उधर मालती विवाह के दिन पर मुख के पीले होने पर भी आभूषणों और वेषभूषा से कैसी सुन्दर प्रतीत हो रही है। शाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र में वेषभूषा तथा आभूषणों की बातें कई स्थानों पर देखने को मिलती हैं। गाथा सप्तशती में चतुर्थ के ८९ में वस्त्र-सम्बन्धी बात आई है। अशवघोष के सौन्दरनन्द में नन्द की स्त्री के सजने की बात परिलक्षित है। इन सबका नित्कर्ष अन्त में यही निकलता है कि स्त्रियाँ सदा से शृङ्गार प्रिय रही हैं और वेषभूषा से अपने प्रति मित्रों के हृदयों में आकर्षण पैदा करती रही हैं।

वेशभूषा एक ओर तो स्त्री की सुन्दरता को द्विगुणित करने वाली होती है और दूसरी ओर उसकी स्वभाव सुलभ लज्जा का भी निर्बाह करती है। मालविकाग्निमित्र में कालिदास परिब्राजिका के द्वारा कहलाते हैं कि मैं न्यायाधीश के पद पर आसीन हूँ अत: यह कहती हूँ कि सब अंगों की सुघड़ता और सुन्दर चाल-ढाल दिखाने के लिए पात्रों को बारीक से भी बारीक वेश पहन कर लाना (प्रथम अङ्क में २० वें श्लोक के ऊपर का भाग]। इससे यह मालूम होता है कि पतले बारीक वस्त्र अभिनय की शोभा के लिए ही अधिक प्रयुक्त होते

थे। पांचवें अंक का ७ वां श्लोक भी वस्त्रों और आभूषणों से प्राप्त सुन्दरता की झलक देता है। भारवि नवम सर्ग के ६५ वें श्लोक में कहते हैं कि स्त्रियों को नाभि नहीं दिखलानी चाहिये अर्थात् वस्त्र इस भांति धारण करना चाहिए जिससे नाभि प्रदेश अन्य को दिखलाई न पड़े। स्त्रियाँ वेशभूषा से सुन्दर भी लगें और साथ ही निर्लज्ज भी न दीखें, इस बात का ध्यान रखा जाता था।

> बाससां शिथिलतामुपनाभि ह्रीनिरासमपदे कुपितानि।
> योषितां विदधती गुणपक्षे निर्ममार्ज मदिरा वचनीम् ।९-६५।।

बाण भट्ट की कादम्बरी में पृष्ठ ३४३ पर कादम्बरी की सुन्दर जंघाओं का वर्णन है जो स्वच्छ निर्मल धवल वस्त्र के झीने व बारीक होने से दिखलाई पड़ रही थी। 'स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलम्।' हर्ष चरित के पृष्ठ ५०-५१ पर मालती का झीना-झीना बारीक वेश का इस भाँति पहनने का वर्णन है कि उसके ललाट प्रान्त पर लगा हुआ चंदन दिखलाई पड़ रहा था।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य के तृतीय सर्ग में जहाँ पर कवित्व शक्ति का परिचय देते हुए द्वारकानगरी और उसमें निवास करने वाली स्त्रियों का सुन्दर बर्णन किया है वहाँ पर वस्त्रों के अति झीने पतले व बारीक होने का भी वर्णन सुन्दरता पूर्वक हुआ है। झीने वस्त्र ने सुन्दरता को और द्विगुणित किया है। कुच-प्रदेश पर जो वस्त्र उसको ढकने के लिए रक्खा गया है उसने कुचों की सुन्दरता को उन्हें दिखला कर बढ़ाया ही है किन्तु साथ ही उनको ढक कर उनकी लज्जा का भी निर्वाह कर दिया है। श्लोक में अम्बर शब्द का प्रयोग कितना सार्थक है, देखिये—

> छन्नेष्वपि स्पष्टतरेषु यत्र स्वच्छानि नारी कुचमण्डलेषु।
> आकाशसाम्य दधुरम्बराणि न नामतः केवलमर्थतोऽपि। ३-५६।।

अर्थ—उस द्वारकापुरी में ढके रहने पर भी स्पष्ट दिखलाई पड़ने वाले रमणियों के स्तन मण्डलों में अत्यन्त सूक्ष्म अम्बर केवल नाम से ही आकाश की समानता नहीं कर रहे हैं किन्तु अर्थ से भी उसकी समानता कर रहे थे।

रमणियाँ यद्यपि लज्जा रखने के लिए अपने स्तनों को ढके रहती थीं किन्तु वस्त्र के अति सूक्ष्म होने के कारण वह दिखाई पड़ते थे। वस्त्र का नाम अम्बर है। आकाश सभी वस्तुओं को ढके रहता है किन्तु निराकार होने के कारण वे वस्तुएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। यही दशा उन सूक्ष्म झीने और बारीक वस्त्रों की थी।

हेमचन्द अह्निलपाटण की स्त्रियों की वेशभूषा की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि वे स्त्रियाँ अपने अँगप्रत्यंग को पूर्णरूप से ढके रखती थीं और उच्च कुल वाली स्त्रियों की सुन्दरता भी इसी में है कि वे बहुत ही सुन्दर ढंग से अपने देह अंग प्रत्यंग को ढके रक्खे 'कुलांगनानाम् ही सर्वांगोपाँगसंगोपनम् शोभातिशयहेतुः।'

कालिदास का कहना है कि स्त्रियाँ सुन्दर वेशभूषा इसलिए धारण करती हैं कि

उनकी वेशभूषा को देखकर उनके प्रेमी [पति] उन स्त्रियों की प्रशंसा करे [देखिये कुमार संभव में—'स्त्रिणां प्रियालोकफलो हि वेश:] पंचम सर्ग केप्रथम श्लोक में कुमारसंभब में फिर देखिये [प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता]। वेश-विकास और अलंकार तथा प्रसाधन स्घियों के सौन्दर्य को अधिकाधिक आकर्षण देने में सहायक सिद्ध होते हैं। यही उनकी उपयोगिता है।

वेशभूषा में अवगुण्ठन का स्थान—

पर्दा प्रथा का नाम लेने मात्र से ही आज तक भी अधिकांश शिक्षित व्यक्ति कह उठते हैं कि यह कुप्रथा मुसलमानों के आगमन पर भारत पर प्रवेश कर गई। मुसलमानों के भय ने पर्दे की प्रथा डाल दी अत: जहाँ-जहाँ पर मुसलमानी शासन अथवा उनका अधिकार रहा या जो जातियाँ उनके सम्पर्क में आई वहीं पर यह प्रथा फैली। उत्तर भारत में यही कारण है कि पर्दा का प्रभाव आजतक भी है। पर्दे की प्रथा को मुसलमानी काल में अधिक प्रश्रय मिला, यह बात ठीक है, पर इस प्रथा का प्रारम्भ मुसलमानों के समय से भी बहुत पहले का है। कुछ उद्धरण देना समीचीन होगा—

वैदिक काल में तो पर्दे की प्रथा का प्रचलन दिखलाई नहीं पड़ता। जीवन के क्षेत्र में वे पुरुषों की तरह ही स्वतन्त्र थीं। पुरुषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी वेदों और शास्त्रों में निष्णात थीं। उन्हें मन्त्रों का दर्शन भी हुआ था—वैदिक ऋषियों की तरह यज्ञों में वे पुरुषों के साथ ही भाग लेती थीं। वैदिक साहित्य में घोषा, लोपामुद्रा, ममता, अयाला, सूर्या, इन्द्राणी, सामराज्ञी, विश्वपारा, गोधा आदि ऋषिकालों का वर्णन आता है। ऋषिवारा तो ऋत्विज् का भी कार्य करती थीं। वेदों में कहा है कि स्त्रियाँ सबके सम्मुख अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण करके बिना किसी संकोच के चलें (ऋग्वेद ८।१७।३) खेलराज की स्त्री विशखला का एक पैर युद्ध में टूट गया था जिसके स्थान पर अश्विनी कुमारों ने लोहे का पैर बैठा दिया (ऋग्वेद १।११२।१०) पौराणिक काल के पूर्वभाग तक भी स्त्रियों की स्थिति ऐसी ही रही। फिर बाद में उनकी स्थिति में जो अन्तर आया उसकी छाया स्मृतिकारों के ग्रन्थों में है। मनु-महाराज कहते हैं—स्त्रीशूद्रद्विजबन्धुनां त्रयी न श्रुतिगोचराः। फिर तो वेद के नाम से ही कहने लगे कि स्त्री-शूद्रौनाधियातामिति श्रुतेः। बाल्मीकि रामायण का युग वेदों के पश्चात् का युग है। बाल्मीकि रामायण में सीता बनवास के लिए प्रस्थान कर रही है उस समय का वर्णन आता है—

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गं गता जनाः॥

वा. रा. अ. की, सर्ग ३३ का ८वाँ श्लोक॥

अर्थ—जो सीता आकाशचारी पक्षियों द्वारा भी पहले कभी देखी न जा सकी थी आज उसी सीता को राजमार्ग पर जाने वाले पथिक तक देख रहे हैं।

यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। प्रसादों में रहनेवाली सीता आज पैदल जंगलों में जा रही है। इससे यह तो अवश्य समझ में आता है कि स्त्री का जीवन समाजोन्मुख न रह कर

परिवारोन्मुख होता जा रहा था। लंका पर राम ने विजय प्राप्त करली। विभीषण श्री, सीताजी को बन्द पालकी में बैठा कर श्री रामचन्द्रजी के निकट लाया। उस समय राम कह बैठते हैं कि सीता को बाहर निकाल कर उन्हें उपस्थित पुरुषों को दिखलाओ। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। राम ने उसी स्थान पर यह भी स्पष्ट कर दिया कि स्त्रियों को कहाँ कहाँ पर परदा न करने पर दोष का भागी नहीं होना पड़ता है। देखिये—

व्यसनेषुच च कृच्छ्रेषु न युद्धेषु न स्वयम्बरे।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः॥

युद्ध कांड ६ का २८, सर्ग ११६॥

रावण की मृत्यु हो गई है। उसकी रानियाँ जो अन्तःपुर में रहती थीं मृत्यु के समाचारों पर विलाप करती हुई युद्धक्षेत्र के प्रांगण में उपस्थित हो जाती है। मन्दोदरी उस समय कहती है—

दृष्ट्वा खल्वसि न क्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम्।

यु. कां ६१वाँ श्लोक, सर्ग ११३ वा. रा॥

निर्गता नगरद्वारात्पद्भ्यामेवगतां प्रभो॥ वाल्मीकि॥

६२वें श्लोक की प्र. पंक्ति॥

अर्थ—हे स्वामी अब मैं अवगुण्ठन रहित होकर लज्जा छोड़कर नगर के द्वार के बाहर पैदल ही चली आई हूँ यह देख करके भी मुझ पर आप क्रुद्ध क्यों नहीं होते? आगे कहती है—

पश्येष्टदारदारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठितान्॥

यु. कां ६ का ६२वाँ श्लोक, सर्ग ११३, वा. रा॥

बहिर्निष्पतितान्सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यति॥

यु. कां ६ का ६३ श्लोक की प्र. पंक्ति, सर्ग ११३॥

मैं नहीं आई हूँ, आपकी समस्त प्रिय रानियाँ लज्जा छोड़ कर एवं बिना घूंघट के अन्तःपुर के बाहर चली आई हैं, इस पर भी आपको क्रोध नहीं आता है।

अब आइये महाभारत काल में—

महाभारत में युद्ध समाप्त हो गया उसके पश्चात् स्त्रियों के लिए कहा गया है—

अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देवगणैरपि।
पृथक् जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः॥

स्त्री पर्व, अध्याय ६ का ८वाँ श्लोक॥

अर्थ—जिन स्त्रियों को विमानों में विचरने वाले देवताओं ने भी पहले कभी न देखा था, अब पतियों के मारे जाने से उनको सब को देख रहे हैं।

भास लिखित प्रतिमा नाटक में राम सीता से अपना अवगुण्ठन हटा देने के लिए कह रहे हैं जब वे बन को प्रस्थान कर रहे हैं और प्रजा उनको देखने के लिए एकत्र है। सीता अपना घूंघट (अवगुण्ठन) हटा देती है और राम उन एकत्र जनसमूह को अच्छी तरह देखने के लिए कहते हैं। भास नाटकाख्यान के प्रतिमा नाटक पृष्ठ २६३ के प्रथम अंक के २९ वें श्लोक में स्पष्ट कहा है—'निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे, विवाहे, व्यसने, वने च,' इसका तात्पर्य है कि स्त्रियों की ओर दोषपूर्ण दृष्टि से कोई मनुष्य न देखे जब वे यज्ञ में, विवाह में, किसी व्यसन कार्य में वा बन में हो। प्रतिमा नाटक के तृतीय अंक में जब राजा दशरथ की विधवा रानियाँ मृत राजा की मूर्ति के निकट आती हैं तो सहसा घूंघट निकाल लेती हैं। वे रानियाँ भरत के सम्मुख घूंघट को इसलिए हटा लेती हैं जिससे भरत को उनकी स्थिति का पता लग जाय। भास ने चारुदत्त नाटक में बसन्तसेना की माता जब शकार से अपनी पुत्री के लिए आभूषण ले लेती है तब वह अपनी पुत्री के निकट दूती के साथ उन आभूषणों को भेज देती है और कहलाती है कि सुसज्जित होकर गाड़ी में बैठकर जाना और घूंघट भी निकालना (देखिये चारुदत्त चतुर्थ अंक २८-२९) इसका अर्थ तो यही हुआ कि उस समय एक वैश्या पुत्री को भी जब वह प्रेमी को पति रूप में मान लेती थी तो घूंघट निकालना शालीनता की दृष्टि से आवश्यक था।

भास ने अपने स्वप्नवासवदत्त नाटक के षष्ठ अंक के १९वें श्लोक में राजा के द्वारा कहलाया है—'भवतु पश्यामस्तावद्रूप-सादृश्यम्। संक्षिप्यतां यवनिका।' यहाँ पर सम्भवतः घूंघट को यवनिका कहा है। घूंघट हटा दीजिये ऐसा कहा गया है। स्वप्नवासदत्ता में पद्मावती को पर पुरुष-दर्शन से दूर रक्खा जाता है। पद्मावती 'अम्मो पर पुरुष दर्शनं परिहरत्यार्या (प्रथम अंक १२वें श्लोक से आगे ९ठी पंक्ति में)

'पद्मावती-प्रोषितभर्तृका पर पुरुषदर्शनं परिहरति' (षष्ठ अंक १३वें श्लोक से लगभग १३वीं पंक्ति आगे कहा गया है।

यह तो हुई भास के समय की बात। भास का समय कालिदास से दो सौ वर्ष पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी का कहा गया है।

मृच्छकटिक के चौथे अंक के २४वें श्लोक से ज्ञात होता है कि विवाहिता स्त्री जब बाहर निकले तब उसको घूंघट निकालना चाहिए और उससे आशा भी यही की जाती है। वहाँ पर अवगुण्ठन शब्द का प्रयोग हुआ है। मृच्छकटिक के दसवें अंक में ५८वें श्लोक की नीचे की कुछ पंक्तियों के पश्चात् अवगुंठन का प्रयोग फिर होता है। "न युक्तम् परकलत्रदर्शनम्" भी एक स्थान पर आता है। मृच्छकटिक कालिदास के पूर्व का नाटक है।

मालविकाग्निमित्र नाटक में मालविका विवाह की वेशभूषा में है और अग्निमित्र की स्त्री रानी धारिणी जब मालविका को राजा के सम्मुख लाती है तब राजा मालविका को उस रूप में स्वीकृत करने से हिचकिचाता है। विदूषक और परिव्राजिका स्मरण दिलाते हैं कि यद्यपि वह एक उच्चकुल की है और इस विवाह के योग्य है किन्तु जिस रूप में लाई जानी चाहिए थी नहीं लाई गई है। इस पर रानी अपनी भूल को स्वीकार करती हुई मालविका

को रेशमीन वस्त्र पहनवा कर उसके घूंघट डाल कर फिर राजा के निकट ले जाती है। राजा उसके पाणि को ग्रहण कर लेता है (मालविकाग्निमित्र के पाँचवें अंक में श्लोक १८ और १९ के मध्य की पंक्तियाँ देखें)। इसका तो यही निष्कर्ष निकला कि घूंघट निकालने पर ही सच्ची विवाहिता स्त्री का रूप बनता है अन्यथा घर में रहती हुई मालविका भगिनी सम थी। शकुन्तला नाटक में जब दुष्यन्त के सम्मुख राजसभा में शकुन्तला लाई जाती है तब घूंघट के कारण उसका रूप पूर्णतया दिखलाई नहीं पड़ता। वहाँ अवगुण्ठन या 'सशिरोमुखप्रवरण शब्द घूंघट के लिए लाये हैं (देखिये शाकुन्तल पंचम अंक श्लोक १३)। गौतमी जो शकुन्तला के साथ थी थोड़ी देर के लिए लज्जा को हटाते (घूंघट को) हुए कहती है। रघुवंश के १२वें सर्ग के ८वें श्लोक को देखिये। समुद्र पृथ्वी के लिए एक भाँति का घूंघट है। वहाँ 'वक्त्राभरणम्' शब्द का प्रयोग हुआ है।

कालिदास का समय अभी तक भी सुनिश्चित नहीं हो पाया है, फिर भी वह गुप्तयुग के पश्चात् का नहीं है। दण्डी ने भी दशकुमार चरित में पर्दा प्रथा की ओर संकेत किया है। भारवि ने 'व्यंशुक' शब्द का प्रयोग घूंघट के लिए किया है, देखिये—

उद्गतेन्दुमविभिन्नतमिस्त्रां पश्यति स्म रजनीमवितृप्तः।
व्यंशुकस्फुट मुखीमतिजिह्मां व्रीडया नववधूमिव लोकः॥९-२५॥

अर्थ—चन्द्रोदय हो जाने पर भी जब तक अन्धकार भलीभाँति नष्ट नहीं हो गया था तब तक निशा (रात्रि) को जनता ने एक (नूतन परिणिता) नव विवाहिता वधू की भाँति, जिसके मुख का घूंघट हट गया हो तथा वह लज्जा के भार से दबी जाती हो, सतृष्ण दृष्टि से देखा।

भारवि का समय कालिदास के पश्चात् षष्ठ शताब्दी के लगभग बताया जाता है।

बाण ने अपनी कादम्बरी और हर्ष चरित में 'अवगुण्ठन' शब्द का प्रयोग किया है। राज्यश्री विवाह के समय घूंघट डाले हुए है। "अरुणांशुकावगुण्ठितमुखी" शब्द का वहाँ पर प्रयोग है। इस भाँति नागानन्द नाटक में भी 'उत्तरीयकृतावगुंठन' शब्द आया है।

भवभूति महावीर चरित नाटक में राम के द्वारा सीता को कहला रहे हैं कि परशुराम के सम्मुख घूंघट निकाल लो क्योंकि परशुराम धर्म पिता (श्वसुर) के स्थान पर हैं (प्रिये……… तदपसृत्य कृतावगुण्ठना भव)

भवभूति का समय आठवीं नवीं शताब्दी के लगभग है।

वाक्पति राज अपने गौडवहो में लिखते हैं कि स्त्रियों का घूंघट निकालना उनके लिए एक भाँति का आभूषण है। वाक्पतिराज और भवभूति का एक ही समय है।

शिशुपालवध महाकाव्य में घूंघट का संकेत स्पष्ट रूप में है—

"यानांजनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरापनयनाकुल सौविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणा वक्त्राःस्त्रियः सभयकौतुकमीक्ष तेस्म॥

अर्थ—अपने परिजनों द्वारा वाहनों से नीचे उतारी जानेवाली, देखनेवाले लोगों को दूर हटाने में परेशान कंचुकियों से युक्त, उन रानियों की मुखश्री को, जिनके घूंघट का वस्त्र नीचे उतरते समय खिसक गया था, क्षण भर के लिए दोनों ने भयमिश्रित कुतुहल के साथ देख लिया।

इसी सर्ग में एक श्लोक और है—

"उत्क्षिप्तकाण्डपटकान्तरलीयमानमन्दानिलप्रशमितश्रमधर्मतोयैः।
"दूर्वाप्रतानसहजास्तरणेषु भेजे, निद्रासुखं वसनसद्मसु राजदारैः ॥५-२२॥

उपर्युक्त में सामने पर्दे टंगे हुए हैं जिनके भीतर साथ में आई हुई सुन्दर वर्णवाली स्त्रियाँ हैं। मन्द-मन्द वायु के झौंकों ने पर्दों को जैसे ही ऊपर उठाया कि उनकी पसीने की बूदें शान्त हुईं।

यात्रा के समय घूंघट यदि न निकले या इधर उधर हो जाय तो कोई दोष नहीं है। बाल्मीकि रामायण में भी जैसा पहले बताया गया है कुछ स्थलों पर घूंघट न लगाने में दोष नहीं गिना जाता। महाकवि माघ ने इसी बात को दूसरे रूप में बताया है—

व्यावृववक्त्रैरखिलैश्चमूचरै र्व्रजद्भिरेव क्षणमीक्षिताननाः।
वलाद्गरीयःस्तनकम्प्रकंचुकं ययुस्तुरंगाधिरुह्योऽवरोधिकाः ॥१२-२०॥

उपर्युक्त में रमणियाँ जब अश्वों पर बैठकर जा रहीं थीं उस समय उनके मुख घूंघट से ढके हुए नहीं थे।

ग्यारहवें सर्ग में जहाँ पर कवि ने प्रभात वर्णन किया है वहाँ पर प्रकृति को भी अवगुंठनवती बना दिया—

मदरुचिमरुणेनोद्गच्छता लम्भितस्य
त्यजत इव चिराय स्थायिनीमाशु लज्जाम्।
वसनमिव मुखस्य स्रंसते संप्रतीदं
सितकर करजालं वासवाशायुवत्याः ॥११-१६॥

उपर्युक्त में मदिरा से रमणियों का मुख लाल-लाल हो जाता है। मदिरा के मद में उनका घूंघट हट जाता है। इसी भाँति इस समय चन्द्र का यह किरण समूह सूर्य के सारथि अरुण द्वारा मद-रुचि (लालिमा को प्राप्त) के कारण अपनी चिरपर्यन्त रहनेवाली स्थायी लज्जा को शीघ्र त्यागने वाली पूर्व दिशा रूपी नायिका के मुख पर से मानों घूंघट की भाँति नीचे हटा रहा है।

पर्दे के कारण ही छिप-छिप कर देखना होता है, खुले रूप में नहीं। जब श्रीकृष्ण जा रहे थे तो ग्रामीण स्त्रियाँ उनको छिप-छिप कर काँटों की बाड़ के ऊपर से बड़ी देर तक देखती रहीं—

कौशातकीपुष्पगुलुच्छकान्तिभिमुखैर्विनिद्रोल्बरणबाणचक्षुषः ।
ग्रामीणवध्वस्तमलक्षिता जनैश्चिरं वृतीनामुपरि व्यलोकयन् ॥१२-३७॥

स्त्रियाँ जब घूंघट डालती हैं तो अपना एक हाथ मुख प्रदेश पर इस भाँति करती हैं। कि जिससे अंगुलियों के द्वारा देखने के लिए बनाये गये छिद्रों से किसी अन्य स्थान वा व्यक्ति को सरलता से देखलें, घूंघट को मुख पर रखते हुए। कुछ स्त्रियाँ एक आँख पर के आवरण को दो अंगुलियों का आश्रय लेकर हटा लेती हैं। इस तरह सामने की वस्तु भली प्रकार दीख जाती है, तो कोई स्त्री लम्बा घूंघट डालकर फिर हाथ से मुख को उघाड़ती हुई चलती है अथवा अंगुलियों के अग्रभाग से अपने कपोल भाग वा मुंह को उघाड़ती चलती है। घूंघट का यह रूप राजपूत युग की ही देन है, पहले इस भाँति मुख दिखलाकर एक आँख, कपोल का एक प्रदेश अथवा मुख भाग दिखलाकर अवगुण्ठन नहीं रखा जाता था। अवगुण्ठन का यह स्वरूप राजपूत युग से ही प्रारम्भ होकर आज तक चलता हुआ आ रहा है। अब माघ कवि के एक और श्लोक को देखिये—

"नलिनान्तिकोपहितपल्लवश्रिया व्यवधायचारु मुखमेकपाणिना ।
स्फुरदंगुलीविवरनिः सृतोल्लसद्दशनप्रभांकुरमजृम्भतापरा ।।१३-४३।।

स्त्री अपने सहज सुन्दर मुख को ढक कर जभाई लेने लगी तो उसकी गौरवर्ण वाली अंगुलियों के भीतर से निकली हुई छोटे-छोटे दाँतों की कान्ति अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ने लगी।

निष्कर्ष—स्त्रियों की वेशभूषा और घूंघट के विषय में इतना लिख देने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्रियों का शृंगार प्रिय होना तो सहज स्वभाव है ही और पुरुषों ने उनके इस स्वभाव के कारण उन्हें धीरे-धीरे अपने विलास की सामग्री बना दिया है। वैदिक काल में 'गार्हस्थ्यं गृहमेधिनाम्' समझ कर ही स्त्री-सम्पर्क था, अन्यथा वह तो समभागिनी थीं। आधे आसन पर बैठकर पुरुष के साथ यज्ञ में आहुति देती अतः अर्द्धांगिनी थी। वह यज्ञोपवीत धारण करती। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' और 'समानं ब्रह्मचर्यम्' जैसी बातें उनका जीवन निर्माण करती थीं। आगे चलकर तो उसको आभूषण व वस्त्र भी सुन्दर पहिनाये जाने लगे। कालिदास भारवि आदि तक तो वेश विन्यास में इतनी चमक-दमक न थी। चमक-दमक का यह स्वरूप सम्राट् हर्ष के समय में दिखलाई पड़ने लगा था। हर्ष चरित में विवाह के समय राज्यश्री की वेशभूषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। फिर आगे आकर तो राजपूत युग में सर्वांगिण आभूषणों से तथा सुन्दर-सुन्दर रेशमीन झीने वस्त्रों से ऐसी सजा दी गई कि उसका रूप कर्ममय न होकर केवल भोगमय बन गया। महाकवि माघ के काव्य में अन्य काव्यों से स्त्रियों के आभूषण धारण करने व सुन्दर वस्त्र पहिनने की बातें अधिक आती हैं। ऐसा लगता है कि जिस समाज में परदा अधिक कठोर होता है उसमें आभूषण आदि पहिनने की प्रथा भी उतनी ही अधिक होती है। राजपूत युग में यह बात अत्यधिक है। स्मरण होगा कि अरबों के आक्रमण भारत पर हुए थे और गुजरात की सीमा पर भीनमाल है वहाँ पर भी बहुत से आक्रमण हुए। उस समय के चावड़ों से युद्ध हुआ फिर

प्रतिहारों ने उन आक्रमणों को रोका, किन्तु अरब सिन्ध में तो प्रवेश कर ही गये फिर ये फैलते गये। भारत में अरब से दो भाँति के लोग आए ऐसा परदा प्रथा पर अनुसंधान करते हुए श्री अलीअहमद सिद्दी ने लिखा है। एक वे थे जिनके साथ उनकी स्त्रियाँ थीं और दूसरे वे थे जिनका सम्बन्ध यहाँ पर आने पर भारतीयों से हो गया। भारत पर ईरान की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। उन दिनों ईरान में विलासमय जीवन का पूरा जोर था। धनी व राजाओं के प्रासाद विलासिता के केन्द्र थे। अरब के उन मुसलमानों ने जो भारत आये ईरानवालों की ही भाँति रहना पसन्द किया। भारतीयों ने अपनी स्त्रियों को इनसे बचाने का प्रयत्न किया अतः परदा अत्यधिक बढ़ गया यहाँ तक कि स्त्रियाँ अब पूरे परदे में रहने लगीं। देखा देखी राजपूतों में भी कट्टरता आ गई। घूंघट प्रथा तो पहले थी ही पर इस युग में आकर उसने विचित्र रूप धारण किया।

इस भाँति माघ के शिशुपालवध एवं तत्कालीन संस्कृतसाहित्य के अध्ययन से उस काल के सांस्कृतिक जीवन का पता लग जाता है।

माघकवि का जीवन-चरित

(प्राप्त सामग्री पर आधारित)

युग—

माघ के युग के विषय में इससे पूर्व पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ इस युग की विशेष विशेष बातों को तथा तत्पश्चात् माघ युग में होने वाली स्थिति को दुहरा देना इसलिए आवश्यक है कि ऐसा किये बिना माघ के जीवन काल की स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती।

(क) उल्लेखनीय बातें—माघ के शिशुपालवध महाकाव्य को आदि से अन्त तक पढ़ लेने पर, निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—

(१) माघ ने युद्ध का वर्णन करते समय उसका चित्र यथावत् उतार कर रखा है। क्रोधभरी दर्पोक्तियाँ, वीरता प्रदर्शित करने की एक उत्कट अभिलाषा एवं क्षत्रिय जाति में पारस्परिक द्वेषभाव होने के कारण जाति अथवा कुल को ही नष्ट करने की बलवती इच्छा माघ काव्य में वहाँ पर देखने को मिलती है जहाँ राजसूय यज्ञ समाप्त होता है। इधर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की पूजा की है, उधर शिशुपाल की भृकुटि वक्र हुई और वाग्युद्ध मल्ल-युद्ध अथवा शान्ति युद्ध में बदल गया है। यह दृश्य बड़ा रोचक है, पढ़ने पर ऐसा लगता है मानो कवि ने अपनी आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है।

(२) महाकवि माघ ने यत्र तत्र पौराणिक आख्यानों के माध्यम से अपने विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति की है। पुराण की कथाएं तो मानो महाकवि के मुख पर नाचती हुई सी दिखाई पड़ती हैं अत: जब कभी भी किसी भाव को वह व्यक्त करना चाहता है तो कोई न कोई पौराणिक प्रसंग उपस्थित हो जाता है और उससे प्रस्तुत भाव अथवा विचार का चित्रमय व्यक्तिकरण हो जाता है और उसमें स्पष्टता आ जाती है। ये पौराणिक प्रसंग उस समय में प्रचलित सभी धर्मों से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस समय हिन्दू-धर्म उत्कर्ष पर था और बौद्ध धर्म अवतारी स्थिति में होते हुए भी विद्वानों के क्षेत्र में बिल्कुल अपदस्थ नहीं हुआ था, साथ ही जैनधर्म का भी प्रचार व प्रसार था। उदाहरणार्थ प्रातःकाल के वर्णन में जब वह ध्रुवतारे व सप्तर्षि तारों की अवस्था को बताता है तो पुराणों में आई हुई श्रीकृष्ण की उस कथा से उस भाव को नीचे लिखे शब्दों में कैसे सुन्दर रूप में व्यक्त किया है जब श्रीकृष्ण शकटासुर को मार कर नीचे पड़े हुए अकेले ही

अपने में लीन खेल रहे थे। [1]इन प्रसंगों से माघकवि के काल-निर्णय में सहायता मिली है।

[३] माघ काव्य में कला का बाह्य-पक्ष बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत हुआ है। उसका एकमात्र कारण पाठकों को यही दिखलाई पड़ेगा कि माघ को कदाचित् अपने श्लोकों की भाषा में चमत्कार लाने और उसको सुन्दर बनाकर, पाठकों के सम्मुख सजाकर रखने की उत्कट अभिलाषा है। अलंकारों की ऐसी सुन्दर योजना अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलेगी। माघकाव्य से पूर्व के काव्यों को देखते हैं तो उनमें मौलिकता एवं नवीनता के भाव तो देखने को मिलेंगे पर कला-पक्ष वहाँ भाव-पक्ष से ऊँचा नहीं उठ सका है। कालीदास की शैली स्वाभाविक है, किसी भाव की कृत्रिमता उसमें नहीं। अलंकार भी वहाँ अपने स्वभाविक रूप में आये हैं। भारवि में कला का वाह्य पक्ष प्रबल हो चला है पर इतना नहीं जितना कि माघ में। इससे प्रमाणित है कि माघ उस युग के कवि हैं जिसमें काव्यों में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष का अधिक समादर होता था। उनमें स्वाभाविक सरलता का स्थान कृत्रिम अर्थ-दुरूहता ने ले लिया था। माघ इस अर्थ में अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं।

[४] भारतीय इतिहासों के अध्ययन से कोई भी कह सकता है कि आठवीं से दसवीं शताब्दी तक अर्थात् हर्ष की मृत्यु के लगभग ५० या ६० वर्षों पश्चात् राज्यों के उदय और नष्ट होने में ऐतिहासिक तथ्यों पर ऐसा धुँधला पर्दा पड़ गया कि लोग उस युग के इतिहास को आज अंधकाराच्छन्न कहते हैं, यद्यपि बहुत सी बातें जैन तथा इतर धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रंथों से प्रकाश में लाई जाकर इस अंधकार को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अरब के आक्रमण सिंध पर हुए, फिर भीनमाल के प्रतिहारों ने उन्हें रोका। प्रतिहारों से पूर्व चावड़ा नरेशों ने प्रयत्न किये पर अधिक सफलता उनको मिल न सकी। प्रतिहारों और चावड़ों की मिली जुली शक्ति ने ही अरबों को पीछे ढकेला। फिर तो युद्ध होते ही रहे। प्राचीन राजवंश और प्राचीन जीवन-प्रणालियाँ नष्ट भ्रष्ट हुईं, जातियों में भी परस्पर संघर्ष हुए। इन्हीं संघर्षों में राजपूत जाति आगे बढ़ी और अपूर्व बल तथा वीरता के द्वारा राज-सत्ता को अपने अधिकार में लाने में सफल हुई। जिस तरह राजनैतिक जीवन में यह उलट फेर हो रहा था, उसी तरह धार्मिक जीवन में भी एक क्रान्ति हो रही थी। नये बौद्ध धर्म [महायान] के प्रचार के बाद युद्ध-प्रिय राजपूतों ने पौराणिक धर्म पर आस्था प्रकट की। ब्राह्मणों द्वारा नवीन क्षत्रियत्व का रूप धारण करने वाली इस राजपूत जाति का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। परिणाम स्वरूप पौराणिक ब्राह्मणों ने इन राजपूतों की सहायता करने में सफलता प्राप्त की।

---

(१) स्फुटतरसुपरिष्टादल्प मूर्तेर्ध्रुवस्य स्फुरति सुरमुनीनां मण्डलं व्यस्तमेतत्।
शकटमिव महीयः शैशवे शार्ङ्गपाणेश्चपलचरणकाब्ज प्रेरणोत्तुंङ्गिताग्रम्॥ ११-३॥
पौराणिक उदाहरण माघ में स्थान-स्थान पर हैं कुछ को देख लीजिये—
२० का ७३, २० का ४३, १८ का ७०, १८ का ५०, १५ का ६३, १४ का ८५, १४ का २४, १३ का ५२, १३ का ५०, १३ का १२, १२ का १७, ९ का १४, ५ का ६६, ५ का ३१, ४ का ३१, ३ का ६०, २ का ६०, १ का ६।

[५] कविगण भी कहीं तो नवीन राजपूत नरेशों के आश्रय में रह कर राज दरबारों में और कहीं स्वतन्त्र रूप में गोष्ठी में बैठ कर अपनी कवित्व शक्ति से सहृदयों और रसिकों का मनोरंजन करते, उनको चमत्कृत करते। युद्धों के पश्चात् जब शान्ति आ जाती तब वे युद्ध-प्रिय राजपूत मदिरा तथा प्रमदा में अधिक तल्लीन रहते। स्त्री और पुरुष दोनों ही उद्दाम वासना के शिकार बनते। इसी विलासमय जीवन का चित्र कविगण भी उतारा करते, इसलिए इस युग में शैली के चमत्कारिक रूप को ही प्राथमिकता दी गई, वस्तु और भाव पिछड़ गये। शनैः शनैः कविता स्वान्तः सुख की चीज न रह कर श्रोतृ-सुख की चीज रह गई। कविगण श्रोताओं से प्रशंसा-प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई बात न सोचते, अतः कविता में गूढता, द्व्यक्षरी वा एकाक्षरी श्लोक, सर्वतोभद्रचक्र वा गोमूत्रिका जैसे बंध यमक की छटा तथा श्लेष, अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की उपस्थापना प्रमुखता से रहती जिससे श्रोताओं की वाह-वाह की ध्वनि हो जाय। इस युग में कवियों का, कविता करने का, मुख्य उद्देश्य यही बना रहता था कि संस्कृत भाषा की बलवती एवं प्रभावशालिनी शब्द-शक्ति का प्रदर्शन वे अपनी कल्पना-शक्ति की ऊँची उड़ानों से करते जो श्रोताओं और पाठकों को अतीव रुचिकर प्रतीत हो अथवा ऐसे प्रसंग या उदाहरण पौराणिक तथा अन्य स्रोतों से लाकर अपने काव्यों में रखते जो इस युग के शिक्षितों में ऊँची दृष्टि से देखे जाते हों। इन कवियों ने काव्य कैसा होना चाहिये, इसके बहुत से नियम बना दिये। यदि उन नियमों के अनुसार उनका काव्य-ग्रंथ बना तो विद्वन्मंडली में वह आदर की दृष्टि से देखा गया। इस भाँति वस्तु शैली, वर्णन, उदाहरण, अलंकार, छंद आदि के नियमों ने कवि को बाँध दिया। कविता इसलिए इस युग की संकीर्ण भावनाओं से भरी पूरी हुई है क्योंकि भावों को व्यक्त करने का जहाँ स्वच्छन्द वातावरण नहीं, जहाँ अपने को अविरूप से अभिव्यक्त न करते हों वहाँ पर काव्यों में कालिदासादि पूर्व-कवियों की भाँति स्वाभाविकता मौलिकता एवं नवीनता आ ही कैसे सकती है? यह तो चमत्कार-प्रदर्शन का युग था। कवियों को अपने काव्यों में सूर्योदय, सूर्यास्त वा चन्द्रोदय, ऋतुओं, पर्वतों, बन-विहार, जलक्रीड़ा, मृगया, पुष्प-चयन आदि के वर्णन करने आवश्यक होते थे। कविता की वस्तु तो साधारण सी होती थी किंतु इसका अधिकांश भाग इन्हीं शाब्दिक चमत्कारों से पूर्ण वर्णनों से भरा रहता था। यों भी कहा जा सकता है कि कथा वस्तु का बारीक सा धागा इन वर्णनों के लिए हलका सा आधार बन जाता था जिसे कहीं से भी तोड़ा और जोड़ा जा सकता है। वे श्लोक कहीं पर तो श्लेष से अपनी शोभा की वृद्धि करते हुए रखे जाते थे तो कहीं चमक, अनुप्रास आदि उसमें आकर जादू का सा प्रभाव डाल देते। छंद-सम्बन्धी विचित्रताएं भी उनमें देखने को मिलती। यदि शाब्दिक अथवा आर्थिक चमत्कार अपने काव्य में रखा नहीं जाता तो फिर काव्य ही क्या हुआ? नियमों के अनुसार महाकाव्य की रचना में भारवि का प्रयास प्रथम माना जाता है। यह इस तरह के प्रयास का प्रारंभ-काल था इसलिये भारवि उपर्युक्त चमत्कारपूर्ण शैली के प्रदर्शन में इतने लीन नहीं हो पाये जितने महाकवि माघ। भारवि की कथा-वस्तु अधिक पुष्ट है चाहे उस पर शाब्दिकता का प्रभाव स्पष्ट हो। उनकी कविता में भाषा के ऊपर भावों का साम्राज्य है किन्तु महाकवि माघ चूंकि भारवि के लगभग तीन शताब्दी पश्चात् हुए हैं और भारवि को परास्त करने

के लिए ही उन्होंने भारवि की महाकाव्य सम्बन्धी सब बातों को युक्तियुक्त ढंग से प्रस्तुत कीं। काव्य के उन प्रचलित नियमों के अनुसार उनके महाकाव्य की रचना कला-पक्ष की दृष्टि से इतनी चमत्कार बन पड़ी है कि भविष्य में आने वाले कवियों के लिए उसने पथ-प्रदर्शन किया। अपने काव्य युग के वे ही सच्चे प्रतिनिधि कवि हुए हैं। कला-पक्ष की प्रधानता के होते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि पाठक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस महाकाव्य में कितने ही ऐसे स्थल हैं जिनमें भावों की सुन्दरता, गेय छंदों तथा उपयुक्त शब्दों द्वारा अनायास ही फूट पड़ी है। संक्षेप में, माघ एक ऐसे ही युग की देन है जिसके प्रमुख लक्षण श्रृंगारिकता, साज-बाज के कार्यों में अत्यधिक रुचि और चमत्कार एवं विद्वता प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि हैं। मदिरा एवं प्रमदा का जो साहचर्य माघ काव्य में देखने को मिलता है वह आठवीं से दसवीं शताब्दी के उत्तर भारतीय राजपूत-जीवन का प्रतिबिंब है।

इस तरह शिशुपाल वध महाकाव्य की शैली आदि का अनुशील करने से माघ का काल प्राय: ८वीं और ९ वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है।

(ख) युग की विभिन्न प्रवृत्तियाँ :—

यह स्थिर कर लेने पर कि महाकवि माघ उपर्युक्त युग में हुये, यह आवश्यक हो जाता है कि ऐतहासिक प्रवृत्तियों के सहारे उनकी जीवनी प्रस्तुत की जाय।

महाराज हर्ष के शासन-काल तक भारत का राजनैतिक जीवन चरमोत्कर्ष पर पहुंचा हुआ था। देश में शान्ति थी, धन-संपत्ति से वह परिपूर्ण था, कला अपने चरम वैभव पर थी। राजा अथवा सम्रांट् सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का केन्द्र था। आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से सारा समाज दो भागों में विभक्त था, एक उत्पादक वर्ग और दूसरा भोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग में कृषक और श्रमजीवी थे, भोक्तावर्ग में सम्राट् के परिवार और दरबारियों से लेकर उनके नौकर चाकर तक थे। भोक्ता वर्ग राज्य की शक्ति था। इन दो वर्गों के अतिरिक्त एक तृतीय वर्ग विद्वानों का था जो सम्राट्, सामन्त अथवा छोटे-छोटे नृपों के आश्रय में रहते थे। कवि और विशिष्ट कलाकार इसी वर्ग के व्यक्ति थे। इस युग से लेकर राजपूत-युग तक कवियों व कलावन्तों की स्थिति कुछ विचित्र सी थी क्योंकि जन्म से तो इनका सम्बन्ध अधिकांशत: निम्न और मध्यवर्ग से था परन्तु उच्चवर्ग के आश्रय में ये रहते थे अत: यद्यपि इनके व्यक्तित्व का निर्माण दोनों वर्गों के विभिन्न संस्कारों का होता था फिर भी उनमें प्रधानता उच्च वर्ग के संस्कारों और उसी की आशा आकांक्षाओं की रहती थी। निम्न श्रेणी की जनता से इनका सम्बन्ध नाम मात्र का सा रह जाता था। निम्नवर्ग न तो इतना सुसंपन्न ही था कि इनको उचित आर्थिक पोषण कर सके और न इतना सुशिक्षित ही था कि उनकी कला की प्रशंसा ही कर सके। हर्ष विद्वान् थे और विद्वानों को आश्रय देते थे। उस समय की विद्वद्गोष्ठियों तथा कवि सम्मेलनों की चर्चा आज भी बड़े गौरव तथा उत्साह के साथ की जाती है।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य की शक्ति का विकेन्द्रीकरण वेगपूर्वक हुआ।

इसके फल स्वरूप कवि और कलाकार भी कन्नौज के दरबार को छोड़कर विभिन्न राजाओं, सामन्तों, छोटे-छोटे राजाओं तथा सरदारों के दरबारों में इतस्तत: बिखर गये। इस बदली परिस्थिति में भी विद्वानों का सम्मान बना रहा। पर यह सम्मान एक दूसरे कारण से दूषित होने लगा था।

अब विद्वत्सम्मेलनों तथा कवि सम्मेलनों का उद्देश्य, ज्ञान का विकास तथा सद्भावों की प्रेरणा न होकर, पारस्परिक दोष-दृष्टि और एक दूसरे को पछाड़ देने की दुर्भावना का प्रदर्शन बन गया था। राजनीतिक विशृंखलता भी इसमें प्रधान कारण थी। इस समय अरबों के आक्रमण सिंध की ओर से हो चुके थे। उत्तरी भारत पर विपत्ति के ये श्यामकाय मेघ गरज रहे थे, कहीं तो ये बरस पड़ते और कहीं गरज कर ही रह जाते। उत्तरी भारत का भीनमाल प्रान्त इस चक्र में एक बार ही नहीं अनेक बार आ चुका था। वह उस समय की गुर्जर भूमि था। हर्ष ने भी इस भूमि को अपने राज्य में मिला ली थी जिसका वर्णन हर्ष चरित में है। अरबों के आक्रमण के समय प्रतिहारों ने डट कर मुकाबला किया और विजय श्री प्रतिहारों को ही प्राप्त हुई। गुर्जर प्रतिहारों की धाक हर्ष की मृत्यु के कुछ वर्षों के पश्चात् ही ऐसी जम चुकी थी कि उसका उल्लेख शिलालेखों में स्थान-स्थान पर है। इस बात को प्रतिहारों की उत्पत्ति पर लिखते हुए महामहोपाध्याय श्री ओझा ने अभिनंदन ग्रंथ में स्पष्टरूप से व्यक्त किया है। शेखावटी में सीकर से तीन मील दूर हर्ष पहाड़ पर इतिहास प्रसिद्ध हर्षनाथ (शिव) का मन्दिर है जिसके शिलालेख* से स्पष्ट है कि चौहान राजा सूर्य-वंशी प्रतिहारों के आधीन थे। इसी प्रतिहार वंश में नागावलोक (नागभट) प्रसिद्ध हुआ है। सूर्यवंशियों का वलभी से पुराना सम्बन्ध है। बापा रावल ने बनराज चावड़ा की बहिन के साथ विवाह किया। वनराज चावड़ा ने अनहिल पाटण बसाया। वनराज की मृत्यु सन् ८०६ ई० में हुई, वह ११० वर्षों तक जीवित रहा।

इस तरह महाकवि माघ के समय एक ओर तो प्रतिहारों का पूर्ण प्रभाव था दूसरी ओर चित्तौड़ पर बापा रावल का वंश राज्य कर रहा था जिसका चापवंश के साथ भी निकट सम्बन्ध था। प्रतिहारों के आगमन पर चापवंश के राजा इधर उधर बिखरे हुए थे। राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि में कुछ समय के लिए जो अशान्ति फैल गई थी, अब इन शक्तिशाली राजाओं के आ जाने से शान्ति का साम्राज्य एकबार फिर स्थापित हो गया। ये सब अपने आपको सम्राट् से कम नहीं समझते थे। ये राजा शक्तिशाली होने के साथ दानी और विद्वानों का आदर करने वाले थे। हर्ष के समय में भी पूर्व से इनके अधिकार में रहने वाले सामन्त निष्कपट भाव से अपने-अपने स्वामियों की सेवा में निरत रहते थे। इसका उल्लेख राजा वर्मलात के बसन्तगढ़ वाले शिलालेख (सन् ७६० ई०) में भी है जो महाकवि माघ के पितामह सुप्रभदेव के समय का है।

---

* मंदिर के शिलालेख में जो सीकर संग्राहलय में है हर्ष पर्वत का मंदिर सन् ९५६ में सिंहराज के समय में प्रारम्भ हुआ व सम्पूर्ण चौहान विग्रहराज (सन् ९७३) के समय में हुआ। सिंहराज वाक्पति का पुत्र था, वाक्पति वन्दन का। वत्सराज सिंहराज का कनिष्ठ सहोदर था। सिंहराज के दो पुत्र थे—गोविंदराज व चन्द्रराज।

यह राजपूतों का युग था जिसमें सामन्त प्रथा प्रबल थी। प्रतिहार उनके सम्राट् थे जो मद्यपान करने में एक ही थे। इनका राज्यकाल वैभव व ऐश्वर्य से जगमगा रहा था। मुसलमानों के भारत में पदार्पण से इनकी स्त्रियों में पर्दे की प्रथा और भी अधिक रूप में घर कर गई थी। स्त्रियाँ भाँति भाँति के रंगीन वस्त्र धारण करतीं और इस तरह एक विशेष प्रकार का आकर्षण रखती थीं जो विलासमय जीवन के लिए प्रेरणा देता था। इस युग में क्या पुरुष और क्या स्त्री दोनों ही बहुमूल्य मोतियों के हार और दूसरे आभूषण धारण करते। पुष्पों की मालाएँ उनके सौंदर्य को द्विगुणित करतीं। हर्ष के समय से ही रेशमी और झीने झीने सुन्दर सुन्दर वस्त्रों का प्रयोग होने लगा था जिनका वर्णन हर्षचरित में स्थान स्थान पर मिलता है। दरबार के धनी कर्मचारियों का जीवन भी अपने राजा से कम ऐश्वर्य पूर्ण नहीं था, विद्वानों की मण्डलियाँ जुटतीं और अपने बुद्धि-वैभव से राजसभाओं को आलोकित करती थीं। भीनमाल पूर्ण समृद्धि पर था क्योंकि वह उस समय उत्तरी भारत की राजधानी था। शक्तिशाली प्रतिहारों का वह मुख्य स्थान था। भीनमाल के धनी राज्याधिकारी अपने भव्य भवनों में रहते हुए समस्त प्रकार की विलास मयी सामग्रियों का उपभोग करते थे। उनके प्रासाद हरे भरे उद्यानों से सुशोभित होते थे। वहाँ रमणीय वापिकाएँ, हर्म्य और सरोवर होते थे जिनमें विविध प्रकार के पक्षी कलरव करते थे। राजाओं के अन्त:पुरों में रानियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी उनके मन बहलाव के लिये रहती थीं। शिशुपालवध में जो वर्णन दिये गये हैं वे उस काल की वासनामयी प्रवृतियों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं।

विलास के साधन जैसे-जैसे बढ़ते गये समाज का मानस भी विकृत होकर इस देश को पतन की ओर ढकेलने लगा। राजा भोज प्रतिहार के समय में या उससे कुछ ही पूर्व पतन की यह स्थिति आरम्भ हो गई थी। भोज की दो तीन पीढ़ियों बाद विलासिता के कारण प्रतिहारों का पतन होने लगा। एक या दो शताब्दियों में ही उनकी शक्ति समूल नष्ट हो गई।

संस्कृत साहित्य में कवि परिचय सम्बन्धी उलझन—

संस्कृत साहित्य में जैसी उलझनें कवियों के समय के निर्धारण में हैं लगभग वैसी ही उलझनें कतिपय कवियों और लेखकों के नामों के विषय में भी हैं। ये उलझनें कहीं तो कवियों अथवा लेखकों के किसी उपनाम से प्रसिद्धि पाने के कारण हैं और कहीं एक ही नाम के कई व्यक्तियों को अविवेक से एक ही जगह ले आने के कारण पैदा होगयी हैं। इतिहास के साथ सामंजस्य बैठाये बिना जनश्रुतियों के आधार पर जो मान्यताएँ चल पड़ी हैं उनका निराकरण संभव नहीं हो पाया और वे उलझनें ज्यों-की-त्यों ही नहीं बल्कि और भी अधिक बढ़ गईं। उदाहरण के लिए कालिदास* को ही लिया जा सकता है। आज तक कालिदास

* कालिदास—राजशेखर विक्रम के दशम शतक में थे जिन्होंने निम्न श्लोक में कालिदासों का उल्लेख किया है—

नाम के कवि अनेक हुए हैं। राजतरंगिणी में मातृगुप्त का नाम आता है जो विक्रम राजा द्वारा काश्मीर का राजा बनाया गया। वह महान् कवि था। लोगों का अनुमान है कि यही मातृ-गुप्त कालिदास है, क्योंकि 'मातृ' का अर्थ 'कालि' और 'गुप्त' का अर्थ 'दास' होता है। भोज और कालिदास नामक ग्रन्थ में भी कालिदास को कालि का भक्त बताया है। कालि की कृपा से ही वे सरस्वती के वरदपुत्र हुए और तब से कालिदास कहलाये। उनका वास्तविक नाम

"नैकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयीकिमु ॥

नाटककार कालिदास—प्रथम कालिदास नाटककार है। वह संवत् प्रवर्तक शक सातवाहन विक्रम के वंशधर द्वितीय शालिवाहन गौतमीपुत्र शूद्रक का सभाकवि है। गौतमी-पुत्र शूद्रक का काल विक्रम सं० २०० तक माना जाता है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने "कृष्ण चरित" में सम्राट् शूद्रक और उसके सभाकवि कालिदास के संबध में लिखा है—

"पुरन्दरबलोविप्रः शूद्रकः शस्त्रशास्त्रवित्।
धनुर्वेद चौरशास्त्र रूपके द्वे तथाकरोत् ॥" (मृच्छकटिक, पद्मप्राभृत)

इसी कृष्णचरित में लिखा है—

"तस्याभवन्नरपतेः कविरात्मवर्णः, श्रीकालिदास इति यो प्रतिम प्रभावः।
दुष्यन्तभूपति कथां प्रणय प्रतिष्ठां, रम्याभिनेय चरितां सरसां चकार ॥"

काव्यकार कालिदास—समुद्रगुप्त के आश्रित "हरिषेण" कवि था जिसकी उपाधि कालीदास थी वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का मित्र एवं सभारत्न था। समुद्रगुप्त ने इस द्वितीय कालिदास का अपने कृष्णचरित में उल्लेख करते हुए लिखा है—"हरिषेण कवि ने नाना-चरितात्मक पांच काव्य (रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, नलोदय और ऋतु संहार) लिखे हैं। वह "रघुकार" नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपनी दिव्य कविता रचनाचातुरी के कारण "कालिदास" उपनाम प्राप्त किया। मुझे (समुद्रगुप्त) भी कृष्णचरित" रचना के लिए उसी ने प्रेरित किया। समुद्रगुप्त का समय वि० सं० ४४२ और चन्द्रगुप्त विक्रम सं० ४७० तक निश्चित् है। परन्तु यह कालिदास दीर्घजीवी था, संभवतः वि० सं० ५२५ के स्कन्दगुप्त तक जीवित रहा। समुद्रगुप्त के निधन के पश्चात् "ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ" की भी रचना इसी ने की थी। 'शापान्तों मे भुजगशयनादुत्थिते शांर्गपाणौ।' इस मेघदूत पथ के अनुसार कार्तिक शुक्ला एकादशी को जिस कालिदास की जयन्ती मनाई जाती है, वह यही द्वितीय कालिदास "हरिषेण कालिदास" थे। विक्रम की विदुषीपुत्री प्रियंगुमंजरी (विद्योत्त) से इसी का विवाह था "अस्तिकश्चिद्वाग्विशेषः" प्रसिद्ध है।

पद्मगुप्त परिमल कालिदास—यह राजशेखर का समकालीन रहा है। राजा भोज के पिता सिन्धुल विक्रम का सभाकवि था जिसने शृंगाररसमय "नवसाहसांक चरित" काव्य लिखा है जिसमें सिंधुलविक्रम का चरित है। राजेशखर मिहिर भोज के समय में रहे हैं क्योंकि वे भोज के पुत्र और पौत्र के गुरु थे। इस भांति इस भोज के समय में कालिदास का होना भी संभव हो सकता है। इस कालिदास ने भी दीर्घ आयु प्राप्त की है।

तो कोई और ही था जिसका पता अभी तक नहीं चल पाया है। इसी तरह कुछ आलोचकों को शंका होने लगी है कि कालिदास कहीं और तो नहीं थे ? भोज और विक्रम के विषय में भी इसी प्रकार सन्देह चलते हैं, महाकवि दण्डी भी इस प्रकार की भ्रान्तियों से अछूते नहीं रहे। इनके ग्रन्थों से इनका परिचय नहीं के बराबर मिलता है। परिच्छेदों और उच्छ्वासों की समाप्ति पर आचार्य दंडी या श्री दंडी नाम मिलता है। दण्डी को महाकवि कहा गया है। 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः' इस उक्ति के आधार पर इनको महाकवि कालिदास के समय का बताया गया है क्योंकि सरस्वती के मुख से "त्वमेवाहं न संशयः" यह कहलाकर दण्डी कवि को विशिष्ट गौरव प्रदान कराया गया है। 'नह्यमूला जनश्रुतिः' परन्तु क्या आचार्य दंडी, गद्यलेखक दंडी और महाकवि दंडी तीनों एक ही व्यक्ति थे अथवा भिन्न-भिन्न, यह संदेह होना भी स्वाभाविक ही है। "दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः" यह उक्ति भी प्रश्न प्रस्तुत करती है। वे दंडी क्या दशकुमारचरितकार दण्डी है अथवा काव्यादर्श-कार दण्डी, अथवा इन दोनों से भी भिन्न ? काव्यादर्श या दशकुमार चरित के आधार पर तो इतना गौरव अथवा प्रशस्तियाँ प्राप्त करना अति कठिन है अथवा इन्हीं के लेखक दण्डी ने प्रौढ़ावस्था में अन्य काव्य भी लिखे हों जिनके फलस्वरूप दण्डिनः पदलालित्यम्" प्रसिद्ध हो गया हो। आचार्यत्व का स्वरूप दशकुमारचरित को पढ़ने से मालूम नहीं होता। एक जनश्रुति के आधार पर तो ये ही, भारवि महाकवि के प्रपौत्र के पुत्र थे। भारवि का वास्तविक नाम दामोदर था और वे नारायण स्वामी के पुत्र थे। दामोदर के मनोरथ, मनोरथ के वीरदत्त, और वीरदत्त के पुत्र दण्डी थे। एक पाठ के अनुसार दामोदर भारवि के नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरे पाठ के अनुसार ये दण्डी व भारवि के समकालीन थे। दामोदर का समय ५०० ई० के समीप का है। ये समस्त बातें विरोधी और विसंवादपूर्ण सी लगती हैं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि कवियों के नामों तथा काल आदि के विषय में कितनी और कैसी भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं।

महाकवि माघ की स्थिति कालिदास और दण्डी से कुछ अच्छी है। उन्होंने २०वें सर्ग के अन्तिम पद्यों में अपने पितामह का, पिता व पितामह के समय के राजा का नाम दे दिया है। यदि ये श्लोक प्रक्षिप्त नहीं हैं जैसा कि कहा जाता है तो माघ के समय के निर्धारण में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है। इस युग का राजनैतिक जीवन कुछ धुँधला-सा और कुछ अन्धकारमय है। पुरातत्ववेत्ताओं तथा ऐतिहासिक अन्वेषकों का ध्यान यदि उस युग की ओर आकृष्ट हो जाय तो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की कई टूटी हुई लड़ियाँ जुड़ जायं। माघ को कुछ आलोचकों ने भारवि के बाद का माना है और कुछ ने समकालीन अथवा पूर्ववर्ती। कहा जाता है भारविकृत "किरात" को देखकर माघ को ईर्ष्या हुई और भारवि को भी नीचा दिखाने के लिए उन्होंने शिशुपाल वध की रचना की। उन्होंने अपना नाम भी संभवतः इसी-लिए माघ रखा कि जो विद्वान् माघ काव्य को आद्योपान्त पढ़ेंगे उनके सम्मुख भारवि का गौरव उसी तरह मन्द पड़ जायगा जैसे माघ मास में सूर्य का तेज मन्द पड़ जाता है। जो लोग भारवि को माघ के बाद का मानते हैं उनका कहना है कि माघ काव्य को देखकर ही भारवि ने अपने किरातार्जुनीय महाकाव्य की रचना की हो। "सहसा विदधीत न क्रिया-

मविवेक: परमापदां पदम् ।" यह श्लोक महाकवि भारवि का है। इस श्लोक के साथ माघ सम्बन्धी कथा को जोड़ कर कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि भारवि और माघ समकालीन थे। वस्तु स्थिति यह है कि शिलालेखों में भारवी और माघ दोनों का नाम एक साथ नहीं आया है। माघ कवि के नाम के सम्बन्ध में इस प्रकार से कुछ भी कहना एक मनगढ़न्त सी कल्पना है, ऐसी कल्पना इतिहास के प्रकाश में ठहर नहीं सकती, फिर भी इसका कोई एक अंश तो सत्य है ही। जहाँ तक माघ के नाम का सम्बन्ध है उसमें भ्रम करने की आवश्यकता नहीं। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें मनन सापेक्ष हैं। :—

उपर्युक्त आन्तरिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि कवि का जन्म नाम माघ ही होगा। उपनाम या उपटंक नहीं। प्रसिद्धि का इच्छुक कोई कवि अपने नाम को छिपाकर कविता करे यह समझ में आने वाली बात नहीं। भारवि (सूर्य) का तेज माघ (मास का नाम) के सम्मुख फ़ीका पड़ जाता है यह उक्ति माघ के किसी प्रशंसक की भले ही हो पर "माघ" इस नामकरण के पीछे कोई ऐसी बात रही हो ऐसा किसी भी तथ्य से सिद्ध नहीं होता। ऐसा अवश्य हो सकता है कि माघ मास (जनवरी-फरवरी) में कवि का जन्म हुआ हो जिस दिन का लग्न भी कुछ ऐसा ही हो तो माघ मास की स्मृति में ही कवि का नाम भी "माघ" रख दिया गया हो। मघा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन उत्पन्न होने पर "माघ" ऐसा नामकरण संभव है।

माघ मास में जन्म ग्रहण करने से, कहा जाता है कि बालक विद्वान्, नम्र तथा अपने कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला और योगी की भाँति विषयों में निरासक्त होता है।

विद्याविनीत: स्वकुल प्रधान: सदा सदाचारयुत: प्रधान: ।
योगानुरक्तो विषयेष्वसक्तो माघेऽथमासे मघवानिवेश: ।।(हिन्दी विश्वकोश)

श्री ढुण्ढिराज ने अपने जातकाभरण नामक ज्योतिष ग्रन्थ में पृष्ठ २१ में "मासफलम्" अध्याय के ११ वें श्लोक में लिखा है "सन्मन्त्रविद्वैदिक साधुयोगोयोगोक्त विद्याभ्यसनानुरक्त: ।

१—महाकवि माघ की कुछ प्रतियों में प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर "इति श्रीभिन्नमाल वास्तव्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये," लिखा हुआ मिलता है :

२—शिशुपालवध के १९ वें सर्ग के १२० वें चक्रबंध में स्पष्ट है कि "माघकाव्यमिदं," चक्र में श्लोक की चारों पंक्तियों के "र" को मध्यबिन्दु मानकर पढ़े तो प्रत्येक पंक्ति का तीसरा अक्षर जुड़ कर माघ काव्यमिदं बन जाएगा। अपनी रचना को सुरक्षित करने की दृष्टि से प्राचीन कवि इस प्रकार करते आये हैं।

३—कविवंशवर्णन के अन्तिम श्लोक में माघ का नाम आया है जो चक्रबंध के "माघ-काव्यमिदं" को पुष्ट करता है। श्लोक इस प्रकार है।

श्रीशब्दरम्य कृत सर्ग समाप्तिलक्ष्म, लक्ष्मीपतेश्चरित कीर्तनचारु माघ: ।
तस्यात्मज: सुकविकीर्ति दुराशयाद: काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।।
(कवि वंश वर्णन का पांचवाँ श्लोक)

बुद्धे शेषान्निहृतारि संघो माघोद्भव: स्यादनघो मनुष्य: ।।११।। आगे इसी ग्रन्थ में विपक्षजात फलम् में शुक्ल पक्ष के और दिवारात्रिकलम् में पूर्णिमा के लिए जो बातें आई हैं वे भी इस जानकारी के लिए सहायक हैं ।

चंचाच्चिरायुः सुतरांसुशीलः स्त्रीपुत्रवान्कोमलकायकान्तिः ।
सदासदानंद विनीतकालश्चेज्जन्मकालस्तु बलक्षपक्षे ।।१।।
तेजस्वीपितृसादृश्यश्चारु दृष्टि र्नृपप्रियः ।
बन्धुपूज्यो धनाढ्यश्च दिवाजातो नरो भवेत् ।।१।।
अतिसुललितकायो न्याय संप्राप्तवित्तो, बहुयुवति समेतो नित्य संजातहर्षः
प्रबलतरविलासोऽत्यन्त कारुण्य पुण्यो गुणगणपरिपूर्णः पूर्णिमाजात जन्मा ।।१५।।
विद्वान् धनी सर्वगुणोपपन्नो, मनोरमः क्ष्मापति लब्धकामः ।
आचार्यवर्यश्चजनप्रियःस्याद्वारे गुरौर्यस्यनरस्य जन्मः ।।

प्राय: सभी उपर्युक्त बातें माघ के जीवन की घटनाओं से मेल खाती हैं । माघ सर्व-शास्त्रज्ञ थे और अपने कुल में थे प्रधान भी थे । माघ वेदविहितमार्ग पर चलने वाले, दीर्घ-जीवी, अपने पिता दत्तक की ही भाँति शीलस्वभाव वाले, तथा राजाओं के प्रीत करने वाले, बन्धुओं में पूज्य, धनी तथा दानशील थे । उनके विलासमय जीवन की बात भी प्राय: सर्वविदित है ।

माघ का जन्म माघ मास में पूर्णिमा के दिन हुआ, इसीलिए इन सारी बातों का यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनका नाम भी माघ ही रख दिया गया हो ।

एक अन्य कल्पना माघ के नाम के विषय में यह भी है—

माघ विषयक सामग्री को प्रस्तुत करते समय हमने प्रबन्धों में देखा है कि ज्योति-षियों ने इनके पिताजी को कहा था कि यह बालक लक्ष्मीहीन होकर विह्वलावस्था में प्राण त्याग कर देगा । लक्ष्मी से ताड़ित किये जाने से अथवा माघ मास में जन्म लेने के फल-स्वरूप अथवा इन्हीं दोनों सम्मिलित कारणों से इस कवि का नाम माघ रख दिया गया हो । "मा" का अर्थ लक्ष्मी और "घ" का अर्थ ताड़ना—जो लक्ष्मी से ताड़ित हो वही तो माघ है जैसे पाणिघ, राजघ, वैसे ही माघ । मघ: का अर्थ धन-सम्पति है । धनवान् कुल में उत्पन्न होने वाला वह बालक माघ नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ । मघा नक्षत्र में जन्म होना और वह भी कदाचित पूर्णिमा को, और फिर ऐसे कुल में जहाँ जीवनपर्यन्त भोग विलास के सभी साधन हों, तो दरिद्रता आ कैसे सकती है । अत: इन सब बातों को विचार कर ही पिता ने उसका नाम माघ रख दिया हो ।

माघ काव्य के चतुर्थ सर्ग में कवि की निम्नलिखित सुन्दर कल्पना देखकर विद्वानों ने कवि का नाम घंटा माघ रख दिया ।

उदयतिविततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौहिमधाम्नियातिचास्तम् ।
वहतिगिरिरियंविलम्बि घंटाद्वयपरिवारितवारणेन्द्र लीलाम् ।।४-२०।।

माघ नाम से केवल शिशुपाल वध के कर्ता और कुमुद पंडित श्री दत्तक के पुत्र महाकवि माघ ही आजतक प्रसिद्ध हैं। सुभाषित रत्न भांडागारम् में लगभग बारह श्लोक ऐसे मिले हैं जो माघ कवि के द्वारा बनाये हुए बताये जाते हैं।

माघ का जन्म स्थान—

महाकवि माघ के जन्म स्थान के विषय में भी विभिन्न मत हैं—

(१) प्रचलित मत तो यह है कि माघ कवि गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत लूणी नदी के निकट आबू पर्वत से कुछ ही मीलों की दूरी पर स्थित भीनमाल के निवासी थे।

(२) संस्कृत कवि दर्शन के लेखक डाक्टर भोला शंकर व्यास ने उन्हें भीनमाल का निवासी न बताकर राजस्थान के पार्वत्यप्रदेश डूंगरपुर, बाँसवाड़ा के समीप का निवासी बताया है।

(३) भोज प्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रभावक चरित, तथा माघ काव्य की विशेष प्रतियों में लिखे हुए "इति श्री भिन्नमालव वास्तव्य" आदि के अनुसार माघ राजस्थान प्रान्तान्तर्गत भीनमाल के (जो किसी समय श्रीमाल नगर कहलाता था) निवासी थे।

भिन्नमाल से उस भूमि का अर्थ लिया जाता है जो मालवा से भिन्न है। जब महाकवि माघ भिन्नमाल के रहने वाले थे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे मालवा के रहने वाले नहीं थे। मालवा से भिन्न अर्थात् उज्जैन आदि मालव भूमि के तो न थे। प्राचीन काल में गुर्जरत्रा भूमि कोई अन्य ही थी। भिन्नमाल उस गुर्जरत्रा (गुजरात) भूमि की राजधानी थी। मारवाड़ के जालौर, पाली, नागौर, आदि सब स्थान गुजरात कहलाते थे। क्योंकि यहाँ पर गुर्जर प्रतिहारों का शासन था। भिन्नमाल की स्थिति गुजरात व मारवाड़ की सीमा पर बताई जाती है। आज भीनमाल राजस्थान राज्य की तहसील है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि माघ राजस्थान के निवासी थे। इस सम्बन्ध से निम्न बातें विचारणीय हैं।—

(१) जब दरिद्रावस्था में भोज के निकट माघ गये थे तो उन्हें गुजरात देश से आये हुए पंडित कहा गया था।

इस गुजरात वाली बात को ही लेकर कदाचित् डाक्टर व्यास ने माघ को डूंगरपुर-वांसबाड़े के निकट का निवासी बताया है। उनका कहना है कि वलभी के राजा पंडितों के आश्रय दाता थे। भट्टि ही नहीं, भट्टि से लगभग ५० वर्ष बाद में होने वाले माघ भी संभवतः वलभी के राजाओं के आश्रित थे। गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर वलभी गुजरात के राजाओं की राजधानी थीं। गुजरात की पुरानी सीमा ठीक आज से भिन्न थी। इसमें मारवाड़ और राजस्थान का दक्षिणी पार्वत्य प्रदेश (डूंगर-वांसवाड़ा आदि) भी सम्मिलित था। वलभी संभवतः डूंगरपुर बाँसवाडा के आस-पास दक्षिणी पश्चिमी गुजराती भाग में स्थित थी। गुजरात की साहित्यिक परम्परा भट्टि से लेकर हेमचन्द्र के बाद तक चलती आई है। मेकडौनल के संस्कृत साहित्य के गुजराती अनुवादक ने माघ को गुजरात का सर्वप्रथम कवि माना है।

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मारवाड़ की भूमि एक समय गुजरात ही कहलाती थी और आबू पहाड़ के समीप ही भीनमाल की स्थिति भी थी । अत: वर्तमान भीनमालही क्यों न लिया जाय, डूंगरपुर बांसवाड़े के समीप की भूमि उसे क्यों समझी जाय । रही बात बलमी के राजाओं की जो पण्डितों के आश्रयदाता थे । उनका कहना है कि भट्टि कवि को आश्रय दिया तो भट्टि से लगभग ५० साल बाद में होनेवाले माघ को भी सम्भवत: बलमी के राजाओं ने आश्रय दिया होगा । डाक्टर व्यास भट्टि को सातवीं शती के प्रथम चरण का मानते हैं अर्थात् ६१५ ई० तक, और ५० साल बाद माघ को मान कर उन्हें सातवीं शती के अन्तिम भाग का मान रहे हैं, जबकि वे विद्यमान ही न थे । जब बलमी की प्रधानता नष्ट सी हो गई थी और भीनमाल गुजरात की राजधानी था, तब माघ कवि वहीं थे । वे बलमी वालों के आश्रय में कभी नहीं रहे । गुजरात में मारवाड़ तथा आबू वाले प्रदेश के निकट के भीनमाल में माघ रहते थे, यह बात उनके महाकाव्य शिशुपालवध से स्पष्ट विदित है। वहाँ माघ ने ऊँटों का, ऊँटों की प्रकृति का जो यथावत् वर्णन किया है वैसा वर्णन रेगिस्तान के निवासी किसी कवि से ही सम्भव है । डूंगरपुर बांसवाड़ा पथरीले प्रान्त हैं अत: वहाँ पर इतने ऊँट नहीं, ऊँट तो रेगिस्तान का जहाज है और भीनमाल तो मारवाड़ में है ही अत: ऊँटों का वहाँ होना स्वाभाविक ही है । वहाँ से आबू पहाड़ निकट ही है पास में लूणी नदी प्रवाहित हो रही है जिसका वर्णन रैवतक पर्वत के वर्णन के रूप में हुआ है । यहाँ की जड़ी बूटियाँ रात्रि की चन्द्रिका में चमक कर पहाड़ की शोभा को द्विगुणित कर देती हैं ।

(२) इति श्री भिन्नमालव वास्तव्य दत्तक सूनोर्माघ······शिशुपालवध की अधिकांश प्रतियों में प्रत्येक सर्ग के अन्त में देखकर किस को सन्देह होगा कि माघ भीनमाल के न होंगे ।

(३) माघ के शिशुपालवध के १९वें सर्ग के चक्रबन्ध श्लोक में श्लिष्टरूप से वत्सभूमि (भीनमाल, जालौर, मारवाड़) का संकेत करते हैं जो यह बताता है कि वह भीनमाल के हैं (देखिये अन्त: साक्ष्य वाला प्रकरण) ।

(४) प्रबन्ध तथा अन्य तद्विषयक ग्रन्थों में सर्वत्र ही माघ को भीनमाल निवासी ही कहा है । (देखिये माघ विषयक सामग्री)

(५) बसन्तगढ़ के शिलालेख तथा ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के आधार से माघ भीनमाल निवासी ही सिद्ध होते हैं ।

इन सब से यही निष्कर्ष निकला कि माघ की जन्म-भूमि प्राचीन गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत भीनमाल ही है जो आज राजस्थान के सिरोही जिले के निकट एक तहसील है ।

माघ का कुल

माघ कवि किस कुल में उत्पन्न हुए, यह प्रश्न भी कुछ विवादास्पद सा बन गया है । एक मत के अनुसार वह वैश्य थे तथा दूसरे मत के अनुसार ब्राह्मण ।

इनके वैश्य होने के सम्बन्ध में नीचे लिखे प्रमाण दिये जाते हैं :—

(१) भीमसेन जी दीक्षित ने अपनी काव्य प्रकाश की सुधाशेखर टीका में पृष्ठ ११

पर प्रथम अध्याय में लिखा है—'आदि पदात् भोजप्रबन्धकारिभिर्भोजात् माघकारिभिर्माघस्य वैश्यात् बहुतरधनम् आप्तं इत्यादि उह्यम्' । इसी बात को मान कर कृष्णमाचारी ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है :—

"Bhimsen in his commentary Sudhashekhar on Kabya-Prakash says that Magh was only the purchaser of authorship of the book from some poet whose name has been suppressed. Hs says Magha was vaishya and gives his work as an illustration of a poem composed for money,"

(२) जनश्रुति के अनुसार इसी सम्बन्ध में एक कहानी है—महाकवि भारवि श्वसुर-गृह में रहते हुए कालयापन कर रहे थे । श्वसुरगृह की गायों को बन में जाकर चरा लाते । गायों को चराते समय वृक्ष के नीचे बैठकर श्लोक-रचना किया करते थे । गृहिणी अपने पीहर में रहती । एक दिन अपने परिजनों में बैठी हुई जब बातें कर रही थी तब सखियों का व्यंग सुनकर बड़ी दुखी हुई । रात्रि के समय स्त्री ने भारवि को कहा कि मुझको रुपयों की बड़ी आवश्यकता है, सखियों के सम्मुख मुझको नीचा होना पड़ता है । मैं भी हार लेकर गले में पहिनूँगी । भारवि ने "सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परामापदाम् पदम्" वाले श्लोक को जो वृक्ष के पत्ते पर लिखा हुआ पड़ा था दे दिया और कहा कि जाओ इस श्लोक को ले जाकर किसी सेठ की स्त्री को दे आओ और इसके बजाय तुम अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए बीस हजार रुपये ले जाओ । स्त्री ने प्रत्युत्तर में कहा कि इसके लिए इतना रुपया कौन देगा, तुम कैसा उपहास कर रहे हो ? भारवि ने कहा कि इसमें उपहास की कोई बात नहीं है सेठानी से जाकर कहो कि इस पत्र को जहाँ पर तुम सोओ वहाँ पर खूंटी पर लटका कर रख दो । इससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा । इसका मूल्य बीस हजार रुपये हैं, इससे कम नहीं । वह वहाँ गई और पति के कहने के अनुसार ही उसने किया । सेठानी ने समझा यह अवश्य ही काम का है अत: उसने उसको लेकर पलंग के ऊपर रक्खा जहाँ वह सोया करती थी और बीस हजार रुपये दे दिये । सेठानी का पति विदेश गया हुआ था । कोई १६ वर्ष बीत गये । घर से विदेश के लिये प्रस्थान करने के समय सेठानी के गर्भ था । पति विदेश से १६ वर्ष पश्चात् लौट कर आया । घर में स्त्री अपने युवक पुत्र को साथ लिए ओढ़ कर सोई हुई थी क्योंकि पुत्र ज्वरावस्था में था और बार-बार वस्त्र को उघाड़ देता । इसका देह-भाग खुला न रह जाय और कुछ समय के लिए नींद आ जाय तो अच्छा है यह सोचकर वह उसके पास ही लेट गई थी । थोड़ी देर में उसे भी नींद आ गई । सेठ शंकाकुल हुआ यह देखकर कि उसकी स्त्री के पास कोई और व्यक्ति लेटा हुआ है । क्रोध के मारे जैसे ही हाथ में धारण की हुई तलवार का उस पर प्रहार कर ही रहा था कि सामने एक पत्र लटकता हुआ दिखलाई पड़ा । सेठ ने सोचा कि मारना तो है ही प्रथम इसके इस टँके हुए जंत्र को भी तो देख लूं कि इसने यह क्या टोना कर रक्खा है । पत्र को पढ़कर उसने सोचा कि कोई भी काम बिना सोचे समझे सहसा नहीं कर बैठना चाहिए इससे आपत्तियाँ आ जाया करती हैं । इसी बीच स्त्री की आँख खुल गई और देखा कि पति सामने खड़े हैं । उसने पुत्र को उठाया और कहा कि बेटा, उठ, तेरे पिता जी आ गये । सेठ जी अवाक् रह गये और ईश्वर को धन्यवाद दिया कि

यदि यह पत्र न होता तो आज उनका एकाकी पुत्र इस असार संसार से उन्हीं के हाथों द्वारा चला गया होता। स्त्री ने पत्र वाली बात को जैसे ही कहा कि सेठ जी बड़े प्रसन्न हुए। कुछ समय बीत जाने पर धरोहर रूप में रक्खे गए उस पत्र को लेने के लिए भारवि की स्त्री २० हजार रुपये लेकर आयी और उस पत्र को वापिस माँगा। सेठजी ने आग्रह किया कि वह पत्र उन्हें ही दे दिया जाय किन्तु जब भारवि की स्त्री ने कहा कि उसके पति इस बात को नहीं मानेंगे तब सेठजी ने क्रोध में आकर कह डाला कि इसमें क्या है यदि इससे बढ़ कर श्लोक रचना करके एक अपूर्व काव्य ग्रन्थ को नहीं बनाऊँ तो फिर मेरा भी माघ वास्तविक नाम नहीं जो भारवि रूप सूर्य समझे जाने वाले को माघ रूप शीत के सम्मुख शीत करदूँ। स्पर्धा में एक महाकाव्य बन गया—शिशुपालवध महाकाव्य।

(३) प्रभावक चरित में शुंभकर श्रेष्ठी का नाम महाकवि माघ के चाचा के रूप में आता है। श्रेष्ठी का प्रयोग नगर मात्र के व्यापारी के लिए होता है इसलिए शुभंकर वैश्य थे ऐसी मान्यता प्रचलित हो गयी। जब माघ के चाचा श्रेष्ठी (सेठ) थे तो फिर माघ वैश्य क्यों न होते। भगवान् पार्श्वनाथकी परम्परा का इनिहास, पूर्वार्द्ध (देवगुप्त सूरि कृत) में लिखा हुआ है कि उपदेशपुर के शासनकर्ता राव उत्पलदेव थे। वे सूर्यवंशी थे। कालान्तर में जैन हो गए और जब से जैन हुए तब से ही वे जैन धर्म का प्रचार करने में लग गए। उनकी संतान ने भी जैन धर्म की उन्नति के लिए ऐसे-ऐसे श्रेष्ठ कार्य किए कि जिससे जनता उनको श्रेष्ठी कहने लग गई, फिर शनैः शनैः उनका गोत्र ही श्रेष्ठी हो गया। राव उत्पलदेव की संतान ने कई पीढ़ियों तक तो राज्य किया फिर बाद में उनके परिवार वालों में से कइयों ने राजाओं के मन्त्री, महामन्त्री आदि पदों पर राज्य का काम किया, जिससे वे मारवाड़ में मेहता कहलाए। श्रेष्ठी (सेठी) और मेहता जैनियों में दो गोत्र अब भी प्रचलित हैं।

(४) सम्वत् १५५२ में लिखी हुई माघकाव्य की एक प्रति में मिलता है—

'इति श्री माघ वणिगविरचिते महाकाव्ये श्र्यं के शिशुपालवधोनाम विशंतितमः सर्गः। सम्पूर्ण माघकाव्यम्। संवत् १५५२ वर्ष चैत्र सुदि द्वादसी दिने शोमवासरे (सोम वासरे) ब्रह्म श्री रतन पठनार्थं श्री माघकाव्ये लिखिति जोति रणमल। शुभं भवत्। कल्याणमुर्किदमस्तु।"
(देखिए, पुरातत्व विभाग, जयपुर में हस्तलिखित ग्रन्थ-'महाकाव्य')

यदि इस लेख का आधार ऐतिहासिक है तो इससे भी माघ का वणिक् (वैश्य) होना ही विदित होता है। इतना तो समझ में आ ही सकता है कि संवत् १५५२ के आस-पास लोग माघ को वणिक् भी मानने लगे थे।

ऊपर लिखी बातों की समीक्षा करना आवश्यक है :—

(क) श्री कृष्णमाचारी का कथन यह तो किसी तरह सिद्ध कर सकता है कि शिशुपाल वध काव्य को किसी वैश्य ने खरीदा, पर काव्यकार भी वैश्य था यह बात इससे सिद्ध नहीं होती।

(ख) 'सहसाविदधीत न क्रियाम्' इत्यादि श्लोक का माघ के जीवन से इस तरह जो सम्बन्ध किया जाता है इसका कोई प्रमाण नहीं। यह जनश्रुति की बात है। इसका कोई और प्रमाण नहीं मिलता।

(ग) प्रभावक चरित में जो श्रेष्ठी शब्द का प्रयोग शुभंकर के नाम के साथ किया गया है वह उनकी वैश्यता का बोधक न होकर उसकी श्रेष्ठता का बोधक भी हो सकता है। 'श्रेष्ठिन्' इस शब्द का प्रारम्भ में प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता था जो अपने किसी भी बड़े काम के कारण श्रेष्ठता को प्राप्त हुए हों। यह एक उपाधि थी जो कालान्तर में जब समाज में अर्थोन्मुखता बढ़ी, धनिकों के साथ जोड़ी जाने लगी। धनिक प्रायः वैश्य होते हैं इसलिये श्रेष्ठिन् से वैश्य का अभिप्राय लिया जाने लगा और जैनियों में तो जैसे ऊपर कहा गया है, यह एक गोत्र बन गया। आज का सेठी गोत्र श्रेष्ठिन् का अपभ्रंश अथवा विकसित रूप है।

यही कहना अधिक उचित होगा कि सुप्रभदेव के कार्य श्रेष्ठ थे। वह माघकाव्यानुसार पुण्य धर्मोवाले, परम धार्मिक तथा निरासक्त दृष्टि वाले और रजोगुण रहित व्यक्ति थे। धार्मिक पिता के पुत्र दत्तक भी बड़े उदार, क्षमाशील, कोमल-प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे ऐसे व्यक्ति जिनको देखकर लोगों को युधिष्ठिर का स्मरण हो जाया करता था। दत्तक ही "सर्वाश्रय" कहलाये। प्रभावक चरित्र के अनुसार दत्तक के कनिष्ठ भ्राता शुभंकर भी थे। श्रेष्ठ कार्यों से वह वंश श्रेष्ठी कहलाया। दत्तक बड़े धनी थे, प्रबन्ध चिंतामणि के अनुसार इतने धनी कि उन्होंने माघ के लिए पृथ्वी में इतना धन गाड़ दिया जिससे माघ को आजीवन अर्थ-कष्ट न हो। माघ धनी थे, सत्कार्य करते थे, इसलिए श्रेष्ठी कहलाए।

(२) माघ ब्राह्मण थे :—

(क) शिशुपाल के अन्तिम पाँच श्लोक आत्मकथा के रूप में लिखे गए हैं, जो अन्य पुरुष है। कुछ लोग इन श्लोकों को प्रक्षिप्त बताते हैं और कुछ का कहना है कि महाकवि माघ ने ही अन्य पुरुषों में इनकी रचना की। पहिले से बताया जा चुका है कि श्लोक प्रक्षिप्त नहीं हैं। इनमें से प्रथम ही श्लोक से महाकवि माघ के ब्राह्मण होने का संकेत मिलता है।

> सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
> असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥१॥

उपर्युक्त वंशवर्णन के श्लोक में "देवोऽपरः" शब्द आया है। देवोऽपरः का शाब्दिक अर्थ है, दूसरा देव। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि की गणना तो देवों में आती ही है किन्तु ब्राह्मणों को भी 'भूमिदेवाः' कहकर देव कोटि में परिगणित किया गया है। भारवि के अनुसार ब्राह्मण "सत्याशिषः सम्प्रति भूमिदेवाः' हैं। अपर देव का अर्थ ब्राह्मण ही है। फिर जब सुप्रभदेव ब्राह्मण थे, तो उनके पौत्र माघ कवि भी ब्राह्मण ही हुए।

(ख) प्रबन्ध चिन्तामणि में आई हुई माघ सम्बन्धी कथा से भी माघ का ब्राह्मण होना व्यक्त होता है। कथा की अन्तिम पंक्ति है, "श्री मालेषु सजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन्पुरुषरत्ने विनष्टे क्षुधा बाधिते सति भिल्लमाल इति तज्ज्ञातं नाम निर्ममे।" इसमें इनके श्रीमाल निवासी ब्राह्मण होने का संकेत है।

> नभिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्था कथमृणं,
> लभन्ते कर्माणिक्षिति-परिबृढान् कारयति कः ॥

अदत्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्त समये,
क्व यामः किं कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविधिः ।।

इस श्लोक में भिक्षा की बात आई है। ब्राह्मणों के लिए भिक्षा-वृत्ति का विधान है। फिर यहाँ तो यह भी कथन है कि इस दुष्काल में कर्मकाण्ड भी कौन करायेगा ? परम्परा से कर्मकाण्ड तो ब्राह्मण ही करते हुए आए हैं। माघ को आज भोजन तक नहीं मिल रहा है, किन्तु इस बात की उन्हें कोई चिन्ता नहीं, यदि चिन्ता है तो केवल बिना ग्रास प्राप्त किए हुए ही सूर्य के अस्त हो जाने की। सूर्य को ग्रास देते हुए बहुत कम मनुष्य देखे गए हैं। हाँ, गो-ग्रास को तो अधिकांश रूप में ब्राह्मण ही भोजन करने के पूर्व निकालते हैं। सूर्य के लिए ग्रास निकालना भी ब्राह्मणों में हो सकता है। शाक द्वीपी ब्राह्मण सूर्योपासक होते हैं। सूर्य-मन्दिर के पुजारी भी ये ही ब्राह्मण रखे जाते हैं। ये मग ब्राह्मण कहलाते हैं। श्री के० एम० मुन्शी ने "दी ग्लोरी दैट गुर्जर देश हैज़" पुस्तक में लिखा है कि भीनमाल में मग ब्राह्मणों की अधिकता सातवीं शताब्दी के पूर्व थी, किन्तु इसके पश्चात् वे वहाँ से चले गये। पिछले अध्याय में प्रबन्ध चिन्तामणि का उद्धरण देते हुए लिखा गया है कि राजाभोज ने बनते हुए जगत् स्वामी के मन्दिर का पुण्य-लाभ माघ को दिया। जगत् स्वामी का मन्दिर चित्तौड़ में है, जो शिव का मन्दिर कहलाता है। चित्तौड़ में सूर्य का मन्दिर है उसको अब कालिका का मन्दिर कहते हैं। जगत् स्वामी शिव है या सूर्य इस बात को देखना है। वैसे देखा जाय तो संसार का स्वामी सूर्य ही है, सूर्य के बिना संसार में कोई कार्य हो भी नहीं सकता। शिव को भी तो परमात्मा रूप मानकर जगत् स्वामी कह देते हैं, किन्तु जगत् स्वामी शब्द का अधिक प्रचार सूर्य के अर्थ में ही हुआ है। भीनमाल में तो सूर्य का (जगत्स्वामी) अति प्राचीन मन्दिर भी है। चित्तौड़ में सूर्य मन्दिर पहले था, अब नहीं। चित्तौड़ के महाराणा सूर्यवंशी हैं। पताका पर सूर्य का चिह्न रहता है। वे शिव के दीवान हैं। अद्बद्जी का मन्दिर जो आज मोकल जी का मन्दिर कहलाता है किसी समय में यह भोज स्वामी देव का मन्दिर कहलाता था। मन्दिर का नाम भी शोभालाल शास्त्रीकृत वीरभूमि में अद्भुतजी के मन्दिर के लिए निम्न श्लोक आया है :—

श्री रायमल्लनरनायक राज्यकाले, निर्मापितं लसति शंकर गेहमग्रे ।
एतन्महाद्भुत् शिव प्रतिमायुतत्वाद्, विख्यातमस्ति किल मंदिरमद्भुतस्य ।।८४।।

"वीर भूमि" में मोकल जी के मन्दिर को अद्भुत मन्दिर से भिन्न माना गया है। वहाँ उसको समिद्धेश्वर का मन्दिर कहा गया है। मौकलजी ने उसका जीर्णोद्धार कराया था।

तृप्तिं न चेदुपगतोऽसि विनष्टशेषामालोक्य रम्यरचनां हि महेश्वरस्य ।
आस्वाद्यतां सुकवितां चिरमेकनाथ-भट्टस्य सद्मनि समाधि-महेश्वरस्य ।।४७।।

जगत् स्वामी का मन्दिर और मौकलजी का मन्दिर एक ही थे या दो। इस पर अभी निर्णित रूप से कोई बात कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि शोभालाल शास्त्री के कथन को सही मान ले तो भी भोज ने माघ को जगत् स्वामी के मन्दिर का पुण्यलाभ दिया

इसमें कोई सन्देह नहीं पैदा होता। पुण्य लाभ ब्राह्मण को ही दिया जाता है यह बात भी लोक विदित है।

ऊपर दिये विवरण से माघ का ब्राह्मण होना प्रमाणित होता है। कुछ प्रतियों में जो माघ को वणिक् बताया गया है वह अविवेक पूर्ण जनश्रुति के आधार को लिए हुए है और एक अर्ध सत्य सा कुछ लोगों में मान्यता पा गया है।

माघ के ब्राह्मण सिद्ध होने के बाद यह प्रश्न उठता है कि वह कौन से ब्राह्मण थे ? प्राप्त तथ्यों से अनुमान होता है कि वे मग (शाक द्वीपी) ब्राह्मण होंगे। मग ब्राह्मण सूर्योपासक होते हैं। वे सूर्य को ग्रास दिए बिना भोजन नहीं करते। जगत् स्वामी का मन्दिर, सूर्य-मन्दिर था इसलिए किसी मग ब्राह्मण को ही उसका दान दिया जा सकता था, क्योंकि परम्परा के अनुसार वही सूर्य मन्दिर के पूजक या पुजारी हो सकते हैं ठीक उसी तरह से जैसे शनिश्चर के मन्दिर के पुजारी डाकौत ब्राह्मण ही होते हैं। दान का पुण्य लाभ तब ही मिलता है जब दान-पात्र को दिया जाता है। माघ इस दान को प्राप्त करने के अधिकारी बन सके इससे यह सिद्ध होता है कि वह मग ब्राह्मण ही थे।

भविष्य पुराण के १७वें अध्याय में मग ब्राह्मणों के विषय में एक उपाख्यान मिलता है। प्रबन्ध चिन्तामणि और बल्लालरचित भोज-प्रबन्ध से उसकी तुलना करने पर विदित होता है कि माघ शाकद्वीपी (मग) ब्राह्मण थे। उपाख्यान कुछ इस भाँति का है—

शाकद्वीप का राजा प्रियव्रततनय था जिसने अपने राज्य में सूर्यदेव का मन्दिर बनवाया और उसमें एक स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित की। उसने वहाँ के रहने वाले तीनों वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के लोगों को कहा कि उनमें से कोई उस मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करे। वहाँ कोई ब्राह्मण तो था नहीं—वह काम कौन करता ? कोई तैयार नहीं हुआ। राजा दुःखी हुए और सूर्य की शरण में गए। सूर्य देव ने कहा कि वास्तव में ये तीनों वर्ण मेरी मूर्ति की अर्चना के अधिकारी नहीं है, अतः ठीक ही है कि इसमें से कोई भी मेरी अर्चना करने के लिए स्वीकृति नहीं देता है। अब मैं तुम्हारे मंगल के लिए शीघ्र ही मग नाम के अनुपम ब्राह्मणों की सृष्टि करता हूँ। उसी समय सूर्य के शरीर से ८ महाबली ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने पूछा, पिता जी क्या आज्ञा है ? इस पर सूर्य ने कहा कि शाकद्वीप में जो राजा है उसकी आज्ञा का पालन करो। फिर सूर्य ने उस राजा को कहा कि ये ब्राह्मण तुम्हारे लिए अर्चनीय हैं। मैं इन्हें अपनी मूर्ति की प्रतिष्ठा और पूजा आदि का अधिकारी बनाता हूँ। तुम इस मन्दिर को इन्हें ही सौंप दो। उनको दिया हुआ दान तुम वापस मत लेना। सूर्य ने फिर कहा, ये वेदाध्ययन करेंगे और इसके बाद दान ग्रहण करेंगे। प्रतिदिन त्रिसंध्या स्नान करके दिवारात्र में पाँच बार मेरी पूजा करेंगे। मेरे सिवा और कोई देवता उनका उपास्य नहीं होगा। ये भोजक ब्राह्मण देवता, ब्राह्मण और वेदवाक्य में आस्था वाले होंगे उनको अन्नादि निवेदन करके एकाकी भोजन करेंगे, शूद्रान्न ग्रहण अथवा उनके उच्छिष्ट का स्पर्शन इत्यादि निषिद्ध कार्यों का सावधानी से परित्याग करेंगे। मेरे लिए चढ़ाया गया नैवेद्य ही उनकी परमवृत्ति रहेगी। अभोज्य भोजन नहीं करेंगे और प्रतिदिन मुझे ही भोजन करायेंगे। जो व्यक्ति अव्यङ्गहीन होकर मेरी पूजा करेगा उस पर मैं कभी भी प्रसन्न न होऊँगा और उसका वंश-लोप हो जायगा।

भविष्यपुराण के १३९ वें अध्याय में भी मग ब्राह्मण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राय: यही बात कही गयी है। उसी पुराण के १४० वें अध्याय में ऐसा भी लिखा है कि ये **मग ब्राह्मण वेद में पारदर्शी हैं और इनमें अधिकांश क्रिया-काण्ड में रत हैं।** ये विपरीत क्रम से वेदाध्ययन करते थे इसलिए मग और मगु नाम से प्रसिद्ध हुए। ये अपने पास दीर्घ कूर्च रखा करते हैं, मौनी होकर भोजन करते हैं। जैसे ब्राह्मणों के सब संस्कारों में दया की जरूरत होती है उसी भाँति ये बर्श्मा रखते हैं। **ये कभी भी मृत या रजस्वला स्त्री का स्पर्श तक नहीं करते।** जैसे ब्राह्मण याग यज्ञादि में मन्त्र द्वारा संस्कृत सोम का पान करने से दूषित नहीं होते वैसे ही देवप्रसाद के रूप में **मद्यपान इनके लिए पानीय हुआ करता है।** ये मद्यपान के दोषी नहीं होते क्योंकि मन्त्र से संस्कृत करके उसे पीते हैं। ये इसे हवि: कहते हैं। अग्निहोत्र के तुल्य इनके भी अध्वरहोत्र अचषु कहलाता है ये प्रतिदिन दिवाकर को तीनों संध्या कालों में पंच प्रकार धूपदान करते हैं।

भविष्य पुराण में आगे कहा है कि द्वादश आदित्यों में एक आदित्य विष्णु है। इस विष्णु ने जाम्बवती के गर्भ से साम्ब को जन्म दिया। साम्ब दुर्वासा के शाप से कुष्टी हुए पर नारद के उपदेश से मित्र की तपस्या कर जब रोगमुक्त हुए तब सूर्य की मूर्ति की स्थापना की। सूर्य की पूजा के लिए मग ब्राह्मण भारत में लाये गये। मुलतान शाकद्वीपियों का मूलस्थान है। वहाँ ही सूर्यमूर्ति की सर्वप्रथम प्रतिष्ठा हुई थी। ये मग ग्रह-दान भी लेते हैं इसलिए इन्हें ग्रह-विप्र भी कहते हैं।

टाड का कहना है कि शक राजपूतों के साथ यादवों का वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था। भविष्य पुराण में भी कहा है कि मग ब्राह्मणों ने यादव या भोजक कन्या के साथ विवाह किया, तब से उनकी सन्तति भोजक कहलाई है।

हिन्दी-विश्व-कोष में मग ब्राह्मणों के लिए लिखा हुआ है कि ये **बौद्धधर्मावलम्बी होते हैं किन्तु इसके सिवा वे शिव और दुर्गा के उपासक अधिक होते हैं।**

प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है—स्वदेशगमनायापृच्छन् स्वयं कारितनव्यभोजस्वामिप्रासादप्रदत्तपुण्यो मालवमण्डलं प्रति प्रतस्थे। जब भोज अपने देश को लौटा तब इस अतिथि-सत्कार के फल में उसने अपने बनते हुए भोजस्वामी के मन्दिर का पुण्य माघ को दिया। यह भोजधाराधिपति भोज तो हो नहीं सकते क्योंकि वे शिव के उपासक थे। सूर्य के उपासक को शिवमन्दिर की भेंट संगत प्रतीत नहीं होती। फिर यहाँ तो पुण्य-लाभ की बात और जुड़ी हुई है, इसलिए इसकी संभावना और भी कम हो जाती है।

चित्तौड़ के कर्ण-भोज माघ के पिता के मित्र थे। माघ पर उनका स्नेह भाव था। मन्दिर के पुण्यलाभ की बात उसके साथ घटित नहीं होती।

अब भोज प्रतिहार बचते हैं जिनका इष्ट ही सूर्य था। वे वैष्णव थे। विष्णु को भी सूर्य का ही एक रूप मानते थे, और सूर्य की उपासना करते थे। उनके स्वामी सूर्य ही थे। मिहिर की उपाधि उन्होंने कदाचित् इसीलिए धारण की थी। अतिथि-सत्कार में माघ को भोज-स्वामी (सूर्य) का मन्दिर भेंट कर उन्होंने पुण्य का संचय किया। भविष्य पुराण से जो उपाख्यान ऊपर दिया गया है उसमें स्पष्ट है कि सूर्य की पूजा के अधिकारी वे ही ब्राह्मण

हैं जो मग (शाकद्वीपी) हैं अन्य ब्राह्मण नहीं। मग ब्राह्मण माघ को सूर्य-मन्दिर भेंट करने से पुण्यलाभ की प्राप्ति हुई।

माघ शाकद्वीपी मग ब्राह्मण थे तभी उन्होंने अपने परम आराध्य सूर्य देवता के मन्दिर का दान अपने आपको भाग्यशाली मानते हुए स्वीकार किया, अन्यथा प्रभूत समृद्धिशाली तथा सहृदय शिरोमणि परम विद्वान् महाकवि माघ अपने ही प्रिय व्यक्ति से आतिथ्य के बदले दान स्वीकार नहीं करते। न तो राजा भोज से माघ जैसे दान-पात्र मिल सकते थे और न महाकवि माघ को सूर्य मन्दिर से बढ़कर और कोई बड़ा दान ही मिल सकता था।

प्रबन्ध चिन्तामणि में एक श्लोक आया है, जिसका पुनः उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है—

न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाकथमणं
लभन्ते कर्माणि क्षिति परिबृढान्कारयति कः ?
अदत्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व यामः किं कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविधिः ॥

इन पंक्तियों में प्रथम द्वितीय और तृतीय पंक्तियाँ विचारणीय हैं—

लभन्ते कर्माणि क्षिति परिवृढान्कारयति कः ?
अदत्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते ।

पहली पंक्ति में तो कहा गया है कि इस दुर्भिक्ष में हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड कौन करायेगा तथा दूसरी पंक्ति में माघ चिन्तित से हैं यह सोच कर कि ग्रास-भोजन को प्राप्त किए बिना ही यह सूर्य अस्त हो रहे हैं। इन दोनों बातों से भी माघ का शाकद्वीपी होना ही सिद्ध होता है। भविष्य पुराण में, जैसा पहले कहा जा चुका है, मग ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन सूर्य को ग्रास अर्पित करना एक आवश्यक कर्त्तव्य बताया गया है। इसी श्लोक से यह भी प्रमाणित होता है कि माघ क्रियाकाण्ड में अधिक रत थे। माघ कहते हैं कि दुर्भिक्ष में हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड कौन करायेगा।

शिशुपालवध काव्य में भी महाकवि माघ के शाकद्वीपी होने का प्रमाण मिलता है। भविष्यपुराण में शाकद्वीपी ब्राह्मणों के लिए देवप्रसाद के रूप में मद्यपान दोष नहीं है। ये तो इसे हविः कहते हैं। अग्निहोत्र के तुल्य इनके भी यह अचषु कहलाता है। शिशुपालवध में माघ ने मदिरापान के वर्णन को संभवतः इसीलिए दूषित नहीं माना।

स्नान करके त्रिकाल सन्ध्या करने का नियम मग ब्राह्मणों में है, ऐसा उपाख्यान में है, शिशुपाल वध में भी एक जगह आया है—

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसंध्यं त्रिदशर्दिशेनमः ॥१-४६॥

देवगण भी तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करने लगते थे। इससे यही अभिप्राय निकलता है कि माघ तीन समय संध्या अवश्य करते होंगे।

हिन्दी विश्व कोष में मग ब्राह्मणों के लिए लिखा हुआ है कि ये बौद्धधर्मावलम्बी होते हैं किन्तु इसके अतिरिक्त वे शिव और दुर्गा के उपासक भी अधिक होते हैं यद्यपि सूर्य को तो पूजते ही हैं।

माघ की जीवनी में उनके धर्म की चर्चा करते हुए बताया गया है—वह एक ओर तो बौद्ध धर्म के प्रशंसक थे और दूसरी ओर सूर्य, शक्ति, शिव और विष्णु के उपासक थे।

इसलिए बहिः साक्ष्य और अन्त:साक्ष्य दोनों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपाल वध के रचियता महाकवि श्री माल निवासी शाकद्वीपी मग ब्राह्मण थे। श्री माल निवासी होने से ये आज तक भी श्री माली ब्राह्मण कहलाते हैं अन्यथा थे ये शाकद्वीपीद्विज।

यह हमारा सौभाग्य है कि महाकवि माघ ने आत्मकथा के रूप में अपने वंश का परिचय अन्तिम पाँच श्लोकों में अन्य पुरुष के रूप में दिया है और इसके अतिरिक्त प्रभावक चरित्र में सिद्धर्षि के प्रबन्ध से भी माघ कवि के कुल की जानकारी पर्याप्त रूप में हो जाती है। हमने आलोचनात्मक रूप में माघविषयक सामग्री में इसका विशदवर्णन कर दिया है अत: अब हम यहाँ पर महाकवि माघ के जीवन का क्रमानुसार वर्णन करेंगे।

गुजरात में भीनमाल (श्रीमाल) नामक एक अतीव समृद्धिशाली नगर रहा है जो आज मारवाड़ की सीमा पर है और राजस्थान प्रान्त के सिरोही राज्य से कुछ ही दूर बसन्तगढ़ के समीप एक तहसील है। पहले बताया जा चुका है कि किसी समय यह नगर धन-धान्य से परिपूर्ण था। राजा वर्मल उस नगरी का स्वामी था जो चापवंशीय था। सन् ७६० ई० में उसने पंचों की गोष्ठी को नियत करते हुए भीनमाल के ही अति निकट खीमेल माता (दुर्गा) के मन्दिर की स्थापना की थी। राजस्थानीय आदित्यभट तथा प्रतिहार बोटक भी उस गोष्ठी के सदस्य थे। राजा वर्मलात अत्यन्त बलवान् था। उसके शासनाधीन अन्य मांडलिक राजा भी थे। अर्बुदाचल उसी के राज्य में था जहाँ पर वज्रभट सत्याश्रय राज्य कर रहा था जो देवी का परमभक्त था। राजा वर्मलात के मन्त्री सुप्रभदेव थे जिनको सुकृतकर्मों के विषय में अधिकार प्राप्त थे। ये परम धार्मिक निरासक्त दृष्टि तथा सात्विक स्वभाव वृत्ति के ब्राह्मण थे। इन्हीं सुप्रभदेव के दो पुत्र थे—दत्तक और शुभंकर। दत्तक बड़े उदार, क्षमाशील, कोमल प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इनके कार्यों को देखकर मनुष्यों को युधिष्ठिर का स्मरण हो आता था। ये अजात शत्रु थे। शुभंकर भी विश्व को प्रिय लगने वाले एवं दानी व्यक्ति थे जिनके दान की गाथाएँ लोक विश्रुत थीं। दत्तक (कुमुद पण्डित) की स्त्री का नाम ब्राह्मी था जिसके गर्भ से चंदन की भाँति शीतल प्रकृतिवाले शिशुपालवध महाकाव्य के कर्ता महाकवि माघ का जन्म हुआ और शुभंकर की स्त्री लक्ष्मी के गर्भ से सिद्ध का जन्म हुआ जो आगे चलकर उपमितिभव-प्रपंच कथा के लेखक हुए। इस भाँति महाकवि माघ और सिद्ध दोनों चचेरे भाई थे।

प्रबंध चिन्तामणि के अनुसार माघ का जन्म हुआ उस समय ज्योतिषियों ने पिता दत्तक (कुमुद पंडित) से स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि यह बालक पहले तो वैभवशाली

होगा परन्तु अन्त में दरिद्री हो जायगा और पैरों पर सूजन आने से मृत्यु को प्राप्त होगा। माघ के पिता ने जब यह बात सुनी तो सोचा कि पुरुष की आयु प्रायः १०० वर्ष की होती है और उन १०० वर्षों में ३६ हजार दिवस होते हैं, इसलिए उसने उतने ही पृथक् पृथक् गड्ढे करवा कर उनमें बहुमूल्य हार आदि रख दिये और फिर भी जो कुछ बच रहा वह सब माघ को दे दिया।

प्रभावक चरित्र में सिद्धर्षि का प्रबन्ध है उसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि शुभंकर के पुत्र सिद्ध युवावस्था में विषयभोगी, जुवारी एवं व्यर्थ कालःयापन करने वाले व्यक्ति थे। इनकी पत्नी धन्या नामवाली थी जो परम पतिव्रता एवं सरल प्रकृति की स्त्री थी। सिद्ध दुर्व्यसनों के कारण रात्रि को सदैव ही देरी से घर लौटते किन्तु धन्या का साहस न होता कि वह पति को कुछ कहे। एक दिन सिद्ध की माता ने सिद्ध को द्वार खोलने से निषेध कर दिया और भर्त्सना करते हुए कहा कि इस समय जिसके द्वार तुम्हारे लिए खुले हुए हैं तुम वहीं जाकर रहो। माता की बात सिद्ध को चुभ गयी। सिद्ध उसी समय बाहर निकल पड़े। इस समय आस पास के सभी घरों के द्वार बन्द थे केवल एक जैन उपाश्रय था उसका द्वार खुला हुआ था जिसमें गर्गर्षि रहते थे। रात्रि भर सिद्ध उस जैन उपाश्रय में रहे। प्रातःकाल होते ही पिता शुभंकर बाहर भटकते हुए अपने पुत्र सिद्ध को ढूंढते ढूंढते उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर जैन दीक्षा लेने के लिए सिद्ध कटिबद्ध थे किन्तु गर्गर्षि उनके पिताकी आज्ञा के बिना दीक्षा को लिये बार-बार निषेध कर रहे थे। शुभंकर श्रेष्ठी ने सिद्ध को बहुत ही समझाया किंतु सिद्ध ने यही उत्तर दिया कि वह माता जी की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। उन्हीं की आज्ञा से वह उस स्थान पर आ पहुंचे हैं जहाँ उनके लिए सदैव द्वार खुले हैं। अन्त में आज्ञा देकर शुभंकर अपने घर पहुँचे। सिद्ध ने जैन-दीक्षा लेली और अब सिद्धर्षि हो गये। जैन होने पर भी इनका चित्त जैन धर्म से सन्तुष्ट न हुआ और बौद्ध धर्म को जानने की अति उत्कट अभिलाषा से वह बौद्ध संन्यासियों के निकट अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए गये। धर्मपरिवर्तन करना साधारण बात न थी। गर्गर्षि के निकट आज्ञा के बिना बौद्ध धर्म में ये दीक्षित कैसे किए जा सकते थे? गर्गर्षि के निकट जैसे ही आए उसी समय गर्गर्षि ने इन्हें कहा कि मैं समीप के ही उपाश्रय में हो आता हूँ इतने में तुम 'ललितविस्तर' को देख डालो। सिद्ध ने वैसा ही किया और फिर उनका जैन धर्म में दृढ़ विश्वास हो गया। सिद्ध ने हरिभद्रसूरि को अपना 'धर्मबोधकरो गुरुः' कहा है। दुर्गस्वामी भी इनके गुरु थे। सिद्धर्षि की लिखी हुई उपमितिभव प्रपंचकथा है जिसको उन्होंने वि० सं० ९६२ ज्येष्ठ शुक्ला ५ गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र में समाप्त की थी। (देखिये सिद्धर्षि) यह सिद्धर्षि माघ के चचेरे भाई थे।

प्रबन्ध चिन्तामणि तथा प्रभावक चरित से तो इन दोनों चचेरे भाइयों के विषय में हमको इतनी सी सूचना उपलब्ध होती है। अन्यथा इन दोनों महापुरुषों का बाल्यकाल कैसा निकला, अध्ययन कहाँ हुआ, कैसे हुआ, क्या क्या पढ़ा आदि के विषय में ये सब ग्रन्थ मौन हैं। इन दोनों की साहित्यिक हलचल से ही इनकी बातें जानी जाती हैं अन्यथा कोई साधन प्राप्त नहीं है।

महाकवि माघ का वंशवृक्ष अधोलिखित रूप से बनता है।
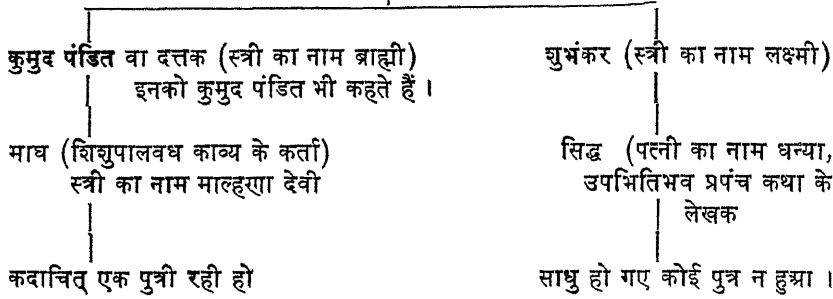
महाकवि माघ के जन्म विषय की बात पाठकों के सम्मुख प्रबन्ध चिन्तामरिण के आधार से प्रस्तुत की गई है। प्रबन्धचिन्तामरिण में वर्णित गाथाओं का स्रोत क्या रहा है यह अलग से गवेषरणा का विषय है। हम इतना मानकर चले हैं कि वहाँ इन गाथाओं का वर्णन सर्वथा निराधार नहीं है। माघ के जन्म काल की ज्योतिषियों वाली बात सत्य है। इसका प्रमारण माघ कवि के शिशुपालवध काव्य में मिलता है। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कवि ने चाहे स्वतन्त्र आत्मकथा विस्तार पूर्वक नहीं लिखी, फिर भी जहाँ जहाँ उन्हें अवसर मिला अपने काव्य में अपनी जीवन घटनाओं का संकेत अवश्य दे दिया। उदाहरणार्थ नीचे दिये श्लोक में दो बातों का परिचय मिलता है, एक तो उनके गुणों का तथा दूसरे उनके भावी अर्थ संकट को बचाने के लिए पिता द्वारा जो अर्थ-निक्षेप दिया गया उसका।

प्रथम सर्ग में नारद और श्रीकृष्ण का परस्पर वार्तालाप प्रारम्भ होने वाला है। श्रीकृष्ण अपने सम्माननीय अतिथि से उनके आगमन का कारण बड़ी विनीत और शिष्टता से पूछते हैं।

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ॥१-२८॥

इसका अर्थ है—

जिस भाँति अपनी सन्तति का शुभचिन्तक पिता उनके भविष्य के उपयोग के लिए बहुत सी धन सम्पति एकत्र करके लोहे की तिजोरियों अथवा कड़ाहों में रखकर निश्चिन्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने कारण सर्वदा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं समाप्त होता, उसी भाँति समस्त विश्व की प्रजा की वृद्धि करनेवाले मंगलकारी भगवान् ब्रह्मा ने आपको (नारद) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेदों की अमूल्य निधि को सौंप कर वे बिलकुल निश्चिन्त हो गये हैं। इस भाँति आप श्रुतियों के अक्षय निधि हैं और सर्वदा इधर उधर घूमकर उपदेश देने पर भी आपकी वह ज्ञाननिधि समाप्त नहीं होती। ऐसे वेदनिधि देवर्षि का दर्शन किसके लिए मंगलकारी न होगा ?

माघ के जन्मकाल की झाँकी का दिग्दर्शन हो चुका है। पिता वैभवशाली हैं अत: बालक माघ के पालन पोषण के लिए, अपने इकलौते पुत्र के लिए उसने कुछ उठा न रक्खा होगा। वंशवर्णन के श्लोकों में हमने देखा है कि माघ के पिता महान् चरित्रवान्, उदारचित, क्षमाशील, कोमल प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ थे। नागरिकों ने उनको सर्वाश्रय नाम दे दिया था। प्रभावक चरित्र में माघ के लिए कहा गया है—श्री माघो नन्दनो ब्राह्मीस्यन्दन: शीलचन्दन: रहा है। इसका तो अभिप्राय यह हुआ कि चन्दन की भाँति शीतलता धारण करनेवाले माघ को अपने पिता तथा पितामह की उदारता आदि महान् गुणों की वृत्ति उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इसके साथ ही यह संकेत स्पष्ट है कि पिता ने ज्योतिषियों की भविष्यवाणी को सुनकर उनके लिए जीवनकाल में समाप्त न होने वाली निधि का निक्षेप किया था।

शिक्षा—

माघ अध्ययनार्थ किसी गुरु के घर भेजे गए अथवा किसी पाठशाला को उन्होंने सुशोभित किया या अपने घर पर ही पढ़े इन सबका कोई संकेत अभी तक तो कहीं पर नहीं मिला। हाँ, उनकी बहुज्ञता से ही इस बात का पता चलता है कि उन्होंने साहित्य-शास्त्र, पाणिनीय-शास्त्र, अमर आदि कोष, नीतिशास्त्र, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, आयुर्वेद तथा ज्योतिष, न्याय एवं दर्शन इन सभी शास्त्रों का एवं वेदों का यथावश्यक अध्ययन किया होगा। प्राय: किशोरावस्था तक उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली और उनका विवाह एक कुलीन घर की कन्या माल्हण देवी के साथ अवश्य कर दिया। यह विवाह रैवतक पर्वत के ही निकटस्थ प्रदेश में कहीं हुआ होगा जहाँ पर द्विरागमन के लिए माघ गये होंगे तो उनका अच्छा स्वागत किया होगा। रैवतक पर्वत के वर्णन में माघ ने जो आत्मीयता दिखलाई है उससे तो यही सिद्ध होता है कि वह भूमि उनकी अपनी है, उससे उनका अत्यधिक स्नेह है। प्रतीकात्मक रूप में चौथे सर्ग के ४५ श्लोक में स्पष्ट ही उनके विवाहित जीवन की एक झाँकी है—

> या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्य: सारतरागमना यतमानम्।
> तेन सहेह बिभर्ति रह: स्त्री सा रतरागमनायतमानम्॥ ४-४५॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा समागम करने में श्रेष्ठ जो स्त्री की प्रार्थना करने पर भी अपने प्रियतम के साथ नहीं जाती थी वही (रमणी) एकान्त में अपने उसी प्रेमी के साथ थोड़ी देर तक मान करने के पश्चात् स्वयमेव रमण की अभिलाषिणी बन जाती है।

रैवतक पर्वत के वर्णन में कवि ने कितनी ही बातें कह डाली। एक सर्ग नहीं ८ सर्ग उसके वर्णन में लिखे हैं। कृष्ण को अतिथि बना कर रैवतक द्वारा उनका स्वागत कराया है मानो प्रतीकात्मक रूप में माघ कवि का स्वागत श्वसुराल के द्वारा हो रहा हो। इसी रैवतक पर्वत के वर्णन में कवि ने हृदय खोलकर अपनी आत्म कथा को भी लिखी है। आठवां, नवां, और ग्यारहवां सर्ग आत्म-जीवन सम्बन्धी बातों की जानकारी के लिए विशेष उपयोगी हैं।

माघ का बालयकालीन जीवन अन्धकार के गर्त में है।

भोज परिचय

महाकवि माघ के शिशुपाल वध को यदि आदि से अन्त तक एक दृष्टि से देखें तो पता चलेगा कि कवि का अन्य अवतारों की अपेक्षा आदिवराह के प्रति अधिक श्रद्धा एवं भक्ति-भाव है। इसके अतिरिक्त उनके वर्णनों में अपने व्यक्तित्व के बोधक संकेत भी मिलते हैं।

प्रथम सर्ग में नारद जी ब्रह्मा के निर्गुण रूप का केवल दो श्लोकों में ही प्रतिपादन करके सहसा सगुण रूप का वर्णन करने लगते हैं। वह नारद के रूप में श्री कृष्ण की जो प्रशंसा कर रहे हैं उससे आदिवराह भोज की भी प्रशंसा अप्रस्तुत के रूप में हो रही है। देखिए—

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥ १-३४ ॥

उपर्युक्त श्लोक में नारद ने बराहावतार के माध्यम से श्री कृष्ण को संसार की आपत्ति को दूर करने की यह कहते हुए स्मृति दिलाई है कि तीनों लोगों की रचना करने वाले परम शिल्पी श्री कृष्ण ने (बराहावतार में) लीला मात्र से नागों के लोक के एक मात्र आवरण इस भूमण्डल को शेषनाम रूपी स्तम्भ के ऊँचे शिरों पर (सशस्त्र फणों पर) टिकाया था। यहाँ बराह भोज की विजयों की ओर संकेत है।

चौदहवें सर्ग में श्लोक २ से लेकर श्लोक ११ तक युधिष्ठिर श्री कृष्ण से यज्ञ की बात कह रहे हैं तब तक श्री कृष्ण सब राजाओं को सुनाते हुए युधिष्ठिर से कह रहे हैं, श्लोक १३वां देखिये—

सादिताखिलनृपं महन्महः संप्रति स्वनयसंपदैव ते।
किं परस्य स गुणः समश्नुते पथ्यवृत्तिरपियद्वरोगिताम् ॥१४-१३॥

अर्थ—हे राजन्! इस समय तुम्हारे तेज ने अपनी नीति की महिमा से ही समस्त राजाओं को अपने वश में कर लिया है (इसमें मेरा कोई अनुग्रह नहीं है, क्योंकि) यदि कोई मनुष्य पथ्य से रहने के कारण ही आरोग्य लाभ करता है तो उसमें वैद्य का क्या निहोरा है?

यह युधिष्ठिर द्वारा कही गयी पाँचवें श्लोक की बात का उत्तर श्री कृष्ण ने इस रूप में दिया है।

इसी भाँति नीचे के चौदहवें श्लोक में युधिष्ठिर द्वारा कह गये दसवें श्लोक का उत्तर क्या दे रहे हैं श्री कृष्ण युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हैं मानो माघ आदि बराह भोज की प्रशंसा खुले रूप से कर रहे हैं। श्लोक देखिए—

तत्सुराज्ञि भवतिस्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता ॥ १४-१४ ॥

अर्थ—अतः सब प्रकार से योग्य आप जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा जो क्षत्रिय राजाओं के सर्वथा योग्य राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है। भला इस धरती को ऊपर उठाने की क्षमता श्री वराह को छोड़ कर अन्य किस पुरुष में है ? अर्थात् किसी में नहीं।

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से कहा—

इत्युदीरितगिरं नृपस्त्वयि श्रेयसि स्थितवति स्थिरा मम।
सर्वसम्पदिति शौरिमुक्तवानुद्वहन्मुदमुदस्थित क्रतौ ।। १४-१७ ।।

अर्थ—इस प्रकार कह लेने पर श्री कृष्ण से युधिष्ठिर ने कहा—मेरे कल्याणकारी कार्यों में आपके उपस्थित रहने पर मेरी समस्त सम्पत्ति स्थिर रहेगी, ऐसा कहकर युधिष्ठिर आनन्दित चित्त से यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हो गये—

युधिष्ठिर और श्री कृष्ण के बीच हुआ यह संवाद आदि वराह भोज की प्रशंसा है जिनने समरांगण में खेलते हुए पृथ्वी को अपने अधिकार में करके सुस्थिर कर दिया। अव्य-वस्था और अराजकता को दूर करके व्यवस्था तथा सुराजकता की स्थापना कर दी। १४वें श्लोक में आदिवराह के राजोचित गुणों की प्रशंसा है।

मिहिर भोज अपने समय में उत्तर भारत के एक शक्तिशाली राजा थे जिनका राज्य बहुत बड़ा था। उन्होंने चिरकाल पर्यन्त राज्य किया। उनका राज्यकाल सन् ८३५ से ८८५ तक का कहा जाता है। वे गुणवान् थे। अपने गुणों द्वारा ही जनता के प्रिय हुए और नाना भाँति से शान्ति स्थापित करके इस पृथ्वी के भार को उन्होंने हल्का किया। श्रीवराह को छोड़ कर अन्य किस राजा में या पुरुष में ऐसी योग्यता हो सकती है। श्रीवराह शब्द से यह आदिवराह नाम धारी श्री भोज की ही ओर कवि का स्पष्ट संकेत है। वराह के पूर्व श्री का लगाना भी इसी बात को पुष्ट करता है। श्लेष के द्वारा वराह अवतार और श्रीवराह नामधारी भोज दोनों का बोध हो जाता है।

इसी १४वें सर्ग का ४३वां श्लोक प्रथम ही 'आद्यकोलतुलितां' कह कर आदिवराह की याद दिलाता है। इसी सर्ग में अवतारों के कार्यों को बतलाते हुए कवि सर्व प्रथम आदि वराह का स्मरण कर रहे हैं। ७१वें श्लोक में उन्होंने स्थूल नासिक शब्द से आदिवराह का स्मरण किया है, देखिये—

स्कन्धधूननविसारिकेसरक्षिप्तसागरमहाप्लवामयम्।
उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम् ।। १४-७१ ।।

इसी सर्ग में ८६वें श्लोक में उन्होंने आदि वराह को फिर स्मरण किया है—

यः कोलतां बल्लवतां च बिभ्रद्द्ंष्ट्रामुदस्याशु भुजां च गुर्वीम्।
मग्नस्य तोयापदि दुस्तरायां गोमण्डलस्योद्धरणं चकार ।। १४-८६ ।।

उपर्युक्त में 'कोलतां' शब्द आदिवराह के लिए आया है। आदिवराह अथवा वराह या उसके पर्यायवाची शब्दों का जो स्थान-स्थान पर औचित्य अथवा अनौचित्य के साथ भी

प्रयोग उन्होंने बार-बार किया है उसके पीछे केवल यही भावना प्रतीत होती है कि वह आदिवराह भोज के गुणों का स्मरण करें। औचित्य के साथ वराह शब्द का प्रयोग ऊपर १४-८६ श्लोक में हुआ है जबकि १५-५ में उसका प्रयोग शिशुपाल के लिए हो गया है। प्रतिहार भोज शक्तिशाली थे। उन्होंने भी राजाओं के समूह को अपनी शक्ति से पराजित किया था जैसे शिशुपाल ने अत: शिशुपाल को आदिवराह बना डाला, देखिये—

स निकाम घर्मितमभीक्ष्णमधुवदवधूतराजकः।
क्षिप्तबहुलजलबिन्दुविपुः प्रलयार्णबोत्थित इवादिशूकरः।। १५-५ ।।

उपर्युक्त में आदिशूकरः शब्द का प्रयोग है।

इसी १५वें सर्ग में श्रीकृष्ण के लिए दूत ने द्व्यर्थक वाक्य द्वारा आदिवराह का स्मरण दिलाया गया है—

क्षितिपीठमम्भसि निमग्नमुदहरत यः परः पुमान् (श्लोक १७)

देखिये उन्नीसवें सर्ग के ११६वें श्लोक के तीन अर्थ हैं।

सदामदबलप्रायः समुद्धृतरसो बभौ।
प्रतीतविक्रमः श्रीमान् हरिर्हरिरिवापरः।। १९-११६ ।।

अर्थ—सदा मस्त रहनेवाले, बलराम के प्रेमी, वाराह अवतार धारण कर पृथ्वी का भार उतारने वाले, वामनावतार धारण कर विचित्र पदन्यास करनेवाले, लक्ष्मीपति भगवान श्री कृष्ण उस समय मानों दूसरे हरि अर्थात् इन्द्र या सूर्य के समान सुशोभित हुए। (इन्द्र भी सज्जनों को दुःख देने वाले बल नामक असुर के संहारक हैं, अमृत के प्रभाव के कारण विष के प्रभाव से रहित हैं, सुप्रसिद्ध पराक्रमशाली तथा राज्य लक्ष्मी से युक्त है और सूर्य भी अपने महान् उदय द्वारा सज्जनों के रोग-दोष को नाश करने वाले, बल प्रदान करने वाले, जल को सोखनेवाले, आकाशगामी तथा शोभा से समन्वित हैं)

मिहिर भोज के अर्थ में—सदा मस्त रहने वाले हैं, बल (पराक्रम) के प्रेमी हैं, गर्व करने वाले शत्रुओं में जिनकी विजय की इच्छा बनी रहती है, जिनके अश्व सुन्दर गतिवाले हैं और जो तेजोलक्ष्मी सम्पन्न है वही मिहिर नाम धारण करने वाले (भोज) श्रीकृष्ण की भाँति सुशोभित हुए।

अब स्पष्ट रूप में इस श्लोक के विभिन्न अर्थों को देखिये—

(१) **श्रीकृष्ण अर्थ**—सदा मस्त रहनेवाले बलभद्र के प्रेमी, वराह रूप से जलमध्य मग्न हुई पृथ्वी का उद्धार करने वाले प्रसिद्ध पराक्रम वाले, लक्ष्मीवान् तथा अविद्यमान शत्रु वाले श्रीकृष्ण सुशोभित हुए।

प्रतिहार भोज अर्थ— सदा मस्त रहने वाले बल के प्रेमी, आदिवराह नाम को धारण करके शत्रुओं से मग्न हुई (घिरी हुई) पृथ्वी का उद्धार करने वाले, प्रसिद्ध पराक्रम वाले श्री सम्पन्न (वे मिहिर भोज) अविद्यमान शत्रु रूप से सुशोभित हुए।

(२) **इन्द्र अर्थ**—विश्व को दुःख देनेवाले बल नामक असुर के संहारक हैं, हर्ष सहित

रहने वाले हैं, अमृत के प्रभाव के कारण विष के प्रभाव से रहित हैं, युद्ध करने के लिए सम्मुख आए हुए जो वीर शत्रु हैं उनमें अपना पौरुष दिखाते हैं, देवाधिपत्यलक्ष्मी युक्त हैं, विष्णु के अनुज हैं (अः उपेन्द्रः विष्णुः परः अनुजो यस्य सः)।

मिहिर भोज अर्थ—लोक को पीड़ा पहुँचाने वाले शत्रु के संहारक हैं (सतां आमदः दुःखदः आमं रोगं लोकपीडां ददातीति आमदः यो बलः बलवान शत्रुः तस्य प्रायः नाशस्तं करोतीति सदामदबलप्रायः) हर्ष युक्त हैं (समुत् सहमुदा हर्षेण वर्तते) शत्रुओं को नष्ट कर देने से निष्कंटक हैं (शत्रुभक्षणात् हृतो निरस्तः रसो विषं कण्टकं येन सः), सम्मुख आने वाले शत्रुओं को विक्रम दिखाने वाले हैं (प्रति इताः योद्धुं संमुखमागता ये शत्रु वीराः तेषुनतु पालयमानेपु विक्रमः पौरुषं यस्य स), श्री सम्पन्न हैं और मिहिर पर नाम को धारण करने वाले हैं (अः उपेन्द्रः विष्णुः आदित्यः भिहिरः परः अन्यः नाम यस्य सः)।

(३) **सिंह अर्थ**— निरन्तर मद गिराने वाले हाथियों को अपने बल से पराक्रम करके मारता है, उत्कट रौद्र रस धारण करता है, प्रसिद्ध पराक्रम वाला है, मृगपति होने से जो श्रीमान् है, महाबली होने से निःसपत्न है।

मिहिर भोज अर्थ—सदा मद (गर्व धारण करने वाले) वाले शत्रुओं को अपने बल से आक्रमण करके मारता है (रणभूमि में) उत्कट रौद्र रस को धारण करता है, प्रसिद्ध पराक्रम वाला है, नृपति होने से लक्ष्मीवान् है, अविद्यमान शत्रु वाला है।

सूर्य अर्थ—जीवधारियों के रोगों को नष्ट करता हुआ उनको बल प्रदान करता है (सतां जीवनाम् आमं रोगं धति लुनाति महद्बलं च ददाति) इसीलिए वह प्रीतिदाता (समुत्) है ग्रीष्म काल में सब जल को सोंख लेता है (हत रसः हतः क्षपितः घर्मं काले रसो जलं येन सः), तीव्रगामी जिसके अश्व हैं (प्रतीताः प्रहृष्टाः प्रतिगता वा विक्रमा यस्य सः तथा विक्रमन्ते अति प्रचलन्ति विक्रमाः अश्वाः प्रहृष्टाऽश्वः। अश्वानां गतिविशेषो विक्रमो वा), तेजवान हैं, संसार का चारों ओर से पालन कर्त्ता है (आ समन्ततिं जगन्ति पिपर्ति पालयति)।

मिहिरभोज—जनता के दुःख को दूर करता हुआ उन्हें आनन्दित करता है (सतां सज्जनानां लोकानां आमं दुःखं धति लुनाति महद्बलं आनन्दं च ददाति) इसीलिए वह प्रीति-दाता है, अक्रोधी (हतः क्षपितः रसः क्रोधः रौद्ररसः येन सः), तीव्रगामी जिसके अश्व हैं, तेजस्वी तथा अपने राज्य का चारों ओर से पालन कर्ता है।

ये चारों अर्थ प्रतिहार भोज पर किसी-न-किसी प्रकार घटित होते हैं।

आदिवराह का विभिन्न रूपों में जो स्मरण प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से बार-बार हुआ है, वह इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि उनका निकट का सम्बन्ध किसी ऐसे व्यक्ति से रहा है जो "वराह" शब्द से याद किया जा सकता है। स्पष्ट है कि आदिवराह भोज महाकवि माघ के समकालीन ही नहीं, आश्रयदाता भी थे उनका ही स्मरण यहाँ बार-बार मिलता है।

राज्याश्रयी माघ

श्री गौरीनाथ पाठक की लिखी हुई "महाकवि माघः" नाम वाली एक छोटी पुस्तिका देखने को प्राप्त हुई। श्री पाठक महोदय ने लिखा है—

"असौ कस्य सभासदासीदित्यत्र पारम्पर्येणैवमनुश्रूयते यदनेन सर्वदा भुवंभ्रमता कुत्रचिदपि चिरमेकत्र नास्थीयत। अतएव तेन कस्यापि राज्ञः संसच्चिरमलंकर्तुं नाशक्यत। अतोऽन्यैरिव मयापीह मौनमेवावलम्ब्यते।"

कालिदास, भारवि, बाणभट्ट, भवभूति, आदि कवियों के आश्रयदाताओं के नाम सुने जाते हैं किन्तु महाकवि माघ के आश्रयदाता कोई राजा भी थे या नहीं यह बात आज तक अन्धकार के गर्त में है। राजा भोज और माघ पंडित के विषय वाली बातें इधर-उधर बिखरी हुई पढ़ने को मिलती हैं। बल्लाल रचित भोजप्रबन्ध में तो प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों को लाकर राजा भोज के दरबार में इस भाँति खड़ा कर दिया है कि सारे प्रकरण को भी पढ़ने पर उनके सम्बन्ध में वहाँ जो कुछ लिखा गया है उस पर विश्वास नहीं होता। कहाँ भोज कालिदास, कहाँ बाण-मयूर और भोज और कहाँ माघ और भोज। अतः भोज प्रबन्ध की शैली में लिखे हुए उन प्राचीन निबन्धों वाले ग्रन्थों को भी (प्रभावकचरित,प्रबन्ध चिन्तामणिः सिद्धर्षि आदि ग्रंथ)विद्वान् ऐतिहासिक नहीं मानते। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी, गवर्नर कैम्प, उत्तर प्रदेश से २३ अगस्त, १९५४ में लिखते हैं—

Dear Sharma,

Your letter of August 16.

I do not remember to have come accross a referenc to Bhoj in the works of Magha. Unless you send me reference I cannot throw any other light.

Your sincerely,
Sd/—K.M.Munshi

Shri Manmohanlal Sharma,
Head of Hindi & Sanskrit,
S.K. College, Sikar (Raj.)

एक दूसरा पत्र भारतीय विद्याभवन, चौपाटी रोड बम्बई, सभापति श्री के० एम० मुन्शी १३ सितम्बर १९५४ के निर्देश से लिखा गया है उसको भी पाठक देखें—

Prof Manmohan Sharma, M.A.
Head of Hindi & Sanskrit,
S. K. College, **SIKAR** (Raj.)

Dear Sir,

I am directed by Rajyapal Shri K. M. Munshi to acknowledge and reply to your letter dated nil to him.

Regarding Magh, the chronicles you mention state that Magh was living during the time of Bhoja. Please remember that evidence of these chronicles are hardly of any use, as they were written centuries after the death of Bhoj, secondly, these chronicles contain several stories which are demonstrably false. The main point is : **Is Bhoj mentioned by the poet? The answer is no.**

Unfortunately we are not in a position to fulfil your needs. Bhoj ruling in A. D. 650-675 is yet unknown in History.

Paramara Bhoj is said to have built a temple at Chittore, which must have been for a time included within his dominion.

Yours faithfully,
Sd/—Majumdar

आज के शिक्षा शास्त्रियों, इतिहास विशारदों, एवं अन्वेषकों की इस माघ-भोज वाली बात पर जो सम्मति है उसको पाठकों के सम्मुख रख दिया गया है। इसी विषय को लेकर अतिरिक्त अच्छे संस्कृतज्ञ व्यक्तियों से जो साक्षात्कार हुए हैं, उन पर भी कोई उल्लेखनीय परिणाम नहीं निकला। परमार भोज का नाम अवश्य आया पर वह तो अनेक कारणों से माघकालीन हो ही नहीं सकता फिर चूंकि पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बसन्तगढ वाले शिलालेख को वि० सं० ६८२ बताकर माघ को सप्तम शताब्दी में रख दिया तो फिर लोग मिहिरभोज की बात ही क्यों सोचने लगे। हमने माघकालीन युग, माघ विषयक सामग्री तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण में इसी बात को दिखलाने का प्रयत्न किया है कि माघ युद्धों के अन्तिम समय में हुए हैं, आठवीं और दशवीं शताब्दी के मध्य। प्रबन्ध चिन्तामणि और प्रभावक चरित दोनों ही से हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि माघ किसी भी राजा के आश्रित नहीं थे। उनका अधिकांश समय भ्रमण करने में ही बीता पर ऐसा सोचना तथ्यों के विपरीत है।

यह बात तो सिद्ध है कि महाकवि माघ के पितामह श्री सुप्रभदेव राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी मन्त्री थे (प्रभावक चरित तथा माघ का शिशुपाल वध में लिखा गया कवि वंश वर्णन देखिये)। इनके पुत्र दत्तक बड़े योग्य व्यक्ति थे जिनके पास अटूट धन था। दत्तक ने बड़े पुत्र माघ को इतना धन दिया जो उसकी १०० वर्ष तक की आयु के लिए पर्याप्त हो सकता था (देखिये प्रबन्ध चिन्तामणि)। वह धन दत्तक के पास कहाँ से आया? क्या वह दत्तक भी किसी राजा के यहाँ अथवा वर्मलात राजा के पास मंत्री रूप में कार्य करते थे अथवा श्री सुप्रभदेव का ही उपार्जित किया हुआ इतना प्रचुर धन था जिससे महाकवि माघ राजसी वैभव को पा सके। शिशुपालवध महाकाव्य में तो केवल श्री सुप्रभदेव के मंत्री होने की बात है। दत्तक के विषय में राज्याश्रय वाली कोई बात नहीं। दत्तक लोक सम्मानित व्यक्ति थे और "सर्वाश्रय" नाम से प्रसिद्ध थे। सर्वाश्रय होना सार्थक तभी हो सकता है जब वह राज्य सम्मानित और वैभवशाली हो। दत्तक भी अपने पिता निश्चय ही श्री सुप्रभदेव की ही भांति राज्य में एक अच्छे पद पर रहे होंगे। राज्याश्रय काल में श्री सुप्रभदेव तथा

उनके सुपुत्र दत्तक के द्वारा उपार्जित धन ने कवि माघ को इतना धनी बना दिया था कि छोटे-मोटे राजा तो साधारण जनों की भाँति माघ के घर पर आया जाया ही करते थे किन्तु भोज जैसे महान् राजा भी उनके यहाँ आतिथ्य से प्रसन्न हुए।

सम्पतिशाली होने के साथ ही वह विभिन्न विषयों के ज्ञाता भी थे। वेद, वेदांग, शास्त्र, पुराण, विभिन्न कोष सभी तो उनके कण्ठाग्र थे। इनके अतिरिक्त उनकी बहुत-सी अन्य बातों का भी पूरा-पूरा ज्ञान था। लक्ष्मी के स्वामी तथा सरस्वती के वरद पुत्र महाकवि माघ लौकिक-दृष्टि से एक रूप से निर्द्वन्द्व थे। फिर वह ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जिसको राज्याश्रय प्राप्त था। उस काल में राज्याश्रयी व्यक्ति विशेष रूप से सम्मानित होते थे। महाकवि माघ ने राज-सम्मान को प्राप्त किया। भोज के सत्कार की बात का तथा जगत् स्वामी के मन्दिर के पुण्य लाभ की बात का इससे मेल बैठता है। माघ आत्म-सम्मानी व्यक्ति थे। ये बड़े दानी और अमीरी ठाट-बाट से रहने वाले थे। शिशुपालवध में कई श्लोक मिलते हैं जिनमें पदच्युत व्यक्तियों के प्रति समवेदना पूर्ण कथन है। इन श्लोकों में इस बात की आवृति से यह अनुमान होता है कि संभवतः उनको भी अपने राजकीय पद को छोड़ना पड़ा हो। एक श्लोक में[1] कहा गया है कि स्वजन होकर भी यदि कोई उच्च स्थान पर चढ़कर नीचे गिर पड़ता है तो निर्मल (उच्च) लोग उसको त्याग देते हैं। मानो इसी कारणवश (सरोवर की) जलराशि ने रमणियों के कानों से गिरे हुए नीले कमल को अपनी लहरों से उठाकर तट की ओर फेंक दिया।

इस श्लोक में "आरूढः पतितः" और "स्व संभवोऽपि" ये शब्द बड़े अभिव्यंजक हैं। "स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति" से स्पष्ट हो जाता है कि जो पतित हो जाता है वह व्यक्ति तो सज्जन पुरुषों से भी त्याज्य होता है। कह नहीं सकते कि महाकवि माघ उच्च स्थान की प्राप्ति के पश्चात् राजा द्वारा अपने स्थान छोड़ देने को बाध्य किए गए हों अथवा "स्व संभवोऽपि" से यह ध्वनि निकल पड़ती है कि परिवार वालों ने माघ कवि को अपनी जातीय मर्यादाओं में बाँधना चाहा हो पर उन्होंने इस तरह बँध जाने को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण माना हो और परिवार को छोड़ दिया हो। पिता दत्तक (कुमुद पण्डित) के अटूट धन को प्राप्त कर माघ अपव्ययी तो हो ही गये थे, यौवन, धन, प्रभुता और फिर विद्वत्ता इनका संगम जो था। इस अपव्ययता से आगे चलकर उनको कष्ट तो मिले ही। कुछ भी हो यह एक श्लोक उनके जीवन की किसी ऐसी घटना पर प्रकाश डालता है जिसका सम्बन्ध उनके घर छोड़ देने से है।

आपत्तियाँ सदैव अकेली नहीं आया करती हैं। जब मनुष्य पर दैवदुर्विपाक से एक आपत्ति आती है तो उसका तो निराकरण हो ही नहीं पाता कि दूसरी आपत्ति सामने आ जाती है। माघ कवि के साथ भी संभवतः ऐसी ही घटना घटी। वह प्रकाण्ड पण्डित थे, शास्त्रार्थ उनके समय में हुआ ही करते थे जिसकी चर्चा हमने ऐतिहासिक व सामाजिक

(१) **आरूढः पतित इति स्व संभवोऽपि, स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति।**
कर्णेभ्यश्च्युतमसितोत्पलं वधूनां, वीचीभिस्तटमनु यन्निरासुरापः ॥८-५४॥

परिस्थितियों को लिखते हुए पीछे के पृष्ठों में कर दी है। माघ पण्डित ने भी पदारूढ़ होते हुए शास्त्रार्थ किये और किसी एक शास्त्रार्थ में उन्हें नीचा देखना पड़ा हो।

एक दूसरा श्लोक[१] है जो उनके पदच्युत या पराजित हो जाने की ओर संकेत करता है—"स्त्रियाँ जो सुवर्ण के आभूषणों को धारण किए हुए थीं वे भारी होने के कारण गिरने की लज्जा से जैसे ही अंगों से गिरे, शीघ्र ही जल में डूब गये, किन्तु पहिनने के पश्चात् निकाली हुई पुष्पमाला सरोवर के जलमें इधर-उधर नाचती ही रही। ठीक ही है। तिरस्कृत या अपमानित होकर भी तुच्छ व्यक्ति और अधिक ढीठ हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अपने स्थान से च्युत होकर जो महान् पुरुष होते हैं वे तो बेचारे अत्यन्त लज्जा के कारण मुँह तक नहीं दिखाते, कहीं छिप जाते हैं, विदेश चले जाते हैं, किन्तु तुच्छ व्यक्ति और अधिक ढिठाई से नाचते हैं।"

शास्त्रार्थ में पराजित व्यक्ति का वर्णन तीसरे श्लोक[२] में वह इस भाँति कर रहे हैं—"अपने प्रवल प्रतिद्वन्द्वी से पराजित व्यक्ति परदेश भाग जाता है अथवा यदि वह व्यवहार कुशल होता है तो उसी की शरण में चला जाता है। इसीलिये चन्द्रमा ने उज्ज्वल कपोलों वाली सुन्दरियों के मुख में प्रतिबिम्ब के बहाने से प्रवेश कर लिया।"

एक चौथा और श्लोक[३] देखिये—"भगवान् श्रीकृष्ण की रमणियों की मधुरवाणी से पराजित स्वर वाले हंसों के समूह कमलों के बीच में आकर छिप गए (उन्होंने यह ठीक ही किया) क्योंकि दूसरे से पराजित होकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो विजेता के सम्मुख खड़ा रह सके।

इसी बात की पुनरावृति एक और श्लोक[४] में हुई है—"शोभायुक्त विशाल एवं सघन नितम्ब मण्डलों से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण की रमणियों की जंघाओं से पराजित तट वाली, सिन्ध की रमणियाँ (नदियाँ) पराजय से लज्जित होने के कारण, मानो निश्चय ही पाषाण खण्डों पर गिरते पड़ते वहाँ से वेग पूर्वक भागने लगीं।" इससे भावार्थ निकला कि दूसरे व्यक्ति भी अपने विपक्षियों से पराजित होकर अत्यन्त लज्जा के कारण बहुत शीघ्र ही वहाँ से भाग निकलते हैं।

---

(१) भ्रश्यद्भिर्जलमभि भूषणैर्वधूनामंगेभ्यो गुरुभिरमज्जि लज्जयेव।
निर्माल्यैरथ ननृतेऽवधीरितानामप्युच्चैर्भवति लघीयसांहि धाष्ट्र्यम् ॥८-६०॥

(२) भजते विदेशमधिकेन जितस्तदनु प्रवेशमथवा कुशलः।
मुखमिन्दुरुज्ज्वलकपोलमतः प्रतिमाच्छलेन सुदृशामविशत् ॥९-४८॥

(३) आलापैस्तुलितरवाणिमाधवीनां, माधुर्यादमलपतत्रिणां कुलानि।
अन्तर्धामुपययुरुत्पलावलीषु, प्रादुःष्यात्क इव जितः पुरः परेण ॥८-१२॥

(४) श्रीमद्भिर्जितपुलिनानि माधवीनामारोहैर्निविडबृहन्नितम्बबिम्बैः।
पाषाणस्खलनविलोलमाशु नूनं वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः ॥८-८॥

एक और श्लोक[२] इसी तरह का है—"आलस्य पूर्वक मन्द-मन्द गमन करती हुई उन रमणियों को देखकर हंसनियाँ विस्मय से युक्त होकर अपनी चाल ही छोड़ बैठीं। क्यों न हो, दूसरे के गुणों द्वारा अपने गुणों के पराजित होने पर भी कौन ऐसा निर्लज्ज है जो फिर अपने गुणों को प्रकट करता है।" अभिप्राय यह है कि हार जाने पर फिर किस मुँह से उस विजेता के सम्मुख मुख उठाकर बोल सके। उसके लिए वहाँ पर रहने की अपेक्षा यही उचित है कि अन्य स्थान पर चला जाय।

इस एक श्लोक[३] को और लेंगे जिसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि जो व्यक्ति किसी के गुणों के आगे पराजित हो जाता है और फिर आगे बोल नहीं सकता तो वह अपनी पराजय तो स्वीकार कर लेता है, किन्तु दुःखी यही जानकर नहीं होता कि केवल वह उस व्यक्ति के सम्मुख हारा नहीं है, उसके पूर्व बहुत से दूसरे व्यक्ति भी हार चुके हैं। श्लोक का अर्थ यह है—चंचल लहरों से युक्त (सरोवर के) जल में अरविन्द 'रमणियों के मुख की कान्ति से अकेला मैं ही नहीं पराजित हुआ हूँ, किन्तु उनके नयनों की शोभा से नीलकमल भी पराजित हो गया है।" इस सन्तोष से मानो भ्रमरों के गुंजार के रूप में गान के साथ नृत्य करने लगा।

संभवतः कवि की आत्माभिव्यक्ति इस एक और श्लोक[४] में हुई है इसको भी देखिये—"फूले हुए असन अर्थात् बन्धूक के पुष्प के समान अर्थात् सुवर्णवत् गौरवर्णवाली रमणी का सुन्दर शरीर जल में मग्न होने पर भी प्रकाशित हो रहा था। जल का समूह (अथवा जड़ अथवा मूर्खों का समूह ड और ल में अभेद होने के कारण) ऊपर से आच्छादित करते हुए भी (मूर्खपक्ष में, गाली गलौच देते हुए भी) निर्मलता से युक्त पदार्थों को (गुणशील लोगों को) छिपाने में (तिरस्कृत करने में) असमर्थ होता है।

अभिप्राय यह है कि जैसे निर्मल जल निर्मल पदार्थ को छिपाने में समर्थ नहीं हो सकता इसी भाँति गुणवान् व्यक्ति का गुण गुणवाले अन्य व्यक्ति के आगे छिप नहीं सकता चाहे द्वेष भाव से प्रथम शास्त्रार्थ पर उतर कर वह व्यक्ति आक्षेप भले ही करे, किन्तु अन्त में गुणों द्वारा सबको विदित हो जाता है कि वह वास्तव में ही गुणवाला है अतः दूसरा विद्वान् पुरुष भी उसको अपने गुणों के आगे छिपा न सका। निर्मल जल जैसे कंचन देह को छिपा न सका इसी भाँति निर्मल गुण यदि किसी में है तो वह निर्मल गुण उस गुणवाले के गुण को (दूसरे गुणों को) प्रकट किए बिना नहीं रहेगा। वह दूसरे के गुणों का प्रख्यापन करेगा।

उपर्युक्त श्लोकों से यह जानने में सहायता मिलती है कि पदच्युति अथवा शास्त्रार्थ में

(२) गच्छन्तीरलसमवेक्ष्य विस्मयिन्यस्तास्तन्वीर्न विदधिरे गतानि हंस्यः।
बुद्ध्वा वा जितमपरेण काममाविष्कुर्वीत स्वगुणमपत्रपः क एव ॥८-७॥

(३) कांतानां कुवलयमप्यपास्तमक्ष्णोः शोभाभिर्न मुखरुचाहमेकमेव।
संहर्षादलिविरुतैरितीव गायल्लोलोर्मौ पयसि महोत्पलं ननर्त ॥८-२३॥

(४) उन्निद्र प्रियकमनोरमं रमण्याः संरेजे सरसि वपुः प्रकाशमेव।
युक्तानां विमलतया तिरस्क्रियायै नाक्रामन्नपि हि भवत्यलंजलौघः ॥८-२८॥

पराजय वा इशके अतिरिक्त कविगोष्ठी अथवा विद्वत्समाज में मिलते हुए अनादर ने आत्म-सम्मानी कवि माघ को देशाटन करने के लिए प्रेरित किया। (माघ महावैय्याकरण भी थे इसी लिये इनकी कविता क्लिष्टता को लिये हुये भी होती थी। उस समय एक विद्वान् अथवा कवि दूसरे विद्वान् अथवा कवि को नीचा दिखाने में लगा रहता था। संभवत: माघ किसी शास्त्रार्थ में अथवा कविगोष्ठी में परास्त भी हुये हों। एक विशेष प्रकार की कीर्ति उनके लिए सदैव ही एक दुराशा ही रही। शिशुपालवध काव्य का निर्माण करके वृद्धावस्था में भी वे उस कीर्ति को पाना चाहते थे। इस इच्छा की अभिव्यक्ति नीचे की दो पंक्तियों में है—

"तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः।
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥" कवि वंशवर्णन ५॥

इन दो पंक्तियों में भी सुकवि कीर्ति उनको एक दुराशा जैसी ही लगती थी—पर वह उसे चाहते अवश्य रहे।

शिशुपाल वध महाकाव्य को सम्पूर्ण करने का समय प्राय: उनकी वृद्धावस्था का है जब वे देश विदेश में भ्रमण करके लौट आये। उस समय आर्थिक दृष्टि से वह बड़ी हीन दशा में थे। लौट कर उन्होंने राज्याश्रय को तो पाने की चिन्ता नहीं की किन्तु अपनी कष्ट दशा से मुक्ति पाने को राज्य की सहायता चाही। वृद्धावस्था में राज सहायता पाने का उल्लेख यथा-स्थान हो चुका है।

तो जहां तक राज्याश्रय का सम्बन्ध है संक्षेप में वह इस भाँति का है—

(क) उनके कुल को राज्याश्रय प्राप्त था, आरम्भ में उनको भी मिला।

(ख) माघ सम्पन्न कलाविद् व्यक्ति थे, जीवन को आनन्द से बिताने की कला में वह निष्णात थे, अपने आश्रयदाता भोज से भी अधिक।

(ग) आरम्भ में भोज उनसे प्रसन्न थे, उनको जगत्स्वामी के मन्दिर का पुण्यलाभ उन्होंने दिया।

(घ) किसी कारणवश उनकी पदच्युति हुई और विद्वानों में उनका निरादर हुआ जिसको वह सहन न कर सके और अपना स्थान छोड़ कर देशाटन में लगे।

(च) जब वह श्रीहीन होगये और अवस्था में भी बहुत वृद्ध तो अपने देश को लौटे उस समय तक उन्होंने शिशुपालवध को समाप्त कर लिया था। शिशुपालवध की रचना में किरातार्जुनीय के कारण प्राप्त भारवि के फैले हुए यश का भी योग था।

(छ) जैसा ऊपर की दो पंक्तियों में स्पष्ट है अभी तक भी सुकविकीर्ति उनके लिए दुराशा थी।

(ज) अन्तिम दिनों में उन्होंने राज सहायता तो चाही पर राज्याश्रय नहीं।

जब यहाँ पर उनके राज्याश्रयी होने में प्रमाणभूत कुछ एक श्लोक हैं उनको उद्धरण रूप में रखकर इस शीर्षक को समाप्त करेंगे—

राजसिंहासन पर बैठे हुए तथा अपने दरबारियों को क्षण भर के लिए दर्शन देकर जो राज्य-कार्य के निरीक्षण के लिए निकल जाता है उसका सजीव चित्रण एक राज्याश्रित दरबारी ही दे सकता है, देखिए—

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणति परमवेक्ष्य प्रीतिमह्लाय लोकम् ।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ।। ११-४८ ।।

अर्थ—सूर्य उदय हुआ है और उदयाचल रूपी सिंहासन पर बैठकर किरण रूपी चरणों को पृथ्वी पर रखता हुआ, प्रणाम करते हुए संतुष्ट लोगों को देखकर शीघ्र ही समस्त भूतल को देखते हुए उदयाचल के तटरूपी सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया।

राजा महाराजाओं के उस युग में प्रातः सायं का दरबार का दृश्य देखने योग्य होता था, दरबारी आशीर्वाद, मुजरा वा सलाम करने के लिए जाया करते थे। कुछ क्षण तक दरबारी बैठे रहते थे महाराजा सिंहासन पर बैठ कर कुछ देर के लिए अपने आश्रित प्रणतजन को आदर देकर शीघ्र ही अपने राज्य की कार्यवाही को देखने के लिए चल पड़ते हैं। यह अप्रस्तुत अर्थ है जो ऊपर के श्लोक में आया है। इस अर्थ को गम्य कराने की क्षमता उसी में हो सकती है जिसने राज्य दरबार का निकटता से (वहाँ आश्रय पाकर) अनुभव किया है।

नीचे की पंक्तियों में कवि ने प्रतापी राजा का प्रताप दिखाकर अपने राजा की इस भाँति प्रशंसा भी कर दी है, देखिये—

बहिरपि विलसन्त्यः काममानिन्यिरे यद्दिवसकररुचोऽन्तं ध्वान्तमन्तर्गृहेषु ।
नियत बिषयवृत्तेरप्यनल्पप्रतापक्षतसकलविपक्षस्तेजसः स स्वभावः ।। ११-५६ ।।

सूर्य बाहर है फिर भी उसकी किरणों ने घर के भीतर के समस्त अन्धकार को दूर कर दिया है। क्यों न हो, तेजस्वी का यह स्वभाव ही है कि वह अपने नियत स्थान पर रह कर भी अपने महान् प्रताप से सम्पूर्ण शत्रुवर्ग का विनाश कर ही देता है। आगे के तीन श्लोकों को भी देखिये—

चिरमतिरसलौल्याद्बन्धनंलम्भितानां पुनरयमुदयाय प्राप्य धाम स्वमेव ।
दलितदलकपाटः षट्पदानां सरोजे सरभस इव गुप्तिस्फोटमर्कः करोति
।। ११-६० ।।

युगपदयुगसप्तिस्तुल्यसंख्यैर्मयूखैर्दशशतदलभेदं कौतुकेनाशु कृत्वा ।
श्रियमलिकुलगीतैर्लालितां पंकजान्तर्भवनमधिशयानामादरात्पश्यतीव ।।११-६१।।
अदयमिव कराग्रैरेष निष्पीड्यसद्यः शशधरमहृरादौ रागवानुष्णरश्मिः ।
अवकिरति नितान्तं कान्तितिर्यासमब्दस्तुतनवजलपाण्डु पुण्डरीकोदरेषु ।।११-६२।।

उपर्युक्त तीनों श्लोकों में उस राजा का वर्णन है जिसने अपने प्रताप से शत्रु को नष्ट कर अपने परिजनों का स्वजनों को परतन्त्रता की जंजीरों से मुक्त किया है और शत्रु सम्पत्ति को अपने मित्रों में वितरण कर दी है।

इस भाँति राजा का वर्णन करता हुआ कवि स्वामी से प्राप्त अपमान की झलक दिखला रहा है, देखिये—

इष्टं कृत्वार्थं पत्रिणः शार्ङ्गपाणेरेत्याधोन्मुख्यं प्राविशन्भूमिमाशु ।
शुद्ध्या युक्तानां वैरिवर्गस्य मध्ये भर्त्रा क्षिप्तानामेतदेवानुरूपम् ॥ १६-११६ ॥

बाण कार्य करके नीचे मुख किये हुए भूमि में प्रविष्ट हुए। बात ठीक ही है यदि शुद्ध होते हुए भी किसी को उसका स्वामी शत्रुओं के मध्य में छोड़ दे तो उसके लिए यही ठीक भी है अर्थात् उसका इसके अतिरिक्त और क्या कर्त्तव्य हो सकता है कि वह नीचा मुख करके कहीं छिप जाय।

फिर देखिये—

पश्चात्कृतानामप्यस्य नराणामिव पत्रिणाम् ।
यो यो गुणेन संयुक्तः स कर्णान्तमाययौ ॥ १६-६३ ॥

अर्थ—जिस भाँति पहले स्वामी द्वारा अनादृत पीछे हटाये गए व्यक्ति अपने गुण के जोर से स्वामी के समीप फिर पहुँच जाते हैं उसी भाँति ये बाण पहले तो पीठ पर तरकश के भीतर पड़े थे किन्तु गुण के सम्पर्क से श्री कृष्ण के कान के समीप पहुँच गये।

इसमें स्वामी ने अनादर किया है किन्तु फिर जैसे ही गुण देखने को मिले हैं तो उसी राजा ने उस व्यक्ति को अपने निकट रख लिया।

फिर देखिये—

अयशोभिदुरालोके कोपधाम रणादृते ।
अयशोभिदुरा लोके कोपधा मरणादृते ॥ १६-५८ ॥

इसमें बताया है कि स्वामी द्वारा प्राप्त अनादर रूपी अपयश को मिटाने के लिए प्राणत्यागने के अतिरिक्त और अन्य उपाय ही क्या हो सकता है।

देखिये—

यावन्न सत्कृतैर्भर्तुः स्नेहस्यानृण्यमिच्छुभिः ।
अमर्षादितरैस्तावत्तत्यजे युधिजीवितम् ॥ १६-५७ ॥

अर्थ—अपने स्वामियों द्वारा सम्मानित होने के कारण उनके प्रेमरूपी ऋण से उऋण होने का इच्छुक योद्धा रणभूमि में जब तक अपने प्राण नहीं त्याग सकें तब तक स्वामी के सत्कार से विहीन सैनिकों ने अपने-अपने प्राण त्याग दिये।

फिर देखिये—

न तस्थौ भर्तृतः प्राप्तमानसंप्रतिपत्तिषु ।
रणैकसर्गेषु भयं मानसं प्रति पत्तिषु ॥१९-३८

इसमें भी स्वामियों से सम्मान एवं सौमनस्य की प्राप्ति चाही ।

नीचे के श्लोकों में गुण के द्वारा स्वामी से मिलन हो ही जाता है, देखिये—

ऋजुताफलयोगशुद्धिभाजां गुरुपक्षाश्रयिणां शिलीमुखानाम् ।
गुणिना नतिमागतेन संधिः सहचापेन समंजसो बभूव ॥२०-९॥

इसमें कहा गया है कि सरल स्वभाव वाले,कल्याणकारी एवं भीतर बाहर की शुद्धता से युक्त तथा बड़े लोगों में आश्रय पाने योग्य मनुष्य का गुणवान् तथा विनम्र मनुष्य से समागम होना उचित ही है ।

आश्रय पाने योग्य इस भांति के गुणवाला तो महाकवि माघ ही हो सकता है और राजा कौन हो सकता है जिसके विषय में पीछे स्पष्टतापूर्व लिखा जा चुका है ।

स्मृतिवर्त्म तस्य न समस्तमपकृतमियाय विद्विषः ।
स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणाः पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः ॥१५-४३॥

इसमें यह भाव स्पष्ट है कि जिन्हें दूसरों के गुणों का ही स्मरण करने का अभ्यास है ऐसे सज्जन दूसरों के समस्त दोषों को स्मरण ही नहीं रख सकते ।

इन श्लोकों से स्वामी द्वारा अनादर किये जाने के भाव हैं फिर स्वामी से अनादृत सेवक को भी इस बात की चिन्ता है कि यह अपयश तो बहुत बुरा है, दिखाने योग्य नहीं इससे प्राण त्याग देना ही श्रेष्ठतर है किन्तु स्वामी के प्रति कर्तव्य से तो च्युत कभी नहीं होना है क्योंकि उस स्वामी के ऋण से उऋण कैसे हो सकते हैं फिर हम देखते हैं कि सेवक ने अपने गुणों द्वारा स्वामी को प्रसन्न कर ही लिया । स्वामी ने दोषों को क्षमा कर दिया और गुणों को ग्रहण करते हुए अपने निकट रख लिया ।

उपर्युक्त भावनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ किसी राजा के आश्रय में अवश्य थे जिनके द्वारा पहले किसी कारण से अनादृत किये गये और फिर राजा का सम्पर्क प्राप्त किया ।

देशाटन

"राज्याश्रय" पर लिखते समय यह बताया गया है कि अपनी पदच्युति, शास्त्रार्थ आदि में पराजय अथवा किसी अन्य सामाजिक अथवा पारिवारिक कारण से बाध्य होकर अपने मानसिक स्वास्थ्य के लिए महाकवि माघ ने देशाटन किया । ये एक नगर से दूसरे नगर जाते और जहां अवसर मिलता अपने पांडित्य एवं कवित्व का परिचय देते । विद्वानों में प्रसिद्धि है, महाकवि माघ अपनी यशोलिप्सा के कारण स्थिर रूप में किसी एक स्थान पर न रह पाये और भ्रमण में ही उनका अधिकांश समय बीता । इन्होंने उत्तर भारत में काश्मीर

तक भ्रमण किया था। पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिण भागों तक ये गये थे। दक्षिण-पश्चिम में कच्छ की खाड़ी के निकटवर्ती प्रान्तों तक जिधर सौराष्ट्र, वलभी, द्वारका आदि प्रवेश हैं तथा पूर्व-दक्षिण में मथुरा तक इनका भ्रमण हुआ। इन स्थानों के चित्रोपम वर्णन हुआ है। शिशुपालवध महाकाव्य में इन वर्णनों का साहित्यिक महत्व तो है, पर अन्तःलक्षण का महत्व भी कम नहीं है।

काश्मीर के वर्णन को देखिए—

बर्फीले स्थानों पर लगी हुई और पुरानी हो जाने के कारण पीली लताओं का आँखों देखा वर्णन—

"दधानमम्भोरुहकेसरद्युतिर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् ।
विपाकपिंगास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ॥१-५॥

अर्थ—कमल की केसर के समान भूरे रंग की जटा को धारण किये हुये और स्वयं शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण के (वे उस समय) बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी हो जाने के कारण पीली लताओं के गुल्मों को धारणकरने वाले हिमालय पर्वत के समान दिखाई पड़ रहे हैं।

काश्मीर में हिमालय पर्वत के निकट आ जाने से भूमि का एक भाग हिमाच्छादित रहता है। वहाँ की भूमि में केसर उत्पन्न होती है। काश्मीर की केसर प्रसिद्ध है। साथ में ही, उस ओर ही कृष्णकाय मृग तथा चितकबरे मृग दिखलाई पड़ते हैं। देखिये मृग के चर्म का वर्णन—

पिशंगमौंजीयुजमर्जुनच्छविं, वसानमेणाजिनमंजन द्युति ॥१-६॥
निसर्गचित्रोज्ज्वल सूक्ष्मपक्ष्मणा··························॥१-८॥

इस भांति उपर्युक्त ६ और ८ श्लोक में काले मृगचर्म और चितकबरे मृग व उज्ज्वल सूक्ष्म रोमावली वाले मृगों के चर्म का वर्णन करके वहाँ पर मृगों की अधिकता दिखलाई है।

जाने दीजिए, ये बातें बड़े दूर की हैं किन्तु कवि नीचे लिखे श्लोक में काश्मीर का नाम तक दे रहा है, देखिये—

अभिचैद्यमगाद्रथोऽपि शौरेरवनिं जागुड़ कुंकुमाभिताम्रैः ॥२०-३॥

इस पंक्ति में तो केसर कुंकम के लिए जागुड (काश्मीरज)

शब्द का प्रयोग है।

माघ काव्य को पढ़ने से विदित होता है कि कवि ने "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो-गच्छति धीमताम्" इसके अनुसार अपनी युवावस्था के शेष भाग को काश्मीर आदि की यात्राओं में शास्त्रार्थ करते हुए, कविता का आनन्द लेते हुए बिताया होगा। शिशुपालवध का अधिकांश भाग काश्मीर की भूमि में रचा गया जहाँ पर माघ ने पण्डितों की काव्य गोष्ठियों में होने के अवसर पाये। जहाँ द्वारावती का वर्णन आता है वहाँ पर स्त्रियों के सौन्दर्य का

जो रूप चित्र उपस्थित किया है उससे हमें तो सहसा काश्मीर का स्मरण हो आता है। काश्मीर की प्रकृति का सौन्दर्य ही अनूठा नहीं है किन्तु वहाँ की रमणियाँ भी आज तक भी अपने सौन्दर्य के कारण अति प्रसिद्ध हैं। एक स्थान पर वर्णन आता है—

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीका समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥३-५३॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में युवक जन रम्य होने के कारण पताका प्राप्त करने वाली अर्थात् ध्वजायुक्त (पक्ष में, रमणीयता के कारण प्रसिद्ध) विविक्त अर्थात् निर्जन होने के कारण राग को बढ़ाने वाली (पक्ष में, विविक्त अर्थात् विमल) नमद्वलीक अर्थात् नीचे की ओर झुकी हुई छप्परों वाली (पक्ष में, नमद्वीलीक अर्थात् मध्य भाग में त्रिबलियों से सुशोभित) बलमी अर्थात् एकान्त त्रुटियों का सेवन अपनी बाहुओं के साथ करते थे।

बलमी शब्द का अर्थ यदि बलमी से लिया जाय तो भी कैसा अर्थ हो जाता है। बलमी में रहने वाली स्त्रियाँ। गुजरात व बलमी की स्त्रियाँ भी सुन्दरता में अद्वितीय होती हैं। बलमी विद्वानों का किसी समय घर था। वहाँ के राजा विद्वानों को आश्रय दिया करते थे (देखिये संस्कृत कवि दर्शन डा० व्यास का भट्टि पर लिखा हुआ अध्याय) इस अर्थ से यह भी ज्ञात होता है कि माघ बलमी की ओर गए और वहाँ पर कुछ दिन रहे।

पाँचवें सर्ग में जहां पर कृष्ण रैवतक पर्वत के समीप शिविर डालते हैं वहाँ पर भी हरिणों और मृगनयनी सुन्दरियों का वर्णन किया गया है, देखिये—

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान् पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदंगनानामाकर्णपूर्णनयनेषुहृते क्षणश्रीः ॥५-२६॥

अर्थ—(भीड़भाड़ को देखकर) भयभीत हुए अतएव अपने आवास स्थल से निकलकर चारों ओर भागते हुए हरिणों का किसी धनुषधारी पुरुष ने यद्यपि पीछा नहीं किया तथापि ऐसा मालूम पड़ता था मानो रमणियों के कान तक फैले हुए नयन रूपी बाणों से नेत्रों की शोभा के हर लिए जाने के कारण वे (हरिण) कहीं भी स्थिर न रह सके।

"ध्वन्यालोक" के रचयिता काश्मीरी पंडित आनन्दवर्धन (सन् ८५० ई०) ने माघ के इन उपर्युक्त श्लोकों को उदाहरण के रूप में अपनी पुस्तक में लिए हैं। यह ठीक भी है क्योंकि जब आनन्दवर्धन माघ के समकालीन हैं और माघ काश्मीर की ओर गये हैं तो हो सकता है कि इन उपर्युक्त श्लोकों को किसी काव्यगोष्ठी में श्री आनन्दवर्धन ने सुने हों और फिर अच्छे समझकर उन्हें अपने धन्यालोक ग्रन्थ में उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया हो।

उत्तर भारत की यात्रा के पश्चात् इन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा सम्भवतः की हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। तृतीय सर्ग में समुद्र तट का जो वर्णन मिलता है उसके सहारे यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की होगी क्योंकि उत्तर भारत भी समुद्र से जुड़ा हुआ है और उत्तर की यात्रा के प्रसंग से समुद्र का वर्णन किया जा सकता है। किन्तु हाँ, इस समुद्र के वर्णन से और कच्छ प्रदेश के विवरण से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वह सौराष्ट्र बलभी, द्वारका, नासिक आदि उन पश्चीमीय भागों

की ओर गये हैं। बलभी, नासिक, काश्मीर तो विद्वान् पंडितों के गढ़ थे जहाँ पर प्राचीन काल में दूर दूर से विद्यार्थी आ आकर ज्ञानोपार्जन किया करते थे। ये ही स्थान शास्त्रार्थों के घर थे अत: उधर का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि शास्त्रार्थ निमित्त वा तीर्थ यात्रा के बहाने उधर वह (माघ) गये, देखिये—

उत्तालतालो वनसंप्रवृत्तसमीरसीमन्तितकेतकीकाः :
आसेदिरे लावण्यसैन्धवीनांचमूचरैः कच्छभुवां प्रदेशाः ॥३-८०॥

अर्थ—श्रीकृष्ण के वे सैनिक क्षारसमुद्र के समीप उस कच्छभूमि के प्रदेश में पहुँच गये, जिसमें उन्नत ताड़ के बनों से निकली हुई वायु केतकी के पौधों अथवा पुष्पों को सिर के केशों के समान दो भागों में विभक्त कर रही थी।

फिर समुद्रीतट के वृक्षों का वर्णन देखिये—

लवंगमालाकलितावतंसास्ते नारिकेलान्तरपः पिबन्तः।
आस्वादितार्द्रक्रमुकाः समुद्रादभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीयुः ॥३-८१॥

अर्थ—लवंग के पुष्पों की मालाओं से विभूषित, नारियल के भीतर के जल को पीते हुए तथा गीली सुपारियों का स्वाद चखते हुए सैनिकों ने समुद्र से विधिवत् अतिथि सत्कार प्राप्त किया।

तीसरे सर्ग में द्वारिका नगरी का यथावत् वर्णन हुआ है। उससे तो ऐसा लगता है मानो माघ कुछ दिन द्वारिका नगरी में भी रहे हैं। श्रीकृष्ण की इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान के प्रसंग में स्थानों, मार्गों, पर्वतों व नदियों का वर्णन हुआ, वे भी कवि के जाने पहचाने से हैं।

मथुरा की ओर जाने का संकेत हमको वहाँ पर मिलता है जब वह यमुना नदी के आने के पूर्व उन गोपालों का वर्णन करते हैं जो मंडलाकार में बैठे बैठे गप्पें लड़ा रहे हैं और कुछ कृष्ण का नाम जपने में तल्लीन हैं, देखिये—

"गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमंडलासनान्सनादमुत्थाय मुहुः स वलातः।
ग्राम्यानपश्यत्कपिशं पिपासतः स्वगोत्रसंकीर्तनभावितात्मनः ॥१२-३८॥

मथुरा वृन्दावन के गाँवों का कैसा सुन्दर चित्र है, देखिये—

कौशातकी पुष्पगुलुच्छकान्तिभिर्मुखै विनिद्रोल्बणबाणचक्षुषः।
ग्रामीणवध्वस्तमलक्षिता जनैश्चिरं वृतीनामुपरिव्यलोकयन् ॥१२-३७॥

इसमें ग्रामवधुएँ श्रीकृष्ण को छिपछिप कर काँटे की मेढ़ों के उपर से बड़ी देर तक कैसे देख रही हैं।

प्रीत्यानियुक्तांल्लिहती स्तनंधयान्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः ॥१२-४०॥

अर्थ—अपने ही बाएँ पैर में बंधे हुए स्तनपान करने वाले छोटे छोटे बछड़ों को प्रेम केसाथ जीभ से चाटती हुई गौवों को तथा अपने दोनों घुटनों के मध्यभाग में दोहनी रखकर

घर घर की मधुर ध्वनि में दुग्ध को बढ़ानेवाली धारा के साथ गौओं को दूहते हुए गोपालों को भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी देर तक देखते रहे।

इसी भाँति की स्वभावोक्ति वाला इसके आगे का श्लोक है जिसमें गाय के दुहने के समय का कैसा रूपचित्र है।

इस तरह चाहे स्पष्ट रूप से इनकी यात्राओं का वर्णन कहीं उल्लिखित नहीं है, फिर भी शिशुपालवध महाकाव्य में जो कुछ लिखा है वह दिशा-निर्देश के लिए एक बड़ा सहारा है।

माघ की युवावस्था

नीचे जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं उनको माघ ने युवावस्था में बनाया होगा। इस प्रकार की समस्त रचना शिशुपालवध महाकाव्य की रचना की दूसरी अवस्था की है। युवावस्था के ये चित्र कवि की सामाजिक अनुभूति से अनुप्राणित हैं। ये चित्र जहाँ कवि की रसिकता और शृंगारिकता पर प्रकाश डालते हैं वहाँ उनकी युवावस्था के वातावरण को भी प्रस्तुत करते हैं। इन विवरणों को देखकर कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि माघ कहीं अनैतिक जीवन बिताने वाले तो नहीं थे। पर ज्योंही उस काल के राज परिवारों की जीवन-चर्या देखी जाती है, यह भ्रम दूर हो जाता है, तब माघ सामाजिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को निकट से देखकर सहृदयतापूर्वक उनको अपने महाकाव्य में स्थान देने वाले एक महाकवि के रूप में उपस्थित होते हैं। नीचे कुछ चित्र हैं जो उनकी युवावस्था के हैं। इन चित्रों में कुछ तो कामुकता के और कुछ मदिरापान के प्रसंगों का वर्णन करते हैं।

अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये।
कथमपि परिवृत्ता निद्रयाऽन्धा किल स्त्री मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम्॥
॥ ११-६ ॥

इसमें स्त्रियों की मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण है।

कामीजनों के कुछ चित्र—

१—सरभस परिरंभारम्भसंरंभभाजा, यदधिनिशमपास्तं बल्लमेनांगनायाः।
वसनमपि निशान्ते नेष्यते तत्प्रदातुं रथचरणविशाल श्रोणिलोलेक्षणेन॥
॥ ११-२३ ॥

सुन्दरी स्त्री के, सुडौल रथ के चक्र की भाँति, उन नितंबस्थलों को देखते रहने के लिए उस रमणी का जो प्रातःकाल होते ही वहाँ से चली जाना चाहती है, वस्त्र उसको लौटा नहीं रहा है।

२—मुखकमलमुन्नमय्य यूना यदभिनबोढ वधूर्बलादचुम्बि।
तदपि न किलबाल पल्लवाग्रग्रह-परया विविदे विदग्धसख्या॥ ७-४५ ॥

अधोलिखित श्लोक में माघ के भाव स्पष्ट हैं। किसी स्त्री का करस्पर्श होना चाहिए फिर वह यदि पुरुष है तो उस रमणी के प्रति अवश्य ही द्रवित हो जायगा अन्यथा नपुंसक ही समझना चाहिए।

समभिसृत्य रसादवलंबितः प्रमदया कुसुमावचिचीषया ।

अविनमन्न रराज वृथोच्चकैरनृतया नृतया बनपादपः ।। ६-१० ।।

शृंगाराभास के कुछ चित्र—

१—आघ्राय श्रमजमनिंद्यगन्धबन्धुं निःश्वासश्वसनमसक्तमंगनानाम् ।

आरण्याः सुमनस ईषिरे न भृंगैरौचित्यं गणयति को विशेषकामः ।।८-१०।।

भंवरों के रूप में माघ ने अपनी भावना प्रकट की है । भंवरे यादव-रमणियों के मुख श्वास को बिना किसी रोक टोक के सूंघकर उपवन के पुष्पों की सुगन्ध को लेने की इच्छा नहीं कर रहे हैं, माघ कहते हैं कि यह बात ठीक ही तो है, ऐसा कौन विशेष कामुक पुरुष होगा जो उचित-अनुचित का विचार ऐसे समय पर करता हो अर्थात् कोई नहीं करता ।

२—आयान्त्यां निजयुवतौ वनात्सशंकं बर्हाणामपरशिखण्डिनीं भरेण ।

आलोक्य व्यवदधतं पुरो मयूरं कामिन्यः श्रदधुरनार्जवं नरेषु ।। ८-११ ।।

परदारगमन इस श्लोक से प्रत्यक्ष है । अपनी युवती प्रियतमा (मयूरी) के बन से सहसा आ जाने पर सशंक चित्त होकर मयूर ने अपनी लम्बी-लम्बी पूँछों के पीछे दूसरी मयूरी को छिपा लिया । उसे ऐसा करते देखकर यादव-स्त्रियों ने पुरुष जाति मात्र में कुटिलता का विश्वास कर लिया ।

नवकुंकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया ।

अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषार करः ।। ९-७ ।।

उष्ण किरणशाली यह सूर्य (नवीन कुंकुम् के तुल्य संध्याकालिक लालवर्ण के स्तनों से युक्त) अपनी किरणों के सम्पर्क से मनोहर आकाश वाली (अपने हाथ से पकड़े हुए वस्त्र से सुशोभित) वरुण की दिशा अर्थात् पश्चिम (पर स्त्री) के साथ अत्यन्त समीपता (आसक्ति) प्राप्त कर बहुत ही लाल वर्ण का (अनुरक्त) हो गया ।

वहाँ समासोक्ति द्वारा परदारागमन की ओर संकेत है ।

वेश्या-जीवन के सम्बन्ध में निम्न श्लोक पर्याप्त प्रकाश डालता है—

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।

निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ।। ९-१० ।।

अर्थ—पश्चिम दिशा रूपी वेश्या ने लालिमायुक्त होने पर भी (अनुराग युक्त होने पर भी शान्त तथा सुन्दर होने के कारण) दोनों नेत्रों के सुखदायी शरीर को धारण करने वाले, असंतापदायी (सुखस्पर्शयुक्त) किरणों से रहित (धन विहीन) सूर्य (प्रेमी) को अपने आकाश रूपी भवन से बाहर निकाल दिया ।

एक और श्लोक है—

आर्द्रत्वादतिशयिनीमुपेयिवद्भिः संसक्तिं भृशमपिभूरिशोऽवधूतैः ।

अंगेभ्यः कथमपि वामलोचनानां विश्लेषो बत नवरक्तकैः प्रपेदे ।। ८-६७ ।।

अर्थ—जल से भीगे हुए होने के कारण (प्रेम से सरस होने के कारण) अत्यन्त चिपके हुए (अतिशय आसक्ति से युक्त) नवीन रक्त अर्थात् लाल वस्त्रों को (नवीन अनुरागी को) सुन्दरी रमणियाँ जब बारम्बार निकालने का (निरस्त करने का) यत्न कर रही थीं, तब अत्यन्त कठिनाई से वे किसी प्रकार उनके अंगों से पृथक् हुए।

कहने का ताप्पर्य यह है कि अत्यन्त आसक्त नवयुवक भी जब धनी वेश्या पर लट्टू हो जाते हैं तब वही गति होती है जो इन भीगे हुए लाल वस्त्रों की हुई। सर्ग १९ के ६१वें श्लोक में भी कहा है कि वेश्याएँ अपने सौन्दर्य, यौवन आदि गुणों से धन-लाभ की आशा तक कामुक पुरुषों को आकर्षित कर, फिर उन्हें सहसा त्याग देती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ये बातें कवि के स्वयं के जीवन पर भी घटित होतीं हैं पर ऐसा मानने का अभी तक कोई सबल प्रमाण नहीं मिला है।

और देखिए—

निलयः श्रियः सततमेतदिति प्रथितं यदेव जलजन्मतया।
दिवसात्ययात्तदपि मुक्तमहो चपलाजनं प्रति न चोद्यमदः ।। ९-१६ ।।

लक्ष्मी का निवास स्थान ही कमल है यह सब कोई जानते हैं किन्तु उस कमल को भी सायंकाल होते ही लक्ष्मी ने त्याग दिया (कितने आश्चर्य की बात है कि देवता भी आपत्ति के समय अपने महान् उपकारी को त्याग देते हैं)।

एक दूसरा दृश्य और देखिए—

उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे, पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेषगत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयंप्रभेति, स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठांगनायाः
।। ११-१२ ।।

अर्थ—जो चन्द्रमा मेरी संगति में रहकर पूर्ण प्रकाश युक्त होकर उदयाचल (अभ्युदय) को प्राप्त हुआ था वही अब अपरा अर्थात् पश्चिम दिशा (पराई स्त्री) के साथ गमन करके पतित हो रहा है अर्थात् नीचे गिर रहा है, यह ठीक नहीं हुआ, मानो इस भाँति की ईर्ष्या करने वाली पूर्व दिशारूपी नायिका के मन्दहास्य की कान्ति के तुल्य उसकी निर्मलता प्राप्त कर रही है।

उस काल में ऊँचे घरानों में व्याप्त परदारगमन के सम्बन्ध में अपनी काव्यमयी भावना का प्रदर्शन यहाँ हुआ है। महाकवि की सम्पति में यह मार्ग पतन का मार्ग है, आपाततः रमणीय पर परिणाम में भयंकर।

माघ काव्य में मदिरा-पान के प्रसंग—

नीचे का श्लोक महाकवि के मदिरा-ज्ञान का द्योतक है। उन्हें राज्य दरबार का संपर्क प्राप्त था ही, और वह भी प्रतिहारों के दरबार का, जो घोर मद्यम थे। इस निकट संपर्क से माघ कवि इन प्रसंगों का भी सजीव वर्णन कर पाये। देखिये—

परिणत मदिराभं भास्करेणांशुबाणैं।
स्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षुक्षतायाः।
रुधिरमिव वहन्त्या भान्ति बालातपेन
च्छुरितमुभयरोधोवारितं वारिनद्यः ।।११-४९।।

अर्थ—सरिताएं प्रातःकाल की धूप से पुरानी मदिरा के समान लाल-लाल वर्ण के अपने दोनों किनारों के मध्य अवरुद्ध अपने जल को मानो समस्त दिशाओं में सूर्य द्वारा किरण-रूपी बाणों से आहत अन्धकार रूपी हाथियों के रक्त की भाँति बहाती हुई शोभा दे रही हैं।

स्त्री के साथ मदिरापान का वर्णन देखिये—

अधिरजनि बधूभिः पीतमैरेयरिक्तं,
कनकचषकमेतद्रोचनालोहितेन।
उदयदहिमरोचिर्ज्योतिषाक्रान्तमन्त,
र्मधुन इव तथैवापूर्णमद्यापि भाति ।।११-५१।।

इस श्लोक से मदिरापान के साथ पीने वाले का वैभव भी वर्णित हो गया है। रात्रि के समय रमणियों द्वारा मदिरा के पी लिये जाने पर रिक्त हुए सुवर्ण के पात्र उनकी समृद्धि को सूचित करते हैं। ८ वें सर्ग के ३० वें श्लोक में "मार्द्वीकं प्रियतमसन्निधानम्" कहकर अंगूरी मदिरा और प्रियतम का सामीप्य स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने की सामग्री बतला कर कवि ने अपनी मस्त तबियत का बड़ा सुन्दर परिचय दिया है। इसी सर्ग में श्लोक ५२ में पोखरी के रूप में मदिरा का सुन्दर वर्णन है। मदिरा भी अमृत तथा जल दोनों का गुण रखती है और उसे भी प्रफुल्लित कमल डाल कर संस्कृत किया जाता है। इस प्रकार सुसंस्कारित मदिरा का पति-पत्नी साथ ही सेवन करते हैं।

और देखिये—

कस्यचित्समदनं मदनीयप्रेयसीवदनपानपरस्य।
स्वादितः सकृदिवाऽऽसव एव प्रत्युत क्षणविदंशपदेऽभूत् ।। १०-९।।

उपर्युक्त श्लोक में उपदंश का सुन्दर वर्णन है। मदिरापान के समय जो नमकीन पदार्थ या चटनी आदि खाये जाते हैं, उन्हें उपदंश कहते हैं। जो साधारण मद्यप होते हैं वे रमणी के अधर पान को ही उपदंश बनाते हैं किन्तु इस श्लोक में उलटे मदिरा को ही उपदंश बना दिया गया अर्थात् एक बार मदिरा का स्वाद लेकर वह प्रेयसी के अधर-पान में ही मस्त होगया। मदिरा के प्रभाव का मनोमोहक वर्णन नीचे की पंक्तियों में है।

प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः।
गूढ सूचितरहस्यसहासः सुभ्रूवां प्रववृते परिहासः ।।१०-१२।।

मदिरापान के साथ हास, परिहास वक्रोक्तियां आदि एक अनूठा रूप धारण कर लेत हैं, उनकी मनोरंजक शक्ति शत गुणित हो जाती है। मदिरापान कर फिर संभोग करने का

वर्णन चतुर्थ सर्ग के ६६ वें श्लोक में है। जिस समाज में रमणियाँ भी मद्यपान करती हों उस समाज में वासना कितनी उद्दाम होकर नाचती होगी। देखिये—

सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा स्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु।
गन्तुमुत्थितमकारणतः स्मद्योतयन्ति मदविभ्रममासाम् ।।१०-१६।।

मदिरापान के वर्णन में कवि ने पूरा १० वां सर्ग लिखकर जो चित्र उपस्थित किय हैं, कामुक व्यापारों तथा मदिरापान के वर्णनों में उनका भी अपना एक औचित्य है। महाकवि माघ का इन परिस्थितियों में होकर गुजरना स्पष्ट विदित होता है। ऐसे घोर विलासमय वातावरण में कवि किसी समय विचलित हो गये हों, पतित भी हो गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं, कोई ऐसा प्रसंग ही उनकी पद-च्युति का कारण भी बन सकता है वह राज-दरबार में अथवा अपने सजातीयों के बीच पराभूत हो सकते हैं जिसका परिणाम अपना स्थान छोड़ देना तक हो सकता है।

मध्य-युग में राजघरानों में मद्यपान, परस्त्रीगमन, मृगया, जल-विहार आदि की अधिकता रहा ही करती थी। कवि राज्याश्रयी थे इसलिए इन बातों में वे रस लेते हों और इस कारण उन्हें निकट का अनुभव हो या प्रत्यक्ष अनुभव हो। उनके ये वर्णन सजीव हैं मानो एक भुक्तभोगी के द्वारा दिये गये हों। राज दरबारों में ऐसी चीज़ों के रख लेने वाले व्यक्ति ही जब टिक सकते हों तो माघ ही इसका अपवाद कैसे रह सकते थे? अत: इस रूप में तो उनके लिए चरित्रहीनता शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। ये तो उस युग की सामान्य प्रवृतियाँ थीं। हो सकता है कि जाति वालों को या घर वालों को ये बातें बुरी लगी हों अथवा स्वयं महाराज ही यदि चरित्रवान् रहे हों तो उन्हें भी यह बुरा लगा हो जैसे हर्ष चरित में बाण के लिए हम देखते हैं। महाराज हर्ष जब बाण कवि की विद्वत्ता को देखते हैं और सच्चरित्रता को पाते हैं तो उन्हें अपनाने लगते हैं। युवावस्था में तो ये बातें होती हैं, फिर संसर्ग पाकर द्विगुणित हो जाती हैं, अत: दुष्टों ने महाराजा को खूब भर दिया होगा। इस बात का प्रमाण महाकवि शिशुपाल जो गाली गलोच कर रहा है उस पर, अपनी ओर से न कहकर सात्यकि के द्वारा कितने स्पष्ट भावों में प्रकट कर रहा है, देखिये—

सहजाऽन्धदृशः स्वदुर्नये परदोषेक्षणदिव्य चक्षुषः।
स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रताः परवर्णग्रहणेष्वसाधवः ।।१६-२९।।
परितोषयिता न कश्चन स्वगतो यस्य गुणोऽस्ति देहिनः।
परदोषकथाभिरल्पकः स्वजनं तोषयितुं किलेच्छति ।।१६-२८।।

इन सारे वर्णनों को पढ़कर इस महाकवि के सम्बन्ध में नीचे लिखी हुई बातें ज्ञात होती हैं।

युवावस्था तक महाकवि माघ, एक नागरिक के लिए जितनी शृंगारिकता अपेक्षित होती थी, उससे कहीं अधिक शृङ्गारिकता तथा विलासमय जीवन बिताने के अभ्यस्त हो गये थे। राजघरानों में उद्दाम विलास का जो वातावरण था, उसमें उसने अपने आपको घुला मिला

दिया था। जीवन के प्रति बहुत ऊँची दृष्टि का विकास अभी तक हो नहीं पाया था। विद्वता, योग्यता और संवेदनशीलता थीं पर एक उद्देश्य विहीन से जीवन के साथ योग पाकर वे अपने सम्मिलित स्वरूप के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत नहीं कर पाई।

उनकी कविता में स्फुटता को लिए हुए जो समाज के उद्दाम जीवन का प्रतिबिंब है वह कवि के उस रूप का परिचय देती है जो प्राय: ऐसे संपन्न युवकों में मिलता है जो थोड़ी देर के लिए विषमताओं से भरी दुनियाँ को भूल जाना चाहते हों।

माघकवि को धीरे-धीरे जीवन का अनुभव होता है वे इस वातावरण में फंस कर भी अलग से रहना चाहते हैं। वर्णन के साथ स्थान-स्थान पर इस प्रकार के जीवन की गुण-दोष-चर्चा इसका प्रमाण है। इस जीवन में उन्होंने शरीर का तथा अर्थ का भोग किया अवश्य, संभवत: उनकी संपति का बड़ा भाग इस प्रकार के कार्यक्रमों में जिन्हें उस काल के सांस्कृतिक कार्यक्रम कह सकते हैं, व्यय किया होगा। अत्यधिक व्यय से जो आर्थिक कष्ट हुआ, उसने उन्हें उदासीन भी बना दिया होगा यही उदासीनता इनकी भगवद्भक्ति के रूप में परिणत हुई होगी। इस सम्बन्ध में 'माघ की धर्मचेतना' भाग में आगे प्रकाश डाला जायगा।

इस उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि महाकवि माघ के आश्रयदाता आदिबराह प्रतिहार भोज थे। उनके यहाँ पर माघ उच्च स्थान पर थे, किसी कारण से उनको राज्याश्रय छोड़ना पड़ा और विदेश में रहना पड़ा। विदेश में ही रहकर इन्होंने महावैयाकरण की उपाधि प्राप्त की होगी और विदेश में रहते-रहते ही इन्होंने शिशुपालवध काव्य के मध्यम भाग की रचना भी की होगी जिसके श्लोकों को काव्यगोष्ठी में सुनाने का इनको अवसर मिलता रहा। वृद्धावस्था में ये धन विहीन अवश्य हो गये। विदेश-गमन लगभग ५० या ६० वर्ष की अवस्था में हुआ होगा, उस समय इनके पास संपत्ति का थोड़ा ही भाग बचा होगा। यह बचा-खुचा धन भी परदेश-यात्रा में समाप्त हो गया होगा। देशाटन के बाद जब ये पुनः घर लौटे तब आर्थिक दृष्टि से इनकी अवस्था बड़ी दीन हो गई। महाराज भोज को भी इनके जाने का संताप तो रहा ही था। जब उन्होंने इनके वापस आने के समाचार सुने तो मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए और अवसर पाते ही उन्होंने इनकी आर्थिक सहायता भी की। किन्तु यह सहायता पर्याप्ति सिद्ध न हो सकी, इसका विवरण अलग दिया गया है।

युवक माघ और उनका कार्य-क्षेत्र

यह तो पहले ही बतला दिया गया है कि महाकवि का बाल्यकाल तो बहुत ही सुन्दर रूप में निकला होगा क्योंकि उनके पिता दक्षक के पास अटूट धन था। घर पर राजसी ठाठ बाट तो पूर्वकाल से ही होंगे। पितामह सुप्रमदेव राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी (मंत्री) ठहरे। उनके घर में किस बात का अभाव था। लालन-पालन सुन्दर रहा होगा। कुछ बड़े होने पर विद्यारंभ हुआ ही होगा और विद्यार्थी-जीवन भी जितना श्रेष्ठ उस समय के योग्य निकलना चाहिये था, उससे भी अच्छा निकला होगा। किस गुरु के चरण-कमलों में बैठकर इन्होंने विद्योपार्जन किया अथवा कौन से विद्यालय के ये स्नातक रहे, क्या-क्या पढ़ा, कितती अवस्था तक पढ़ते रहे, कब विवाह किया आदि आदि बातों के सम्बन्ध में ज्यों-ज्यों इस काल

का इतिहास लिखा जाने लगेगा त्यों-त्यों प्रकाश पड़ता जायगा। नासिक, वलभी, उज्जयिनी और भीनमाल माघ कवि के समय में प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र थे। (देखिये—दी ग्लोरी दैट गुर्जर देश हेज—भाग ३)

कुछ भी हो, वे कहीं भी पढ़े हों, उनका पांडित्य अद्भुत था। उनका ज्ञान व्यापक था। व्याकरण, पुराण और कामशास्त्र पर तो उनका अधिकार था ही, इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष, तर्क, दर्शन, मीमांसा तथा वेद और वेदांग के भी वे ज्ञाता थे। अश्व-शास्त्र तथा गज शास्त्र का उनको पर्याप्त ज्ञान था। इन सब विद्याओं को प्राप्त कर लेने पर ही इन्होंने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया होगा।

इस प्रकार की उच्च विद्याओं को प्राप्त तथा समृद्ध एवं उच्च कुलोत्पन्न माघ पंडित को इस काल के प्रसिद्ध महाराज वराहमिहिर भोज ने अपने यहाँ उच्च पद देकर सम्मानित किया। अपने कार्य को उन्होंने बड़ी योग्यता तथा क्षमता के साथ सम्पन्न किया। महाराज उन पर बहुत प्रसन्न थे। वे उनको अपना अधीनस्थ न मानकर एक योग्य साथी मानते थे और उनके साथ मित्रता का व्यवहार करते थे।

युवक माघ राज्य के उच्च पद पर कार्य करते हुए अपनी विद्वत्ता से नागरिकों को प्रसन्न रखते थे। साथ ही विद्वद्गोष्ठियों में भी भाग लेते रहते थे। इनके पाण्डित्य की उस समय के विद्वानों में धाक बैठी हुई थी। हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों सम्प्रदायों के विद्वानों तथा साधुओं से इनका सहानुभूतिपूर्ण परिचय था।

कवि की बहुज्ञता वाले प्रकरण में पाठकों को इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार से ज्ञात हो जायगा।

उन दिनों शास्त्रार्थ हुआ ही करते थे जिनमें हार जाने वाले व्यक्ति को एक निश्चित अवधि तक के लिए देश त्यागना पड़ता था, यदि देश में रहना ही उसे अभीष्ट होता तो वह विजयी व्यक्ति का सेवक बनकर ही रह सकता था, ऐसी प्रथा सुनी जाती है।

पाठकों को ऐसे श्लोक भी देखने को अवश्य मिलेंगे जिनमें पराजय-भावना को साथ ही साथ कह दी गई है। एक श्लोक में सेवक-भावना का भी स्पष्ट उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि महाकवि का कार्यक्षेत्र साहित्य में न केवल अध्ययन करना ही था अपितु जनता के समक्ष इन शास्त्रार्थों के रूप में अपना पाण्डित्य प्रदर्शन भी था। बड़े-बड़े अनुष्ठान करवाकर पौराणिक धर्म की स्थापना करना इनका मुख्य उद्देश्य रहा होगा, शास्त्रार्थों में भी पौराणिक धर्म का मण्डन करना ही ध्येय रहा होगा। इसी प्रकार के किसी शास्त्रार्थ में वे पराजित हुए हैं और उन्हें एक शर्त के पालन के रूप में अपना यज्ञ छोड़ना पड़ा हो, ऐसी भी एक मान्यता है। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि केवल चरित्र-मत दोष ही उनके स्थान छोड़ने का कारण नहीं था।

उनके दैनिक जीवन का परिचय तो नीचे लिखे श्लोक से मिलता है:—

क्षणशयितविबुद्धाःकल्पयन्तः प्रयोगानुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम् ॥११-६॥

अर्थ—क्षण भर शयन करके फिर तुरन्त ही उठे हुए राजा लोग कवियों की भाँति रात्रि के पिछले प्रहर में बुद्धि के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर समुद्र के समान (एक ओर घोड़ों आदि से, दूसरी ओर रस भावादि से) गम्भीर एवं काव्य के समान कठिनाई से प्रवेश करने योग्य राज्य के सम्बन्ध में साम, दान आदि प्रयोगों का निर्वाचन कर कवि-पक्ष में अर्थ ग्रहण और साधु शब्दों का निर्वाचन कर दुष्प्राप्य त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम (वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य) की चिन्ता कर रहे हैं।

उपर्युक्त के अनुसार महाकवि अपनी युवावस्था में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर कविता बनाया करते थे क्योंकि उस समय चित्त की एकाग्रता रहती है, वायु भी मन्द-मन्द रूप में बहती हुई मस्तिष्क-शक्ति को और भी अधिक जागरूक रखती है। प्रकृति की छठा उस समय कितनी सुन्दर होती है। किसी भी कार्य को करने की अपूर्व क्षमता होती है। जिस बात को हम सोच नहीं सकते वह बात उस समय में अति शीघ्र ही समझ में आ जाती है अत: कवि माघ ने भी कविता करने का यह समय उपयुक्त सोचा।

सूर्योदय होने तक स्नान से निवृत होकर फिर सन्ध्या पर बैठ जाते होंगे, मध्याह्न और सायंकाल में भी सन्ध्या, इस भाँति त्रिकाल सन्ध्या करते होंगे, क्योंकि प्रथम सर्ग में जहाँ पर हिरण्यकशिपु की बात को लाकर रख रहे हैं वहाँ पर कवि त्रिकाल सन्ध्या वाली बात भी किसी भी रूप में लाकर रख देते हैं। हम तुरन्त समझ जाते हैं, ये अपने सम्बन्ध में इस तरह बताते जा रहे हैं। देखिये :—

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदिशैर्दिशे नमः ॥१-४६॥

उपर्युक्त में तीनों सन्ध्या में नमस्कार करने की बात आई है। सन्ध्या करने के पश्चात् हवन भी, जो ब्राह्मण का कर्म है, करते होंगे, देखिये—११वें का १४वां श्लोक तथा "तत्र नित्य विहितोपहूतिषु" (देखिये सर्ग १४ श्लोक ३०) फिर शास्त्र का अभ्यास दरबार से लौटने के पश्चात् करते होंगे। राज्याश्रय में हमने राजा के सिंहासन पर बैठकर सलाम, आशीर्वाद, मुजरा आदि लेने की बात कही है। महाकवि भी उस समय दरबार में आशीर्वाद देने अवश्य जाते होंगे अन्यथा ऐसा चित्र रखने में वे कैसे समर्थ होते ? दरबार से लौटने पर जहाँ वे अपना एक-दो घण्टे का उच्च पद वाला भी कार्य भी देख लेते होंगे, फिर घर पर आकर कुछ समय के लिए अध्ययन, अध्यापन भी चलाते रहे होंगे जिनसे शास्त्राभ्यास बना रहे। देखिये वे क्या कहते हैं :—

प्रमादभाजां मनसः शास्त्रमिवास्त्रमग्रपाणेः ।२०-३५॥

यह माघ की शास्त्राभ्यासशीलता का प्रमाण है।

संप्रदायविगमादुपेयुषीरेष नाशमविनाशिविग्रहः।
स्मर्तुमप्रतिहतस्मृतिः श्रुतीदत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः ॥१४-७९॥

उपर्युक्त श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रमपूर्वक अध्ययन, अध्यापन के न होने से विनष्ट होने वाली श्रुतियों का स्मरण रखने के लिए (वेदों के अध्ययन, अध्यापन के प्रवर्तन

के लिए) अत्रि के गोत्र में दत्त अर्थात् दत्तात्रेय नाम से क्या अवतार बताया है मानो इनके पिता दत्त ही यह कार्य करते थे और इसी बात को महाकवि माघ ने भी किया होगा। इस श्लोक में पिता का नाम "दत्त" स्पष्ट है और अत्रि गोत्र भी। पिता का नाम दत्तक लिख रहे हैं जो पूरा नाम है क्योंकि महाकवि माघ ने भी अपने को दत्तक सूनु लिखा है। फिर भी आधे नाम का प्रचार अधिक रहा होगा, प्रभावक चरित में भी सिद्धर्षि के प्रबन्ध के सम्बन्ध में लिखा है :—

आद्योदत्तः स्फुरद्वृतो द्वितीयश्च शुभंकरः ।।१२।।
दत्तवित्तोऽनुजीविभ्यो दत्तचित्त सुधर्मधी ।

प्रभावक चरित की "दत्त" वाली बात और श्लोक में इस रूप में दत्तात्रेय को जबर्दस्ती अवतारों में लाकर अपने पिता, अपने गोत्र और अध्ययन-अध्यापन की बात का माघ कवि ने चातुर्य से प्रदर्शन किया है। इससे और सिद्ध हो गया है कि माघ अत्रि गोत्र में उत्पन्न हुए ब्राह्मण थे। अस्तु माघ कवि के घर पर कुछ छात्र भी कवि के पिता के समय से ही रहते होंगे। पिताजी ने शास्त्राभ्यास इस रूप में रखा तो पुत्र ने भी ऐसा हीं किया होगा अथवा ग्रंथावलोकन में वह समय लगाया होगा।

मध्याह्नकाल में वे भोजन के पश्चात् कुछ विश्राम करके अपने राज-पद सम्बन्धी कार्य का सम्पादन करने के लिए राज-प्रासाद जाते होंगे अन्यथा घर पर रह कर ही शयन करते होंगे फिर तीसरे पहर चार या पाँच बजे काव्यगोष्ठी का आनन्द लूटते होंगे। तदनन्तर सायंकालिक नित्यकर्म, संध्या-पूजादि करके भोजनादि से निवृत्त हो अपने रंग महल के अन्तः-पुर में जाकर विनोदमयी बातों में, कार्यों में व लीलाओं में तल्लीन रहते होंगे। इन लीलाओं के चित्र तो इतने आये हैं कि जिनकी सीमा नहीं। अब ऐसे भी चित्र देखिये जिनमें माघ का घर उनकी वेश-भूषा, उनकी स्त्री की वेश-भूषा आदि बातों की जानकारी मिलेगी।

दधति परिपतन्त्यो जालवातायनेभ्यस्तरुणतपनभासो मंदिराभ्यन्तरेषु ।
प्रणयिषु वनितानां प्रातरिच्छत्सु गन्तुं कुपितमदनमुक्तोतप्तनाराचलीलाम् ।
(११-५०)

अर्थ—झरोखों की गलियों से होकर कमरों के भीतर प्रविष्ट होने वाली बालरवि की किरणों, प्रातःकाल बाहर जाने के इच्छुक रमणियों के प्रियतमों के ऊपर क्रुद्ध कामदेव द्वारा फेंके गये एवं तेज से जाज्वल्यमान बाणों की शोभाधारण कर रही हैं।

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर ज्ञात होता है कि माघ कवि का घर विशाल होगा जिसमें अन्तःपुर के प्रकोष्ठों के झरोखे होंगे और उन झरोखों में छोटी-छोटी ऐसी जालियाँ होंगी जिनमें से स्त्रियाँ बाहर की हलचल को देख सकें किन्तु बाहर वाले भीतर बैठे हुए व्यक्ति को न देख सकें। ऐसे घर में बैठकर वे विद्वानों तथा कवियों के साथ शास्त्र-चर्चा तथा कवि गोष्ठियों का आनन्द प्राप्त करते थे।

इनका घर क्या था वह तो एक राज-प्रासाद था जिसमें मरकत मणि, कांचन तथा

अन्य सुन्दर व मूल्यवान् प्रस्तर-खंडों व धातुओं से जटित प्रांगण थे। विशालकाय कक्ष तथा विश्राम-भवन, भोजनालय, काव्य-शास्त्र-संगीत-चित्रादि विद्याओं के लिए भी पृथक् रूप से व निराले कक्ष थे। माघ काव्य को देख लेने पर विश्वास होता है कि वास्तव में माघ कवि का निवास-स्थान एक अति सुन्दर राजभवन सा होगा जिसमें विभिन्न भाँति के पक्षी एक ओर कलरव कर रहे होंगे तो दूसरी ओर पशु-शाला में पशु भी बँधे रहते होंगे। घोड़े, ऊँट, हाथी, बैल आदि थे या नहीं यह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है किन्तु हाँ, इनके स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण उसने किया है जिसका वर्णन स्वभावोक्तियों में हमने कर दिया है। हो सकता है, राज-कर्मचारी तो माघ थे ही अतः नित्यप्रति घोड़ों, ऊँटों, हाथियों व बैलों को बैठते, उठते, भागते, सोते, चरते आदि रूपों में अन्य व्यक्तियों की भाँति नहीं, किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से प्रति वस्तु को देखने का उनका स्वभाव होगा। उन्होंने उन पशुओं को देखा होगा। वे संगीत-प्रेमी भी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि गायन की जानकारी वाली बातें उनने दिखलाई हैं जिनका वर्णन हमने उनकी बहुज्ञता में कर दिया है। पाठक उन बातों को वहाँ पर देखें। यहां केवल इतना सा लिख देना पर्याप्त होगा कि युवक माघ की रुचि प्रायः सभी विद्याओं को प्राप्त कर कवि की व्यावहारिकता को सीखने की ओर प्रत्येक वस्तु को उपेक्षित रूप में न लाकर ध्यानपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि के साथ देखने की ओर थी।

विद्वान् कहते हैं कि माघ, कवि पंडित, वास्तुकला-विशारद, संगीतशास्त्र में निपुण, कामशास्त्र के ज्ञाता, आयुर्वेद के पारखी, ज्योतिष के पंडित, काव्यांगों को जानने वाले, शकुनादि पर सैद्धान्तिक रूप में मनन करने वाले, महा वैयाकरण, पौराणिक पंडित थे और कवि थे किन्तु हमारा विचार है कि कवि ने पुराण और व्याकरण पर तो अवश्य ही आचार्यत्व प्राप्त किया होगा किन्तु अन्य बातों का ज्ञान उनको शास्त्राभ्यासादि से हुआ होगा और दूसरी बातें हमारे रातदिन के व्यवहार की थीं जिनको उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से देखा था। वास्तु, स्थापत्य और कामकला में नायिका भेद आदि को उन शास्त्रों की कसौटी पर कसना व्यर्थ है। ये बातें तो जैसी उन्होंने देखीं या भोगीं वैसी ही लिखी भी गई हैं। यह अवश्य कहना पड़ेगा कि उनका जीवन बहुत ही नियमबद्ध रहा होगा, जैसा हमने ऊपर (उत्थान से शयन तक के विषय में लिखा है।

उनके युवावस्था के कार्य संक्षेप में इस प्रकार लिखे जा सकते हैं।

(१) दैनिक कृत्यों का विधिवत् निष्ठापूर्वक सम्पादन।
(२) राज्यकार्य का उचित रीति से सम्पादन।
(३) नियमपूर्वक स्वाध्याय तथा काव्य रचना।
(४) विद्वानों तथा कवियों के साथ शास्त्र चर्चा एवं काव्यगोष्ठियों में भाग लेना।
(५) राजसभाओं में अपने पांडित्य का प्रदर्शन।
(६) लौकिक जीवन में यथावसर आनन्दोपभोग।
(७) देशाटन और स्थान-स्थान पर विद्वानों से शास्त्रार्थ आदि।

उस काल के बहुत राजाश्रयी विद्वानों की जीवनचर्या प्रायः इसी प्रकार की होती थी।

माघ की वृद्धावस्था

प्रबन्धचिन्तामणि में ज्योतिषियों ने दत्तक को कहा था कि माघ वैभवशाली होकर फिर दरिद्र हो जायगा और इसी रूप में दुःखी होकर वह पंचत्व को प्राप्त होगा। दत्तक ने देखा कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष की होती है अतः ३६००० गढे खोदकर उनमें इतना धन भाँडों में भर भर कर रख दिया कि आयुपर्यन्त समाप्त भी न हो, तो फिर वह निर्धन रूप में कैसे मर सकेगा। प्रभावक चरित इस बात के लिए मौन है किन्तु भोज प्रबन्ध में इतना उल्लेख अवश्य है कि माघ पंडित दरिद्रता का मारा हुआ राजा भोज के निकट अश्वय गया जहाँ से माघ पत्नी को प्रभूत धन प्राप्त हुआ किन्तु मार्ग में ही याचकों की भीड़ मिल जाने से जो कुछ भोज से प्राप्त हुआ था वह सब याचकों के निमित्त लग गया। माघ के निकट पहुँचते-पहुँचते कुछ भी शेष नहीं रहा। इस पर माघ के आलाप में एक बात यह भी है कि इस अकाल के समय में हम ब्राह्मणों से अनुष्ठान, यज्ञ आदि कौन करायेगा। मेरे मुख से दरिद्रता के मारे निषेध वाचक शब्द इन याचकों के आगे निकले, इससे पूर्व ही मेरे प्राणों, तुम शीघ्र ही निकल पड़ो।

माघ की युवावस्था तो बड़ी विविधताओं से संकुल है किन्तु उस जीवन में वह वैभवशाली अधिक रहा है। वैभव और प्रभुत्व के दिनों में कौन ऐसा है जो दुर्व्यसनी न रहा हो। माघ का जीवन भी प्रायः सभी क्षेत्रों को छूता रहा है। भोग के समय भोग, राग के समय राग, विद्वानों के सम्पर्क में ज्ञान-चर्चा क्रियाकाण्डों के समय[1] विधि चर्चा, विराग के समय ईश्वरभक्ति, ये सब उनके जीवन में मिलेगी।

उनका अन्तिमकाल जैसा कि कई बार कहा गया है सुखमय नहीं बीता। अर्थ कष्ट

---

१. संभवतः यज्ञ के आचार्य, माघ स्वयं बने होंगे अन्यथा विधिपूर्वक उद्गाता व होता के नाम लिखकर मंत्रोच्चारण की जानकारी कैसे प्रकट करते? देखिये—सप्तभेदकरकल्पित-स्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ। तत्रसूनृत गिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुपमध्यगीषत ।१४-२१।

शब्दितामनपशब्दमुच्चकै र्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजन धर्मिणोऽत्यजन्दद्रव्यजातमपदिश्यदेवताम् ।।१४-२०।।
संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते ::१४-२४।।

ग्रौर बीमारी दोनों को लेकर ही वे मरे।[1] भोज जैसे ग्राश्रयदाता भी उनको मरते समय की वेदना को नहीं बचा सके।[2]

वृद्धावस्था के प्रथम चरण में इन्होंने शिशुपालवध महाकाव्य को सम्पूर्ण किया। भगवद्भक्ति का जो स्वरूप इसमें प्रस्फुटित हुग्रा है वह उसके जीवन भर के ज्ञान ग्रौर ग्रनुभवों के निचोड़ के रूप में है। प्रसंगवश यहाँ यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि शिशुपालवध की रचना तीन कालों में विभक्त की जा सकती है—

(१) युवावस्था के ग्रारम्भकाल में प्रथम सर्गों की रचना।

(२) युवावस्था में तीसरे ग्रौर ग्राठवें सर्ग तक की रचना।

(३) प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था में शेष भाग की रचना।

युवावस्था की रचनाएँ प्राय: स्फुट रूप में थीं जिनको इन्होंने ग्रन्तिम समय से कुछ पूर्व ही क्रम बद्धता देकर महाकाव्य का ग्रंग बना दिया।

---

१. प्रबन्ध चिन्तामणि के ग्रनुसार उन्होंने पूरी १०० वर्ष की ग्रायु तो करली किन्तु कदाचित् इससे भी ग्रधिक १३६ वर्ष की इनने ग्रायु पाई हो। ज्योतिष सिद्धान्तानुसार १२० वर्ष वाला पूर्णायु होता है। माघ इससे भी ऊपर थे।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उनके ८४ वर्ष तक जीवित रहने के सम्मन्ध में संकेत मिलता है।

२. दैव के प्रतिकूल हो जाने पर ग्रनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते हैं। गिरते हुए सूर्य के ग्रवलम्ब के लिए उसकी एक सहस्र किरणें भी कुछ नहीं कर सकतीं।

माघ की सन्तति

महाकवि माघ की मृत्यु के पश्चात् उनके घर का नाम रखने वाला उनकी एकमात्र पुत्री के अतिरिक्त कोई न था। शिशुपालवध महाकाव्य को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उनके एक से अधिक सन्तति हुई थी। भले ही पुत्रियाँ अधिक हुई हों फिर भी एक पुत्र भी था। इस महाकाव्य में बाल लीला के कुछ प्रसंग आये हैं जिनसे ऊपर के अनुमान को पुष्टि मिलती है। वे प्रसंग निम्नलिखित हैं—

उदयशिखरिशृंगप्रांगणेष्वेष रिङ्खन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः।
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ।।११-४७।।

अर्थ—यह बाल रवि विन्ध्याचल की चोटियों रूपी प्रांगण में घूमता हुआ पद्मिनियों द्वारा कमल रूपी मुख के हास्य के साथ देखा जाता हुआ मानो पक्षियों के कलरव में बुलाती हुई अपनी माता (प्राची दिशीय आकाश) की गोद में अपने कोमल करों के अग्रभाग को फैलाता हुआ लीलापूर्वक हँसते डोलते चला जा रहा है।

कैसा रूपक बाँधा है। बालक भी इसी भाँति घर के आँगन में घुटनों के बल इधर-उधर जब हँसता हुआ भागता है तब उसकी माता बार-बार उसको पुकार-पुकार कर बुलाती है और फिर बालिक अपने कोमल हाथों को जब आगे बढ़ाता है तब माता उसको गोद में ले लेती है।

इस दृश्य को देखते हुए महाकवि माघ के चाहे पुत्र हो चाहे पुत्री कोई न कोई अवश्य होना चाहिए जिसकी बाल लीला का अनुभव उसने घर में रहते हुए अवश्य किया है जिसका सजीव चित्रण उपर्युक्त है।

इसने अपनी पुत्री का विवाह किया होगा जिसका रूपचित्र देख लीजिये—

रथाङ्गभर्त्रेभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिरबबन्ध ।।३-३६।।

अर्थ—पिता की भाँति समुद्र श्रेष्ठ भगवान् श्री कृष्ण को (पक्ष में जामाता को) तुरन्त दी गई अपने अंक में (समीप में या गोद में) विराजमान उस द्वारकापुरी के कण्ठ में (समीप में) स्नेहवश बारम्बार रत्नों की पालिका चारों ओर से बाँध देता था।

जामाता को अपनी पुत्री जब पिता दे देता है तब पिता अपनी कन्या के कण्ठ में प्रेमवश रत्नावली बाँधता है। इस रूप में यह कन्यादान प्रथा का निर्वाह हुआ। इसके सामने ही कदाचित् जामाता का देहान्त भी हो गया हो और उसी के साथ इसकी पुत्री सतीत्व धर्म का पालन करते हुए सती हो गई हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। माघ के कन्या थी इसका प्रमाण पाठकों के सम्मुख उसी बाल सूर्य वाले पुत्र के तुल्य देते हुए इसके सती होने का प्रमाण रखेंगे, देखिये—

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी :
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसंध्या सुतेव ॥
। ११-४० ॥

अर्थ—लाल कमलों की पंक्ति रूपी सुन्दर हथेलियों एवं पदतलों से युक्त अनेक भ्रमर पंक्तिरूपी कज्जल से सुशोभित, नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली तथा पक्षियों के कलरव में बातें करती यह प्रभात काल की संध्या थोड़े दिनों की कन्या की भाँति अपनी माता रजनी के पीछे-पीछे दौड़ने लगी है।

कैसा सुन्दर एक छोटी-सी बालिका का यह यथावत् चित्रण है और उपमा भी तो वैसी ही सुन्दर बन पड़ी है। यह है आत्मकथा का चित्र और यह है विद्वता का माद्दा, जिसने शब्दों और भावों में एक चित्रकार की भाँति सुन्दर रंगीन दृश्य उपस्थित किया है। एक पुत्री का पिता जो भुक्तभोगी हो जिसने घर में बालक बालिकाओं के होने, खेलने बोलने के दृश्य देखे हों वह ही ऐसे रूप चित्र उपस्थित कर सकता है। इससे तो इस बात की पूर्ण पुष्टि होती है कि उनके बालिका भी थी और इससे ऊपर के श्लोक के भाव इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि पुत्री का विबाह भी हुआ था। एक और कन्या के विवाह के पश्चात् पति के घर पर जाने का दृश्य देखिये—

अपशंकमंक परिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ॥ ४-४७ ॥

कैसा करुणोत्पादक दृश्य है। ऋषिकण्व का दृश्य उपस्थित हो रहा है। माघ पक्षियों के कलरव के रूप में रुदन कर रहे हैं। अब जामाता की मृत्यु व पुत्री के सती हो जाने का दृश्य भी देख लीजिये—

अभितिग्मरश्मिचिरमाविरमादवधानखिन्नमनिमेषतया।
विगलन्मधुव्रतकुलाश्रुजलं न्यमिमीलदब्जनयनं नलिनी ॥ ९-११ ॥

अर्थ—कमलिनी सूर्य के आकाश मण्डल में सुशोभित होने पर चिरकाल तक उनकी ओर एक टक निहारती रही। किन्तु सूर्य के अस्त हो जाने पर उसने अत्यन्त खिन्न होकर भ्रमर समूह रूपी आँसू बहाते हुए अपने कमल नेत्रों को बन्द कर लिये।

जामाता ने भी एक अच्छी आयु प्राप्त की। वह युवावस्था का पूर्ण उपभोग कर ६०

या ६५ वर्ष की अवस्था मे मृत्यु को प्राप्त हुआ तब कमलिनी रूपी स्त्री अति दुखी अवस्था मे उसी के पीछे रोती-रोती अन्ततोगत्वा मर गई ।

दूसरा दृश्य पूर्णरूप मे सती हो जाने का है, देखिये—

रुचिधाम्नि भर्तरि भृशविमला: परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलन त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ।। ६-१३ ।।

अर्थ—तेजोनिधान पति सूर्य के परलोक चले जाने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर उसकी निर्मल प्रभावशाली कान्तियाँ अर्थात् किरणे अग्नि मे प्रविष्ट हो गयी अन्यथा (अग्नि मे प्रविष्ट न होने अर्थात् सती न होने पर) दूसरे जन्म मे वही सूर्य पति रूप मे उन्हे किस प्रकार मिल सकता था ।

शिशुपालवध महाकाव्य मे, जो वृद्धावस्था मे समाप्त किया हुआ प्रतीत हो रहा है ऐसा सकेत नही मिलता जिससे पता चले कि कवि के कोई बच्चा (पुत्र) जीवित रहा था और वह उनकी वृद्धावस्था का एक मात्र सहारा था ।

प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रभावक चरित व भोज प्रबन्ध भी इस ओर मौन है । हाँ, भोज-प्रबन्ध तथा प्रबन्ध चिन्तामणि इस बात की ओर अवश्य सकेत कर रहे है कि माघ ने अपनी धर्म पत्नी को राजा भोज के निकट एक श्लोक "कुमुदवनमपश्रि" अथवा शिशुपालवध काव्य ही देकर भेजा और अपनी दयनीय दशा का भी वर्णन प्रतिहार द्वारा करवाया । राजा भोज ने श्लोक को देखते ही माघ पत्नी को पर्याप्त धन देकर भेज दिया और दूसरे प्रात. माघ से साक्षात्कार करने का वचन दिया । माघ पत्नी धन लेकर गई, किन्तु मार्ग मे ही याचको से माघ कवि के दान की प्रशसा सुनकर सब धन उन्ही को दे दिया ।

अत: निष्कर्ष-रूप में हम यह कह सकते है कि अन्तिम समय मे महाकवि को सहारा देने व वश की रक्षा करने वाली कोई भी सतति जीवित न रही ।

माघ की धर्म-चतना

शिशुपाल वध काव्य का पाठक निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता कि महाकवि माघ का धर्म क्या था, वे किसके उपासक रहे होंगे, और उनकी धार्मिक भावना किस प्रकार की रही होगी ? किसी निश्चय पर न पहुँच सकने के कारण नीचे लिखे हैं।

एक ओर शिशुपालवध महाकाव्य में उन्होंने विष्णु के अवतार की प्रशंसा अथवा स्तुति करके यह प्रमाणित किया है कि वे विष्णु के पूर्ण भक्त थे तो दूसरी ओर उनके सूर्योपासक होने का संकेत भी मिलता है। सूर्य मन्दिर के पुण्यलाभ को उन्होंने प्राप्त किया था। इसी तरह स्थान-स्थान पर वे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में अपनी पूर्ण श्रद्धा प्रकट करते हैं। साथ ही प्रति सर्ग के अन्त में "श्री" शब्द का प्रयोग और श्रीमाल नगर की भाग्यश्री खीमेलमाता की पूजा से देवी के उपासक भी प्रतीत होते हैं और अन्यत्र शिव को नाना रूपों में चित्रित करके वे शिव भक्त के रूप में भी हमारे सम्मुख आते हैं। नीचे लिखे उद्धरणों से इस बात की पुष्टि होती है।

१—विष्णु भक्ति सम्बन्धी उद्धरण—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भांगभुवंमुनिंहरिः ॥ १-१ ॥
तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥ १-१४ ॥
उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कंथचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥ १-३३ ॥
निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतांछादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥ १-३४ ॥

उपर्युक्त श्लोकों में विष्णु के आदि पुरुष का और पुराण पुरुषत्व का निर्देश है। ऐसा करके महाकवि ने भगवान् विष्णु (अवतार रूप में कृष्ण) के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है। अन्यत्र भी कई स्थलों पर विष्णु के अवतारों का वर्णन हुआ है। नारद के द्वारा की गई स्तुति के व्याज से माघ ने भगवान् विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है।

सूर्य-भक्ति-भावना का आधार—

अन्यत्र भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ के सूर्य भक्त होने के सम्बन्ध में भी संकेत प्राप्त होते हैं। यों शिशुपालवध महाकाव्य में इस प्रकार का संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होता तथापि जैसा कि सर्व विदित है शाकद्वपीय ब्राह्मण मूलतः सूर्यपासक रहे हैं, सूर्योपासना उनकी कुल-परिपाटी के रूप में रही है और जहाँ तक माघ का सम्बन्ध है प्रबन्ध-चिन्तामणि के प्रमाणों के अनुसार राजा भोज द्वारा महाकवि माघ को (जगत्स्वामी) सूर्य मंदिर का पुण्य लाभ प्राप्त हुआ जो महाकवि के सूर्योपासक होने का द्योतक है।

बौद्ध सिद्धान्तों के प्रति आस्था दिखाने वाले चित्र—

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपंचकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम् ॥ २-२८ ॥

उपर्युक्त में एक बौद्ध शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करता। वह शरीर को पाँच स्कन्धों में मुक्त मानता है १—रूप, २—वेदना, ३—विज्ञान, ४—संज्ञा, ५—संस्कार।

इस श्लोक से महाकवि माघ का बौद्ध धर्म से प्रभावित होना स्पष्ट विदित होता है। क्यों न हो, उनके पितामह सुप्रभदेव के वाक्य बुद्ध के उपदेश की भाँति मानकर राजा वर्मलात उन उपदेशों को बिना किसी संकोच के स्वीकार करते हैं। देखिये—

कालेमितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः।
बिनानुरोधात् स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥ २ ॥

(कवि वंश वर्णन)

उपर्युक्त श्लोकों से प्रतीत हो रहा है कि माघ उस युग की देन है जब बौद्ध धर्म लुप्त तो हो रहा था किन्तु इस धर्म को जानने के प्रति कुछ मनुष्यों की आस्था अवश्य थी। हमने यह बात प्रभावक चरित में सिद्धर्षि के प्रबन्ध में अवश्य देखी है कि माघ कवि का चचेरा भाई शुभंकर का पुत्र सिद्ध जब जैन हो जाता है उस समय उसके हृदय में जैन धर्म को ग्रहण करने के प्रति इतनी उत्कंठा नहीं थी जितना औत्सुक्य उसने बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के लिए बताया। यह भावना क्यों? कदाचित् उसके पितामह के भाव उस धर्म के प्रति अधिक होंगे, उन्हीं संस्कारों का प्रभाव 'सिद्ध' पर होना स्वाभाविक था। यही बात माघ के लिए भी कही जा सकती है। देखिए, एक स्थान पर हरि (श्री कृष्ण) को बुद्ध भगवान् ही बता दिया है और शिशुपाल पक्षीय राजाओं को काम की सेना।

इतितत्तदा विकृतरूपमभजत्तदविभिन्न चेतसम्।
मारबलमिव भयंकरतां हरिबोधिसत्वमभि राजमंडलम् ॥ १५-५८ ॥

अर्थ—इस भाँति उस समय क्रोध से भीषण आकृति वाले वे सब शिशुपाल पक्ष के राजा कामदेव की सेना की भाँति विकार रहित चित्त वाले भगवान् श्री कृष्ण जी बोधिसत्व के सम्मुख अत्यन्त क्रोधित हो गये।

नागानन्द नाटक, जो महाराज हर्ष (६०६ ई० से ६४७ ई०) द्वारा रचित है, में भी इससे मिलते-जुलते अर्थ वाले निम्नलिखित श्लोक को देखिए—

कामेनाकृष्य चापं हतपटुपटहावल्गिभिर्मारवीरै :
भ्रूभंगोत्कंपजृंभास्मितचलितदृशा दिव्यनारीजनेन ।
सिद्धै: प्रह्वोत्तमांगै: पुलकितवपुषा विस्मयाद्वासवेन
ध्यायन् बोधेरवाप्तावचलित इति व: पातु दृष्टो मुनीन्द्र: । अं, १-२ ।

अर्थात् जिन भगवान् बुद्ध को कामदेव अपना बाण खींचकर देख रहा है, उसके वीर योद्धागण जोर से बाजा बजाते हुए जिनके सामने कूद फांद मचा रहे हैं, अप्सरागण भ्रू विलास, कम्प, जम्हाई और मुस्कराहट से चंचल हुए अपने नेत्रों से जिन्हें देख रही हैं, अपने मस्तक को झुका कर सिद्धगण जिनका दर्शन कर रहे हैं, तत्वज्ञान को प्राप्त करने के लिए दत्तचित्त होकर ध्यान में संलग्न मुनियों में श्रेष्ठ वे ही बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें। उपर्युक्त श्लोक में बुद्ध भगवान् की एकाग्र चित्तता है और विभिन्न मनोवृत्तियाँ काम की सेना हैं।

इस श्लोक को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ ने नागानन्द नाटक को भी शास्त्राभ्यास वा ग्रन्थावलोकन के समय देखा है अन्यथा ये वैसे ही भाव अपने छोटे से श्लोक की दो पंक्तियों में उठाकर उपमा के रूप में रखने में कैसे समर्थ हो सकते थे ? हरि को बोधिसत्व का रूप देना कवि का बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट करना है। बौद्ध धर्म की ओर संकेत करने वाले एक श्लोक को और देख लीजिये जिसमें स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण को बुद्ध ही कह दिया है, देखिये—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिन: ।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुव: सरुधिरा जिन: ॥१९-११२॥

अर्थ—भगवान् बुद्ध का अवतार धारण करने वाले (श्रीराम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री लिखते हैं कि "जिन" अर्थात् महावीर स्वामी का अवतार धारण करने वाले) श्रीकृष्ण ने शत्रु-पक्ष की उस सेना की, जो भयंकर अस्त्र-शास्त्रों से सुसज्जित थी, ध्वजा-पताकाएँ जहाँ फहरा रही थीं और जिसने भयंकर युद्ध करके दिखला दिये थे, भूमि को लोहू से सींच दिया।

उपर्युक्त श्लोक में "जिन:" शब्द पर विचार है। कोई इसे बुद्ध के लिए लेते हैं तो कोई महावीर स्वामी के लिए, वल्लभदेव "जयतीति जिन:" कह रहे हैं, मल्लिनाथ अवतारान्तर नाम्ना उपदेश कर रहे हैं। नागानन्द नाटक के प्रथम अंक के प्रथम श्लोक में "बौधो जिन: पातु व:" स्पष्ट है। वहाँ पर "जानातीति जिन: सर्वज्ञ: बुद्ध:" का अर्थ है। अमरकोषकार ने "सर्वज्ञ: सुगतो बुद्धो धर्मराजो तथागत:" कहकर सर्वज्ञ शब्द के अर्थ माना है। बुद्ध भी अवतारों में माने जा रहे हैं अत: इन सबको देख लेने पर हम जिन: शब्द का अर्थ प्रसंगानुसार बुद्ध के लिए प्रयुक्त हुआ ही मानेंगे।

शिव-भक्ति के कुछ चित्र—

अच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकंर्गा—
माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालश्रृंगम् ।

मूर्ध्निस्खलत्तुहिनदीधितिकोटिमेन,
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम् ।।४-१६।।

उपर्युक्त श्लोक में नगराज रैवतक को कैलाशपति शंकर का रूप दिया है। उस नगपति रैवतक (शंकर) को देखकर कौन आश्चर्य में नहीं पड़ेगा।

उच्चै र्महारजतराजिविराजितासौ,
दुर्वर्णभित्तिरि‍ह सान्द्रसुधासवर्णा।
अभ्येति भस्मपरिपाण्डुरितस्मरारे,
रुद्वह्निलोचनललामललाटलीलाम् ।।४-२८।।

इस श्लोक में भी रैवतक पर्वत की सफेद दीवार को जो सुवर्ण की रेखा से सुशोभित है भगवान् त्रिनेत्र शंकर की भाँति दिखाकर शिव का स्मरण किया है।

प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि,
सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते।
सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति,
न द्वन्द्वदुःखमिह किंचिदकिञ्चनोऽपि ।।४-६४।।

उपर्युक्त श्लोक में कहना तो केवल इतना ही था कि रैवतक पर्वत पर न तो अधिक शीत और न अधिक गर्मी ही पड़ती है फिर भी यहाँ हिमालय निवासी गजचर्मधारी शिव का माघ ने इस रूप में स्मरण कर ही किया।

नवनगवनलेखाश्याममध्याभिराभिः स्फटिककटकभूमिर्नाटयत्येष शैलः।
अहिपरिकरभाजो भास्मनैरङ्गरागैरधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम् ।।६५।।

उपर्युक्त श्लोक में भी त्रिशूलपाणि शंकर को दूसरे रूप में स्मरण कर दिया है।
नवें सर्ग में—

कलया तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम्।
क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनं गणाधिपतिमूर्तिरिति ।।६-२७।।

यहाँ पर आकाश को महादेव की मूर्ति के रूप में स्मरण किया—

नवचन्द्रिकाकुसुमकीर्णतमः कबरीभृतो मलयजार्द्रमिव।
ददृशे ललाट-तटहारि हरेर्हरितो मुखे तुहिनरश्मिदलम् ।।६-२८।।

इसमें पूर्व दिशा का मुख शिव के रूप में प्रदर्शित किया है।
चौदहवें सर्ग में—

आननेन शशिनः कलां दधद्दर्शनक्षयितकामविग्रहः।
आप्लुतः स विमलैर्जलै रभूदष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी ।।१४-१८।।

अष्ट मूर्तिधारी शंकर का रूप उपस्थित कर शिव की आठवीं मूर्ति (यजमान) को

स्मरण किया है। यजमान बनाने के लिए शिव को इस रूप में स्मरण करना यह एक आश्चर्य की बात है।

बारहवें और तेरहवें सर्गों में—

व्यक्तं बलीयान्यदि हेतुरागमादपूरयत्सा जलधिं न जाह्नवी।
गाङ्गौघनिर्भस्मितशंभुकंधरासवर्णमर्णः कथमन्यास्य तत् ।।१२-६६।।

उपर्युक्त में यमुना का जल नीला है इसके लिए शिव को स्मरण कर लिया जिसका कंठ नीले रंग का है।

रथमास्थितस्य च पुराभिवर्तिनस्तिसृणां पुरामिव रिपोर्मुरद्विषः।
अथधर्ममूर्तिरनुरागभावितः स्वयमादित प्रवयणं प्रजापतिः ।।१३-१९।।

उपर्युक्त में श्रीकृष्ण रथ पर बैठ गये फिर युधिष्ठिर ने घोड़ों की लगाम को क्या पकड़ा मानो ब्रह्मा ने शंकर के घोड़ों की लगामों को पकड़ा इस रूप में यहाँ पर त्रिपुरासुर के ऊपर आक्रमण करने वाले शिव को स्मरण किया।

अब नीचे दिये १६वें सर्ग के ४६वें श्लोक में तो स्पष्ट रूप में ही शिव को विष्णु से भी ऊँचा मान कर अपनी शिव की ओर प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया है, देखिये—

क्रियतेधवलः खलूच्चकैर्धवलैरेव सितेतरैरधः।
शिरसौघमधत्त शंकरः सुरसिन्धोर्मधुजितमङ्घ्रिणा ।।१६-४६।।

अर्थ—निर्मल को निर्मल व्यक्ति ही ऊँचा उठाते हैं और मलिन लोग तो उसे नीचा ही दिखाते हैं। (धवल शरीर) शंकर जी गंगा (की धवल धारा) को तो शिर पर धारण करते हैं। किन्तु मलिन अर्थात् नील कान्तिवाले विष्णु उसे चरण में धारण करते हैं।

इस श्लोक में तो शिव को श्रेष्ठ बता दिया है और विष्णु को नीचा गिरा दिया है। तो क्या माघ शिव के उपासक थे विष्णु के नहीं? श्री कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। जब-जब भी पृथ्वी पर अधर्म से अन्धकार आने लगा है तब-तब विष्णु ने विभिन्न रूपों में अवतार लिया है ऐसा पुराणों में आया है। महाकवि माघ एक अच्छे पौराणिक थे।

भक्ति के इन विभिन्न केन्द्र बिन्दुओं को देखकर महाकवि माघ की भक्ति का स्वरूप समन्वयात्मक निश्चित होता है। उस समय जितने धर्म प्रचलित थे उन सभी धर्मों की कल्याणकारीता में उनका विश्वास था। इसी लिए उन्होंने किसी एक धर्म की अत्यधिक निन्दा नहीं की, प्रत्युत जिस धर्म की जो बात उन्हें अच्छी लगी उसे आस्थापूर्वक लिखा। वैसे माघ सनातनी मूर्तिपूजक हिन्दू थे। शिव, विष्णु, सूर्य आदि सब की उपासना वे करते थे।

माघ की रचनाएं

महाकवि माघ की जीवन-सम्बन्धी इतनी बातों को लिखने के पश्चात् अब हम उनके द्वारा विरचित महाकाव्य शिशुपालवध के विषय में कुछ लिखेंगे। इससे पूर्व हमको यह निर्धारित करना है कि क्या माघ जैसे महापंडित एवं विद्वान् कवि ने केवल एक ही ग्रन्थ की रचना की ? जिसकी आयु इतनी लम्बी हो, जिसको वैभव प्राप्त हो, और इन सबके ऊपर जिसमें यश प्राप्त करने की उत्कट भूख हो, क्या ऐसा कवि केवल एक ही काव्य की रचना करके शान्त रह सकता है ? हम शिशुपालवध महाकाव्य के अतिरिक्त माघ के नाम से अन्य श्लोकों को भी सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, औचित्य विचार चर्चा, जीवनवार्ता आदि ग्रन्थों व पुस्तिकाओं में उद्धृत देखते हैं इससे यह अनुमान होता है कि माघ ने शिशुपाल वध महाकाव्य के अतिरिक्त किसी और ग्रंथ की भी रचना की है जो आज तक भी प्राप्त नहीं हो सका है। किसी ने उसके लिए कोई प्रयास ही नहीं किया अथवा स्वतः ही वे ग्रंथ नष्ट-भ्रष्ट हो गये अथवा अज्ञानावस्था में नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये हों। हो सकता है कि उसने लक्षण ग्रंथ लिखे हों और उनकी भी वही अवस्था हुई हो जो अन्य कवियों के ग्रंथों की हुई है। मुसलमानों के हाथों में पढ़कर हम्मामको गर्म करने के लिए जला दिये गये हों। यह भी हो सकता है कि उन्होंने केवल स्फुट रचनाएं ही लिखी हों और प्रबन्ध काव्य के रूप में केवल शिशुपालवध महाकाव्य ही लिखा हो।

धारा नगरी के महाराज भोज तक काव्य-ग्रंथों का, लक्षण-ग्रंथों का, नाटकों एवं गद्य-ग्रंथों का महान् आदर रहा क्योंकि राजा स्वयं कवि, आलोचक एवं लेखक व गुण-ग्राहक था, अतः जो ग्रंथ प्रकाश में न थे वे भी उसके समय में प्रकाश में लाये गये थे। महाराज भोज ११वीं शताब्दी में हुए थे। धर्म का नाश करने वाले, ग्रंथों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, हिन्दू धर्म को नष्ट कर इस्लाम धर्म का प्रचार करने वाले मुसलमानों का भारत में आगमन हिन्दू साहित्य व धर्म को नष्ट करने वाला था। अतः हो सकता है कि माघ कवि की अन्य रचनाएं भी नष्ट कर दी हों, जला दी गई हों वा गाड़ दी गयी हों। किन्तु यह बात तो शिशुपालवध पर भी घटित की जा सकती है। माघकाव्य कैसे बच रहा जबकि अन्य ग्रंथ नष्ट कर दिये गये। जो श्लोक अन्यत्र मिलते हैं उनके सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि ये बिखरे हुए श्लोक माघ काव्य से अतिरिक्त ग्रंथों से उद्धृत हैं जिनको माघ ने बनाये थे और अपने मूल-रूप में जो आज अप्राप्य हैं। सुभाषित रत्न भाण्डागारम् में ये श्लोक माघ के नाम से मिलते हैं।

अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्नसंकुचति दुर्ललितं मनो मे ।
यांचा च लाघव करी स्ववधे च पापम्,
प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलंबितेन ।।पृष्ठ ६६ श्लोक ५०''
अविरतमविरामारागिणां सर्वरात्रं
नवनिधुवनलीलाः कौतुके नाभिवीक्ष्य ।
इदमुदवसितानामस्फुटालोक संपत्
नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैपपर्चिः ।।३३८-२०।।

असंशयं न्यस्तमुपान्तरक्ततां यदेव रोद्धुं रमणीभिरंजनम् ।
इतेऽपि तस्मिन् सलिलेन शुक्लतां निरास रागो नयनेषु न श्रियम् ।।३५३-८०।।
ग्रीष्मवर्णनम्

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषुच ।
कल्याणवचनं ब्रूयादपृष्टोऽपि हितो नरः ।।१७०-४८४।। सामान्य नीतिः
इहलोकेऽपि धनिनां परोऽपि स्वजनायते
स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणःदुर्जनायते ।।६८-३।। दरिद्र निन्दा
तेजोहीने महीपाले स्वे परेच विकुर्वते ।
निःशंको हि जनो धते पदं भस्मन्यनूष्मणि ।।८२-१०।। तेजस्वी प्रशंसा

प्राप्यते गुणवतापिगुणानां व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः ।
तत्तथा हि दयिताननदत्तं व्यानशे मधु रसातिशयेन ।।३३०-५०।।पानगोष्ठि वर्णनम् ।
भुवनोदरेषु परिमन्दतया शयितोऽलसः स्फटिकयष्टिरुचः ।
अवलंब्य जालकमुखोपगतानुदतिष्ठदिन्दु किरणान्मदनः ।।३१४-६४।।

चन्द्रोदय वर्णनम्

मा गमन्मदविमूढधियो नः प्रोज्मय रन्तुमिति शंकितनाथाः ।
योषितां न मदिरां भृशमीषुः प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि ।।३३०-६२।।
यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसि ततदकुर्वन् ।
आनुकूलिकतया हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ।।३३३-२२।।

सुरतकेलिकथनम्

शिरसि देवनदीं पुरवैरिणः सपदि वीक्ष्य धराधरकन्यका ।
निविडमानवती रमणांगके क्वचन चुम्बनमारभते स्म सा ।।१९८-७५।। कूटानि
समयज्ञानार्थवतः प्रतिरूपानन्वशे स्थितान् ।
पतीनां तटमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम् ।।३६५-४३।। स्त्री स्वभावनिन्दा

क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा में यह श्लोक माघ नाम से है—

बुभुक्षितै र्व्याकरणं न भुज्यते पिपासतैः काव्यरसो न पीयते ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ।।

सुभाषितावलि में माघ नाम से नीचे लिखे श्लोक हैं—

नारी नितम्बफलके प्रतिबध्यमाना हंसीव हेमरशना मधुरं ररास ।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसाश्चक्रन्दुरार्तमुखरे चरणावलग्नाः ।।

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
माश्रौषंजगति श्रुतस्य विफल क्लेशस्य नामाऽप्यहम् ।।

शौर्यं वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा ।
येनैकेन बिना गुणास्तृणसमाःप्रायाः समस्ता अमी ।।

उपर्युक्त इन श्लोकों में नीचे का दूसरा श्लोक भर्तृहरि के नीति शतक में भी उद्धृत है।—

जीवन वार्ता में भी माघनाम का एक श्लोक उद्धृत है—

उपचरित्रव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम् ।
यास्तेषां स्वैर कथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि ।।

इन उपर्युक्त समस्त श्लोकों के अतिरिक्त महाकवि माघ से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे भी श्लोक हैं जो भोजप्रबन्ध और प्रबन्धचिंतामणि में माघ के मुख से कहलाये गये हैं। पाठक, उनको यथास्थान देखें किन्तु "अर्था न सन्ति न च मुंचति" वाला श्लोक तो सुभाषित रत्न भाण्डागारम् में भी लिखा हुआ है।

सुभाषित रत्नभाण्डागारम् में प्रभातवर्णनम् तथा चन्द्रोदयवर्णनम् के श्लोक तो शिशुपालवध के ही हैं केवल कुछ पाठान्तर हैं अन्यथा माघ काव्य के ही लिए हुए हैं उनके अतिरिक्त जो श्लोक हैं उनकी भाषा तथा शब्दावली को देखते हुए कोई कह नहीं सकते कि ये माघ रचित नहीं है किन्तु हमने ऐसा भी देखा है कि बहुत से कवियों की भाषा, शब्दावलि एवं वाक्य विन्यास तक परस्पर में ऐसे मिले जुले रहते हैं कि कह नहीं सकते कि यह श्लोक अमुक है अथवा अमुक का नहीं। हिन्दी में बिहारी के दोहे व दुलारे दोहावली में भी कैसा साम्य है इसी भाँति बिना गूढ़ बात तक पहुंचे हुए यह कहना अति कठिन है कि ये श्लोक महाकवि माघ निर्मित नहीं किसी अन्य कवि के हैं जिसने अपना नाम भी पीछे के समय में माघ रख दिया हो और उन्हीं के स्फुट श्लोकों में उद्धृत कर लिये गए हों। पर अभी तक माघ नाम के दूसरे कवि का पता नहीं लग पाया है। इस भाँति मिले हुए अन्य श्लोक भी हैं क्योंकि अभी अभी हमारे हाथ में दैववश 'जीवनवार्ता' स्व श्री कालूरामजी तिवाड़ी हमीरगढ़ (मेवाड़) की

प्राप्त हुई उसमें मेरे पितृव्य पुत्र राजगुरु श्री मदन मोहनजी[1] शाहपुरा (मेवाड़) ने प्रथम ही जिस श्लोक को उद्धृत कर उसको महाकवि नाम का विरचित वताया कुछ दिनों तक उस श्लोक ने मुझ अन्वेषक को असमंजस में डाल दिया। सारा शिशुपालवध देख डाला गया और भी तत्सम्बन्धी अन्य ग्रंथ देखे गये। किन्तु उस श्लोक का कोई चिह्न तक नहीं मिला। अन्त में सुभाषित रत्नभाण्डागारम् में माघ सम्बन्धी श्लोकों की सूची देखी किन्तु वहाँ पर भी हताश ही होना पड़ा। इच्छा हुई कि लेखक तो इसी युग के और इसी समय के हैं कोई दूर की तो बात नहीं अत: इनसे प्रत्यक्षीकरण कर लेने पर विदित हुआ कि उन्होंने इस श्लोक को सुभाषितरत्नभाण्डागारम् से उद्धृत किया है। फिर मैंने सुभाषित रत्नभाण्डागारम् ग्रंथ की सूची देखी जिससे ज्ञात हुआ कि वह श्लोक तो सज्जनों की प्रशंसा में दिया गया है और किसी अन्य कवि का है जिसका उसमें नाम नहीं है किन्तु माघ का नहीं। उसके ऊपर का श्लोक अवश्य माघ का है अत: लेखक महोदय ने इस श्लोक को भी माघविरचित करके उद्धृत कर दिया है अत: निष्कर्ष निकला कि हो सकता है ऐसी ही भूल दूसरों ने श्लोकों के सम्बन्ध में भी कदाचित् की हो और सुभाषित रत्नभाण्डागारम् के लेखक ने ऐसे श्लोकों को एकत्र किया होगा तो जैसा उनको ज्ञात हुआ होगा उसी के अनुसार वे तत्सम्बन्धी कवि का नाम लिखते गये और जहाँ किसी कवि का नाम नहीं मिला वहाँ वैसे ही उनको रख दिया।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि महाकवि ने अपने जीवन में कदाचित एक ही ग्रन्थ की रचना की थी और वह रचना माघ काव्य है, अन्य श्लोक तो फुटकर हैं जिनमें कुछ तो माघ के हो सकते हैं और कुछ नहीं।

---

१. षट्शास्त्री 'वीर तरंगरंग' काव्य के रचयिता स्व० पं० यमुनादत्त जी शर्मा राजगुरु के कनिष्ठ भ्राता दामोदर जी व जगन्नाथजी थे। मदनमोहन जी इन्हीं दामोदरजी के कनिष्ठ पुत्र हैं जिनको यमुना दत्त जी ने दत्तक रूप में पुत्र स्वीकार किया। जगन्नाथ जी के भानुदत्त जी व इस ग्रन्थ के लेखक मनमोहन हैं।

महाकवि माघ की संक्षिप्त जीवनी
तथा
उनका व्यक्तित्व

इस बात का पहले ही उल्लेख हो चुका है कि प्राचीन कवि जो कुछ लिखते थे उस पर अपने स्वयं के विषय में वे प्रायः मौन ही रहते थे। कोई-कोई कवि ऐसे अवश्य हुए हैं जिन्होंने प्रशस्ति के रूप में चार पाँच श्लोकों में वंश वर्णन कर दिया है। अथवा गूढ़ रूप में अपना तथा अपने ग्रन्थ आदि का नाम भी उल्लिखित कर दिया है। महाकवि माघ ऐसे कवियों में से एक हैं।

माघ की जीवनी तैयार करने में हमें जिन बातों से सहायता मिली वे ये हैं—मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि के द्वारा लेखक जो चित्र प्रस्तुत करता है वे सब समाज की संपति हैं। जिस समाज में वह रहता है उससे प्रभावित होता है। इस प्रतिबिंबित रूप में कवि का व्यक्तित्व भी समाविष्ट होता है। संक्षेप में कविता में वर्णनीय भावों के रूप में जब वह ग्रन्थ प्रस्तुत करता हैं तब कवि या लेखक का चरित्र बन जाता है। उस ग्रंथ में वृत्त, समकालिक समाज और कवि का व्यक्तित्व तीनों समाये होते हैं।

महाकवि माघ ने भी एक प्रशस्ति लिखी और १९वें सर्ग के अन्त में इस प्रशस्ति में गूढ़ रूप से अपना नाम रखा। इस प्रशस्ति का उद्देश्य माघ के पिता, पितामह आदि के नाम देना तथा उनके कार्यों के सम्बन्ध में संकेत करना था। अपने काव्य में अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध संकेत भी यत्र तत्र दिये हैं। अन्य व्यक्तियों ने भी अपने ग्रन्थों, प्रबन्ध, कथाओं आदि में माघ के सम्बन्ध में कुछ लिखा। इन सबसे माघ की जीवनी लिख सकने में बड़ी सहायता मिली है।

माघ की जीवनी—

अर्वुदाचल के अतिनिकट सिरोही राज्य है। उसी के समीप भीनमाल एक तहसील है जो राजस्थान राज्य के अन्तर्गत है। किसी समय यह एक विशाल काय नगर था, यहाँ कितनी ही विद्याशालाएं, मंदिर एवं भवन थे। प्रशस्त राजमार्ग थे इस नगर की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। भारत वर्ष में जब सिंध के मार्ग से अरब लोग आये और इस देश को जीत कर जब वे यहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे तभी यहीं के चावड़ों ने उनसे लोहा लिया। बार-बार के आक्रमणों से चापवंश क्षीण हो गया। हारे हुए चाप लोग पाटण की ओर चल पड़े। अरबों का एक बार और आक्रमण हुआ, जिसे डटकर रोकने वाला चापों के पश्चात् भीनमाल का नागभट्ट प्रतिहार ही था जिसने चापों के पश्चात् भीनमाल को अपनी

राजधानी बनाया था। भीनमाल पर प्रतिहार वंश का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। युद्ध की विभीषिका जब न रही। प्रतिहार भोज के जन्म तक बाहरी युद्धों का उत्पात प्रायः समाप्त हो चुका था। पारस्परिक युद्ध अवश्य होते रहते थे। इन्हीं छोटे-मोटे युद्धों से प्राचीन वंश लुप्त होते जा रहे थे। प्रतिहार वंश इन नये वंशों में सबसे प्रबल था। इसकी शक्ति का परिचय एक बार नहीं अनेक बार युद्धों में मिल चुका था।

आठवीं शताब्दी का काल उत्तरी भारत में एक प्रकार से राजनैतिक क्रान्ति का काल था। युद्धों से इस समय जातियाँ बनती जाती थीं और बिगड़ती जाती थीं। इसी समय में महाकवि माघ का जन्म इसी इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगरी भीनमाल में राजा वर्मलात के सुकृत कार्यों के मंत्री सुप्रसिद्ध शाकद्वीपीय ब्राह्मण सुप्रभदेव के सुयोग्य पुत्र कुमुदपंडित (दतक) की धर्मपत्नी ब्राह्मी के गर्भ से माघ नक्षत्र की पूर्णिमा को हुआ था। इनके जन्म समय की कुंडली को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्य वाणी की कि यह बालक महान् विद्वान्, परमविनीत, दयालु, दानी और वैभवशाली होगा। किन्तु जीवन की अंतिमावस्था को प्राप्त करते ही यह निर्धन होकर दरिद्रावस्था में व्याकुल होकर शेष जीवन ही दुःखमय बिताता हुआ मनुष्योचित आयु को पूर्ण करके पैरों पर सूजन आते ही इस असार संसार को सदा के लिए त्याग देगा। ज्योतिषी के वाक्यों पर विश्वास करके उनके पिता कुमुदपंडित दत्तक ने जो एक श्रेष्ठी (धनी) थे, यह समझकर कि मनुष्य की आयु सौ वर्षों की होती है और एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं, छत्तीस हजार गड्ढों में एक रत्न-परिपूरित घड़ा रख कर उसे बंद करवा दिया। इस के पश्चात् भी जो कुछ बचा उसे माघ को दे दिया।

माघ शनैः शनैः बड़े लाड़ प्यार से पोषित होकर जब बाल्यकाल में प्रविष्ट हुए, तब इनका उपनयन संस्कार किया गया और इनके पढ़ने की व्यवस्था सुचारु रूप से कर दी गयी। बालक माघ परम कुशाग्रबुद्धि थे। व्याकरण के सूत्रों को कण्ठस्थ कर लेते थे तथा अमरकोष के अतिरिक्त संस्कृत के दूसरे कोषों को भी मुखाग्र करते जाते थे। कुछ ही दिनों में इनकी प्रतिभा चमक उठी। इन्होंने अन्यान्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। विद्या समाप्त कर जब ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए उस समय तक इन्होंने वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् आदि का अध्ययन कर लिया था। इनका बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन उत्तमता से बीते, किन्तु युवावस्था में चरण रखते ही ये संसार की भूलभुलैया में ऐसे पड़े कि उससे निकलना इनके लिए कठिन सा हो गया था। बाप दादों का धन, युवावस्था तथा राज्य में प्रभुत्व की प्राप्ति—इन सब बातों ने युवक माघ को व्यवहारपटु तथा सामाजिक बनाया। एक नागरिक का विलासी जीवन भी ये बिताने लगे। जीवन के आनन्द का उपभोग करते हुए भी ये अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। इनकी दिनचर्या प्रायः नियमित थी। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठते, उसी समय चाहते तो कविता की रचना करते। स्नान-संध्या आदि से निवृत्त होकर नित्यकर्म के पश्चात् राज दरबार में जाते। राज परिवार को आशीर्वाद देकर अपना राज-सम्बन्धी कार्य करके फिर वहाँ से लगभग १० या ११ बजे घर लौट आते। घर पर कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाते। मध्याह्न की संध्या करके भोजनोपरान्त थोड़ी देर विश्राम करते अथवा काव्य शास्त्र पुराण आदि ग्रन्थों का अवलोकन करते। लगभग ५ या ६ बजे तक इस भाँति पढ़ना

पढ़ाना चलता रहता, फिर कवि गोष्ठी में मित्रों के साथ मनोविनोद करते। सायंकाल सन्ध्योपासनोपरान्त भोजन से निवृत्त होकर फिर अपने विश्राम भवन में चले जाते जहाँ पर कभी-कभी रात्रिभर मनोरंजन का कार्यक्रम चलता रहता। ऐसी अवस्था में ये प्रातःकाल सूर्योदय होने तक सोये रहते। उनका जीवन अपने ढंग का था। वे लोक-मर्यादा अथवा लोक-मत का पर्याप्त आदर नहीं करते थे। राग-रंग में अधिक व्यस्त रहने के कारण, किसी शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से राजा के वा परिवार वालों के कोप भाजन बनने के फलस्वरूप इन्हें अपने देश को छोड़ना पड़ा था। इस काल में उन्होंने शृङ्गारिकता से पूर्ण कविता की है। ऋतु-वर्णन, वन विहार, जल-विहार आदि के कई प्रसंग इसी समय के लिखे हुए हैं। दानी तो ये थे ही, इसलिए उनका बहुतसा धन दान में भी समाप्त हो गया। बहुत थोड़ा सा धन लेकर ये देशाटन को निकले। स्थान-स्थान पर अपनी विद्वता तथा कवित्व से लोगों को चमत्कृत एवं प्रभावित करते हुए जब ये घर लौट कर आये तब वृद्ध हो चुके थे। शिशुपालवध का कुछ भाग तो इन्होंने परदेश में रहते हुए ही रचा और शेष भाग अपनी वृद्धावस्था में घर पर बैठे हुए लिखा। इस समय अति दरिद्रावस्था में थे। भोज-प्रबन्ध में इनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती है कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे आज वही व्यक्ति दाने-दाने के लिए तरस रहा है। माघ इस भाँति दरिद्रावस्था में ज्योतिष सिद्धान्तवाली १२० वर्ष की पूर्णायु वा १३६ वर्ष की एक लम्बी पुरुषायु प्राप्त करके इस संसार को सदा के लिए त्याग कर सन् ८८० के आसपास परलोकवासी हो गये। मरते समय भी याचकों को दान न दे सकने की स्थिति उनके लिए दुःखद रही।

माघ की अंतिम अवस्था में उनका क्रिया-कर्म तक करने वाला परिवार का कोई भी व्यक्ति न रहा। उनके दाह-संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया प्रतिहार भोज ने स्वयं कराई। माघ का लिखा हुआ केवल एक शिशुपालवध महाकाव्य आज भी विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है।

मंत्री सुप्रभदेव का वंश सदा के लिए समाप्त हो चुका था क्योंकि दत्तक के पुत्र महा कवि माघ के कोई पुत्र नहीं था। एक पुत्री अवश्य थी वह भी विधवा होने पर पति के साथ सती हो गई। दत्तक के कनिष्ठ भ्राता शुभंकर श्रेष्ठी के एक मात्र पुत्र सिद्ध थे। वे अपने जीवन के प्रथम काल में जुआ खेलने तथा वैश्या-गमन आदि प्रवृत्तियों में फंस गये थे, फिर माता की भर्त्सना से वे जैन साधु बन गये और सिद्धर्षि के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने उपमिति भव-प्रपंच कथा लिखी थी।

माघ का व्यक्तित्व—

महाकवि माघ का देह लम्बा, गोरा व आकर्षक था, वे अत्यन्त रूपवान् व स्वस्थ थे। गले में मूल्यवान् मोतियों का कण्ठा आभूषण के रूप में और वक्षःस्थल पर यज्ञोपवीत रहता। वे बहुत ही महीन सफेद धोती धारण करते थे तथा उनके कन्धे के चारों ओर उपवस्त्र पड़ा रहता था। वे स्वभाव से विनोदी व्यक्ति थे। जब कभी किसी के साथ संभाषण करते तब

उनके बोलने में वैचित्र्य भरा रहता था। वे प्रायः प्रसन्नचित रहते, आपत्तियों के अवसरों पर भी वे मुस्कराते ही रहते। उनका व्यवहार बहुत ही कोमल एवं उदार था। प्रकृति से तो वे विनीत थे पर वे जो कुछ कार्य करते उसके लिए वंश, प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की एक उत्कट चाह उनके हृदय में बनी रहती थी। उनका काव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इसी यशोलिप्सा के कारण अपने पाण्डित्य, चमत्कारी प्रतिभा एवं बहुज्ञता का स्थान-स्थान पर परिचय दिया है। कभी-कभी तो वे कालिदास से टक्कर लेते हुए दिखाई पड़ते हैं और कभी भारवि को परास्त करते हुए से प्रतीत होते हैं। उनमें कवि और पंडित का समन्वय स्पष्ट है। धर्म के प्रति उनके समभाव थे। किसी भी धर्म के प्रति उनकी कोई अश्रद्धा दिखाई नहीं पड़ती। वे धार्मिक समन्वय में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। वैसे वे विशुद्ध सनातन धर्मी परमपरा के पोषक व अनुगामी थे फिर भी जैन, बौद्ध आदि तत्काल प्रचलित विभिन्न धर्मों के प्रति भी उनकी आस्था थी।

इन सब बातों के अतिरिक्त महाकवि माघ अपने ढंग के शृंगार-प्रेमी रसिक व्यक्ति थे। सरल रसिकता के कारण प्रेम की गहराई के दर्शन उनके जीवन में नहीं होते। उनका प्रेम वासना-प्रधान है, ऐसा कहना यदि उचित नहीं है तो कम से कम उन्होंने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह वासना का वर्णन है, प्रेम का नहीं। उसमें अपने प्रिय अथवा प्रेमी के प्रति जो भावों की अपेक्षित उच्चता एवं विशालता अथवा सर्वस्व समर्पण करने की भावना होनी चाहिये, उसके दर्शन नहीं होते। उनके व्यक्तित्व का यह कोना शून्य सा है, थोड़ा विकृत भी।

महाकाव्य—शास्त्रीयदृष्टि

कविता का सामान्य स्वरूप :—

अब महाकवि माघ के जीवन सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत करने के पश्चात् उनके महाकाव्य शिशुपालवध की शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत करना समीचीन है। इसके लिये यह आवश्यक है कि कविता के सामान्य स्वरूप पर विचार करते हुये महाकाव्य के लक्षण के सम्बन्ध में प्राचीन और अर्वाचीन विचारों को सामने लाया जाय।

साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। दोनों का यह पारस्परिक सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। आदि कवि बाल्मीकि ने अपने महाकाव्य रामायण में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था को चित्रित किया है। उनका उस महाकाव्य को लिखने का ध्येय भगवद्-भक्ति था। उसकी पूर्णता मानव के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करने से सम्भव थी, इसलिये उनके महाकाव्य में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण अनायास हो ही गया। इस महाकाव्य को रचकर बाल्मीकि ने प्रमाणित कर दिया कि कवि पृथ्वी पर स्वर्ग की अवतारणा करता है। वह समाज की व्यवस्था-अव्यवस्था, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म, नीति-अनीति, शिष्टाचार-अशिष्टाचार आदि मानवीय एवं अमानवीय द्वन्द्वात्मक व्यापारों के माध्यम से अपने आदर्शों को, जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को सुन्दरतम भाषा में अभिव्यक्त करता है। कवि का सुन्दर, सत्य और शिव का साधक होता है। उसका सत्य सौन्दर्यमय शिव का अभिव्यंजन करता है, इसी तरह उसका शिव भी सत्य को प्राण के रूप में और सुन्दर को शरीर के रूप में स्वीकार करता है। कवि की कला निर्माण खरी और सोद्दिष्ट होती है। समाज निर्माण के एक बड़े काम में यह कला एक अद्भुत प्रेरणा बनकर काम करती है। प्रतिभा शक्ति-सम्पन्न, व्युत्पन्न, साधक एवं संवेदनशील कवि की वाणी से प्रसूत जो भावमयी वाणी है, वही कविता है। कविता निश्चय ही मनोविनोद की सामग्री नहीं है। मनोविनोद उससे होता अवश्य है। परिस्थितियों की टकराहट में शिव और अशिव इन दोनों में विवेक रखने वाला कवि आत्मानन्द के लिये जो कुछ लिखता है वह अपने आप ही समाज के लिये कल्याणकारी हो जाता है। उसकी प्रेरणा जगत् की प्रेरणाएँ, उसके स्पंदन जगत् के स्पंदन बन जाते हैं। उसकी भाषा सीमित लोगों की होती है, पर भाव सर्वजनीन, सार्वलौकिक और सार्वकालीन होते हैं। स्वार्थ के स्तरों से ऊपर, बहुत ऊपर उठा हुआ कवि नाम का स्रष्टा निश्चय ही ऐसे अद्भुत लोक की सृष्टि करता है जहाँ मानव मन को चरम सुख की अनुभूति होती है। इस तरह कवि का आत्मानन्द लोक का आनन्द बन जाता है। उसका स्व व्यक्ति-निष्ठ होते हुए भी समाजनिष्ठ बन जाता है।

इस सम्बन्ध में आलोचकों ने कविता का मानवीकरण किया। उसके शरीर और आत्मा की कल्पना की। इस तरह कविता के दो पक्ष हुए भावपक्ष (आत्मपक्ष) और भाषा-पक्ष (कलापक्ष)। इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कविता के लक्ष्य को अपनी-अपनी भाषा में अपनी-अपनी जीवन दृष्टि के अनुसार बनाये। उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत किए जायेंगे। इस सम्बन्ध में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं, "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है उसे कविता कहते हैं।"

आधुनिक समय की प्रसिद्ध कवयित्री सुश्री महादेवी वर्मा के अनुसार—"कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उसमें वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती है।"

संस्कृत काव्य के विकास और काल के तीन युग—

(१) आदि कवि वाल्मीकि की रामायण के बाद कालिदास और अश्वघोष के महा-काव्यों में कविता सरल एवं स्वाभाविक है और इसी कारण उनकी कविता लोकप्रिय हो गई है। अद्भुत कल्पना-शक्ति, चरित्र-चित्रण की अद्वितीयता, प्रकृति पर्यवेक्षण की निपुणता, शृङ्गार के साथ करुणा का सुन्दर संनिवेश, अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग एवं भाषा का अद्भुत सन्तुलन—ये मानो इन दोनों की कविता के सहजात लक्षण हैं।

(२) भारवि और माघ की कविता सम्बन्धी दृष्टि एक रूप में संकीर्ण है। उनके मत में कविता अपनी बहुज्ञता को प्रदर्शित करने का एक साधन है। इसके लिये वे अलंकार रूपी शैली का आश्रय लेते हैं। कविता का रीतिपक्ष मानो उनके लिए सबसे बड़ा पक्ष है। कविता के क्षेत्र में इस प्रकार परिवर्तन के लिए भारत की बदलती हुई वे राजनैतिक परि-स्थितयाँ उत्तरदायी हैं जिन्होंने उन्मुक्त कवि को राज्याश्रयी बना डाला। राजकीय जीवन की विलासिता तथा कृत्रिमता का विषाक्त प्रभाव कवि पर निश्चित रूप से पड़ा। राज-दरबारों में अधिकांशत: शृङ्गारी अथवा वाक्पटु लोग रहते थे अत: नायक-नायिकाओं के आहार-विहार, हाव-भाव, भ्रू विलासादि की चर्चाओं से इनकी रचनाएँ ओत-प्रोत रहती थीं। क्लिष्ट अर्थों वाले श्लोकों की अथवा चक्रबन्ध, मुरजबन्ध, गौमूत्रिकाबन्ध, सर्वतोभद्र, अर्धभ्रमक, प्रतिलोमानुलोमपाद, प्रतिलोमयमक, समुद्गमक, अर्थत्रयवाची आदि बन्ध की रचनाएँ राज-सभाओं और कविगोष्ठियों में आदर पाती थीं। पर इसका अर्थ यह भी नहीं कि महाकवि माघ अथवा भारवि केवल इतने मात्र को ही कविता कहते हों। माघ ने तो स्पष्ट लिखा है—

"नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥२-८६॥

उनकी दृष्टि में केवल शब्दार्थ—सन्तुलन ही कविता नहीं है। वह कहते हैं—

"स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणी यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥२-८७॥

(३) आगे चलकर श्री हर्ष आदि के समय में संस्कृत कविता शब्दमुख अधिक हो गई। भाव का स्थान उक्तिवैचित्र्य ने ले लिया। यही संस्कृत-कविता के पतन का काल है।

कवि (शास्त्रीयदृष्टि)—

समीक्षा शास्त्रों के अनुसार कवि के बुद्धिमान् होने के साथ-साथ स्मृतिमान्, मतिमान् और प्रज्ञावान् होना अत्यन्त आवश्यक है। कवि केवल व्युत्पन्न अथवा केवल अभ्यासी अथवा केवल प्रतिभाशाली हो तो वह अपने महान् कवि-कर्म को सम्पन्न नहीं कर सकता, इसीलिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास इन तीनों को काव्यहेतु कहा गया है, "काव्य हेतवः" नहीं। इन तीनों में प्रतिभा सर्वाधिक वांछनीय मानी गई है। कवि शब्द "कुवर्णे" या "कुङ शब्दे धातु से "इ" प्रत्यय या "कवृ" धातु से निकलता है जिसका अर्थ है वर्णन करने वाला। कवि विभिन्न रूप में किसी वस्तु अथवा मनोभाव का वर्णन करता है। कोई कवि गौड़ी रीति का (जिसमें समास तथा अनुप्रास का प्रयोग अधिक होता है), कोई "पांचाली" रीति का (जिसमें समासों का प्रयोग अल्प होता है) तो कोई "वैदर्भी" रीति (जिसमें अनुप्रास तो होते हैं किन्तु बहुत कम समास होते हैं) का प्रयोग करते हैं। कवि वही होता है जो बुद्धिमान् भी होता है चाहे स्मृतिमान् हो चाहे वह मतिमान् वा प्रज्ञावान् किन्तु अतीत वस्तु का ज्ञान (स्मृति) जितना परमावश्यक है उतना ही वर्तमान वस्तु का ज्ञान (मति) भी होना अनिवार्य है। यदि भविष्यत् वस्तु का ज्ञान (प्रज्ञा) जिस कवि में होगा तो वह सोने में सुगन्धी का कार्य देगा। प्रतिभा कवि सर्वस्व है। वह दो प्रकार की होती है। **कारयित्री-प्रतिभा**[1] के द्वारा कवि निर्माणकारी काव्य-वस्तु को प्रस्तुत करता है और **भावयित्री-प्रतिभा**[2] के द्वारा वह काव्य-वस्तु को भावनात्मक बनाता है। प्रतिभा के ये दो भेद मानो दो गुण हैं जो एक दूसरे के पूरक होकर कविता को सम्पूर्ण रूप देते हैं। उक्त गुणों से (प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास) सम्पन्न कवि कई प्रकार के माने गये हैं। उनमें तीन प्रकार के कवि मुख्य हैं—शास्त्र-कवि[3] काव्य कवि और उभय कवि। ये तीनों ही अपने-अपने क्षेत्र में निराली रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

---

(१) कारयित्री—काव्य का निर्माण कराने वाली होती है। कुछ तो पूर्वजन्म के संस्कार (आहार्य) से प्राप्त होती है। बहुत-सी बातें मन्त्र, शास्त्र आदि के उपदेश से प्राप्त की जाती है।

(२) भावयित्री—जो कवि के परिश्रम और अभिप्राय का बोध करावे। इससे कवि का कर्म सफल होता है। काव्य को चमत्कार और सरस बनाने वाला भावक होता है। जब शब्दों को तोड़ मरोड़ कर सीधा अर्थ न निकाल कर लोग एक दूसरा ही अर्थ लगा लेते हैं उस वास्तविक अर्थ को समझाने वाला भावक ही होता है। वह देखता है कि कौन-सा हृदय-ग्राही है और कौन-सा बनावटी।

(३) शास्त्र कवि तीन हैं—शास्त्र का निबन्धन करते हैं, शास्त्र में काव्य का संमिश्रण करते हैं (लोलिबराज का वैद्यक ग्रन्थ), जो काव्य में शास्त्रार्थ का सम्मिश्रण करते हैं (नैषध चरित में दर्शन सर्ग या शिशुपालवध में राजनीति सर्ग)। काव्य कवि आठ हैं—रचना, शब्द, अर्थ, अलंकार, उक्ति, रस, मार्ग और शास्त्रार्थ कवि। आठों गुण वाला महाकवि होगा।

कविता सम्बन्धी मत :—

इस प्रकार के कवियों की वाणी से प्रसूत कविता के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय संस्कृति साहित्य शास्त्रियों ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं उनमें ये प्रमुख हैं :—

१. **अग्निपुराण**—विज्ञान में शब्दों की पारिभाषिकता, इतिहास में सत्य के प्रति निष्ठा का जैसा महत्व है, काव्य में वैसा ही महत्व अभिधा (शब्द का प्रत्यक्ष सांकेतिक अर्थ) का रहता है। इस भाँति अभिधा को ही काव्य के लिए महत्व देते हुए, आगे अग्निपुराण में काव्य को संक्षेप में कहा हुआ ऐसा वाक्य बताया गया है जिसमें अलंकार और गुणों का सद्भाव हो और दोषों का अभाव।

२. **दण्डी**—अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले सुविन्यस्त शब्द ही काव्य की संज्ञा को धारण करते हैं।

३. **रुद्रट**—इष्टार्थ व्यवच्छिन्न पदावली को काव्य कहते हैं। इस लक्षण में अर्थ से पृथक् शब्द की कोई स्थिति नहीं मानी गयी है। ये दोनों काव्य-पुरुष के शरीर और आत्मा हैं अतः दोनों का समन्वय ही काव्य का वास्तविक रूप प्रस्तुत करता है।

४. **आचार्य वामन**—काव्य अलंकार से ही ग्राह्य है। अलंकार काव्य का सौन्दर्य है। काव्य दोषरहित और गुणालंकार संनिविष्ट होना चाहिये। इस सौन्दर्य की साधना रीति से होती है, इसलिये उन्होंने रीति को प्रधान मानते हुये काव्य की आत्मा बनाया (रीतिरात्मा काव्यस्य)। (यही रीति आगे चलकर शैली कहलाती है)

५. **कुन्तल्**—वक्रोक्ति से युक्त शब्दार्थविन्यास ही काव्य है। वक्रोक्ति यहाँ से उचित अर्थ में न होकर ध्वनि और रस आदि तक की बोधिता है।

६. **आनन्दवर्धन**—'काव्यस्य आत्मा ध्वनिः।' ध्वनि काव्य है। यहाँ ध्वनि को मुख्यता देकर काव्य की आत्मा कहा गया है।

७. **आचार्य विश्वनाथ**—रस से परिपूर्ण वाक्य ही काव्य है। यहाँ रस को प्रधान मानकर उसे काव्य की आत्मा कहा गया है।

८. **जगन्नाथ**—रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है। यहाँ शब्द को काव्य का शरीर और रमणीय अर्थ को इस शरीर का आत्मा माना गया है।

९. **आचार्य मम्मट्**—रुद्रट से सहमत होकर रहते हैं।

---

१. शास्त्रे शब्द प्रधानत्वमितिहासेषुनिष्ठता। अभिधायाः प्रधानत्वात्काव्यं ताभ्यां विभिद्यते ॥

२. संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली। काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम् ॥

३. शरीरं तावदिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली। ननु शब्दार्थौ काव्यम्।

४. काव्यं ग्राह्यं अलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः। सदोष गुणालंकारहानादानाभ्याम्।

५. शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापार शालिनि। प्रबंधे व्यवस्थितौ काव्यं—।

७. वाक्यं रसात्मक काव्यम्।

इस तरह संस्कृत साहित्य विशारदों के अनुसार काव्य के स्वरूप की विवेचना संक्षेप में प्रस्तुत हुई। काव्य का जो उपादान जिसको मुख्य जान पड़ा उसे उसने काव्य की आत्मा बनाया और शेष उपादानों को शरीर अथवा उसके प्रसाधन बताया। इस तरह समन्वयवादी आचार्यों ने काव्य में रस, भाव, औचित्य, ध्वनि, शब्दशक्ति, गुण, अलंकार आदि का स्थान निश्चित किया और इनके विघातक (दोषों) तत्वों का भी वर्णन किया। यहाँ इन दृष्टिकोणों का संक्षिप्त विवेचन ही उचित है। विस्तार° में नीचे लिखे ग्रन्थों को विशेष रूप से देखा जा सकता है।

कविता के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के पश्चात् यह भी उचित है कि कुछ पाश्चात्य दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किये जायं—

पाश्चात्य देश काव्य को कला स्वीकार करते हुए विभिन्न मत प्रस्तुत कर रहे हैं—(a) कला कला के लिए (b) कला जीवन के लिए (c) कला जीवन में प्रविष्ट होने के हेतु (d) कला सेवा सुश्रूषा के लिए (e) कला जीवन से पलायन के लिए (f) कला आनन्द के लिए (g) कला विनोद के लिए (h) कला आत्मानुभूति के लिए। कविता क्या है इसके लिए इसके विभिन्न मत निम्नलिखित हैं।

(१) कविता मूल में जीवन की आलोचना है—मैथ्यू आर्नल्ड।

(२) कविता शान्ति के समय स्मरण की हुई उत्कट भावनाओं का सहजोद्रेक
—वर्ड्सवर्थ

(३) कविता सत्य, सौन्दर्य तथा शक्ति के लिए होने वाली वृत्ति का ही मुखरण है यह अपने आपको प्रत्यय, कल्पना तथा भावना के आधार पर खड़ा करती और निर्दिष्ट करती है। यह भाषा को विविधता तथा एकता के सिद्धान्त पर स्वर-लय सम्पन्न करती है—ले हण्ट

(४) कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रमविधान है—कालरिज।

(५) सरल प्रत्यक्षमूलक और रागात्मक होना ही कविता है—मिल्टन।

(६) कविता छंदोमय रचना है—जानसन।

८—रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।
भोज—निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
हेमचन्द्र—अदोषौ सगुणौ सालंकारौ व शब्दार्थौ काव्यम्।
विद्यानाथ—गुणालंकार सहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्।
वाग्भट्ट—शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्।
चन्द्रालोक—निर्दोषा लक्षणावती सरीतिर्गुणाभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्य नामभाक्॥

(०) साहित्य दर्पण, काव्यप्रकाश, काव्यादर्श, चन्द्रालोक, काव्यालंकार

(a) Art for Arts sake (b) Art for life's sake (c) Art as an escape into life (d) Art for service's sake (e) Art as an escape from life (f) Art for joy (g) Art for recreation (h) Art for self realization,

(७) कविता सत्य तथा प्रसन्नता के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है—जानसन ।

(८) कविता स्फीत तथा सर्वोत्तम आत्माओं के परिपूर्ण क्षणों के लेखा है—शैले ।

(९) सर्वोत्तम क्रम में (विन्यस्त) सर्वोत्तम शब्द की संज्ञा ही काव्य है—कालरिज ।

(१०) शब्दार्थ का उच्चाति उच्च कोटि का समन्वय यदि कहीं सम्भव है तो काव्य में ही । काव्यविषयक सत्य और सौंदर्य के नियमों द्वारा निश्चित स्थितियों में की गई जीवन की आलोचना ही काव्य है—मैथ्यू आर्नेल्ड ।

(११) विचार और शब्द जिनके रूप में मनोवेग तत्काल स्वयं ढल जाते हैं, काव्य इसके अतिरिक्त और है ही क्या वस्तु—जान स्टुअर्ट मिल ।

(१२) भावात्मक तथा लययुक्त भाषा के माध्यम से मानव मन (चेतना) की मूर्त और कलात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है—वेट्सडंटन (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका)

(१३) कवि का कर्तव्य भली प्रकार अनुकरण करना अवश्य है पर आत्मा पर प्रभाव डालना तथा भावना को जागृत करना सर्वोपरि उद्देश्य है । केवल अनुकरण ही तो यह कार्य नहीं कर सकता—ड्रूजेडाइटन ।

Foot-note cont d......

(I) Poetry is at bottom a criticism of life.

(2) Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotions recollected in trenquility.

(3) The utterance of passion for truth, beauty and power embodying and illustrating its conceptions by imagination and fancy and modulating its language on the principles of variety in unity.

(4) Poetry is the best words in the best order.

(5) Poetry should be simple, sensuous and passionate.

(6) Poetry is metrical composition.

(7) Best words in the best order.

(8) Poetry is simply the most delightful and perfect form of utterance that human words can reach. It is nothing less than the most perfect man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth.

(9) Poetry is a criticism of life under the conditions fixed for such criticism by the laws of poetic, truth and poetic beauty.

(10) What is poetry but the thoughts and words in which emotion spontaneously embodies itself.

(11) Poetry is the conerete and artistie expression of the human mind in emotional rhythmical language.

(12) It is true that to imitate will is poets' work but to affect the sound excite the passions and above all to move admiration (which is the delight of the serious plays) a bare imitation will not serve.

* Poetry is the expression of imagination.

१३. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ काव्य प्रकाश १/२

*कविवर शैली काव्य को प्रतिभा की ही अभि व्यंजना स्वीकार करते हैं। इसी प्रतिभा के विषय में काण्ट तथा कोलरिज का मत एक सा है। काण्ट की कल्पना के तीन रूप हैं—सम्मेलक प्रतिभा, उत्पादक कल्पना तथा सौंदर्य कल्पना। प्लेटो काव्य की महनीयता तथा सुन्दरता को बाह्य न कहकर अन्त: स्फुरण कहते हैं। ये कवियों की भ्रमर से तुलना करते हैं जो नाना उद्यानों में से मधुराशि एकत्र कर आता है फिर कल्पना के पंखों से शोभित होकर तथ्य को व्यक्त करता है। स्फूर्ति, प्रेरणा या प्रतिभा ही कविता का बीज है।

भारतीय दृष्टि इस बीज की व्याख्या में अत्यधिक जागरूक है। विशेष के लिए भट्टतोत, आनन्द वर्धन, अभिनवगुप्त, राजशेखर, कुन्तक व महिमभट्ट की अंतरंग परीक्षा पर विचार करें।

सच तो यह है कि कविता दर्शन और वर्णन पर स्थित है। दर्शन कविता का आन्तरिक भाग है तथा वर्णन बाह्य भाग। देखी हुई बात को (प्रतिभा की चक्षु से) शब्दों का सुन्दर कलेवर देकर रखी जायगी वह बात 'स्व' का 'पर' के साथ तादात्म्य होकर 'साधारणीकरण' से रस प्राप्ति में अवश्य सहयोग देगी। 'हठादाकृष्टानां **कतिपयपदानां रचयिता**' की कविता नहीं कहलाती। वास्तविक कविता का रूप तो विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति को लिए हुए किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही प्रवृत्त होता है।

ऊपर हमने भारतीय और यूरोपीय साहित्याचार्यों के कविता सम्बन्धी मतों का उल्लेख किया। कवियों ने अपने काव्यों में भी यत्र तत्र कविता के लक्षण बताये हैं।

माघ कवि ने अपने शिशुपालवध महाकाव्य में इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार से प्रकाश डाला है—

गुण—तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमौजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥ २-८३॥

रस—स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाःसंचारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥ २-८७॥

शैली—म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव॥ २-७४॥

माघ के इन काव्य लक्षणों को देखने से विदित होगा कि वह समन्वयवादी साहित्यिक थे। उनके अनुसार काव्य का लक्षण यह था—

'तददोषौ सगुणौ सरसौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यम्।'

हमने कविता शब्द पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था कि माघ सुकवि उसी को कहेंगे जिसके काव्य में वा कविता में शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा हो जैसे दैव

और पुरुषार्थ। माघ ने फिर इसी के आगे वाले द्वितीय सर्ग के ८७ श्लोक में भी कहा है कि रस की अवस्था प्राप्त करने वाले एक ही स्थायी भाव के अनेक संचारी भाव (स्वयं आकर) सहायक हो जाते हैं। स्पष्टीकरण करते हुए माघ फिर कहते हैं कि रसों और भावों के मर्म को जानने वाले कवि के लिए केवल ओज गुण अथवा केवल प्रसाद गुण नहीं होता, वे तो दोनों ही का यथा प्रसंग अनुसरण करते हैं। माघ भामह की भाँति ऋतु पद्धति में चलने का अनुरोध नहीं करते। वे तो 'वल्गा विभाग कुशल' अश्वारोही की भाँति अपने काव्यमयी अश्व को अनेकों गलियों, सड़कों में चलाने की योग्यता रखने को ही काव्य कहते हैं। (माघ ५-६०) अत: आभ्यंतर (भाव और विचार) प्रथम और भाषा द्वारा उनकी अभिव्यक्ति बाह्य स्वरूप पश्चात् होती है किन्तु ये दोनों इतने मिले-जुले और एकाकार होकर उपस्थित हो जाते हैं और वह भी कवि के व्यक्तित्व से इतने अधिक लिपटे हुए होते हैं कि उनको पृथक् नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति का यह तृतीय प्रतिभा तथा व्यक्तित्वजन्य आश्चर्य में डाल देने वाला अनिर्वचनीय रूप ही काव्य में सर्वोपरि है। शब्द और अर्थ को पृथक् होने ही नहीं देता। दोनों का इस भाँति का एकाकार बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप के विवाद को उपस्थित करने ही नहीं देता। कैसा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित किया है। यही तो माघ की विशेषता है। वह स्वयं गुणौचित्य की ओर प्रथम ध्यान आकर्षित इसीलिए करते हैं कि व्याख्याकार केवल शब्द और अर्थ चक्र में भटक न जाय। उस 'रसभावविद' शब्द को कवि की प्रतिभा के रूप में लाकर पहले ही उपस्थित इसीलिए कर देता है। शब्दौचित्य अर्थौचित्य को देखें, गुणौचित्य को देखें तब कहीं अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। शब्द और अर्थ मिले ही नहीं और आनन्द लेना चाहे तो वह आनन्द कहाँ? आत्मा अनिर्वचनीय है, सूक्ष्म है सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, अपेक्षित अवयवों के एकत्र होते ही वह आ उपस्थित होती है किन्तु फिर भी हम उसके स्वरूप को जान नहीं सकते, कह नहीं सकते यही तो अनिर्वचनीय है। आत्मा तो स्त्री पुरुष के एक ही है किन्तु जैसे ही दो तन का संकलन एक रूप में हुआ अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हुई कि आत्मज सम्मुख आकर उपस्थित हुआ इस भाँति महाकवि माघ ने भी काव्य की परिभाषा को स्पष्ट किया है कि 'नैकमोज: प्रसादो वा रसभाव विद: कवे।'[१] औचित्य रूपी अनिर्वचनीय आनन्द को यदि शब्द और अर्थ में एकाकार कर देंगे तो अवश्य ही ऐसा काव्य पुरुष उत्पन्न होकर सम्मुख आयेगा कि देखने वाले सुनने वाले, समझने वाले किंकर्तव्य विमूढ़ होकर देखते ही रहेंगे। वह वास्तविक अर्थ में काव्य की आत्मा है जो चलती फिरती तो दिखाई पड़ रही है किन्तु उसके द्वारा अन्यों के मस्तिष्क पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता हुआ दिखलाई पड़ रहा है किन्तु होना चाहिए शब्दों के मार्मिक अर्थ को जानने वाला तथा उन शब्दों को वास्तविक रूप में प्रयुक्त करने वाला फिर देखिए कितना आनन्द आता है। यह न कहिये कि माघ केवल बाहरी जामा पहिनने वाले ही व्यक्ति हैं अलंकारों की छटा है,

---

१. महामहोपाध्याय डा० कुप्पु स्वामी शास्त्री का औचित्य पर साहित्य शास्त्र का समग्र सिद्धान्त वाला यन्त्र देखिए—

> **औचित्यमनुधावन्ति सर्वेध्वनिसोऽश्रयाः।**
> **गुणालंकृतिरीतीनां नयाश्चानृजुवाङ्मयाः॥**

पद बिन्यासों की कुशलता है, अनुप्रासों, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति आदि का सुन्दर आकर्षण है किन्तु नहीं, उनमें रस, रूप, आत्मा को प्रविष्ट करने की भी एक सुन्दर प्रतिभाशालिनी शक्ति है और वह ही वास्तविक काव्य है। इसीलिए कहा गया है 'काव्येषु माघः' काव्यों में माघ ही सर्वोपरि है यह उक्ति खरी उतरती है।

महाकवियों की कुछ ऐसी विलक्षण शक्ति होती है कि वे किसी भी व्यक्तिगत भाव को सार्वजनिक और सार्वकालिक रूप दे देते हैं। उनका प्रकृति निरीक्षण इतना सूक्ष्म और संवेदनापूर्ण होता है कि उससे प्रसूत वर्णन सहृदय मात्र की रागात्मक शक्ति के उन्मेष और विकास में उद्दीपक का काम करता है। यह वर्णन चाहे मानवीय प्रकृति का हो और चाहे शेष प्रकृति का, और वर्णन करने वाला महाकवि चाहे यथार्थ कवि हो या आदर्श कवि, अपना प्रभाव श्रोता या दर्शक के मनों पर निश्चित रूप से छोड़ता है। कवि का—समर्थ कवि का—सम्बन्ध इस प्रभाव से है इसीलिए उसकी मंगलमयी शक्ति भी उससे जुड़ी रहती है। इस शक्ति से जो आनन्द मिलता है वही रस की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए कवि को शब्द-संकेतों का अवलंबन लेना पड़ता है। इसी प्रसंग में शब्द-शक्तियों, ध्वनि, अलंकार, रीति गुण और दोष आदि पर विचार स्वाभाविक हो जाता है। समीक्षकों ने कविता के तत्वों का वर्णन किया है। वह वर्णन विश्लेषणात्मक है। रस एक पूर्णतः संश्लिष्ट वस्तु है, जिसका विश्लेषण असम्भव है। जिन रूपों में होकर, जिन स्रोतों के माध्यम से रस—चाहे वे स्रोत कथानक के हों, चाहे पात्रों के, और चाहे परिस्थितियों के—(वातावरण), रस विशेष की अनुभूति होती है उनका अवश्य ही विश्लेषण संभव है। कविता के तत्त्वों का विचार इन्हीं बातों के विश्लेषण का विचार है। कविता के मुख्यतः ४ तत्व माने गये हैं—भावतत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व और शैली तत्व। भाव, कल्पना और बुद्धि, ये काव्य के आत्मतत्व के (भावपक्ष) निर्माता हैं और इनसे प्रेरित और प्रसूत शैली काव्य के शरीर की (कलापक्ष) निर्माता। महाकाव्य में इन तत्वों का सम्पूर्ण उपयोग होता है, इसीलिए कविता के दूसरे भेदों की अपेक्षा महाकाव्य के द्वारा रसानुभूति एक अद्भुत स्थायित्व को लेकर होती है। यह कहना ठीक ही है कि कवि अपनी प्रतिभा से अपने सुख दुःख, अपनी कल्पना और जीवन की अभिज्ञता के भीतर से संसार के समस्त मनुष्यों के चिरन्तन हृदय के आवेगों और जीवन की धार्मिक बातों को आप ही प्रतिध्वनित कर देता है और वही कवि महाकवि के रूप में भाषा के माध्यम से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा अपनी रचना को सदा के लिये अमर बना देता है। हिन्दी साहित्य के महारथी डा० श्यामसुन्दरदास इसी बात को इन शब्दों में लिखते हैं कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करके अपने अनुभवों तथा भावनाओं से प्रेरित होता है तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूंढ निकालता है और महाकवि अपनी अन्तरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में बैठता है और जो कुछ ढूंढ निकालता है उसका वर्णन करता है। कवि का क्षेत्र भावात्मक व्यक्तित्वप्रधान है (अर्थात् आत्माभियंजकता प्रधान) और महाकवि का क्षेत्र विषय प्रधान (भौतिकता प्रधान) है भौतिकता प्रधान काव्य में वर्णन की प्रधानता रहती हैं अतः वह वर्णन प्रधान काव्य ही कहा जा सकता है। विषय-प्रधान कविता मनुष्य की कर्मशीलता से उत्पन्न होती है। प्राचीन महाकाव्यों के मूल में प्रचलित वीरपूजा की भावना ही कार्य करती है। ऐसी कविता में कवि के विचारों तथा अनु-

भूतियों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। इसमें कवि की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी होती है। वह बाह्य जगत् में घुल मिलकर एक हो जाता है। बाह्य जगत् ही उसको प्रेरणा देता रहता है। कवि के व्यक्तित्व का प्रतिफलन यहाँ कम हो पाता है। कवि अपने काल, समाज, देश तथा जाति की प्रवृत्ति में विलीन होकर अप्रत्यक्ष रूप से उसका वर्णन करता है। यह कविता वर्णन प्रधानता में निमग्न रहती है। इसका कवि अप्रत्यक्ष रूप से कथा को कहता है। कवि का प्रतिनिधित्व इसमें उसके अपने नायक या मुख्य पात्र द्वारा होता है। यह कवि अपनी अनुभूतियों, आकांक्षाओं और आदर्शों का वर्णन विभिन्न पात्रो उनके कथोपकथन, संवाद और विचार विनिमय द्वारा करता है। इसमें जातीय जीवन को उसकी अनेकानेक विशेषताओं के साथ चित्रित किया जाता है। कथा की दीर्घता के साथ महाकाव्य में आकार की विशालता और भावों की बहुलता उपस्थित रहती है।

रविन्द्र कहते हैं—वर्णनानुगुण से जो काव्य पाठकों को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूत, चकित स्तम्भित, कौतूहली कर सकता है (उनके लिए अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर सकता है) वह महाकाव्य है और उसका रचयिता अवश्य ही महाकवि है। उस महाकवि के महाकाव्य में एक महच्चरित्र होना चाहिए और उसी महच्चरित्र का एक महत्कार्य और महदनुष्ठान होना चाहिए।

राजशेखर ने कवियों की अवस्थायें १० मानी हैं—काव्य विद्यास्नातक, हृदयकवि, अन्यापदेशी, सेविता, घटमान, महाकवि, कविराज, आवेशिक, अविच्छेदी, संक्रामयिता। इनमें सात तो "बुद्धिमान्" और 'आहार्य बुद्धि' कवियों और तीन ओपदेशिक कवियों की अवस्थाएँ हैं। महाकवि बनना कोई साधारण कार्य नहीं है। कवित्व-शिक्षा की जो पांच कक्षायें कवि कंठाभरण में क्षेमेन्द ने बताई हैं उनको उसे पार करना होता है।

(१) 'अकवेः कवित्व-प्राप्तिः' कवित्व शक्ति का यत्किंचित् सम्पादन।

(२) 'शिक्षा-प्राप्त गिरःकवेः' पद रचना शक्ति सम्पादन करने के पश्चात् उसकी पुष्टि करना।

(३) 'चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ', कविता-चमत्कार।

(४) 'गुणदोषोद्गतिः' काव्व के गुण दोष का परिज्ञान।

(५) 'परिचय प्राप्तिः', कवि को शास्त्रों का परिचय (वे शास्त्र प्रायः ये हैं—न्याय, व्याकरण, भरतनाट्यशास्त्र, चाणक्यनीतिशास्त्र, वात्स्यायन काम शास्त्र, महाभारत, रामायण, मोक्षोपाय, आत्मज्ञान, धातुविद्या, वादशास्त्र, रत्नशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गजशास्त्र पुरुषलक्षण, द्यूत, इन्द्रजाल, प्रकीर्णशास्त्र।) इस प्रकार राजशेखर और क्षेमेन्द्र के अनुसार बहुज्ञ हुए बिना कवि होना ही असम्भव है तथा महाकवि बनना तो और असम्भव है जो महाकाव्य के रचयिता हैं।

संस्कृत के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप को बताने वाले जो लक्षण बताये हैं उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। (१) आचार्य भामह, जो महाकाव्यों के स्वरूप की व्याख्या करने में सर्वप्रथम समझे जाते हैं, अपनी काव्यलंकार (१।१८-२३) में इसकी वितृस्त व्याख्या करते हुये कहते हैं कि बंध की दृष्टि से इसमें पाँच भेद हैं—१ सर्गबद्ध २ नाटक के

३ आख्यायिका, ४ कथा,५ अनिबद्ध (मुक्तक) काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध काव्य का ही दूसरा नाम है। इसमें महान विषय का निरूपण अवश्य हो, ग्राम्य शब्द न हो, अर्थ सौन्दर्य, अलंकार की छटा तथा वास्तविक वा अत्युच्च कोटि की कहानी का वर्णन हो, राजदरबार, दूत, आक्रमण, युद्धादि के चित्रण के साथ नायक का अभ्युदय अन्त में अवश्य हो। नाटक की पाँच सन्धियाँ उसमें होती हैं जिसमें कथानक की अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं जो स्वयं उत्कर्षपूर्ण होता है। काव्यगत छटा के साथ ही जिसमें चतुर्वर्गफल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का भी समावेश हो। अर्थ की प्रधानता के साथ ही उसमें लोक स्वभाव (स्वाभाविकता का गुण) उसमें रहता है। समस्त रसों की छटा भी रहती है। अन्त में नायक को, जो आरम्भ में कुलीन, शक्तिशाली, प्रतिभावान व विद्वान् दिखाया गया है, विजयी भी दिखाना आवश्यक है। यह न हो कि किसी अन्य पात्र की सफलता के हित उसका वध दिखा दिया जाय। आचार्य दंडी (काव्यादर्श में)—

(२) महाकाव्य की कथा-वस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर किसी प्राचीन आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त प्रकृति का हो। उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, जलक्रीड़ा, उद्यान, बिहार, विवाह, यात्रा, युद्ध तथा विजय प्राप्ति आदि विषयों का वर्णन उपयुक्त स्थानों पर होना चाहिए। उसमें शृङ्गार अथवा वीर रस प्रधान रहता है और दूसरे रस गौण रूप में चित्रित होते हैं। सम्पूर्ण काव्य सर्गों में विभाजित रहता है। सर्ग बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। प्रति सर्ग में एक ही वृत्त के श्लोक रहते हैं। किन्तु सर्ग के अन्त में भिन्नवृत्त होना आवश्यक है। मंगलाचरण आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए।

(३) विश्वनाथ (अपने साहित्य दर्पण में)—जिसमें सर्गों का निबन्ध हो वह महाकाव्य है। इसमें एक देवता या सद्वंशक्षत्रिय जिसमें धीरोदात्त आदि गुण हों नायक होता है। कहीं पर एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृङ्गार, वीर, शान्त, आदि में से कोई एक रस अंगी होता है, अन्य रस गौण होते हैं। सब नाटक संधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन संबन्धिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होता है। कहीं-कहीं पर दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुणावर्णन होता है। इसमें न तो बहुत ही छोटे, न बहुत ही बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में, एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिये। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल मध्याह्न, मृगया, शिकार, पर्वत, ऋतु, (षडऋतुवर्णन) वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथा संभव सांगोपांग वर्णन होता है। इसका नाम कवि के नाम से (माघ) या चरित्र के नाम से जैसे कुमारसंभव, अथवा चरित्रनायक के नाम से जैसे 'रघुवंश' होना चाहिये। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है जैसे 'भट्टि' सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम भी रक्खा जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों का विधान उस समय का है जब संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी। उन लक्ष्य ग्रन्थो के निर्माणोपरान्त ही लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई। इन सारे लक्षणों का अक्षरशः पालन सभी महा काव्यों में होना प्राय: असंभव है। इन लक्षणों के आधार से (भारतीय आचार्यों के अनुसार) महाकाव्य का स्वरूप कुछ इस प्रकार का बनता है।—

१—महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है जो प्रबन्धत्व के गुणार्थ संधियों से युक्त हो।

२—उसका नायक पाठकों को संदेश देने वाला धीरोदात्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए।

३—यह आठ सर्गों से बड़ा तथा अनेक वृत्तों (छन्दों) से युक्त होना चाहिए।

४—महाकाव्य की कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है अथवा सज्जनाश्रित जिसमें जीवन, जगत् तथा प्रकृति के विभन्न अंगों का चित्रण सुन्दर रूप में आजाय।

५—शृङ्गार, वीर, शान्त रसों में कोई एक रस अंगी रूप में होता है।

६—प्रकृतिवर्णन के रूप में इसमें नगर, वर्णव, समुद्र, पर्वत, सन्ध्या, प्रात:काल, संग्राम, यात्रा तथा ऋतुओं आदि का वर्णन भी आवश्यक है।

७—शैली में काव्य सौष्ठव तथा काव्य के समस्त प्रमुख गुण विकसित रूप में हो।

पाश्चात्य दृष्टिकोण—

पाश्चात्य महाकाव्यों के अध्ययन के पश्चात् वहाँ के समीक्षकों ने भी महाकाव्य के नीचे लिखे लक्षण बताये हैं जिनका सार यह है—

१—महाकाव्य एक विशालकाय वर्णन प्रधान (Narrative) काव्य है।[1]

२—युद्ध प्रिय इस महाकाव्य का नायक होता है तथा अन्य पात्र शौर्य गुण की प्रधानता वाले होते हैं।

३—केवल व्यक्ति का ही चरित्र चित्रण हो ऐसी बात नहीं किन्तु उसमें सम्पूर्ण जाति के क्रिया कलाप का भी वर्णन अवश्य होता है इसके अतिरिक्त व्यक्ति की अपेक्षा उसमें जातीय भावनाओं की भी प्रधानता रहती है।

---

२. साहित्यदर्पण ६, ३१५, २४ देखिये।

१. फ्रेन्च आलोचक वसु कहते हैं कि प्राचीन घटनाओं के चित्रण के लिये एक रूपक के रूप में महाकाव्य लिखा जाता है। (ब) रैसा का कहना है कि महाकाव्य की घटनायें न तो बहुत ही प्राचीन होनी चाहिये और न अत्यन्त नवीन ही। (स) लुकन का तो कहना है कि प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाएँ ही महाकाव्य की पृष्ठभूमि बनाने के लिए उपयुक्त है। (द) डेवनान्ट कहते हैं कि महाकाव्यों का आधार प्राचीन घटनाओं पर ही प्रतिष्ठित होता है और यह होना भी चाहिए।

४—(कुछ विद्वानों के मतानुसार) महाकाव्य के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है इसीलिये जब-जब भी उनके कार्यों की दिशायें निर्धारित होती हैं उन सब में देवताओं अथवा भाग्य का हाथ अवश्य रहता है किन्तु लुक इसके प्रतिकूल है।[२]

५—इसका विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और लोकप्रिय होता है।

६—इसका सम्पूर्ण कथा सूत्र नायक से बँधा रहता है।

७—इसकी शैली उच्चता को लिए हुई विशिष्ट शालीन होती है तथा एक ही छन्द का प्रयोग आदि से अन्त तक रहता है।

ये हैं महाकाव्य के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण। पाश्चात्य महाकाव्यों में जहाँ पर जातीय भावनाओं के समावेश पर अधिक बल दिया गया है वहाँ पर भारतीय महाकाव्यों में जातीय भावनाओं के युद्ध, यात्रा तथा ऋतु आदि का वर्णन आवश्यक माना गया है। भारतीय महाकाव्यों में छन्दों की विविधता का नियमन है जबकि पाश्चात्य महाकाव्यों में आदि से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। जीवन का आशावादी दृष्टिकोण, जीवन की अनन्ता में विश्वास. असत् का सत में विलय, अशिव का शिव में समाहार और असुन्दर का सुन्दर में परिणमन आदि बातें भारतीय महाकाव्य की विशेषतायें हैं। भारतीय महाकाव्यों के सुखान्त एवं आदर्शवादी होने का रहस्य इन विशेताओं से समझ में आ सकता है।

संक्षेप में सार यह निकलता है कि पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य पर इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार नहीं किया जितना हमारे संस्कृत के आचार्यों द्वारा किया गया है। पाश्चात्य दृष्टिकोण महाकाव्य की विस्तृत सीमा, वर्णन वाहुल्य, लोकप्रिय व विख्यात घटना, पात्रों की वीरता, कथानक की प्रबन्धकता तथा शैली की महानता को अंगिकार करना है।

आधुनिक दृष्टिकोण—

विज्ञान के इस युग में जहाँ अन्य समस्त वस्तु में विकास दिखलाई पड़ता है वहाँ महाकाव्यों के स्वरूप एवं लक्षणों में भी कवियों के दृष्टिकोणानुसार पर्याप्त रूप से विकास हुआ है। जहाँ संस्कृत के आचार्य कथावस्तु का केवल व्यापक होना ही स्वीकार करते थे वहाँ उसी कथानक के व्यापकत्व के साथ-साथ सुसंगठित होना भी स्वीकार करते हैं तथा पाठकों की भावनाओं को तरंगित करने वाले व्यापारों का वर्णन भी उसमें होता है। हृदय जब तक आंदोलित न हो तब तक उस कवि की भाव व्यंजना ही क्या हो सकती है अत: ऐसी भाव व्यंजना का भी समावेश होता है। संवादों में रुचिवर्द्धक चारुता के साथ-साथ नाटकीयता और औचित्य का गुण भी आज आवश्यक समझा गया है। शैली का प्रौढ होना तो अनिवार्य है ही किन्तु संदेश की महानता भी उसमें स्वीकार की गई है। ये सब बातें तुलसी के महाकाव्य 'रामचरितमानस' के लिए घटित हैं। वह आदर्श महाकाव्य आधुनिक दृष्टिकोण

२. लुकन का कहना है कि महाकाव्य के पात्रों के कार्यकलापों में देवताओं तथा देवी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

से हो सकता है। तुलसी के पश्चात्वर्ती कवियों ने इससे भिन्न दृष्टिकोण को अपनाया है। इनमें इतिवृत्त (कथानक) अति संक्षिप्त तथा सूक्ष्म रहता है। स्थूल घटनाएँ भी प्राय: नगण्य सी हैं, मानसिक संघर्ष इनमें अधिक है, बाह्य संघर्ष का अभाव सा है। उनके पात्र में उनकी हृद्‌गतभावों की अभिव्यंजना के साथ-साथ सूक्ष्म मनोविश्लेषण भी दिखलाई पड़ता है। ये वर्त्तमान युग की समस्याओं पर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं जिनके भीतर पाठकों के लिए कुछ संदेश भी रहता है। 'कामायनी' में ये रूप देखने के लिए मिलेंगे।

इस भाँति महाकाव्यों का आज दिनोंदिन रूप अवश्य परिवर्तित होता जा रहा है किन्तु इन महाकाव्यों में संस्कृत साहित्याचार्यों वाली उन अनेक बातों का तथा उस गम्भीरता का एक ऐसा अभाव है जो सचमुच में एक महाकाव्य में होना चाहिए। यह बात अवश्य है कि महाकवि किसी महान् पात्र या संदेश को बताने वाली महान् काव्य रचना का गुण अब तक भी रखे हुए हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार

शिशुपालवध महाकाव्य की घटना अति प्राचीन है जिसका वर्णन महाभारत, पुराण तथा भागवत आदि ग्रन्थों में मिलता है। इसकी कथा तो बहुत छोटी है किन्तु इसको आधार रूप में रखकर कवि ने कल्पना की जैसी ऊँची-ऊँची उड़ानें भरी हैं उन सब को देखते ही बनता है। इसके अतिरिक्त उसमें वर्णनों की प्रचुरता को देखकर यदि उसको वर्णनप्रधान (Narrative) महाकाव्य कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध कैसे हुआ इस पौराणिक घटना को लेकर इस महाकाव्य की रचना हुई है। घटना के साथ प्रसंगवश तो कथा आयी है। वर्णनों की अधिकता से इस विषय प्रधान काव्य को दोनों भेदों का एक मिश्रित रूप भी कह सकते हैं। इसका प्ररूपण बड़े सुन्दर ढंग से किया है, अतः विषय प्रधान काव्य के अन्तर्गत भी यदि इसको ले लिया जाय तो कोई बहुत असंगत बात न होगी और वास्तव में देखा जाय तो यह काव्य विषय प्रधान (Objective) है भी। इसके नायक श्रीकृष्ण एक योद्धा के रूप में हैं। अन्य पात्रों में भी शौर्य-प्रधान गुण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। महाकाव्य को आदि से अन्त तक देखने से ज्ञात होता है कि उसमें केवल श्रीकृष्ण के चरित्र को ही चित्रित नहीं किया गया है, किन्तु उसमें क्षत्रिय जाति के क्रिया-कलापों का सुन्दर वर्णन है। यह बात दूसरी है कि जातीय भावनाओं को प्रधानता न देकर वहाँ पर तो व्यक्ति की ही प्रधानता स्पष्ट रूप में दिखालायी गयी है। श्रीकृष्ण एक दैवी पुरुष हैं। शिशु-पाल वध महाकाव्य का विषय परम्परा से प्रतिष्ठित है जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में पर्याप्त रूप में है। श्रीकृष्ण लोकप्रिय हैं। दुष्टों के दमन के लिए उन्होंने यहाँ पर अवतार लिया है। इसका सम्पूर्ण कथा-सूत्र नायक के अधीन है। इसकी शैली भी विशिष्ट शालीनता और उच्चता को लिए हुए है। इसके अतिरिक्त २० सर्गों में प्रति सर्ग में भिन्न-भिन्न छन्द हैं। एक सर्ग में ही छन्द चलता है किन्तु अन्त में जाकर बदल जाता है। इन सब बातों को देखते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के जो लक्षण बताये हैं, वे इस महाकाव्य पर भी घटित होते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार

लक्षण ग्रन्थों के अनुसार 'माघकाव्य' पर महाकाव्य के लक्षण पूर्णतया घटित होते हैं। काव्य का मुख्य रस वीर है। कथानक महाभारत से लिया गया है। यह कथानक श्रीकृष्ण के जीवन की एक मुख्य घटना है। इसमें २० सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में न तो ५० से न्यून और न १५०

से अधिक श्लोक हैं। एक सर्ग में प्रमुख छन्द एक है। सर्गान्त में लक्षणानुसार छन्द का परिर्वतन किया गया है। केवल चतुर्थ सर्ग ही इस बात का अपवाद है कि जिसमें कई छन्दों का प्रयोग किया गया है। तृतीय सर्ग का अधिक भाग द्वारिकानगर के वर्णन अथवा समुद्र के वर्णन में है। जिसके तट जल से टकरा रहे हैं। चतुर्थ सर्ग सम्पूर्ण ही रैवतक पर्वत का सुन्दर चित्र उपस्थित कर रहा है। पंचम सर्ग में श्रीकृष्ण के शिविर का वर्णन मुख्य है। छठा, सातवां, आठवां सर्ग षड् ऋतुओं के वर्णन से भरा हुआ है जहां पर पुष्प-चयन तथा जलक्रीड़ा का वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। चन्द्रोदय जिसमें होता है, जिसका चित्र विचित्र वर्णन नायक-नायिकाओं के साथ सुन्दर रूप से किया गया है वही यह नवम सर्ग है। दशम सर्ग में नायिकाओं के साथ नायक की रात्रि क्रीड़ा का वर्णन है। ग्यारहवाँ सर्ग प्रभात की छटा का सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। बारहवें सर्ग में आकर श्रीकृष्ण की सेनाका रैवतक पर्वत से इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान वर्णित है। अंत में युमना नदी का वर्णन आता है। अन्तिम तीन सर्गों में शत्रु सेना युद्ध स्थल में आकर मिलती है और वहाँ पर श्रीकृष्ण और शिशुपाल में भयंयकर युद्ध होता है। इस भाँति काव्य के अधिक भाग में, लम्बे वर्णन किये गये हैं। वास्तविक घटना धीमी गति से चलती है। कार्य की अन्विति का भी (unity of Action) कवि को ध्यान रहा है। आरम्भ से लेकर अन्त तक कथा अपने उद्देश्य को संभाले हुए है।

(१) दंडी के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर किसी प्राचीन आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत के आधार पर होनी चाहिये। पाश्चात्य आचार्य डेवनाट भी इस मत की पुष्टि करते हैं। वह कहते हैं कि महाकाव्यों का आधार प्राचीन घटनाओं पर ही प्रतिष्ठित होना चाहिए जिससे कवि कल्पना की ऊँची उड़ान लेने में समर्थ हो सके। ऐसे चित्रण में ही अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता रहती है अत: वह अपने मन के भावों को विविध रूप में उस घटना में प्रतिफलित करता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

शिशुपाल का वध एक प्राचीन आख्यान है जिसका वर्णन सभापर्व के अन्तर्गत 'शिशु-पालवध' नाम से महाभारत में आया है अत: इसका आधार ऐतिहासक वृत है जो बहुत ही प्राचीन घटना है। इस घटना का वर्णन करने के लिए कवि ने कहीं-कहीं पर कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ अपने मन के भावों का विविध रूप से आत्मकथा के रूप में सांकेतिक वर्णन किया है। ये कल्पनायें एक ओर तो प्रगति में सहायक सिद्ध हुई हैं और दूसरी ओर कवि के समय, जाति और व्यक्तिगत स्थिति आदि का स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से निर्देश कर रही हैं।

(२) महाकाव्य का सर्गवद्ध होना आवश्यक है जिसमें एक से छन्द आवें किन्तु सर्ग का अन्तिम छन्द समान न हो और इसके साथ ही अन्त में आने वाले भाव का सम्बन्ध आगे प्रारम्भ होने वाले सर्ग से सम्बन्धित हो। सर्ग में ५० से न कम श्लोक हों और न १५० से अधिक। सर्गों की संख्या कम से कम ८ और अधिक से अधिक ३०।

"महाकाव्यः अष्टसर्गा न तु न्यूनं त्रिसत्सर्गाश्चनाधिकम्।
नात्यन्तविस्तरः सर्गास्त्रिंशतो वा न चोनता॥"
"एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।

नातिस्वल्पानाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
साहित्य दर्पण, षष्ठ पृ० ३२०, २१ ।

जैसा ऊपर बताया गया है ये लक्षण 'शिशुपालवध' में देखने को मिलते हैं ।

(३) उसका नायक धीरोदात्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए । नायक युद्धप्रिय हो और उसके पात्रों में शोर्यगुण की प्रधानता हो । कुछ आलोचक कहते हैं महाकाव्यों के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है । उनके कार्यों की दिशा निर्धारित करने में देवताओं अथवा भाग्य का हाथ रहता है किन्तु पाश्चात्य विद्वान् लुकन ऐसा नहीं मानते हैं । सम्पूर्ण कथा सूत्र भी नायक से बंधा होना चाहिए ।

'शिशुपालवध' महाकाव्य के नायक क्षत्रिय वंशावतंस यदुकुल शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र हैं जिसमें नायकत्व के सब ही गुण विद्यमान हैं । वह विनयशील, सुन्दर, त्यागी, कार्य करने में कुशल, प्रिय बोलने वाले, लोकप्रिय, शुद्ध, भाषणपटु, उच्चवंशज, स्थिरचित्त, युवा, बुद्धियुक्त, साहसी, स्मृतिशाली, कलाप्रेमी, आत्माभिमानी, सम्य, शास्त्रज्ञ, शूर एवं तेजस्वी हैं। धीरोदात्त नायक के जितने गुण होने चाहिएं ये सब उनमें विद्यमान हैं। माघ के श्रीकृष्ण परब्रह्म होते हुए भी मनुष्य हैं । वे अवतार अवश्य हैं पर उनमें मानवीयता अधिक है। उनका अवतार 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' ही हुआ है, और इसीलिए महाकवि माघ अपने काव्य के प्रारम्भ में ही कह देते हैं 'श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि' । वे दुष्टों का दमन करने के लिए जरासन्ध, शिशुपाल आदि दुष्टों को दण्ड देने के लिए तथा सज्जनों पर अनुग्रह करने के लिए इस पृथ्वी पर आये थे । उनमें सेवा भाव अधिक है । ये बड़े उदार चरित्र हैं । इनमें कवि ने किस कुशलता से शक्ति के साथ क्षमा तथा दृढ़ता और आत्मगौरवके साथ विनय और निरभिमानता प्रदर्शित की है । नारद ने महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही इन्द्र सन्देश के रूप में शिशुपाल के वध का प्रस्ताव श्रीकृष्ण के सामने रखा था । श्री कृष्ण ने 'ओम्' कहकर अपनी स्वीकृति भी दी और तदनन्तर ही समस्त साधन जुटाये गये अन्त में वध करके अपनी प्रतिज्ञा को नायक श्री कृष्ण ने पूर्ण की । इस भाँति हम देखते हैं कि शिशुपालवध काव्य में सम्पूर्ण कथा सूत्र भी नायक श्री कृष्ण से बंधा हुआ है, जो कथा को फल की ओर ले जाता है । शोर्यगुण समन्वित श्रीकृष्ण संसार में शान्ति और व्यवस्था देखना चाहते थे, उसके लिए जहाँ आवश्यकता पड़ी उन्होंने युद्ध के मार्ग को भी अपनाया । उनके युद्धों का वर्णन अन्तिम तीन सर्गों में है ।

(४) शृंगार, वीर और शान्त रसों में कोई एक रस अंगी रूप में होता है 'शिशुपालवध' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि वह वीर रस प्रधान काव्य है । शृंगार रस वहाँ गोण रूप से है । मल्लिनाथ सर्वंकषा नाम्नी टीका में लिखते हैं "नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीरप्रधानो रसः, शृंगारादिभिरंगवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना । इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं, धन्यो माघकविर्वयं तुकृतिनः तत्सूक्ति संसेवनात् ।

(५) प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, अर्णव, (समुद्र) पर्वत, संध्या, प्रातःकाल, संग्राम, यात्रा तथा ऋतु आदि का वर्णन भी महाकाव्य में आवश्यक है

'शिशुपालवध' में जैसा पहले लिखा गया है इन सब का वर्णन मिलता है, कहीं-कहीं तो वह अतिरंजित रूप में भी है।

(६) मंगलाचरण, आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए।

शिशुपालवध में "श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव-सद्मनि" महाकवि ने इस भाँति मांगलिक "श्री" शब्द से अपने ग्रन्थ का आरम्भ करके "वस्तुनिर्देशा" त्मक" मंगलाचरण किया है। मल्लिनाथ लिखते हैं—"आशीराद्यन्यतमस्य प्रबन्ध मुखलक्षणात्वाच्च काव्यफल शिशुपालवधबीजभूतं भगवतः श्री कृष्णस्य नारद दर्शनरूपं वस्तु आदौ श्रीशब्दप्रयोगपूर्वकं निर्दिशन् कथामुपक्षिपति" श्री बल्लभदेव लिखते हैं "अभिलषित सिद्ध्यर्थ मंगलादि काव्यं कर्तव्यमिति स्मरणात्तु कविः श्री शब्दमादौप्रयुङ्क्ते।"

( ) महाकाव्य अतिसंक्षिप्त नहीं होना चाहिए क्योंकि महाकाव्य को एक विशालकाय वर्णन प्रधान (Narrative) काव्य कहा है।

आगे सर्गवार दी गई कथा को देखने से विदित होगा कि शिशुपालवध कथा तो बहुत संक्षिप्त है, पर वर्णनों से वह एक विशालकाय महाकाव्य बन गया है।

इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्याचार्यों के अनुसार शिशुपालवध एक महाकाव्य है।

शिशुपालवध महाकाव्य की कथा के स्रोत

शिशुपाल महाकाव्य में जिस कथा का वर्णन है उसको महाकवि माघ ने किस ग्रन्थ से लिया है, कथानक में कहाँ तक मौलिकता है, मूल-कथा में क्या परिवर्तन किया गया है, परिवर्तन का क्या उद्देश्य है आदि-आदि बातों का वर्णन यहाँ अभीष्ट है।

शिशुपालवध वाली कथा कई ग्रन्थों में आई, अतः विद्वानों का मत इस विषय में विभिन्न है। विद्वान् तो कहते हैं कि यह कथा महाभारत के सभापर्व से ली गई है, किन्तु कई मानते हैं कि वह मुख्य रूप से श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध से ली गई है। इस कथा का वर्णन कई पुराणों में हुआ है। महाभारत के सभापर्व में अर्घाहरण पर्व है उसमें भी शिशुपालवध का वर्णन है। इन सब बातों को देखते हुए प्रथम हम शिशुपाल वध सम्बन्धिनी कथाओं को जिन-जिन ग्रन्थों में आई हैं एक-एक करके संक्षेप रूप में लिखेंगे तत्पश्चात् इस निष्कर्ष पर आयेंगे कि महाकवि किस ग्रन्थ का ऋणी है और मुख्य रूप में कहाँ से उस कथा को ली है फिर उसमें क्या परिवर्तन किया है आदि।

महाभारत (सभा पर्व)—एक बार दानव द्वारा बनाई हुई पाण्डवों की सभा में नारद ऋषि लोकों में इधर-उधर विचरण करते हुए अनेक ऋषियों सहित पाण्डवों के निवास स्थान पर पहुँचे। युधिष्ठिर ने प्रणाम करने के पश्चात् उन्हें आसन दिया। युधिष्ठिर सहित उन पाण्डवों ने नारदजी की उपदेशप्रद नीति को सुना। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने अति नम्रता से पूछा कि क्या इस भाँति की अथवा इससे भी अधिक सुन्दर कोई सभा उन्होंने कहीं देखी है। इस प्रश्न के उत्तर में नारदजी भाँति-भाँति के राजाओं, देवताओं और इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुए राजा हरिश्चन्द्र के विषय में जब कह रहे थे तब युधिष्ठिर ने सहसा अपने पिता पाण्डु को पितृलोक में देखने को कहा। इसके उत्तर में नारद ने कहा कि राजा पाण्डु ने राजा हरिश्चन्द्र के वैभव को देखकर मनुष्य लोक में आते हुए मुझको नम्रता से यह कहा है कि तुम भी हरिश्चन्द्र की भाँति राजसूय यज्ञ करो क्योंकि समस्त पृथ्वी को जीतने में तू भी उसी प्रकार समर्थ है। ऐसा करने से मैं भी हरिश्चन्द्र के तुल्य ही बहुत वर्षों तक इन्द्र की सभा में आनन्द करूँगा। नारद के चले जाने पर युधिष्ठिर ने भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ के विषय में परामर्श किया। सब ब्राह्मणों, राजाओं तथा भाइयों की यह सम्मति हुई कि यज्ञ किया जाय। अब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का मन से ध्यान किया और उन्हें बुलाने के लिए दूत भेजा। द्वारिका में जैसे ही दूत ने जाकर सन्देश सुनाया कि श्रीकृष्ण इन्द्रसेन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चल पड़े और शीघ्र ही युधिष्ठिर के निकट पहुँचे। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को कहा कि यदि आपका मत हो तो मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि

विचार बिलकुल ठीक है और आप अधिकारी भी हैं। बात इतनी ही है कि जरासन्ध इस समय समस्त राजाओं को अपने अधीन करके सम्राट् बना हुआ है अत: जब तक उसको मारकर राजाओं को मुक्त न कर दो तब तक यह यज्ञ किसी भाँति से भी पूरा नहीं हो सकता। परामर्श के बाद निर्णय हुआ कि भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण जरासन्ध पर विजय प्राप्त करने के लिए मगध को जायं। वे वहाँ गए। श्रीकृष्ण की बताई हुई युक्ति के अनुसार भीम ने जरा-सन्ध को मार डाला। सब भाइयों ने सब दिशाओं को जीत लिया। विजय के साथ युधिष्ठिर के कोष की भी वृद्धि हुई। राजसूय यज्ञ की तैयारी होने लगी। श्रीकृष्ण भी उस समय आ पहुँचे थे। उन्होंने युधिष्ठिर को कहा कि तुम्हीं सम्राट् और राजसूय यज्ञ के अधिकारी हो। मुझको तो तुम किसी सेवा में लगा देना। धौम्य पुरोहित द्वारा बनाई गई सब सामग्री लाई गई। यज्ञ में वेदव्यास ब्रह्मा, धनंजय तथा धौम्य होता बने। ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा में नियुक्त किया। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य अपने ऊपर लिया। यज्ञ के उपरान्त भीष्म ने राजा युधिष्ठिर को राजाओं का यथायोग्य सत्कार करने के लिए कहा जब कि ब्राह्मण आदि सब आए हुओं को सन्तुष्ट किया जा चुका था। भीष्म ने कहा कि आचार्य, ऋत्विज, संयुज, स्नातक, नृप और प्रिय ये ६ अर्घ देने के योग्य माने गए हैं। अब इनमें से प्रत्येक के लिए अर्घ तैयार करो और प्रथम अर्घ इनमें जो श्रेष्ठ हो उनको प्रदान करो। युधिष्ठिर ने इस पर पितामह को कहा कि आप ही बताइये कि प्रथम अर्घ के लिए आप किसको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इस पर भीष्म ने श्रीकृष्ण को ही जब सर्वश्रेष्ठ बताया तो सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण के लिए उत्तम अर्घ समर्पण किया। श्रीकृष्ण ने अर्घ ग्रहण किया किन्तु शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की पूजा का अनुमोदन नहीं किया अत: उस सभा में शिशु-पाल ने भीष्म और युधिष्ठिर को फटकारकर श्रीकृष्ण को फटकारना प्रारम्भ किया। वह उन भीष्मादि से इस भाँति अपशब्द कहकर अपने ऊँचे आसन से उठा और अन्य राजाओं के साथ उस सभा से बाहर निकल गया। इस पर युधिष्ठिर ने उसके पास जाकर मधुर वचनों से कहा कि भीष्म सब कुछ जानते हैं तुमको इनका अपमान नहीं करना चाहिए। इस पर भीष्म फिर श्रीकृष्ण की पूजा को सर्व प्रथम करनी चाहिए इतना कहकर चुप हुए तो सहदेव ने भी कहना प्रारम्भ किया कि जो श्रीकृष्ण की पूजा नहीं चाहता उसके मस्तक पर यह मेरा चरण है। मैं उस राजा को मारकर ही छोड़ूंगा। चेदिराज शिशुपाल आँखें लाल-लाल करके क्रोध-पूर्वक राजाओं को कहने लगा कि मैं सेनापति बनकर स्थित हूँ आप लोग चिन्ता न करें। हम इकट्ठे ही कृष्णि और पाण्डवों को घेर कर युद्ध करेंगे। इस भाँति उसने यज्ञ-विध्वंस करना चाहा जिससे युधिष्ठिर के यज्ञ का अभिषेक तथा श्रीकृष्ण की पूजा न हो सके। युधि-ष्ठिर ने चिन्तित होकर भीष्म से सम्मति माँगी तो भीष्म ने कहा कि जब तक श्रीकृष्ण रूपी सिंह सो रहा है तब तक ही ये राजा और शिशुपाल श्वानतुल्य भौंक रहे हैं। तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस पर शिशुपाल ने फिर भीष्म को कठोर वाणी सुनाना प्रारम्भ किया। फिर भीष्म ने भीम को जो शिशुपाल के वचनों को सुनकर क्रोध में भर गए थे कहना प्रारम्भ किया कि शिशुपाल तीन आँख और चारभुजा वाला उत्पन्न हुआ था। इसने उत्पन्न होते ही गधे की भाँति रेंकना आरम्भ किया। परिवार वाले विकृत इसकी आकृति से जब घबराये तो आकाशवाणी हुई कि यह महा बलवान होगा इस पर माता ने जब पूछा कि मैं उस देव या

मनुष्य का नाम सुनना चाहती हूँ जो मेरे इस पराक्रमी पुत्र की मृत्यु बनेगा। फिर वाणी हुई कि जिस राजा की गोद में जाते ही इसके दो भुजायें और तीसरा ललाट का नेत्र गिर जायगा वही इसका नाशक शत्रु होगा। इस भाँति जब सब राजाओं की गोद में बैठ लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण की गोदी में बैठा तो वही हुआ। माता ने वरदान माँगा तो श्रीकृष्ण ने सौ अपराध क्षमा करने के लिए उसे कहा था। इसीलिए श्रीकृष्ण के वर से ही अभिमानी होकर हम व तुमको इस भाँति गर्जकर बोल रहा है। इस पर फिर भीष्म को शिशुपाल ने क्रोध से कहना प्रारम्भ किया तब भीष्म ने कहा कि ये श्रीकृष्ण विद्यमान हैं जिनकी हमने पूजा की है अब जिसकी बुद्धि शीघ्र मरण चाहती है वह उन्हें युद्ध के लिए आह्वान करे। इस पर शिशुपाल श्रीकृष्ण से युद्ध करने की इच्छा से उनको कठोर वचन कहने लगा। श्रीकृष्ण ने इस पर फिर सबके सम्मुख शिशुपाल को भी सुनाने योग्य बात सुनाने लगें और अन्त में कहा कि अब इसके सौ अपराध पूर्ण हो चुके हैं। अब तो यह और आगे बढ़ गया है अत: मैं इस सुदर्शन चक्र से इसके सिर को पृथक् करता हूँ। इतने ही में उसका सिर चक्र से पृथक् होकर गिर पड़ा। शिशुपाल के देह से निकला हुआ तेज श्रीकृष्ण के देह में राजाओं के देखते-देखते प्रवेश कर गया। शिशुपाल के मारे जाने पर कुछ राजा तो हर्षित हुए और कुछ क्रोधित। तत्पश्चात् उसके मृत शरीर का दाह संस्कार कराया गया।

भागवत के दशम स्कन्ध में शिशुपाल की कथा

नारद जी ने नरकासुर के वध और अकेले कृष्णचन्द्र का बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह होने का जब वर्णन सुना तो अति उत्कंठा पूर्वक भगवान् श्री कृष्ण की गृहचर्या देखने के लिए द्वारिकापुरी में आये। श्री कृष्ण का उनकी पत्नियों के सोलह सहस्र महलों से सुशोभित उस पुरी में श्री सम्पन्न रनिवास था। उनमें से एक विशाल भवन में श्री नारद जी ने प्रवेश किया जहाँ पर उन्होंने भगवान् को रुक्मिणी जी के साथ देखा। नारद को देखते ही श्री कृष्ण उठ खड़े हुए, प्रणाम किया और अपने आसन पर बैठाया। कुशल पूछी और अपने आपको प्रस्तुत किया। नारद श्री कृष्ण की प्रशंसा करते हुए उनकी योगमाया को देखने के लिए उनकी दूसरी पत्नी के भवन में गए। वहाँ पर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया और उद्धवजी के साथ चौसर खेलने में व्यस्त थे। नारद जी को देखकर पूर्ववत् सत्कार किया। इस भाँति नारदजी ने विभिन्न भवनों में भगवान् को विभिन्न रूप में देखा और प्रसन्न चित्त हो अन्त में उन्हीं का स्मरण करते हुए चले गये। एक बार ब्राह्म मुहूर्त में उठकर भगवान् जब नित्यचर्या में व्यस्त हुए उस समय जरासन्ध के कारावास में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित एक दूत ने आकर कहा कि जरासंध अति गर्वित होकर हमको, जो आपकी प्रजा हैं, अत्यन्त कष्ट दे रहा है। जरासंध रूप कर्म-बन्धन से बद्ध हम लोगों को अब आप ही आकर छुड़ाइये। दूत के इस प्रकार प्रार्थना करते ही **पिंगलवर्ण जटाधारी परमतेजस्वी देवर्षि नारद जी वहाँ सूर्य के समान प्रकट हुए। उन्हें देखते ही समस्त लोकपालों के प्रभु भगवान् कृष्ण ने सम्पूर्ण सभासद् और अनुचरगण के सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया फिर विधिपूर्वक आसनादि देकर उनका सत्कार किया और मधुर वाणी से कहा आप तीनों लोकों में विचरण करते हो** अतः आपको सब ज्ञात है कि क्या होने वाला है। मैं इसीलिए आपसे पूछता हूँ कि अब पाण्डव गण क्या करना चाहते हैं। नारद जी ने इस पर कहा कि आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप तो ब्रह्म हैं किन्तु इस समय मनुष्य-लीला कर रहे हैं अतः युधिष्ठिर की जो कुछ करने की इच्छा इस समय है उसे बताऊँगा। भगवान्, युधिष्ठिर चक्रवर्तित्व की इच्छा से राजसूय यज्ञ द्वारा आपका यजन करना चाहते हैं आप उसका अनुमोदन कीजिये। उस श्रेष्ठ यज्ञ में सम्पूर्ण देवतादि और बड़े-बड़े यशस्वी नृपगण आपके दर्शनों की इच्छा से आयेंगे। श्री कृष्णजी ने देखा कि विजय प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक अपने पक्ष वाले यादवगण नारदजी की बात को स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो उन्होंने अपने अनुगत **भक्त उद्धव से मुस्काराकर कहा उद्धव! तुम पदार्थों के यथावत् प्रकाशक तथा शुभ सम्पत्ति का मर्म जानने वाले हो अतः तुम अब बताओ कि हमें क्या करना चाहिए।** पाण्डवों के यज्ञ में जाना चाहिए या जरासंघ

के यहाँ जाकर राजाओं को उसके कारागार से मुक्त करना चाहिए । इस पर उद्धव जी कहने लगे नारद जी के कहने के अनुसार आपको यज्ञ कराने वाले अपने फूफेरे भाई युधिष्ठिर की सहायता करनी चाहिए और शरण में आये हुए राजाओं की रक्षा करना भी कर्त्तव्य ही है किन्तु राजसूय यज्ञ वही कर सकता है जो चारों दिशाओं को जीत ले अतः उस दिग्विजय में जरासंध को भी जीतना आवश्यक होगा तथा जरासंध को जीतने से (यज्ञकर्म और शरणागतरक्षा) दोनों कार्य सिद्ध हो जायंगे । जरासंध के वध से अनेक कार्य सिद्ध होंगे अतः प्रथम राजसूय यज्ञ ही में चलिए । उद्धवजी की युक्तियुक्त बातों का सबने ही आदर किया । तत्पश्चात् श्री कृष्ण जब वहां पर जाने की तैयारियाँ कर चलने लगे तो नारदजी भगवान् को प्रणाम कर आकाशमार्ग चले गए । भगवान् ने दूत को यह कहकर विदा किया कि राजाओं को जाकर यह कहना कि मैं शीघ्र ही जरासंध का वध कराऊँगा । इधर भगवान् आनर्त, सौवीर, मरु, और कुरुक्षेत्र को लांघकर पर्वत, नदी, पुर, ग्राम, ब्रज और आकरों को पार करते हुए दृषद्वती और सरस्वती से उतर कर पांचाल और मत्स्य देश का उल्लंघन करते हुए इन्द्रप्रस्त के निकट पहुंचे । श्री कृष्ण के आगमन को सुनकर बन्धु वर्ग तथा उपाध्याय सहित युधिष्ठिर अति प्रसन्न होकर नगर से बाहर आये । श्री कृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया । नर-नारी उन्हें देखने के लिए राजमार्ग पर इकट्ठे हो गये । तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने राजभवन में प्रवेश किया जहाँ पर वह सबसे मिले । युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण को उनकी सेना के सहित ऐसे स्थान पर रक्खा जहाँ पर वे नित्यनूतन सुख प्राप्त करें । भगवान् ने भी युधिष्ठिर का प्रिय करने के लिए वहाँ कुछ मास ठहरना अच्छा समझा । एक दिन युधिष्ठिर ने सबके सम्मुख श्री कृष्ण को कहा कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप मेरे इस संकल्प को पूर्ण कीजिए । इस पर श्री कृष्ण ने उनके विचार को ठीक बताते हुए कहा कि समस्त राजाओं को जीतकर, भूमण्डल को वशीभूत करके यज्ञ की समस्त सामग्री एकत्र कीजिए । युधिष्ठिर ने इस पर भाइयों को दिग्विजय के कार्य में नियुक्त किया । भाइयों ने दिग्विजय करके युधिष्ठिर को प्रचुर धन दिया किन्तु जरासंध को अजेय सुनकर युधिष्ठिर जब चिन्तित हुए तब श्री कृष्ण ने उन्हें उपाय बताया । अब जरासंध को जीतने के लिए अर्जुन, भीम, और श्री कृष्ण चल पड़े । श्री कृष्ण ने अन्त में भीम द्वारा जरासंध का वध करवाया और राजाओं को मुक्त करा के इन्द्रप्रस्थ आये तथा युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित हुए । यज्ञ की दीक्षा तथा याजकों की विधिवत् पूजा के बाद अब यज्ञ में आये हुए सभी राजाओं का भी सम्मान करना था । उन्हें भी अर्घ्य देकर सत्कृत करना था । वहाँ आये हुए सभी राजा अपने को श्रेष्ठ समझते थे । अब प्रश्न उठा कि अग्र पूजा किसकी की जाय ? वहाँ एक की अपेक्षा एक बड़ा था अतः जब किसी का निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिर के भाई सहदेव ने श्री कृष्ण की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए कहा कि श्रीकृष्ण की पूजा से सब प्राणियों की पूजा हो जायेगी अतः श्री कृष्ण की ही अग्र पूजा करना चाहिए। सभा में बैठे हुए सभी श्रेष्ठ पुरुषों ने जब सहदेव की बात का अनुमोदन किया तो युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण का पूजन किया । श्री कृष्ण की पूजा जब इस भाँति हो गई तब दमघोष के पुत्र शिशुपाल श्री कृष्ण के गुणों से ईर्ष्यालु होकर उनको कठोर वचन सुनाने लगा । इस प्रकार शिशुपाल अनेकों अपशब्द कहता ही गया । फिर भी श्री कृष्ण कुछ नहीं बोले । राजाओं में

कुछ तो मन ही मन शिशुपाल को गाली देने लगे कुछ ने कानों को बन्द कर लिया किन्तु क्रोध के मारे पाण्डु पुत्र, मत्स्य देश व ृंजय देश के राजा अपने-अपने शस्त्रों को उठाकर शिशुपाल के मारने को सन्नद्ध हुए तब शिशुपाल ने उन राजाओं को मारने के लिए ढाल तलवार उठा ली। श्री कृष्ण ने यह समझकर कि यह अति बलवान् है अतः यह सबको मारेगा इससे मैं ही इसको मारूँ यह विचार कर उसी समय उठकर उन्होंने अपनी ओर से राजाओं को निवारण करके सम्मुख आते हुए अपने शत्रु शिशुपाल के शिर को चक्र से काट दिया। उस समय शिशुपाल के देह में से निकली हुई ज्योति सबके देखते देखते श्री कृष्ण में मिल गई। जय विजय को सनकादिक का शाप लगा अतः बार-बार जन्म हुआ इस भाँति यह शिशुपाल पहले जन्म में हिरण्याक्ष, और हिरण्यकश्यप हुए, दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण हुए, तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र हुए इस भाँति तीन जन्म के चले आये वैर से तन्मय बुद्धि से रूप का ध्यान करते-करते उसी रूप को प्राप्त हुए अर्थात् पार्षद् हो गए। इसके पश्चात् चक्रवर्ती राजा युद्धिष्ठिर ने यज्ञ के कराने वाले ब्राह्मणों को और बड़ी सभा में बैठने वालों को दक्षिणा दी फिर विधिपूर्वक सब का पूजन करके यज्ञान्त स्नान किया।

पुराणों में वर्णित कथा

(क) पद्मपुराण में शिशुपालवध वर्णन—अध्याय २५२ में रुक्मिणी हरण कथा के कह लेने के पश्चात् जरासंध का भीम के द्वारा वध कराया गया है फिर शिशुपाल के वध का वर्णन इस भाँति है—

अथ ताभ्यामिन्द्रप्रस्थं गत्वा वासुदेवस्तत्र महाक्रतुं राजसूयं युधिष्ठिरं कारयामास। तत्र समाप्ते क्रतौ अग्रपूजां भीष्मानुमतेन कृष्णाय दत्तवान् ।।१५।। तत्र शिशुपाल कृष्णं बहून्याक्षेपवाक्यान्युक्तवान् ।।१६।। कृष्णोऽपि सुदर्शनेन तस्य शिरश्चिच्छेद ।।१७।। असौ जन्मत्रयावसाने हरेः सारूप्यमगमत् ।। १८ ।।

(ख) विष्णु महापुराण में शिशुपाल सम्बन्धिनी कथा—चतुर्थांश के त्रयोदश अध्याय में पृष्ठ संख्या १९१ से इस भांति प्रारम्भ है—

श्रुतश्रवसमपि चेदिराजो दमघोषनामोपयेमे ।।४४।। तस्यां च शिशुपाल स वा पूर्वमप्युदार विक्रमो दैत्यानामादि पुरुषो हिरण्यकशिपुरभवत् ।। ४६ ।। यश्च भगवता सकललोकगुरुणा नारसिंहेन घातितः ।।४७।। पुनरपि अक्षयवीर्य शौर्य संपत्पराक्रम गुणास्समाक्रान्त सकलत्रैलोकेश्वरप्रभावो दशाननो नामाभूत् ।।४८।। बहुकालोपभुक्त् भगवत्सकाशावाप्तशरीरपातोद्भवपुण्यफलो भगवता राघवरूपिणा सोऽपि निधनमुपपादितः ।।४९।। पुनश्चेदिराजस्य दमघोषस्यात्मजशिशुपालनामाऽभवत् ।।५०।। शिशुपालत्वेऽपि भगवतो भूभारावतारणायावतीर्णांशस्य पुंडरीकनयनाख्यस्योपरि द्वेषानुबंध मतितरांचकार ।।५१।। भगवता च स निधनमुपानीतास्तत्रैव परमात्मभूते मनस एकाग्रतया सायुज्यमवाप ।।५२।। भगवान् यदि प्रसन्नो यथामिलषितं ददाति तथा अप्रसन्नोऽपि निघ्नन् दिव्यमनुपमं स्थानं प्रयच्छति इति चतुर्दश अध्यायः।

हिरण्यकशिपुत्वे च रावणत्वे च विष्णुना। अवाप निहतोभोगानप्राप्यानममरैरपि ।।१।। नत्वयं तत्रतेनैव निहतः स कथं पुनः ।। संप्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ ।।२।। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वधर्मभृतांवर। कौतूहलपरेणैतत्पृष्टो मे वक्तुमर्हसि ।। दैत्येश्वरस्यवधायाखिललोकोत्पत्तिस्थितिविनाशकारिणापूर्णं तनुग्रहवं कुर्वता नृसिंहरूपमाविष्कृतम् ।।४।। तत्र च हिरण्यकशिपोर्विष्णुरयमित्येतन्न मनस्यभूत् ।।५।। निरतिशय पुण्य समुद्भूतमेतत्सत्वजातमिति ।।६।। रजोद्रेक प्रेरितैकाग्रमतिस्तदभावनायोगात्ततोवाप्तवध हैतुकीं निरतिशयामेवाखिल त्रैलोक्याधिक्यकारिणीं दशाननत्वे भोगसंपदमवाप ।।७।। न तु स तस्मिमन्ननादि निधने परब्रह्मभूते भगवत्यनालंबिनिकृते मनसस्तल्लयमवाप ।।८।। एवं दशाननत्वेप्यनंगपरा-

धीनतया जानकीसमासक्त चेतसा भगवता दाशरथि रूपधारिणा हतस्य तद्रूप दर्शनमेवासीत् । नायमच्युत इत्यासक्तिर्विपद्यतोंत:करणे मानुषबुद्धिरेव केवलमस्याभूत् ॥ ६ ॥ पुनरप्यच्युत विनिपात मात्रफलमखिलभूमंडलश्लाध्य चेदिराजकुले जन्म अव्याहतैश्वर्यं शिशुपालत्वेप्यवाप ॥१०॥ तत्र त्वखिलानामेव स भगवन्नाम्नां त्वंकार कारणमभवत् ॥११॥ ततश्च तत्काल-कृतानां तेषामशेषाणामेवाच्युतनाम्नामनवरतमनेकजन्मसुवर्द्धितविद्वेषानुबंधिचित्तो विनिंदन संतर्जनादिषूच्चारणमकरोत् ।१२। तच्च रूपमुत्फुल्लपद्मदलामलाक्षिमत्युज्ज्वलपीतवस्त्रधार्यमल किरीटकेयूरहारकटकादिशोभितमुदारचतुर्बाहु शंखचक्रगदाधरमतिप्ररूढवैरानुभावादटनभोजन-स्नानासनशयनादिष्वशेषावस्थान्तरेषु नान्यत्रोपययावस्य चेतस: ॥१३॥ ततस्तमेवाक्रोशेषूच्चा-रयंस्तमेव हृदयेन धारयन्नात्मवधाय यावन्नद्गबद्धस्तचक्रांशुमालोज्ज्वलमक्षय तेजस्स्वरूपं ब्रह्म-भूतमपगत द्वेषादिदोशं भगवंततमद्राक्षीत् ॥

(ग) अग्निपुराण में चतुर्थ अध्याय से १२ अध्याय तक "वराहनारसिंहदीनामवता-राणां वर्णनम्" है। गुप्तरूप में शिशुपालवध की कथा का संकेत है। पाठक नीचे लिखी पंक्तियों पर मनन करें—

अग्निरुवाच—

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम् । हिरण्यक्षोऽसुरेशोऽभूदेवांजित्वा दिविस्थित: । देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहक: । अभूतं दानवं हत्वा दैत्यै साधं तू कण्टकम् ॥ धर्म-देवादिरक्षाकृत्तत: सोऽन्तर्दधेहरि: ॥ हिरण्याक्षस्य वैभ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ जितदेवयज्ञ-भाग: सर्वदेवाधिकारकृत नारसिंहं वपु: कृत्वातंजघान सुरै: सह ॥ रावणादैर्वधार्थाय चतुर्धा-ऽभूत्स्वयं हरि: । राज्ञो दशरथाद्राम: कौशल्यायां बभूव ह

× × ×

भुवोभारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवत: । हिरण्यकशिपो: पुत्रा: षड्गर्भायोगनिद्रया ॥

(घ) ब्रह्मवैवर्तपुराण में शिशुपालवध—

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय:—

कृष्णो युधिष्ठिराहूवानात् प्रययौ हस्तिनापुरम् ।
कुन्तीं सम्भाष्य भ्रातृञ्च नृपांश्च प्रमुदान्वित: ॥२३॥

उपायेन जरासंधं निहत्य शाल्वमेव च ।
कारयामास यज्ञञ्च विधिबोधित दक्षिणाम् ।
मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम् ॥ २४ ॥

शिशुपालं दन्तवक्रं तत्र यज्ञे जघान स: ।
अतीव निन्दां कुर्वन्तं सभायां सुरभूपयो: ॥२५॥

पपात तच्छरीरञ्च जीवोगत्वा हरे: पदम् ।
न दृष्ट्वा तत्र संदेशं तुष्टावागत्य माधवत् ॥२६॥

शिशुपाल उवाच

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदांगानाञ्च माधव ।
सुराणामसुराणाञ्च प्राकृतानाञ्च देहिनाम् ॥२७॥
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदे करोषि च ।
मायया च स्वयं ब्रह्मा शंकरः शेष एव च ॥२८॥
मनवो मुनयश्चापि वेदाश्च सृष्टिपालका :
कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादय ॥२९॥
स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री व स्वयमेव नपुंसकम् ।
कारणञ्च स्वयं कार्य जन्यश्च जनकः स्वयं ॥३०॥
यद् यन्त्रस्य गुणा दोषा यन्त्रिणश्च श्रुतौश्रुतम् ।
सर्वे यन्त्रा भवान् यंत्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३३॥
क्षमापराधं मूढस्य स्तोत्रेण विस्मयं ययुः ।
परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरे कृष्णमीश्वरम् ॥३२॥
कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान् ।
कुरु पाण्डव युद्धञ्च कारयामास भेदतः ॥३३॥
भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः ।
पुनर्ययौ द्वारकाञ्च चिरं स्थित्वा नृपाज्ञया ॥३४॥

(ङ) आगम में वर्णित शिशुपाल कथा—

शिशुपालः पुराजातः त्रिनेत्रश्च चतुर्भुजः ।
पितरौ चापि तं दृष्ट्वा हातुं वै चक्रतुर्मतिम् ॥
अथोच्चचार नभसो वागेवमशरीरिणी ।
नैष त्याज्यो महाराज । श्रीमन् वीरो भयिष्यति ॥
स चाऽस्य वधको भावी यं दृष्ट्वा न भविष्यतः ।
बाहूनेत्रं च सहसा तस्माद्वै पाल्यतामयम् ॥
कौतूकादथ तं द्रष्टुं नृपाः सर्वे समागमन् ॥
अवाक् पूर्वं नृपोऽर्धाङ्के पुत्रं तेषां न्यवेशयत् ।
नाऽसौ प्राप्तविकारं च कृष्णादन्यत्र बान्धवात् ।
तं दृष्ट्वा व्यथिता माता कृष्णं वरमयाचत ॥
न वध्योऽयं त्वया देव ! पुत्री मे दीयतामिति ।
सहिष्ये शतमागांसि तामुवाच हरिस्तदा ।'

———

किरातार्जुनीय का कथानक (माघ-काव्य के कथा-विकास के लिए स्रोत)

युधिष्ठिर द्यूत में हार गये तब उनको तेरह वर्ष का वनवास हुआ। पाँचों भाई द्रौपदी को लेकर काम्यकवन (द्वैतवन) में रहने लगे। युधिष्ठिर यहाँ रहकर भी दुर्योधन की चिन्ता से मुक्त हो ऐसा नहीं था। एक दिन दुर्योधन का राजकाज व प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिए युधिष्ठिर ने एक बनवासी को "चर" बनाकर ब्रह्मचारी के वेष में हस्तिनापुर भेजा जिसने आँखों देखा वर्णन करते हुए युधिष्ठिर की योग्यता, नीति, न्यायशीलता, उत्कृष्ट प्रजापालन तथा प्रजा को अनुरक्त बना लेने की बातें कहीं। जिसने यह भी संकेत दिया कि जुए के बहाने जीती हुई पृथ्वी को यह नीति से भी जीत लेने की चेष्टा में लगा[1] है। सारी बातें बताकर जब वनचर लौट गया तब द्रौपदी ने युधिष्ठिर की शिथिलता, शान्ति तथा सहनशीलता की कड़ी निन्दा की और अपने ऊपर किये गये अत्याचारों और पाण्डवों पर आई हुई विपत्तियों का भी चित्र खींचा। युधिष्ठिर की क्षमाशीलता को ही सारे अनर्थों का मूल बताते हुए उन्हें शस्त्र धारण करने के लिए उसने प्रेरित किया। वह कटु-शब्दों का प्रयोग करती हुई कहने लगी कि शान्ति तो तपस्वियों के लिए उचित है, क्षत्रियों और उनमें विशेष-कर राजाओं में उसका होना कायरपन की निशानी है। इन सब बातों को सुनकर भीमसेन ने उसका साथ दिया। उन्होंने द्रौपदी की बातों की पुष्टि की और अपनी ओर से भी बहुत कुछ कहा सुना। उसने कहा कि हम चारों भाइयों के आगे युद्ध में कोई ठहर नहीं सकता[2] यह मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ फिर युद्ध कर दुर्योधन से अपना राज्य क्यों नहीं छीन लेना चाहिए। ऐसे कार्य में तो विलम्ब करना भी नहीं चाहिए। प्रतिज्ञा का निर्वाह उसके साथ किया जाता है जो स्वयं प्रतिज्ञा का निर्वाह करता हो[3] अवधि की प्रतीक्षा भी निम्न-वृत्तिवाले के सामने नहीं करनी चाहिए। भीम के भाषण को सुनकर युधिष्ठिर ने प्रथम तो उनके भाषण की प्रशंसा की, राजनीति का रहस्य समझाया, और अन्त में कहा कि तेरह वर्ष के बनवास की प्रतीज्ञा को तोड़ना अच्छा नहीं है। समय आने देना चाहिए तब जैसा उचित होगा वैसा ही किया जायगा इस भाँति नीति-विशारद युधिष्ठिर ने एक कुशल महावत की भाँति मदमस्त गज सरीखे भीम को नीति की उक्तियों से जैसे ही शान्त किया कि महर्षि व्यास ऋषि आ गये। व्यास जी के सामने समस्या प्रस्तुत हुई। व्यासजी ने कहा कि युद्ध में उसी की विजय होती है जिसके पास सेना तथा अस्त्रादि का विशेष बल है।

---

१ दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुंजगतीं सुयोधनः—किरात १७

२ प्रसहेतरणेतवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजस :—किरता २. २३

३ अथचेदवधि प्रतीक्षते कथमाविष्कृतजिह्मवृत्तिना-किरात २ सर्ग

न्याय से तुम लोगों को तेरह वर्ष पश्चात् राज्य मिलना चाहिए किन्तु लक्षणों से तो ज्ञात होता है कि दुर्योधन प्राप्त हुए राज्य को तुम्हें सीधी तौर से नहीं लौटायेगा। युद्ध तो करना ही होगा। अतः भीष्म, कर्ण तथा द्रोणाचार्य आदि वीरों को जीत सको उन दिव्य अस्त्रों को पाने के लिए मैं अर्जुन को एक मंत्र देता हूँ जिसके द्वारा वह कठिन तपस्या कर इन्द्र भगवान् को प्रसन्न करेगा। दिव्य अस्त्र की प्राप्ति पर युद्ध में विजय होगी, बस यही मेरे आने का उद्देश्य है। ऐसा कहकर व्यासजी ने अर्जुन को मंत्र-दीक्षा दी और एक यक्ष को उसके साथ करके चले गये। अर्जुन को जाने के लिए कटिबद्ध देखकर द्रौपदी ने अर्जुन से कहा कि जब तक तपस्या पूरी न हो आपको हम लोगों के लिए व्यग्र नहीं होना है, क्योंकि बिना आग्रह के कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है। द्रौपदी के ओज भरे वाक्यों को सुनकर अर्जुन में जोश आगया। वह धनुष, तीर, तरकश लेकर इन्द्रकील पर्वत की ओर तपस्या के लिए चल पड़ा।

इन्द्रकील पर्वत की ओर यक्ष के साथ जाते हुए अर्जुन ने शरद् की शोभा को देखा। जलाशय में कमलों की शोभा थी। चारों ओर खेतों में धान थे। इस शोभा को देखकर अर्जुन उसमें तल्लीन हो गये। यक्ष ने उनको शरद् के गुणों का वर्णन किया। वे गिरिराज हिमालय पर पहुँचे। वहाँ की अद्भुत प्राकृतिक सुषमा ने अर्जुन को मुग्ध कर दिया। उससे जुड़े हुए अनेक देवी-देवताओं, ऋषि मुनियों तथा महा मानवों के प्रसंग उनके स्मृति-पथ में अवतीर्ण हुए। हिमालय के वर्णन के बाद यक्ष ने अर्जुन को इन्द्रकील पर्वत के विषय में बहुत-सी बातें बताई। अन्त में कहा कि वहीं उन्हें शस्त्र धारण कर तपस्या करना होगा। तपस्या में बहुत सी विघ्न बाधायें उपस्थित होंगी, उनको दूर करने के पश्चात् ही अभीष्ट की प्राप्ति होगी। इसलिए आप इन्द्रिय चापल्य को त्यागकर भगवान् शंकर की तपस्या में लीन हों। लोकपाल और इन्द्र आपकी तपस्या की वृद्धि करेंगे। इस भाँति अर्जुन को आशीर्वाद देकर यक्ष अपने स्थान पर चला गया और अर्जुन अपनी कार्य-सिद्धि के लिए इन्द्रकील पर निवास करने लगे।

इन्द्रकील पर्वत पर गिरि-सरिताओं के जलकणों से अत्यन्त शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित हो रही थी। अर्जुन ने प्राकृतिक छटा वाले इन्द्रकील पर्वत पर शान्त वातावरण में तपस्या आरम्भ की। सांसारिक विषयों से चित्त को हटाकर इन्द्रियों को वशीभूत करके जप और तप में लीन हुए। आयुधधारी तपस्वी अर्जुन को देखकर हिंसक सर्प, सिंह, व्याघ्रादि ने उस स्थान को छोड़ दिया। उन पशुओं ने इन्द्र को जाकर अर्जुन की तपस्या के विषय में जब कहा तो इन्द्र ने अपने हर्ष से आवेग को रोक कर उनकी तपस्या की परीक्षा के लिए अप्सराओं को बुलाकर कहा कि तुम लोग काम के अमोघ अस्त्र हो। तुम जाओ और इन्द्र-कील पर्वत पर अर्जुन की परीक्षा लो।

महेन्द्र के भवन से इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन के समीप प्रस्थान करती हुई उन अप्सराओं के रक्षणार्थ इन्द्र ने हाथी रथ घोड़ों के साथ अपने भृत्यों को भी भेजा। इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच कर गंधर्वगण शिविरों को बनाकर गंगा के समीप हरी-हरी घासों से भरी हुई भूमि पर रहते हुए उस स्थान की शोभा बढ़ाने लगे।

गंधर्वगण से युक्त होकर देवांगनायें बन में विहार करने लगीं। कवि ने इस अष्टम सर्ग में मानिनी नायक-नायिकाओं के पारस्परिक व्यापरों तथा चेष्टाओं का दिग्दर्शन कराया है। इसमें पुष्प-चयन, जलक्रीड़ा आदि का सुन्दर वर्णन है। जल-विहार के वर्णन के बाद नवम सर्ग में कवि ने सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय आदि का वर्णन किया है। इसके बाद रात्रि में नायक-नायिकाओं के मधुपान तथा रति व्यापार का वर्णन है। प्रभात हो गया। कुछ सो जाने से उन अंगनाओं का रतिजन्य खेद दूर हो गया। दशम सर्ग में अर्जुन को लुभाने के लिए अप्सराओं का अलंकृत रूप में हाव भावों, कटाक्षों द्वारा आगमन दिखाया है। इसी में वर्षादि ऋतुओं का भी वर्णन है। सब कुछ चेष्टाओं के करने पर भी अर्जुन विचलित न हुए तो दिव्य अंगनाओं ने जाकर इन्द्र को कहा। इन्द्र ने अर्जुन के तपोनुष्ठान को देखने के लिये मुनिवेश धारण किया। भद्रवेश में आए हुए इन्द्र को देखकर अर्जुन अत्यन्त प्रभावित हुए। अर्जुन ने सत्कार किया। इन्द्र ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु अर्जुन ने कहा कि आपने जो कुछ कहा है वह तो युक्तियुक्त है किन्तु मैं यहाँ पर तपोऽनुष्ठान करने के लिए क्यों आया हूँ इस रहस्य को जब तक आप जान न लेंगे तब तक आपका यह उपदेश मेरे लिए ठीक नहीं रहेगा। अर्जुन ने अपनी द्यूत में युधिष्ठिर के पराजय से लेकर इन्द्रकील पर्वत पर आकर तपस्या करने तक की सारी कथा कह सुनाई। इस पर इन्द्र ने अर्जुन को महादेव की आराधना करने के लिए उपदेश दिया।

इन्द्र के चले जाने पर उनके उपदेशानुसार अब अर्जुन शिवजी की आराधना करने लगे। अर्जुन के तपः प्रभाव सहन न कर सकने के कारण महर्षिगण शिवजी की शरण में पहुँचे। शिवजी प्रकट हुए। महर्षियों ने अर्जुन के तप के प्रभाव का वर्णन करना आरम्भ किया। इस पर शिवजी ने कहा कि नारायण का अंश नामधेय श्रीकृष्ण का मित्र धनंजय है। यह मुझको ही प्रसन्न करने के लिए ध्यान में लीन है। देवकार्य में लगे हुए इसको देखकर विघ्न बाधा डालने के लिये छल से बाराह रूप को धारण कर मूक दानव जीतना चाहेगा। उसी समय मैं किरात रूप धारण कर मेरे द्वारा उसके मारे जाने पर भी अर्जुन के भी एक साथ बाण चलाने के कारण वह मुझ से अपनी शिकार के लिए झगड़ पड़ेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए अर्जुन के पराक्रम को आप लोग देख लेना तत्पश्चात् शिवजी ने किरातवेश धारण किया। किरात सेना भी तैयार होकर सिंह के समान गर्जना करने लगी और शिवजी से आदिष्ट होकर मृगया के बहाने से चौतरफ फैल गयी। पहले तो गणों के साथ महादेवजी भयंकर रूप धारण कर सबको भयभीत करते हुए अर्जुन के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ आते ही अर्जुन की ओर धावा करते हुए वराह रूपधारी मूक दानव को देखकर किन्हीं लड़ाकू किरातों के साथ शिवजी उसके पीछे चल पड़े। अर्जुन ने यह दृश्य देखा। अर्जुन को सन्देह हुआ कि यह वराह रूप कोई इन्द्रजाल तो नहीं है। जो कोई भी हो अवश्य मैं इस हिंसक को मारूँगा। ऐसा सोचकर अर्जुन ने गांडीव धनुष पर बाण रक्खा और उधर भगवान् शंकर ने भी अपने पिनाक धनुष को बाणारुढ़ किया। दोनों ने बाण एक साथ ही चलाये। शंकर धराशायी हुए। फिर अर्जुन अपने बाण को वापस लेने के लिए उस वराह की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर मृत वराह को देख लेने के पश्चात्

शिवजी के द्वारा भेजे हुए अचानक ही उपस्थित एक वनेचर को अर्जुन ने देखा। वनेचर ने कहा कि मेरे स्वामी के बाण को आप न लें। आप धोखे से ही उस बाण को लेने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। किरातपति के सिवाय यह वराह मारा नहीं जा सकता इसलिए उनका बाण लौटाकर राम सुग्रीव की भाँति उनसे मैत्री कर लीजिये। इस पर अर्जुन ने कहा, आपकी वाणी वैसे ही मनोहारिणी है। कोई तो केवल शब्दाडम्बर को पसंद करते हैं, कोई सरल-रचना से अपने हृदय भाव को प्रकाशित करने में चतुर होते हैं तो कोई केवल गूढार्थ-रचना में पटु होते हैं परन्तु आप तो इन सब गुणों से युक्त हैं। किरात होकर भी आप विलक्षणता से बोलते हैं और सान्त्वना पूर्वक प्रलोभन देकर ठगना चाहते हैं जिससे अनुचित भी समुचित ही प्रतीत हो। ठीक बात तो यह है कि आपके स्वामी का बाण कहीं छिप गया है इसके लिये तो वन पर्वतों को ढूंढ़ना पड़ेगा। सुरेन्द्र के बाण को भी मैंने लेना न चाहा तो किरात-राज के बाण की तो बात ही क्या है। आपके स्वामी मिथ्या आरोप लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। यदि वह स्वयं बाण लेने यहाँ आयेंगे तो मैं अच्छी तरह उसका मजा चखा दूँगा। वनेचर यह कहकर शिवजी के पास चला गया कि हमको जीतना इतना सरल नहीं है जितना तुम समझते हो। बाद में शिवजी की आज्ञा से किरात सेना गरजती हुई अर्जुन से लड़ने के लिए चल पड़ी। शिवजी भी किरात वेश में पिनाक धनुष तानकर खड़े हुए। शिवजी के गण अर्जुन पर टूट पड़े। अर्जुन ने अपने युद्ध-कौशल से सारी शिव-सेना को मूर्च्छित कर दिया।

अब शिव-अर्जुन का भी युद्ध छिड़ गया। महादेवजी की सेना अपने आयुधों को छोड़कर भाग गई। भय के मारे कार्तिकेय के सैनिक भी भाग गये। कार्तिकेय के वचनों की ओर भी सेना ने ध्यान न दिया। अतः अब शिव के साथ अर्जुन का युद्ध है। अर्जुन द्वारा छोड़े हुए बाणों को शिवजी ने छिन्न-भिन्न कर दिया। अर्जुन भी शिवजी के बाणों का निवारण करते रहे। शिवजी ने कृपा से द्रवित होकर मर्मवेधी बाणों को नहीं फेंका। अर्जुन उनके अनेक बाणों से आहत होते हुए भी नहीं घबड़ाये। तुमुल युद्ध देखकर सब चकित हो गये।

अब अर्जुन किरातपति की संग्राम कुशलता को देखकर एवं चकित से होकर अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे। हाथी भी नहीं, घोड़े भी नहीं, रथ भी नहीं, पताकायें भी नहीं, वीर योद्धा भी नहीं, रणभेदी दुन्दुभि भी नहीं फिर भी मेरी शक्ति क्यों कुँठित हो रही है। क्या यह कोई माया है ? या मुझे ही मति-विभ्रम हो रहा है, या मैं वह अर्जुन ही नहीं हूँ ? वास्तव में वह किरात नहीं मालूम पड़ता। अर्जुन ने प्रस्वापनास्त्र को विफल जानकर नागपाशों को चढ़ाया। शिवजी ने गरुड़ास्त्र से नागपाश को दूर करने के लिये आकाशमंडल को गरुड़मय बना दिया। अर्जुन ने आग्नेयास्त्र चलाया तो शिवजी ने वरुणास्त्र का प्रयोग किया। अन्त में अर्जुन ने सारे अस्त्रों को विफल जानकर शिवजी से बाहु-युद्ध की इच्छा की। फिर अर्जुन ने दिव्यास्त्रों के समाप्त हो जाने पर भी धैर्य धारण कर एक बार और लाल-लाल आँख कर शिव-सेना पर टूट पड़े किन्तु महादेव के प्रति फिर भी उनके सब यत्न विफल हुए। अर्जुन बहुत घबड़ाये। फिर से होश में आकर पुनः युद्ध

किया । तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना स्वरूप प्रकट कर अर्जुन के सारे बाणों को एक साथ नष्ट कर दिया । अर्जुन बाणों के नष्ट हो जाने से चिन्तित हुये इसी बीच शिवजी ने अर्जुन को मर्मघाती बाण मारकर अधिक व्यथित किया । अन्त में दोनों का बाहु-युद्ध हुआ । भगवान् शंकर ने अर्जुन को बाहु-युद्ध में आया जानकर चाप-शर त्याग कर मुष्टि प्रहार किया । बाहु-युद्ध करते-करते अर्जुन ने आकाश में उठे हुए शिवजी के चरणों को पकड़ लिया । शिवजी ने अर्जुन को गले से लगा लिया । अन्त में शिवजी किरातवेश को छोड़कर स्वच्छ भस्म को रमाये हुए चन्द्रकला से शोभित कलेवर को धारण कर प्रकट हो गये । अर्जुन भी वैसी शंकर मूर्ति को देखकर प्रणाम करते हुए उनके सम्मुख नत-मस्तक हो गये । दुन्दुभि की दिव्य-ध्वनि होने लगी, पुष्प वर्षा हुई । अर्जुन अब तपस्या का फल प्राप्त कर अत्यन्त आनन्द से शंकर की स्तुति करने लगे । अर्जुन ने शिवजी से वर माँगा तो शिवजी ने पाशुपतास्त्र और समग्र धनुर्वेद पढ़ाया । धनुर्वेद मूर्ति धारण कर उपस्थित हुआ । इन्द्रादि ने आशीर्वाद पूर्वक अपने-अपने अमोघ अस्त्रों को देकर अर्जुन को प्रोत्साहित किया । अभीष्ट प्राप्ति के अनन्तर अर्जुन अपने भाईयों के पास लौटे ।

माघ काव्य की कथा [सर्गवार]

प्रथम सर्ग—समस्त लोकों के आधारभूत लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण एक दिन अपने पिता वसुदेव के गृह में बैठे थे, उसी समय उन्होंने आकाश से नीचे की ओर फैलते हुए तेज को देखा। उन्होंने प्रथम तो उस वस्तु को कोई तेजपुंज समझा किन्तु कुछ समीप आने पर हाथ पैर आदि की कुछ-कुछ धुंधली आकृति देखकर शरीर धारी है ऐसा अनुमान लगाया किन्तु जैसेही वह आकृति निकट आई तो पुरुष के लक्षण वाले अंग प्रत्यंगों से उन्होंने जान लिया कि वह एक पुरुष है और फिर अन्त में उन्होंने देखा कि वह तो नारद ऋषि हैं। नारद गौर वर्ण के थे। कमल केसर की सी उनकी जटायें थीं, मेखला पहिने हुए, कृष्ण मृग-चर्म को शरीर पर डाले हुए सुवर्ण सूत्र से बना हुआ यज्ञोपवीत धारण किये और हाथ में स्फटिक की माला लिए हुए थे। उनके साथ देवलोग भी तो थे जो उन्हें द्वारिका नगरी तक पहुँचाने के लिए आये थे। नारद श्रीकृष्ण के प्रासाद की ओर उतरे और देव लोगों ने वापस स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। नारद के निकट आते ही श्रीकृष्ण अपने ऊंचे आसन से वेग पूर्वक उठ खड़े हुए और नारद ने उसी समय भू-भाग पर पैर रक्खे। श्रीकृष्ण ने पूजा योग्य देवर्षि नारदजी की अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा की सामग्रियों से यथावत आतिथ्य किया और समुचित आसन पर उनको अपने सम्मुख ही बैठाया। नारद ने कमण्डल के समस्त तीर्थों के जल को मंत्रभूत करके श्रीकृष्ण को अभिषिक्त किया। श्रीकृष्ण ने नम्रता पूर्वक नारदजी से द्वारिकापुरी की ओर आगमन का कारण पूछा। नारदजीने स्तुति रूप में श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और अपने आगमन का कारण इस प्रकार वताया। आपने पृथ्वी के भार को हल्का करने के ही लिए अवतार धारण किया है। आपने तो हिरण्याक्ष प्रभृति महान् दुर्दान्त असुरों का संहार किया है ऐसे कार्य के सम्मुख कंस वध की बात तो अति तुच्छ सी है। जब आप लोकद्रोहियों के दमन करने में स्वयं प्रवृत हैं तो मेरे लिए कहने को कुछ भी नहीं बचा है। फिर भी सुराधिपति इन्द्र ने मेरे द्वारा जो संदेश भिजवाया है उसे आपसे निवेदन करना मेरा कर्तव्य है। दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु हुए हैं उन्होंने असुर नाम को सार्थक करते हुए देवताओं के चित्त को भयभीत कर दिया था। उन्होंने दिक्पालों की समस्त सम्पति अपने अधीन की। देवगण ने अब इससे सजग रहने के लिए दुर्ग बनाये तथा रण-साधनों से अपने को सुसम्पन्न किया। जब नृसिंहावतार धारण करके आपने हिरण्यकशिपु को मार दिया तब उन्ही हिरण्यकशिपु ने 'रावण' के रूप में पुन-र्जन्म धारण किया। रावण ने त्रिभुवन के अधीश्वर बनने की इच्छा से अपने नव शीश को काटकर दसवें सिर को भी अत्यन्त उत्साह से पृथककर शिवजी के सम्मुख रखना चाहा। उसने पर्वतराज कैलास को खेल में ही ऊपर उठा लिया, इन्द्र के साथ विरोध कर अमरावती पर

चढ़ाई की और स्वर्गपुरी में उपद्रव मचाकर अस्तव्यस्तता फैला दी। वरुण, सूर्य, इन्द्र और अग्नि आदि इसके सेवक बन गये। राम के रूप में आपको अवतार लेना पड़ा। आप से भी उसने लड़ाई ठानी, जानकी का अपहरण हुआ। आखिर आपने तो इस दुष्ट रावण को मारा और संसार ने सुख की साँस ली। वही रावण आज इस भू-मण्डल पर शिशुपाल नाम से फिर दिखलाई पड़ रहा है। यह शिशुपाल बालपन में विष्णु की भाँति चार भुजाओं वाला तथा तीनों नेत्रों से शिव स्वरूप था। युवावस्था में इस समय राजाओं को आक्रान्त कर अपनी इच्छा से ही देवताओं, दैत्यों तथा राक्षसों पर क्रूरता तथा प्रसाद दिखाता हुआ यह शिशुपाल महादेव के वर से शक्ति पाने वाले रावण का भी परिहास करता है। यह जगत को अपने पराक्रम के अभिमान में उत्पीड़ित कर रहा है, अत: विधाता की भी आज्ञा को उल्लंघित करने वाले इस शिशुपाल को अब आप नष्ट कीजिये। असज्जनों का विनाश करना आप जैसे सत्पुरुषों का कर्तव्य है। इन्द्र के इस संदेश को कह कर नारद जैसे ही आकाश की ओर जाने लगे श्रीकृष्ण ने कहा कि ऐसा ही होगा और शिशुपाल के प्रति क्रोध कुटिल भृकुटि बनाली।

द्वितीय सर्ग—इन्द्र का सन्देश सुन लेने के पश्चात् एक ओर तो राजसूय यज्ञ के लिए युधिष्ठिर द्वारा आमन्त्रित किये गये तथा दूसरी ओर शिशुपाल पर अभियान करने के इच्छुक श्रीकृष्ण द्विविधा में पड़कर व्याकुल हो उठे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण उद्धव और बलराम को साथ लेकर तात्कालिक निर्णय लेने के लिए रत्न जटित सभा-भवन में गये। वहाँ स्तम्भ, आँगन, छत रत्नजटित थे उनमें तीनों का प्रतिबिम्ब चारों ओर दिखाई पड़ने से केवल उन तीन व्यक्तियों के वहाँ होने पर भी वह सभा भवन चारों ओर अनेक पुरुषों से भरा हुआ सा प्रतीत हो रहा था। वहाँ पर वे ऊँचे सिंहों से अधिष्ठित स्वर्ण आसनों पर बैठ गए। श्रीकृष्ण ने बैठते ही इन दोनों गुरुजनों से इन दोनों महान् आवश्यक कार्यों के परस्पर विरोध की बात कही। मन्द-मन्द हँसी हँसते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि नाटक में जिस भाँति पूर्व रंग से आगे की कथावस्तु का विकास होता है उसी भाँति मेरे आरम्भिक बचन से आप दोनों को अपनी विवेकपूर्वक सम्मति प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। उन्होंने कहा—युधिष्ठिर अपने बली भाइयों की सहायता से हमारे बिना भी अपना यज्ञ पूर्ण करने में समर्थ हैं। कल्याण की इच्छा रखने वाला व्यक्ति कभी भी बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करता। शिशुपाल जो मेरे साथ खुले रूप में द्रोह करता है उसकी तो मुझे कोई चिन्ता नहीं किन्तु उसका सर्व साधारण को दुःख देना मेरे हृदय में चोट पहुँचा रहा है। तत्वज्ञ भी अकेला होने पर कर्तव्य के निश्चय कर लेने में संदिग्ध हो जाता है। अत: आप दोनों की सम्मति मेरे लिए बहुमूल्य है। श्रीकृष्ण के इस कथन को सुनकर बलराम बोले—अपनी उन्नति और शत्रु का विनाश ये ही दो नीति की बातें हैं। सन्तोष विकास का पालक होता है। अल्प सम्पत्ति में ही सुस्थिर मानने वाले पुरुष को विधाता भी आगे नहीं बढ़ाता। स्वाभिमानी पुरुष शत्रुओं का समूल नाश किए बिना उन्नति नहीं प्राप्त करते। कृत्रिम, सहज तथा प्राकृत मित्र और शत्रु भी कार्यवश कभी अमित्र बन जाते हैं। उपकारी शत्रु के साथ भी सन्धि कर लेना उचित है किन्तु अपकारी मित्र के साथ नहीं। तुमने रुक्मिणी का हरण करते समय शिशुपाल को जो पराजित किया था वही पराजय शिशुपाल की शत्रुता का मूल कारण है। नरकासुर को जीतने के लिए जब

तुम गये हुए थे तब उसने द्वारिकापुरी को घेर लिया और बभ्रु यादव की स्त्री का अपहरण किया। हम लोगों का इसी भाँति अनेक बार उसने अपकार किया है अतः वह हमारा कृत्रिम शत्रु हो चुका है। क्षमाशील भी क्या बारम्बार अपराध करने वाले को सहन कर सकता है? साधारण अवस्था में क्षमा पुरुषों का भूषण है। किन्तु अपमान या पराजय के अवसर पर पराक्रम ही उनका आभूषण है। दण्ड के स्थान पर सामनीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है। इन सब बातों पर विचार कर तुम इन्द्रप्रस्थ को जाओ और शिशुपाल के साथ युद्ध की घोषणा कर दो।

बलरामजी की वाणी सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उद्धवजी को अपनी सम्मति देने के लिए संकेत किया। उद्धवजी कहने लगे, बलरामजी मूसलपाणि हैं अतः राजनीति सम्बन्धी बातों पर ध्यान न देकर शूरवीरता को ही उन्होंने प्रथम स्थान दिया है। मैं वैसा नहीं कर सकता। अक्षर सीमित हैं किन्तु उन्हीं से कैसा शब्दजाल बन जाता है। स्वर सात हैं किन्तु उन्हीं के सुन्दर मेल से अनन्त गाने बन जाते हैं। प्रतिभा पृथक् पृथक् है अतः उसी प्रतिभा से बहुत सी संगत बातें भी कही जा सकती हैं तो बहुत सी असंगत भी। प्रयोजन बिना कहा हुआ व्यर्थ होता है। मुख्य प्रयोजन से संश्लिष्ट प्रबन्ध कठिनाई से ही बनता है। आप स्वयं नीतिज्ञ हैं फिर आपके सम्मुख नीति की बातें करना वक्ता की कोई विशेषता को नहीं प्रमाणित करते। यह बात तो वक्ता के अभ्यास की दृढ़ता के लिए बार-बार उसी को दोहराने की भाँति है। इसलिए मेरा तो यह कहना है कि जीतने वाले राजा की प्रभु शक्ति का मूल कारण है मन्त्र और उत्साह शक्ति को अपने में धारण करना केवल बुद्धि पर अवलम्बित रहने पर ही कल्याण नहीं होता किन्तु बुद्धिपूर्वक उत्साह सम्पन्न होने से ही सिद्धि मिला करती है। तीक्ष्ण बुद्धि तथा स्थूल बुद्धि में महदन्तर है। तीक्ष्ण बुद्धि भी है तथा उत्साह भी है किन्तु असावधानी यदि उस कार्य में रह गई तो फिर सफलता कहाँ? उत्साह शक्ति को न छोड़ता हुआ व्यक्ति अभ्युदय को अवश्य प्राप्त करता है। समय को पहचानने वाला कोई नियम नहीं रखता। वह तो समय पर शान्ति तथा समय पर उग्रता का रूप धारण करता है। शत्रु अपकार कर रहा है किन्तु मन में उसके प्रति बिगड़े हुए भावों को प्रकट नहीं करता किन्तु समय की प्रतीक्षा करता रहता है समय पड़ने पर ही कोप प्रकट करता है। क्षमापूर्वक प्रयुक्त क्षात्र तेज ही सफल होता है। दैव और पुरुषार्थ का तो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। शान्ति पूर्वक किसी अवसर की प्रतीक्षा करने वाले विजय की इच्छा रखने वाले राजा के अन्य राजा भी सहायक हो जाते हैं। अपने और पराये राष्ट्र के रहस्य को जानने वाला नीतिज्ञ सामादि उपायों से महान् से महान् शत्रु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। शक्ति (प्रभाव, उत्साह, मन्त्र) को चाहने वाले राजा को षड्गुण (संधि विग्रहादि) रूपी रसायन का सेवन करना चाहिये इससे राजा के अंग (स्वामी, जनपद, अमात्य, कोष, दुर्ग, सेना और मित्र) दृढ़ और बलवान् होते हैं। शिशुपाल को अशक्त समझकर न छेड़ें क्योंकि उदात्त स्वर एक ही पद में अनुदात्त और स्वरित स्वरों को नीचा कर देता है। शिशुपाल अकेला है अतः सरलता से जीता जा सकता है ऐसा न समझें क्योंकि यह रोगों के समूह राजयक्ष्मा की भाँति राजाओं का समूह है। महान् सहायता प्राप्त करने वाला अति क्षुद्र भी अपने प्रयोजन की

सिद्धि कर लेता है। आक्रमण करने पर उसके मित्र और तुम्हारे शत्रु उसके पास चले जायेंगे और इस भाँति राजसूय यज्ञ में विघ्न डालने के लिए समस्त राजाओं के समूह को क्षुब्ध करके तुम ही सर्व प्रथम युधिष्ठिर के शत्रु बन जाओगे। युधिष्ठिर ने तो भार को उठाने में समर्थ समझकर आपको ही यज्ञ का उत्तरदायित्व सौंपा है। बली शत्रु को तो समय बीत जाने पर बल से भी वश में किया जा सकता है किन्तु मित्र को वैमनस्य होने पर कठिनता से प्रसन्न किया जा सकता है। देवताओं की प्रसन्नता के लिए यदि शिशुपाल का संहार अधिक उपयुक्त है तो देवता तो हविष्य भोजी होते हैं, उनकी तृप्ति यज्ञ से होगी। फिर तुमने यह भी तो प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि सौ अपराध कर लेने पर ही शिशुपाल को मारूँगा उसका भी तो पालन करना है अन्यथा अपकीर्ति प्राप्त होगी। उद्धव के इन वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण आसन से उठ खड़े हुए।

तृतीय सर्ग—उद्धव की सम्मति सुन लेने पर तुरन्त युद्ध का आग्रह समाप्त हो जाने से सौम्य आकृति वाले श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर इस भाँति चल पड़े जैसे उष्ण किरणों वाला सूर्य उत्तर दिशा को त्याग कर दक्षिण दिशा के मार्ग को ग्रहण कर लेता है। छत्र, चामर, मणियों से जड़े हुए मुकुट वाले श्रीकृष्ण कानों में मरकत मणि से जड़े हुए स्वर्ण कुंडल पहिने हुए थे, लाल नख थे, नीले वर्णवाले वक्षःस्थल पर मोतियों का हार था, कौस्तुभमणि धारण किए हुए थे तथा कटि सूत्र से पैर के आगे तक मोतियों की माला पड़ी थी। देहभाग पर पीताम्बर था। हाथों में सुदर्शन चक्र कौमोदकी गदा, नंदक खड्ग, शार्ङ्ग धनुष, और पांचजन्य शंख था। श्रीकृष्ण के चलते समय नगाड़ों की प्रतिध्वनि हो रही थी। यादव सेना श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चली जा रही थी। हाथियों का मदजल टपक-टपक धूल में मिलने से कीचड़ बना रहा था और रथों के पहिये उस पीले कीचड़ में नेमि पर्यन्त धंसे जा रहे थे। अश्वारोही शीघ्रगामी घोड़ों पर बैठकर लगामों को खेंचते हुए जा रहे थे। द्वारिकापुरी की शोभा को देखने में श्रीकृष्ण तल्लीन थे। वह द्वारिकापुरी समुद्र के बीच में अपनी सुवर्णमयी चहार दीवारी की शोभा से सुशोभित थी जिसका प्रतिबिम्ब समुद्र के जल में स्वर्ग की छाया के तुल्य दिखाई दे रहा था। इस सुन्दर नगरी को छोड़कर अब श्रीकृष्ण समुद्र जल के पार नीले पत्तों वाली बनावली में आ पहुँचे। वहाँ पर की समुद्री वायु इलायची की लताओं के संघर्ष से सुगन्धित होती हुई पसीने की बूंदों को सुखा रही थी। सैनिक क्षार समुद्र के समीप उस कच्छ भूमि के प्रदेशों में पहुँच गये जिसमें ऊँचे-ऊँचे ताड़ के बनों से निकली हुई वायु केतकी के पौधों और पुष्पों को सिर के केशों के तुल्य दो भागों में विभक्त कर रही थी। लवंग के पुष्पों की मालाओं से विभूषित नारियल के जल को पीते हुए तथा गीली सुपारियों का आस्वादन करते हुए सैनिक चले जा रहे थे। अब यादव सेना समुद्र से दूर निकल गयी थी। समुद्र में और यादव सेना में अब वहुत अन्तर पड़ गया था।

चतुर्थ सर्ग—श्रीकृष्ण ने मार्ग में चलते हुए इन्द्रनील मणि के साथ विविध प्रकार की धातुओं से युक्त विन्ध्याचल पर्वत की भाँति अति उच्च पर्वत रैवतक को देखा। कहीं-कहीं पर इस पर्वत पर बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं तो कहीं लतायें फैली हुई हैं जिन पर भंवरे मंडरा रहे हैं। अनेक शिखरों से यह एक ओर आकाश को घेरे हुए है तो दूसरी ओर यह समीपवर्ती

छोटे-छोटे पर्वतों की श्रेणियों से पृथ्वी मंडल को घेरे हुए है। इसके शिखर इतने ऊँचे हैं कि वे सूर्य के समीप से जान पड़ते हैं। उन शिखरों में बहुमूल्य रत्न भरे हुए हैं। झरनों का प्रवाह भी नीचे शिलाओं पर गिरकर अपूर्व छटा को प्रदर्शित करता है। यहाँ पर स्फटिक के तट की किरणों से श्वेत जलवाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की कान्ति से नीले जल वाली नदियाँ यमुना के नीले जल से सुशोभित गंगा की शोभा को धारण करती हैं। भाँति-भाँति के पुष्पों पर यहाँ भ्रमर मंडराते रहते हैं। चित्तकबरे बालों वाले हरिण यहाँ पर विचरण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कमलों से भरे जलाशय यहाँ हैं। कदम्ब के पुष्पों पर पक्षीगण कूजते हैं। यहीं पर तमाल व ताल के वृक्ष हैं। कहीं-कहीं पर सघन बांसों के वृक्षों में चमरी गायें फिरती हैं। यहीं पर घोड़े के समान मुख वाले किन्नर कहीं विचरण करते हैं। कहीं पर समाधि करने वाले योगीजन समाधिस्थ हैं। इस पर्वत की भूमि कहीं पर मरकतमणि मयी है तो कहीं-कहीं पर चन्द्रकान्त मणि से निकले हुए जल-प्रवाह से यहाँ की भूमि स्नान करती है। इस पर्वत की भूमि में नदियाँ प्रवाहित होती हुई समुद्र की ओर जा रही हैं।

पाँचवाँ सर्ग—सूतपुत्र दारुक ने रैवतक पर्वत की छटा जब श्रीकृष्ण को दिखलाई तब श्रीकृष्ण ने कुछ समय तक वहाँ पर निवास कर क्रीडा करने की इच्छा की। ध्वजा पताकाओं से सुशोभित श्रीकृष्ण की विशालकाय सेना अब रैवतक पर्वत की ओर प्रस्थान करने लगी। हाथी, ऊँट, घोड़े द्रुतगति से जा रहे थे। रैवतक पर्वत के समीपवर्ती प्रान्तों में दौड़ते हुए रथों से जो धूलि उठी वह चारों ओर फैल गई। श्रीकृष्ण के अनुचर राजाओं ने वहाँ पर पहुँचकर गुफाओं के घरों को अपना आवास बना लिया तथा अन्य नृपतिगण ने भी श्रीकृष्ण के गरुड़ ध्वजा वाले शिविर के समीप ही अपने-अपने शिविरों को लगाया। यह समय ग्रीष्म ऋतु का था अत: वे सैनिक वृक्षों की छाया में जाकर बैठने लगे। जो स्त्रियाँ वाहनों पर थी कंचुकी उनको नीचे उतारने में व्यस्त थे। नीचे उतरते समय उन रानियों के घूंघट का वस्त्र थोड़ा सा खिसक गया तो लोग कुतूहल से उनकी मुखश्री को देखने लगे। स्त्रियाँ अपनी केशराशि पर रंग बिरंगे पुष्पों को गूँथे हुए थीं। शरीर पर चोली सुशोभित हो रही थी। सेना के साथ वेश्यायें भी थीं जो नये निवास स्थान पर सुसज्जित होकर मार्ग की थकान से खिन्न सैनिकों का विभिन्न उपचारों से स्वागत कर रही थीं। सेना अब पर्वत पर शिविर तान कर मनोविनोद करने में व्यस्त थी। हाथियों की क्रीडायें एक ओर देखने योग्य थीं तो घोड़े तथा बैल भी अपनी छटा दिखाने में दूसरी ओर निराले ही प्रतीत हो रहे थे।

छठा सर्ग—जब श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर विहार करने की इच्छा की तो सब ही ऋतुएँ अपनी-अपनी समृद्धि लेकर वहाँ पर एक साथ ही आ पहुँची। बसन्त ऋतु को ही सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने देखा जिसके आने से पलाशों के वन में नये-नये पत्ते निकल आये थे, पराग से परिपूर्ण एक ओर कमल खिल रहे थे। धूप की गर्मी के कारण लताओं के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे और भाँति-भाँति के पुष्पों से सुन्दर सुगन्ध निकल रही थी। मलयानिल प्रवाहित हो रहा था। कुरबक पुष्पों की कान्ति भ्रमरों के कारण कमनीय थी। चम्पा पुष्पों के मध्य विकसित अशोक पुष्प सुशोभित था। आम्रों से रज:कण गिर रहे थे। वकुल पुष्प-

रस रूपी आसव के पान से अधिक मधुर स्वर वाली भ्रमरावालियाँ इतस्ततः गुंजार कर रही थीं। पलाश पुष्पराशियाँ दावाग्नि सी थीं। यह ग्रीष्म ऋतु है अतः शिरीष पुष्प के पराग की कान्ति हरित तथा पीत रूप धारण कर रही है। इसमें चमेली की सुगन्धि से वायु सुगन्धित है। कोमल पाटल की कलियों को विकसित करने वाले ग्रीष्म ऋतु के पवन के प्रवाहित होने पर कौन कामाकुल नहीं होता? वर्षा ऋतु में बार-बार बिजली रूपी आँखों को चमकाती हुई उमड़े हुए विशाल ऊँचे उठे हुए पयोधर मेघों की पंक्तियाँ समय की बिना प्रतीक्षा किए ही इस पर्वत पर आगई। गगन मंडल गजाकार कृष्ण काय मेघों से आच्छन्न है तो मंडलाकार इन्द्र धनुष दूसरी ओर। काले मेघों में बिजली क्या चमक जाती है मानों तमाल वृक्ष के तुल्य आकाश रूपी वृक्ष की शाखाओं पर मंजरी हो। पवन कन्दली के पुष्पों को कंपाता हुआ वन के वृक्षों को झकोर रहा है, मेघों का गर्जन नगारों के शब्द का अनुकरण करता हुआ मयूरों को नचा रहा है। नवीन कदम्ब के मकरन्द से यह वायु गगन को लाल रंग का बना रही है। मेघों ने जल वृष्टि कर प्रथम जल बूँदों से गर्मी को दूर कर दिया और पृथ्वी की धूलि साफ होगई। हंसों के मधुर रव अब इस शरद् ऋतु में सुनाई पड़ने लगे हैं। मयूरों के स्वर तो कर्कश हो गये हैं। अब प्रत्येक वन लाल-लाल रंग के जवाकुसुम तथा विकसित नील झिंटी (पियावास) से सुशोभित हैं। बंधूक के पीले-पीले पत्तों में पराग से युक्त लाल रंग की केशर भी कितनी सुन्दर है। सरोवरों में लाल कमल हैं। सप्तवर्ण के पुष्पों के गुच्छों से सुगन्धित यह वायु कितनी कामोत्तेजक है। लाल मुखवाली तोतों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ती हुई हरे-हरे पत्तों से ऋतु माला की भाँति हैं जिसमें बीच-बीच में लाल-लाल नूतन पल्लव गूँथे हुए हैं। सरोवरों में निर्मल जल है, जिसमें कमल खिल रहे हैं और श्वेत हंस विचरण कर रहे हैं। अब हेमन्त की वायु प्रवाहित हो रही है जो कितनी ठंठी है। प्रियंगु लताओं के पुष्प इस ऋतु में विकसित हो रहे हैं। सूर्य की किरणें अब तीव्र नहीं है लवंगलता तथा कुन्दलता भी विकसित हो रही है।

सातवाँ सर्ग—श्रीकृष्ण ने उस रैवतक पर्वत पर छहों ऋतुओं की शोभा देखी अब वे अपने अनुचरों सहित बन-विहार कर रहे हैं। यदु वंशियों ने भी अनेक प्रकार के पुष्पों को धारण करने वाले वनों में अपनी युवती रमणियों के साथ ही बिहार करने की इच्छा की। वे स्त्रियाँ विशाल जघन प्रदेश पर स्वर्ण की कई लड़ियों की बनी करधनियों को जो रत्नों से भरी हुई बहुत सी छोटी-छोटी किंकिणियों से युक्त हैं लटकाये हुये हैं। पैरों में महावर लगा रक्खा है जिसमें नूपुरों का मधुर शब्द हो रहा है। स्त्रियाँ पुष्प चुनने में व्यस्त हैं उनके प्रियतम उनसे भाँति-भाँति के मनोविनोद कर रहे हैं। स्त्रियाँ वृक्षों के पल्लव और फूलों से कर्णों को विभूषित करती हैं। बड़े-बड़े नितम्बों तथा कुचों वाली वे रमणियाँ इस भाँति बहुत देर तक बन विहार करने के कारण अत्यन्त थक जाती हैं।

आठवाँ सर्ग—वन विहार से थकी हुई विशाल स्तनों वाली उन यादव स्त्रियों के नेत्र कमल बन्द होने लगे और किसी भाँति पृथ्वी पर जाने की ओर अपने चरणों को रखती हुई जलाशय की ओर चलने लगीं। वे पंक्तिबद्ध जा रही थी मार्ग में जो वृक्ष आते थे उनकी छाया में जाने से वे कुछ-कुछ शीतलता का अनुभव कर रही थीं। स्त्रियों के जाते समय धूप से

बचाव के लिए प्रियतमों ने अपनी चादर तान दी तो कुछ स्त्रियों ने छातों ही को तान कर धूप का बचाव किया। वे आलस्यपूर्वक मन्द-मन्द गमन करती हुई हंसियों को भी आश्चर्य में डाल रही थीं। मार्ग में नदियों को देखती जा रही थीं जिनके बालु के तटों पर सीपियों के फट जाने से मुक्ता बिखरे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानों उनकी सुन्दर शय्या हो। तदनन्तर वे रमणियाँ एक पुष्करिणी के समीप पहुँच गई जहाँ पर कमल पुष्प विकसित थे पक्षियों के कलरव हो रहे थे तथा चंचल लहरें चलती हुई फेन उत्पन्न कर रही थीं। अब कोई रमणी तो अपने प्रियतम के हाथ को पकड़ कर जल में प्रविष्ट हो रही है तो कोई रमणी जल की थाह लेने के लिए अपने कोमल चरणों को धीरे से आगे बढ़ा रही है। जैसे ही वे आगे बढ़ रही थीं कि जल में उनका अंगराग छूटने लगा इस भाँति वह पुष्करिणी अनुरंजित हो गई। कोई रमणी तो शीत से भयभीत हुई तट पर ही बैठी हुई थी तब उसके प्रियतम ने जल के भीतरउसके विलास को देखने की इच्छा से उसको जैसे ही भिगोया तो उसने अपने दोनों हाथों को जो बचाया वह भी दर्शनीय दृश्य था। कोई नव परिणीता रमणी लज्जावश पति के साथ जल में प्रविष्ट न होने लगी तो सखियों ने तट से जैसे ही उसे जल की ओर ढकेल दिया तो वह पति से लिपट गई। कोई तो अपने प्रियतम को कन्धे तक जल में खड़े हुए जानकर उसके समीप जैसे ही निर्भयपूर्वक चली कि प्रियतम ने यह समझकर कि वह डूब जायेगी उस सुन्दरी को अपने अंगों में चिपटा लिया। कोई रमणी तो नाभिपर्यन्त जल में खड़ी ही थी कि लहरें आ आकर स्तन युगलों तक अधिरोहित होकर यह प्रदर्शित करने लगीं कि जो स्त्रियों का एक बार भी स्पर्श पा जाते हैं उनके लिए मर्यादा कहाँ ? कुछ रमणियाँ तो कृश काय तथा विस्तृत बाहुओं से जब तैरने लगीं तो सरोवर का जल क्षुब्ध सा प्रतीत हुआ। अब वे विविध प्रकार से जलक्रीड़ा करने लगे। रमणियों की जलक्रीड़ा की सामग्री रूप में जल केलि के यन्त्र, सुगंधित पदार्थ, उनके विशाल स्तनों को ढकने के लिए कुसुम्भी रंग की साड़ियाँ, अंगूरी मदिरा तथा प्रियतम का सामीप्य यह सारी जलक्रीड़ा की सामग्री वहाँ थी ही। जलक्रीड़ा के पश्चात् जैसे ही स्त्रियाँ बाहर निकलीं तो वस्त्र भीग कर स्तनों और नितम्बों पर चिपके हुए तथा जल बिन्दु को चुबाते हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। कोई तो दोनों कंधों पर केशों को फैलाकर सुखा रही थी तो कोई केशों को बाँधती हुई सुशोभित हो रही थीं। इस भाँति सरोवर में स्नान करने के पश्चात् सब लोग स्वस्थ चित्त होकर जैसे ही लौटने लगे कि सूर्य अस्त होता हुआ दिखलाई पड़ा।

नवां सर्ग—सूर्यास्त का समय था। शिविरों में एक दूसरे ही प्रकार के जीवन का आरम्भ हुआ। रमणीगण रतिक्रीड़ा के लिए अत्यन्त आतुर सा दिखाई पड़ने लगा। शीतल वायु वह रही थी। पक्षी अपने आवासों में लौट चुके थे। संध्या का समय था। दिशायें लाल वर्ण की हो गईं, गगन में मेघ भी लाल वर्ण हो गये। सूर्य का लाल-लाल बिम्ब अब आधे रूप में समुद्र में डूबता हुआ दीख रहा था। कमल बन्द हो रहे थे। इस समय गर्मी बिलकुल नहीं थी, यद्यपि सूर्य अस्त हो गया था। किन्तु आकाश में न तो तारे ही थे और न चन्द्रमा ही उदित हुआ। अन्धकार भी अभी नहीं हुआ इस भाँति आकाश की अपूर्व छटा थी। विकसित कुसुम्भ के पुष्पों के तुल्य लाल रंग से युक्त संध्या के आगमन पर सबने उसे प्रणाम किया।

चक्रवाक अब पृथक् हो गये। अब अन्धकार से समस्त संसार व्याप्त हो गया, संध्या बीत गई। अन्धकार गुफाओं के भीतर से आकर बाहर फैल रहा था। इस प्रगाढ़ अँधकार में अनुराग रूपी दिव्य अंजन को लगाकर स्त्रियाँ अपने प्रियतमों के आवास की ओर जाने लगी। नक्षत्र चमकने लगे। चन्द्रमा भी आकाश में उदय हुआ। चन्द्र के उदय होने पर रमणियों ने अपने-अपने प्रियतम के आगमन का निश्चित समय जानकर साज शृंगार करना आरम्भ किया। प्रियतम के सम्बन्ध में होती हुई बातों को प्रियतमाएँ अति उत्कंठित होती हुई सुनने सुनाने लगीं। कहीं-कहीं पर दूतियाँ भेजी जाने लगीं, तो कहीं नायिकायें प्रियतमों के समीप अपने संदेश भेजने लगीं। दूतियाँ पतियों के संदेश लाने लगीं। कहीं पर सुन्दरी के कक्ष में आये हुए पति के प्रति सत्कार प्रदर्शन के लिए जैसे ही रमणी उठती है कि वेगपूर्वक प्रियतम उसका आलिंगन कर लेता है। इस भाँति मान रूपी विघ्न को शान्त करने वाली चन्द्रमा की किरणों ने दूतियों की भाँति उन रमणियों को नायकों के साथ मिलाने में पर्याप्त सहायता की।

दसवां सर्ग—रति क्रीडा का उपदेश देने वाली मदिरा का तथा रतिक्रीडा का इसमें वर्णन किया गया है। सुन्दर प्रियतमाओं के मुख ही कहीं पर तो युवकों के सुरापात्र बन गए। उन कामुक युवकों ने अपनी प्रियतमाओं के मान को दूर कर मदिरा के व्याज से अपने प्रेम का पान कराया। प्रियतम के मुख के प्रतिबिम्ब से युक्त, नूतन आम के कोमल पत्तों के डालने से सुगंधित सुस्वादु, भ्रमरों के गुँजार से युक्त तथा शीतल मदिरा में उन नायकों तथा रमणियों की इन्द्रियों खूब तृप्ति हुई। भ्रमर भी सुरापात्रों पर बैठे थे। प्रियतमा द्वारा दी हुई मदिरा पीने वाले पति को बहुत ही स्वादिष्ट प्रतीत होती थी। मदिरापान के समय नमकीन पदार्थों के खाने के अभिलाषी प्रियतम मदिरा के समान ही स्वादिष्ट ओष्ठ के पान करने पर यद्यपि प्रियतमा के अधरों पर लगा हुआ लाक्षा का रंग छूट गया था फिर दाँतों के काटने से लाक्षा सा ही रंग हो गया था। तीन बार के मदिरा पान से उत्पन्न प्रचंड नशा से मतवाली सुन्दरियाँ अत्यन्त लज्जा रहित हो गईं। अब वे उपहास क्रीड़ा में निरत हो गईं। मदिरा का पान करते ही नशे में स्त्रियाँ अपने अंगों में विद्यमान अप्रकाशित विलास को इस भाँति प्रकट करने लगी जैसे धातु में विद्यमान अर्थों को उपसर्ग प्रकट कर देता है। मद विकार के प्रकट होते ही वे स्त्रियाँ अधूरे वाक्य बोल रही थीं, गिरते हुए वस्त्र वा आभूषणों तक की उपेक्षा कर रही थी तथा बिना किसी कारण उठकर चले जाने का प्रयास करने लगी। मदिरा में मस्त वे अपने सहज स्वभाव को भी प्रकट करने लग गई। मदिरा पान करते ही उनकी संभोगेच्छा तीव्रतर हो गई। मद्यपान से मतवाली सुरत संभोग के लिए लालायित रमणियों के नेत्र विलास की कल्पना में कानों तक फैले हुए थे। कोई तो इतनी मुग्ध थी कि पति से सम्भाषण करने की इच्छा रखकर भी बोलने में असमर्थ रही। कहीं पर तो प्रियतम प्रेयसी की चोली को जैसे ही खींचता है वह उसके वक्ष:स्थल से जाकर चिपट जाती है कहीं साड़ी के अंचल को खींचते हुए जैसे ही प्रियतम ने गाढ आलिंगन किया कि प्रियतमा का शंख निर्मित कँकण टूट गया। कामावेग के साथ पति ने प्रियतमा के वक्ष:स्थल को पीड़ित कर गाढ आलिंगन किया तब भी उसके स्तन कलश कठिन होने के कारण तनिक भी टेढ़े नेही हुए। स्नेह-रस से पूर्ण रमणियों का देह अब भीतर से आर्द्र हो गया था क्योंकि प्रियतम के गाढ़ आलिंगन करने पर पहिने हुए वस्त्रों को वे भिगो रही

को खेंचकर मुखकमल का आँख बन्द कर जैसे पान कर रहे थे वैसे ही अधर बिम्ब के काट लिए जाने पर तरुणियाँ अपने झन झनाते हुए कंकणों से युक्त हाथ से मना कर रही थी। किसी ने तो रमणी के शीतल नेत्रों का ही कुछ समय तक चुम्बन किया। कहीं पर प्रियतम नीवी बन्धन को खोलने में व्यस्त थे किन्तु रमणियाँ उन्हें रोक रही थी तथा सुमधुर स्वर से मुस्कुराती हुई निषेध कर रही थी। तरुणियों के अंगों में सोया हुआ कामदेव बाहु पीड़न, निर्दय आलिंगन, केशग्रहण, नखक्षत, दंतदशन आदि व्यापारों से निधड़क जाग कर उठ खड़ा हुआ। रमण काल में वे स्त्रियाँ "हाय जी", "मैं मरी" का चीत्कार करती हुई कभी-कभी करुण उक्ति से निषेधसूचक वाक्य तथा हँसी छोड़ती हुई आभूषणों की ध्वनि भी एक साथ ही कर रही थीं। रति क्रीडा के अनन्तर वे लज्जा से अभिभूत हो गई। रात्रि अब बीत गई थी।

ग्यारहवां सर्ग—प्रभात हो गया। प्रातःकाल स्तुति पाठ करने वाले बन्दीजनों ने विकार रहित मधुर ध्वनि में जो दूर-दूर तक जा रही थी अधिक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को बिना छिपाये हुए, पंचम स्वर को छोड़कर तथा वीणा-वादन के साथ ऋषभ स्वर से रहित आलाप में रात्रि के बीतने एवं प्रभात के आगमन का वर्णन कर उनके वे मृदंग लोगों को जगाने लगे। कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले ध्रुव नक्षत्र के ऊपर अत्यंत स्पष्ट रूप से विस्तृत रूप में फैला हुआ यह सप्तर्षि मंडल दमक रहा है। अपने पहरे के समय को बिता कर सोने का इच्छुक 'पहरेदार' जब दूसरे पहरेदार को जिसकी पहरे देने की पारी आचुकी थी 'उठो जागो' कह कर बार-बार जँभाने लगा। क्षणभर तक शयन करके फिर तुरन्त ही उठे हुए राजा लोग कवियों की भाँति रात्रि के पिछले प्रहर में बुद्धि के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर काव्य के समान कठिनाई से प्रवेश करने योग्य साम, दाम आदि प्रयोगों का निर्वाचन कर धर्म, अर्थ, काम की चिन्ता करने लगे। अहीर मक्खन निकालने के लिए मथानी डालकर गम्भीर शब्द करती हुई गम्भीर मटकी में स्थित दही को मथने लगे। मुर्गे अब ऊँचे स्वर से बोल रहे थे। वीणा के साथ-साथ बजते हुए वेणु के स्वर में स्वर मिलाते हुए मधुर करताल की ध्वनियाँ होने लगीं हैं। वैतालिक अपने सुन्दर एवं मधुर गायनों द्वारा उन वाद्य यन्त्रों में अपने स्वरों को मिलाकर राजाओं को उठाने में लगे। घोड़े खड़े ही दोनों आँखों को बन्द करके जो सो गए थे, अब प्रातःकाल के होते ही जग गये और नथूनों को फड़काते हुए आगे पड़ी हुई घास को खाने लगे। पूर्व दिशा में उदय हुआ चन्द्रमा अब पश्चिम दिशा को जाता हुआ प्रभाहीन हो गया था। स्त्रियाँ जो पति के पश्चात् सोई थीं अब पति के पूर्व ही उठ गईं। कुमुदिनियों की शोभा फीकी पड़ गई। प्रातःकाल के मालती के पुष्पों की सुगन्धि से युक्त वायु प्रवाहित होने लगी। सूर्य का प्रकाश होने वाला था अतः दीपशिखा भी रात भर प्रकाशित होती हुई अब टिमटिमाती हुई छवि हीन हो चली। कमलों की सुगन्धि से उन्मत भ्रमर समुदाय इधर उधर उड़ने लगा। वेश्यायें अब राजाओं के शिविरों से बाहर निकलकर जाने लगीं। अभिसारिकायें भी जिन्होंने रात्रि के समय अपने-अपने प्रियतमों के साथ अभिसरण किया था, प्रातःकाल होने के पूर्व ही वस्त्रों को सम्भालती हुई शीघ्र ही अपने घर की ओर लपकती हुई जा रही थीं। आकाश में तारे लुप्त हो चेले थे। सूर्योदय होने के पूर्व अन्धकार नष्ट होता जा रहा था। चक्रवाक के समीप विरह दुःख से दुखित चक्रवाकी आ रही

थी। पुष्प लताओं पर विकसित होने लगे। पक्षियों ने कलरव प्रारम्भ कर दिया। अग्नि-होत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचण्ड ज्वाला के साथ अग्नि जल रही थी। श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण लोग शास्त्रानुसार उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित स्वरों में उच्चारण करते हुए समिधा छोड़ने के मन्त्रों का पाठ करके अच्छी प्रकार से हवि डालने लगे और आग की लपटें उसका आस्वादन करने लगीं। तपस्वी लोग मन्त्रों का जाप करने लगे। सूर्योदय हो गया। पूर्व दिशा में सुवर्ण के तुल्य पीले वर्ण की सूर्य किरणें शोभित हो रही थीं। अब सूर्य धीरे-धीरे आकाश में चढ़ रहा था। सूर्य के उदय होते ही प्रणत व्यक्तियों ने उसको प्रणाम किया। किरणें अब नदी तटों पर भी सुशोभित हुई। झरोखों की जालियों से होकर सदन कक्ष के भीतर प्रवेश करने वाली बाल-सूर्य की किरणें सोते हुए प्रियतमों पर बाण की भाँति पड़ रही थीं।

बारहवां सर्ग—प्रातःकाल होने पर जब सूर्य उदय हो गया तब रथों, घोड़ों तथा हाथियों पर आरूढ़ होकर राजागण शिविर के प्रवेश द्वार के बाहर प्रसाधन के योग्य वेष धारण किए हुए श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में भगवान् श्रीकृष्ण भी तीव्रगामी घोड़ों वाले रथ पर आरूढ होकर आ गये। जैसे ही श्रीकृष्ण चलने लगे अन्य राजा भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। कहीं पर तो गजराज अपने पिछले चरणों को झुकाकर अपने ऊपर उसी के सहारे महावत को चढ़ा रहे थे तो कहीं अश्वाररोही प्रथम धीरे से प्यार के साथ अश्व की गर्दनों पर हाथ फेरने लगे और तब अश्वों ने भी समस्त देह को हिलाकर अपनी त्वरा प्रकट की। तब अश्वारोही हाथ में लगाम लेकर और उसे काठी पर रख कर शीघ्रता तथा चतुरता के साथ उनकी पीठ पर चढ़ गये। ऊँट पर चढ़ने वाले उन पर बैठ भी नहीं पा रहे थे कि वे शीघ्रगामी ऊँट त्वरा से उठकर नकेल की उपेक्षा करते हुए शीघ्रता से चल पड़े। रथवान रथ को जोतने लगे। कहीं ऊंट नकेल को दृढ़तापूर्वक खेंच लेने पर आधी चबाई हुई नीम की पत्तियों को बाहर निकालता हुआ उच्च स्वर से बल बलाने लगा। कहीं पर नाथ की रस्सी को पकड़ने पर भी अपने दोनों सींगों को हिलाता हुए बैल ने "सूं-सूं" करते हुए पीठ पर काठी को नहीं रहने दिया। प्रस्थान करती हुई वह सेना विभिन्न प्रकार के स्वर करती हुई जा रही थी। प्रस्थान करने पर श्री कृष्ण का पाँचजन्य शंख सुनाई पड़ा तो उधर नगाड़ों की ध्वनि सुनाई दी। सुवर्णमयी धूल रैवतक पर्वत के नीचे भागों पर छा गई। सीधी गर्दन को आगे की ओर फैलाए हुए एवं गले की घंटियों को बजाते हुए ऊँटों ने लम्बे-लम्बे डगों से चरणों को भूमि पर रखते हुए लम्बे मार्ग को क्षण भर में ही तय कर लिया। रथों ने चलते समय पृथ्वी मार्ग को विदीर्ण किया तत्पश्चात् उनके पीछे जाने वाले हाथियों ने अपने पैरों से उस भूमिको दबाकर ऐसे समान कर दिया मानों प्रथम हल चलाकर कृषि के लिए फिर पाटा फेर दिया गया हो। विशाल काय ऊँचे पर्वतों व नदियों को उलाँघती हुई वह यादव सेना चली जा रही थी। कहीं पर हाथियों के "सूं-सूं" शब्दों से भयभीत खच्चरों ने ऊबड़-खाबड़ भूमि में दौड़ते हुए सारथी से लगामों को छुडाकर अपने छोटे से रथ को तोड़-फोड़ डाला। रैवतक को लाँघकर अब सेना आगे बढ़ गई और बहुत-सा मार्ग तय कर लिया। कहीं पर मार्ग में उन्हें कृष्णसार मृग दिखलाई पड़े। अब ढालू स्थान के आ जाने से अश्वारोहियों द्वारा यत्नपूर्वक लगामों को खींचकर जकड़े जाने से घोड़े बड़ी कठिनाई से जा रहे थे, किन्तु

जैसे ही समतल भूमि आई सवारों ने लगाम को शिथिल करदी और वे घोड़े शीघ्रतापूर्वक खुरों से टपटप करते हुए दौड़ने लगे। सेना जब ग्रामों में होकर जा रही थी तो ग्राम वधुएँ श्रीकृष्ण को ओट में होकर छिप-छिप कर देखने लगीं। श्रीकृष्ण ने भी गोचर भूमि में बैठे हुए गोपालों को मण्डलाकार में बैठे हुए देखा। कहीं-कहीं पर धान के खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ तोतों को उड़ा रही थीं तो दूसरी ओर मृगों के समूह आकर चरने लग गये, व्याकुल स्त्रियों को मंद-मंद मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण ने कुछ देर तक देखा। जलप्राय देशों में कहीं पर हंसों का शब्द सुनाई दिया। आगे जब सेना जा रही थी जो पर्वतों के शिखरों तक पहुँच गई थी। अब वह सेना ऊंचे पर्वतों को भी पार करती हुई आगे बढ़ी। हाथी बादलों को अपने अग्रभाग के दांतों से चीरते हुए जा रहे थे। वे मार्ग के वृक्षों को भी उखाड़ते जाते थे। श्री कृष्ण ने समीपवर्ती पर्वत की घाटियों से पर्वत पर चढ़ती हुई सैकड़ों से अधिक हाथियों की पंक्तियों को देखा। पर्वतों पर नित्य चढ़ने के अभ्यास से अधिक उन्नत स्तनों वाली आँवला के बन में बैठी हुई पहाड़ी स्त्रियों ने श्री कृष्ण को देखा। कहीं पर सिंह सोते हुए थे। वे समीप में जाती हुई सेना को देखकर भी भयभीत न हुए क्योंकि मृगराज थे। इस भाँति कहीं बहुत नीचे और कहीं बहुत ऊँचे और कहीं प्रकाशयुक्त तो कहीं अत्यन्त दुर्गम विषम स्वरूप वाले पर्वतों को लाँघती हुई वह सेना नदी में प्रवेश करती हुई निकल आई। वह सेना मार्ग में आये हुए अनेक नगरों को जहां के भवन सफेद चूने से पुते हुए विशाल काय थे, उलाँघ कर आगे बढ़ी। अब यमुना नदी तक वह सेना पहुँच चुकी थी। सैनिकों ने यमुना को भी पार कर लिया।

तेरहवां सर्ग—यमुना पार हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर को समाचार प्राप्त हुए कि श्रीकृष्ण आ गये हैं तो उनके आगमन का संवाद सुनते ही वह इतने प्रसन्न चित्त हुए कि तुरन्त ही अपने कनिष्ठ भ्राताओं को साथ लेकर उनकी अगवानी के लिए श्रीकृष्ण के सम्मुख आकर पहुँच गये। कुरुवंशियों की सेना में हर्ष से नगाड़ों की गम्भी ध्वनि होने लगी। वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि इतनी हुई कि कोई कुछ न सुनकर संकेतों से ही बात करने लगे। इस अवसर पर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की दोनों की सेनायें प्रीति पूर्वक एक साथ चलने लगीं। युधिष्ठिर दूर से ही श्रीकृष्ण को देखकर अपने रथ से नीचे उतरना ही चाहते थे कि श्रीकृष्ण ने उनसे पूर्व ही शीघ्रता के साथ अपने रथ से उतर कर विशेष विनयशीलता दिखलाई और उतरने के साथ ही उन्होंने युधिष्ठिर को दंडवत् प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने भी उन्हें अपने भुज-पंजरों में समेट लिया और फिर उनके मस्तक को सूंघा। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर के अनुज भीम अर्जुन आदि को आलिंगनादि द्वारा सम्मानित किया। यही नहीं यादव रमणियाँ और पांडव रमणियाँ भी एक दूसरे का आलिंगन करने लगीं। दोनों सेनाएँ परस्पर मिलकर खड़ी हो गई। केवल हाथियों को पृथक् रक्खा गया। युधिष्ठिर ने जब श्रीकृष्ण को कहा कि रथ पर चढ़िये तो श्रीकृष्ण अर्जुन से अपना हाथ मिलाए हुए अपने मेघाकार रथ पर आरूढ हो गये। वे अब इन्द्रपस्थ की ओर जब चलने लगे तो युधिष्ठिर ने अनुराग में भरकर स्वय-मेव घोड़ी की लगाम को पकड़ा। भीम श्रीकृष्ण पर चंवर डुला रहे थे। अर्जुन श्रीकृष्ण के ऊपर श्वेत छत्र धारण किये हुए थे। श्रीकृष्ण के पीछे नकुल और सहदेव अनुसरण कर रहे थे। दुंदुभियों का नाद हो रहा था। शिविर नगर के बाहर बनाये गये थे। श्रीकृष्ण ने पृथक्-

पृथक् बने हुए नव प्रवेश द्वारों से शोभित इन्द्रप्रस्थ नगरी में पाँचों पाँडवों के साथ प्रवेश किया। उस समय श्रीकृष्ण को देखने के लिए अन्य समस्त कार्यों को छोड़कर प्रत्येक सड़क और गली में आ-आकर नगर रमणियाँ उपस्थित हो गई। वे अटारियों पर चढ़कर उन्हें देख रही थीं। नगर प्रवेश के अनन्तर उन्होंने जल छिड़कने से धूलि रहित सड़कों को पार किया। तत्पश्चात् वे सभा मण्डल में शीघ्र ही पहुँच गये। सभा मण्डप अत्यन्त सुन्दर था जिसमें विभिन्न प्रकार की मणियाँ जड़ी हुई थीं। रत्न जटित दीवारें थीं। भवन के समीप ही वृक्ष लगे हुए थे जिनके आलवालों में जल भरा हुआ था। उस सभा-भवन में कमलिनी के नीचे जल ऐसा छिपा हुआ था कि उस पर स्थल की भ्रान्ति हो जाती थी। यही नहीं कहीं पर उसी सभा-भवन में आगन्तुक जल के भ्रम से दूर से ही अपना वस्त्र ऊपर उठा लेते थे। सभा-मंडप के सम्मुख आकर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर रथ से नीचे उतर पड़े। सभा-भवन देखने के अनन्तर युधिष्ठिर तथा श्री कृष्ण प्रकाश से युक्त विशाल सिंहासन पर एक साथ बैठ गये। नर्तकियाँ आकर उत्तमोत्तम वाद्यों के स्वर के साथ नवीन-नवीन गीतों को सुन्दर ढंग से गाती हुई नृत्य करने लगीं। वे दोनों परिचय प्रदानोपरान्त बैठे-बैठे संभाषण करते रहे।

चौदहवाँ सर्ग—युधिष्ठिर श्री कृष्ण से कहने लगे कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो चाटु-कारी की बातें सुनकर लज्जित होता हो किन्तु आप में यह बात देखी कि आपकी प्रशंसा करने वाला तो लज्जित नहीं होता किन्तु उसे सुनकर आप ही लज्जित होते हैं। आप स्तुतियों से प्रसन्न नहीं होते। मैं जो कुछ आपकी प्रशंसा कर रहा हूँ वह मिथ्या नहीं है। आपके सामर्थ्य से ही यह भारत वर्ष चिरकाल तक मेरे अधीन हो गया। अब मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अतः आप आज्ञा प्रदान कीजिए। मैं इसके लिए आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अब आपके आ जाने से मेरा यह यज्ञ विघ्न बाधाओं से रहित हो गया है। मैं हवन करके क्षात्र-धर्म पूर्वक बढ़ाये हुए धन को ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि प्रथम आप ही हवन कीजिए। सोमपान कर आपके यज्ञ की समाप्ति होने पर मैं अवभृथ स्नान कर लेने के पश्चात् अपना उत्तम राजसूय यज्ञ प्रारम्भ करुंगा। आप ही मुझको कर्त्तव्य की शिक्षा दीजिए। आपके ही द्वारा प्राप्त हुआ यह धन किस उपयोग में आयेगा? आप ही इसका सदुपयोग कीजिये। इस पर श्री कृष्ण कहने लगे कि भारतवर्ष जो अधीन हुआ है उसे अपने तेज व अपनी नीति की महिमा से ही आपने उसको अपने वश में किया है। इसमें मेरा क्या है? आप सब प्रकार से सुयोग्य हैं अतः राजसूय यज्ञ आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है। मैं तो आपके दुष्कर आदेशों को भी पालने में अपना कर्त्तव्य समझता हूँ अतः आप मुझको करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें वहाँ नियुक्त करें। मेरा सुदर्शन चक्र उस राजा के शिर को देह से पृथक् कर देगा जो आपके इस राजसूय यज्ञ में सेवक की भाँति कार्य न करेगा। इस पर युधिष्ठिर यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हो गए। वे गंगाजल से स्नान कर अब राजसूय यज्ञ के यजमान बन गए। राजा युधिष्ठिर यद्यपिहोम आदि यज्ञीय विधानों में सम्मिलित नहीं हुए थे फिर भी पुरोहितों द्वारा सब अनुष्ठानों के कर्त्ता वे ही थे। पुरोहित यज्ञ कर रहे थे और राजा युधिष्ठिर सब देख रहे थे। यज्ञ कर्त्ता पुरोहित भी शुद्ध उच्चारण करते हुए उच्च स्पष्ट स्वर से याज्या श्रुति का उच्चारण कर आह्वित देवताओं को लक्ष्य करके अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे। उद्गाता लोग कर-विन्यास द्वारा अस्खलित स्वर से सामवेद

का गान करने लगे। होता तथा अध्वर्यु ऋग्वेद और यजुर्वेद का पाठ करने लगे। कुशों की सुन्दर मेखला धारण किये हुए यजमान की पत्नी द्रौपदी हवनीय पदार्थों का निरीक्षण कर रही थीं। व्याकरण शास्त्र के विद्वान् पुरोहित उदात्तादि स्वर बदलकर अपने यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय कर रहे थे। यज्ञाग्नि भी हँसती हुई पड़े हुए घृत का आस्वादन कर रही थी। हवन करने के साथ ही दिशाओं को धूमिल करता हुआ धुआँ आकाश में ऊपर की ओर जा रहा था। उस राजसूय यज्ञ में जितनी भी क्रियायें सम्पन्न हुई, किन्हीं में कोई दोष नहीं हुआ तथा यज्ञ की सभी सामग्रियाँ पूरी पड़ गईं। तत्पश्चात् परम उदारता से युक्त राजा युधिष्ठिर ने दक्षिणा के उपयुक्त पात्र, पंक्तियों में बैठे हुए पावन ब्राह्मणों के निकट पहुँचकर उन्हें राजसूय यज्ञ के उपयुक्त उचित दक्षिणायें प्रदान कीं। उन्होंने अंजलि में संकल्प का जल देने के साथ ही स्वर्ग की कामना से विपुल धनराशि की प्रचुर दक्षिणा उन ब्राह्मणों को दी। यही नहीं उन्होंने अपने हस्ताक्षरसे युक्त पट्टे के पत्रों पर लिखकर चन्द्र तथा सूर्य की स्थिति पर्यन्त स्थिर रहने वाली विपुल भूमि ब्राह्मणों को दान में दी। वे ब्राह्मण भी शुद्ध आचरण वाले, वेद सम्मत शास्त्रों को धारण करने वाले, वर्ण-संकरता से रहित कुलीन गुणी थे। अतिथि-सत्कार में उन्होंने थोड़ी सी भी थकावट का अनुभव नहीं किया। जिन बहुमूल्य रत्नों को राजाओं ने युधिष्ठिर को भेंट किया था उनमें से एक से ही युधिष्ठिर का यज्ञ व्यय निकल सकता था। किन्तु त्यागी राजा ने उन सब को व्यय कर दिया। उनको तो भेंट में प्राप्त धन को ब्राह्मणों को दान रूप में देने में कितनी प्रसन्नता होती थी उतनी प्रसन्नता कोष में उन्हें रखकर कभी नहीं होती। समस्त राजाओं ने शिष्य की भाँति प्रसन्नता पूर्वक राजा के बताये हुए अल्प से अल्प भी कार्य को किया। याचकों को भी उन्होंने पूर्णतया सन्तुष्ट किया। माँगने पर अल्प भी विलम्ब न किया और न ही उन्होंने याचना करने वालों का तनिक भी अनादर किया चाहे वे याचक गुणी हों या न हो। बादल की भाँति वे तो ऊसर भूमि पर बरसने लगे। आए हुओं को छहों रसों से युक्त भोजन भी कराया राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर राजा ने धर्म शास्त्र का विचार करते हुए जब अर्घ्य-दान के सम्बन्ध में पूछा तब भीष्म जी ने सभा के अनुकूल उत्तर देते हुए बोलना प्रारम्भ किया कि तुम करणीय वस्तु को जानते हुए भी जो गुरुजनों को पूछते हो यह सदाचारानुकूल है। स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामता तथा राजा ये ६ अर्घ्यपात्र कहे गए हैं और ये सव तुम्हारी सभा में आये हुए हैं। इन सब की एक साथ ही पूजा करनी चाहिए अथवा इनमें से अत्यन्त गुण युक्त किसी एक ही की पूजा करनी चाहिए। यह भी एक विधि है। इस समय ब्राह्मणों और राजाओं के इस समागम में भी मुझे तो समस्त गुणों के आगार असुरों के विनाशक श्री कृष्ण ही एक मात्र पूजा के अधिकारी दिखलाई पड़ते हैं। इन श्री कृष्ण को केवल मनुष्य ही न मानना चाहिए ये समस्त जगत् से परे एवं सभी प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा के अंशभूत हैं। इन्होंने ही भिन्न-भिन्न अवतार धारण करके दुष्टों का दमन किया है। चेदि नरेश शिशुपाल का तृतीय नेत्र प्रचंड वायु की भाँति इन्हीं श्री कृष्ण को प्राप्त कर दीपक की भाँति बुझ गया। युधिष्ठिर ! तुम धन्य हो जिसके सम्मुख भगवान् स्वयं आकर उपस्थित हुए हैं। यज्ञकर्ता लोग यज्ञों में, परोक्ष में भी इन्हीं की विधिपूर्वक पूजा करते हैं अत: ऐसे परम पूज्य भगवान् श्री कृष्ण की पूजा करके तुम जब तक यह संसार रहेगा तबतक के लिए साधुवाद प्राप्त करो।

युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह की बातों को भली भांति सुनकर समस्त राजाओं के सम्मुख श्री कृष्ण की विधिवत् पूजा की।

पन्द्रहवाँ सर्ग—पूजा के पश्चात् चेदि नरेश शिशुपाल श्री कृष्ण की उस वृद्धि को देखकर मन से द्वेष करने लगा। उसने सभा के मध्य युधिष्ठिर द्वारा किये गए उस सम्मान को सहन नहीं किया। वह पहले से ही भगवान् श्री कृष्ण पर क्रोध युक्त तो था ही और फिर युधिष्ठिर द्वारा की गई उस पूजा से उसका क्रोध द्विगुणित हो गया। अब उसने जैसे ही सभा में बैठे हुए अपने शिर को हिलाया कि उसके मुकुट-मणियों की किरणें चारों ओर चमकने लगीं। क्रोध के मारे आँखों में आँसू भर आये तथा क्रोध की गर्मी से शरीर पसीने से तर हो गया। भ्रुकुटियाँ टेढी हो गईं। आँखें लाल वर्ण की हो गईं। उसने तलवार की ओर देखते हुए सभा में जाँघों पर ताल ठोककर कहा, कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर अपने प्रियजनों को गुणवान् सब ही मानते हैं अतः इस सभा में श्री कृष्ण पर विशेष प्रेम होने के कारण तुमने सज्जनों द्वारा अपूजित की पूजा की। जो राजा भी नहीं है ऐसे कृष्ण के लिए तुमने जो राजोचित पूजा के पदार्थों को भेंट किया है वह तो कुत्ते द्वारा हविष्य देने के समान है। सब तुम्हारी सत्यता की प्रशंसा करते हैं किन्तु निन्दा के पात्र कृष्ण की इस भाँति पूजा करना तुम्हारी असत्यता को प्रकट कर रहा है। तुम्हारा धर्मराज नाम क्या इसी रूप में है जैसे भौम अर्थात् अंगारक वार को अप्रशस्त होने पर भी लोग मंगलवार कहते हैं। हे कुन्ती पुत्रों, यदि कृष्ण ही तुम्हारे लिए विशेष पूजनीय था तो फिर अन्य राजाओं को निमन्त्रण देकर इस भाँति बुलाना उनका अपमान था। हो सकता है आप सब मूर्ख हैं किन्तु व्यर्थ ही बाल पका कर बूढ़ा और नष्ट बुद्धि वाला यह भीष्म इस प्रसंग में कैसे असावधान और मतवाला बन गया। हे शान्तनु पुत्र, तुमने ६ व्यक्तियों को अर्घ्यपात्र बताया उनमें से यह कौनसा स्नातक है जिसका तुमने भाटों की तरह प्रशंसा की। आखिर निम्नगा के ही तो पुत्र ठहरे क्यों न ऊँचे राजाओं को छोड़कर नीच कृष्ण में स्थिर भक्ति प्रदर्शित करते। हे कृष्ण, राजाओं के योग्य इस पूजा को तुमने क्यों स्वीकार किया ? तुमको स्वयं को तो सोचना चाहिए था कि तुम कौन हो। मधु नामक राक्षस को मारा इस पर हमको विश्वास नहीं होता किन्तु तुमने डंडे से मधु की मक्खियों को मारा है अतः मधुसूदन कहलाये। क्या तुमको स्मरण नहीं है कि राजा मुचुकन्द की शैय्या तुम्हारे लिए शरणदायिनी हुई और मगधपति जरासन्ध ने तुम्हारे तेज को ध्वस्त कर दिया था ? जो तुम सबल कहलाते हो वह तो बलराम के साथ रहने के कारण है। 'सत्य प्रिय' नाम तो सत्यभामा के साथ प्रेम रखने के कारण प्रसिद्ध हुआ अन्यथा प्रवंचना कर तुमने कई बार छल किया है। युद्ध में शत्रु सेना के भय से व्याकुल तुम अपने चक्र (सेना) को तो नहीं सम्भाल सकते किन्तु 'चक्रधर' नाम जो प्रसिद्ध हुआ वह तो रथ के चक्के (सुदर्शन चक्र) को सदैव धारण करने से है। 'श्री पति' जो कहलाते हो वह तो समुद्र की कन्या 'श्री' नाम्नी के साथ विवाह करने से परिवार के लोगों द्वारा रक्खा हुआ नाम है अन्यथा ययाति के शाप से तो यदुवंशियों की राजलक्ष्मी तो कभी की ही चली गई। युद्ध में कभी विक्रम नहीं दिखाया। जरासन्ध के सामने तुमको भूमि छोड़नी पड़ी। समस्त गुणों से विहीन यह तुम्हारी की गई पूजा उपहास जनक सिद्ध होगी। तत्पश्चात् स्वपक्षीय राजाओं को उत्साहित करने के

लिएकहने लगा—देखिये आप जैसे सिंहों के रहते हुए कुन्ती पुत्रों ने गीदड़ के तुल्य इस कृष्ण की पूजा की है। यह आप लोगों का अपमान है। जिस कृष्ण ने वृषभ रूपधारी अरिष्टासुर का संहार किया वह अपवित्रात्मा क्या पूजा की पात्रता प्राप्त कर सकता है। इसने पूतना के स्तन का पान किया, क्या वह इसकी माता नहीं हो गई ? फिर इसने दया नहीं दिखलाई ? शकटासुर का वध, यमलार्जुन का भंग, गोवर्धन का ऊपर उठा लेना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। हाँ, गाय चराते हुए कंश का जो वध किया वह तो वास्तव में ही बड़े आश्चर्य का कार्य है। हे युधिष्ठिर, गुणों द्वारा ही मनुष्य पूजनीय होते हैं किन्तु कृष्ण में पूजा के योग्य कोई गुण नहीं। इसकी चर्चा तो ग्रामीण मूर्ख किसान के रूप में करते हैं। यह तो अकृतज्ञ है, फिर कैसे प्रसन्न किया जायगा ? प्रिय वा अप्रिय, मित्र वा शत्रु को यह समान देखता है। उपकारकों का भी यह व्यक्ति प्रत्युपकार करना नहीं चाहता। यह सुख से विहीन है दूसरे महान् लोगों के गुण भी इसके समीप आकर विलीन हो जाते हैं। शिशुपाल की कठोर बातों से श्री कृष्ण कुछ भी क्षुब्ध न हुए। श्री कृष्ण के संकेत से यदुवंशी राजाओं ने भी प्रकटरूप में कोई क्रोध न किया। श्री कृष्ण प्रतिज्ञा बद्ध थे सहस्त्रों अपराध करने वाले शिशुपाल के इस अपराध को ही प्रथम अपराध के रूप में गिना। जब शिशुपाल ऐसी अपमानजनक बातें कर रहा था तो भीष्म ने कहना प्रारम्भ किया। हे राजाओं, जिस किसी राजा को आज इस सभा में मेरे द्वारा की गई भगवान् श्री कृष्ण की पूजा सह्य नहीं है वह धनुष चढ़ा ले यह मेरा बायाँ पैर ऐसे सभी राजाओं के सिर पर रक्खा जा रहा है। शिशुपाल के पक्ष में रहने वाले राजाओं ने भीष्म की यह बात सुनी तो अत्यन्त क्षोभ से भर गये। बाणासुर का मुख क्रोध से भर गया। द्रुम राजा लाल हो गया, नरकासुर के पुत्र वेणुदारी का हृदय भी जल उठा। राजा उत्तमौजा का मुख विकराल हो गया। राजा दंतवक्त्र अट्टहास कर क्रोध सूचित करने लगा। रुक्मणी हरण के समय का स्मरण हो आया। सुबल नामक राजा ने तो क्रोध के मारे पैर धरती पर पटका। आहुकि नामक राजा शिशुपाल पक्षीय होने पर भी चित्त में भावी युद्ध के आगमन से अधिक प्रसन्न हुआ। काल यवन राजा और भी भयंकर हो गया। राजा वसु तो जैसे ही पैर पटक रहा था कि वस्त्रों में उलझ कर गिर पड़ा। तत्पश्चात् युद्ध के अभिलाषी शिशुपाल पक्षीय राजा लोग वेग से उठ खड़े हुए। शिशुपाल भी कड़वी बातें कहता हुआ सभा-भवन से बाहर निकल गया। पाण्डु पुत्रों ने अनुनय के साथ अनेकों अपराध कर लेने पर भी उस शिशुपाल को रोका। पर शिशुपाल जैसे ही जाने लगा उसके पक्ष के राजा लोग भी उसी के पीछे चल पड़े। वह तीव्रगामी घोड़े पर से इन्द्रप्रस्थ से चला गया और अपनी सेना के शिविर में पहुँच कर उसने सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। किसी ने शंख बजाया तो किसी ने रणभेरी की ध्वनि की। सबने अपने-अपने कवच पहिन लिए। हाथी घोड़े भी सजाये गए। युद्ध के लिए प्रस्थान के समय रमणियों को भावी अमंगल की सूचना होने लगी। किसी के हाथ से मदिरा का प्याला प्रियतम को देते समय पृथ्वी पर गिर कर चकनाचूर हो गया। आँखों में से आँसू को रोकते हुए भी किसी की आँखों से पृथ्वी पर दो आँसू गिर ही गये। किसी ने तो जाते समय छींक दिया।

सोलहवां सर्ग—रणयात्रा की तैयारी के अनन्तर शिशुपाल द्वारा भेजे गये एक दूत

ने सभा में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप आकर स्पष्ट रूप में दो अर्थों वाली (प्रिय और अप्रिय) बातें कहना प्रारम्भ किया। शिशुपाल उन अपमानजनक बातों को कहकर इस बात का पश्चात्ताप कर रहा है वह उत्कंठित चित्त से यहाँ आकर आपके क्रोध को शान्त करने के लिए आपका अर्घ्य (वध) करना चाहता है। आप बड़े-बड़े राजाओं के शत्रु (पूज्य) हैं और अनेक युद्ध जीत (हार) चुके हैं। इस भाँति द्व्यर्थक बातें जो देखने में प्रिय किन्तु अन्दर अप्रिय लगने वाली थी कही गयी तो उसके चुप हो जाने पर श्रीकृष्ण के संकेत से सात्यकि ने उत्तर देना प्रारंभ किया हे दूत! तुम्हारा एक ही वाक्य बाहर से अत्यंत कोमल तो भीतर वही वाक्य बहुत कठोर है। उस वाणी को सुनकर सज्जन पुरुष भी उद्विग्न हो उठे हैं क्योंकि यह वाणी तो विष मिले हुए अन्न की भाँति अनर्थकारिणी है। यदि राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की पूजा की तो इस पर राजा शिशुपाल को क्यों द्वेष होता है? यदि कोई सुगन्धित पुष्प को अपने सिर पर चढ़ाता है तो उस पुष्प से ईर्ष्या कौन करेगा? यदि ऐसा कोई करता है वह पागल है: मूर्ख है। छोटे मनुष्यों का हृदय भी तुच्छ होता है अत: अप्रिय लगने वाली बातें उनमें कहाँ समायेंगी? सज्जन तो परोपकारी होते हैं किन्तु उनकी उन्नति भी दुष्टों के हृदयों में भारी रोग पैदा कर देती है। दुष्ट लोग आकाश बेलि की भाँति हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसभा में गालियाँ शिशुपाल द्वारा सुनी किन्तु उसके इस भाँति बकते रहने पर भी उन्होंने कोई प्रतयुत्तर नहीं दिया। सिंह तो बादलों का गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है शृङ्गालों की ध्वनि से नहीं। शिशुपाल के इस भाँति प्रलापों से क्या श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा में कमी आई है? क्या पृथ्वी की धूल से ढकी हुई मणि की महामूल्यता कहीं चली जाती है? दुष्ट के भीतर दूसरों के सन्तुष्ट करने योग्य कोई गुण नहीं होता वह नीच पुरुष वास्तव में दूसरों के अवगुण की कथाओं से ही अपने लोगों को संतुष्ट करने की इच्छा करता है। दुष्ट लोग अपना दोष देखने में स्वभावत: अंधे होते हैं किन्तु छोटे-छोटे अवगुणों को निकालने में दिव्य-दृष्टि होते हैं। अपने गुणों का बखान वे उच्च स्वर से करते हैं किन्तु दूसरों की प्रशंसा के अवसर पर मौन धारण कर लेते हैं। महान् पुरुष कायर की भांति प्रलाप नहीं करते किन्तु क्रुद्ध होने पर पराक्रम दिखलाते हैं। अब सात्यकि दूत की प्रिय और अप्रिय बातों का उत्तर देते हुए कहते हैं—तुम्हारा राजा शिशुपाल जिस भाँति से नीचा है (युद्ध करके अथवा संधि करके) यदि श्रीकृष्ण को देखने का इच्छुक है तो आकर देख ले, उनको उचित उत्तर देने में भगवान् विलम्ब न लगायेंगे। यदि शिशुपाल भगगवान् के साथ सन्धि करने का इच्छुक है तो युद्ध की तैयारी किस लिए की। यदि आक्रमण के लिये ऐसा किया है तो उसका अनर्थ ही होगा। अभी तक तुम्हारे राजा की शिशुपाल ने अपनी वाणी से भगवान श्रीकृष्ण के प्रति वह सौ अपराध अवश्य ही पूरे नहीं किये थे किन्तु अब तो दूत के मुख से उसने वह सौ अपराध भी पूरे कर लिए हैं अत: अब यदि कोई अप्रिय बात कहोगे तो तुम्हें दंड मिलेगा। सात्यकि की इन सब मर्मभरी बातों को सुनकर वह शिशुपाल का दूत पुन: अपना भय त्याग कर यह बात बोला। बुद्धिशून्य नीच लोग यदि स्वयं अपने कल्याण की बातें नहीं जानते तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह तो बुद्धिशून्य लोगों की बात है कि स्वयं अनुभव किए बिना विपतियों को नहीं जान पाते और न दूसरों के कहने पर ही विश्वास करते हैं। हे कृष्ण, सुलह और विग्रह की एक साथ जो मैंने बात कही है

उनमें से जो कल्याणकारी तुमको ज्ञात हो उसी के करने में अब शीघ्रता करो। मूर्ख पांडवों द्वारा पूजित एवं सत्कृत हो जाने से तुम्हारी योग्यता कहाँ से बढ़ गई ? सौ अपराधों को क्षमा करने वाली बात जो सात्यकि ने अभी-अभी कही है उसके लिये तो यही उत्तर है कि उन अपराधों को क्षमा करने वाले आपका अतिक्रमण अपनी केवल एक ही क्षमा ने कर दिया है अन्यथा रुक्मिणी हरण करने पर आपके प्रतिकार में समर्थ होते क्योंकि वह शास्त्रानुमोदित नहीं थी। शिशुपाल तुमको अब नष्ट कर देगा। मेरा तुम को उपदेश देना व्यर्थ होगा क्योंकि वह तुम पर अत्यंत क्रुद्ध है। मुझको तो तुम्हारे पक्ष के यदुवंशियों को युद्धार्थ ललकारने के लिये भेजा है क्योंकि वह राजा चोरों की भाँति छिपकर शत्रुओं का अहित नहीं करता। वह शिशुपाल अब प्रबल जल-प्रवाह की भाँति युद्ध के लिये अनिवार्य रूपसे आने वाला है। तुम यदि अब बेंत की भाँति नम्र हो जाओगे तो बच जाओगे अन्यथा वृक्ष रूप में तो टूट ही जाओगे। अभिमान से उद्धत जो कोई राजा अपने शिर को शिशुपाल के चरणों पर रखने की इच्छा नहीं करता उसके शिर पर गर्व विहीन हमारे राजा शिशुपाल स्वयं ही अपने चरण रख देते हैं। शिशुपाल की तेजस्विता में सूर्य भी उनकी समानता नहीं कर सकता। पराक्रमी शिशुपाल युद्धभूमि में शीघ्र ही तुम्हारा वध करेंगे और तुम्हारी रुदन करती हुई स्त्रियों पर दया करके उनके शिशुओं की रक्षा करता हुआ अपने "शिशुपाल" नाम को सार्थक करेंगे।

सत्रहवाँ सर्ग– दूत के उन गंभीर वचनों के कहने पर वह सभा अत्यन्त क्षुब्ध हो उठी। वहाँ के उपस्थित राजा लोग क्रोध के कारण लाल वर्ण के होकर पसीने से भीग गये। वे जंघाओं को पीटने लगे और दाँतों तथा होठों को काटते हुए अपनी हथेलियों द्वारा अपने कंधों को पीट रहे थे। बलराम तो दूत की अवज्ञा करने के भाव से अट्टहास करने लगा। उल्मुक नामक राजा तो युद्ध चाहता ही था अत: हर्ष से फूल उठा। युधाजित नामक राजा क्रोधाग्नि से जल उठा। निषधनामक राजा तो दक्ष प्रजापति के यज्ञ को विध्वंस करने के लिए उद्यत रुद्र के गण वीरभद्र ने जैसा भयानक रूप धारण किया था वैसे ही विकराल रूप में प्रतीत हुआ। सुधन्वा राजा हथेलियों को जब भींच रहा था तो सुवर्ण की अंगूठियाँ रगड़ खाकर पिस गईं। आहुकि नामक राजा अपनी तर्जनी अँगुलि को क्रोध के मारे घुमा रहा था। प्रद्युम्न की गति तो विचित्र ही प्रकार की थी। पृथु राजा रण के उत्साह से अपने वक्षःस्थल को सहलाने लगा। गान्दिनी के पुत्र अक्रूरजी क्रोध के मारे अपने आपे से बाहर हो गये। राजा प्रसेनाजित् मतवाली आँखों को घुमाने लगे। गवेशण नामक राजा का देह पसीने से व्याप्त हो रहा था सात्यकि के पितामह शिनि ने क्रोध के कारण पृथ्वी पर जो चरण पटका उससे धरती के थोड़ी सी फटजाने से पताल लोक सुप्रकाशित हो गया और नाग गण सन्तप्त होने लगे। राजा शारण बार-बार शिर को कंपाने लगे और राजा विदूरथ क्रोध से कुछ कहने लगे। इस भाँति शत्रु के दूत की कठोर बातों से सभा में क्रोध छा गया फिर भी श्रीकृष्ण का चित्त थोड़ा सा भी क्षुब्ध न हुआ। यही अवस्था उद्धवजी की थी। यदु वंशियों की उस सभा में जब उस दूत ने क्रोध से अग्नि रूप हुए राजाओं को देखा तो धीरे से खिसक गया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की सेना में युद्ध की तैयारी होने लगी। भयानक नगाड़े बजने लगे।

सैनिकों ने कवच पहिन लिए, हाथियों पर उनके योग्य झूल और हौदा रखते हुए रथों में अश्वों को जोतते हुए तथा घोड़ों पर जीन रखते हुए व्यक्तियों को राजा गण त्वरा करने के लिये बार-बार कहने लगे। वीरों ने कमर में तलवारें लटकालीं तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भी अनिवार्य अस्त्रों से युक्त होकर विकराल रूप धारण किया। अब वह अपने रथ पर चढ़े। पताका पर गरुड़ शोभित थे। भगवान् का रथ जैसे ही युद्ध के लिये चल पड़ा, सैनिक भी पीछे-पीछे प्रलयकाल की भाँति साथ हो लिये। हाथियों की चिंघाड़, नगाड़ों का गंभीर घोष, घोड़ों का हिन-हिन हिनाना ये सब आकाश मंडल को विदीर्ण से करने लगे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जिस दिशा में जा रहे थे सामने आती दूर से शत्रु सेना की धूल उड़ती हुई दिखलाई पड़ी। कुछ ही समय के पश्चात् उनकी चमकती तलवारें भी दिखाई पड़ी तो श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की सेना देखकर क्षण भर में ही यह अनुमान लगा लिया कि वह कितनी और कैसी है। जब वह सेना समीप आगयी और श्रीकृष्ण की सेना की ओर ही दौड़ पड़ी तो श्रीकृष्ण के सैनिक भी शत्रु सेना की ओर अधिक वेग से बढ़े। धूल ऊपर उठने लगी। दिग्-दिगन्त धूल से आंच्छादित हो गया। अन्त में गजराजों ने अपने मदजल की वृष्टि कर युद्ध-स्थली की धूली को शान्त कर दिया।

अठाहरवाँ सर्ग—युद्धभूमि से थोड़ा भी पीछे न हटने की इच्छा रखने वाले वे दोनों पक्षों के सैनिक युद्ध में जुट पड़े। पैदल-पैदल से, घोड़े-घोड़ों से, हाथी-हाथी से, तथा रथी-रथी से भिड़ गये। इसी भाँति रणभेरी की गंभीर ध्वनि, रथों की घर घराहट, गजराजों की तुमुल चिंघाड़ और अश्वों की हिनहिनाहट ये सब परस्पर मिलकर मानों परमात्मा की अव्यक्त सत्ता में खो गये हों। धनुषधारी लोग दृढ़ स्थूल, उन्नत और गोलाकार धनुषों को चढ़ाते हुए टंकार करने लगे। जब दोनों सेनायें परस्पर मिल गईं तब अपना और पराया पक्ष जानना बड़ा कठिन हो गया। इस युद्ध में रक्त इतना अधिक बहा मानो असंख्य नदियाँ प्रवाहित हो रही हों। पक्षीगण मांस खाने की इच्छा से आकाश में इस भाँति मंडरा रहे थे मानो भीषण अस्त्रों के आघात से शरीर को त्याग कर जाने वाले प्राण ही मूर्तिमान होकर अब भी अपने शरीरों को देख रहे हों। .वह रणस्थली इस भाँति मरे हुए प्राणियों के अंग प्रत्यंगों से सब ओर से व्याप्त होकर ऐसी दिखाई पड़ने लगी मानो अर्ध निर्मित आकृति समूहों से व्याप्त विधाता की विशाल सृष्टि की निर्माण स्थली हो। इस भाँति गर्व से परिपूरित शिशुपाल पक्षीय राजाओं की सेनाएँ निरन्तर वेग पूर्वक आगे बढ़ती हुई श्रीकृष्ण की सेना के साथ जय और पराजय के सन्देह में झूलती हुई युद्ध करने लगी। उस समय दोनों सेनाओं के मध्य भारी कोलाहल मचा हुआ था।

उन्नीसवां सर्ग—बाण के पुत्र राजा वेणुदारी ने जब देखा कि शत्रु वर्गीय राजाओं का संघर्ष हो रहा है तो वह द्वन्द्व युद्ध के लिए उठ खड़े हुए। बेणुदारी जब दूर से अपनी सेना की ओर दौड़ रहे थे तो बलराम ने सिंह की भाँति उस गज की ओर देखा। फिर बल-राम रथ पर आरूढ़ होकर उस बेणुदारी के सम्मुख युद्ध के लिए दौड़ पड़े। वेणुदारी ने जब अनेक बाण बलराम पर छोड़े तो बलराम ने भी क्रुद्ध होकर उस पर तीक्ष्ण वाण छोड़े। वाणों से मूर्च्छित होकर बेणुदारी को उनका सारथी भगाकर ले गया। सात्यकि के पितामह

शिनि की प्रभावशाली सेना शिशुपाल पक्षीय शाल्व की सेना को जीतकर अपनी डींग हाँकने लगी। कृष्ण पक्षीय उल्मुक राजा उस द्रुम राजा को प्राप्त कर विशेष रूप से ज्वलित हो उठा। रुक्मिणी के भाई रुक्मा ने अपने हथियार उठाकर जिस वाणी से कृष्ण पक्षीय राजा पृथु के धनुष की निन्दा की थी तुरन्त ही राजा पृथु ने भी ऐसे बाण चलाये कि वह अपने प्राणों से निराश हो गया। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अपने पीछे वेग से आती हुई शत्रु राजाओं की सेना को अकेले ही रोक दिया। कवच धारी शत्रु सेना ने भी प्रद्युम्न पर बाण वर्षा करना आरम्भ किया अनेक सहायकों से युक्त बाणासुर को प्रद्युम्न ने बाणों से वेध दिया। वाणासुर की सेना को भी जो माया प्रकट करके अपना पराक्रम दिखा रही थी प्रद्युम्न ने धनुष खींचकर अनायास ही परास्त कर दिया। युद्ध में उत्तमौजा राजा को पराजित कर प्रद्युम्न ने अपने नाम की सार्थकता प्रकट की। प्रद्युम्न के कृत्यों को देखकर देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की और उसका यश चारों ओर फैल गया। विजय श्री प्रद्युम्न को प्राप्त हुई। यह देखकर शिशुपाल क्रोधान्वित हो गया। वह चतुरंगिणी सेना के साथ प्रद्युम्न की ओर दौड़ पड़ा। शिशुपाल की सेना में प्रत्यंचा के टंकार के शब्द तथा विविध वाद्य बजने लगे। घोड़े हिनहिनाने लगे। तलवारें चमकने लगीं सिंहनाद करते हुए सैनिक युद्ध के लिए उत्सुक थे। असंख्य हाथी युद्ध के लिए दौड़ पड़े। शिशुपाल की वह सेना सर्वतोभद्रचक्र, गोमूत्रिका आदि चित्र-बन्धों से युक्त थी। यदुवंशियों की वह सेना भी शिशुपाल की सेना पर टूट पढ़ी। यदुवंशियों की सेना भी हाथियों से परिपूर्ण थी। भीषण ध्वनि के साथ आघात होने पर भी विचलित न होने वाले हाथियों (नागों) ने युद्ध भूमि में जमे रहकर प्रभूत मदजल की वर्षा की। युद्ध भीषण था किन्तु राजा लोगों ने विपत्ति में पड़कर भी नीति मार्ग का उल्लंघन नहीं किया। उस युद्ध भूमि में कहीं रक्त की नदियाँ प्रवाहित हो रही थीं तो कहीं मज्जा और वसा को खाने के लिए राक्षस और पिशाच गण प्रसन्न हो रहे थे। शिशुपाल द्वारा रणभूमि में इस भाँति अपने सैनिकों का अवरोध करते देखा तो भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध के लिए उपस्थित हो गये। वे कौस्तुभमणि तथा पीताम्वर धारण किये हुए थे। उन्होंने सर्व प्रथम विशाल प्रत्यंचा से युक्त अपने धनुष को झुकाया जब वे इतनी शीघ्रता से शर-संधान कर रहे थे,उनका केवल धनुष ही मंडलीकृत अवस्था में नहीं दिखाई पड़ रहा था किन्तु शत्रु-सेना भी भयभीत होकर मंडलीकृत दिखाई पड़ी।

बीसवाँ सर्ग—श्रीकृष्ण के ऐसे पराक्रम को न सहन कर सकने के कारण शिशुपाल क्रोध में भर गया। उसकी भृकुटियाँ टेढ़ी हो गई और भाल प्रदेश पर तीन टेढ़ी रेखायें दीख पड़ीं। वह निर्भय होकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा उसके सारथी ने उसके रथ को श्रीकृष्ण के सम्मुख आकर खड़ा कर दिया, श्रीकृष्ण का सारथि भी शिशुपाल के सम्मुख दौड़ा। उसके गम्भीर घोष से दिशायें पूरित हो गई थीं। चेदि नरेश शिशुपाल ने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर भीषण टंकार शब्द किया। उसके बाण-समूह इस भाँति निकलने में त्वरा कर रहे थे मानो वादी के मुख से बचन निकलते हों। भगवान् श्री कृष्ण ने शिशुपाल के द्वारा फेंके हुए उन समस्त बाणों को अपने अनेक बाणों से इस भाँति काट कर गिरा दिया जैसे वादी के प्रमाणों को प्रतिवादी काट्य प्रमाणों और युक्तियों द्वारा गिरा देता है। कभी-कभी दोनों के बाण मध्य में ही टकरा कर अग्नि की चिनगारियाँ उत्पन्न करने लगे। शिशु-

पाल ने सैंकड़ों बाण भगवान् श्रीकृष्ण पर चलाये जो मर्म भेदी थे किन्तु वे सब उसके किए हुए सौ अपराधों के समान उन्हें कुछ भी व्यथा नहीं पहुँचा सके। अब शिशुपाल ने माया द्वारा जीतने की इच्छा से श्रीकृष्ण पर प्रस्वापन नामक अस्त्र का प्रयोग किया। इससे श्रीकृष्ण की समूची सेना निद्रा में निमग्न होने लगी। इस पर श्रीकृष्ण ने कौस्तुभमणि को देखा, देखते ही प्रकाश हो गया और उससे सब सैनिक जग गये। इतना ही नहीं हुआ वे शत्रु का पूर्व से भी अधिक संहार करने लगे। प्रस्वापन अस्त्र को इस भाँति निष्फल होता हुआ देखकर शिशुपाल ने भुजंगास्त्र का प्रयोग किया। इसके प्रयोग से हजारों भीषण सर्प एक साथ ही प्रकट हुए। सूर्य उस समय ताँबे के तवे की भाँति लाल वर्ण का ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो राहु ने उसको ग्रस लिया हो। बारम्बार अपनी जीभें लपलपाते हुए वे नाग गण भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के ध्वजों के ऊपर लगी हुई मयूरों की पूछों से संशक होकर क्षण भर के लिए पीछे की ओर लौट पड़े किन्तु फिर यदुवंशियों की सेना को बाँधने के लिए यम के पाश की भाँति उन पर टूट पड़े। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने अवज्ञाभरी दृष्टि से मंद-मंद मुसकुराते हुए अपनी एक भौ से अपनी पताका के ऊपर स्थित पक्षिराज गरुड़ की ओर जैसे ही संकेत किया वैसे ही एक शब्द से सहस्रों गरूड़ उड़-उड़ कर बाहर निकले। गरूड़ास्त्र के द्वारा नागास्त्र को विफल होते हुए देखकर शिशुपाल ने आग्नेय अस्त्र छोड़ा। वह अग्नि जब समस्त जगत को जलाती हुई सी दिखलाई दी तो भगवान् ने करुणास्त्र छोड़ा। मेघ अब गरजते हुए दिशाओं को आच्छादित करने लगे। सूर्य मेघों में विलीन हो गया। बिजली चमकने लगी। उस जलती हुई भीषण अग्नि को शान्त करने के लिए इतनी वर्षा हुई कि नदियों में बाढ़ आ गयी। अग्नि को शान्त कर मेघ आकाश में स्वतः ही विलीन हो गये। इस भाँति शिशुपाल ने कुपित होकर जिन-जिन अस्त्रों को प्रयोग किया था श्रीकृष्ण ने भी उन अस्त्रों को विफल करने के लिए उनके प्रतिकूल अस्त्रों का प्रयोग किया। इस तरह पराजित शिशुपाल श्रीकृष्ण को वचन रूपी बाणों से व्यथित करने लगा। अन्त में गाली बकते हुए शिशुपाल के शरीर को सुदर्शन चक्र ने सिर से विहीन कर दिया। शिशुपाल का सिर कटकर जब पृथ्वी पर गिरा तब राजाओं ने अपने विस्मित नेत्रों से देखा कि परम दीप्तिमान तेज शिशुपाल के शरीर से निकल कर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

प्रशस्ति—(कवि बंश वर्णन)—श्री वर्मल नामक राजा के सर्वाधिकारी मन्त्री श्रीसुप्रभदेव थे। वे पुण्यात्मा, धार्मिक, निरासक्त दृष्टि वाले, रजोगुण रहित तथा दूसरे देवता की भाँति थे। महाराज वर्मल उनकी बातों को इस भाँति सुनते थे जैसे तथागत भगवान् बुद्ध की बातों को सुनते हों। उन्हीं के दत्तक नामक पुत्र था जो उदार, क्षमाशील कोमल प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ था जो दूसरा युधिष्ठिर था। वहीं दत्तक लोगों द्वारा "सत्याश्रय" इस नाम से भी पुकारा जाता था। उन्हीं पुण्यशील दत्तक के पुत्र माघ ने शिशुपाल-वध नामक काव्य की रचना की जिसमें श्रीकृष्ण के पावन चरित्र की चर्चा है और जिसके प्रत्येक सर्ग की समाप्ति में "श्री" शब्द का प्रयोग है तथा अच्छे कवियों की दुर्लभ कीर्ति पाने की दुराशा से ही वह रचा गया है।

सर्गवद्ध कथा के अनुशीलन से प्राप्त तथ्य

सामाजिक अवस्था—महाकवि माघ के समय में शिष्टाचार का एक विशिष्ट स्वरूप था।[1] आयु या ज्ञान में अपने से जो वृद्ध होता उसका समुचित सम्मान और स्वागत किया जाता था। जब वह कहीं जाता तो उसको आदरपूर्वक बिदा दी जाती थी। प्रथम सर्ग में देवता लोग नारद को द्वारकापुरी तक पहुँचाने गगन मंडल में आये थे। इसी तरह जब नारद श्रीकृष्ण के यहाँ पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने श्रद्धा और सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया था। हाथ जोड़ कर प्रणाम भी किया करते थे यह उस युग की सभ्यता थी। शास्त्रों की इस व्यवस्था का न केवल शब्दश: अपितु भावनापूर्वक पालन किया जाता था। "ऊर्ध्वं प्राणाह्यु-त्क्रामन्ति यून: स्थविर आयति प्रत्युत्थानाभि-वादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।" तात्पर्य यह है कि वृद्धों के सम्मुख आ जाने पर युवक के प्राण ऊपर उठ जाते हैं पहले ही उठकर अगवानी करने तथा विनयपूर्वक प्रणाम करने से वे पुन: यथास्थित हो जाते हैं। अर्घ्य, पाद्यादि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् पूजा करने की प्रथा कालिदास युग से पूर्व से चलती हुई आ रही थी। पूजा के पश्चात् अपने हाथ से दिए हुए आसन पर वे अतिथि देव विराजमान होते थे। परिजनों में ज्येष्ठ अपने से जो कनिष्ठ होता उसके मिलने के अवसर पर प्रथम उसका सिर सूँघता था तब फिर कहीं दूसरी बातें होती थीं। सिर सूँघना, माथे पर हाथ रखना आशीर्वाद के द्योतक हैं। राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का सिर सूंघा था फिर परस्पर में मिले भेंटे थे।[2] समान आयुवाले परस्पर सीने से सीना लगाकर मिलते थे। स्त्रियाँ भी इसी तरह मिलती थीं।[3] अतिथि का एक देवता के रूप में उत्साह और उल्लास से परिपूर्ण सत्कार किया जाता था। "अतिथि-देवो भव" इस सूत्र में उस काल के अतिथि-सत्कार का स्वरूप समाविष्ट है।

माघ के समय में वर्णाश्रमव्यवस्था का कदाचित् जोर था। जो चारों वर्णों में सम्मिलित न थे उनकी संतान वर्ण-संकर कहलाती थी। वर्णसंकर संतान का समाज में आदर न था। द्विज वर्ण ही कुलीन समझे जाते थे। राजा युधिष्ठिर ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियन्ता थे। समाज के व्यक्तियों का वैदिक जीवन था। गौओं की रक्षा करना भी गृहस्थ के प्रमुख कर्त्तव्यों में सम्मिलित था (सर्ग चौदह को देखिये)

नोट—१. माघ १—११

२. माघ १३—१२, १३

३. माघ १३—४३ को देखिये।

नगर-निर्माण तथा उनकी रक्षा—

माघ के समय में नगरियों के चारों ओर रक्षा के निमित्त परकोटे, बुर्ज तथा जनता के आवागमनार्थ चार पाँच या इससे भी अधिक विशालकाय द्वार-देश होंगे। बड़ी-बड़ी नगरियाँ देखने योग्य थीं जहाँ पर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, तोरण-द्वार, राजमार्ग, राजमार्गों पर जल का छिड़काव था। दूकानें अनेक विक्रेय वस्तुओं से परिपूर्ण रहती थीं। वहाँ हीरे, मोती, मणि-माणिक आदि बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार होता था। नगरियों में रात्रि के समय पहरे लगा करते थे जिससे चोरी लूट खसोट तथा अन्य बातों से वह सुरक्षित थी। पहरेदार पारी पारी से अपने पहरे को बदला करते थे।[1] प्रातःकाल हो जाने पर मन्दिरों, राजगृहों तथा महानुभावों के घरों पर नौबत बजती थी। उदयपुर (मेवाड़) के जगदीश मंदिर तथा राजभवनों में रियासती समय तक भारत के स्वतंत्र होने के बाद महाराजस्थान बनने तक यह प्रथा चालू थी। इससे लोगों को प्रातःकाल उठकर अपना दैनिक कृत्य करने की सुविधा होती थी।[2]

नगर के चारों ओर खाई भी होती थी। कहीं-कहीं पर दुर्ग भी। इन सब दुर्गों में नगर-रक्षक सेना योद्धाओं से सुसज्जित रहती थी।[3] हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, पैदल सेना के अंग थे। युद्ध की नीति में चाहे थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य आ गया था, पर सेना संगठन प्राचीन भारत जैसा ही था और सैनिक आदर्श भी प्राचीन ही थे। शरणागत की रक्षा का भाव माघ के समय में था जो राजपूत युग की एक विशेषता है। प्रतिरक्षा के भी भाव पूर्वजों जैसे ही थे।

राजकीय जीवन

राजा लोग प्रातः ही उठकर संध्या वंदनादि से निवृत्त होते तथा नियत स्थान पर बैठ जाते जहाँ पर दरबारी गण इकट्ठे होते थे। राजा के उठने पर वे तो अपने घर का मार्ग लेते और राजा मन्त्रालय में राज्य का कार्य देखने को पहुँच जाते। प्रातःकाल से रात्रि तक की उनकी जीवन-चर्या सुनिश्चित थी। यह जीवन-चर्या स्मृतियों तथा चाणक्य-नीति संयत थी। वहाँ इसका विशद वर्णन देखा जा सकता है।

ग्राम्य जीवन—

ग्रामों की स्थिति नगर से भिन्न थी। किसान कृषियोग्य भूमि को जोतते थे। उस पर पहले हल चला कर जोत देते। तत्पश्चात् उस पर पाटा फेर कर उस भूमि को एक समान कर लेते। ग्रामवासियों का जीवन उस समय अत्यन्त सुखद था। वे गोचरभूमि पर बैठे हुए मंडलाकार में गप्प लड़ाया करते थे तो कुछ उछलकूद करते हुए गाने व अट्टहास करते। हरि-

१. माघ ११-४
२. माघ ११-१
३. माघ १-४५

कीर्तन का उनमें पर्याप्त प्रचार था। गाँवों में कहीं तो गायें दूध दुही जातीं तो कहीं धान के खेत की रखवाली होती और कहीं नारियाँ गीत गाती हुई हरिणों को मन्त्र मुग्ध सी करतीं। संक्षेप में गाँवों का जीवन शांतिमय तथा सुखी था।

नारी-जीवन

माघ कालीन स्त्रियाँ शिक्षित थीं अथवा नहीं इसका तो ग्रन्थावलोकन पर कुछ भी पता नहीं पड़ता किन्तु वे रणभूमि में जातीं और अपने पति के पूर्व ही मरना पसन्द करती थीं। वैसे स्त्रियाँ प्रायः घरेलू जीवन ही विताती थीं। पर बाल्यकाल में कदाचित राजपूत बालिकाओं को अपने घरों में ही और प्रकार की शिक्षा के साथ शस्त्र-शिक्षा भी दी जाती होगी, जिससे वे समय पड़ने पर अपनी तथा कुल मर्यादा की रक्षा कर सकें और यदि आवश्यकता हो तो, मैदान में शत्रु से भी मोरचा लें। ऐसे सामाजिक अवसर भी होते थे जहाँ स्त्री-पुरुष एक विशेष मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्बाध रूप से प्रवृत्त हुआ करते थे।

विवाह जब होता था तब उसके पूर्व यह अवश्य देख लिया जाता था कि वर व वधू कहीं एक गोत्र के तो नहीं हैं। विवाह होने पर आज की तरह कन्या का गोत्र अपने माता पिता के गोत्र पर नहीं चलता था किन्तु पति का गोत्र ही उसका गोत्र हो जाता था। पति को इसीलिए 'गोत्रभित्' की उपाधि दी गई है।[1] श्वसुराल में रहती हुई विवाहिता वधू का कर्तव्य हो जाता था कि वे पुरुषों के पूर्व ही ब्राह्म मुहूर्त में उठ बैठें।[2] प्रातः होते ही स्त्रियाँ घर के कार्य में व्यस्त हो जातीं। कुएँ से पानी भरकर लाना उनका एक रुचिकर दैनिक कर्तव्य था।[3]

घूंघट प्रथा का रूप पूर्व से इस काल में अत्यधिक था। स्त्रियाँ मुख पर घूंघट डालतीं तथा पर्दे के भीतर रहती थीं। माघ ने जो वर्णन किया है उसे देखिये—

यानाञ्जनः परिजनैरवतार्यमाणा, राज्ञीर्नरापनयना कुल सौविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः, क्षणलक्ष्यमाणा, वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ॥१७ः:

परिजनों द्वारा वाहनों से नीचे उतारी जाने वाली, देखने वाले लोगों को दूर हटाने में परेशान कंचुकियों से युक्त, उन रानियों की मुखश्री को, जिनके घूंघट का वस्त्र नीचे उतरते समय खिसक गया था, क्षण भर के लिए लोगों ने भय मिश्रित कुतूहल के साथ देख लिया।

श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में जा रहे हैं तब ग्रामीण स्त्रियाँ उन्हें खेतों की बाड़ की ओट से नीचे झुककर चुपके से देख रही हैं। यह भी पर्दे का ही एक रूप है। इन्द्रप्रस्थ के

नोट—१. माघ ९-८०,
२. ९-३०
३. ११-४२ देखिये :

सभा-भवन में प्रियतमों के साथ नवीन समागम होने से नववधुएँ लज्जा के मारे दूसरी ओर मुँह करके खड़ी रहती[१] यह भी पर्दा प्रथा का ही एक रूप है।

समाज में सती प्रथा का प्रचार इस समय कदाचित् जोरों पर था। कवि ने इस प्रथा की प्रशंसा इस रूप में की है कि जो सती होती है व दूसरे जन्म में अपनी आकांक्षा की पूर्ति करके परम भाग्यशालिनी होती है।[२] माघ का काल विलासमय जीवन का काल था। उस काल में मदिरापान भी तो जोरों पर था ही। स्त्रियाँ दुर्वृत्त भी होती थीं, उनमें कुछ तो वेश्यावृत्ति को स्वीकार कर लेती थीं, कुछ प्रच्छन्न व्यभिचार रत होती थीं।

नव विवाहिता पुत्री को अपनी गोद में बैठाकर अपनी पुत्री को पहनने का आभूषण पिता दिया करता था ऐसी प्राचीन काल में एक और प्रथा थी। देखिये—

रथांगभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरंकभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ॥३-३६॥

उदयपुर के मांडलगढग्राम में हमने ऐसी ही प्रथा का रूप आज से लगलग २५ वर्ष पूर्व देखा था। अन्तर इतना ही था कि वहाँ पर नव विवाहिता को अपने अंक में पिता न लेकर धर्मपिता (श्वसुर) लिया करता था। (मांडलगढ़ एक पर्वतीय प्रदेश है जो चारों ओर पहाड़ों से घिरा हुआ है।)

कन्यायें जब पतिगृह जाती थी विदाई के उस समय माता-पिता रुदन करते थे। उस समय का दृश्य बड़ा करुणोत्पादक होता था। यह भी रूप मेवाड़ में आज तक भी देखने को मिल सकता है। कन्या जैसे ही पिता के घर से बिदा हुई कि सगे सम्बन्धी, आस पास के पड़ौसी, माता-पिता, भाई-बहिन लगभग ग्राम की सीमा तक जब पहुंचाने जाते तो वे इस भाँति का करुण क्रन्दन करते हैं कि दर्शकों का चित्त द्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता। कन्या भी गले में गला डालकर विदा की सीमा तक रोती हुई जाती है। इन पंक्तियों के लेखक ने माँडलगढ़ में ऐसा ही दृश्य देखा है और माघ के निम्न लिखित श्लोक को पढ़ते ही स्मृति पथ पट पर आ जाता है—

अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरःपतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सतलयैष निम्नगाः ॥४-४७॥

स्त्रियाँ धूप से बचने के लिए छाता लगाती थी। मेवाड़ में छाता स्त्रियाँ नहीं लगा सकती थी। किन्तु शेखावटी की स्त्रियाँ निःसंकोच छाता लगाती हैं।

वेशभूषा—

पुरुषों के वस्त्र—पुरुष प्रायः दो वस्त्र धारण करते थे। एक तो अधोवस्त्र जो धोती के ही रूप का था तथा दूसरा ऊर्ध्व-वस्त्र जिसको दुपट्टा भी कहते हैं। श्वेत रंग के दुपट्टे पुरुष पहिना करते थे। उस समय कदाचित् आज की भाँति सिले हुए वस्त्रों का इतना अधिक

नोट—१. माघ १३-५५,

२. माघ ६-१३, २७। १-०२ देखिये।

प्रचार नहीं था। धोती पर कदाचित् करधनी पहनी जाती थी। उनके नंगे शरीर पर सूत्र निर्मित पीले अथवा सफेद रंग का यज्ञोपवीत रहता था।

स्त्रियों के वस्त्र आभूषणादि—अधिकांश स्त्रियाँ माघ के काल में कुसुमल रंग (कौसुम्भ) की साड़ी पहनती थी। इसके नीचे नीवबंधन वाला घेरदार घाघरा होता था। स्तन प्रदेश पर कांचलियाँ रहती थीं जो स्तनों को आधे ढकी रहती थीं।[1]

स्त्रियाँ गले में मोतियों का हार तथा कर्णों में कर्णफूल पहिनती थीं। कटि प्रदेश पर करधनी, पैरों में नुपूर और महावर लगाती तथा मोतियों की माला भी पहनती थीं। होठों पर वे आलते का रंग, कपोलों पर लोध्र पुष्प की रज तथा नेत्रों में अंजन लगाया करती थीं।[2]

धार्मिक स्थिति—

माघ महाकाव्य के प्रथम श्लोक "श्रिय: पति: श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि। वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्य गर्भांगभुवं मुनिं हरि:॥" से तो स्पष्ट है कि इस युग तक आते-आते जहाँ पर सूर्य की पूजा होती थी वहाँ रुद्र के साथ-ही-साथ "विष्णु" नामक देवता का भी महत्व बढ़ चला था। मानव मात्र का उद्धारक माना जाकर विष्णु देवता ने तो अब वैदिक काल से चले आते हुए वरुण तथा सूर्य का स्थान ग्रहण कर लिया था। उस युग में दिव्य देवताओं में वह सब से अधिक प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ माने जाने लगे थे। यहाँ तक कि छठी शताब्दी तक बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मान लिया गया और हिन्दू उन्हें देवता मानकर उनकी उपासना भी करने लगे। वैदिक युग के अवसान होने के पूर्व ही विष्णु का "वासुदेव" के साथ अनन्यीकरण हो गया था। यही वासुदेव महाकाव्य युगीन अनुश्रुति में देव-की पुत्र श्रीकृष्ण नाम के उपास्य देव थे। यह धारणा दिन प्रतिदिन दृढ़ होती जा रही थी कि विष्णु पृथ्वी को संकटमुक्त करने के लिए बार-बार अवतार धारण करते हैं। राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा था। नारद इसी हेतु इन्द्र-संदेश लेकर विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के निकट वसुदेव के घर आये जहाँ पर जगत् का नियन्त्रण करने के लिए ही भगवती रुक्मिणी, जो लक्ष्मी-स्वरूपिणी थी, के साथ निवास कर रहे थे। विष्णु पुराण में भी कहा है "राघवत्वे भवेत् सीता, रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि।" इस भाँति प्रथम वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण के रूप में कवि ब्रह्मा के पुत्र नारद को विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण के निकट आकाश मार्ग से भिजवाकर विष्णु पद की सर्व श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है। अवतार-भावना इस युग तक आते-आते दृढ़ हो चुकी थी। पौराणिक कथाओं पर पूर्ण विश्वास हो चला था। यही कारण है कि हम कवि को नारद द्वारा श्रीकृष्ण के बार-बार अवतार प्राप्त करने का स्मरण दिलवाते हुए पाते हैं। प्रथम सर्ग श्लोक संख्या ३४ प्रथम ही वाराहावतार की पौराणिकी कथा का उल्लेख करता है। ३६वें श्लोक में स्पष्ट रूप से अवतार धारण करने के भाव सन्निहित है। कंसादि का वध करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार अवश्य धारण

नोट—१. माघ ५-२३
२. माघ ६-४६

किया। अवतार तब होते हैं जब संसार में आसुरी वृत्ति सामाजिक सन्तुलन को बिगाड़ देती है। हिरण्यकशिपु की पौराणिक कथा को लाकर नृसिंह का अवतार उसके संहार के लिए नारद ने उपस्थित किया। हिरण्यकशिपु मर तो गया किन्तु बदला लेने के लिए तथा रण के गर्व से उत्पन्न भुजाओं की खुजली मिटाने के लिए रावण रूप से दूसरे युग में अत्यन्त भयंकर राक्षस हुआ जिसका संहार श्री विष्णु भगवान् ने रामावतार में किया। राक्षस देह को त्यागने पर दूसरों को छलने में तत्पर यह रावण नट के रूपान्तर की भाँति दूसरे जन्म में शिशुपाल रूप से उत्पन्न हुआ है, जिसका संहार विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण के हाथ से ही संभव है क्योंकि उस दुष्ट ने चारों ओर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया है। धर्म का नाश हो रहा है। सज्जन संत्रस्त हैं अत: वध ही अपेक्षणीय है। श्रीकृष्ण ने भी उस सन्देश को स्वीकार किया यह समझ कर कि ऐसे समय में शिशुपाल का संहार करना उन्हीं का परम कर्तव्य है। भागवत्, रामायण, महाभारत, तथा पुराणों में अवतार भावना ही प्रमुख भावना है।

इस अवतार भावना के साथ सृष्टि संबंधी यह पौराणिक कल्पना भी उस युग में घर कर चुकी थी कि पृथ्वी शेषनाग के फणों पर स्थित है। श्लोक संख्या १३ में कहा गया है कि नारदजी के शरीर का भार इतना अधिक था कि उनके धरती पर पैर रखते ही शेष के फण नीचे की ओर झुकने लगे। अतिशयोक्ति अवश्य है किन्तु शेष नाग का पृथ्वी को अपने फण पर धारण करने की यह कल्पना उन्हीं ग्रन्थों की देन है। सृष्टि के सम्बन्ध में प्रलय की कथा का भी बड़ा महत्व है। श्लोक संख्या २३ में कहा गया है कि प्रलयकाल में समस्त संसार एवं उसके जीव निकाय परमात्मा के शरीर में स्थित हो जाते हैं इस भाँति चौदहों भुवनों की स्थिति जिस शरीर में हो जाती है अर्थात् प्रलय काल में समस्त जीव समूहों को अपने में समेट लेने वाले श्रीकृष्ण के शरीर में निखिल संसार विस्तारपूर्वक स्थित रहता है। इस भाँति प्रलय के समय सारी सृष्टि का जल मग्न हो जाने की बात दिखलायी गयी है।

तीसरी धार्मिक भावना जिसका उस युग में प्रचार था वह है तीर्थ भक्ति। श्लोक संख्या १८ इसका ज्वलंत उदाहरण है, नारदजी अपने कमन्डुलु में भू मंडल के समस्त तीर्थों का जल लेकर आये थे और श्रीकृष्ण को उस जल से अभिषिक्त किया था।

चौथी बात आवागमन का चक्र है। आत्मा अजर अमर अवश्य है किन्तु यह भिन्न रूप धारण करती रहती है। हिरण्यकशिपु ने अपनी खुजली मिटाने के लिए अपने मन की इच्छानुसार रावण रूप धारण किया है। रावण ने भी अपने मारने वाले राम का बदला लेने के लिए शिशुपाल वाला नट रूप धारण किया है। इससे तो यही तात्पर्य निकलता है मनुष्य अपनी इच्छानुसार भी आगे का जन्म धारण कर सकता है और इस भाँति आवागमन की बात तो सिद्ध हो जाती है। जैन तो जन्म जन्मान्तर को मानते ही हैं। बौद्ध लोग भी इसे किसी-न-किसी रूप में मानने से नहीं बच सके।

पाँचवीं मान्यता यज्ञ संबंधिनी है। श्रीकृष्ण श्लोक संख्या १७ में "यज्वनां प्रिय" शब्द से संबोधित किये गये हैं जिसका अर्थ होता है यज्ञकर्ताओं के प्रिय। उस युग में यज्ञ का विधान था। उसका करना श्रेष्ठ समझा जाता था। बड़े यज्ञों के साथ दैनिक यज्ञ भी होते हैं—कई प्रयोग-विधियाँ प्रचलित थीं। अनुष्ठान होते थे।

मोक्ष अथवा निर्वाण—

छठी मान्यता मोक्ष की है। योगी ध्यानावस्थित होकर संसार से विरक्त हो जाते हैं। ऐसे मोक्ष के इच्छुकों को भी श्रीकृष्ण की ही शरण में जाना पड़ता है। श्रुति का कथन है। "तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेतिनान्य: पन्था: विद्यतेऽयनाय" तथा 'न स पुनरावर्तते' अर्थात् उसी परम पुरुष को प्राप्त करके ही मृत्यु से छुटकारा मिलता है इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है और वहाँ पहुँचकर फिर संसार सागर से लौटना नहीं पड़ता है। ये योगी लोग चित्त-वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म-दृष्टि से किसी प्रकार आत्म साक्षात्कार करते हैं। वे आत्मा को उदासीन, महदादि विकारों से पृथक् त्रिगुणात्मिका (सत्व, रजस् एवं तमस गुणों से लिप्त) प्रकृति से भिन्न विज्ञान धन अनादि पुरुष के रूप में इस भाँति निर्गुण रूप का प्रतिपादन सुन्दर रूप से किया है। इन्हीं श्लोकों के नीचे के ६ श्लोक सगुण रूप की प्रशंसा में हैं जिनके विषय में पहले विचार हो चुका है।

स्रोतों से प्राप्त कथाओं की माघ काव्य की कथा से तुलना

पहले जिन ग्रन्थों से शिशुपाल संबंधी कथाओं को दिया गया है वे ही ग्रन्थ इस महा-काव्य की कथा के स्रोत हैं। महाकवि ने शिशुपाल वध काव्य को लिखने के पूर्व अपना कथानक बनाया हो ऐसी कोई बात दिखलाई नहीं पढ़ती। कवि माघ शास्त्रज्ञ तथा विद्वान् पंडित थे। उनमें सारग्राहिणी प्रवृत्ति थी। वह पूर्ण अध्यवसायी थे। उनको अनेकानेक ग्रन्थों की उपस्थिति थी। शिशुपाल वध काव्य को लिखते समय जब जैसा अवसर आता गया अपनी कथा को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए अपने अधीन ग्रन्थों की उपस्थिति का सहयोग भी उन्हें प्राप्त होता गया। इस तरह इनका कथानक बन गया। यहाँ पर उन अवतरणों का शिशुपाल वध काव्य की कथा के साथ कहाँ-कहाँ पर कैसा साम्य तथा कौन-कौन से ऐसे स्थल हैं जहाँ पर वैषम्य सा प्रतीत हो रहा है, यह दिखलाना है। संक्षेप में इस तुलनात्मक विवेचन को पाठकों की सुविधा के लिए निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) नारद का आगमन।
(ख) संदेश कथन।
(ग) श्रीकृष्ण का विचार-विमर्श तथा इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान।
(घ) युधिष्ठिर की दिग्विजय।
(ङ) यज्ञ में श्रीकृष्ण के लिए अथवा उनके द्वारा स्वीकृत कार्य।
(च) यज्ञ का चित्रोपम वर्णन।
(छ) अर्घ्यपूजा का प्रश्न तथा प्रस्ताव के अनुमोदन करने वाले व्यक्ति।
(ज) शिशुपाल का क्रोध।
(झ) शिशुपाल वध तथा अन्तिम दृश्य।
(ट) किरातार्जुनीय और माघ-काव्य के कथानकों की रूपरेखा में साम्य और वैषम्य।

नारद का आगमन—महाभारतकार, भागवतकार तथा शिशुपालवध काव्यकार इन तीनों ने नारद के आगमन को लिया है। अन्य कथा-स्रोतों में ऐसी कोई बात नहीं लिखी अतिरिक्त इसके कि "किरातार्जुनीय" के कवि ने व्यास का आगमन कराया है जो नारद की ही भाँति युधिष्ठिर के सम्मुख सहसा उपस्थित हो जाते हैं। **महाभारत के नारद** लोकों में विचरण करते हुए, ऋषियों को साथ लेकर श्रीकृष्ण के स्थान द्वारिकापुरी में न पहुँचकर मय

दानव द्वारा निर्मित युधिष्ठिर के ही सभा-भवन में पहुँचते हैं, जहाँ पर भाइयों सहित उठकर युधिष्ठिर उनका स्वागत करते हैं। नारद युधिष्ठिर द्वारा किये गये आसन पर बैठ जाते हैं।

श्रीमद्‌भागवत में नारद के आगमन के पूर्व जरासंध के कारावास में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित एक दूत श्रीकृष्ण के पास तब आता है जब वह ब्राह्म मुहूर्त के दैनिक कर्त्तव्यों को पूर्ण करके अन्य कार्यों में व्यस्त होने को होते हैं। वह राजाओं द्वारा कही गई करुण कथा को तथा उनकी मुक्ति की बात को श्रीकृष्ण से कह ही रहा है कि[1] पिंगल-वर्ण जटाधारी परम तेजस्वी देवर्षि नारद वहाँ पर सूर्य की भाँति सहसा प्रकट हो जाते हैं। उनको देखते ही श्री कृष्ण समस्त सभासद् और अनुचरगण के सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् विधिपूर्वक आसनादि देखकर उनका सत्कार करते हैं।

माघ काव्य (शिशुपालवध काव्य) के नारद,—जगत् का शासन करने के लिए लक्ष्मीपति श्री कृष्ण जब वसुदेव के सद्म पर द्वारिकापुरी में निवास कर रहे हैं तब सहसा आकाश मार्ग से नवीन पयोधरों के नीचे-नीचे उतरते हुए आते हैं जो सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं जिनके सिर पर पीतजटायें[2] हिमालय पर्वत पर उगी हुई पकी पीली लताओं सी अथवा कमलकेसर सी प्रतीत हो रही है, जो गौर वर्ण हैं, और जिनके कन्धे पर यज्ञोपवीत है और शरीर पर गजचर्म है। वह अपनी अंगुलि से वीणा बजाते हुए आ रहे हैं। वीणावादन में स्वर ग्राम तथा मूर्छना स्पष्ट सुनाई पड़ रही है। निरन्तर वीणा के बजाते रहने से अंगुलियों और अंगूठे के नाखून की लाल-लाल कान्ति वाली शोभा से हाथ में पड़ी हुई माला भी लाल सी दिख रही है। द्वारकापुरी के ऊपर तक आकाशगामी देवता नारद जी को पहुँचाकर चले जाते हैं तब वे श्री कृष्ण के स्थान पर आते हैं। महाभारत में तो ऋषियों सहित नारद युधिष्ठिर के स्थान पर आते हैं किन्तु यहाँ पर जैसे कोई अपनी सीमा तक पहुँचाता है और प्रणाम करके लौट जाता है उसी तरह अनुयायी देवों का लौट जाना दिखाया गया है। फिर अस्ता-चल पर गिरते हुए सूर्य की भाँति श्री कृष्ण के सम्मुख बढ़ रहे हैं। पृथ्वी पर उतरने भी नहीं पाते हैं कि श्रीकृष्ण ये नारद ही हैं ऐसा निश्चय करके वेगपूर्वक पहले ही आदर के लिए उठ खड़े होते हैं। पूजा-योग्य देवर्षि नारद की अर्घ्य, पाद्यादि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् पूजा कर लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने हाथ से समर्पित किए हुए आसन पर नारदजी को अपने सम्मुख आदरपूर्वक बैठा लेते हैं।

संदेश कथन—तीनों कथास्रोतों में नारदजी द्वारा नीतिप्रद उपदेश युधिष्ठिरादि को दिये गए हैं। उसी बीच में युधिष्ठिर अति नम्रता से नारदजी को पूछ बैठते हैं बि आपकी

---

(१) राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः। बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ।।३२।।
तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वर : ववंद उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः
सानुगो मुदा ।। १०।७०।३३।। भागवत ।।

(२) दधानमम्भोरुहकेशरद्युतिर्जटा : शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् ।
विपाकपिंगस्तुहिनस्थलीरुहो, धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ।। माघ १।५ ।।
पतत्पतंगप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ।। १।१२ ।। माघ-काव्य ।।

गति सर्वत्र है यह तो बताइये कि कहीं पर इस भाँति की अथवा इससे भी अधिक सुन्दर कोई सभा आपने देखी है। नारद को राजसूय यज्ञ का सन्देश देने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। अतः उत्तर में नारदजी भाँति-भाँति के राजाओं, देवताओं तथा इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुए राजा हरिश्चन्द्र के विषय में कहने लगते हैं। तभी सहसा युधिष्ठिर अपने पिता पाण्डु को पितृलोक में देखने का प्रश्न कर बैठते हैं। नारद तो चाह ही रहे थे कि कोई प्रसंग ऐसा आ जाय कि वह राजसूय यज्ञ का सन्देश दे सकें। अवसर पाते ही उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र के वैभव की बात तो पाण्डु ने युधिष्ठिर को कहलवाई थी ज्यों की त्यों कह दी तथा यह भी कहा है कि पाण्डु ने वहाँ से मृत्युलोक में आते हुए उनसे चाहा था कि युधिष्ठिर भी हरिश्चन्द्र की भाँति राजसूय यज्ञ करे क्योंकि समस्त पृथ्वी को जीत लेने में वह भी समर्थ है। यदि वह ऐसा कर ले तो पाण्डु भी हरिश्चन्द्र के ही तुल्य बहुत वर्षों तक इन्द्र की सभा में आनन्द कर सकेंगे। नारद ने अन्त में कहा 'हे, युधिष्ठिर, तुम भी अपने पिता के संकल्प को पूर्ण करो जिससे तुम्हारे पूर्वज आनन्द प्राप्त करें।' ऐसा कह देने के पश्चात् नारद युधिष्ठिर से जाने के लिए अनुमति माँगते हैं। नारद पाण्डु का राजसूय यज्ञ कराने का सन्देश देकर वहाँ से चले जाते हैं।

श्रीमद्भागवतकार माघ काव्यकार की भाँति नारद के आसन ग्रहण कर लेने के पश्चात् शिष्टाचार से सम्बन्धित रखने वाली कुशलक्षेमादि की बातें नहीं कराते। माघ और भारवि में बहुत ही अधिक साम्य सा प्रतीत होता है। भारवि ने भी व्यास के आगमन पर किरातार्जुनीय में कुछ इन्हीं भावों से मिलती जुलती बातें की हैं।[1] उन बातों को देखने से पता चलता है कि भारवि का माघ पर पर्याप्त प्रभाव है। अस्तु, श्रीमद्भागवतकार श्रीकृष्ण के मुख से अति मधुर वाणी में कहलाते हैं। आप तीनों लोकों में विचरण करते हैं अतः आपको सब विदित है कि कहाँ पर क्या होने वाला है। मैं इसीलिए आपसे पूछता हूँ कि अब पाण्डवगण क्या करना चाहते हैं?" जरासंघ के कारावास में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित दूत सन्देश कथन के पश्चात् उत्तर की प्रतीक्षा में वहीं पर बैठा हुआ है इसी मध्य में नारद

(१) श्रियं विकर्षत्यपहन्त्यघानि श्रेयः परिस्नोति तनोति कीर्तिम्।
संदर्शनं लोकगुरोरमोघं तवात्मयोनेरिव किं न धत्ते ॥ ३।७ ॥ किरात।
निरास्पदं प्रश्नकुतूहलित्वमस्मास्वधीनां किमु निस्पृहाणाम्।
तथापि कल्याणकरीं गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरीकरोति ॥ ३।।९।। किरात ॥
हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥ १।२६ ॥ माघ
कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ॥ १।२८ ॥ माघ
विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निर्बाहितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥ १।२९ ॥ माघ
अनाप्त पुण्योपचयैर्दुरापा फलस्यनिर्धूतरजाः सवित्री।
तुल्या भवद्दर्शनसंपदेषा वृष्टेर्दिवो वीतवलाहकायाः ॥ ३।५ ॥ किरात ॥

कृष्ण के परस्पर के ये संवाद चल रहे हैं। नारद यहाँ पर दूत बनकर सन्देश कहने के लिए महाभारत तथा माघ काव्य की भाँति उपस्थित नहीं हुए हैं। यहाँ पर वह दूसरे रूप में अवश्य उपस्थित किये गए हैं, किन्तु बात वही राजसूय यज्ञ की है। श्रीकृष्ण के प्रश्न के उत्तर में नारद कहते हैं। आप से कोई बात गुप्त नहीं है। आप तो ब्रह्म हैं किन्तु इस समय मनुष्य लीला कर रहे हैं अतः युधिष्ठिर की जो कुछ इच्छा इस समय करने की है वह मैं आपसे कहूँगा। भगवन् ! युधिष्ठिर चक्रवर्तित्व की अभिलाषा से राजसूय यज्ञ द्वारा आपका यजन करने वाले हैं। आप उसका अनुमोदन कीजिए। उस यज्ञ में देव व नृप लगभग सब ही आयेंगे। श्रीकृष्ण ने देखा कि यादवगण विजय प्राप्ति के लिए प्रथम उत्सुक हैं अतः उन्होंने नारद की बात को तुरन्त ही स्वीकार नहीं की और अपने अनुगत भक्त उद्धव से मुसकराते हुए कहा—पदार्थों के यथावत् प्रकाशक तथा शुभ सम्पत्ति के मर्म को जानने वाले उद्धव ! यज्ञ में जाना उचित है अथवा जरासंध के यहाँ पर जाकर राजाओं को कारावास से मुक्त करवाना। उद्धव जी ने उत्तर में कहा कि राजसूय यज्ञ वही कर सकता है जो दिग्विजयी हो। जरासंध को तो जीतना शेष ही है अतः राजसूय को जीते बिना कैसा ? इसके जीत लेने पर यज्ञ-कर्म और शरणागत रक्षा दोनों कार्य सिद्ध हो जायेंगे। जरासंध महाबली है। वह भीम द्वारा ही द्वन्द्वयुद्ध में जीता जा सकता है, अन्य उपायों से नहीं। अतः राजसूय यज्ञ में ही प्रथम चलना उचित है। उद्धव जी के अनुमोदन को सब ही स्वीकार कर लेते हैं। फिर श्री कृष्ण वहाँ पर जाने की तैयारी में लग जाते हैं। तब नारदजी भी आकाश मार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके चले जाते हैं। श्रीकृष्ण उस समय दूत को प्रसन्न करने के लिए जरासंध के कारावास में बन्दी राजाओं के द्वारा प्रेषित सन्देश कथन के उत्तर में यह कह कर प्रस्थान करा देते हैं कि तुम सब राजाओं को जाकर कह दो कि वे किसी प्रकार का भय न करें। मैं शीघ्र ही जरासंध को मारकर तुम्हारा कल्याण करूंगा। दूत संदेश के उत्तर को लेकर प्रसन्नता पूर्वक चला जाता है।

माघ काव्यकार सन्देश को इस तरह कहलवाता है। श्रीकृष्ण और नारद के अपने अपने आसन पर बैठ जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि आपके दर्शन तो पूर्वकाल में किये गये सुकृतों का परिणाम है।[1] मैं तो आपके इस दर्शन से ही कृत कृत्य हूँ। फिर भी आपके पदार्पण का जो कारण है उसको सुनने का अति अभिलाषी हूं क्योंकि अधिक कल्याण प्राप्ति की इच्छा किसको नहीं रहती। दर्शनलाभ से तो कल्याण मिल ही जाता है किन्तु सेवा-कार्य भी यदि मिल जाए तो फिर और भी अधिक कल्याण भाजन बना जा सकता है।[2] आप कहें कि हम वैरागी हैं, हमें क्या कार्य कराना है फिर आगमन का कारण क्या बताया जाय तो धृष्टता है जो ऐसा प्रश्न पूछा जा रहा है किन्तु उस धृष्टता को हमारे गौरव को प्रकट करने वाला आपका यह प्रशंसनीय शुभागमन ही और विस्तृत कर रहा है।[3] अन्त में नारद से अपने आने के कारण की बात कहे बिना नहीं रहा जाता। वह कह उठते हैं कि जोगी संसार से विरक्त भले ही हों किन्तु परलोक की चिन्ता उन्हें भी रहती है

(१) देखो माघ १, २६
(२) देखो माघ १, २६
(३) १, ३०

और योगियों के तुम ही ध्येय हो।[४] इस भाँति वार्तालाप के ही प्रसंग में श्रीकृष्ण की विभिन्न रूप में इस भाँति की प्रशंसा करते हैं कि वे नर नहीं, नारायण रूप हैं। अवतारों के प्रसंग को छेड़ते हुए श्रीकृष्ण को भी अवतारी बताकर वह कहते हैं कि जन्म जन्मान्तर से देवताओं के परम विरोधी चेदिनृप शिशुपाल का, जो श्रीकृष्ण की भुआ का पुत्र है और जिसने अराजकता तथा अव्यवस्था फैला रक्खी है, नाश करना उनके अवतार का एक प्रयोजन है। इसी प्रसंग में हिरण्यकशिपु, रावण और शिशुपाल एक ही है। यह बताते हुए वह इन्द्र का सन्देश कह देते हैं। श्रीकृष्ण भी शिशुपाल का वध ही इसका संकेत भृकुटि वक्र करके देते हैं और नारद से कहने लगते हैं कि ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् इन्द्र संदेश की बात को पक्की करवाकर नारद आकाश की ओर चल देते हैं। श्रीकृष्ण के पास युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का भी निमन्त्रण आ चुका है।[५] वह कार्य द्वयाकुल हैं।

महाभारत तथा श्रीमद्‌भागवत नारद के बैठते ही शिष्टाचारादि वाले कुशलक्षेम के प्रश्न न कहकर संसार की क्या स्थिति है आदि की बातें करवाते हैं क्योंकि नारद एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया ही करते हैं अत: जैसी बातें संसार की उन्हें मालूम हैं अन्य पुरुषों को कहाँ से हो सकती हैं?[६] किन्तु माघ नारद के आने पर शान्तिपूर्वक कुशलक्षेम पुछवाते हैं तथा मधुर वचनों से आने का कारण जानना चाहते हैं। महाभारत का नारद सीधे रूप में सभा का वर्णन करते हुए पाण्डु की इच्छा को युधिष्ठिर के सम्मुख रख देता है और यह संदेश देकर चला जाता है कि तुमको भी राजसूय यज्ञ अपने पिता की बलवती इच्छा को पूर्ण करने के लिए करना चाहिये। उधर श्री मद्‌भागवतकार के अनुसार माघ काव्यकार नारद जी के मुख से श्रीकृष्ण की इस भांति की प्रशंसा करता है जो परब्रह्म के स्वरूप के लिए उपयुक्त है। इन दोनों ने श्रीकृष्ण को नर न बताकर नारायण का रूप दिया है।[७] महाभारत तथा श्रीमद्‌भागवत में संदेश राजसूय यज्ञ कराने का है अन्तर इतना ही है कि महाभारत तो स्पष्ट रूप में राजसूय यज्ञ कराने का संदेश प्रस्तुत करता है। किन्तु भागवत में श्रीकृष्ण के मुख से ग्रन्थकार प्रश्न उपस्थित कराता है कि पांडव क्या करना चाहते हैं। इस पर नारद कहते हैं कि चक्रवर्तित्व की इच्छा से युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। महाभारत में महाराज पाण्डु की इच्छा है, भागवत में स्वयं युधिष्ठिर की ही इच्छा राजसूय यज्ञ की है। महाभारत में पाण्डु के मुख से कहलवाया है कि समस्त पृथ्वी को जीत लेने में हरिश्चन्द्र की भाँति जब तुम भी समर्थ हो तो फिर राजसूय यज्ञ क्यों नहीं करते किन्तु भागवत नारद के मुख से कहलवाती है कि युधिष्ठिर की इच्छा का अनुमोदन आप कीजिए। यह नहीं कहा कि युधिष्ठिर योग्य भी हैं या नहीं। जरासंध को जीते बिना राजसूय कैसा? यह तो अच्छी बात थी कि जरासंध के कारावास में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित दूत

---

(४) १, २१

(५) २, १

(६) **देखो भगवत अध्याय ७० दशमस्कंध के ३५, ३६ श्लोक**

(७) **भागवत १० । २७ अध्याया के ३७, ३८ और ३९ श्लोक देखिये, माघ १ सर्ग के ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८**

श्रीकृष्ण के समीप नारद के समीप नारद के पूर्व ही यह सन्देश लेकर आ गया था कि वह जरासंध को मारकर उन राजाओं को मुक्त करें अन्यथा नारद के सन्देश का महत्व नहीं रहता। माघ काव्यकार का सन्देश शिशुपाल का वध कराना है। उस सन्देश के लिए उन्होंने पहले ही एक सुन्दर भूमिका बाँधी है, जिसका आधार भागवत पुराण है। भागवत में लिखा है कि जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने इस संसार में सत्पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों को दंड देने के लिए अवतार धारण किया है[1] और वह मथुरा में न रहकर द्वारिकापुरी में ही रह रहे हैं।[2] इन बातों को ध्यान में रखकर माघ ने अपने काव्य के प्रथम श्लोक में समस्त जगत के आधार श्रीकृष्ण की स्तुति की है कि वह जगत् का नियन्त्रण करने के लिए श्री सम्पन्न वसुदेव के सद्म में रह रहे हैं।[3] ठीक ही है जरासंध से हार खाने के पश्चात् श्रीकृष्ण जब मथुरा छोड़कर द्वारिकापुरी में कदाचित् इसीलिए रहने लग गये कि वे वहां पर बैठे २ जगत् की व्यवस्था सुचारु रूप से करते रहेंगे। दुष्टों को दंड तथा सज्जनों को पुरस्कृत किया जाता है तब ही शासन चल सकता है अत: उसी बात को देखकर इन्द्र ने नारद को श्रीकृष्ण के समीप प्रेषित किया है क्योंकि श्रीकृष्ण ही शिशुपाल जैसे शांति को भंग करने वाले दुष्ट का दमन करने के लिए पर्याप्त हैं, किन्तु यह संदेश सीधा नहीं है। आप शिशुपाल को मार दीजिये इस सन्देश से क्या कार्य हो सकता है अत: सन्देश देने के पूर्व कवि अपने माघ काव्य में उन उन बातों को प्रस्तुत करता हैं जिनसे श्रीकृष्ण को शिशुपाल के वध के लिए प्रेरणा प्राप्त हो। अतः कवि श्रीकृष्ण को नारद के मुख से यह कहलवाता है कि आप अत्यन्त बोझ से स्वयं टूटती हुई इस धरती के भार को हल्का करने के लिए स्वर्ग से अवतीर्ण हुए हैं। यदि ऐसा न होता तो मदोन्मत्त कंसादि से पीड़ित इस विश्व की रक्षा करने की सामर्थ्य फिर किसमें होती।[4] आलस्य को त्यागकर आप लोकद्रोहियों को पीस डालने के लिए स्वयमेव प्रवृत्त हैं। प्रथम श्लोक में जगत् की व्यवस्था का प्रयोजन बताने के बाद भी आगे श्रीकृष्ण से एकान्त में इस संबंध में बात की गयी है।[5] इन्द्र का सन्देश साधारण पुरुष को तो दिया नहीं जाता। अतः कवि ने अपने कला-कौशल से प्रथम श्रीकृष्ण को ब्रह्मरूप बताया, फिर उन्हें एक अवतार का रूप दिया जिसका उद्देश्य लोक रक्षण है। इससे श्रीकृष्ण की शक्ति शालिता सर्व विदित होती है। आगे चलकर शिशुपाल की जन्म-जन्मान्तर की प्रतिशोध वाली भावना का वर्णन है जिससे श्रीकृष्ण को यह ज्ञात हो जाय कि शिशुपाल तो उन्हीं के हाथ से नष्ट किया जा सकेगा। इस जन्मजन्मान्तर की कथा को माघ कवि ने अग्निपुराण से विशेष रूप से तथा विष्णु पुराण एवं पद्मपुराण से लिया है।[6]

---

(१) १० । ७० । २७ भागवत

(२) १० । २७ । ३१ भागवत

(३) माघ १ । १

(४) माघ १ । ३६ । ३७

(५) १ । ४०

(६) देखिये कथा स्रोत संख्या ३, ४, ५

कथा में हिरण्यकशिपु का परजन्म रावण के रूप में और रावण का परजन्म शिशुपाल के रूप में हुआ बताया गया है।[६] शिशुपाल को कंस से भी अधिक पापात्मा के रूप में रखा हैं। हिरण्यकशिपु, रावण तथा शिशुपाल को विष्णु के पार्षद् जय का जो सनत्कुमारों से शापित था अवतरण माना है। स्पष्ट रूप में तो कवि शिशुपाल तथा कृष्ण की शत्रुता रुक्मिणीहरण वाली कथा के कारण नहीं बताता किन्तु वह संकेत रूप में यह भी कहलवा देता है।[१] नारद के मुख से कवि शिशुपाल सम्बन्धिनी सब बातों को प्रथम कहलवा देता है क्योंकि जब तक किसी के विषय में पूर्णतया जानकारी प्राप्त नहीं की जाय तब तक कोई किसी पर आक्रमण कैसे कर सकेगा। भीतरी बाहरी सब रहस्यों को जानना ही चाहिए अतः शिशुपाल के जन्मजन्मान्तर के प्रतिशोध की बात है, पहले वह हिरण्यकशिपु था फिर रावण देह को धारण किया और अब वही शिशुपाल रूप में आया है।[२] माघ ने पुराणों के आधार से शिशुपाल के जन्म की कथा को प्रस्तुत किया है।[३] एक बात महाभारत के सभा-पर्व के अन्तर्गत आई है जहाँ पर शिशुपाल का वर्णन आता है। उस स्थान पर पितामह भीष्म भीम को कहते हैं[४] कि चेदिराज के वंश में यह शिशुपाल तीन आँख और चार भुजा-वाला उत्पन्न हुआ था। माता पिता के चिन्ता में व्यग्र होने पर आकाशवाणी हुई कि हे नृपते, यह शिशुपाल तेरे कुल में बड़ा ऐश्वर्यशाली एवं महान् बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिए इस पुत्र से तू त्रस्त न हो, निशंक होकर इस पुत्र की तू रक्षा कर।

इस भाँति सन्देश कथन को माघ काव्यकार ने एक शिथिल हाथ से न पकड़ कर उसका निर्वाह नाना पुराणों की कथाओं का ठोस आधार लेकर किया है। शिशुपाल की उद्दण्डता भरी बातों और जगत् के उत्त्रासक कार्यों का वर्णन उसको वध्य सिद्ध कर देता है। इस भाँति जैसे ही इन बातों को अपने वाक्यकौशल से नारद कहते हैं श्रीकृष्ण के भाल पर तीन रेखाएँ क्रोध के मारे उभर आती हैं, उस भंग के साथ 'ऐसा ही होगा' सुनकर नारद अपने को कृतार्थ मानते हैं और फिर वे चले जाते हैं। कवि को स्मरण है कि नारद आका-शमार्ग से एकाकी ही आए थे, अतः वे एकाकी ही जा रहे हैं। कई ग्रन्थकारों ने इस बात का ध्यान न रक्खा। उन्होंने ऋषियों के साथ उनका आना बताया पर लौटते समय अकेले ही आकाश मार्ग से उनका गमन बताया।

श्रीकृष्ण का विचार-विमर्श तथा इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान—महाभारत में नारद के चले जाने पर युधिष्ठिर भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ के विषय में सम्मति लेने लगे सद्-ब्राह्मणों, राजाओं तथा भाइयों की यह सम्मति हुई कि यज्ञ किया जाय। अब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का मन से ध्यान किया और उन्हें बुलाने के लिए दूत भेजा। द्वारिका में जैसे ही दूत ने जाकर सन्देश सुनाया, कि श्रीकृष्ण इन्द्रसेन के साथ देशों को लाँघते हुए इन्द्रप्रस्थ चले

(६) माघ १। ६६

१. २।३८ २. १. ४८, १, ६८, १. ६६, माघ काव्य ३. १, ७०

४. चेदिराजकुलेजातस्त्र्यक्ष एष चतुर्भुजः। वैकृतं तस्य तौ दृष्ट्वा त्यागायकुरुतां मतिम्।
एष ते नृपते पुत्रः श्रीमान् जातो बलाधिकः। तस्मादस्मान्नभेतव्यमव्यग्रः पाहिवै शिशुम्॥

गए। **भागवत** में नारद के सम्मुख ही विचार विमर्श हो जाता है तथा नारद जरासन्ध की नगरी से बन्दी राजाओं द्वारा प्रेषित होकर चले जाते हैं तब भगवान् आनर्त्त, सौवीर, मरु और कुरुक्षेत्र को लाँघकर पर्वत, नदी, ग्राम, व्रज और खानों (माइन्स) को पार करते हुए दृषद्वती और सरस्वती से उतर कर पांचाल और मत्स्य देश का उल्लंघन कर इन्द्रप्रस्थ के निकट चल पड़ते हैं। **माघकाव्य** में इन्द्र सन्देश देकर नारद के चले जाने पर श्रीकृष्ण असमंजस में पड़ जाते हैं क्योंकि राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण कभी का मिल चुका है जहाँ पर जाना आवश्यक है किन्तु शिशुपालवध भी उपेक्षणीय कार्य नहीं। दुष्ट शिशुपाल दिनों दिन अराजकता फैला रहा था। उसको जीतकर अपने अधीन कर लेना भी साधारण कार्य न था, अत: द्वितीय सर्ग में उद्धव और बलराम के साथ विचार विनिमय करने के लिए श्रीकृष्ण सभा-भवन में बैठते हैं। सभी प्रकार के वे विचार एक राजनीतिज्ञ के लिए ऐसे अवसर पर जानने जरूरी होते हैं। अन्त में उद्धवजी की सम्मति को कार्योचित मानकर उसी के अनुसार उन्होंने राजसूय में जाना ठीक समझा और इन्द्रप्रस्थ गमन के लिए सेना, रथ, अश्व, हाथी, दास दासी आदि को तैयार करते हैं। विशालकाय सेना के साथ श्रीकृष्ण द्वारिकानगरी की रम्यभूमि को लाँघते हुए कच्छभूमि के क्षार-समुद्रवाली भूमि के निकट पहुँच जाते हैं। आगे जाते हुए दूर से रैवतक पर्वत से आगे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, नदियों, नालों, नगरों, सड़कों ऊँचे नीचे भूमि भागों को पार कराते हुए पाठकों को वहाँ पर लाकर छोड़ देता है जहाँ यमुना प्रवाहित हो रही है और इन्द्रप्रस्थ आगया है। युधिष्ठिर स्वागतार्थ भाइयों सहित पहिले ही खड़े हुए हैं।

विचार विमर्श भी तीनों ग्रन्थों में है किन्तु जो विचार-विनिमय माघ काव्यकार ने कराया है वह पूर्ण तथा युक्तियों से परिपूर्ण है। किसी कार्य को करने के पूर्व उसकी अच्छी बुरी सब ही बातों पर ध्यान देना हितकर होता है। विचार पूर्वक किया हुआ कार्य जैसा फलदायक सिद्ध होता है वैसा शीघ्रता में किया हुआ अथवा भलीभाँति न विचारा हुआ कार्य सिद्ध नहीं होता।

युधिष्ठिर की दिग्विजय—महाभारत में युधिष्ठिर आदि जब सब श्रीकृष्ण से परस्पर मिल चुकते हैं तब युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को इन्द्रप्रस्थ बुलाने का प्रयोजन बताते हैं, मेरी इच्छा राजसूय यज्ञ करने की है और यह भी मैं जानता हूँ कि राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी कौन हो सकता है। किन्तु किया क्या जाय ? सब ही मुझको यज्ञ करने के लिए कह रहे हैं। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि राजसूय यज्ञ करने का कार्य अत्युत्तम है तथा अधिकारी भी आप ही हैं किन्तु इस मार्ग में थोड़ी बाधा शिशुपाल की अवश्य है क्योंकि वह राजाओं को अधीन करके सम्राट् बना हुआ है अत: यज्ञ को पूरा करने के लिए उसका वध आवश्यक है। युधिष्ठिर इस पर भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण को जरासंध पर विजय प्राप्त करने के लिए भेज देते हैं जहाँ पर श्रीकृष्ण भीम द्वारा जरासंध का वध करवा कर दिग्विजय करके राजसूय यज्ञ की तैयारी में युधिष्ठिर को योग देते हैं। इस भाँति यज्ञ होने के पूर्व दिग्विजय का कार्य सम्पन्न होता है। **भागवत** में भी महाभारत की ही भाँति प्रथम जरासंध का वध भीम द्वारा करवाया गया है तब युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारी हुई है। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ

में पहुँचते हैं। नरनारी उन्हें देखने के लिए राजमार्ग पर एकत्र हो जाते हैं। श्रीकृष्ण राज-भवन पर जाकर सबसे मिलते हैं। युधिष्ठिर उनको ऐसे स्थान पर ठहराते हैं जहाँ सेना सहित सर्व सुख उनको प्राप्त हों। एक दिन युधिष्ठिर सबके सम्मुख श्रीकृष्ण को कहते हैं कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अतः आप मेरे इस संकल्प को पूर्ण कीजिये। श्रीकृष्ण इस विचार को ठीक बतलाते हैं और कहते हैं कि भूमण्डल को वशीभूत करके यज्ञ की सामग्री एकत्र कीजिये। भाई दिग्विजय करके अटूट धन युधिष्ठिर को देते हैं किन्तु जरासंध को अजेय सुनकर जब युधिष्ठिर चिन्तित होते हैं तो श्रीकृष्ण अर्जुन और भीम युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर जरासंध पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन छद्मवेषधारी ब्राह्मण बनकर जरासंध के निकट जाते हैं और उससे दान रूप में गदायुद्ध माँगते हैं। जरा-संध और भीम का गदायुद्ध होता है अन्त में श्रीकृष्ण की बताई हुई नीति से भीम जरासंध का वध करते हैं। बन्दी राजाओं की मुक्ति होती है। जरासंध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक हो जाता है। श्रीकृष्ण अब युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होते हैं। इस तरह राजाओं की कारावास से मुक्ति करके श्रीकृष्ण अपनी एक प्रतिज्ञा पूर्ण कर देते हैं।

माघ काव्यकार दिग्विजय के मामले में पूर्ण सतर्क हैं। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाते हैं उनसे दिग्विजय के लिए सम्मति नहीं माँगी जाती। महाभारतकार तथा भागवतकार ने भीम द्वारा जरासंध का वध करा दिया किन्तु यदि कुछ भी अन्याय हो जाता तो फिर राजसूय यज्ञ के सम्पन्न होने की बात समाप्त हो जाती। माघ ने इस बात को समझा और एक ओर तो इसके द्वारा श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण और दूसरी ओर शिशुपाल वध के लिए इन्द्र का सन्देश भिजवाया। इन दोनों कार्यों को चतुरता के साथ-साथ इस तरह सम्पन्न करवाया कि साँप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी। बात केवल यही आती है कि दोनों कार्यों में से किस कार्य को प्रथम किया जाय। राजसूय की बात तो वहाँ की गयी है न कि दिग्विजय की[1]। माघ काव्यकार तो युधिष्ठिर को सम्राट् स्वीकार कर ही लेता है अतः उद्धव द्वारा नीति-सम्बन्धी विचार विनिमय की बातों में स्पष्ट बताता है कि सब ही राजे महाराजे वहाँ पर आयेंगे। शिशुपाल तथा उसके पक्ष के राजा भी वहाँ आयेंगे। उस समय जैसे ही धर्मराज अटूट भक्ति से श्रीकृष्ण को आदर देंगे शिशुपाल और उसके पक्ष के राजा क्रोधित हो उठेंगे। शिशुपाल भीम द्वारा जरासन्ध वध की बात को[2] तथा रुक्मिणी के विवाह वाली बात को स्मरण करके युद्ध के लिए उठ खड़ा होगा। शिशुपाल को मारने का वह उपयुक्त अवसर होगा। उस समय श्रीकृष्ण की १०० गालियों के सहन करने की[3] तथा राजसूय यज्ञ में सहयोग देने की बातें पूर्ण हो जायेंगी। वध की बात तो राजसूय यज्ञ हो जाने पर तब होगी जब अर्घ्यदान का अवसर आयगा और उस समय यह भी प्रमाणित हो जायगा कि श्रीकृष्ण ही वास्तव में नरों में श्रेष्ठ और पूज्य के योग्य हैं। इस भाँति कवि ने दिग्विजय की बात को तो बिलकुल ही उड़ा दी। युद्ध की बात अवश्य की क्योंकि शिशु-

१. २.१०६, १०८, ११४, ११५, ११६

२. २.६०

३. २.१०८

पाल के साथ युद्ध तो करना ही था। इसीलिए अपने पक्ष के राजाओं के पास जब युधिष्ठिर का निमन्त्रण भेजा गया तब यह भी गुप्त रूप से कहला दिया कि वे सेना से सुसज्जित होकर आयें जिससे समय आने पर शिशुपाल के साथ युद्ध किया जा सके[४]। माघ ने जो दिग्विजय के प्रसंग में और परिवर्तन किया है उसका सामरिक औचित्य है। रैवतक पर्वत पर शिविर डालकर जलविहार, वनविहार, पुष्पचयन, चन्द्र दर्शन आदि बातें जिस प्रकार एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त हैं उसी प्रकार सैनिक दृष्टि से भी उनका औचित्य है। सैनिकों के लिए आमोद प्रमोद की व्यवस्था इसीलिए की जाती है कि वे अपने घर और परिवार का मोह छोड़कर उल्लास पूर्वक अपने देश अथवा स्वामी की रक्षा के लिए लड़ सकें और यदि मरना भी पड़े तो हँसते-हँसते अपने प्राण दे सकें।

माघ काव्यकार ने श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ नगरी में प्रवेश का एक सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। भगवान् श्रीकृष्ण के नगरी में प्रविष्ट होते ही दुन्दुभियों की गम्भीर ध्वनियों के साथ ही नगर की रमणियाँ श्रीकृष्ण को देखने के लिए अपने आवश्यक कार्यों को भी त्याग कर सुध-बुध खोई-सी[१] अटारियों, गलियों, झरोखों की ओर आकर खड़ी होती हैं और उन्हें एक दृष्टि से देखने लगती हैं। श्रीकृष्ण उधर होकर मय दानव द्वारा निर्मित सभा में पहुँचते हैं।[२] युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए श्रीकृष्ण को कहते हैं कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अतः उसके लिए आप अनुज्ञा प्रदान कर मुझे अनुगृहीत करें। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप राजसूय यज्ञ करने के सर्वथा योग्य है।

यहाँ तक तो माघ काव्य में भागवत का अनुसरण है, वर्णन में अवश्य ही कहीं-कहीं अन्तर है। माघ काव्य का वर्णन चित्रोपम है। महाभारतकार श्रीकृष्ण की अगवानी का दृश्य उपस्थित नहीं करता। वह तो उन्हें सीधे युधिष्ठिर आदि के पास उपस्थित कर देता है। यहाँ तक अन्य बातें प्रायः वैसी ही हैं;

माघ काव्यकार दिग्विजय की बात नहीं लाता जब कि महाभारतकार और भागवतकार ने राजसूय यज्ञ से पूर्व दिग्विजय को आवश्यक बताया है। जरासंध दोनों के मार्ग में बाधक है। माघकाव्यकार तो राजसूय यज्ञ की बात को ही प्रारम्भ करता हुआ श्रीकृष्ण से कहला देता है कि मैं आपके (युधिष्ठिर के) दुष्कर आदेशों का भी पालन करूंगा, अतः मुझको करणीय कार्य में अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहें वहाँ पर लगा दीजिए। जो राजा आपके इस राजसूय यज्ञ में भृत्य के तुल्य कार्य न करेगा उसके शरीर को जगत् का हितैषी रूप मेरा यह सुदर्शन चक्र शिर से पृथक कर देगा। इससे पता चलता है कि महाराज युधिष्ठिर ने दिग्विजय पहले से ही प्राप्त करली है। सब राजा महाराजा इस यज्ञ में भृत्यवत् कार्य करने के लिए कटिबद्ध हैं।

---

४. २.११४

१. १४ का १४ वां माघ

२. १४ का १५ वां माघ।

यज्ञ में श्रीकृष्ण के लिए अथवा उनके द्वारा स्वीकृत कार्य—महाभारत में राजसूय यज्ञ जब प्रारम्भ हो जाता है तब धौम्य पुरोहित द्वारा बताई गई सब सामग्री मँगवाई जाती है। यज्ञ में वेद व्यास, ब्रह्मा, धनंजय गोत्र के प्रधान आचार्य, उद्गाता, याज्ञवल्क्य और पैल अध्वर्यु तथा धौम्य होता बने। ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा में नियुक्त किया। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के चरणों को धोने का कार्य अपने हाथ में लिया।

भागवत् में यज्ञ की दीक्षा तथा याचकों की विधिवत् पूजा के पश्चात् ही अर्घ्य का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। वहाँ पर तो श्रीकृष्ण को करने के लिए कोई कार्य हीं नहीं दिया गया।

शिशुपाल वध में केवल इतना कहकर कि मेरे कल्याणकारी कार्यों में आप के उपस्थित रहने पर मेरी समस्त सम्पत्ति स्थिर रहेगी, युधिष्ठिर आनन्दचित से यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हुए।[1] श्रीकृष्ण ने तो पहले ही कह दिया था कि अत्यन्त दुष्करकार्य में भी लगा रहूँगा अतः मुझ को करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें तहाँ नियुक्त करें। आपके कार्य ही मेरे परम कर्त्तव्य हैं।[2] वे फिर कहते हैं कि आपके इस राजसूय यज्ञ में जो राजा भृत्य के तुल्य कार्य नहीं करेगा उसके शरीर को जगत् का हितैषी रूप मेरा यह सुदर्शन चक्र सिर से विच्छिन्न कर देगा।[3]

उपर्युक्त बातों से पता चलता है कि उस राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण ने कौन-सा ऐसा कार्य था जिसको नहीं किया। प्रत्यक्ष में भले ही ऐसा प्रतीत हो रहा हो कि उन्होंने कुछ नहीं किया किन्तु परोक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप में राजसूय यज्ञ को सफल बनाने के लिए उन्होंने सब कुछ किया यह बात युधिष्ठिर के वाक्यों एवं स्वयं श्रीकृष्ण के वचनों से स्पष्ट हैं।युधिष्ठिर के लिए श्रीकृष्ण का भगवान् स्वरूप है अतः भगवान् की कृपा-दृष्टि(नजरदौलत) ही पर्याप्त है। उनका तो संकेत भर काफी है। इस पर भी कवि यह बात नहीं भूल पाया है कि महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण नारायण रूप में उपस्थित न होकर नर के रूप में, एक शक्तिशाली नर के रूप में हैं। इसीलिए वह श्रीकृष्ण के मुख से भी साधारण लौकिक पुरुष जैसी बातें कराता है। वैसे कार्य कुछ नहीं है और यदि देखा जाय तो सब कुछ है।

यज्ञ का चित्रोपम वर्णन—माघ के अतिरिक्त किसी ने यज्ञ का यथावत् वर्णन नहीं किया है। जान पड़ता है अपने समय में इन्होंने या तो ऐसा महान् यज्ञ देखा है अथवा इन्होंने आचार्य होकर कोई यज्ञ सम्पन्न कराया है। माघ की जीवनी में इसका उल्लेख किया जा चुका है।

अर्घ्यपूजा का प्रश्न—अर्घ्य पूजा की बात तो तीनों ग्रन्थों में आयी है। प्रथम अर्घ्य किसको किया जाय? यह प्रश्न क्यों उठा? क्या युधिष्ठिर ने ही पहली बार राजसूय यज्ञ किया था? इसके पूर्व क्या राजसूय यज्ञ हुए ही नहीं? यदि हुए हैं तो वैसा ही यहाँ भी क्यों नहीं हुआ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि ब्राह्मण श्रीकृष्ण को भगवान् का ही रूप मानते

१. १४ का १७ वां माघ
२. १४ का १५ वां माघ
३. १४ का १६ वां माघ

थे। वे सब जानते थे कि सब कर्मों में तथा यज्ञ में भगवान् का पूजन करना चाहिये। पर श्रीकृष्ण नर रूप में ब्राह्मण तो थे नहीं. इसीलिए महारथियों, शास्त्रज्ञों, ऋषियों तथा विद्वानों के बीच ऐसी बात उपस्थित हो ही गयी। फिर शिशुपाल ने कालवश मुनियों को तथा उन सभी व्यक्तियों को मोह लिया था अतः उन सबों ने बालक के तुल्य यह प्रश्न उठा ही लिया।

दूसरी बात यह थी कि यदि यह प्रश्न उपस्थित न होता कि यज्ञ में प्रथम पूजा आने योग्य कौन है तो शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दा भी क्यों करता ? बिना निन्दा किये भगवान् उसको मारते भी कैसे ? प्रतिज्ञा जो ठहरी। महाकवि माघ ने इन बातों का औचित्य समझा और इसीलिए महाभारतकार तथा भागवतकार इन दोनों से इस विषय में वे अधिक स्पष्ट हैं। **महाभारतकार** यज्ञ के पश्चात् भीष्म के मुख से युधिष्ठिर को राजाओं का यथायोग्य सत्कार करने के लिए कहलवाता है कि ऋत्विज्, आचार्य, संयुज, स्नातक, प्रिय और नृपति ये ६ अर्घ्य देने योग्य हैं, अतः प्रत्येक के लिये अर्घ्य तैयार करके जो श्रेष्ठ हों उनको ही सर्व प्रथम अर्घ्य प्रदान करना है। तुधिष्ठिर ने इस पर पितामह भीष्म की सम्मति माँगी कि प्रथम अर्घ्य का अधिकारी कौन ? भीष्म ने श्रीकृष्ण को ही सर्वश्रेष्ठ बताया। तब सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण को अर्घ्य समर्पित किया। **भागवतकार** ने पांडु पुत्रों में सबसे कनिष्ठ सहदेव के मुख से कहलवाया कि विश्व ही कृष्ण का रूप है, यज्ञादिक भी कृष्ण रूप ही हैं, सब कृष्ण परायण हैं, अतः इनकी पूजा करने से सब प्राणियों की पूजा हो जायगी[1] सभा में सभी ने सत्य कहा, सत्य कहा यह कहकर इस कथन का समर्थन किया।

माघ काव्यकार को भी अब देख लीजिए। शंका का समाधान कितने औचित्य से वह करता है। शास्त्रीय शैली का प्रयोग भी कितना सुस्पष्ट और सुन्दर है। महाभारतकार तो सीधे सीधे कह देते हैं कि अर्घ्य के योग्य ६ प्रकार के व्यक्ति हैं और भीष्म की अनुमति देकर अर्घ्य का प्रश्न सुलझा देते हैं। वह एक आदेश जैसा है जिसमें बुद्धि को अवकाश नहीं। भागवतकार ने सहदेव से श्रीकृष्ण का प्रस्ताव करवाकर छुट्टी ली। किन्तु महाकवि माघ ने इसमें भी काव्योचित परिवर्तन किया है। साम्य केवल यही है कि श्रीकृष्ण ही अर्घ्य के लिए योग्य हैं। यज्ञ के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने जब धर्मशास्त्र का विचार करते हुए अर्घ्य दान के सम्बन्ध में पूछा तब भीष्म ने कहा कि स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामाता तथा राजा इन ६ को पंडितों ने अर्घ्य का पात्र बतलाया है। इस सभा में ये सभी विद्यमान हैं। इन सबकी एक साथ ही पूजा करनी चाहिए, यह भी एक विधि है। आगे कवि कहलाता है कि इस समय भूमिदेव ब्राह्मणों और नरदेव राजाओं के इस सम्पूर्ण समागम में भी मुझको तो सम्पूर्ण गुणों के आगार, देवताओं के शत्रुओं (असुरों) के विनाशक भगवान् श्रीकृष्ण ही एक मात्र पूजा के अधिकारी दिखलाई पड़ रहे हैं। इस उक्ति ने तो स्पष्ट ही कर दिया कि कृष्ण क्यों पूजा के अधिकारी हैं। देवरिपुहारी विशेषण के साथ-साथ पहले के अवतारी कृत्यों का वर्णन करके एक ओर तो उनको देवतुल्य बताया है। (देवता की पूजा प्रथम होनी भी चाहिये) और दूसरी ओर उन्हें सम्पूर्ण गुणागार कहा है। साथ में ही "मुझको" यह शब्द

१. १० वां स्कन्ध ७४ वां अध्याय में देखो १६ से २४ श्लोक तक भागवत।

लाकर रक्खा है जिससे कोई यह दोष न दे कि पक्षपात हो रहा है। कवि ने यहाँ अपने कौशल से श्रीकृष्ण को विभिन्न अवतारों का रूप दिया। अन्त में शिशुपाल के सामने ही उसके जन्म से सम्बन्ध रखने वाली त्रिनेत्र वाली कथा का स्मरण भी सभासदों को करा दिया। इसमें कवि का एक अभिप्राय और है वह यह कि अभिमानी तथा आत्मश्लाघी शिशुपाल को श्रीकृष्ण की स्तुति से क्षोभ उत्पन्न हो और पागल होकर अनर्गल अपशब्द कहने लगे, जिससे उसका वध आवश्यक हो जाय। इस तरह अर्थ गम्भीर भीष्म की उक्ति का बल पाकर धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा की।

शिशुपाल का क्रोध :—महाभारत में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की उस पूजा को पसन्द किया अतः वह उस सभा में भीष्म और युधिष्ठिर को बुरा-भला कहते हुए श्री कृष्ण को इधर-उधर की उटपटांग बातें कहने लगा। जब वह अपने ऊँचे आसन से उठकर अन्य राजाओं के साथ उस सभा से बाहर निकल आया तो युधिष्ठिर ने अति नम्र शब्दों में शिशुपाल को कहा कि भीष्म सब कुछ जानते हैं उनका इस भाँति अनादर नहीं करना चाहिए। इस पर भीष्म ने फिर कहा कि श्रीकृष्ण की पूजा क्यों सर्वप्रथम करनी चाहिए। तदनन्तर सहदेव ने भी इसका समर्थन किया और अन्त में यह कहा कि जो श्री कृष्ण की पूजा नहीं चाहता है उसके मस्तक पर यह मेरा चरण है। मैं उस राजा को मार कर ही छोड़ूंगा। चेदिराज शिशुपाल ने आँखें लाल करके क्रोधपूर्वक राजाओं को कहा कि मैं सेनापति बनकर स्थित हूँ, आप लोग चिन्ता न करें। हम साथ मिलकर ही कृष्ण और पाण्डवों को घेर कर युद्ध करेंगे। फिर उसने यज्ञ-विध्वंस करना चाहा जिससे युधिष्ठिर का यज्ञाभिषेक तथा श्रीकृष्ण की पूजा न हो सके। युधिष्ठिर चिन्ता में पड़े और भीष्म से सम्मति माँगने लगे। इस पर भीष्म ने कहा कि श्रीकृष्ण रूप सिंह अभी सोया हुआ है इसी से ये श्वान रूपी नृप भौंक रहे हैं। इस पर शिशुपाल ने फिर भीष्म को कठोर वाणी सुनाना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण की निन्दा को सुनकर भीम भी क्रोध में भर गए थे। भीष्म ने उनसे कहा कि यह शिशुपाल[1] तीन आंख और चार भुजा वाला उत्पन्न हुआ था। इसने उत्पन्न होते ही गधे की भाँति भोंकना प्रारम्भ किया। परिवार वाले घबराये। माता ने आकाश की ओर देखकर पूछा कि इस बलशाली की मृत्यु किसके हाथ हो सकती है। उत्तर में आकाशवाणी ने कहा कि जिसकी गोद में जाने पर इसकी दो भुजा और तीसरा नेत्र लुप्त हो जाय वही व्यक्ति इसका काल होगा। सब राजाओं की गोदी के पश्चात् श्रीकृष्ण की गोदी में जब यह बैठाया गया तब इसका तीसरा नेत्र और दो दूसरी भुजाएँ लुप्त हो गईं। इस पर माता ने श्रीकृष्ण से वरदान माँगा। उन्होंने सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया। श्रीकृष्ण के तेज का यह अंश है और अब भगवान् इस तेज का अपहरण करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण के वर से ही वह इतना गर्जन कर रहा है। इसपर शिशुपाल फिर क्रोध भरे वाक्य भीष्म को कहने लगा। इस पर भीष्म ने कहा कि ये श्री कृष्ण विद्यमान हैं जिनकी हमने पूजा की है, अब जो शीघ्र ही मरण चाहता है वही इन्हें युद्ध के लिए आह्वान

(१) माघ में भी यह ही बात कही गई है देखिए प्रथम सर्ग और १४वें सर्ग में अतः यह बात इसने महाभारत से ली है अन्य ग्रन्थों में शिशुपाल का जन्म वर्णन कहीं नहीं है। आगम में भी यह कथा आई है किन्तु वह भी महाभारत की ही देन है।

करे। इस पर शिशुपाल श्री कृष्ण से युद्ध करने की अभिलाषा से उन्हें कठोर वचन कहने लगा। श्री कृष्ण ने भी बुरा भला कहा और अन्त में घोषणा की कि अब इसके सौ अपराध पूर्ण हो चुके हैं और यह सीमा से आगे बढ़ गया है अत: मैं इस सुदर्शन चक्र से इसके शिर को पृथक् करता हूँ।

उपर्युक्त में कुछ बातें खटकती हैं। सहदेव के मुँह से यह कहलवाना कि जो श्रीकृष्ण की पूजा को स्वीकार नहीं करता उसके मस्तक पर यह मेरा बायाँ चरण है, शोभा नहीं देता। यह तो बचपन सी बात हो गई। सहदेव बच्चे तो नहीं थे। संयत भाषा का प्रयोग करना था। कितना ही क्रोध आ जाय किन्तु सज्जनों को उपेक्षा से काम लेना चाहिए और यदि ऐसा भी नहीं किया जा सकता था तो फिर उस जोश को कुछ होश के साथ काम में लाते। दूसरी बात खटकने वाली यह है कि श्रीकृष्ण महान् व्यक्ति हैं और वे जानते हैं कि शिशुपाल दुष्ट और पापात्मा हैं तो फिर जब वह गाली देता है तो अन्त में वे भी बुरा भला सुनाने लगे। उनके लिए ऐसी वैसी बातें सुनाना शोभा नहीं देता। शान्ति से कहते कि भाई अब तक तुम्हारे १०० अपराध तो क्षमा किये जा चुके हैं, किन्तु अब तुम्हारा आगे बढ़ना असह्य हो जायगा आदि।

श्रीमद् भागवत में चेदिराज शिशुपाल श्री कृष्ण की इस पूजा के कार्य को अनुचित समझकर बिगड़ बैठता है और अपने हाथ को ऊँचा करके निर्भय होकर श्री कृष्ण को कठोर वचन कहने लगता है। क्या गायों का चराने वाला, कुल को दोष लगाने वाला इन सब राजाओं को छोड़कर एक बालक के कहे हुए वचन से ही पूजा के योग्य हो सकता है? यज्ञ में देवताओं के योग्य बलि को कौआ कैसे ग्रहण करने योग्य हो सकता है। इस प्रकार शिशुपाल अनेकों अमंगल वचन बोल रहा था फिर भी श्री कृष्ण कुछ भी न बोले। राजाओं में कुछ तो मन-ही-मन शिशुपाल को गाली देने लगे, कुछ ने कानों को बन्द कर लिया किन्तु कुछ शस्त्र उठाकर शिशुपाल को मारने के लिए ढाल तलवार उठाने लगे।

माघ-काव्य में युधिष्ठिर ने जब श्री कृष्ण की पूजा की तो शिशुपाल सभा के मध्य में किये गए श्री कृष्ण के सम्मान को सहन न कर सका क्योंकि वह पहले ही भगवान् श्रीकृष्ण पर क्रोधयुक्त तो था ही और फिर युधिष्ठिर द्वारा की गई इस पूजा से उसका क्रोध और भी उबल आया। क्रोध से विकृत होकर उसने सभा में युधिष्ठिर को उपालम्भ दिया फिर भीष्म को भला बुरा कहने लगा। तत्पश्चात् शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को अनेकों कठोर वाक्य कहे किन्तु श्री कृष्ण उससे लेश मात्र भी क्षुब्ध न हुए। परन्तु भीष्म ने कहा कि जिस किसी राजा को आज इस सभा में मेरे द्वारा की गई पूजा (भगवान् श्री कृष्ण की) सह्य नहीं है वह धनुष चढ़ा ले। यह मेरा बायाँ पैर ऐसे सभी वाममति राजाओं के शिर पर रक्खा जा रहा है।[1] शिशुपाल पक्षीय राजा यह सुनकर क्षुब्ध हो गये और वेग से उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण को तो वे तृणवत् समझ रहे थे। युधिष्ठिर को तो वे क्या गिनते जब भीष्म से ही वे तनिक भी भयभीत नहीं थे। अब शिशुपाल भी विषैली बातें करता हुआ सभा-मण्डप से बाहर निकल पड़ा। युधिष्ठिर ने नम्रता से कहा कि मत जाइये पर शिशुपाल ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। शिशुपाल के पक्ष वाले राजा भी उसके पीछे चल पड़े। शिशुपाल द्रुतगामी

घोड़ों पर चढ़कर इन्द्रप्रस्थ की सड़कों को लांघ गया और शिविर पर पहुँचकर सेना को तैयार होने की उसने आज्ञा दे दी। युद्धार्थ सज्जित होकर ज्योंही वीर लोग जाने लगे कुछ अपशकुन हुए जो भावी चिन्ता का कारण हो रहे थे। अभियान की तैयारी हो जाने पर शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण के समीप जाकर द्व्यर्थक (प्रिय और अप्रिय) बातें कहने लगा। दूत की उन बातों की समाप्ति पर श्री कृष्ण के संकेत से सात्यकि ने दूत की भर्त्सना की तदनन्तर शिशुपाल को भी खोटी खरी सुनाई। सात्यकि ने यह भी पूछा कि यदि शिशुपाल श्री कृष्ण के साथ सन्धि करने का इच्छुक है तो फिर युद्ध की तैयारी उसने किस लिए की ? यदि श्री कृष्ण को धमकाने या डराने के लिए ऐसा किया गया है तो श्री कृष्ण भय से या आक्रमण से विनम्र हो जायँ यह असम्भव बात है। यदि उसका यह विचार हो कि भगवान् सौ अपराध क्षमा करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं और सौ अपराध हुए भी नहीं हैं, तो यह भी उसका भ्रम है क्योंकि सौ अपराध तो कभी के पूरे हो चुके हैं! अब यदि कोई अप्रिय बात हुई तो वह दण्ड का भागी है। शिशुपाल का दूत मर्मभरी बातों को सुनकर फिर भय त्याग कर बोला कि सुलह अथवा विग्रह दोनों में से किसी एक को चुन लीजिए किन्तु आप हमारे उपदेशों पर ध्यान ही क्यों देने लगे; आप दुराग्रही जो ठहरे। हमारा राजा शिशुपाल महान् ही रहेगा चाहे युधिष्ठिर ने भरी सभा में श्री कृष्ण की पूजा की है। तुम सौ अपराध क्षमा करने की बातें क्या कहते हो, क्या शिशुपाल ने भीष्म की कन्या रुक्मिणी का अपहरण करने पर प्रतिकार में समर्थ होते हुए भी क्षमा नहीं किया है ? तुम्हारे पक्ष के यदुवंशियों को युद्धार्थ ललकारने के ही लिए मुझको भेजा है क्योंकि सन्धि करने का मेरा संदेश तुम्हारे लिए अब व्यर्थ है। अब युद्ध के लिए उद्यत राजा शिशुपाल प्रबल जल के प्रवाह की तरह बढ़ा आ रहा है अतः हे श्रीकृष्ण ! तुम अपने आपकी रक्षा करो। दूत की इस प्रकार की बातों को सुनकर श्री कृष्ण की सभा तुरन्त ही क्षुब्ध हो उठी। श्री कृष्ण पक्षीय राजाओं का क्रोध भी भड़क उठा किन्तु श्री कृष्ण शान्त थे। राजाओं को क्रोधपूर्ण हुंकारें भरते देखकर दूत चुपके से वहाँ से खिसक गया। तब श्री कृष्ण ने सेना को तुरन्त ही युद्ध की तैयारी की आज्ञा दी। शिशुपाल के सैनिक हथियारों को खींचकर अत्यन्त वेग से दौड़ पड़े। अब दोनों सेनाएँ एक स्थान पर आ डटीं— पैदल पैदल से, घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथी से, तथा रथी रथी से भिड़ गए। तत्पश्चात् द्वन्द्व युद्ध हुआ। श्री कृष्ण के पराक्रम को न सहन कर शिशुपाल क्रोधित हुआ और विकराल धनुर्युद्ध करने लगा। पर वह श्री कृष्ण के सामने टिक नहीं सका।

महाभारत और शिशुपाल वध में शिशुपाल के क्रोध के सम्बन्ध में बहुत कुछ समानता मिलती है[२]। सहदेव के तथा भीष्म के वे वाक्य जिसमें इन दोनों ने राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहा है कि श्री कृष्ण की पूजा को स्वीकार न करने वालों के मस्तक पर यह मेरा बायाँ चरण है, समता लिये हुए अवश्य हैं किन्तु फिर भी भीष्म की उक्ति में थोड़ी बहुत क्रोध के साथ गम्भीरता लक्षित होती है। बाल्यकाल वाली चपलता नहीं। भागवतकार और शिशुपाल वध में शिशुपाल की क्रोधोक्तियाँ मिलती-जुलती सी हैं। महाभारत और भागवत दोनों में कटूक्तियों के बाद तुरन्त ही श्री कृष्ण के द्वारा वध करा दिया गया है, जब कि शिशुपाल वध में कवि ने दोनों के बीच हुए युद्ध का भी बड़ा सुन्दर और विस्तृत वर्णन किया

है । वह युद्ध साधारण युद्ध नहीं है । क्षत्रियों में जो प्राचीन काल में युद्ध होते रहे, उनका एक आँखों देखा सा वह चित्र है । हाथी हाथियों से, अश्व अश्वों से, रथी रथी से, पैदल से पैदल । सब के लड़ चुकने के पश्चात् दोनों नायक प्रतिनायक लड़ते हैं । यह परिवर्तन शिशुपाल वध के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता । इसकी काव्योपयोगिता स्पष्ट है । श्री कृष्ण का अलौकिक शौर्य उससे व्यक्त होता है । यदि प्रतिनायक साधारण नहीं है, तो नायक तो अद्भुत असाधारणता को लिये हुए हैं ।

शिशुपाल का वध तथा अन्तिम दृश्य :—महाभारतकार ने यहाँ एक जादूगर के जादू का सा काम किया है । वह श्री कृष्ण से कहलवाता है कि इस शिशुपाल के चूँकि अब १०० अपराध हो चुके हैं और वह अपनी मर्यादा से आगे बढ़ गया है, अतः मैं इस सुदर्शन चक्र से इसके शिर को पृथक् करता हूँ । इतने ही में उसका शिर धड़ से पृथक् होकर गिर पड़ा । यह भी क्या जादू है ? शिशुपाल ने कोई प्रतिकार न किया । करता भी कैसे ? सुदर्शन चक्र के सम्मुख कौन ठहर सकता था । शिशुपाल के देह से निकला हुआ तेज श्री कृष्ण की देह में राजाओं के देखते-देखते प्रवेश कर गया । उसकी मृत्यु पर कुछ राजा हर्षित हुए और कुछ क्रोधित । फिर उसके शरीर का वीरोचित सम्मान के साथ दाह-संस्कार कराया गया ।

भागवतकार का कहना है कि जब श्रीकृष्ण पक्षीय राजाओं ने शिशुपाल के विरोध में ढाल तलवार उठाली तो श्रीकृष्ण ने यह समझकर कि शिशुपाल अति शक्तिशाली है, कहीं वह इन राजाओं को मार न दे, उन्होंने राजाओं को आगे बढ़ने से रोका और सामने खड़े हुए शत्रु शिशुपाल के शिर को चक्र से पृथक् कर दिया । उस समय बड़ा कोलाहल हुआ । तब शत्रुपक्षीय राजा वहाँ से भाग गये । उसी समय शिशुपाल के देह में एक ज्योति निकली जो सब लोगों के देखते-देखते श्रीकृष्ण में विलीन हो गयी । इसी के पश्चात् भागवत में शिशुपाल के जन्म जन्मान्तर का वर्णन आता है । जय विजय को सनकादिक का शाप लगा अतः उनका बार-बार जन्म हुआ । शिशुपाल ने तीन जन्मों के चले आये वैर से तन्मय बुद्धि से श्रीकृष्ण के रूप का ध्यान किया और वह अपनी भावना के अनुसार उनका हो गया । इसके बाद वर्णन आता है कि चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ में उपस्थित होने वाले ब्राह्मणों को बड़ी-बड़ी दक्षिणा दीं, फिर विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञान्त स्नान किया ।

माघकाव्यकार का कहना है कि श्रीकृष्ण और शिशुपाल के बीच जब घमासान युद्ध हो रहा था तब अन्त में शिशुपाल ने समझ लिया था कि श्रीकृष्ण अजेय हैं, और ज्योंहि उसने वाक्बाण चलाया कि चक्र ने उसके शिर को उड़ा दिया । उसके शरीर से निकला हुआ तेज श्रीकृष्ण के देह में प्रविष्ट हो गया ।

इस भाँति हम देखते हैं कि गाली बकते हुए शिशुपाल के शिर का चक्र से पृथक् होना तो तीनों ग्रन्थों में मिलता है । पद्म पुराण और विष्णु पुराण में भी संक्षेप में यही बात मिलती है । ब्रह्मवैवर्तकपुराण में शिशुपाल के मरने की बात तो है, पर चक्र के द्वारा शिरोच्छेदन की बात नहीं है । तेज का तेज में मिल जाना भी सब ग्रन्थों में मिलता है । किन्तु शिशुपाल के मृत शरीर का क्या हुआ इस बातपर महाभारत को छोड़कर प्रायः सब ही ग्रन्थ मौन हैं । महाभारत में मृत शरीर का दाह संस्कार किया गया ऐसा लिखा है । ब्रह्म-

वैवर्तक पुराण में मृत्यु के प्राप्त हो जाने पर शिशुपाल की जीवात्मा श्रीकृष्ण की प्रशंसा करती है कि हे श्रीकृष्ण, आप वेद, वेदांगों, सुर, असुर, प्राकृत तथा देहाधारियों के जनक हैं और इस सृष्टि को माया के द्वारा सूक्ष्म रूप में बनाकर आप स्वयं ही ब्रह्म, शंकर तथा शेष रूप को प्राप्त हो गये हैं। सब यन्त्रों के आप ही यन्त्री हैं। मेरे अपराध को क्षमा कीजिये आदि-आदि और अन्त में आकर माघ ने सम्बन्ध का जैसा निर्वाह किया है वह आश्चर्यजनक है। उसमें और बातों की समता अवश्य है किन्तु उनको प्रस्तुत करने की अपनी शैली है। शिशुपाल कृष्ण को अजेय समझ लेता है। तब वह ही वाक्‌बाण छोड़ता है। श्रीकृष्ण उसको अपने सुदर्शन चक्र से मार देते हैं। उसका शिर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। राजाओं ने उस समय विस्मित नेत्रों से देखा कि अपने अमन्द प्रकाश से आकाश में सूर्य की किरणों को मन्द करता हुआ एक परम दीप्तिमान् तेज शिशुपाल के शरीर से निकल कर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट होगया।

यह है सम्बन्ध का निर्वाह और यह है प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का ढंग। शिशुपाल क्रोध में बहुत सी गालियां दे देता है। किन्तु १०० गालियाँ बहुत होती हैं। किससे इतनी गालियाँ दी जा सकती हैं? कदाचित् यही समझ कर शिशुपाल की माता ने समझा होगा कि यह वरदान ठीक रहा। १०० गालियों के पश्चात् तो श्रीकृष्ण के हाथों उसके पुत्र की मृत्यु होगी। न तो यह इतनी गालियां दे सकेगा और न यह श्रीकृष्ण के हाथ से मरेगा ही। दैव की तो गति विचित्र होती है। क्रोध में गाली देता हुआ सभा छोड़कर अपने शिविर में सेना को तैयार करने के लिए चला जाता है तब श्रीकृष्ण के निकट अपने दूत को भिजवाता है। दूत प्रिय तथा अप्रिय लगने वाली श्लेषमयी बातें कहता है। दूत के मुख से गाली के शब्दों को श्रीकृष्ण सुनते हैं। कहा जाता है जो कुछ दूत कहता है वे सब वाक्य भेजे जाने वाले के ही माने जाते है। दूत का व्यक्तिगत उसमें कोई अपराध नहीं होता है अतः दूत अवध्य ही माना जाता है। दूत ने १०० गालियों की पूर्ति जैसे ही की श्रीकृष्ण की ओर से संकेत हो जाता है कि अब यदि आगे बढ़ा तो फिर खैर नहीं। उसी समय दूत वहां से खिसक जाता है। यह सारा प्रसंग बड़ा रोचक है। युद्धभूमि में श्रीकृष्ण और शिशुपाल अपना अपूर्व पराक्रम दिखलाते हैं, दोनों ही बांके शूरवीर हैं। शिशुपाल भी एक ही है तो श्रीकृष्ण की दक्षता भी दांत तले अंगुली दबाने योग्य है। अन्त में लोहे के अस्त्र से श्रीकृष्ण को अजेय समझकर वैसे ही उसने १०१वीं गाली निकाली कि श्रीकृष्ण ने शस्त्र धारी उस शिशुपाल को मौत के घाट उतार दिया। प्रतिज्ञापूर्ण हो गयी। सब ग्रन्थों में तेज का तेज में मिल जाना लिखा है किन्तु माघ ने उस तेज को निकलते हुए प्रकाश पुँज के रूप में आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण के रूप में विलीन होते हुए दिखलाया है। दाह-संस्कार कराना अथवा शव को उठा कर लेजाना तो नाटक व काव्यों में उचित नहीं माना जाता। अतः माघ ने पुष्प, वृष्टि, गाजे बाजों की ध्वनि में प्रकाश को प्रकाश में लीन होते हुए दिखाकर एक सुन्दर रूप में पटाक्षेप किया है। वहीं काव्य की समाप्ति होगयी है।

किरातार्जुनीय और शिशुपालवध के कथानकों की रूप-रेखा में साम्य और वैषम्य— यह तो सुनिश्चित है कि शिशुपाल-वध महाकाव्य की रचना भारविकृत किरातार्जुनीय के बाद

की है और दोनों महाकाव्यों को बड़े ध्यान से पढ़ने पर पाठकों के हृदय में स्वत: यह भाव जागृत होगा कि महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के निर्माण के पूर्व भारविकृत किरातार्जुनीय को बहुत ही ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा जैसा पहले लिखा जा चुका है महाकवि माघ चाहते थे कि वह भी महाकवि की कीर्ति को प्राप्त करें। इस इच्छा से प्रेरित होकर आपने महाकाव्यका निर्माण किया। महाकवि भारवि के महाकाव्य से अच्छी रचना जब तक प्रस्तुत नहीं हो तब तक उनको अपना अभीष्ट नहीं मिल सकता था। संभवत: इसीलिए माघ ने किरातार्जुनीय को बार-बार पढ़ा हो। भागवत के दशम स्कन्ध अथवा महाभारत[२] के सभापर्व के अन्तर्गत शिशुपाल-वध पर्व से एक छोटी सी कथा को लेकर उन्होंने अपनी प्रतिभा से अपने महाकाव्य की रचना की। कथानक की रूप-रेखा, भावों, छन्दों, अलंकारों, वृत्तियों, ध्वनियों, बन्धों आदि पर महाकवि भारवि का प्रभाव स्पष्ट है। इस प्रभाव का मूल्यांकन तुलनात्मक दृष्टि से किया जा सकता है।

---

(१) महाभारत में ये ही वाक्य सहदेव कह रहा है। (२) महाभारत और माघ के साम्य के लिये देखें :—महा २।३६।२३–२५,२७,३१ एवं शिशु० १४।५५–५८ तथा १५।१ महा० २।३६।१८, २।४१।१ एवं शिशु० १५।१८–१९, महा० २।४।१३ उत्त० ४ पूर्वार्द्ध, ८,९ एवं शिशु० १६।३६–३७, मह० २।४।१० एवं शिशु० १५।३८ महा २।४४।४० एवं शिशु १५।४६

कथानकों की तुलना

माघ	किरात
(१) महाकाव्य के लक्षणों से युक्त है।	(१) महाकाव्य के लक्षणों से युक्त है।
(२) विष्णु की महिमा वर्णित है।	(२) शिव की महिमा वर्णित है।
(३) महाकाव्य के प्रारम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग मंगलाचरण के लिए है। (**श्रियः** पति श्रीमति शासितुं···)	(३) महाकाव्य के आरम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग मंगलाचरण के लिए है। (**श्रियः** कुरुणामधिपस्य···)
(४) प्रति सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'श्री' शब्द का उल्लेख है। इसीलिए यह महाकाव्य श्र्यन्त कहलाता है।	(४) प्रति सर्ग के अन्त के श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसीलिए यह महाकाव्य लक्ष्म्यन्त कहलाता है।
(५) माघ विष्णु भक्त हैं, अतः उन्होंने महाभारत से कृष्ण सम्बन्धी एक छोटी सी घटना को चुनकर उसका उपस्थापन २० सर्गों में एक कला पूर्ण ढंग से किया है। (कथावस्तु को देख लेने पर किरातार्जुनीय की रूपरेखा मस्तिष्क में एक बार घूम जाती है।)	(५) भारवि शिव भक्त हैं, अतः उन्होंने महाभारत से शिव सम्बन्धी एक घटना को लिया है। यह घटना १८ सर्गों में वर्णित है (माघ के काव्य की कथा वस्तु भारवि की कथा वस्तु की ही प्रतिमूर्ति (रेप्लिका) कही जा सकती है।)
(६) माघ में नारद श्रीकृष्ण के समीप आते हैं। इन्द्र का संदेश प्रस्तुत करते हैं। इसमें शिशुपाल के अत्याचारों का समाचार भी समाविष्ट है।	(६) किरात में प्रथम सर्ग में वनेचर युधिष्ठिर के निकट आता है। वह युधिष्ठिर को दुर्योधन संबंधी समाचार देता है :
(७) माघ इतिवृत के वर्णन में एक दम नहीं जुट पड़ते, १२, १३ पद्यों में आकाश से उतरते नारद का वर्णन भूमिका के रूप में देते हैं। नारद का स्वागत होता है, तब वह अपने आगमन का कारण बताते हैं।	(७) भारवि तुरन्त ही वक्तव्य प्रस्तुत कर देते है, इसके लिए कोई भूमिका नहीं बाँधते।

(८) कृष्ण और नारद के मध्य जो वार्तालाप होता है वह श्रद्धापूर्ण आदर भाव से परिप्लुत है।

(८) व्यास के आगमन पर युधिष्ठिर का भाव भी श्रद्धापूर्ण आदर से युक्त है। (१)

(९) माघ के द्वितीय सर्ग में बलराम, श्रीकृष्ण और उद्धव के मध्य राजनीति-विषय की बातें होती हैं। इसमें राजनीतिक मन्त्रणा है। माघ ने इस सर्ग में भारविसे अधिक राजनीति मेंअपना पाँडित्य प्रदर्शित करने की चेष्टा स्थानं स्थान पर की है। जहां पर बलराम और उद्धव की वक्तृताओं पर शुक्रनीति तथा कामन्दिकीय नीतिसार का प्रभाव स्पष्ट है। (३) अलंकार-शास्त्र, दर्शन और व्याकरण का ज्ञान भी वहाँ यत्र तत्र मौजूद है।

(९) किरात के द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी के मध्य राजनीति-विषयक बातें होती हैं। इसमें राजनीतिक विवाद है। भारवि ने अपने राजनीतिक विवादों में लौकिक अनुभवों तथा युक्तियों का आधार अधिक लिया है। शास्त्रीय आधार गौण रहा है (२) यहाँ पर भीम और युधिष्ठिर राजनीति में पूर्ण दक्ष दिखाये गये हैं।

(१०) माघ में देवर्षि नारद एक प्रस्ताव रखते हुए मार्ग-दर्शन भी करते हैं।

(१०) किरात में महर्षि वेदव्यास पांडवों को मार्ग बताते हैं।

(११) माघ में श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत के निकट पड़ाव डालते हैं।

(११) किरात में अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए जाते हैं।

(१२) रैवतक का वर्णन यमक में किया है।

(१२) हिमालय का वर्णन यमक में किया है।

(१३) चतुर्थ सर्ग का रैवतक वर्णन, षष्ट सर्ग का ऋतु वर्णन तथा ७ से १० सर्ग तक का वन-विहारादि, संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, ऋतुओं एवं यात्रा का यथा स्थान वर्णन है इनके वर्णन से महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति हुई है।

(१३) चतुर्थ सर्ग से नवम सर्ग तक के वर्णनों से महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति हुई है। इस वर्णन से माघ प्रभावित से दिखलाई पड़ रहे हैं। संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, ऋतुओं एवं यात्रा का यथा स्थान वर्णन है।

(१४) अप्सराओं के विहार के चित्र बड़े सुन्दर हैं।

(१४) अप्सराओं के विहार के चित्र बड़े सुन्दर हैं।

(१५) शिशुपाल श्रीकृष्ण को युद्ध में उत्तेजित करने के लिए दूत भेजता है।

(१५) किरात में किरात वेषधारी शिव अर्जुन को युद्ध के लिए उत्तेजित करने को

---

(१) माघ १, २९ तथा किरात ३, ९

(२) किरात १, ३१, ४२, २, ११, २०, २१, ३०, ३१, ३७, ४६

(३) माघ २, २६, २८, २९, ३०, ३६, ३७, ५४, ५५, ५६, ५७, ७६, ८१, ८२, ८८, ९२, ९३, १११, ११२, ११३

दूत की भाषा अपमान पूर्ण है।

(१६) १६वें सर्ग में शिशुपाल के दूत तथा सात्यकि के बीच उत्तेजना पूर्ण संलाप है।

(१७) १९वाँ सर्ग चित्र-काव्य जैसा है।

(१८) द्वन्द्व युद्ध के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष है।

(१९) चतुर्थ सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग है।

दूत भेजते हैं। दूत की भाषा अपमान पूर्ण है।

(१६) १३वें और १४वें सर्ग में अर्जुन तथा किरात रूपधारी शिव के बीच उत्तेजना पूर्ण संलाप है।

(१७) १५वाँ सर्ग चित्र-काव्य जैसा है।

(१८) द्वन्द्व युद्ध के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष है।

(१९) चतुर्थ सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग है।

दोनों में साम्य

वर्णन ताम्य

माघ	भारवि
(१) शत्रु-वर्णन—प्रथम सर्ग	(१) शत्रु वर्णन—प्रथम सर्ग १ से २५ श्लोक
(२) राजनीति-वर्णन—द्वितीय सर्ग	(२) राजनीति-वर्णन—प्रथम, द्वितीय, तृतीयसर्ग।
(३) प्रवास-वर्णन—चतुर्थ सर्ग	(३) प्रवास-वर्णन—चतुर्थ और सप्तमसर्ग।
(४) प्रकृति:वर्णन—चतुर्थ सर्ग	(४) प्रकृति-वर्णन—पंचम सर्ग।
(५) पुष्पावचय-वर्णन—सप्तम सर्ग	(५) पुष्पावचय-वर्णन—अष्टम में १ से २६ श्लोक
(६) जलक्रीड़ा-वर्णन—अष्टम सर्ग	(६) जलक्रीड़ा-वर्णन—अष्टम में २७ से ३७ श्लोक
(७) सायं तथा रात्रि वर्णन—नवम सर्ग	(७) सायं तथा रात्रि वर्णन—नवम में १ से ५० तक श्लोक।
(८) सुरतक्रीड़ा-वर्णन—दशम सर्ग	(८) सुरतक्रीड़ा-वर्णन—नवम में ५१ से ५८ श्लोक।

माघ के वैभिन्य का सौन्दर्य

माघ एक कलावादी कवि हैं। जहाँ कालिदास को रस-कवि कहा गया है वहाँ उन्हें अलंकार कवि बताया गया है। उन्होंने द्वितीय सर्ग में सुकवि की पहिचान ही इस रूप में बताई है (१) वे शब्द तथा अर्थ दोनों के सौन्दर्य पर अधिक बल देते हैं, यथपि रसों और भावों को जानने वाले कवि के लिए भी उनके हृदय में सम्मान है। (२)। उन्होंने अपनी कविता को क्या भीतर से तथा क्या बाहर से खूब चमत्कृत करने का प्रयत्न किया है। शास्त्रज्ञ कवि होने ही के कारण उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का मार्ग अपनाया है। वह मौलिक प्रतिभा का परिचय देते तो उनका कवित्व और अधिक प्रस्फुटित होता और वह आज से

(१) शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते (२, ८६)
(२) देखिये माघ २ ८३

कहीं ऊँचे पद पर आसीन होते। अस्तु, पांडित्य प्रदर्शन करना आवश्यक रूप से अभीष्ट था तथा इस तरह सुकवि बनना था इसीलिए जहां पर उनका वैभिन्य (वैशिष्ट्य) दिखलाई पड़ता है वहाँ वहाँ पर वह भारवि जैसे कलावादी कवियों से कई गुणा अधिक बढ़ गये हैं। माघ में कलात्मक सजावट, शब्दों का भण्डार तथा कल्पनाओं की विचित्रतापूर्ण विपुलता ये सब उनके वैषम्य के औचित्य को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी उक्तियों में अनूठापन है।[1] अलंकारों को एक सूत्र में रखने की अपूर्व क्षमता है, तथा उनकी शैली में एक अपूर्व संगीत की छटा है। उनका भाव पक्ष भी अपने ढंग का है।

संदेशकथन में जहाँ पर साम्य है वहाँ पर अपने वर्णन वैचित्र्य में माघ भारवि से कहीं आगे बढ़ गये हैं। नारद श्रीकृष्ण की शिष्टता भरी बातें इसका एक अच्छा प्रमाण है जिसमें भावों की मौलिकता स्पष्ट है। राजनीति की बातों में जहाँ साम्य है वहाँ पर शास्त्रीय प्रमाण देकर पांडित्यप्रदर्शन द्वारा अपने भावों को खूब सजाकर रखना यह उनकी विशेषता है। उनकी वर्णन करने की शैली है जिसने एक अपूर्व औचित्य लाकर रक्खा है। दूत का वाद-विवाद तथा युद्ध का वर्णन भी कम सुन्दर नहीं है। प्रकृति वर्णन में भी भिन्नता है। यमक वाले प्रकृति वर्ण अलंकारों से दबे हुए जान पड़ते हैं। छठे सर्ग का जो प्रकृति वर्णन है वहाँ यमकों के होने पर भी सरलता के कारण सौन्दर्य का विघात नहीं हुआ है। उनका अप्रस्तुत विधान सुगठित, सुयोजित एवं सुसज्जित है।

शिशुपालवध की कथा-परिवर्तन, उनका औचित्य तथा कवि का कौशल—

शिशुपाल वध महाकाव्य की कथा-वस्तु यद्यपि महाकवि माघ को महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत से बनी बनाई मिल गई थी, किन्तु उस काव्य में कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ कवि ने कुछ परिवर्तन किये हैं। कवि अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति अपने महाकाव्यों, खंड काव्यों एवं काव्यों के प्रसिद्ध कथानकों को अपने उद्देश्य सिद्धि के लिए एक नवीन रूप दे देते हैं।

तुलसी-रामायण और वाल्मीकि-रामायण की भिन्नता स्पष्ट है तथा उत्तर'रामचरित नाटक को दुखान्तता से बचाने के लिए महाकवि भवभूति ने अन्त में अपने निजी कौशल से सीता और राम का मिलन दिखाया है। शाकुन्तल में दुष्यन्त के चरित की रक्षा के लिए दुर्वाशा के शाप की भी कल्पना करनी पड़ी। इसी तरह शिशुपालवध महाकाव्य के कथानक में भी महाकवि माघ ने कुछ परिवर्तन किये हैं। इस भाँति के परिवर्तनों से कथानक मूल रूप से भिन्न सर्वथा एक नूतन रूप धारण न करले, ऐतिहासिक और पौराणिक सत्य में कहीं विरोध न आ जाय, इसका ध्यान कवियों को रखना पड़ता है। महाकवि माघ इस ओर भी सतर्क हैं। शिशुपालवध की कथा में एक दो बड़े परिवर्तनों के अतिरिक्त छोटे-छोटे परिवर्तन भी हैं क्योंकि उनका काव्य लिखने का उद्देश्य न केवल शिशुपाल का ही वध है अपितु यशः-प्राप्ति पूर्वक हरि (श्रीकृष्ण) गुणगान (चरित्रवर्णन) करना भी है।

---

१. माघ ६, ४६ तथा १३, ४३ और किरात ४, ३३ को देखिये।

अब हम क्रमानुसार उन परिवर्तनों को प्रस्तुत करते हैं। कवि माघ शिशुपाल के वध की भूमिका बाँधते हैं। शिशुपाल जैसे एक वीर पुरुष का वध कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं कर सकता। सृष्टि के व्यवस्थापक और शान्ति के संस्थापक महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण ही इस कार्य को सम्पन्न कर सकते थे। श्रीकृष्ण को सीधे रूप में यह कह देना कि आप शिशुपाल का वध कर दीजिये क्योंकि वह उच्छृङ्खल है तथा पापी है तो कोई बात नहीं हुई। एक बड़े काम के लिए बड़ी ही अवतारणा चाहिये। कवि इसीलिए नारद द्वारा नृसिंहावतार, रामावतार आदि के प्रसंग छेड़ कर श्रीकृष्ण के भ्रू भंग को उत्पन्न करता है जो शिशुपाल के वध का सूचक है। यह तो एक छोटा सा परिवर्तन है किन्तु इस परिवर्तन से सारे कथानक को एक मोड़ मिलता है, ऐसे मोड़ जो श्रीकृष्ण के चरित्र का एक वीरतापूर्ण तथा तेजोमय स्वरूप प्रस्तुत करता है। माघ के श्रीकृष्ण अन्य कवियों के श्रीकृष्ण की भाँति न तो केवल देव ही और न जादूगर ही है। वह तो एक सांसारिक पुरुष की भूमिका में हैं। नरत्व की पूर्णता का आभास हमें माघ के श्रीकृष्ण में स्थान-स्थान पर मिलता है।

इन्द्र का सन्देश लेकर नारद के आगमन की बात तो महाभारत तथा श्रीमद्भागवत में भी है किन्तु नारद का आकाश मार्ग से आते हुए एक तेजोमय रूप में प्रथम दिखलाई पड़ना, फिर आकाश से नीचे उतरती हुई उस तेजोमयी वस्तु के निकट आने पर हाथ, पैर आदि की धुंधली आकृति को देखकर यह पता लगाना कि वह व्यक्ति है, फिर और समीप आने पर स्पष्ट रूप से शिर, हाथ पैर आदि अंगों के पृथक्-पृथक् दिखलाई पड़ने से उस व्यक्ति की पुरुष रूप में और अन्त में नारद के रूप में अवगति होना और तब उनको प्रणाम करने के लिए उपस्थित जन का श्रद्धापूर्वक खड़े हो जाना यह सब महाकवि माघ की सद्भावना शक्ति का परिचय देता है।

दूसरे सर्ग में उद्धव और बलराम से श्रीकृष्ण सम्मति लेते हैं, इस बात पर कि पहले उनको राजसूय यज्ञ में जाना चाहिए अथवा शिशुपाल का वध करना चाहिए। महाभारत में इस भाँति की मंत्रणा नहीं मिलती। हाँ, भागवत में ही अवश्य श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से सम्मति चाही है। वहाँ उद्धवजी अपनी सम्मति दे देते हैं और श्रीकृष्ण उसे मान लेते हैं। माघ कवि ने इस प्रसंग को एक नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। भारवि के किरात में भी द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिर का संवाद ऐसे ही प्रसंग पर हुआ है। उसका एक स्वाभाविक प्रभाव माघ पर है। उन्होंने अपने महाकाव्य में नारद, श्रीकृष्ण, बलराम उद्धव का संवाद प्रस्तुत किया है। राजनीति की सुन्दर चर्चा यहाँ हुई है। राजनीति की चर्चा में युद्ध और क्षमा इन दो पक्षों पर प्राय: सभी कालों में विचार हुआ है। मध्ययुग में उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था और युद्ध के प्रसंग प्राय: आते ही रहते थे। सम्भवत: इस समसामयिक परिस्थिति से प्रभावित होकर भी माघ ने इस प्रसंग को उठाया और प्रशंसनीय गति से उसका विकास किया। अकेले भी यदि इस प्रसंग पर विचार किया जाय तो वह एक पूर्ण प्रबन्ध के रूप में पाठकों को आकर्षित कर सकेगा। यह होते हुए भी कि भारवि के राजनीति विषयक संवाद का प्रभाव माघ पर है और इस संवाद की रचना एकदम माघ के मस्तिष्क की उपज नहीं है, माघ का यह संवाद अपने ढंग का है। यह संवाद श्रीकृष्ण के भ्रू भंग की दूसरी कड़ी

है। एक शक्तिशाली कड़ी। आगे का सारा कथानक इस संवाद से बल पाता है और उसमें कहीं भी ढीलापन या सदोषता नहीं आने पाती।

इस संवाद से जहाँ कथानक को पुष्टि मिलती है वहाँ कवि की राजनीति के विषय में रुचि का परिचय भी मिलता है। उसके व्यक्तिगत जीवन पर समसामयिक राजनीति का प्रभाव व्यक्त होता है। जैसा बहुज्ञता वाले प्रसंग में व्यक्त किया गया है, इसको पढ़ने से माघ के राजनीति विषयक पांडित्य का पूरा परिचय मिल जाता है। शिशुपालवध पर लिखने वाले दूसरे ग्रन्थकारों ने इस तरह की राजनीतिक चर्चा प्रस्तुत नहीं की है।

दूसरे सर्ग के पश्चात् अर्घ्यदान तक कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। सुकवि-कीर्ति के इच्छुक माघ अगले सर्गों में काव्य सम्बन्धी बातों को लिखकर मानो दूसरे बड़े कहे जाने वाले कवियों को परास्त करने के प्रयत्न में हैं। महाकाव्य के लक्षणों का अधिकांश निर्वाह इन्हीं सर्गों पर अवलंबित है। इस भाँति देखने में तो रैवतक वर्णन से कोई बड़ा परिवर्तन हो रहा है ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता बल्कि कुछ लोगों को वह अनावश्यक सा विस्तार भी प्रतीत हो सकता है। किन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखें तो पता चलेगा कि सेना को इस भाँति शिविर के रूप में रैवतक पर्वत पर आनन्द विनोद के लिए रखना जिससे घर गृहस्थी की चिन्ता से मुक्त हो जायँ तथा शरीर व मन से स्वस्थ होकर इन्द्रप्रस्थ जायँ जहाँ पर शिशुपाल की सेना से आखिर टक्कर लेनी ही है। यह बात एक सामरिक महत्व को लिए हुए है। इस निराकुल उत्साह के बिना संभव नहीं है। आज भी सामरिक प्रशिक्षण तथा सामरिक सन्नद्धता के लिए सैनिकों के मनोविनोद का ध्यान रखा जाता है, ऐसे मनोवैज्ञानिक यत्न किये जाते हैं जिनसे सैनिक अपने घरबार सब को भूल जाय और सेनापति की आवाज ही उनके लिए सबसे बड़ी आवाज बन जाये। इसे परिवर्तन न कहकर परिवर्धन कहना अधिक समीचीन होगा। यह परिवर्धन वहाँ महाकाव्य की इस आवश्यकता को पूरी करता है वहाँ एक युग विशेष की सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है।

आगे यज्ञ के सजीव वर्णन आते हैं। अर्घ्य का अधिकारी कौन ? इस प्रश्न को लेकर कवि ने एक परिवर्तन प्रस्तुत किया है। वह शिशुपालवध काव्य का दूसरा बड़ा परिवर्तन है। उससे काव्य निखर सा उठा है। भागवत, पुराण, महाभारत और जितने भी अन्य ग्रन्थों में शिशुपाल-वध के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया है उन सब में अर्घ्य के पश्चात् श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा को न सह सकने वाले शिशुपाल के द्वारा गालियाँ दिलवाई हैं, क्योंकि वरदान था कि १०० अपराध तक तो श्रीकृष्ण क्षमा कर देंगे किन्तु आगे बढ़ जाने पर उसका श्रीकृष्ण के हाथों वध हो जायगा। प्राय: सब ही ग्रन्थकारों ने इस बात का अनुकरण किया है पर महाकवि माघ ने यहाँ जिस मौलिक परिवर्तन को दिया है वह उन्हें अन्य ग्रन्थकारों से कहीं ऊँचा उठा देता है। गाली देते हुए मार देना एक चमत्कार जैसा लगता है। क्या शिशुपाल वीर न था ? क्या उसने हाथों में चूड़ियाँ पहिन रखी थीं ? क्या वह क्षत्रिय न था जो युद्ध न करता ? ओजस्वी पुरुष अपने तुल्य पुरुषों के प्रति अपने से अधिक किये गये सत्कार को सहन नहीं करते। श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया जाय और शिशुपाल जो अपने को इन्हीं के समान शक्तिशाली तथा वीर समझता हो वह वैसे ही चुपचाप बैठा बैठा देखता रहे ? माघ ने अपने पूर्व

के ग्रन्थकारों की इस कमी को समझा और राजसूय यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति पर फिर युद्ध के लिए एक भूमिका बाँध दी। अर्घ्य के प्रश्न पर झगड़ बैठना, सभा को छोड़कर अपने शिविर में चले जाना, वहाँ श्लिष्ट उक्तियों से सेना को सजाना, दूत को भेजकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए उत्तेजित करना, फिर युद्ध में पराक्रमी श्रीकृष्ण के पक्ष को यह कहकर न्याय युक्तता देना कि वह सज्जनों की रक्षा के लिए दुष्टों का दमन करते हैं सज्जनों के प्रति आत्मीयता यह सब उसी भूमिका का विस्तार है। आगे लड़ते-लड़ते शिशुपाल जब श्रीकृष्ण को अस्त्रों से पराजित नहीं कर सका तो फिर गालियाँ देने लगता है। १०० गालियों की समाप्ति पर श्रीकृष्ण अपने अपराधी शत्रु शिशुपाल का वध करते हैं। इस परिवर्तन से वध रूप कार्य का सुन्दर समाधान हो गया है।

यह दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि शिशुपालवध काव्य इन परिवर्तनों से एक सफल महाकाव्य बन गया है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ सर्ग तक कथा का आनन्द आता है किन्तु आगे चलकर जब रैवतक पर्वत का वर्णन आता है तब ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों कवि उसी के वर्णन में इतना रत हो गया कि उसे कथावस्तु के विकास का ध्यान ही नहीं रहा। पर ऐसा समझना ठीक नहीं है। रैवतक पर्वत का वर्णन अपने आप में एक पठनीय वस्तु है, इतना ही नहीं, कथानक प्रसार में भी उसका योग है। रैवतक पर्वत का वर्णन कथानक को वहीं पर लेकर तो नहीं बैठ गया है। मनुष्य के मुख भाग के पश्चात् उदर भाग आता है जो बड़ा होता है और कुछ लम्बा होता है और जिसके अस्तित्व से शरीर की स्थिर जीवनी शक्ति बनी रहती है। यही अवस्था शिशुपालवध में रैवतक वर्णन की है। उसमें रैवतक की ओट में उस सारी बातों का वर्णन है जिनसे (लक्षणों के अनुसार) वह महाकाव्य कहला सका है। रैवतक-वर्णन के बाद कवि जल्दी ही इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर राजसूय यज्ञ का वर्णन कर देता है। इस बीच कोई ऐसी बात उसे नहीं लगती जिसका वह विस्तार के साथ वर्णन कर सके। आगे युद्ध का वर्णन आ जाता है। सारे कथानक को नीचे दिये ग्राफ से समझा जा सकता है—
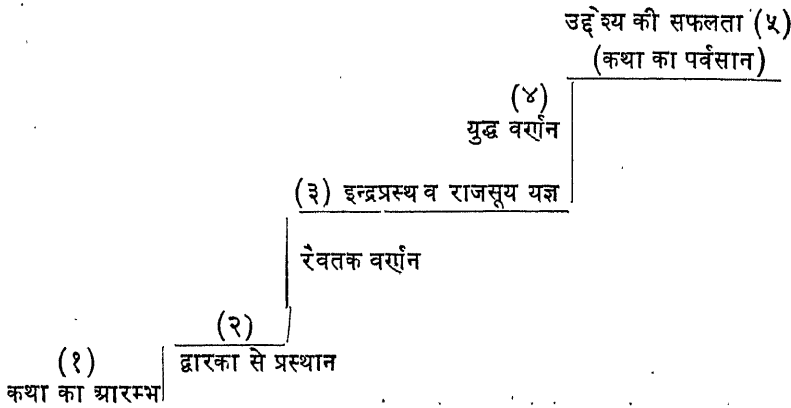
इस रेखांकन (ग्राफ) से पता चलता है कि कथावस्तु के आरम्भ और पर्यवसान के बीच तीन चीजों का वर्णन आया है. रैवतक का, उसके बाद इन्द्रप्रस्थ में होने वाले राजसूय

यज्ञ का और फिर युद्ध का। इसमें प्रस्तावना, उसका समाधान, तदनुकूल कार्य तथा उद्देश्य की प्राप्ति ये पाँचो बातें आ गयी हैं। इससे महाकाव्य को सम्पूर्णता मिल गयी है। काव्योचित सौन्दर्य का—कल्पना और अनुभूति इन दोनों के संगम का, पर्याप्त मात्रा में वहाँ निर्वाह हुआ है। कथावस्तु के विभिन्न अंशों का यत्र तत्र उल्लेख हो चुका है। यहाँ पर उसको एक क्रम से रखकर इस प्रकरण की समाप्ति कर दी जायेगी। काव्य का आरम्भ नाटकीय ढंग से हुआ है। एक आश्चर्यजनक रीति से नारद इन्द्र का संदेश लेकर आते हैं। जब वह सन्देश दे चुकते हैं तो श्रीकृष्ण के सम्मुख एक समस्या उपस्थित हो जाती है। समस्या साधारण नहीं है। एक ओर राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण तो दूसरी ओर शिशुपाल के वध की आवश्यकता सामने है। किस काम को पहले किया जाय और किस काम को पीछे ? कवि ने अपने कौशल से उसे एक जटिल समस्या बना दिया है। उस पर विचार समान बैठता है। दूसरे सर्ग में बलराम और उद्धव के विचारों को श्रीकृष्ण सुनते हैं, और इस निश्चय पर आते हैं कि राजसूय यज्ञ के लिए प्रस्थान करना चाहिए। वहीं पर शिशुपाल के बध का अवसर आ जायगा। शान्तिपूर्वक काम करना है। एक महायोद्धा का वध करना खेल तो नहीं है। उसके पक्ष में भी कितने ही राजा हैं जो श्रीकृष्ण की सेना से लोहा ले सकते हैं। भागबतकार, महाभारतकार अथवा अन्य ग्रन्थकारों की भांति कवि माघ इस बात को चामत्कारिक अथवा दैवी घटना के रूप में दिखलाना नहीं चाहते, वह इसे मानवीय रूप में ही घटित करना चाहते हैं। युद्ध के लिए श्रीकृष्ण अकेले नहीं चल पड़ते उनके साथ सेना है जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट आदि वाहन, सैनिक, उनके मनोविनोद के लिए सुन्दरियाँ तथा सुरा आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ हैं। सेना द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान कर रही है। वैसे मार्ग में दृश्यों की सीमा नहीं। अत: उन दृश्यों में से कुछ दृश्य कवि ने ऐसे चुने हैं जिनसे पाठकों की उत्सुकता बनी रहे। रैवतक के वर्णन में कवि की उद्दाम युवा-वृत्तियों का विलास है। रैवतक की उपत्यका में शिवर वासी सैनिकों के आमोद-प्रमोद की चर्चा एक सामरिक आवश्यकता तो है ही, इसके साथ ही साथ उसका काव्योचित महत्व है—इसका निर्देश पहले हो चुका है अत: यहाँ विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। किन्तु युद्ध के वर्णन में उसकी परिपक्व वृद्धावस्था का प्रभाव है। उसके लिए श्रीकृष्ण केवल एक योद्धा नहीं है। वह तो इस संसार में न्याय संस्थापन के लिए अवतीर्ण एक ईश्वरीय विभूति हैं। इसीलिए यहाँ युद्ध का जो वर्णन हुआ है उसमें एक एक भक्तराज की अपने आराध्य के प्रति भक्ति का भाव अपने सम्पूर्ण अंगों से मुखरित हुआ है। अब मानो कवि अपने आपको श्रीकृष्ण के रूप में विलीन करने के लिए आकुल है। माघ काव्य में अन्त में शिशुपाल वध का जो मुख्य उद्देश्य है वह तो पूर्ण हुआ ही है किन्तु साथ ही आत्मा का परमात्मा में लीन हो जायं इसी में श्रेय है, कितना सुन्दर है। इस सबके बीच कवि ने जहाँ भी सम्भव हुआ, अपने जीवन की बातों को भी सावधानी से रखा है। कथानक में किसी भाँति यदि कहीं शिथिलता भी आई तो उसकी पूर्ति कवि ने अपने कौशल से यथा-स्थान करदी है। आरम्भ से अवसान तक उत्सुकता को किस रूप से जागरूक रखा गया है वह नीचे के रेखांकन से विदित हो जायगा।

२०वाँ सर्ग अवसान
१८-१९सर्ग/उत्सुकता
१७सर्ग | च.कुतूहल
१६ सर्ग|उत्सुकता
१५सर्ग|तृ. कुतूहल
१३-१४ सर्ग|उत्सुकता
४-१२सर्ग | द्वि.कुतूहल
प्र.कुतूहल / उत्सुकता
सर्ग २ | प्र.बीज, सर्ग ३
प्रारंभ
सर्ग १

उत्सुकता को बढ़ाये रखने के लिए बीच-बीच प्रस्तुत किये गये कथोपकथन, चरित्रचित्रण, वर्णन शैली, जिसमें भाषा, सुभाषोक्तियाँ और अलंकार हैं आदि का समावेश है। माघ की शैली प्रसंग में इन चीजों की चर्चा विस्तृत रूप से की जायगी।

माघ की कथावस्तु के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि ने एक छोटी घटना को लेकर उसके सहारे अपनी यह रचना की है। इस घटना को चुनने के दो प्रयोजन हैं—एक तो यह कि उसके सहारे उन सारी बातों को प्रस्तुत किया जा सकता है जो उस समय तक स्वीकृत लक्षणों के अनुसार इस रचना को महाकाव्य का रूप दे सकती थीं, और दूसरे यह कि श्रीकृष्ण के जीवन की यह घटना है इसके द्वारा कवि अपनी भक्ति का प्रकाश कर सकता था। कहना न होगा कि दोनों ही प्रयोजन इस छोटी-सी कथावस्तु से अभीष्ट रूप में सिद्ध हुए हैं।

माघ काव्य के प्रमुख संवाद

काव्यों मे सवाद एक नाटकीय तत्व है । सवाद[1] (१)कथावस्तु का विकास करते हुए उसमे (२) सजीवता का समावेश करते है और (३) पात्रो के मनोवेगो और विचारो को प्रत्यक्ष कर उनके चरित्र-चित्रण मे सहायक होते है । इन्ही के द्वारा पाठक पात्रो के साथ तादात्म्य का अनुभव करते है । जिन काव्यो मे सवादो की सुयोजना होती है उनसे पाठक एक नाटकीय आनन्द-सा अनुभव करते है। आज तो आलोचक सवादो को काव्य का एक महत्वपूर्ण अग मानने लगे है । कभी-कभी तो उन्हे काव्य की आत्मा भी कह दिया जाता है ।

शिशुपालवध मे विशेष ध्यान देने योग्य दो सवाद हैं—

(१) श्रीकृष्ण और नारद सवाद प्रथम सर्ग मे आया है । (२) शिशुपाल के दूत और सात्यकि का सवाद सोलहवे सर्ग मे है । इन सवादो के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, बलराम, और उद्धव के भाषण द्वितीय सर्ग मे तथा अर्घ्य के समय श्रीकृष्ण की पूजा के लिए युधिष्ठिर, भीष्म तथा शिशुपाल के भाषण है ।

(१) **श्रीकृष्ण और नारद संवाद**—यह सवाद माघ कवि की अपनी सूझ है । इस सवाद से कवि की प्रबन्ध योजना-शक्ति का परिचय मिलता है ।

महाकाव्य का नाम शिशुपालवध है । शिशुपाल का वध क्यो ? किसके द्वारा ? यही कथा आरम्भ का सूत्र है । कवि ने इन दोनो प्रश्नो का समाधान नारद-श्रीकृष्ण के सवाद के रूप मे किया है । प्रजा शिशुपाल के अत्याचारो से अति दुखी थी । सारे देवता तथा उनका अधिपति इन्द्र तक उससे आतकित थे । इस सवाद के द्वारा महर्षि नारद ने प्रजा की मूक वेदना का आभास कराके श्रीकृष्ण को उनके अवतीर्ण होने के प्रयोजन का स्मरण कराया है । बात ही बात मे एक बडे काम की अवतारणा हो गयी है । महाकाव्य का कथानक बन गया है ।

जैसे ही नारद का आगमन होता है श्रीकृष्ण अपने स्थान से उठ जाते है । महर्षि के निकट आने पर प्रणाम पूर्वक आसन आदि देते है । अब दोनो का सवाद प्रारम्भ होता है । श्रीकृष्ण मधुरता के साथ बोले, मै आपके दर्शनो को प्राप्त कर भाग्यशाली हुआ हूँ ।[2] विरक्त पुरुषों को यद्यपि ससार से कोई प्रयोजन नही रहता फिर भी आपका जो यह पदार्पण

१. माघ १. १६, १. २६ ।

२. माघ १. ६८

हुआ है उससे मेरे मन में स्वत: यह प्रश्न उपस्थित हो रहा है कि क्या कारण है जो आप मेरे यहाँ पधारे हैं। इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—

आपको यह नहीं कहना चाहिए कि मैं संसार से विरक्त हूँ फिर भी यहाँ पर कैसे आया, विरक्तों को भी तो यहाँ आना पड़ता ही है क्योंकि योगियों के भी तो आप ही ध्येय हैं। इस तरह संक्षेप में बड़ी सुन्दरता से महर्षि ने बता दिया कि श्रीकृष्ण अवतारी पुरुष है, वह अन्तर्यामी हैं अत: उनको कार्य अकार्य सब विदित है। महर्षि तो मानो उन्हीं की प्रेरणा से किसी आने वाली घटना के लिए निमित्त बनने चले आये हैं। इतना कहने के बाद वह वराह अवतार का प्रसंग छेड़ते हैं जिससे युग-युगों से चलने वाली उनकी उद्धारकारी भावना को उभार मिले। इसके आगे उन्होंने संकेत दिया कि बाल्यकाल से श्रीकृष्ण लोक-कल्याण-कारी भावना से कंसादि दुष्टों के नाशक हैं। इसके बाद धीरे-धीरे श्रीकृष्ण के वीर कृत्यों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—मैं एक बात आपको एकान्त में कहने के लिए आया हूँ और यही मेरे आने का प्रयोजन है। वह बात क्या हो सकती है—बड़ी लम्बी बात है वह, ऐसी बात जिसका जन्म-जन्मान्तरों से सम्बन्ध है, जिसको नारद जैसे महर्षि ही बताने के अधिकारी भी हैं। नारद सबसे प्रथम हिरण्यकशिपु के दुर्व्यवहार का चित्र उपस्थित करते हैं। फिर नृसिंह रूप में उनके द्वारा नखों से विदीर्ण किये जाने की बात कहते हैं। फिर रावण के दुर्व्यवहार का वर्णन करते हुए उनको अपने रामावतार की स्मृति दिलाते हैं इस भाँति श्रीकृष्ण के पूर्व जन्मों में वे कौन थे और किस भाँति जब-जब भी लोक में दुर्व्यवस्था अथवा अशांति, अधर्म, अन्याय फैला उसी समय उनका नाश करने के लिए कौन-कौन-सा अवतार उन्होंने लिया यह बताते हुए शिशुपाल के जन्म की घटना की याद दिलाते हुए श्रीकृष्ण का आवश्यक कर्त्तव्य कहा है। दूसरी ओर उन्होंने संकेत दिया है कि आपके सिवाय और किसी से यह मरने का नहीं है। आप ही इसका संहार करेंगे। अतः आप इस पापी को लोक कल्याण के लिए मार दीजिए जिससे प्रजा सुखी हो तथा सुव्यवस्था फैले। इस संदेश को सुनते ही श्री' कृष्ण का भ्रू भंग हुआ।

संदेश वे ही अच्छे माने जाते हैं। जिनमें किसी सत्कर्म के लिए बलवती प्रेरणा हो। सन्देश भेजने वाला व्यक्ति उसका अधिकारी हो और पाने वाला व्यक्ति उस कर्म को संपन्न करने के लिए सशक्त हो। संदेशवाहक दूत भी प्रेरणा उत्पन्न करने की कला में कुशल हो। इस संवाद का प्रयोजन एक लोक हितकारी कर्म है, ऐसा कर्म जिसके लिए ईश्वरीय विभूतियाँ इस संसार में आती हैं, सन्देश भेजने वाला आर्त-समाज का अधिकृत प्रतिनिधि है, सन्देश पाने वाले श्रीकृष्ण उस काम को कर सकते हैं। नारद के दौत्य में किसी शंका को अवकाश नहीं। इस तरह सभी दृष्टियों से यह संदेश प्रशंसनीय है।

दूत-सात्यकि-संवाद :

दूसरा संवाद है श्रीकृष्ण के साथ शिशुपाल के दूत का संवाद। जब शिशुपाल उस भरी सभा से उठकर क्रोध में कुछ बड़बड़ाता सा अपने शिविर में आकर युद्ध घोषणा करता

है और सेना सन्नद्ध होती है, तभी वह अपने एक निपुण दूत को सभा में श्रीकृष्ण के पास भेजता है। दूत वहाँ पहुँचकर दो अर्थोंवाली (प्रिय और अप्रिय) भाषा में सन्देश कहता है। १४ श्लोकों में वह ऐसी बातें कहता है जो दीखने में तो स्तुतिपरक थीं किन्तु गहराई से सोचने पर निन्दा से व्याप्त थीं। सात्यकि ने उस प्रिय लगने वाले संदेश के विष का अनुभव किया और ६ श्लोकों में (१६-२१) उसने उसका उत्तर दिया। प्रथम तीन श्लोकों में (१४वां सर्ग का १७, १८, व १९) तो दूत की भर्त्सना की, तत्पश्चात् एक-बात को खोलकर उसने करारा उत्तर दिया। सात्यकि की मर्मभरी बातों को सुनकर वह दूत फिर निर्भय होकर बोला—जो कुछ मैंने कहा वह सब भले के लिए कहा है और दो अर्थवाली में संधि व विग्रह दोनों की बातें हैं। उनमें से जो बात आपको रुचिकर हो वही करें। किन्तु आप हमारे उपदेशों पर ध्यान ही क्यों देने लगे ? जो सौ अपराधों की बात आपसे कही गई है उसका भी उत्तर शिशुपाल ने एक ही क्षमा में रुक्मिणी-हरण के समय दे दिया है। यह प्रत्युत्तर भी बड़ा सरल है। इस संवाद में सन्धि और विग्रह के विषय का अनूठे पर काव्योचित ढंग से प्रतिपादन है। दूत विद्वान् और निर्भय व्यक्ति है और अपने स्वामी की प्रतिष्ठा बनाये रखने में प्रयत्नशील है। यह संवाद भी अपने ढंग का एक है।

कृष्ण युधिष्ठिर संवाद—

इन दो संवादों के अतिरिक्त माघ में और भी संवाद हैं, उनका भी यहाँ वर्णन करना समीचीन है।

इन्द्रप्रस्थ में सब परिजनों से मिल लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर में परस्पर बातें हुई हैं। युधिष्ठिर ने कहा—यह ठीक है कि आप चाटुकारी की बातों से स्वयं लज्जित हो जाते हैं चाहे प्रशंसक लज्जित न हो, किन्तु आपके लिए तो कोई भी स्तुतिवचन झूठा नहीं हो सकता। मैं आपके लिए प्रशंसा की बहुत सी बातें करते हुए भी मिथ्यावादी नहीं हो रहा हूँ क्योंकि आप तो सारे अवगुणों से रहित हैं। आप ही से सब भाँति के गुणों की सम्पदा उत्पन्न होती हैं। मैं यज्ञ करना चाहता हूँ उसके लिए आपकी आज्ञा का इच्छुक हूँ। अब आपके समीप होने से यह मेरा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा। सूर्य के समीप होने पर दिन की शोभा को कौन दूर कर सकता है। अथवा आप ही हवन कीजिये। सोमपान का आपके यज्ञ की समाप्ति होने पर अवभृत स्नान कर लेने के पश्चात् मैं अपना उत्तम राजसूय यज्ञ को समाप्त करूँगा। इस धन का और उपयोग भी क्या हो सकता है। इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि आप सब प्रकार से योग्य हैं अतः राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान भी आप कर सकते हैं। मैं तो आपके दुष्कर आदेशों का पालन करता रहूँगा। आप यज्ञ में विघ्न बाधा की बात ही क्यों करते हैं। जो राजा इस यज्ञ में भृत्य के तुल्य कार्य नहीं करेगा उसके शरीर को यह मेरा चक्र शिर से विहीन कर देगा।

महाकवि माघ जैसे अन्य संवादों में सफल हुए हैं इसी भाँति इस कृष्ण युधिष्ठिर संवाद में भी उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। ऐसे संवादों की गणना पारिवारिक संवादों में की

जाती है। यहाँ श्रीकृष्ण अपने स्वभाव को छोड़ कर युधिष्ठिर के परिवार के एक छोटे व्यक्ति के रूप में सामने आये हैं। युधिष्ठिर का कोई भी काम हो छोटा या बड़ा वे भृत्य की तरह उसे करेंगे। अपने महान् व्यक्तित्व को भूलकर। साथ ही वह युधिष्ठिर को निर्भय होकर यज्ञ करने की बात भी कह देते हैं। उनके यज्ञ में बाधा पहुँचाने वाला जीवित नहीं रह सकता। इस संवाद में भारतीय पारिवारिक जीवन का एक उत्तम स्वरूप प्रस्तुत हुआ है।

शिशुपाल और भीष्म संवाद

संवाद की दृष्टि से तो असफल ही कहा जायेगा क्योंकि इससे न तो कथा ही आगे बढ़ती हुई सी प्रतीत हो रही है और न रागात्मकता ही इस संवाद में आने पाई है। शिशुपाल कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं कर रहा है वह तो क्रोध में आगबबूला होकर शान्तनुपुत्र भीष्म, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदि को बुरा भला कह रहा है। उसका उत्तर किसी ने न दिया। हाँ, भीष्म से श्रीकृष्ण की निन्दा सहन न हुई तब भीष्म ने उत्तर में कुछ कहा। इसमें संवादा-त्मकता नहीं है, फिर भी संवाद जैसा रूप इसका है।

इस तरह शिशुपाल वध के उपरिलिखित तीनों संवाद सजीव बने हैं और कवि के प्रत्युत्पन्न मतित्व की अभिव्यक्ति करते हैं। इन संवादों से वक्ताओं के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और उनको कर्म व्याप्त होने के लिए प्रेरणा मिलती है।

———

उद्धव और युधिष्ठिर के वक्तव्य की तुलना

तथा

अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण

किरात में युधिष्ठिर—युधिष्ठिर का चरित्र उनके संभाषण से 'किरातार्जुनीय के तृतीय सर्ग मे प्रस्फुटित हुआ है। वह सत्य प्रतिज्ञ, क्षमाशील तथा तत्वज्ञानी है। द्रौपदी और भीम के उत्तेजक भाषणों से भी उनका हृदय क्षुब्ध नही हुआ। वे कितने धैर्यशाली है ? बहुत ही स्निग्ध भाषा मे अपने भाई भीम को समझाते है'''यद्यपि तुमने भली भाति निर्णय किया है फिर भी मेरे हृदय को सतोष नही हुआ है। कर्त्तव्य (सधि-विग्रहादि) का विशेषतत्व सरलतया नही जाना जा सकता। मनुष्य को एका-एक कार्य नही करना चाहिए। अविवेक आपत्तियो का परम स्थान है। विचार कर कार्य करने वाले की सेवा सपत्तियाँ स्वय करती है। शास्त्र का अनुशीलन मानव को भूषित करता है। शाँति उसका आभूषण है। शाति का भूषण पराक्रम है। उसका भूषण नीति-सपादित सिद्धि ही है। व्यामोह रूपी अधकार से आच्छादित गहन कर्त्तव्य पथ पर प्रदीप की भाँति विवेकियो द्वारा अनुशीलित शास्त्र ही प्रकाश डालता है। प्रशसनीय गुण वाले महात्माओ के चरित पर जो चलते है उन पर दैवी अनर्थ भी पडे तो वह उन्नति के समान ही है। जीतने की इच्छा रखने वाला राजा पहले क्रोध जीत लेता है फिर महत्वपूर्ण फल सिद्धि को (जिसका उत्तरकाल मे नाश न हो) लक्ष्य कर उपाय के पराक्रम का उपयोग करते है। क्षमा के समान शत्रुओ का नाश करने वाला और कोई साधन नही। क्षमारूपी साधन भविष्य को बनाने वाला तथा अधिक कर्मफलो का कारण है। अभी उपेक्षा करने पर भी दुर्योधन सम्पूर्ण राजाओ को कभी वश मे नहीं कर सकेगा। यादव लोग हम लोगो के स्वाभाविक स्नेह से बधे हुए है। उनका व्यवहार हम लोगो से जैसा है वैसा दुर्योधन से नही है। यादवो मे सबधी (भाई बन्धु मामा आदि) और मित्र जो दुर्योधन के नौकर है वे स्वार्थ वश आजकल दुर्योधन को मान रहे है। समय पडने पर हम लोगो से मिल जावेगे। दुर्योधन मद से उद्धत है। वह राजाओ का अपमान किये बिना नही रह सकता। अपमानित राजाओ मे भेदनीति जो कार्य कर दिखायगी वह भविष्य ही बतायेगा। साधारण पुरुष ही जब अपना अपमान नही सह सकता तो लोकोत्तर तेजवाला राजमडल उसे कैसे सह सकता है। अमात्य आदि मे थोडा भी भेद राजा का नाश कर डालता है। वृक्षो की डालियो की रगड से उत्पन्न आग सम्पूर्ण पर्वत को जला डालती है। इस भाँति के भाषण से युधिष्ठिर के धैर्य, धार्मिकता आदि गुण प्रकट होते है। वे गुण शाति तथा क्षमा के शीर्षक है। राजनीति का भी इनको अच्छा परिचय है। नीति के आचरण के सम्मुख अनीतिमय जीवन को यह तुच्छ समझते है।

माघ मे उद्धव—उद्धव का चरित उन्ही के सवाद मे 'शिशुपाल वध' के द्वितीय सर्ग

में प्रस्फुटित हुआ है। वे गर्वहीन, गंभीर, सत्यवक्ता एवं कुशल राजनीतिज्ञ हैं। कृष्ण के सम्मुख शिशुपाल पर प्रथम अभियान करना चाहिए इस बात का जिन जिन युक्तियों का आश्रय लेकर बलराम ने कहा उन सबका खंडन उद्धव ने बड़ी योग्यता से किया था। उन्होंने 'मुसलपाणिना' शब्द का प्रयोग करके एक ओर श्रीकृष्ण को ध्वनि में ही समझा दिया कि बलराम केवल शूरवीर हैं, राजनीति से इनका कोई सम्बन्ध नहीं तथा दूसरी ओर मोटी बुद्धि वाले बलराम को यह बता दिया कि उन्होंने सब कुछ कह दिया है। इन्हीं बातों को कहना ऐसा ही प्रतीत हो रहा है जैसे पत्र द्वारा प्रयोजन ज्ञात हो जाने पर उसी को मौखिक संदेश के रूप में कहना। इससे उद्धव की शिष्टता पूर्ण नम्रता टपक रही है। वर्ण पचासेक होंगे और इन्हीं वर्णों से शब्द बनते हैं जिनसे गूंथा हुआ यह शब्दजाल कितना विचित्र होता है। स्वर सात ही होते हैं किन्तु उनसे कितनी राग रागिनियों की उत्पत्ति हो जाती है। यह तो अपनी प्रतिभा है। संगत और असंगत सभी बातें उससे कही जा सकती हैं किन्तु मुख्य प्रयोजन से संबंध न छोड़ने वाला प्रबन्ध कठिनाई से ही उपस्थित किया जा सकता है, अतः कुशल वक्ता को चाहिए कि अत्यन्त मृदु अक्षरों से युक्त होते हुए भी अर्थ से भरी हुई अनेक गुणों से युक्त शब्दों वाली वाणी का प्रसार करे। यहाँ उद्धव ने बलराम की प्रशंसा भी कर दी और निन्दा भी। इससे उद्धव की वाक्पटुता प्रकट होती है। युधिष्ठिर ऐसे वाक्पटु नहीं हैं। श्रीकृष्ण से उद्धव कहते हैं—आप नीति-शास्त्र के परम विद्वान् हैं, आपके सम्मुख जो मैं नीति-शास्त्र की यह चर्चा कर रहा हूँ वह तो केवल मेरे अभ्यास के लिए ही है। मेरी इसमें कोई विशेषज्ञता नहीं है। इससे उद्धव की निरभिमानिता टपकती है। साथ ही इस कथन में शिष्टता एवं सभ्यता की भी पराकाष्ठा है। उनको कहने की शैली याद है। इसी भांति बलराम की वाणी की प्रशंसा और निन्दा अन्य स्थानों पर भी झलकती है[1]। उद्धव न केवल वाक्पटु, मधुरभाषी एवं निरभिमानी ही हैं किन्तु उनकी नीतिज्ञता भी प्रसिद्ध है। वे नीति शास्त्र के एक माने हुए आचार्य हैं। उन्होंने जो नीति की बातें बताई हैं वे कौटिल्य, कामन्दक और शुक्र आदि नीति शास्त्र के आचार्यों को मान्य हैं। युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा है वह नीति सम्मत होते हुए भी एक सरल मार्ग के पथिक सन्त-स्वभावी व्यक्ति का सा कथन है। इसमें नीति पटुता की गहनता का प्रायः अभाव है। किरातार्जुनीय तथा शिशुपाल वध से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं। जिनसे दोनों के नीति संबंधी विचारों के लिए जो प्रस्तावना की गयी है उसकी शैलियों कीं तुलना हो सकेगी।

किरातार्जुनीय (युधिष्ठिर)

अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मंगलास्पदे।
विमला तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते ॥ २. २६ किरात ॥

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृ-तमर्थ-गौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥ २. २७ किरात॥

उपपत्तिरुदाहृता बलादनुमानेन न चागमः क्षतः।
इदमीदृगनीदृगाशयः प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः ॥ २. २८ किरात ॥

शिशुपाल बध (उद्धव)

संप्रत्यसांप्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना ।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलुवाचिकम् ।। २. ७० माघ ।।
तथापि यन्मय्यपि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम् ।
तत्प्रयोजककर्तृत्वमुपैति मम जल्पतः ।। २. ७१ ।।
बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते ।
अनुज्झितार्थ सम्बन्धः प्रबंधो दुरुदाहरः ।। २. ७३ माघ ।।
वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता ।। २. ७२ ।।
अदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम् ।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव ।। २. ७४ ।।

युधिष्ठिर और उद्धव दोनों के कहने की शैलियाँ यहाँ हैं। युधिष्ठिर के कहने में वह माधुर्य और व्यंग नहीं जो उद्धव के कहने में मिलता है। उद्धव बड़े चतुर एवं ज्ञानी हैं। उनकी वाणी में अर्थगंभीरता है। युधिष्ठिरजी शान्त प्रकृति के हैं। क्रोध से परिपूर्ण व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इसको उन्होंने समझा है और समझ कर प्रथम उसके भाषण की प्रशंसा की है कि भाई तुम्हारी वाणी से तुम्हारे हृदय के भाव स्पष्ट मालूम पड़ रहे हैं। तुमने तो सब बातें खोलकर रख दीं। अर्थ-गौरव से पूर्ण तुम्हारे कथन में पुरुषार्थ का अवलंबन करने की बात है जो नीति के भी अप्रतिकूल है। तुम्हारी बातों को कौन स्वीकार नहीं कर सकता।

उपर्युक्त में माघ ने भारवि से नीति-चर्चा की रूपरेखा ली है ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु उनकी वर्णन करने की शैली इतनी भिन्न और विशिष्ट है कि सारी चर्चा एक दम नवीन कृति सी जान पड़ती है।

दोनों के भावों में साम्य

किरातार्जुनीय—

शिवमौपयिकं गरीयसीं फलनिष्पत्तिमदूषितायतिम् ।
विगणय्य नयन्ति पौरुषं विजितक्रोधरया जिगीषवः ।। २. ३५ किरात ।।
अपनेयमुदेतुमिच्छता तिमिरं रोषमयं धिया पुरः ।
अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताप्युदीयते ।। २. ३६ किरात ।।
बलवानपि कोपजन्मनस्तमसो नाभिभवं रुणद्धि यः ।
क्षयपक्ष इवैन्दवीः कलाः सकला हन्ति स शक्तिसम्पदः ।। २. ३७ किरात ।।

(१) २. ७४, ७६, ७८
(२) २. ८१, ८२, ८३, ८८, ८९, ९०, ९३, १११, ११२

शिशुपाल वध—

प्रज्ञोत्साहावतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि ।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसंपदः ।। २. ७६ माघ ।।
सोपाधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये ।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम् ।। २. ७७ माघ ।।

यहां भी भाव साम्य है अवश्य पर भारवि के युधिष्ठिर जहाँ निर्विकार हृदय से काम करने की बात उनकी प्रकृति के अनुरूप सरलता से कहते हैं, वहां माघ के उद्धव किसी भी काम के लिए प्रज्ञा और उत्साह दोनों की आवश्यकता बताते हैं। केवल उत्साह से काम नहीं चलता प्रज्ञा और उत्साह दोनों चाहिए। इसी बात को उन्होंने एक रूपक बाँधकर पुष्ट कर दिया है।

भागवत और माघ के उद्धव—

भागवत में उद्धव श्रीकृष्ण के भत्य हैं तथा श्रीकृष्ण के परम भक्त के रूप में चित्रित किये गए हैं। माघ के उद्धव श्रीकृष्ण भृत्य न होकर गुरुजन के रूप में हैं। उनका काम यहाँ भी श्रीकृष्ण को परामर्श देना है। वे यहाँ राजनीति के माने हुए आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका स्वभाव सरल और प्रकृति शान्त है।

बलराम और भीम के वक्तव्य में साम्य—

किरात में भीम एक धीरोद्धत नायक है। द्रौपदी के उत्तेजक वाक्य भीमसेन को अति रुचिकर हुए अतः युधिष्ठिर से कहा कि द्रौपदी की वाणी आपको भी पसन्द आनी चाहिए क्योंकि उसमें गुण ही गुण है। फिर कहने लगे, इससे अधिक और कष्ट क्या होगा कि शत्रुओं ने आपको इस निन्दित दशा में डाल दिया है जिससे आपका पौरुष नष्ट हो रहा है। कहाँ आपका वह पौरुष जिसकी देवता भी प्रशंसा करते थे और कहाँ आपकी आज की यह हीनदशा। अतः अब शत्रुओं के प्रति उपेक्षा ठीक नहीं है। शत्रुओं की बढ़ती हुई प्रभुशक्ति की जो उपेक्षा करते हैं उनकी लक्ष्मी शीघ्र ही चली जाती है। यदि कहें कि हम आज दुर्बल हैं, शत्रु लोग प्रबल हैं तो दुर्बल का प्रबल के साथ युद्ध कैसा ? इसका उत्तर यह है कि जो राजा क्षीण भी हो गए हों, किन्तु उनका स्वाभाविक क्षात्र तेजच्युत नहीं हुआ हैं, यदि वे समृद्धि के लिए उद्योग करते हैं तो प्रजा द्वितीया के चन्द्र के समान उनको प्रणाम करती है। कोष और दण्ड के कारण, पंचांग (कार्य के आरम्भों का उपाय, सहायक पुरुष सम्पत्ति आदि, देश काल का विभाग, अनर्थ का प्रतिकार और कार्य सिद्धि) का ठीक-ठीक निर्णय करने वाली नीति ही कर्त्तव्य विषयक उत्साह का सहारा लेती है। जैसे कृषि आदि में प्रवृत प्रजा भाग्य का सहारा लेती है। यदि कहो कि हम लोग उत्साह भी करें तो कैसे कार्य-सिद्धि होगी, क्योंकि हम लोगों का आजकल सहायक ही कौन है ? यह भी उचित नहीं

क्योंकि मनस्वी पुरुष जो उच्च पद के अभिलाषी हैं वह अपने पौरुष से अनर्थ का प्रतिकार कर सकते हैं। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि शत्रु लोग आपको बिना लड़े राज्य लौटा देंगे, तो बताइये आपके भाइयों की भुजाओं ने किया ही क्या ? अभिमान ही को धन मानने वाले वीर अपने नश्वर प्राणों से स्थायी यश का ही संग्रह करते हैं। वे यश को मुख्य और विद्युत्-विलास के समान चंचल लक्ष्मी को गौण समझते हैं। जलती हुई आग पर कोई पैर नहीं रखता। राख के ढेर पर हर कोई पैर रख देता है। पराभव के भय से मानी सुख पूर्वक प्राण छोड़ देते हैं पर तेज को नहीं छोड़ सकते। किसी फल की अभिलाषा से गर्जते हुए मेघों की ओर सिंह दौड़ता है। महापुरुषों का स्वभाव ही है कि वे शत्रु की उन्नति को नहीं सह सकते। इसलिए प्रमाद से उत्पन्न मोह को छोड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाइये। इस भाषण से भारवि ने भीम का स्वभाव कैसा चित्रित किया है इसका अच्छी तरह पता लगता है। उनके चरित में बाहुबल का प्राबल्य तथा पराक्रमपक्षपातिता प्रकट होती है। भीमसेन उच्च कोटि के राजनीतिक नहीं हैं। असमय में ही युद्ध का प्रस्ताव करते हैं, जो सर्वथा अदूरदर्शिता पूर्ण है। क्रोधवश विपक्ष के बलाबल का वह कुछ भी विचार नहीं करते। उनको नैतिक मर्यादा के भंग का भी ध्यान नहीं है। कवि ने भीम के उद्धत भाषण से सूचित किया है कि बलियों में प्राय: विवेक नहीं होता है। भीमसेन अपने को प्रथम श्रेणी के राजनीतिज्ञ भी समझते हैं। उनके नीति सम्बन्धी विचार इस भाषण में निहित है। इस भाषण से उनके धीरोद्धत स्वभाव का अच्छा परिचय मिलता है।

शिशुपालवध में बलराम—

माघ ने बलराम के चरित्र को एक ही श्लोक में इस भाँति अंकित किया है।

तत: सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बचुंबनचुंचुना ।।२-१४।।

इस श्लोक में बलराम की वीरता तथा शृङ्गारिकता दोनों का समन्वित वर्णन किया गया है। जिस प्रकार वे परम विलासी है उसी प्रकार वे शत्रुओं के परम शत्रु भी हैं। शत्रुओं के उदय की बात भी उनको सह्य नहीं है।

बलराम एक सिपाही है राजनीतिज्ञ नहीं है। उद्धव के "मुसलपाणि" शब्द से भी यही संकेत मिलता है। इस श्लोकार्द्ध में बलराम की नीति का सार दे दिया है। माघ में "आत्मोदय: परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयति।" इस श्लोकार्द्ध में बलराम की नीति का सार दे दिया है। अपमानित होकर रहना वह किसी दशा में भी सहन नहीं कर सकते। वह कहते हैं—

पादाहतं यदुत्थायमूर्धानमधिरोहति,
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वारं रज: ।।४६।।

उनकी समझ में नम्रता बड़ा भारी दोष है—

अंकाधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलांछन: ।

केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥५३॥

शत्रु से प्रतिबोध लेते समय उन्हें मित्र के कार्य की कुछ भी चिन्ता नहीं।

यजतां पांडवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥६५॥

बस वह तो केवल यह स्वप्न देखते हैं—

प्राप्यतां विद्युतां संपत्संपर्कादर्करोचिषाम् ।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरच्छेदप्रोच्छलच्छो णितोक्षिनैः ॥२-६६॥

इस भाँति बलराम का जैसा चित्र होना चाहिए वैसा ही कवि ने अंकित किया है। उद्धव का व्यक्तित्व बलराम के विरोध में ही निखर सका है। इसके अतिरिक्त बलराम पर किरातार्जुनीय के द्रौपदी और भीम के भाषणों की भी छाप है।

बलराम और द्रौपदी तथा भीम के भाषणों में साम्य की प्रतीति होती है। पर माघ का बलराम भारवि के द्रौपदी और भीम से अधिक राजनीति का पण्डित है। भीम उत्साह और पुरुषार्थ की ही बातें कर रहा है। किन्तु बलराम मित्र और शत्रु की प्रकृति से पूर्ण परिचित है—

सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः
स्यातामभित्रौ मित्रे च सहज प्राकृतावपि ॥२-३६॥
उपकर्त्रारिणा संधिर्न मित्रेणापकारिणा
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥२-३७॥
विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥२-४२॥

इस तरह माघ के उद्धव तथा बलराम दोनों ही भारवि के युधिष्ठिर तथा द्रौपदी और भीम से कहीं अधिक व्यवहार कुशल एवं राजनीति शास्त्र के ज्ञाता है।

चराचरात्मिका इस सृष्टि में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसकी मानसिक शक्ति सबसे अधिक विकसित पाई जाती है। उसके मन में लोक प्रचार के अच्छे और बुरे विचार उठते हैं, कल्पना शक्ति से वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक काल से दूसरे काल तक, एक रूप से दूसरे रूपों में उड़ानें भरता है। कुछ कल्पनाएँ, कुछ विचार सरल होते हैं तो कुछ जटिल। सरल और जटिलता के साथ विभिन्न अपेक्षाओं में "कु" और "सु" जुड़ जाता है। मानसिक अशान्ति और शान्ति का सम्बन्ध "कु" अथवा "सु" की अधिकता से है। जब कई भावनाएँ परस्पर विरोधिनी सी होकर मन में उठती हैं तो उनमें किसको स्वीकार किया जाय तथा किसे छोड़ा जाय—इस चीज को लेकर जो एक मंथन संघर्ष होता है वही काव्य में अन्तर्द्वन्द्व कहलाता है। प्रत्येक मानव आगे बढ़ना चाहता है यदि "सु" मार्ग से वह चल पड़ा तो उसकी गणना भले आदमियों में होती है और यदि उसने कुमार्ग का अवलम्बन कर लिया तो वह बुरा आदमी कहलाता है। बुरापन या दुराई इसीलिए हेय मानी जाती है।

कि उसका स्वरूप लोक रंजक न होकर लोक पीड़क होता है। "कु" मार्गरत मानवों का "सु" पुरुषों से विद्वेष होना स्वाभाविक है। जब यह विद्वेष बढ़ जाता है तो द्वन्द्व की स्थिति पैदा हो जाती है। काव्य का आधार मानसिक भावनाएँ तथा कल्पनाएँ होती हैं। भावना को कल्पना उड़ान देती है। उसे बोधगम्य अथवा अनुभूति के योग्य बनाती है। "सु" पुरुष अच्छा क्यों है और कुपुरुष बुरा क्यों ? इन प्रश्नों का समाधान मानवीय अमूर्तवृत्तियों अथवा भावनाओं के समझने से होता है। जब अन्तर्वृत्ति लोकोपकारशील होती है तो उसका स्वरूप दूसरा होता है और जब वह लोकोत्साह में लग जाती है तब उसका स्वरूप और भी होता है। इन दोनों प्रकार की वृत्तियों से व्यक्तिगत एवं सामाजिक सार पर एक द्वन्द्व सा चला करता है। जब यह वृत्तियों का द्वन्द्व व्यक्तिगत होता है तो उसे क्रान्ति का रूप मिल जाता है। काव्य में दोनों प्रकार के द्वन्द्वों को अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार जीवन के विकास के लिए संघर्ष अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार काव्य के विकास के लिए अन्तर्द्वन्द्व बड़ा जरूरी है। अन्तर्द्वन्द्व का ही दूसरा नाम समस्या है। लेखक किसी भी प्रबन्ध काव्य, कहानी या नाटक में एक समस्या प्रस्तुत करता है, पात्रों के द्वारा वह समस्या अन्तर्द्वन्द्व का रूप धारण कर लेती है। समस्या का समाधान होते ही अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है, वही फल प्राप्ति अथवा उद्दिष्ट प्राप्ति कहलाती है। पात्रों का जीवन किस तरह किसी काव्य की फल प्राप्ति में समाहित होता है जब इस बात का विचार उस काव्य की घटनाओं की समग्र पृष्ठभूमि में किया जाता है तो उसे आलोचना की भाषा में चरित्र-चित्रण कहते हैं। चरित्र-चित्रण से काव्य दृष्टि स्फीत बनकर आलोच्य काव्य को समझने में सहायक होती है। इसी दृष्टि से शिशुपालवध काव्य के पात्रों का चरित्र-चित्रण आवश्यक भी है।

महाकाव्यों अथवा खण्डकाव्यों में जब चरित्र-चित्रण किया जाता है तो यह देखा जाता है कि कौन सा पात्र प्रधान है और कौन सा विरोधी अथवा सहायक। किस पात्र को प्रधान माना जाय। कथा और कथावस्तु जिस पात्र के सहारे अपने उद्देश्य की ओर बढ़ती है वही मुख्य पात्र कहलाता है। जो पात्र उस उद्देश्य का सबल प्रबल विरोधी होता है उसे प्रतिनायक अथवा खलनायक की संज्ञा दी जाती है। शेष पात्र या तो नायक के सहायक होते हैं या प्रतिनायक के।

शिशुपालवध महाकाव्य में नारद श्रीकृष्ण के निकट इन्द्र सन्देश को लेकर आते हैं। सन्देश कथन के साथ ही श्रीकृष्ण को स्मरण दिलाते हुए कहा कि जब-जब भी विश्व किसी बड़ी आपत्ति में ग्रस्त हुआ आपने ही विभिन्न रूप धारण करके दुष्टों का संहार किया। इस समय जब शिशुपाल समस्त राजाओं तथा नगर निवासियों को कष्ट पहुँचा रहा है आप उसका वध करके संसार को कष्ट से मुक्त कीजिए। श्रीकृष्ण के सामने समस्या है किस भाँति शिशुपाल का वध किया जाय। एक निर्णय पर पहुँचकर वे ससैन्य राजसूय यज्ञ में जाते हैं। वहाँ पर शिशुपाल से झगड़ा होता है। युद्ध अनिवार्य हो जाता है। युद्ध में श्रीकृष्ण के हाथों शिशुपाल का वध होता है।

यह है शिशुपाल की संक्षिप्त कथा । अन्त में महाकवि ने कहा है :—

श्री शब्दरम्यकृतसर्गसमाप्ति-लक्ष्म लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारु माघः :
तस्यात्मजः सुकवि कीर्ति दुराशयादः काव्यं व्यधत्तशिशुपालवधाभिधानम् ।।

काव्य का उद्देश्य श्रीकृष्ण के चरित्र का गुण गान करते हुए पृथ्वी पर शिशुपाल जैसे दुष्ट का संहार करा कर इन्द्र सन्देश को पूरा करांना है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के आश्रय से दुर्लभ सुकवि कीर्ति को भी प्राप्त करना है ।

इस उद्देश्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य के नायक हैं श्रीकृष्ण और प्रति-नायक है शिशुपाल । नारद, उद्धव, बलराम, युधिष्ठिर, भीम, सात्यकि नायक के सहायक हैं तथा वे सब राजा लोग जो यादवों के विरुद्ध लड़ते हैं शिशुपाल के सहायक हैं । अन्तर्द्वन्द्व का मूर्त रूप है श्रीकृष्ण और शिशुपाल का युद्ध और अमूर्त रूप है सत् की रक्षा और असत् का विनाश । इस प्रसंग में पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया जायगा ।

श्रीकृष्ण और शिशुपाल :—

शिशुपाल के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन जहाँ तहाँ पर आया है उस सबसे शिशुपाल वध काव्य का वर्णन भिन्न हैं । पुराणों में श्रीकृष्ण एक ईश्वरीय अभिव्यक्ति हैं । भागवत में श्रीकृष्ण ने जिस भाँति चक्र द्वारा शिशुपाल का वध कर डाला जिससे भी उनकी ईश्वरीय शक्ति ही प्रकट होती है । महाभारत में सभा पर्व के अन्तर्गत शिशुपाल वध पर्व आया है, यहाँ पर भी शिशुपाल की क्रोध भरी बातों एवं सौ गालियों के समाप्त होते ही श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र का स्मरण करते हैं और जब हाथ में आ जाता है तब वह उच्चस्वर से कहते हैं कि इसकी माता ने सौ अपराध क्षमा करने की याचना की थी जो आज तक तो क्षमा कर दिये गये । यह अपनी सीमा का अति क्रमण कर रहा है, अब मैं आप लोगों के सम्मुख इसको मारूँगा । इतना कहते ही उसका सिर चक्र से काट डाला ।

तथा ब्रुवत एवास्य भगवान्मधुसूदनः ।
मनसाऽचिन्तयच्चक्रं दैत्य गर्भनिषूदनम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु चक्रे हस्तगते सति ।
उवाच भगवानुच्चैर्वाक्यं वाक्य विशारदः ।
श्रण्वन्तु मे महीपाला येनैतत्क्षमितुं मया ।
अपराध-शतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने ।
दक्षं मया याचितं च तद्वै पूर्णं हि पार्थिवाः ।
अधुनावधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम् ।
एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात् ।
व्यपंहारच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः ।

स पपातमहाबाहुर्वज्रहत इवाचल ॥२३॥
महाभारत सभा पर्व शिशुपाल वध अ०४५

महाकवि माघ के श्रीकृष्ण मे ईश्वरीय से नृपत्व या मनुष्यत्व ही अधिक है। वह नीति शास्त्र मे निपुण, उदार चरित, दुष्टो के शत्रु और साधुओ के मित्र आदर्श राजा है।

महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक मे ही माघ श्रीकृष्ण के चरित्र को इस भाँति चित्रित कर रहे है:—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितु जगज्जगन्निवासो वसुदेव-सद्मनि

कवि ने श्रीकृष्ण को "जगन्निवास." शब्द से विभूषित किया है जो युक्तियुक्त है। श्रीकृष्ण जगत् के आधार भूत है। जगत के निवासी उन्ही पर आश्रय लिए हुए जीवित है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण जगत् को नियन्त्रण करने के लिए दुष्टो का दमन तथा सज्जनो पर अनुग्रह करने के लिए श्री सम्पन्न वसुदेव के गृह मे रह रहे है। नर रूप श्रीकृष्ण मे नियन्त्रण करने की अदम्य शक्ति है। जगत का शासन उसी व्यक्ति मे चल सकता है जो उसकी रक्षा करने अथवा पालन करने मे समर्थ हो। श्रीकृष्ण की नियन्त्रण शक्ति मे विश्वास रख कर ही तो कदाचित् नारद के द्वारा इन्द्र ने अपना सन्देश भेजा था।

श्रीकृष्ण नर है। एक क्षत्रिय राजवशी है। ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आदि का वह यथोचित आदर करते है। नारद देवमुनि का आकाश मार्ग से जैसे ही भूमि पर पदार्पण हुआ कि वह अपने ऊँचे आसन से शीघ्र ही स्वागत के लिए उठ खडे हुए। उनकी अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा की सामग्रियो से विधिवत् अर्चना की, माघ लिखते है .—

पतत्पतगप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥१,१२॥
तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिणः ।१,१४॥
न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराजनपर्वताविव।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरतनस्तावदभिन्यवीविशत् ।।१,१५॥

अर्चना के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उन्हे अपने हाथ से आसन दिया और अपने सन्मुख ही आदर पूर्वक बैठाया। गुरुजनो एव ऋषि, मुनियो मे अटूट श्रद्धा रखने वाले श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर भाषी है। माघ का यह वर्णन उनकी मधुरभाषिता का परिचय देने मे पर्याप्त है। माघ किस भाँति श्री कृष्ण के मुख से कहला रहे है —

सित सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ।। १-२५ ।।
हरत्यघ सम्प्रति हेतुरेष्यत. शुभस्य पूर्वाचरितैः कृत शुभैः
शरीरभाजां भवदीयदर्शन व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।। १-२६ ।।

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नितुयन्तु समभावि भानुना
प्रसह्य तेजोभिरसख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तम तमः ।। १-२७ ।।
कृत. प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रा-निक्षेपनिराकुलात्मना
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीना धनसम्पदामिव ।। १-२८ ।।
विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निर्बाहिताहसा ।
तथापि शुश्रूषुरह गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसिकेन तृप्यते ।। १-२६ ।।
गतस्पृहोऽप्यागमन. प्रयोजन वदेति वक्तु व्यवसीयते यया ।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ।। १-३० ।।

कितनी वाक् चातुरी एव शिष्टता श्लोक सख्या ३० मे भरी पडी है। विरक्त नारदजी के द्वारका मे आगमन का प्रयोजन पूछना धृष्टता है किन्तु उस धृष्टता को प्रोत्साहन देने वाला स्वय उन्ही का आगमन ही तो है। श्री कृष्ण की मृदु एव मिष्ट भाषिता पर एक हिन्दी कवि की यह उक्ति घटित होती है —

मीठी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरो को शीतल करे आपा शीतल होय ।।

श्री कृष्ण मे उक्त सहज गुणो के साथ-साथ नीति-निपुणता भी परमोच्च कोटि की है। वह एक ओर रोग और शत्रु दोनो को समान बता कर शत्रु के समूलनाश की बात कहते हैं तो दूसरी ओर वह परदु ख कातर भी उतनी ही ऊँची श्रेणी के है।

उतिष्ठमानस्तु परोनोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्न्तावामय· सच ।
न दूये सात्वती सूनुर्यन्मह्यमपराध्यति ।
यतु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम् ।। २-११ ।।

चाहे वह श्रोता के अनुकूल बात कहे और चाहे प्रतिकूल दोनो परिस्थितियो मे उनके कहने का ढग ऐसा है जिस पर श्रोता को आपत्ति नही हो सकती।

ममतावन्मतमिद श्रूयतामगवामपि ।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सदिग्धे कार्यवस्तुनि ।। १२ ।।

इसमे कहते है कि तत्व को जानने वाला भी यदि अकेला हो तो कर्त्तव्य के निश्चय करने मे सदिग्ध ही रहता है। उन्होने स्वय ने इस भाँति शिष्ट रूप से अपने भावो को तथा अपनी नीति को स्पष्ट किया है। वे तत्वज्ञ है इसमे तो कोई सदेह ही नही है किन्तु एकाकी व्यक्ति की परिस्थिति कैसी होती है यह उनकी बात से स्पष्ट है। शिष्टता के साथ मितभाषिता एक दूसरा गुण उनमे विद्यमान है जो महान् व्यक्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य मे यदि कोई दुर्बलता है तो वह आत्म प्रशसा की ही हो सकती है। सर्व गुण सम्पन्न होते हुए भी व्यक्ति अपनी प्रशसा को सुन कर अपने आपको भूल जाता है। कभी-कभी

तो उसको सुनकर उसमें इतना मुग्ध हो जाता है कि धर्माधर्म को नहीं देखता। आत्म प्रशंसा सुनने की भूख कभी-कभी तो इतनी तीव्र होती है कि जिस किसी ने उस समय उस क्षुधा की तृप्ति कर दी वही उसकी कृतज्ञता का आश्रय बन गया। श्री कृष्ण इस कमजोरी से दूर हैं। वे चाटुकारी की बातों से आप ही लज्जित हो जाते हैं चाहे प्रशंसा करने वाला प्रशंसा करता हुआ लज्जित न भी हो। श्री कृष्ण स्वयमेव स्तुतियों के स्वामी हैं उनके लिए कोई भी स्तुतिवचन मिथ्या हो नहीं सकता इसीलिए वे स्तुतियों से प्रसन्न नहीं होते। युधिष्ठिर उनके लिए कहते हैं जिसमें उनकी विनम्रता भी स्पष्ट है :—

लज्जते न गदितः प्रियं परोवक्तुरेव भवतित्रपाधिका
व्रीडमेति न तव प्रियं वदन् ह्लीमतात्रभवतैव भूयते ।। १४-२ ।।
तोषमेति वितथैः स्तवैः परस्ते च तस्य सुलभाः शरीरिभिः
अस्ति न स्तुतिवचोऽनृतं तव स्तोत्र योग्य न च तेन तुष्यति ।। १४-३ ।।

वे अवगुणों से रहित हैं अतः सब प्रकार के गुणों की सम्पदा इन्हीं से उत्पन्न होती है।

बह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न व्रजत्यनृतवदितां जनः
संभवन्ति यददोषदूषिते सार्व सर्वगुणसंपदस्त्वयि ।। १४ ।।

श्री कृष्ण जिसके मित्र हैं उसके वह निश्चय मित्र हैं। उसके लिए उन्हें कोई वस्तु अदेय नहीं। उनके अतिशय सामर्थ्य से ही युधिष्ठिर अपना साम्राज्य बना सका। राजसूय भी उन्हीं की सहायता से निर्विघ्न समाप्त हो सका। भीष्म के द्वारा श्री कृष्ण का जो वर्णन हुआ है वह निश्चय ही एक अति मानव का सा चित्रण है। इस प्रकार के वर्णन के लिए भीष्म का व्यक्तित्व उत्तरदायी है। भीष्म से श्री कृष्ण अवस्था में छोटे थे, केवल एक ही मार्ग उनके प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने का सम्भव था और वह यही कि वह श्री कृष्ण को एक अवतार के रूप में देखें। देखिये चौदहवें सर्ग की श्लोक संख्या ५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५ ६६-६७-६८ से ८९ तक। शिशुपाल के दूत की द्वयर्थक उक्ति में श्री कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र की झलक स्पष्ट है। माघ काव्य का सोलहवाँ सर्ग देखें :—

श्री कृष्ण तेज में अग्नि और सूर्य के तुल्य हैं। वे संयत चित्त तथा समर्थ कार्य करने वाले हैं। शत्रु द्वारा आक्रान्त जनता की वे स्वयं रक्षा करते हैं। वह बड़े निर्भीक हैं। वह विनम्र तथा उदार होते हुए भी आत्मभिमानी, तथा उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों में भी अद्भुत एवं अद्वितीय धैर्यशाली हैं।

अधिवन्हि पतंगतेजसो नियतस्वान्तसमर्थ कर्मणः
तव सर्व-विधेय वर्तिनःप्रणतिं बिभ्रति केन भूभृतः ।।१५. ५।।
जनतां भयशून्यधीः परैरभिभूतामवलम्बसे यतः
तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दधत्यगण्यताम् ।।१६. ६।।
अहितादनपत्रपस्त्रसन्नतिमात्रोज्झितभीरनानास्तिकः
विनयोपहितस्त्वया कुतः सदृशोऽन्योगुणःवानविस्मयः ।।१६. ७।।

सकलापिहितस्वपौरुषो नियतव्यापदवर्धितोदयः
रिपुरुन्नतधीरचेतसः सततव्याधिरनीतिरस्तुते ।।१६. ११।।

इन सब गुणों के अतिरिक्त वह एक अद्वितीय वीर एवं रणभूमि के कुशल योद्धा हैं। उनकी अप्रतिम वीरता के दर्शन उन्नीसवें सर्ग में होते हैं। शिशुपाल ने रणभूमि में अब श्रीकृष्ण के सैनिकों का अवरोध किया तब श्रीकृष्ण से रहा नहीं गया। वह स्वयं युद्ध क्षेत्र में पहुँच गये। इन्होंने सर्व प्रथम चढ़ाई गई विशाल प्रत्यंचा से युक्त अपने धनुष को झुकाया फिर सुन्दर गांठों वाले बाणों को चढ़ाकर उसकी प्रत्यंचा को खींचा जिससे टंकार शब्द हुआ, देखिये—

नियुज्यमानेन पुरः कर्मण्यतिगरीयसि ।
आरोप्यमाणोरुगुणं भर्त्रा कार्मुकमानमत् ।।
तत्रबाणाः सपुरुषः समधीयन्त चारवः ।
द्विषामभूत्सपरुषस्तस्याकृष्टस्य चारवः ।।१९-९२।।

वीरता का अपूर्व दृश्य श्लोक संख्या ९६ से १०९ तक दिखाई देता है।

बाण चलाने की अपूर्वलघुता एवं अचूक शरसन्धान देखने ही योग्य था। शिशुपाल क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने के लिए जैसे ही प्रस्तुत हुआ श्रीकृष्ण का वह रथ भी शिशुपाल के सम्मुख दौड़ पड़ा। दोनों का तुमुल युद्ध देखने योग्य था। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी कुहनियों को सिकोड़कर शार्ङ्ग नामक धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खेंचा उस समय उनका वक्षः स्थल ऊँचा एवं विशाल हो गया, कन्धे कुछ नीचे की ओर झुक गये, मस्तक मयूर की भाँति ऊँचा उठ गया, एवं एक मुट्ठी आगे की ओर तथा दूसरी पीछे की ओर आ गई। कभी वह गरुड़ास्त्र का प्रयोग करने लगे तो कभी वरुणास्त्र का।

प्रतिकुंचितकूर्परेण तेन श्रवणोपान्तिकनीयमानगव्यम्
ध्वनति स्म धनुर्घनान्त मत्तप्रचुर क्रौंचरवानुकारमुच्चैः ।।२०. १९।।
उरसा विततेन पातितांसः स मयूरांचितमस्तकस्तदानीम् ।
क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन, स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा ।।२०. २०।।

दोनों के तुमुल युद्ध को जिस भाँति कवि ने चित्रित किया है वह अवर्णनीय है। अब शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को अजेय मान लिया तब वह वाणी बाण फेंकने लगा।

शुद्धि गतैरपि परामृभिर्विदित्वा, बाणैरजय्यमविघट्टितमर्ममिस्तम्
मर्मातिगैरनृजुगुर्मिर्नितरामशुद्धैर्वाक्सायकैरथ तुतोद तदाविपक्षः ।।२०।७७।।

अन्त में गाली बकते हुए उस शिशुपाल के शरीर को सिर से विहीन कर दिया। उसके शरीर से निकलता हुआ दीप्तिमान तेज श्रीकृष्ण में प्रविष्ट हो गया।

महाकाव्य को आद्योपान्त पढ़ लेने पर पाठकों को श्रीकृष्ण में रामायण के राम के दर्शन होते हैं, गोपीकृष्ण के नहीं। सब कुछ सहन करते जाना और समय पर मुस्कराते-

मुस्कराते शत्रु को समाप्त कर देना, यह है इस काव्य में श्रीकृष्ण का नर रूप में वीर चरित्र यहाँ हत्या नहीं किन्तु श्रीकृष्ण ने एक दुष्ट का दमन किया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, महाभारत में यही कार्य एक जादूगरी के ढंग से कराया गया है। गाली बकते हुए शिशुपाल को मारने के लिए सुदर्शन चक्र का स्मरण किया गया और जब वह हाथ में आ गया तब फिर राजाओं के सम्मुख श्रीकृष्ण ने खुले रूप में गर्जना की कि आज सौ अपराध समाप्त हो चुके हैं अतः अब मैं इसको आपके सम्मुख ही मारूँगा। कहने में विलम्ब ही नहीं होता कि शिशुपाल का सिर सुदर्शन चक्र से पृथक् कर दिया जाता है। यह अप्राकृतिक सा लगता है। महाभारत, भागवत तथा पुराणों में श्रीकृष्ण का जो चरित्र-चित्रित हुआ है उससे कहीं अधिक उठा हुआ और स्वाभाविक चरित्र माघ ने अपने महाकाव्य में अंकित किया है।

एक बात और है। चाहे शिशुपाल वध का एक बहुत बड़ा भाग शृङ्गार की विलासिता से व्याप्त क्यों न हो, किन्तु फिर भी यहाँ श्रीकृष्ण के पूजनीय चरित्र की रक्षा माघ ने बड़ी सावधानी से की है। यदि कवि जरा भी असावधान हो जाता तो श्रीकृष्ण को विलासिता के चक्र में डाल देना बिलकुल साधारण सी बात थी। महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण के नर रूप का एक आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है। वह चित्र बहुमुखी होते हुए भी स्वाभाविकता से परिप्लुत है।

पुराणों में शिशुपाल बहुत ही क्रोधी और दुष्ट स्वभाव के राजा के रूप में अंकित है। अन्याय करने और अपशब्दों का प्रयोग करने में वह एक ही है। राजनीति से तो मानो उसको कोई वास्ता ही नहीं है। ईर्ष्याद्वेष से पूर्ण उसका जीवन है। इसके विपरीत महाकवि माघ का शिशुपाल पौराणिक शिशुपाल से कहीं ऊँची श्रेणी का है। उसमें क्रोध के साथ-साथ गम्भीरता भी है, अपशब्द भाषी वह अवश्य है पर उसके साथ-साथ वह वाक्पटु तथा वीर ईर्ष्यालु होने के साथ-साथ वह आत्माभिमानी भी है। राजनीतिज्ञ और विद्वान् भी है यद्यपि उसको खल नायक अथवा प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है फिर भी कहीं-कहीं उसके हृदय की शुद्धता के दर्शन होते हैं जहाँ पौरापिणक शिशुपाल से सहसा घृणा होती है वहाँ माघ के शिशुपाल के प्रति प्रशंसा तथा सहानुभूति का भाव भी कभी-कभी जागृत होता है। नीचे के उदाहरण से शिशुपाल की वीरता का परिचय मिलेगा।

> अभितर्जयन्निव समस्त नृपगणमसावकम्पयत्।
> लोलमुकुटमणिरश्मि शनैरशनैः प्रकम्पत जगत् त्रयं शिरः ॥१५.३॥
> ध्यनयन्सभाम थसनीरघनरवगभीरवागभीः।
> वाचमवददति रोषवशादति निष्ठुरस्फुटतराक्षरामसौ ॥१५. १३॥

शिशुपाल सजल मेघ के गर्जन के समान गम्भीर शब्द करते हुए निर्भय होकर सभा भवन को ध्वनित करते हुए अत्यन्त क्रोध के आवेश में अत्यन्त कठोर एवं स्पष्ट अक्षरों वाली बाणी में इस भांति बोलने लगे।

उन्होंने क्या कहा ?

> यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ मुरजितमपूजितं सताम्।
> प्रेम विलसति महत्तदहो दयितं जनः खलुगुणीति मन्यते ॥१५. १५॥

यह है शिशुपाल के कहने की शैली । क्रोध के साथ-साथ गम्भीरता की आभा उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है । नीचे के श्लोकों में पाठक देखेंगे कि उसकी अभिभाषण में भी वाक् पटुता एवं वीरता की आभा है, देखिये—

प्रतिपत्तुमंग घटते च न तव नृपयोग्यमर्हणम् ।
कृष्ण कलय ननुकोऽहमिति स्फुटमापदां पदमनात्मवेदिता ॥१५. २२॥
मुचुकुन्दतल्प शरणस्य मगधपतिशातितौजसः ।
सिद्धमबल सबलत्वमहो तव रोहिणीतनय साहचर्यतः ॥१५. २४।३

गांगेय भीष्म पर द्व्यर्थक भाषा में जो व्यंग वर्ता उसने की है वह अपने ढंग की है।

अवनीभृतां त्वमपहाय गणमतिजडः समुन्नतम् :
नीचि नियतमिह यच्चपलो निरतः स्फुटं भवसि निम्नगासुतः ॥१५-२१॥

इसी भाँति कृष्ण को मधुसूदन (श्लोक २३) सत्यप्रिय (श्लोक २५) चक्रधर (श्लोक २६) श्री पति (श्लोक २७) विक्रमी (श्लोक २८) गिरिधारी (श्लोक ३०) भूमिपाल (श्लोक २९) आदि शब्दों से संबोधित किया है । इन शब्दों में जो ध्वनियाँ है वे श्रीकृष्ण पर छींटा कशी का काम करती हैं ।

शिशुपाल को क्रोध आता था तब उसकी आँखों में आँसू आ जाते, शरीर पसीना-पसीना हो जाता, भृकुटियाँ अत्यन्त टेढी हो जाती और आँखें लाल हो जाती । कहा जाता है कि क्रोध में मनुष्य को अपने भले-बुरे का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। क्रोध उतर जाने पर ही मनुष्य अपने वास्तविक रूप में आता है तब वह समझ पाता है कि उसे क्या करना चाहिए था और क्या नहीं ? शिशुपाल क्रोधी था फिर भी उसने अपने आपको सर्वथा नहीं खो दिया था । उसने अपनी मौत में ही अपनी मुक्ति के दर्शन किये हैं । ऐसा लगता है कि मानो अपने आपको जीवन के बंधन से मुक्त कराने के लिए ही वह चुन-चुनकर अपशब्दों का प्रयोग करता है ।

वह परम बलशाली एवं अपूर्व धैर्यशाली व्यक्ति हैं ।
जनिताशनिशब्दशंकमुच्चैनुरास्फालितमध्वनन्नृपेण ।
चपलानिल चोद्यमान कल्पक्षयकालाग्निशिखानिभस्फुरज्ज्यम् ॥२०।४ ७॥
समकालमिवाभिलक्षणीय ग्रहसंधान विकर्षणापवर्गैः ।
अथ साभिसरं शरैस्तरस्वी स तिरस्कर्तुमुपेन्द्रमभ्यवर्षत् ॥२०।६॥

शिशुपाल अहंकारी था । श्रीकृष्ण का भरी सभा में युधिष्ठिर द्वारा किया गया सम्मान उसको रुचिकर प्रतीत न हुआ अतः श्रीकृष्ण के साथ उसका क्रोध पूर्व से तो था ही किन्तु श्रीकृष्ण को अपने सामने पूजित देखकर अहंकार के मारे इसका क्रोध और भी अधिक भड़क उठा ।

अव तत्र पांडुतनयेन सदसि विहितं मुरद्विषः ।
मानमसहत न चेदिपतिः परवृद्धिमत्सरि मनोहि मानिनाम् ॥१५. १॥

पुर एव शार्ङ्गिणी सवैरमथ पुनरमुं तदर्चया ।
मन्युरभजदवगाढतरः समदोषकाल इव देहिनं ज्वरः ॥१५. २॥

शिशुपाल श्रीकृष्ण का प्रतिनायक है । श्रीकृष्ण के चरित्र की उज्ज्वलता और उदादत्ता तब ही प्रतिभासित हो सकती थी जब उनका प्रतिनायक भी उनके समान ही विद्वान् और वीरहोता और क्रोध तथा अत्याचार में भी साथ-साथ अद्वितीय होता । माघ के शिशुपाल में श्रीकृष्ण के प्रतिनायकत्व के गुण मौजूद है ।

महाकवि माघ भक्तकवि थे । उनकी भक्ति का वर्णन अन्यत्र किया गया है । यहाँ पर पात्रों के द्वारा कवि की भक्ति मुखरित हुई है। उन पात्रों के चरित्र-चित्रण को प्रस्तुत किया जाता है । ये पात्र हैं :—

नारद, भीष्म और युधिष्ठिर ।

नारद

महाभारत में नारद को एक ऐसे महर्षि के रूप में बताया गया है जो स्थान-स्थान पर विचरण करते हुए लोक को उपदेश देते हैं और भगवान् को भक्तों की सहायता के लिए प्रेरित करते रहते हैं ।

भागवतकार ने भी नारद को तीनों श्लोकों में विचरण करने वाला बताया है ।

माघ काव्यकार के नारद सूर्य की भाँति तेज के पुंज हैं । आकाश मार्ग से उतरने के पूर्व श्री कृष्ण तथा उपस्थित भद्रगण को शंका हो जाती है कि यह प्रकाश कैसा ? अग्नि की गति तो सदा नीचे से ऊपर की ओर जाने वाली है तथा सूर्य वक्र गति वाला है फिर यह तेज पुंज क्या है जो ऊपर से नीचे की ओर आ रहा है ?

आकृति में वे गौर वर्ण हैं, कमल केसर की भाँति पिंगल जटा धारण किये हुए है, पीली मूंज की मेखला शरीर पर है, सूक्ष्म सुनहले रंग का यज्ञोपवीत है, कृष्ण मृग चर्म धारण किये हुए है, जिसके बीच-बीच में सफेद-सफेद धब्बे से होने से वह चितकबरा सा दिखलाई पड़ता है। हाथ में वीणा है और जप करने के लिए स्वच्छ स्फटिक की माला है। वह अतीन्द्रियज्ञाननिधि हैं अतः जब द्वारकापुरी की ओर प्रस्थान करते हैं तो आकाश में रहने वाले देवगण उन्हें तेजस्वी तथा ज्ञान के निधि समझकर अपनी सीमा तक पहुँचाने के लिए आते हैं । भगवान् श्री कृष्ण की उनमें प्रगाढ़ श्रद्धा है। वह आजाने के पूर्व ही उनके सम्मान में खड़े होते हैं। (शास्त्रकारों ने कहा ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यून: स्थविर आयति प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ।) पृथ्वी तल पर चरण रखते ही उनकी अर्घ्यादि से पूजा होती है । (सामने आसन दिया जाता है । श्री कृष्ण ने स्तुति में उन्हें सूर्य की भाँति तेजस्वी, अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले, श्रुतियों के अक्षय निधि बताया है । ये विशेषण उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। नारद स्वयं अपने विषय में कहते हैं। मैं संसार से विरक्त अवश्य हूँ किन्तु फिर भी हम जैसे संसार से उदासीन पुरुषों को भी आप जैसों के समीप आना ही पड़ता है (संसार में अनीति को पनपते ऐसे लोग देख नहीं सकते) यहाँ ऐसा लगता है मानो

माघ कवि नारद के रूप में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं। हे भगवान् आप तो योगियों के भी तो साक्षात्करणीय हैं (यह कह कर प्रथम तो यह प्रमाणित कर दिया कि योगी चाहे संसार से विरक्त हों किन्तु अपने परलोक की चिन्ता उनको भी तो रहती ही है),[१] आपके दर्शन से बढ़कर और अधिक क्या महान् कार्य मेरे सम्मुख हो सकता है। अब वह एक भक्त की भाँति अपने भगवान् का कीर्तन करने लगते हैं। जिस तरह एक भक्त अपने भगवान् को लोक रक्षा के लिए आह्वान करता है उसी तरह नारद श्री कृष्ण को अपने अवतार की स्मृति दिलाते हुए शिशुपाल की जन्म-जन्मान्तर की कथा कहने लगते हैं। इन्द्र के सन्देश को चतुरता से सामने रखते हैं। नारद अपने कार्य में पूर्णतः योग्य है। वाक् पटु एवं एक कुशल नीतिज्ञ हैं। सज्जनों की प्रतिष्ठा के लिए तथा लोक में सुव्यवस्था के लिए भगवान् को आमन्त्रण देते हैं तथा उन्हें दुष्टों के दलन के लिए प्रेरित करते हैं। शिशुपाल वध की सफलता नारद की इसी प्रेरणा शक्ति की सफलता है। इस महाकाव्य में नारद को एक प्रेरक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भीष्म—राजसूय यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने जब धर्म-शास्त्र का विचार करते हुए अर्घ्यदान के सम्बन्ध में पूछा तब शान्तनु के पुत्र भीष्म ने उस सभा के अनुकूल जो उत्तर दिया है उससे यह स्पष्ट है कि भीष्म न केवल अप्रतिम योद्धा ही थे वरन् शास्त्रों के भी प्रकांड पंडित थे, इतना ही नहीं एक सर्व मान्य कर्म-काण्डी भी। उनकी भगवान् श्री कृष्ण में अटूट भक्ति थी जिस प्रकार कवि ने नारद के रूप में श्री कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है, उसी प्रकार भीष्म के रूप में भी कवि ने अपने आराध्य के प्रतिश्रद्धा के भाव अर्पित किये हैं। प्रसंग है कि श्री कृष्ण को अर्घ्य क्यों देना चाहिए? भीष्म स्तुति के रूप में कह रहे हैं कि दैत्यों और दानवों को झुकाने वाले भगवान् श्री कृष्ण को तुम केवल मनुष्य न मानो क्योंकि यह तो परमात्मा के अंश हैं।[२] हे युधिष्ठिर! तुम धन्य हो! तुम्हारे सम्मुख भगवान् श्री कृष्ण स्वयं आकर उपस्थित हुए हैं। इन्हीं की विधिवत् पूजा करके तुम साधुवाद प्राप्त करो।' इस भाँति भीष्म ने एक ओर तो शास्त्रार्थ के रूप में समय के अनुसार किस भाँति कार्य करना चाहिए आदि बातों का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर भगवान् के भक्त के रूप में उन्होंने श्री कृष्ण के प्रति अविचल श्रद्धा प्रकट की है। इतना ही नहीं शिशुपाल ने भी इसी ओर संकेत किया है कि भीष्म श्री कृष्ण में स्थिर भक्ति रखते थे।[३] शिशुपाल के द्वारा की गई निन्दा को भीष्म सहन न कर सके अतः समुद्र की भाँति गम्भीर होकर कहने लगे कि जिस किसी राजा को आज इस सभा में मेरे द्वारा की गई भगवान् श्री कृष्ण की

---

१. किराता १, ३१, ४२, २, ११, २०, २१, ३०, ३१, ३७, ४६।

१. १, ३२, ३३, ३४।

१. १, ३१,

२. माघ २, २६, २८, २९, ३०, ३६, ३७, ५४, ५५, ५६, ५७, ७६, ८१, ८२, ८८, ९२, ९३, ११, ११२, ११३,

२. १४, ५९, से ८६ तक के स्तुति के श्लोक देखिए।

३. १५, २१।

पूंजा सह्य नहीं है वह धनुष चढ़ा ले। यह मेरा बांया पैर ऐसे सभी राजाओं के सिर पर रखा जा रहा है। भीष्म के ये वाक्य अभिमान या गर्वोक्ति से पूर्ण नहीं हैं किन्तु इन वाक्यों से उनकी श्री कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी उसी का परिचय मिलता है। भक्त अपने भगवान् की निन्दा नहीं सुन सकता अतः धैर्यशाली होते हुए भी यह क्रोध केवल आदर्शात्मक नहीं है, उसकी व्यावहारिक उपयोगिता भी है। भीष्म मर्यादा प्रिय महापुरुष थे। भक्त के भी श्रवण की एक मर्यादा होती है। उसके बाहर की बात वह नहीं सुन सकते थे। फिर वह वीर भी थे। अद्भुत शौर्य के धनी। वैसे महाभारत के समान यहाँ भी भीष्म पाण्डवों के कर्त्तव्या-कर्त्तव्य के विषय में परामर्श देने वाले आप्त पुरुष हैं। उनके व्यक्तित्व का पाण्डव परिवार में सर्वाधिक मान है। कवि ने उनके द्वारा जो कार्य यहाँ कराया है वह उनके परम्परागत स्वरूप के सर्वथा उचित है।

युधिष्ठिर—युधिष्ठिर का वक्षःस्थल चौड़ा नहीं था किन्तु हाथ घुटनोंतक लटकते थे।[1] उनका कद कदाचित लम्बा हो। वे बड़े विनीत, अतिथि-सेवी तथा श्रीकृष्ण में पूर्ण अनुराग रखने वाले थे: जब श्रीकृष्ण दूर से ही दिखाई दिये तब पहले से ही श्रीकृष्ण को सम्मान देने के लिए अगवानी के समय यमुना पार के स्थान पर ज्यों ही उन्होंने रथ पर से उतरना चाहा कि श्रीकृष्ण उतर पड़े हैं। श्रीकृष्ण जब इन्द्रप्रस्थ की ओर चलने लगे तब युधिष्ठिर ने अनुराग में लीन होकर श्रीकृष्ण के घोड़ों की लगाम को स्वयं ही पकड़ लिया। राजा युधिष्ठिर बड़े सत्यवादी थे। उनकी आँखों से स्नेह बरसता था तथा बोली से मिठास। वह मानो धर्म-वृक्ष थे। उनका साम्राज्य धर्म विजय का प्रतीक था। उनके अधीन बड़े-बड़े राजा थे जो न केवल उनका तथा उनके लोक विश्रुत भाइयों की वीरता से वरन् उनकी धर्म परायणता से भी वशीभूत हुए थे।[4] वह परम उदार थे। ब्राह्मणों को दान दक्षिणा उचित आदर के साथ प्रतिदिन देना उनका एक सामान्य सा नित्य कर्म था। महाकवि ने राजसूय यज्ञ के समय उनके दान की गाथा बड़े सुन्दर शब्दों में गायी है। ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के युधिष्ठिर एक नियन्ता थे। यह उनके स्नेहमय औदार्य का ही प्रभाव था कि उनके प्रति सब ही का ऐसा सहज स्नेह था कि छोटे बड़े सभी राजा जिस किसी काम में नियुक्त किये जाते थे उस काम को बड़े गौरव तथा पारस्परिक स्पर्धा के साथ करते थे।[5] वह ज्ञान के भण्डार थे। इतने समृद्धवान होते हुए भी उनका चित कभी भी राजमद अथवा धन मद से कलुषित नहीं हुआ। इतना सब कुछ होते हुए भी वह धर्मभीरु थे। श्रीकृष्ण की महिमा को जानते हुए भी उन्हें अपनी इच्छानुसार प्रथम अर्घ्य न देकर शास्त्र का विचार करने के लिए भीष्म से परामर्श किया। धर्म शास्त्र व सदाचारों का पालन उन्हें प्रिय था। परामर्श देते हुए भीष्म ने कहा कि तुम समग्र गुणों और दोषों के जानने वाले तथा कर्तव्याकर्तव्य विवेक में कुशल हो। यह तुम्हारा गुरुजनों के प्रति समादर का भाव है कि तुम हमसे परामर्श करते हो।[6] उनकी साधुता का प्रभाव यहाँ तक था कि शिशुपाल जैसे दुष्ट भी उन्हें धर्मराज के नाम से सम्बोधित करते थे। उनके विनय की पराकाष्ठा वहाँ देखने को मिलती है जब शिशुपाल क्रोध के वाक्यों को कहकर जब ज्योंही सभा मण्डप छोड़कर जाता है युधिष्ठिर उसे अनुनय के साथ

१. १३, १० २. १४, ६ ३. १४, ८ ४. १४, १३ ५. १४, ४२ ६. १४, ५४।

कहते हैं कि आप मत जाइये, कहाँ जा रहे हैं ? वह क्षमा से पवित्र चित्तवाले थे अतः घर आये शत्रु का भी अपमान वह कैसे करते चाहे वह दोषों का ही घर था। युधिष्ठिर को क्रोध आजाना चाहिए था फिर भी 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात' वाली कहांवत वहाँ चरितार्थ हो रही थी। क्रुद्ध होने की अपेक्षा वह विनय भार से दबे जा रहे थे।

माघ काव्य में युधिष्ठिर का जो चरित अंकित है उसके माध्यम से भी महाकवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अपने भक्तिभाव को व्यक्त किया है।

सात्यकि

यह शिनि के पौत्र थे। शिशुपाल के दूत ने जाकर श्रीकृष्ण के सम्मुख द्व्यर्थ बातें (प्रिय और अप्रिय) कहीं तब श्रीकृष्ण ने दूत को एक अच्छा उत्तर दिया जाय इस दृष्टि से सात्यकि की ओर संकेत किया। इससे प्रमाणित होता है कि सात्यकि जैसे को तैसा उत्तर देने में कुशल होंगे। इन्होंने दूत की ही भाँति प्रिय लगने वाली किन्तु मर्मघातिनी बातें कहीं। वह राजनीति में सिद्धहस्त थे। उनकी वक्तृता में सुभाषोक्तियों की भरमार को देखकर ज्ञात होता है कि वह एक अनुभवी, व्यवहार कुशल एवं सज्जनता तथा दुष्टता के पारखी थे।

सात्यकि की वक्तृता को पढ़ने से अनुमान होता है माघ अपने आराध्य के प्रति कहे गये दुर्वचनों को सहन नहीं कर सकते थे और ऐसे व्यक्तियों को वह जैसे को तैसा उत्तर देते थे।

नारद, भीष्म, युधिष्ठिर और सात्यकि ये सभी श्रीकृष्ण के भक्त हैं। श्रीकृष्ण ने अपनी जीवन लीलाओं में जो भी लोकहित के कार्य किये हैं उनमें इन लोगों का एक महत्व-पूर्ण योग रहा है। शिशुपाल की कथा का महाभारत के सूत्रधार श्रीकृष्ण से सीधा सम्बन्ध है। माघ कवि श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। वृद्धावस्था में यह भक्तिभाव और भी उमड़ पड़ा था। इन पात्रों के माध्यम से उन्होंने यत्र तत्र अपने भक्तिभाव का निवेदन किया है। उनके चरित्र पर नारद को प्रेरणा, भीष्म की अविचल भक्ति, युधिष्ठिर की अतिथि सेवा तथा उदारता, तथा सात्यकि के प्रत्युपन्न मतित्व का प्रभाव देखा जा सकता है।

———

शिशुपाल वध महाकाव्य के दृश्य

(भौगोलिक आधार पर)

(१)

शिशुपालवध का प्रथम दृश्य वसुदेव का श्री सम्पन्न प्रासाद है। भगवान श्रीकृष्ण जगत् का नियन्त्रण करने के लिए दुष्टों का दमन और सज्जनों की रक्षा के लिए वहीं पर निवास कर रहे हैं। एक मात्र वह ही जगत् के आधार भूत हैं। वहीं से वह नारद मुनि को आकाश मार्ग से आते हुए देखते हैं। उनके पीछे देवगण हैं जो पृथ्वी के निकट आते ही उन्हें प्रणाम करके लौट जाते हैं। नारद श्रीकृष्ण के पास पहुंचते हैं। श्रीकृष्ण उन्हें प्रणाम करके आदर पूर्वक आसन आदि देते हैं। यहीं पर उन दोनों के बीच प्रेम पूर्वक वार्तालाप होता है। इन्द्र का संदेश देकर नारद वहीं से वापस आकाश मार्ग से लौट जाते हैं।

यह है पहला दृश्य जिसमें श्रीकृष्ण को नारदमुनि द्वारा शिशुपाल के वध करने का इन्द्र संदेश द्वारिकानगरी में प्राप्त हुआ था। द्वारिकापुरी यह श्रीकृष्ण की राजधानी थी जो गुजरात के पश्चिमी भाग पर है। इसको कुशस्थली भी कहते हैं। आजकल यह सौराष्ट्र में है।

(२)

दूसरा दृश्य भी द्वारिकानगरी में ही है श्रीकृष्ण, नारद के चले जाने पर, वहाँ से उठ करसम्मति करने के लिए बलराम और उद्धव के साथ सभा भवन में जाते हैं। यह सभा भवन बहुत मूल्यवान रत्नों से जड़ित है। वहाँ पर तीन ही व्यक्ति हैं, पर उनका प्रतिबिम्ब इन रत्नों में पड़ता है, इससे ऐसा लगता है मानो बहुत से व्यक्ति वहाँ पर बैठे हैं।[1] यहीं पर वह प्रसिद्ध चर्चा होती है जिसका विषय है पहले शिशुपाल के वध के लिए प्रस्थान किया जाय अथवा इन्द्रप्रस्थ जाकर युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित हुआ जाय। प्रसंगवश राजनीति का विवाद विवेचन भी हो जाता है।

१. शिशुपाल वध में सभा के लिए कहा है—
रत्नस्तम्भेषु संक्रान्त प्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥२-४॥
अध्यासामासुरुतुंगहेमपीठानियान्यमी।
तेरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूट-शिखरोपमा ॥२-५॥

इसमें कहा गया है कि सभा भवन रत्नों से जटित था और स्तम्भों में प्रतिबिंब दिखलाई पड़ रहा था। वहाँ पर तीनों व्यक्ति ऊंचे स्वर्ण के आसनों पर विराजमान थे।

१. सभा—प्राचीन काल में सभा और समिति का नाम बार-बार आया है 'सभा व समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।' ये दोनों ही स्थान जनता के एक स्थान पर एकत्र होने के लिए बनाये जाते थे जहाँ पर मनुष्य आकर एक स्थान पर बैठते और अपनी सम्मति स्वतंत्र रूप से व्यक्त करते । सभा एक सम्मति देने वाले व्यक्तियों का कुल है जिसमें राज्य परिवार के मुख्य व्यक्ति विद्वान् ब्राह्मण पुरोहित और दूसरे प्रसिद्ध नागरिक हुआ करते थे किन्तु समिति में शासन सम्बन्धी व्यक्ति ही होते थे । सभा में स्वाभाविक रूप से सम्राट् राजा के सलाहकार वे ही होते जो उसके निकटस्थ संबंधी हों अथवा वे व्यक्ति जिनमें उस राजा का पूर्ण विश्वास हो और जिनके हाथों में वह शासन की बागडोर दे सकता हो । महाशय हिलेब्रांट का तो कहना है कि सभा का अर्थ मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान है किन्तु समिति किसी कार्यवश एकत्र हुए व्यक्तियों के समूह का ही नाम है । सभा का अर्थ है सह भान्ति अभीष्ट निश्चयार्थमेकत्र यत्र गृहे सा एवं सभा जैसे 'न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः' श्रीनारायणचन्द्र बन्द्योपाध्याय Development of Hindu Polity and Political Theories. में पृष्ठ १०० पर लिखते हैं ।

It is difficult to determine the original character of this gathering The word Sabha (cf. Ind, En. sebha n) is derived from a root closely associated with O. E. Sibbl, Ger, Sippe, Got Sibja all meaning an association of the kin, tribe, family or the clan.

Probably early Sabhas were of this type but later on, with further development the Sabha became not only an association of Kinsfolk but of men bound together either by ties of blood or of local contiguity Consequently, it came to mean any kind of gathering for religious purposes for sport or for discussion of local interest. In a state of society characterised by the free working of public opinion gatherings for various purposes were very common and their existence is proved by references to them in literature. Sabha ~~was~~ a central aristocratic gathering associated with the king.

सभा—The place of Assembly and the समिति, the Assembly it self—Sabha was the advisory body to the king—Hillebrandt. The members of the Sabha acted as assessors and it was presided over in a later age by the king himself.

समिति—Was an Assembly of the people and accord with it was vitally important to the king. It was a gathering of the whole folk of the community. It had a close Connection with the Royal person and met on coronation national calamity. It was convened to elect and accept the king or to approve of his acts. It was the Assembly of राष्ट्र इन सबसे निष्कर्ष यह निकला कि सभा चुने हुए कुछ ही व्यक्तियों की परामर्श समिति होती थी जो किसी समस्या पर गुप्त रूप से विचार करती थी ।

(३)

सभा भवन में लिए हुए निर्णय के अनुसार इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करते हुए सेना समेत श्रीकृष्ण का यह दृश्य है। उनके मस्तक पर मणियों का मुकुट है। कानों में सुवर्ण के कुण्डल हैं जिनमें मरकत मणि जड़ी हुई है। दोनों भुजाओं पर केयूर पड़े हुए हैं, वलय धारण किये हुए हैं। वक्षः स्थल पर मोतियों की माला पड़ी हुई है कौस्तुभमणि को भी धारण किये हुए हैं। कटि-सूत्र में बंधी हुई और पैरों तक नीचे कौमोदकी गदा, नन्दक नामक खड्ग, शार्ङ्ग नामक धनुष, पांचजन्य नामक शंख को लेकर उस पुष्प रथ पर विराजमान हुए हैं। रथ की ध्वजा पर गरुड है। प्रस्थान करते समय नगाड़ों का गम्भीर घोष हो रहा है श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे यादव सेना चली जा रही है। वैभवशाली सुन्दर द्वारिकापुरी बहुत पीछे रह जाती है। श्रीकृष्ण सेना के साथ क्षार समुद्र के निकट उस कच्छ भूमि के प्रदेशों में होकर जा रहे हैं जहाँ पर ताड के बन केतकी के पौधे, नारियल सुपारी एवं लवंग लताएं हैं। कच्छा का समुद्र भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में स्थित हैं। यह आज कच्छ की खाड़ी के नाम से पुकारा जाता है।

(४)

अगला दृश्य रैवतक पर्वत (१) का प्रत्यन्त भूमि का हैं। यादव सेना कच्छ-भूमि को पार करती हुई समुद्र से बहुत दूर निकल गई है और दोनों में पर्याप्त व्यवधान हो गया है। अब रैवतक गिरि दिखलाई पड़ रहा है जहाँ पर विविध प्रकार की धातुएं चमक रही है। दूर से मेघमाला स्पर्श करती हुई सी प्रतीत हो रही है। कहीं-कहीं पर किरण जाल के पड़ने से उसकी चोटी सुवर्णमयी दिखाई पड़ रही है। लताओं, वृक्षों, झरनों आदि से इतना सुन्दर प्रतीत हो रहा है कि उसको बार-बार देखने पर भी वह नवीन-सा दिखलाई पड़ रहा है। सारथि ने श्रीकृष्ण के समक्ष उसकी सुन्दरता का वर्णन किया। तब श्रीकृष्ण वहाँ मनोविनोदार्थ कुछ समय के लिए ठहरे। सेना भी उसी प्रदेश में ठहर गई। सैनिकों ने अपने-अपने शिविर सुन्दर स्थान देखकर लगा दिये। एक ओर बनिया की दुकान लग रही है तो दूसरी ओर क्षण भर में ही अपने उस नवीन निवास स्थान पर शय्या को सुसज्जित कर नूतन प्रसाधनों एवं अलंकरणों से सजी हुई वेश्यायें मार्ग की थकान से खिन्न पुरुषों की थकावट को शीतल जल एवं ताम्बूल आदि उपचारों से दूर करने लगी। हाथी, घोड़े, ऊंट, साँड भी अपनी अपनी किलोले कर रहे है। सैनिक रैवतक पर्वत पर षड्ऋतु का सा आनन्द ले रहे हैं। वे बन-विहार के पश्चात् जल-विहार का आनन्द लूटते हैं। इतने में सन्ध्याकालीन दृश्य उपस्थित हो जाता हैं। दिन भर के किलोलों में मस्त हुए यादव गण मदिरा पान कर रात्रि में अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ भोग में विभोर हैं। फिर प्रभात हो जाता है और वहाँ से इन्द्रप्रस्थ के लिए सेना चल पड़ती है।

चतुर्थ दृश्य बहुत ही लम्बा सा जान पड़ता है। इसका वर्णन कवि ने चतुर्थ सर्ग से आरम्भ करके ११वें सर्ग में जाकर समाप्त किया है।

विशेष-रैवतकगिरि—यह भारत के पश्चिमी भाग में कच्छ की खाड़ी की ओर है

आज यह गिरिनार पर्वत के नाम से जूनागढ़ सौराष्ट्र के पास स्थित है। विशेष के लिए रैव-तक पर्वत का जो इतिहास लिखा है उसको देखिए।

(५)

अगले दृश्य में मार्ग का वर्णन है। प्रात:काल होते ही सेना अपने निश्चित स्थान के लिए चल रही है। वह उज्जैन की भूमि को पार करती हुई नीमच की ओर आगे बढ़ती है। वहाँ की भूमि सुवर्णमयी धूल से विभूषित है। (खातं खुरैर्मुद्गभुजां विपप्रथे गिरेरघ **कांचनभूमिजं रजः** ॥१२-१४॥) तत्पश्चात् वह मरुभूमि (राजस्थान में प्रविष्ट हुई जहाँ पर बनास, चंबल आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ है और मार्ग बड़ा ऊबड़-खाबड़ है, कहीं पर भूमि कटी हुई है, कहीं पर पथरीली है तो कहीं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ भी हैं। देखिए श्लोक २३ और २४ बारहवे सर्ग का) टीले आते हैं तो नाल भी। एक टीले से टकराकर गाड़ी की धुरी टूट गई है उससे मदिरा का पात्र भी टूट गया (श्लोक २६) कहीं पर उतार है तो कहीं पर सम भूमि है। इस भाँति मरुभूमि को पार करके भरतपुर से मथुरा की ओर जाते हुए (देखिए श्लोक ३८) सेना ने यमुना नदी को पार किया।

इस दृश्य में कोई विशेषता नहीं है किन्तु कवि ने ऊँटों, घोड़ों, हाथियों तथा बैलों का जो यथावत् चित्रण किया है वह बहुत सुन्दर है। सेना तेजी से आगे बढ़ रही है। इसलिए इतने लम्बे मार्ग को देखते हुए ये वर्णन थोड़े हैं।

(६)

अगला दृश्य इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश का है। श्रीकृष्ण की सेना यमुना पार कर चुकी है। धर्मराज युधिष्ठिर को यह समाचार मिल गया है। वह रथों में अपने कनिष्ठ भ्राताओं के साथ श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पांडव सेना उनकी अगवानी के लिऐ आगे बढ़ गई है। नगाड़ों का गम्भीर घोष फैल रहा है। दोनों सेना मिल गई हैं। अब वे वापस इन्द्रप्रस्थ की ओर चल रही हैं। इतने में युधिष्ठिर दूर से श्रीकृष्ण को लेते हैं। वह रथ से नीचे उतरना ही चाहते हैं कि श्रीकृष्ण उनसे भी पूर्व शीघ्रता करके नीचे आ खड़े होते हैं और युधिष्ठिर को उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। युधिष्ठिर उनको अपने भुज पंजर में समेट लेते हैं। तत्प-श्चात् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के अनुजों को यथा योग्य आलिंगनादि से सम्मानित करते हैं। तत्प-श्चात् यादव रमणियाँ और पाँडव रमणियाँ एक दूसरी से मिलती हैं। अब युधिष्ठिर श्री कृष्ण को रथ पर चढ़ने के लिए कह रहे हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ रथ पर आरूढ़ हो रहे हैं। युधिष्ठिर प्रेम में विभोर होकर श्रीकृष्ण के घोड़ों की लगाम को पकड़ लेते हैं। भीम श्रीकृष्ण पर चँवर डुलाते हैं। अर्जुन श्वेत छत्र पकड़ लेते हैं। पीछे-पीछे नकुल और सहदेव चल रहे हैं। गम्भीर दुन्दुभियों के घोष के मध्य श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश करते हैं। आबा-लवृद्ध नर-नारी उन्हें देखने के लिए राजमार्ग, गली, छत, खिड़की, झरोका आदि से देखते हैं। (देखने का यह ढंग राजपूत काल का है) श्रीकृष्ण ने नगर-प्रवेश के अनन्तर असुर शिल्पी मय के द्वारा बनाई हुई सभा में जाते हैं। सभा भवन आश्चर्य चकित कर देने वाला है। श्रीकृष्ण सभा भवन के सम्मुख रथ से उतर कर अन्दर जाते हैं और एक विशाल सिंहा-सन पर युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण दोनों बैठ जाते हैं। नर्तकियाँ श्रीकृष्ण के सम्मुख नृत्य

करती हैं। यहाँ युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से कहते हैं, "मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अतः आप आज्ञा प्रदान कीजिए।" श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप सब प्रकार से योग्य हैं अतः राजसूय यज्ञ के अधिकारी भी हैं। मैं इस यज्ञ में आपके आदेशों का पालन करता रहूँगा और जो राजा भृत्य के तुल्य आपका कार्य नहीं करेगा उसके शरीर को यह सुदर्शन चक्र सिर से विहीन कर देगा। युधिष्ठिर अब यज्ञ के सभारम्भ में प्रवृत्त हो रहे हैं।

(७)

यह यज्ञ का दृश्य है। युधिष्ठर ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। यह दृश्य चल-चित्र सा दिखाई देता है। कितने व्यापार एक साथ हो रहे हैं। यज्ञकर्ता पुरोहित गण आहूत देवताओं को लक्ष्य कर मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे हैं। उस यज्ञ में सामवेद के पूर्ण ज्ञाता उद्गातागण करविन्यास द्वारा स्वरों को व्यंजित करते हुए अस्खलित स्वर से सामवेद का गान कर रहे हैं। इसी भाँति होता और अध्वर्यु ऋग्वेद का पाठ कर रहे हैं। कुशों की सुन्दर मेखला धारण किये हुए यजमान की पत्नी द्रौपदी हवनीय पदार्थों का निरीक्षण कर रही है। पुरोहित शास्त्रीय विधानों से भली भाँति सुसंस्कृत द्रव्यों का अग्नि में होम कर रहे हैं। यज्ञाग्नि मन्त्र पूर्वक आहुति किए गए घृत का बार-बार आस्वादन कर रही हैं। यज्ञ का धूम आकाश मण्डल में अच्छादित है। राजसूय यज्ञ की समस्त क्रियाएँ सम्पन्न हो चुकी हैं। कोई भी दोष नहीं रहा हैं। सामग्रियाँ भी पूरी पड़ चुकी हैं। अब राजा युधिष्ठिर ने दक्षिणा के उपयुक्त पात्रों को दक्षिणा भी प्रदान कर दी है। राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर धर्मशास्त्र का विचार करते हुए युधिष्ठिर जब अर्घ्यदान के विषय में भीष्म से पूछते हैं तब भीष्म सभा के अनुकूल ही उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण को ही सर्वथा अर्घ्य के योग्य बताते हैं। श्रीकृष्ण की युधिष्ठिर विधिवत् पूजा कर लेते हैं तब चेदिराज शिशुपाल सभा के मध्य क्रोध कर बैठता है।

इस दृश्य में महाकवि ने एक ओर अपने वैयाकरण में पण्डित होने का आभास स्थान-स्थान पर दिया है तो दूसरी ओर यज्ञ का चित्र उपस्थित करके यह भी प्रदर्शित कर दिया है कि वह यज्ञ सम्बन्धी बातों को खूब जानते थे।

(८)

इस दृश्य में शिशुपाल श्रीकृष्ण की पूजा को सहन नहीं कर पा रहा है। उसने अपने सिर को धीरे से क्रोध में हिलाया। क्रोध के आँसू आँखों में हैं तो देह भाग क्रोध की गर्मी से पसीना-पसीना हो रहा है। उसकी आँखें क्रोध से अत्यन्त लाल हैं। उसने क्रोध के जाश में अपनी जंघा पर ताल ठोंक दी है। क्रोध में आग बबूला होकर अपने विकारों को छिपाने में वह असमर्थ है। अब वह सभा के मध्य में गम्भीर शब्द करते हुए स्पष्ट शब्दों में श्रीकृष्ण की पूजा का विरोध करता है। श्रीकृष्ण शिशुपाल की कठोर बातों को सुनकर भी चुप रहते हैं। श्रीकृष्ण पक्ष के लोग मौन धारण किये हुए बैठे हैं। भीष्म को क्रोध आ जाता है। जिसे श्रीकृष्ण की पूजा सह्य नहीं है उसके सिर पर बांया पैर रखने को वह प्रस्तुत हैं। शिशुपाल के पक्ष के लोग भी क्रोध पूर्ण आवेश में है। इस पर शिशुपाल के पक्ष वाले राजे क्रोधान्वित

हो रहे हैं। बाणासुर द्रुमराज, उत्तमौजा, रुक्मी, सुबल आदि के क्रोध करने पर भी श्रीकृष्ण बोधिसत्व की भाँति निश्चल रहते हैं। वे राजा क्रोध में उठकर वहाँ से चलने लगे और शिशुपाल भी उनको भड़काने वाले वाक्य कहता हुआ क्रोध में भरा हुआ तीव्रगामी घोड़े पर राज मार्ग को लांघता हुआ चला जाता है। लोग सोचने लगते हैं कि अब क्या होने वाला है।

शिशुपाल अपने शिविर में जाकर अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयारी का आदेश देता है। रणभेरी बज उठती है। शिशुपाल पक्षीय राजा कवच आदि धारण कर लेते हैं।

(८)

इस दृश्य में शिशुपाल श्रीकृष्ण के पास अपने दूत को भेजता है। दूत प्रत्येक बात को ऐसी भाषा में बोल रहा है जिसके दो अर्थ हैं एक प्रिय और दूसरा अप्रिय। देखिये:—

अभिधाय तदा तदप्रियं शिशुपालोऽनुशयं परं गतः।
भवतोऽभिमनाः समीहते सरुषः कर्तुमुपेत्य माननाम् ॥१६-२॥

शिशुपाल के दूत की उन कठोर और ऊपर से प्रिय लगने वाली उन बातों को सुनकर श्रीकृष्ण सात्यकि को संकेत कर रहे हैं कि उक्त बातों का मुँह तोड़ उत्तर दिया जाय।

सात्यकि वैसा ही करता है।

मधुरं बहिरन्तरप्रियं कृतिनाऽवाचि वचस्तथा त्वया।
सकलार्थतया विभाव्यते प्रियमन्तर्बहिरप्रियं यथा ॥१६-१७॥
अतिकोमलमेकतोऽन्यतः सरसाम्भोरुहवृन्तकर्कशम्।
वहति स्फुटमेकमेव ते वचनं शाकपलाशदेश्यताम् ॥१६-१८॥
यदपूरिपुरा महीपतिर्न मुखेन स्वयमागसां शतम्।
अथ संप्रति पर्यपूपुरत्तदसौ दूतमुखेन शार्ङ्गिणः ॥१६-३६॥

सात्यकि की मर्म भरी बातों को सुन कर शिशुपाल का दूत फिर अपना भय त्याग कर कहने लगता है:—

उभयं युगपन्मयोदितं त्वरया सान्त्वमथेतरच्च ते।
प्रविभज्य पृथङ्मनीषया स्वगुणं यत्किल तत्करिष्यसि ॥१६-४२॥
प्रहित प्रधनाय माधवानहमाकारयितुं महीभृता।
न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव ॥१६-५२॥
तदयं समुपैति भूपतिः पयसां पूर इवाऽनिवारितः।
अविलम्बितमेधि वेतस्तरुवन्माधव मा स्म भज्यथाः ॥१६-५३॥

दूत की बातों को सुनकर सभा के व्यक्ति क्षुब्ध हो उठते हैं। क्रोध का विकार उनके अंग प्रत्यंग पर छा जाता है। श्रीकृष्ण पक्षीय राजा भी उन शिशुपाल पक्षीय राजाओं की भाँति क्रोध के आवेश में आ जाते हैं किन्तु श्रीकृष्ण के मुख पर कोई विकार नहीं है। सभा

में एक कोलाहल सा हो जाता है। अवसर पाकर शिशुपाल का दूत चुपके से वहाँ से खिसक जाता है। श्रीकृष्ण की सेना युद्ध की तैयारी करती है।

(९)

रणभेरी बज रही है। आगे-आगे हाथी जा रहे हैं, उनके पीछे घोड़े विविध प्रकार के पद-न्यास करते हुए चल रहे हैं। कुछ ही दूरी पर शत्रु पक्षीय सेना की उड़ती हुई रज दिखलाई पड़ रही है। अब तो रण की ध्वनियों से वीरों को जोश उत्पन्न होने लगा है। क्षणभर में युद्ध स्थल उन वीरों से आकान्त हो गया है। श्रीकृष्ण के सैनिक ललकार कर शिशुपाल पक्ष के सैनिकों को बुलाते हैं। वे भी अपने शस्त्रों के साथ आगे बढ़ते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। श्रीकृष्ण के सैनिक उन पर आक्रमण करते हैं। पैदल-पैदल से, घोड़े-घोड़ों से, हाथी-हाथी से, रथी-रथी से भिड़ रहे हैं। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध हो रहा है। सैनिकों के परस्पर युद्ध के साथ-साथ राजाओं का परस्पर युद्ध छिड़ गया है। वेणुदारी राजा बलराम जी के साथ धनुर्युद्ध कर रहा है। श्रीकृष्ण पक्षीय उल्मुख राजा द्रुम राजा के साथ अपने हाथ का कौशल दिखा रहा है। प्रद्युम्न ने उत्तमोजा राजा को जब परास्त किया तब शिशुपाल चतुरंगिणी सेना लेकर प्रद्युम्न की ओर दौड़ने लगा है। शिशुपाल की सेना सर्वतोभद्र चक्र, गौमूत्रिका आदि चक्रों को बांध कर लड़ रही है। अभिमानी शिशुपाल स्वयं युद्ध भूमि में पहुँच कर शत्रु सैनिकों का अवरोध करके उन्हें पराजित करने लगा है। यह देखकर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध के लिए उपस्थित हुए हैं। श्रीकृष्ण इतनी शीघ्रता से शर सन्धान कर रहे हैं कि उनका केवल धनुष ही मण्डलीकृत अवस्था में दिखाई पड़ रहा है। इससे शत्रु सेना भयभीत होकर एक स्थान पर मंडलीकृत सी होने लगी है।

(१०)

यह अन्तिम दृश्य है श्रीकृष्ण और शिशुपाल दोनों में परस्पर युद्ध छिड़ चुका है। दोनों नायक और प्रतिनायक आमने सामने आकर डट गए हैं। देखिये :—

मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैर्भिदुरभ्रूयुगभीषणं दधानः।
समिताविति विक्रमानमृष्यन्गतभीराह्वत चेदिराण्मुरारिम् ॥२०-१॥

शिशुपाल अपने रथ को श्रीकृष्ण की ओर दौड़ाता है। श्रीकृष्ण भी अपने रथ को शिशुपाल के सम्मुख दौड़ाते हैं। शिशुपाल एक साथ ही अनुचरों सहित श्रीकृष्ण को अपने बाणों से अभिभूत करने के लिए धनुष पर बाणों को रख कर उनकी वृष्टि कर रहे हैं। शिशुपाल के बाणों ने सूर्य मण्डल को भी आच्छादित कर लिया है फिर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल द्वारा फेंके गये बाणों को अपने अनेक बाणों से गिरा कर काट दिया है। योद्धा के रूप में श्रीकृष्ण का यह स्वरूप दर्शनीय है :—

प्रतिकुंचितकूर्परेण तेन श्रवणोपान्तिकनीयमानगव्यम्।
ध्वनति स्मधनुधनान्तमत्तप्रचुर क्रौंचरवानुकारमुच्चैः ॥२०-१९॥
उरसा विततेन पातितांसः स मपूरांचितमस्तकस्तदानीम्।
क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा ॥२०-२०॥

श्रीकृष्ण श्रौर शिशुपाल के बाण परस्पर टकराकर अग्नि उत्पन्न कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ने अब ऐसे बाण फेंके हैं कि सूर्य मण्डल आच्छादित हो गया है। शिशुपाल की सेना व्याकुल हो रही है। अब शिशुपाल श्रीकृष्ण को माया द्वारा जीतने के लिए प्रस्वापन अस्त्र का प्रयोग कर रहा है। श्रीकृष्ण ने कोस्तुभमणि के प्रयोग से अंधकार को दूर कर दिया है।

शिशुपाल ने अब भुजगास्त्र छोड़ा है, श्रीकृष्ण ने गरुड़ास्त्र द्वारा उसको भी विफल कर दिया है। फिर आग्नेयास्त्र के फेंक देने पर श्रीकृष्ण वरुणास्त्र का प्रयोग करते हैं। अब शिशुपाल ने अपने को असमर्थ समझ लिया है। श्रीकृष्ण को अजेय समझ कर अब वह मर्म को विदीर्ण करने वाले कुटिल तथा अश्लील वचन रूपी बाणों से श्रीकृष्ण को पीड़ा पहुँचा रहा है। श्रीकृष्ण ने गाली बकते हुए शिशुपाल के शिर को अपने सुदर्शन चक्र से उसी समय पृथक् कर दिया है। सिर के पृथक होते ही शिशुपाल के शरीर से निकला हुआ तेज श्रीकृष्ण के देह में प्रविष्ट हो गया है। शिशुपाल का वध मानो आत्मा के परमात्मा में मिल जाने का एक प्रकार है।

इन दसों दृश्य से अनुमान किया जा सकता है कि कथनाक कितना छोटा है। कवि ने काव्य में विभिन्न दृश्यों को प्रस्तुत करके कथानक को मन्थर गति से बढ़ाया है। वैसे कथानक चाहे बहुत छोटा है, पर दृश्य योजना बड़ी सूक्ष्म एवं विस्तीर्ण है। किसी भी दृश्य को ले लिया जाय उसको पढ़ने से मानस-चक्षु के सम्मुख चल-चित्र सा नाचने लगता है। कहीं तो प्रकृति असंख्य रूपों में सहृदयों के मनों को मुग्ध करती है, तो कहीं पशु-जगत् मानवोपयोगी रूप में अपने विविध व्यापारों में लीन हैं। एक ओर तो मानवशृङ्गार मयी प्रकृति अपने विवध विलासों में प्रकट होती है और दूसरी ओर दुर्दान्त मानव की उत्त्रास वृत्ति मानवीय हितों पर वज्रपात करके मानो लोक हितैषी मानव के शौर्य को ललकारती है और उसके आविर्भूत होने पर अपने आपको उसमें समाप्त करके ही चैन पाती है। इतना ही नहीं इस सब के साथ-साथ कवि का भक्त हृदय भी अपने आराध्य के प्रति इन विविध चित्रों को अपनी भावमयी उपासना के रूप में अर्पित करता है। इस तरह क्या प्रकृति का वर्णन क्या और शृङ्गार मय विलासों और वीरतापूर्ण सांग्रामिक व्यापारों के चित्रण, और क्या देव विषया रति को अभिव्यत करने वाले भक्त के समर्पणात्मक भावों के निवेदन सभी सहस्रों रूपों में सहस्रों सचेतन अभिव्यक्तियों के माध्यम के सामने आते हैं। इन चित्र के समवाय से जहाँ महाकाव्य को एक उत्तम स्वरूप मिलता है, वहाँ ये चित्र अपने अलग-अलग रूपों में भी एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य रखते हैं। उनकी भी मानों एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति है।

महाकवि का काव्य सौष्ठव

महाकाव्य सम्बन्धी प्राय: सभी मुख्य-मुख्य विषयों पर एक विहंगम दृष्टि निक्षेप कर लेने के पश्चात् अब हम इस स्थिति तक आ पहुँचे हैं कि पाठकों के समक्ष इस महाकाव्य की काव्यगत विशेषताओं को प्रस्तुत करें। माघ मध्य युग के कवि हैं, अत: सर्व प्रथम मध्ययुग की काव्य सम्बन्धी मान्यताओं को प्रस्तुत कर देना समीचीन होगा।

विद्वानों का मत है कि आरम्भिक साहित्य का स्वरूप सरलता एवं स्वाभाविकता को लिये हुए प्रसाद गुण से पूर्ण था। पर जैसे समय बढ़ता गया काव्य के साथ-साथ काव्य सिद्धान्तों की चर्चा बढ़ने लगी। इस चर्चा का दुष्टप्रभाव यह पड़ा कि कविता की सरलता, स्वाभाविकता तथा कविता की प्रसादमयता कम होने लगी। एक समय तो ऐसा भी आया जब शब्दों की विचित्र योजना का ही एक बड़ा गुण समझा जाने लगा। ऐसे बहुत से कवि हुए जिन्होंने कविता में नवीन भावों के लाने की कोई चिन्ता न करके शब्द चमत्कार पर ही अपनी समस्त शक्ति का व्यय कर डाला। अर्थ प्रसाद के स्थान पर अर्थ क्लिष्टता कविता पर छा गयी। स्वाभाविकता का स्थान कृत्रिमता ने ले लिया। कवित्व के साथ बहु विषयक पांडित्य का जब से योग हो गया तब से ही कविता की प्रेरणा शक्ति का ह्रास होने लगा। एक समय आया जब संस्कृत कविता का स्थान अपनी स्वाभाविक प्रेरणाशक्ति के कारण लोक भाषाओं ने ले लिया। मध्ययुग के प्राय: समस्त संस्कृत काव्य इसी शैली में लिखे गये हैं। कालिदास की रचनाएँ संस्कृत काव्य के आरम्भिक युग की काव्य चेतना की प्रतिनिधि हैं। उनकी कविता का वह सहज लालित्य, भावों की वह मनोहारी छटा, भाषा का वह मधुर-स्रोत, शैली का वह सुकुमार संगठन, अलंकारों का वह मनोरम सौन्दर्य तथा रसों का वह दिव्य परिपाक परयुगीन कवियों में कहीं-कहीं ही दिखायी देता है। मध्ययुग के कवियों को प्रायः अलंकार कवि कहा जाता है। भारवि और माघ दोनों को अलंकार शैली के प्रवर्तक माना जाता है। इनकी कविता में मध्ययुग की कविता के सभी लक्षण मिलते हैं। जिस प्रकार प्रथम युग के प्रतिनिधि कवि कालिदास हैं उसी भाँति भारवि और उनसे भी कहीं अधिक माघ मध्ययुग के प्रतिनिधि कवि है। इनकी रचना में अर्थ और भाव की ओर जितना ध्यान दिया गया है, उतना ही भाषा की ओर भी ध्यान दिया गया है। कहीं-कहीं तो अर्थ की ओर कम ध्यान रखकर भाषा (शब्द वैचित्र्य अथवा शब्दालंकार) पर विशेष ध्यान दिया गया है।

उदाहरण के लिए:—

> इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।
> स्फुरति चानुवनं चमरीचय कनकरत्नभुवां च मरीचयः ॥४॥६०॥

कितना सुन्दर शब्द बन्ध है ? शब्दालंकारों की प्रमुखता है, किन्तु यह निरर्थक तो नहीं है । रैवतक पर्वत पर हाथी शब्द करते हैं, चमरी गायें इतस्तत: विचरण करती हैं और वहाँ सोने और रत्नों के स्थान हैं इन बातों को चमत्कृत रूप में कवि ही इस तरह रख सकता है । यह वह युग था जिसमें महाकाव्यों का लिखना ही कवित्व का प्रमाण माना जाने लगा था । कोई भी कवि महाकाव्य लिखे बिना अपने आपको सफल नहीं समझता था । इसी के फलस्वरूप प्रभात, संध्या, नदी, पर्वत, नखशिख, जलक्रीड़ा आदि के वर्णन, अलंकारों के प्रयोग तथा छन्दों के द्रुत परिवर्तन को निर्दिष्ट सर्ग संख्या में प्रस्तुत करके कवि अपनी इतिकर्तव्यता समझ बैठता था । ऐसी कविताओं में अनुभूति कम तथा विद्वत्ता अथवा कला अधिक होती थी । कभी-कभी तो वह निरा बुद्धि का व्यायाम ही बन जाता था । यह परम्परा अन्त में चित्र-बन्धुओं की जादूगरी तक पहुँच गई । ये संस्कृत कवि अपने आश्रयदाताओं को अपनी जादूगरी से प्रसन्न करते थे । रीति कालीन हिन्दि कवियों पर माघ का सीधा प्रभाव है ।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि महाकवि माघ जिस शैली के प्रवर्तक थे उसमें प्राय: रस, भाव, अलंकार, बहुज्ञता आदि सभी बातें विद्यमान थीं । हाँ, यह बात अवश्य थी कि उनकी शैली अश्वघोष और कालिदास की सहज एवं सरल शैली जैसी नहीं थी किन्तु फिर भी माघ कवि की कविता में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था । बुद्धि व्यायाम, अनुपयुक्त वर्णन, अलंकारों का भद्दा प्रदर्शन, छन्दों का द्रुत परिवर्तन आदि बातें महाकवि माघ के परवर्ती कवियों में उसी भाँति आ गई जिस भाँति महात्मा बुद्ध के अनुकरण करने वालों में कई प्रकार के तांत्रिक प्रपंच । माघ कवि के अनुकरण करने वाले हर विजय धर्म शर्माभ्युदय श्रीकण्ठ चरित्र में भी यही सारी बातें मौजूद हैं । जब हम महाकवि के काव्य सौष्ठव पर दृष्टिनिक्षेप करते हैं तो आश्चर्य होता है कि शिशुपालवध की छोटी सी कथा को जिसकी गणना पुराणों में अति सामान्य कथाओं में दी जाती है, लेकर कवि ने १६५० श्लोकों का एक ऐसा महाकाव्य रच डाला जिसके दृश्य एक से एक अनूठे हैं, दृश्यों की इस प्रकार की योजना से घटनाओं की कमी इतनी नहीं खलती । कई जगह प्रसंगों की उद्भावना बड़ी सुन्दर हुई है । इसी तरह कई स्थानों पर सुन्दर भाव भी प्रस्तुत किये गये हैं । पाठक मानो इन दृश्यों, प्रसंगों अथवा भावों में अपने आपको भूल जाता है । कथा थोड़ी आगे बढ़ती है कि अलंकारों के लिए फिर एक आधार भूमि सी मिल जाती है । अप्रस्तुत विधान के लिए कवियों को आश्रय चाहिए वह कथा को बहुत मन्थर गति से आगे बढ़ने पर उसे मिलता जाता है । इस कवि की शैली में एक विशेषता और मिलेगी वह यह है कि जैसे राजस्थान की राजधानी जयपुर की गलियाँ अन्त में आकर राजमार्ग पर ही मिलती हैं चाहे किधर ही आइये अपरिचित व्यक्ति मार्ग न भूलेगा उसी तरह इस महाकाव्य की राजधानी में विभिन्न भावों की समलंकृत मार्ग रूपी वीथियाँ काव्य के नायक श्रीकृष्ण रूपी प्रधान राजमार्ग पर ही आकर समाप्त होंगी, प्रत्येक सर्ग का अवसान 'श्री' शब्दांकित श्लोक पर है ।

यह कहने की सम्भवत: आवश्यकता नहीं कि मध्ययुग के काव्य की समस्त विशेषताएँ इस महाकाव्य में विद्यमान है । वर्णन चातुर्य, भाव गाम्भीर्य, कोमलपदन्यास, क्लिष्ट

पदोपन्यास तथा अद्वितीय शब्दबन्ध आदि बातें केवल इसी महाकाव्य में नहीं हैं। उस समय के कवियों को अपनी काव्य-रचनाओं में संस्कृत भाषा की बारीकियों को दिखाने की बड़ी उत्सुकता रहती थी। इसी कारण ये उनकी कविता में आलंकारिकता स्वयं आ जाती थी। किसी भी भाषा की विशेषताएँ अधिकांशतः किसी सूक्ष्म भाव या नवीन दृश्य के वर्णन से भलीभाँति प्रकट होती है। इसीलिए कथा की ओट में वे प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन लिखते हैं। माघ काव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है, प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र वहाँ हैं। यही अवस्था भाव-गाम्भीर्य की भी है। हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरंग भावों को उनके सच्चे रंग रूप में दिखाना प्रत्येक कवि के लिए सम्भव नहीं। उसके लिए पहले तो कवि का भाषा पर अधिकार चाहिए फिर समय पर उक्त भावों को उपयुक्त शब्दों में प्रकाशित करने की स्फूर्ति चाहिए। भाषा पर जिस कवि का अधिकार होता है वह कभी-कभी अपने शब्दों को बहुत घुमाव या हेर फेर से रखता है। फिर भी वर्णन सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आती। माघ काव्य में किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर भाव-गाम्भीर्य देखकर पाठक आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कठिन पदोपन्यास तथा शब्दबंध की सुश्लिष्टता जैसी माघ काव्य में देखने को मिलेगी वैसी अन्यत्र बहुत कम काव्यों में मिलेगी।

महाकाव्य का कला पक्ष :—प्रत्येक मनुष्य के पास विचार और भाव होते हैं। वह एक सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिकता का निर्वाह विचारों अथवा भावों के आदान प्रदान से ही होता है। इसलिए वह मौखिक अथवा लिखित भाषा के द्वारा उनको एक दूसरे के पास पहुँचाता रहता है। ऐसा करते समय उसकी यह हार्दिक अभिलाषा बनी रहती है कि उसकी चिन्तना और अनुभूति, उसके विचार और भाव इस तरह व्यक्त हों कि पाठक या श्रोता पर उनका अधिक से अधिक प्रभाव पड़े। इस विचार या भाव भाषा के परिधान में ही पुरस्कृत होते हैं, अतः श्रोता पहले शब्द परिधान की ओर ही आकृष्ट होता है। सुन्दर भाषा की योजना एक बहुत बड़ी कला है। काव्य के भाषा-पक्ष को साहित्यकारों ने कलापक्ष यह नाम दिया है। कवि पन्त कहते हैं, 'माया संसार का नाद-वैचित्र्य है। ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृदयतन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।' भाषा की इस विशेषता के लिए शब्दचयन की आवश्यकता पड़ती है। महाकवि माघ की भाषा के स्वरूप और सौष्ठव को समझने के लिए हमको उसके शब्दकोष, व्याकरण पदयोजना, शब्द शक्ति, प्रयोगकौशल तथा अलंकरण आदि सभी को सूक्ष्म रूप से देखना होगा तभी हम उस महाकवि के काव्य सौष्ठव को समझ सकेंगे। यद्यपि कविता की आत्मा रस है प्रथम पक्ष भी रस पक्ष ही है। फिर भी हम कला पक्ष को प्रथम लेते हैं। इसका कारण यह है कि कवि के लिए प्रेरणा के रूप में रस पक्ष प्राथमिकता को पाता है और कला पक्ष उसके बाद आता है। अर्थात् पहले भावोदय होता है, फिर भाषा के द्वारा अभिव्यक्त होता है, पर पाठक या आलोचक के लिए पहले कवि का कला पक्ष अथवा भाषा पक्ष ही सामने आता है और फिर उसके द्वारा वह भाव पक्ष तक पहुँच पाता है। महाकवि माघ का शब्द कोष अत्यन्त भरा पूरा था। वह संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। अमर कोष, विश्वकोष तथा और भी न मालूम कितने कोष उनके मुखाग्र थे। जब किसी भाव को व्यक्त करने की प्रेरणा

मिलती तो उन्हें उसके लिए उपयुक्त शब्दों को ढूंढ़ने में कोई कठिनता नहीं होती । फिर वह व्याकरण में निष्णात थे । नवीन काव्यों की रचना करके वह अपना काम निकाल लेते थे । उदाहरणार्थ:—

तदयुक्तमंग तव विश्वसृजा न वृतं यदीक्षणसहस्रतयम् ।
प्रकटीकृवा जगति येन खलु स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रमिदा ।।६।।८०।।

पति के लिये "गोत्रभिद्" की कल्पना माघ जैसा कवि ही कर सकता है । पति गोत्र-भेदी होता ही है । फिर यह शब्द इन्द्रत्व में घटित होकर कितना सार्थक बन गया है ?

कहीं-कहीं पर तो शब्दों का प्रयोग इतना उत्तम बन पड़ा है कि भावों का प्रकटीकरण बिना किसी प्रयास के स्वत: ही हो जाता है । ऐसे शब्द एक नहीं अनेक हैं, उदाहरण के लिए :—

निदाघधामानमिवाधिदो धितिं
मुदाविकासं मुनिमभ्युपेयुषी ।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी
स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ।।

अमर कोष के पुण्डरीकाक्ष शब्द का इस श्लोक में आकर कितना सार्थक प्रयोग हुआ है । अमरसिंह ने अमरकोष में विष्णु के नामों को गिनाते समय 'पुण्डरीकाक्षः गोविन्दो गुरुडध्वजः' कहा है । माघ कवि ने शब्द को किस प्रकार सार्थक बना दिया है ? व्याकरण शास्त्र में तो वह निष्णात हैं । वह स्वयं भी अपने आपको महावैयाकरण लिखते हैं । जनता में भी उनकी प्रसिद्धि कवि रूप में न होकर पण्डित रूप में अधिक है । उनके एकाक्षरी, द्व्यक्षरी तथा चित्रबन्ध के श्लोक जो उन्नीसवें सर्ग में हैं शब्दों के प्रयोग की निपुणता से भरे हैं, किन्तु नवीन, नूतन और श्रुतिमधुर शब्दावलि का प्रयोग उसकी अपनी विशेषता है । भट्टी की भाँति व्याकरण के सूत्रों का उदाहरण उन्होंने नहीं दिया, न श्रीहर्ष की भाँति जटिल शब्दों को ढूंढ-ढूंढ कर पदों को ही सजाने में वह लगे रहे । माघ ने भाषा की श्रीवृद्धि करने ही के लिये उसमें चमत्कार प्रदर्शन के हेतु ही जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है उतना किसी अन्य कवि से अकेले नहीं बन पड़ा है । यही कारण है कि संस्कृत के आलोचकों ने 'नव सर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते' यह कहा । नो सर्गों के समाप्त हो जाने पर कोई ऐसा शब्द नहीं रह जाता है जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में कहीं अन्यत्र हुआ हो ।

पदयोजना शब्द-शक्तियों के सुन्दर साहचर्य को पाकर ही भाव प्रकाशन में सफलता प्राप्त करती है । अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना ही के द्वारा तो रचना सौन्दर्य के दर्शन होते हैं । महाकवि माघ की रचनाओं में इन शक्तियों का प्रभाव पूर्ण रूपेण है । लक्षणा के ही आश्रित भाषा की एक अन्य प्रौढ़ शक्ति है प्रतीकात्मकता । अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने में समर्थ कवि ही इसका प्रयोग करते हैं । आंग्ल भाषा के महान् कवि कीट्स ने पतझड़ का जो इतना सुन्दर वर्णन किया है उसकी सुन्दरता का रहस्य व वर्णन ही प्रतीकात्मकता में है । माघ ने कन्या की विदाई का करुण दृश्य प्रतीकात्मकता शब्दों में कैसा उतारा है :—

अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्त्रिणा विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ।।४।४७।।

इस भाँति के प्रतीक चित्र चतुर्थ सर्ग मे अनेको देखने को मिलेगे । लक्षणा से भाषा में वैदग्ध्य तथा समृद्धि आती है और व्यंजना से वक्रता और तीक्ष्णता आती है। शब्द लक्षणा शक्ति का प्रभाव नीचे लिखे श्लोक मे द्रष्टव्य है :—

सरजसमकरन्दनिर्भरासु प्रसवविभूतिषु भूरुहां विरक्तः ।
ध्रुवममृतपनामवांछयासावधरममुं मधुपस्तवाजिहीते ।।७।४२।।

इस श्लोक मे शब्दशक्ति मूल ध्वनि के अनुरोध से दो अर्थ लिये गये है। वे ये हैं।

मकरन्द और मधु से व्याप्त वृक्षो और लताओ की पुष्पसमृद्धि से विरक्त होकर यह मधुप निश्चय ही "अमृतप" (अर्थात् तुम्हारे अधर के अमृत का पान करने वाला) नाम प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे होठो पर आ रहा है। यह मधुप पार्थिव शरीरधारियो के रजो-वीर्य सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाली सतान परम्परा से विरक्त होकर अमृतप अर्थात् देवलोक मे पहुँच कर अमृतपान करने वाला बनने की इच्छा से शाश्वत एव पृथ्वी से सम्बन्ध न रखने वाले इस परलोक का मार्ग ढूंढ रहा है।

नीचे लिखे श्लोक मे कोई खण्डिता नायिका अपने अपराधी नायक को फटकार देती हुई अपने भावों को प्रकट कर रही है। यहाँ व्यजना की शक्ति को देखिये —

न खलु वयममुष्य दानयोग्याः पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् ।
व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै भवतु यतः सदृशोश्चिराया योगः ।।७।५३।।
सब किलव किमर्हितैर्वृथा नः क्षितिरुहपल्लवपुष्पकर्णपूरैः ।
ननु जनविदितैर्भवद्व्यलीकैश्चिरपरिपूरितमेव कर्णयुग्मम् ।।७।५४।।
मुहुरुपहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।
वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्याः शठ कलिरेषमहांस्त्वयाद्य दत्तः ।।७।५५।।

सुभाषोक्तियां अथवा सूक्तियाँ :—

माघ कवि ने स्थान-स्थान पर सूक्तियो तथा सुभाषोक्तियो का प्रयोग कर भाषा को सुन्दर बना दिया है। माघ की सूक्तियाँ और मुहावरे वाक्य का सहज अग बनकर प्रयुक्त हुए हैं। पाठक इन सूक्तियों अथवा सुभाषोक्तियो को परिशिष्ट मे देखे । यहाँ पर हम नमूने के रूप में कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

उन्नतानामनुगमने खलु सम्पदोऽग्रतः स्थाः ।।७-२७।।
किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ।।७-५२।।
न परिचयो मलिनात्मनांप्रधानम् ।।७-६१।।
नौवाह्नो विरमति कौतुकम् प्रियेभ्यः ।।८-६९।।

भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः ॥१०-५॥
न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हतसंवृतिचेत. ॥१०-३५॥
शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति ॥५-४७॥
मैवात्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः ॥५-४४॥
नान्यभ्स्य गन्धमपिमानभृतः सहन्ते ॥५-४२॥
आक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य ॥५-४१॥
सघर्षिणा सह गुणाभ्यधिकैर्दु रासम् ॥५-१६॥
सर्वःप्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः ॥५-६॥
परवृद्धिमत्सरिमनो हि मानिनाम् ।

कवि की विद्वत्ता, पाण्डित्य, शब्द भण्डार एवं कवित्व शक्ति की विलक्षणता ने ही सुन्दर-सुन्दर शब्दचयन, विचित्र प्रयोग पदयोजना के सुन्दर रूप को सार्थक बनाया है। ऊपर किये हुए विवेचन से स्पष्ट है कि सयत अनुप्रास की छटा तो आपकी चित्रमय भाषा मे सर्वत्र ही मिलेगी। श्लेष, पुनरुक्ति, यमक का भी प्रयोग चमत्कार रूप मे स्थान-स्थान पर देखने को मिलेगा।

माघ काव्य मे जैसा अद्वितीय शब्दबंध है वैसा सस्कृत साहित्य मे तो क्या अन्य भाषाओ के साहित्यो मे भी बहुत कम देखने को मिलेगा। माघ कवि कदाचित् इसी शब्द बध के कारण बदनाम है। आलोचको ने इसी लिए माघ काव्य को क्लिष्टता तथा अनैसर्गिकता से पूर्ण बताया है। उनको माघ काव्य मे प्रयास की गन्ध आती है, जिससे वह इसे एक कृत्रिम सा काव्य कहते है। उनका कहना है:—

कविता वनिता चैव सरसा स्वयमागता ।
बलादाकृष्यमाणा चेत् सरसा विरसायते ॥

शब्द योजना और पद योजना मे सूक्ष्म अन्तर है। किस जगह किस शब्द का उपयोग लिया जाना चाहिए और किस जगह नही, इसका सम्बन्ध शब्द चयन शक्ति से है। वह शब्द वाक्य में अथवा पद्य मे किस स्वरूप मे किस सघटना के लिए आया है, उसमें पद योजना शक्ति काम करती है, शब्द का ही अविभक्त स्वरूप पद बनता है, इसलिए सामान्यतया शब्द योजना और पद योजना एक ही कह दिया जाता है। यहाँ इसी सूक्ष्म पर तात्विक अन्तर को दृष्टि मे रख कर पद योजना पर अलग से आलोचना प्रस्तुत की जाती है।

माघ पदो के ललित विन्यास मे भी शब्द चयन की भाँति पूर्ण सिद्धहस्त थे। पदमाधुर्य की निपुणता यदि किसी को देखनी हो तो उसे माघ मे देखा जा सकता है। माघ के पदो मे कई स्थानो पर श्रुतिमधुर शब्दो की ऐसी सगीतात्मक एकरसता है जो वीणा के तारों की झकृति की भाँति अर्थ ग्रहण से पूर्व ही हृदय को रस-मग्न कर देती है। छन्दो के बन्धो मे सर्वत्र अनुक्रम और सतुलन है जिसके कारण कही-कही पर छन्द श्रुतियो की छोटी-छोटी लड़ियाँ बन कर एक कोमल झंकार उत्पन्न करते हैं। बन्धों का यह कलात्मक गुम्फन ही

शब्दालकारो की आत्मा है। भाषा को इनसे गति मिलती है। नीचे लिखे पदो मे अनवद्य लालित्य का आनन्द आता है :—

नवपलाशपलाशवनं ततः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभि-सुरभि सुमनोभरैः ।।६-२।।
वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसभृतशोभया ।
चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ।।६-१४।।
मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधित मेधया ।
मधुकरागनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।६-२०।।
विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः
सुरभितमकरन्द मन्दमायाति वायुः ।
समदमदनमाद्यद्यौवननोद्दामरामा
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्ष. ।।११-१९।।

इन उपर्युक्त पदो मे अनुप्रास और यमक की अपूर्व छटा एक ओर दिखाई पड़ती है तो मधुर शब्दावलि दूसरी ओर श्रुतिमधुर हो कर आनन्द मे विभोर कर देने वाली है। सानुप्रास पदयोजना मे व्यजन और स्वर दोनो की ही आवृति वास्तव मे भाषा की उचित श्रीवृद्धि करती है। माघ के पदबन्धनो मे दोनो की ही मैत्री उचित रूप मे दिखलाई पड़ती है। एक उदाहरण और—

इह मुहुर्मुदितैः कलभैः रवः प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः ।
स्फुरति चानुवन चमरीचयः कनकरत्नभुवा च मरीचयः ।।४-६०।।

इसमे "कलभैः रव" "और कलभैरवः" तथा "चमरीचय·" और "च मरीचय." शब्दो को देखिये। इसी भाँति पदो मे कही-कही तो कोमल वर्ण छोटे घुंघरूओ की भाँति गुथे हुए हैं। यमक का प्रयोग माघ कवि ने अधिकाश पद बन्धो की सजावट के लिए ही किया है। इस प्रकार के यमक पद्य के एक भाग मे होते हुए भी सारे पद्य को चमत्कृत कर देते है। यमक के प्रयोगो मे कवि ने कही-कही जादूगरी अथवा गोरखधन्धे जैसा कार्य भी किया है। माघ कवि एक विनोदी प्राणी थे। अत· उनके यमको तथा अनुप्रासो में उनकी यह विनोद-शील प्रवृति झलकती है। जहाँ पर स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की पद योजना हुई है वहाँ तो अर्थ की दुरूहता नही है पर जहाँ पर एक खिलवाड के लिए उन्होने ऐसा किया है वहाँ अवश्य ही अर्थ क्लिष्टता हुई है जो निरर्थकता की सीमा तक पहुँच गयी है। इसी भाँति अर्थ ध्वनन भी इस प्रकार की रचना मे हुआ है। कुछ शब्द अथवा शब्दसमूह मिल कर इतने मुखर होते हैं कि वे ध्वनि मात्र से ही अपना अर्थ व्यक्त कर देते है। अर्थ ध्वनन का आनन्द नीचे लिखे पद्य को बार-बार दुहराने से आता है।

विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमायाति वातः ।

प्रमदमदनमाद्याद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ।।११-१६।।

इस छन्द के पदो से ही वायु की शीतलता, मन्दता एव सार्थकता हो गयी है ।

दण्डी कवि की शैली साधारणतया सरल, स्निग्ध, धारावाही, परिस्फुट और चित्ता-कर्षक कही गई है । कहा जाता है कि उन्होने दीर्घ समासो और श्लिष्ट तथा क्लिष्ट पदावलि का प्रयोग नही किया अत उनके पद सुप्रयुक्त और सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले है। इसीलिए अनेक पदावलियाँ सारगर्भित और स्पृहणीय सी प्रतीत होती हैं। ऐसा दिखलाई देता है कि कवि दण्डी को शब्द कोष पर पूरा-पूरा अधिकार था और उनका प्रयोग उच्च कोटि के कौशल और असाधारण पाण्डित्य का प्रदर्शक है। अनुप्रास और यमक के प्रयोगो की अनुपमता देखने योग्य है —

"कुमारामाराभिरामारामाद्यपौरुषारुषाभस्मीकृतारयोरयोपहसितसमीरणारणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशस राजानमकार्षु" इस भाँति की पदावलियाँ वास्तव मे मनोहर तथा हृदय को झकृत कर देने वाली है। नेय गणना विदग्धस्य पुरुषस्य "इस प्रकार की पद योजना से इस तरह माघ का भी भाषा पर पूर्ण आधिपत्य था अत उन्होने चित्रकाव्य की भी रचना कर डाली । माघ कवि का पद लालित्य भी दण्डी के पद लालित्य के समान अत्यधिक सरल स्निग्ध, धारावाही, परिस्फुट, चिताकर्षक एव सजीव है । देखिये :—

नवपलाशपलाशवन पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभि-सुरभि सुमनोभरैः ।।६-२।।

वसन्त का कैसा सजीव, सरल, मसृण, धारावाही, परिस्फुट तथा चित्ताकर्षक वर्णन है । यमक की छटा से सपूर्ण पद खिल उठा है । छठा सर्ग यमक तथा अनुप्रासो से भरापूरा है । नीचे लिखे माघ के श्लोक को ध्यान से देखिये —

दधानैर्घनसादृश्य लसदायसदशनै. ।
तत्र काचनसच्छाया ससृजे तै शराशनिः ।।१९-११।।

उपमा और रूपक की एक साथ छटा को दिखाते हुए कवि माघ ने इस श्लोक मे कोई भी ऐसा शब्द नही रखा है जो ओष्ठ से उत्पन्न होता है, यह है निरोष्ठ्य रचना का सा आनन्द है । यमक की छटा यहाँ भी द्रष्टव्य है —

वाहनाजनि मानासे साराजावनमा ततः ।
मत्तसारगराजेभे भारीहावज्जनध्वनि ।।१९-३३।।
निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसातमः ।
ततमानवजारासा सेना मानिजनाहवा ।।१९-३४।।

देखिये कवि की चातुरी, तेतीसवे श्लोक को उलटने से चौतीसवे श्लोक का पूरा भाग बन जाता है । यह है वह श्लोक प्रतिलोम यमक जिसके लिये दण्डी ने कहा है .—

आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा ।
यमक प्रतिलोमत्वात्प्रतिलोममिति स्मृतम् ।।

उपर्युक्त श्लोको मे कवि का पदयोजना विषयक प्रयास स्पष्ट है। वहाँ अर्थ की क्लिष्टता होते हुए भी एक प्रकार का सौन्दर्य है। इस तरह उन्नीसवाँ सर्ग इस भाँति के विकट बन्धो से पूर्ण है, जो कवि की असाधारण पद योजना शक्ति का परिचायक है। एक और श्लोक प्रस्तुत है जिसका शब्द ऐसा है कि वाक्यो को उलट कर पढने से भी वही शब्द उसी अर्थ का बन जाता है। यह भी प्रतिलोम यमक ही कहलाता है —

विदित दिवि केऽनीके त यात निजिताजिनि ।
विगद गवि रोद्धारो योद्धा यो नतिमेति न ।।१९-९०।।

इसी तरह कही पर अतालव्य अक्षरो वाला श्लोक है तो कही पर असयुक्त अक्षरो वाला श्लोक अपनी छटा दिखला रहा है। इस भाँति कही पर कवि अपनी प्रतिभा को गत्यात्मक सौन्दर्य के अंकन की कुशलता मे प्रयुक्त करता है तो कही सचित्र विशेषणो के चयन अथवा चित्रण मे प्रयुक्त करता है। अतः यदि कोई ऐसा कहे कि महाकवि दण्डी से महाकवि माघ शब्द चयन, पदलालित्य और पाण्डित्य प्रदर्शन मे आगे है तो इस कथन मे अत्युक्ति नही है।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, शब्द तथा पदो की योजना का सम्बन्ध छन्द तथा अलकार से भी अटूट है। जब तक छन्द और अलकारो का सार्थक प्रयोग न हो, वे वर्णन के अनुकूल न हो, तब तक वे रचना की शोभा नही बढा सकते, वरन् उसको असुन्दर ही बना डालते है। माघ की रचना से ही ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते है। माघ के छदो मे गति है। अनावश्यक पाद-पूरण उनमे नही है। प्रायः सब ही शब्द सार्थक, एक-से-एक विशेष अर्थ को प्रकट करते है इसी लिए उनके वाक्य विन्यास तथा पद योजना उन छन्दो की गति के प्रवाह को निरन्तर बनाये रखने मे सहयोगी है। माघ मालिनी छन्द के प्रयोग मे अधिक कुशल है, (उनका पत्नीके नाम से उसका जो श्रुति-साम्य है) उसी तरह जैसे कालिदास बसन्त-तिलका छन्द के प्रयोग मे। एक तो इस छन्द की गति ही अपने ढग की है फिर उसमें अलकार योजना उसको और भी अधिक सुन्दर बना देती है।

कवि ने वैसे तो प्रायः सभी शब्दालकारो का प्रयोग किया है, फिर भी श्लेष, यमक और अनुप्रास अधिक मात्र मे प्रयुक्त हुए है। यमक चमत्कारप्रधान अलकार है। माघ ने एक सर्ग तो इसी से भर दिया है। यमक के लिखने मे कवि सिद्धहस्त है इसी लिए इनका प्रयोग वह बडी सफलता तथा सरलता के साथ कर सका है। एक उदाहरण प्रस्तुत है —

अखिद्यतासन्नमुदग्रताप रवि दधानेऽप्यरविन्दधाने ।
भृ गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ।।४-१२।।

"रविन्दधाने" तथा "अरविन्दधाने" इन दोनो शब्दो मे शब्द-श्लेष मूलक विरोधालंकार है। यमक अलकार तो है ही। कुछ स्वभावोक्तियाँ सी इन यमको के प्रयोग से बन गयी है। एक चित्र सामने उपस्थित है, किसी के गिर जाने पर लोग हँस रहे है :—

दुर्दान्तमुत्कृत्य निरस्तसादिनं
सहासहाकारमलोकयज्जनः ।
पर्याणतः स्रस्तमुरोविलम्बिन
स्तुरगम प्रद्रुतमेकया दिशा ।।१२-२२।।

दूसरा यथावस्तु का वर्णन देखिये :—

उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघः
सौहित्यनिः सहतरेण तरोरधस्तात् ।
रौमन्थमन्थरचलद् गुरुसास्नमासा
चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण ।।५-६२।।

कैसा सुन्दर चित्र है ? बैल पुष्टकाय है। वे वृक्ष की घनी छाया के नीचे बैठे-बैठे धीरे-धीरे जुगाली कर रहे हैं जिससे उनका विस्तृत गल कम्बल धीरे-धीरे हिल रहा है और दोनों आँखे आलस्य से भर कर अधमुँदी हो रही है। यह है पशु प्रकृतिका यथावत् चित्रण, और भी कुछ उदारहण यहाँ प्रस्तुत किये जा सकते है :—

प्रतिकुंचितकूर्परेण तेन श्रवणोपान्तिकनीयमानगव्यम् ।
ध्वनति स्म धनुर्घनान्तमत्तप्रचुर क्रौचरवानुकारमुच्चैः ।।२०-१६।।
उरसा विततेन पातितांसः स मयरांचित मस्तकस्तदानीम् ।
क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा २०-२०।
अभ्याजतो म्यागततूर्णतर्णका
निर्याणहस्तस्यपुरो दुधुक्षतः ।
वर्गाद्गवांहुँकृतिचारु निर्यती
मरिर्मधोरैक्षत गोमतल्लिकाम् ।।१२-४१।।
गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्
सनादमुत्थाय मुहुः स वल्गतः ।
ग्राम्यानपश्यत् कपिश पिपासतः
स्वगोत्रसंकीर्तनमावितात्मनः ।।१२-३८।।
निम्नानि दुःखादवतीर्य सादिभि
सयत्नमाकृष्टकशा शनैः शनैः
उत्तेरुरुभालखुरारव द्रुताः
श्लथीकृतप्रग्रहमर्वतां व्रजाः ।।१२-३१।।

इसी भाति उन की उपमाएँ भी इतनी ही रोचक हुई है। नीचे लिखी उपमा कितनी सुन्दर है :—

अनुसन्ततिपातिनः पटुत्वम् दधतः शुद्धिभृतो गृहीतपक्षाः ।
वदनादिव वादिनोऽथ शब्दाः क्षितिभर्तुर्धनुषः शराः प्रसस्रुः ।।२०-११।।

इसमें वचन के पक्ष में भी वाण के समस्त विशेषण प्रयुक्त होंगे जिनका अर्थ इस भाँति होगा : निरन्तर निकलने वाले अर्थ प्रतिपादन में समर्थ, व्याकरण सम्मत, किसी न किसी पक्ष से युक्त । और देखिये :—

तडिदुज्ज्वलजातरूपपुंखैः खमय श्याममुखैरभिध्वनद्भिः ।
जलदैरिव रंहसापतद्भिः पिदधे संहतिशालिभिः शरौघैः ।।२०।१३।।
इषुवर्षमनेकमेकवीरस्तदरिप्रच्युतमच्युतः पृषत्कैः ।
अथ वादिकृतं प्रमाणमन्यैः प्रतिवादीव निराकरोत् प्रमाणैः ।।२०।१८।।

एक स्थान पर प्रातःकाल की चहकती हुई चिड़ियों का कलरव घड़े को जल में डुबोने के समय होने वाले कुलकुल शब्द के समान बताया है तो दूसरी ओर प्रभातवेला में गृह के दीपों की मन्द कान्तिवाली शिखा को ऊँघते हुए गृहों के नेत्रों के तुल्य बताया है । शिशुपाल की सेना का श्रीकृष्ण की सेना का भिड़ना वैसा ही है जैसा नदियों के जल का महासागर की गगनचुम्बी ऊर्मियों से टकराना ।

काव्य के सौष्ठव से कवि की कला का परिचय मिलता है । भाषा के द्वारा कला की अभिव्यक्ति होती है । कलापूर्ण भाषा सुन्दर होगी ही । शब्दयोजना, पदयोजना, छन्द तथा अलंकार इन्हीं के द्वारा कला मूर्तरूप धारण करती है । सब से पहले माघ कवि की शब्द योजना, पदयोजना, वाक्य-विन्यास, छन्द, अनुप्रास, यमक, उपमा आदि की छटा पाठकों को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करती है । उनको तन्मय करती है । जब एक बार वे—

"नवपलाशपलाशवनं ततः स्फुटपरागपरागत पंकजम्"
"मधुरया मधुबोधित माधवी, मधुसमृद्धिसमेधितमेधया"

इस प्रकार के वाक्यों को सुनते हैं तो उन्हें मन ही मन बार-बार गुनगुनाने लगते हैं । इसी को भाषा सौष्ठव कहते हैं जो काव्य-सौष्ठव का साधक तत्व है । इसेदे खकर अथवा सुनकर पाठक मन्त्रमुग्ध से काव्य की आत्मा की ओर आकृष्ट हो जाते हैं, अर्थ ही समझते हैं और अर्थ ग्रहण के साथ ही रसानुभूति उनको होने लगती है ।

चित्रण

कलाकार के मन में जिस अनुभूति का साक्षात्कार होता है उस अनुभूति को वह जागरूकता के साथ शब्द रेखाओं को अंकित करता है । इस अंकन को साहित्य में चित्रण यह संज्ञा दी है । इस चित्रण के एक समवेत स्वरूप से चित्र बन जाते हैं । ये चित्र अपनी विभिन्न स्थिति को रखते हुए जब कथा वस्तु की भित्ति पर यथा स्थान संनिविष्ट हो जाते हैं तो फिर काव्यशरी-रकला निर्माण हो जाता है । जिस प्रकार विभिन्न अंग आँख, कान, हाथ, पैर और उनके भी अवयव अपना एक सौन्दर्य रखते हुए यथास्थान सुनिविष्ट होकर

एक सुन्दर मानव शरीर की रचना कर देते हैं उसी प्रकार ये शब्द-चित्र काव्य अथवा महा काव्य की ऐसी रचना कर देते हैं जो इन्द्रिय गोचर होकर सहृदय को कवि हृदय तक पहुँचा देता है। यही इनका महत्व है और यही इनकी उपयोगिता।

महाकवि माघ ने भी जो मधुर चित्रों से समवेत रचना की है वह अपने विशिष्ट रूप में सहृदयों के इन्द्रिय गोचर होकर उन्हें माघ की अनुभूतियों से एकात्म करने में पूर्णतः सहायक हुई है। माघ काव्य के छठे आठवें सर्ग शृङ्गारिक चित्रों से भरे हुए हैं। पाठक वहाँ ऐसे एक नहीं अनेक भाँति भाँति के चित्र पायेंगे जो उनके मानस पटलों पर प्रतिबिम्बित होकर उनको एक अभूत पूर्व स्पन्दना देंगे। उदाहरणार्थ ऐसे चित्रों को लिया जा सकता है जिसमें भीगे हुए वस्त्र नायिका के सुडौल अंगों से लिपट गये हों, वस्त्रों के शरीर से चिपक जाने के कारण रमणियों की निर्मल व मोटी-मोटी मांसल जंघाएँ एक विशेष प्रकार की आकृति को लिए हुए व्यक्त होती हैं, बिखरी हुई अलकों पर जल कण मोतियों से झलकने लगते हैं, तथा तिलक और अंगराग के धुल जाने पर मुख की सहज शोभा निखर आती है। कवि ने इस प्रकार के सभी चित्रों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ शब्दों के सहारे अंकित किया है। स्नान के बाद अभिसार का रूप निम्न श्लोक में दर्शनीय है।—

स्वच्छाम्भः स्नपनविधौतमंगमोष्ठस्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनीनाम्।
वासश्च प्रतनु विविक्तमस्त्विवतीयानाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्यः ॥८।७०॥

स्वच्छ जल में स्नान करने से धुला हुआ निर्मल शरीर, ताम्बूल की लालिमा से सुशोभित सुन्दर अधर तथा सूक्ष्म एवं सुन्दर वस्त्र धारण करना फिर एकान्त स्थान यहीं तो वस्तुएँ विलासिनी स्त्रियों की सुन्दर वेषभूषा है यदि ये काम देव से शून्य न हों। ऊपर में "यदि कुसुमेषुणा न शून्यः" इन शब्दों से सारा चित्र जगमगा उठा है। शरीर की कान्ति छिटकी पड़ी हुई है, झीने-झीने सुन्दर दुपट्टा तथा लहंगा पहन लिये हैं, कान्ति के मानो चार चाँद लग गये हैं। इससे ऊपर के श्लोक में नायिका अपने हाथों से जूड़ा बाँध रही है, (सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्यां) एकान्त स्थान है, संगम की इच्छा उसके मन में है, उसके हास विलास आदि मानो काम के संकेत हैं। समूचा यह चित्र पूर्ण सौन्दर्य को लिए हुए है। इसी भाँति के बहुत रूपचित्र पूरे उतरे हैं।

आइये नीचे जो श्लोक दिये गये हैं उनके चित्रों में जो स्फूर्ति की पूर्ण सजीवकता है वह भी अनुभव करने योग्य है :—

अवलोकनाय सुरविद्विषां द्विषः
पटहप्रणादविहितोपहूतयः
अवधीरितान्यकरणीयसत्वराः
प्रतिरथ्यमीयुरथ पौरयोषितः ॥१३।३०॥
अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः
कररुद्धनीविगलदंशुका स्त्रियः

दधिरेऽधिभित्तिपटहप्रतिस्वनैः
स्फुटमट्टहासमिव सौधपंक्तयः ।।१३।३१।।

रभसेन हारपददत्तकाञ्चयः
प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः ।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्
वलयीकृतश्रवणकुण्डलाः स्त्रियः ।।१३।३२।।

व्यतनोदपास्य चरणं प्रसाधिकाः
करपल्लवाद्रसवशेन काचन ।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनिं
पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम् ।।१३।३३।।

कैसी हड़बड़ाहट उपस्थित हो गई। श्रीकृष्ण को देखने केलिए अपने कामकाज की सुध बुध भूलकर स्त्रियाँ भागी जा रही हैं। शीघ्रता में किसी स्त्री ने मुक्तामाला के स्थान पर करधनी पहन ली थी, किसी ने केशों पर कान के आभूषण पहन लिये थे, किसी ने ओढ़ने के दुपट्टे को पहन कर पहनने की साड़ी ओढ़ली थी, किसी ने स्तनों को ढ़कने वाली चोली को जंघाओं में पहन लिया था तो किसी ने कान के कुण्डल को कहीं दूसरी जगह। कोई तो श्रृङ्गार करने वाली दूती के करपल्लवों से अपने पैर को छुड़ाकर गीले यावक से रँगे गये एक पैर से धरती तल को रंगती हुई जाकर देखने के लिए खड़ी हो गई। कितना सजीव चित्र यह है। अतिशयोक्ति ने इस चित्र के रंगों को ग्रहण करके उभार दिया है।

अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
रुतमथकृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये ।
कथमपि परिवृत्ता निद्रयान्धा किल स्त्री
मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ।।११।६।।

प्रियतम की रति प्रार्थना को अस्वीकार कर सोयी हुई छल पूर्वक दूसरी ओर मुँह किये हुये कोई सुन्दरी प्रभात के समय मुर्गे की तीव्र आवाज सुनकर अंगड़ाई लेने के बहाने से फिर पति के सम्मुख हो गई है और नींद से आँखे मूँदकर मानो बिना जाने ही अपने प्रियतम से आकर लिपट गई है।

इसमें कैसी रेखाओं का प्रयोग है। नायिका प्रियतम की रति प्रार्थना को अस्वीकार कर छल पूर्वक पीठ फेरे हुए सो गई है किन्तु आँखों में नींद कहाँ वह तो बहाना बना रही है, कहीं नायक उसको प्रसन्न करें, मनावें किन्तु ज्यों का त्यों पड़े रहना, नायक की ओर से कुछ भी संकेत न मिलना आदि मानो इस चित्र की रेखाएँ हैं। नायिका का हृदय वासना से उद्दीप्त है, प्रभात का समय होने को है वह मुर्गे की तीव्र आवाज को सुनते ही तुरन्त ही अंग-भंग के बहाने से अपनी आँखों को बन्द किये हुए ही करवट बदलकर अपने प्राणनाथ के चिपक जाती है, इस सबसे चित्र कितनी गहराई को पा गया है। चित्र साकार हो उठा है सहृदय की सहानुभूति का सबसे ठोस आलंबन बन गया है। नायक नायिका को थोड़ा तंग

करना चाहता है, उसका एक दूसरा यथार्थ चित्रण यहाँ है :—

सरभसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा
यदधिनिशमपास्तं वल्लभेनांगनायाः
वसनमपि निशान्ते नेष्यते तत्प्रदातुं
रथचरणविशालश्रोणिलोलेक्षणेन ।११।२३।।

रात्रि के समय शीघ्रतापूर्वक आलिंगन करने के प्रबल इच्छुक प्रियतम ने रमणी का जो वस्त्र छीन लिया था उसे प्रातःकाल हो जाने पर भी रथ के चक्र के समान विशाल सुन्दरी के नितम्ब स्थल को देखने के लोभ से वह नहीं लौटा रहा है।

मधुर चेष्टा की एक हल्की रेखा से चित्र को खींचना, कहीं-कहीं पूरी रेखा खींचना, कहीं पर एक अवयव को ही उभार कर एक ही अनुभव द्वारा चित्र में सजीवता लाना, कहीं केवल छाया का प्रयोग करना माघ जैसे महा कवियों का ही काम है। ग्यारहवें सर्ग में इस प्रकार के प्रायः सभी चित्र यथार्थ उतरे हैं। इन चित्रों से कवि स्वयं की अनुभूतियाँ सहृदयों की अनुभूतियों से तादात्म्य हो गया है। सूर्यास्त का एक प्रकृति चित्र भी दर्शनीय है।—

द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो वपुरर्धमग्नवपुषः पयसि ।
रुरुचेविरिंचिनखभिन्नवृहञ्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ।।९।९।।

तपाये हुए स्वर्ण के तुल्य कान्तियुक्त बिम्ब के अर्द्ध भाग के समुद्र के जल में डूब जाने पर सूर्य का मण्डल ब्रह्मा के नख के द्वारा दो भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के एक खण्ड की भाँति सुशोभित हो रहा था।

दूसरे सर्गों में भी कवि ने स्थान-स्थान पर अनेकों चित्र उपस्थित किये हैं। प्रथम सर्ग में नारदागमन पर नारद का चित्र, दूसरे सर्ग में सभा तथा तीनों सभासदों के चित्र, चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का चित्र फिर वनविहार, जलविहार आदि से सम्बन्धित चित्र, इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों से श्रीकृष्ण के मिलन, यज्ञ के चित्र में क्रोधयुक्त शिशुपाल का चित्र, भीषण युद्ध आदि के चित्र ये सभी चित्र सजीव हैं, प्रभावोत्पादक एवं आह्लादकारी हैं। कहीं कवि की संश्लिष्ट योजना आश्चर्यजनक है तो कहीं विशेषण भावना को गम्भीरतर बना देती है। इन चित्रों में रंगों और प्रकाश के साथ स्वाभाविकता और यथार्थता पूर्ण रूप से विद्यमान है। कवि ने शब्द चयन के बल पर ही यह सब कुछ कर दिखाया है।

शब्द योजना एवं पदयोजना को लेकर हमने छन्द अलंकार तथा चित्रण शक्ति की जो बातें रखी हैं उनसे हमारा अभिप्राय यही है कि हम महाकवि माघ के काव्य सामर्थ्य का भान करायें जिससे सहृदय अहृष्ट होकर उनके काव्य से सरलता पूर्वक आनन्दानुभूति को प्राप्त करें।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि इस महाकाव्य के लिए पाठक में जो श्रद्धा चाहिए उसका आविर्भाव तभी हो सकता है जब वह स्वयं विद्वान् हो, उसे शब्द शक्तियों का परिज्ञान हो, विभिन्न विषयों का उसमें पाण्डित्य हो और इन सब बातों के साथ-साथ वह सहृदय भी हो। इस प्रकार की श्रद्धा के बिना कोई भी पाठक या आलोचक माघ कवि के प्रति न्याय नहीं कर सकता।

काव्य में रस-पक्ष

पूर्व प्रकरण में बार-बार आनन्द अनुभूति आदि का उल्लेख दिया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि वह आनन्द क्या है? साहित्य मर्मज्ञों ने इस आनन्द को रस की संज्ञा दी है जिस पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। साहित्य में इस रस का अभिप्राय काव्यानन्द का है। व्याकरण के अनुसार रस की व्युत्पत्ति है "रस्यते इति रसः" जो आस्वादित किया जाय वही रस है। रस धातु का अर्थ है आस्वादन करना और स्नेह करना "रस आस्वादन स्नेहयोः"। इसका निष्कर्ष तो यह निकला कि जिससे मन को द्रवीभाव के साथ स्वाद मिले वही तो रस* है। जो वस्तु हृदय को द्रवीभूत करती हुई उसी रस (स्वाद) में तल्लीन कर दें वही काव्य है। तैतिरीय उपनिषद् के ११, ७, १ में जो कहा है "रसो व सः, रसं ह्येवायं लब्धानन्दी भवति" ठीक ही है। यह रस ही तो काव्य पुरुष की आत्मा है, अलंकार रीति, छन्द, चित्रण आदि तो इसके बाह्य उपकरण हैं। वामन रस को कान्ति गुण का मूल तत्त्व स्वीकार करते हैं। (दीप्तरसत्वं कान्तिः)। दण्डी, रुद्रट, भामह आदि ने अलंकार को सब कुछ मानते हुए इसको ही काव्य की आत्मा कहा है। इसी युग में महाकवि माघ हुए जिन्होंने वामन के ही अनुसार कान्ति को काव्य में लाना आवश्यक समझा। यह कान्ति औचित्य के बिना नहीं आ सकती। यदि शब्द का औचित्य तथा अर्थोचित्य हो तो फिर कविता में कान्ति का उदय हो जाता है यही कान्ति रस बन जाती है। कान्ति विहीन कविता नीरस और निःस्पन्द हो जाती है। कहा है—

> एते रसाः रसवतो रमयन्ति पुंसः
> सम्यक् विभज्य रचिताश्चतुरेण चारु।
> यस्मादिमाननधिगम्य न सर्व रम्यं
> काव्यं विधातुमलमत्र तदाद्रियेत॥

रस की अनुभूति कैसे हो? किसी विषय का अनुभव प्राप्त किए बिना मानव हृदय को भावानुभूति कैसे हो सकती है? कवि को जब सहज अनुभूति होने लगती है तभी वह भाव संज्ञा को प्राप्त कर लेती है। कवि कितना ही प्रतिभाशाली हो जब तक उसको सहज अनुभूति प्राप्त नहीं हो तब तक उसकी रचना कविता नहीं कहला सकती। अनुभूति भावों को

***खाद्य पदार्थों में फलों में रस मधुरतम तरल पदार्थ, संगीत में कर्ण द्वारा प्राप्त आनन्द, चिकित्सा में सर्वोत्कृष्ट प्राणदायिनी औषध, आध्यात्म में परमात्मा, साहित्य में काव्य से, आस्वादन से प्राप्त, आनन्दानुभूति रस है।**

सहृदयात्म बनाती है। यह सहृदयात्मता साधारणीकरण है। इस साधारणीकरण के सम्बन्ध में शुक्लजी कहते हैं "रसोद्‌बोधन की शक्ति किसी भी भाव में तब तक नहीं आ सकती जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में न लाया जाय कि वह सामान्यत: सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके। जब कोई भी व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस भाँति अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति लगा सके तो वह साधारणीकरण की शक्ति रखता है। अनुभूति तो सभी में होती है और सभी किसी भी भाँति उसको थोड़ा बहुत व्यक्त करने की शक्ति रखते हैं, पर साधारणीकरण की शक्ति सब में नहीं होती। यही कारण है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति के होते हुए भी सब कवि नहीं हो पाते।" जिसको लोक हृदय की पहचान हो, जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सकता हो, जिसकी अनुभूतियाँ विशेष रूपेण सजग हों, जिसकी भाव-शक्ति विशेष रूप से समृद्ध हो, ऐसा ही कवि भाषा का भावमय प्रयोग करते हुए साधारणीकरण द्वारा पाठकों के हृदय में रस (आनन्द) का उद्‌बोध कराता है।

डाक्टर नगेन्द्र रीति काव्य की भूमिका में अभिनव गुप्त के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "मानव आत्मा शाश्वत है, सभी आत्माओं में विशेषकर सहृदयों की आत्माओं में, स्वभाव से सांसारिक अनुभव, पूर्वजन्म अथवा पठन-पाठन आदि के फलस्वरूप कुछ मूलगत वासनाएँ ही पारिभाषिक शब्दावलि में स्थायी भाव कहलाती हैं। विभाव, अनुभाव और संचारी के कुशल प्रदर्शन से ये गुप्त वासनाएँ या स्थायी भाव ही उद्‌बुद्ध होकर रस रूप में परिणत हो जाते हैं अर्थात् उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ एक आनन्दमयी चेतना के रूप में उनका अनुभव होता है। यहाँ आकर भाव की वैयक्तिकता नष्ट हो सकती है। वह मेरा या दूसरे का न रह कर साधारण भाव मात्र रह जाता है और इस प्रकार सर्वग्राह्य बनकर एक साथ इतना तीव्र हो जाता है कि उसका भावत्व ही नष्ट हो जाता है। केवल एक आनन्द-मयी चेतना रह जाती है। भट्टनायक का मत है कि काव्य की प्रकृति ही ऐसी है कि सहृदय को पहले उसका अर्थ-ग्रहण, फिर भावन अर्थात् निर्विशेष रूप से चिन्तन और इसके उपरान्त तुरन्त ही आनन्द प्राप्ति सहज में हो जाती है, परन्तु अभिनव गुप्त कहता है कि रस की स्थिति सहृदय की आत्मा में ही है, काव्य उसकी अभिव्यक्ति मात्र करता है। यह ठीक भी है, रस वर्वथा विषयीगत है' सहृदय की आत्मा में ही उसकी स्थिति है वस्तु में नहीं। कवि जब अपनी अनुभूति को समवेद्य बना देता है और सहृदय व्यक्ति इस समवेद्य अनुभूति को जब ग्रहण कर लेता है तब आनन्द की उपलब्धि होती है। सहृदय की रसानुभूति से ही तो उसका आगमन हुआ। "मैं हूँ" यही रस का सार तत्व है जिसको हम अन्तर्वृत्तियों का सामंजस्य स्वीकार करते हैं। इस भाँति अपनी ही अस्मिता वृत्ति का आस्वादन आनन्द (रस) कहा गया है। यह रस दोनों में ही है यदि दोनों ही व्यक्ति, कवि और सहृदय पाठक, अस्मिता वृत्ति के हों। अनुभूति को अभिव्यक्ति करने में कवि को अपनी अस्मिता के आस्वादन का रस मिलता है जब वह अपने हृदय को रस में डुबोकर अपनी अनुभूति को समवेद्य बना पाता है। कवि अपनी समवेद्य अनुभूतिको ग्रहण करनेमें सहृदय के साथ अपनी अस्मिता का आस्वादन कर पाता है। कवि अपनी अनुभूति का रस जो स्वयं का भी है सहृदय के पास भी भेजता है।

यदि कवि के कहने में कोई रस नहीं है तो सहृदय के हृदय में स्थित रस सुस्त पड़ा रहेगा और इसी तरह यदि सहृदय के हृदय में रस नहीं है तो कवि का समवेद्य निष्फल रहेगा। यही कारण है कि अनेकों निष्फल छन्द देखने को मिलते हैं और अनेकों अरसिक व्यक्ति।

उदाहरण के रूप में हम यहाँ पर शृङ्गार अथवा वीर को लेकर इस बात को स्पष्ट करेंगे। कल्पना करली जाय कि अमुक व्यक्ति किसी सुन्दर स्त्री को अथवा अपने समान ही बलशाली किन्तु किसी कारणवश वैमनस्य को प्राप्त ऐसे व्यक्ति को देखता है तो उसके हृदय में सहसा सहृदय होने के कारण वैसा ही भाव जाग्रत हो जाता है। कामिनी के प्रति वासना की प्रवृत्ति तथा समान बलशाली के प्रति युद्ध की अभिलाषा। दर्शन के रूप में उस भाव को ग्रहण करना फिर कार्य करने के लिए प्रवृत्त हो जाना मात्र तो रस नहीं हैं। दर्शन करने पर भाव आते ही हैं जो संचरणशील मनोविकार हैं। यह अस्थिर अनुभव है। स्वभाव, वृत्ति या मात्रा से इस संचरणशील अनुभव का सम्बन्ध है। इस मनोविकार पर हमारी मनोवृत्ति जो एक स्थिर मनोदशा अथवा दृष्टिकोण है और जिसका क्रमश: निर्माण अनेक मनोविकारों और मानसिक क्रियाओं द्वारा होता है और जो मनोविकार से अपेक्षाकृत स्थिर तथा जिसका सम्बन्ध विचार से है अर्थात् जिसमें बौद्धिक तत्त्व भी अनिवार्यत: विद्यमान रहता है, उस कार्य को कर लेने पर, प्रवृत्त हो जाती है। कार्य का कर लेना प्रत्यक्ष अनुभव है जो रस नहीं हो सकता है। कवि का प्रत्यक्ष अनुभव उस अनुभूति को, जो बाद में प्रत्यक्ष न रहकर संस्कार मात्र रह गई थी, काव्य रूप देने का अर्थात् बिम्ब रूप में उपस्थित करने का अनुभव है। काव्य रूप देने में वह उस संस्कारशेष अनुभूति का चिन्तन (भावन) करता है। चिन्तन की इस प्रक्रिया में एक क्षण ऐसा आता है जब उनके अपने हृदय का भी भाव उद्‌बुद्ध हो जाता है। कवि के मानस में तभी काव्य रूप पूर्ण हो जाता है और साथ ही वह रस का अनुभव प्राप्त कर लेता है। बाहर से प्राप्त किसी अनुभूति के संस्कार का भावन करते हुए अपनी हृदय स्थित भावना को जान लेना ही तो रस दशा को प्राप्त कर लेना है। यही सहृदय करता है और यही कवि। काव्यानुभूति संवेदन से ही निर्मित है। इन संवेदनों में सामंजस्य और अन्विति जैसे ही स्थापित हो जाती है तो फिर हमारी अनुभूति मधुर होती है। काव्य जीवन की ही अनुभूति है और काव्य के चिन्तन का अर्थ ही अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करना है और यही आनन्द है। इसी भाँति जीवन के कटु अपने तत्त्व रूप संवेदनों के समन्वित हो जाने से आनन्दप्रद बन जाते हैं। संवेदन अपने आप में कटु और मधुर नहीं होते। कटुता और माधुर्य तो अनुभूति का गुण है।" इस कथन को माघ की कविता पर घटित करके इस प्रकरण को समाप्त किया जायगा।

महाकवि माघ का समय एक ओर तो युद्ध का था जब राजपूत लोग नवीन राज्यों की स्थापना अपनी सेनाओं के बल पर कर लिया करते थे जैसा प्रतिहारों ने किया, बापा रावल ने किया तो दूसरी ओर वह विलास का भी था। ये लोग लक्ष्मी के पुत्र थे, धना-भाव न था जिस वस्तु की अभिलाषा होती, वह वस्तु तुरन्त उनके समीप आ जाती। अत: भोग-विलास का आनन्द भी उन्होंने लूटा। प्रतिहारराजपूत मदिरा और कामिनी में लिप्त रहने वाले थे। अतः विलासिता उनकी आँखों में आगे नाचती थी। यही कारण है कि उनके महा-

काव्य शिशुपालवध में एक ओर वीरता की भावना व्याप्त है तो दूसरी ओर शृङ्गारिकता। इस महाकाव्य के पाठ से अपूर्व आनन्द की उपलब्धि होती है। पाठक भाव-विभोर हो जाते हैं। कुछ क्षणों के लिए सुधबुध खो बैठकर कवि के भावों से आत्मसात् हो जाना ही तो आनन्द का अनुभव है। अन्तर्वृत्तियों का सामंजस्य यही तो है। कवि के कहने में रस है अतः वह पाठक के हृदय के रस को उद्बुद्ध करके साधारणीकरण द्वारा रस का आस्वादन करा रहा है। हम महाकवि का काव्य पढ़ते-पढ़ते अपने संवेदनों में योग्यतानुसार सामंजस्य और अन्विति स्थापित करने लग जाते हैं। उसकी रसानुभूति से ही रसोदय हो जाता है। हमें उसमें अस्मिता वृत्ति का आनन्द लेने लगते हैं। कवि अपनी जिस अनुभूति को कर पाठकों के सम्मुख रखता है वह सब कान्तियुक्त (आनन्दप्रद) बन जाती है। एक उदाहरण देना यहाँ समीचीन होगा—

अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥ ४-४७॥

कन्या की विदाई का करुण दृश्य कैसा सजीव एवं चित्रोपमता को लिए हुए है। योग्य छन्द का ऐसे अवसर पर उसी रूप में लिखना और अलंकार से विदाई को स्पष्ट करना कितना आकर्षक और चित्त पर प्रभाव डालने वाला है? कोई भी पुत्री वाला, जिसने अपनी पुत्री को पति के घर प्रथमावसर पर प्रेषित किया है इस श्लोक को पढ़कर वात्सल्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। उसकी आँखों के सम्मुख ज्यों ही अपना अनुभूत वह दृश्य आयेगा, वह थोड़ी देर के लिए अपने आपको विस्मृतावस्था में पायेगा। अस्मितावृत्ति का उदय अन्तर्वृत्ति के सामञ्जस्य और अन्विति से तत्काल ही होने लगेगा।

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इस प्रकार की अनुभूति के सम्बन्ध में ठीक ही कहा हैं:—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखिनोऽपिजन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भाव स्थिराणि जन्मान्तर सौहृदानि॥ अंक ५॥

ऊपर की पंक्तियों में 'भावस्थिराणि' से स्थायी भाव की ओर ही कवि का संकेत है और सुधि खो आने का अभिप्राय अचेतन मन से चेतन मन में आ जाना है। इस अवसर पर चित्त की एकाग्रता के कारण तमोगुण और रजोगुण के ऊपर सतोगुण की प्रधानता रहती है और आत्मा को स्वयं प्रकाश या स्वाभाविक आनन्द झलकने लगता है। यह है कवि की अभिव्यक्ति और यह हैं आनन्द की पराकाष्ठा। उक्त उदाहरण में नदी समुद्र की ओर प्रवाहित होती हुई चली जा रही है किनारे के पक्षी चहक रहे हैं मानों रैवतक पर्वत पिता के रूप में करुणा से अभिभूत होकर क्रन्दन कर रहा है, क्या इस दृश्य को देखकर कोई ग्रहस्थी उन्मना नहीं हो उठता? क्या उसे अनायास ही पूर्वजन्म की सुधि नहीं आ जाती? क्या यह दृश्य स्थायी भाव को उद्बुध नहीं करता? एक उदाहरण और है जिसमें शिशु रूप की अनुभूति एक अव्यक्त भाव से मानो गोचर होती है?

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसंध्या सुतेव ।। ११-४० ।।

लाल कमलों की पंक्ति रूप सुन्दर हथेलियों एवं पदतलों से युक्त, अनेक भ्रमर पंक्ति रूपी कमल से सुशोभित, नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली तथा पक्षियों के कलरव में बातें करती हुई यह प्रभातकाल की संध्या थोड़े दिनों की कन्या की भाँति अपनी माता रजनी के पीछे दौड़ने लगती है ।

रस-पक्ष

माघ के कला-पक्ष पर विचार करने के बाद कला की आत्मा इसके सम्बन्ध में बहुत संक्षेप में एक सीमा सी प्रस्तुत की गयी। अब माघ काव्य के रस-पक्ष पर थोड़े से विस्तार के साथ विचार कर लेना प्रसंगानुकूल है।

महा कवि माघ ने अपने काव्य को श्री कृष्ण के चरितवर्णन के उद्देश्य से बनाया है यह बात उसके द्वारा निर्मित अन्तिम श्लोक से विदित होती है। श्री कृष्ण के चरितवर्णन के अनेक पक्ष हैं। कवि ने श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार माना है। इस मान्यता के अनुसार भगवान् विष्णु ही सज्जनों की रक्षा के लिए तथा दुष्टों के संहार के लिए समय-समय पर अवतार धारण करते हैं। प्रथम सर्ग में ही इस बात की ओर पर्याप्त सकेत है। नारद का आगमन इसी हेतु हुआ था कि उस समय शिशुपाल जैसा दुष्ट अपने बल के गर्व पर धर्म प्राण प्रजा पर अत्याचार कर रहा था। प्रजा उसके अत्याचारो से अत्यन्त दुखी थी। नारद ने श्री कृष्ण को अपने अवतार का स्मरण दिलाया और पृथ्वी के भार को हल्का करने के लिए इन्द्र का संदेश कह सुनाया। श्री कृष्ण को शिशुपाल का वध करना अत्यावश्यक जान पड़ा अत: इसी निमित्त मन्त्रणा करके अपनी गज, अश्व तथा पदाति सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ की ओर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लिया। शिशुपाल का वध करना साधारण कार्य न था। वह कई राजाओं का अधिपति था। उसे मारने के प्रयत्न का अर्थ था एक भयंकर युद्ध का आह्वान। युधिष्ठिर का यज्ञ ही अपूर्ण रखकर एक महायुद्ध को छेड़ देना भी अनुचित था। वहाँ शिशुपाल के पहुँचने की बात पक्की थी। किसी न किसी प्रसग को लेकर उसके उत्तेजित हो जाने की पूरी सम्भावना थी। उसकी वह उत्तेजना उसके वध का कारण बन जायगी, इस सम्भावना को लेकर इन्द्रप्रस्थ जाने का निश्चय किया गया था। वैसा ही हुआ। श्री कृष्ण का अपमान करने के प्रयत्न में शिशुपाल को युद्ध की योजना करनी पड़ी और फिर श्री कृष्ण के हाथों उसका वध हुआ। काव्य का उद्देश्यपूर्ण हुआ और उसकी समाप्ति हो गयी। महा कवि माघ राजपूत युग के कवि थे। इस युग की तीन ही प्रधान भावनाएं थी, वीर-भावना, श्रृंगार भावना और भक्ति भावना। तत्कालीन संस्कृत कविता मुख्यत: इन्हीं तीन धाराओं में प्रवाहित होती थी। राजदरबारों में वे ही कवि सम्मान पाते थे जो कवि होने के साथ-साथ बहुज्ञ भी होते थे। वीरता के प्रशंसक और विलासमय जीवन के उत्तेजक कवि वहाँ विशेष रूप से सम्मानित होते थे। वीरता के आलम्बन होते थे रात दिन होने वाले युद्ध और श्रृंगार के आलम्बन होते थे नायक-नायिकाओं के विभिन्न कालों के व्यापार। धर्म भावना इन दोनों भावनाओं को किसी ईश्वरीय अवतार में संनिविष्ट करने में सहायक हो

जाती थी। इससे लौकिक और पारलौकिक हितों का समाधान हो जाता था। शिशुपाल वध काव्य का मुख्य रस वीर रस है, केवल श्रृङ्गार रस नहीं। महाकवि माघ ने हिन्दू संस्कृतिके प्रतीक आदर्श महाराज श्री कृष्ण की वीरता के गुण गाकर एक वीर काव्य की रचना की है जिसमें श्रृंगारादि रस अंग रूप से आ जाते हैं। मल्लिनाथ ने इस विषय में कहा है :—

"नेतास्मिन् यदुनंदनः स भगवान् वीर : प्रधानो रस :
श्रृंगारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषय श्चैद्यावसाद : फलं
धन्यो माघ कविर्वयं तु कृतिनः तत्सूक्तिसंसेवनात्॥"

महा कवि माघ ने युद्धवीर आदर्श पुरुष श्री कृष्ण का वर्णन किया है। उस वर्णन के रूप में कहीं-कहीं पर अपने समय के शक्तिशाली महाराजा आदिवराह नामधारी भोज की प्रशंसा में भी कवि ने अत्युक्ति से काम लिया है, देखिए :—

तत्पुराज्ञि भवति स्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्री वराहमपहाय योग्यता॥ १४, १४॥

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है तथा उसके सहयोगी रौद्र और भयानक हैं।

महाकवि माघ ने श्री कृष्ण की युद्ध वीरता का बहुत ही विशुद्ध वर्णन किया है। उनके वर्णन वीर प्रकृति वाले व्यक्तियों में नवजीवन का संचार कराते हैं। कवि के चरित नायक हिन्दू संस्कृति के रक्षक एवं दुष्टों के संहारक एक अवतारी पुरुष हैं। वीर रस के वर्णन की सफलता के लिए कवि के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने चरितनायक के विरोधी के शौर्य का भी वर्णन करे। वीरता का आनन्द तो गर्जना कर उछल कर आते हुए सिंह की शिकार से मिलता है, बेचारी दीन वाणी 'मैं मैं' करती हुई भेड़ों के मारने से नहीं। बीसवें सर्ग में शिशुपाल और श्री कृष्ण के मध्य जो तुमुल युद्ध छिड़ा इसका और १८वें और १९वें सर्गों में युद्ध भूमि में क्या-क्या हुआ करता है इस पर सविस्तर वर्णन है। वहाँ कवि की वीरता पूर्ण अनुभूतियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। ये वर्णन एकांगी नहीं हैं उनमें अपने चरित नायक के बहुमुखी चरित्र की मर्यादा का पूरा ध्यान रखा गया हैं। वहाँ वीर रस के सहयोगी रौद्र और भयानक रसों का भी यथास्थान समावेश हो गया है पन्द्रहवें सर्ग के श्लोक संख्या ४८ से श्लोक संख्या ५७ तक रौद्र रस के स्थायी भाव क्रोध के अनुभावों का वर्णन है। नीचे वीर रस के एक दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :—

आक्रम्यैकामग्रपादेन जंघामन्यामुच्चैराददानः करेण।
सास्थिस्वानं दारुवद्दारुणात्मा कंचिन्मध्यात्पाटयामास दन्ती॥१८,५१॥
रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुंकार पराङ्मुखीकृता।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे॥१,५६॥

वीर रस के वर्णन में कवि की सफलता का मुख्य कारण यह है कि केवल पुरुष वर्णों की भरमार करके ही वीरता के वातावरण को उत्पन्न नहीं करता किन्तु वह उसके

लिए स्वानुभूतियों से प्रेरित एक उत्साहमय वातारवरण बनाता है, ऐसा वातावरण जो शब्द-श्रुति के बाद ही समाप्त नहीं हो जाता। फिर उसका इस प्रकार की रचना का एक उद्देश्य है, एक महान् उद्देश्य जिसका सम्बन्ध लोक रक्षण से हैं।

कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि भारतीय संस्कृति के उन्नायक एवं आततायियों के संहारक श्रीकृष्ण से नायक को तथा उस समय के उग्रातिउग्र प्रबल प्रजोत्पीड़क शिशुपाल से प्रतिनायक को चुनकर उनके बीच हुये तुमुल युद्ध के प्रसंग से माघ ने अपने काव्य कौशल का प्रशंसनीय परिचय दिया है। माघ के वीररसात्मक इस काव्य का अनुकरण आगे रचे जाने वाले चरित काव्यों में दिया गया है। चरित काव्यों के स्रोतों की गणना में इस महाकाव्य का नाम आदर के साथ लिया जाता है। शिशुपाल वध महाकाव्य के १८वें सर्ग में युद्धों का वर्णन चरित क्यों जैसा है। आगे बताया जायेगा कि किस तरह हिन्दी के वीरगाथा काल के काव्यों में सेनाओं का प्रयाण, तलवारों की चमक, हाथियों की चिंघाड़, योद्धाओं का पारस्परिक युद्ध आदि पर माघ का प्रभाव है।

किन्तु वीर रस की प्रधानता होते हुए भी माघ काव्य में श्रृङ्गार के दृश्य अधिक हैं। इसका कारण युग का प्रभाव है। माघ कवि युग निर्माता तो थे नहीं, वह तो युगानुसारी कवि थे। युद्धोत्तर-काल में राज घरानों में जो होता उसीसे प्रजा प्रभावित रहती। जब वहाँ वासना का उद्दाम स्वरूप फैलने लगा तो जनता ने भी वासनामय जीवन को अपना लिया। फिर वीररस के साथ ही श्रृङ्गार रस का सबसे सुन्दर योग बनता है। वीर ही विलासमय जीवन को बिता सकते हैं और फिर विलास को तिलांजलि भी दे सकते हैं। जितने भी महाकाव्य हैं, यदि उनको इस दृष्टि से पढ़ा जाय तो पता चलेगा कि उनमें अधिकांश महाकाव्यों का आधार कोई नायिका है, जिसके कारण वीरता की अवतारणा हुई है। रामायण और महाभारत जैसे राष्ट्रीय महाकाव्यों में सीता और द्रौपदी को केन्द्र मानकर सारे युद्धों की अवतारणा की गयी है। फिर महाकाव्य के लक्षणों में युद्ध और यात्रा के वर्णनों के साथ-साथ ऋतुवर्णन, वन-विहार, जल-विहार आदि की भी परिगणना कर दी गयी है। वीर और श्रृङ्गार के स्वाभाविक योग-सौन्दर्य के कारण तथा परम्परागत भारतीय काव्य पद्धति के अनुसार माघ ने इस महाकाव्य में वीर और श्रृङ्गार भावना का अपूर्व मिश्रण कराया है। इस महाकाव्य में संस्कृत के और महाकाव्यों की तरह वीर रस ही प्रधान अथवा अंगीरस है और श्रृङ्गार उसका अंग है।

साहित्य दर्पणकार ने श्रृङ्गार की परिभाषा इस भाँति की है :—

श्रृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तम-प्रकृति-प्रायोरसः श्रृङ्गार उच्यते॥

श्रृङ्ग (कामोद्रेक) के आगमन का (उत्पत्ति का कारण) हेतु श्रृङ्गार कहलाता है। वह उत्तम प्रकृति का होता है। ऐन्द्रियवासना मात्र से युक्त कामोद्रेक श्रृङ्गार नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसमें तो शारीरिकता का ही प्राधान्य होता है। श्रृङ्गार के आलम्बन नायक नायिका, उदीप्त करने वाली बातें, सखी, मण्डन, परिहास, ऋतुवर्णन, वन, उपवन, जल-

विहार और चन्द्र आदि हैं, हाव-भाव, भृकुटिभंग आदि उसके अनुभाव हैं। स्थायी भाव रति है। उग्रता, जुगुप्सा, मरण, आलस्य आदि को त्याग कर शेष असूया, धृति आदि सभी भाव संचारी हैं। इस भाँति नायक नायिका का पारस्परिक प्रेम घनीभूत होकर उसमें रतिभाव स्थायिता को प्राप्त करता है। रति का लक्षण बताया गया है ?—

"रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्" संक्षेप में हम इस भाँति कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के हृदय में एक दूसरे के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण जब हो जाता है तो वह अनुकूल परिस्थिति में जागृत होकर मानसिक तथा शारीरिक व्यापारों द्वारा जब घनी-भाव से अभिव्यक्त होता है तो वह रति रूप से शृङ्गार कहलाता है।

काव्य के क्षेत्र में आकर तो सभी चीजें मानवीय मन की विलास अथवा अनुभूतियाँ बन जाती हैं। शृङ्गार भी इसलिए मन का ही विलास है, इसीलिए उसमें मन की कोमल सौंदर्य भावनाओं को ही प्रमुखता मिलती है। हाँ, इस मानस विलास पर दो व्यक्तियोंका आध्यात्मिक योग होता है,उसके अभाव में स्थायी भाव नहीं हो सकता। कालिदास शृङ्गारके प्रमुख कवि है, उन्होंने मानसिकता औरआ ध्यात्मिकता दोनों के संतुलित योग से शृङ्गार की अवतारणा करायी हैं, ।आगे के कवियोंमें यह सन्तुलन कम देखनेको मिलता है,वहाँ आध्यात्मिकता पर मानसिकता अथवा शारीरिकता का प्रभाव अधिक छा गया हैं। यह दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि माघ कवि का युग संस्कृत काव्य को अलंकारमय बनाने का युग था जिसमें विशिष्ट पद रचना के साथ अपने श्रमपरिकर भाव को कविगण रख दिया करते थे। महाकवि माघ स्वयं एक व्यक्ति वैभव संपन्न घर में पोषित हुए विनोदी प्रकृति के जीव थे, घूमने फिरने का उनको व्यसन था ,समकालिक कवियों में एक विशिष्ट स्थान को प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा थी, इसलिए उनकी रचना पर भी भौतिकता का प्रभाव है। उनकी रसिकता उनके शृङ्गा-रिक वर्णनों में प्रत्यक्ष होती है। वहाँ शृङ्गार का विलास अधिक है, रति का स्थायी भाव कम। वहाँ तो प्राय: शारीरिक और मानसिक तुष्टि की अधिक अपेक्षा है। देखिये :—

अनुवपुरपरेण बाहुमूलप्रहितभुजाकलितस्तनेन निन्ये।
निहितदशनवाससा कपोलेविषमवितीर्णपदं बलादिवान्या ॥१७,२१॥
कस्यचित्समदनंमदनीयप्रेयसीवदनपानपरस्य।
स्वादितः सकृदिवासव एव प्रत्युत क्षण विदंशपदेऽभूत् ॥१०,१०॥
सरभसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा, यदधिनिशमपास्तं वल्लभेनांगनायाः।
वसनमपि निशान्ते नेष्यते तत्प्रदातुं, रथचरण विशालश्रोणिलोलेक्षणेन ।११-२३।

शृङ्गार के दो पक्ष हैं, संयोग और विप्रलम्भ। नायक नायिका के परस्परानुराग में मिलन नैराश्य ही 'विप्रलम्भ' है। इस विप्रलम्भ के चार अंग (भेद) हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। पूर्वराग में आलम्बन की अनुपस्थिति सर्वथा अनिवार्य हो ऐसी कोई बात नहीं है किन्तु मिलन के अवसर अथवा साधन के अभाव के फलस्वरूप उसकी अवस्था में

मानसिक क्लेश तो बना ही रहता है। मान का अभिप्राय कोप (प्रणय कोप) है जिसके दो भेद कहे गये हैं—प्रणयसमुद्भव मान (प्रयण मान) और ईर्ष्यासमुद्भवमान (ईर्ष्या मान)। अकारण कोप को प्रणय मान कहते हैं पर ईर्ष्यामान में किसी दूसरी प्रेमिका पर अपने प्रेमी की आसक्ति के देखने, सुनने अथवा अनुभव करने के कारण नायिका के प्रेम का भाजन होना पड़ता है। यहाँ नायक की अन्य प्रेमिकाशक्ति का जो अनुमान है वह तीन प्रकार का है—उत्स्वप्नायितजन्य (स्वप्न द्वारा नायक से अन्य प्रेमिका की बातें बड़बड़ाने से उत्पन्न), भोगाङ्कजन्य (नायक के शरीर पर अन्य नायिका-संभोग के चिह्नों के देखने से उत्पन्न), गोत्रस्खलनजन्य (सहसा नायक के मुख से अन्य नायिका का नाम निकल पड़ने से उत्पन्न)

'विनयति सुदृशो दृशो. परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।
तदहित युवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥७-५७॥

अन्य प्रेमिकाविषयक आसक्ति दर्शन से उत्पन्न ईर्ष्यामान इसमें है।

'नवनखपदभंगं गोपयस्यंशुकेन, स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसंगशंसी विसर्पन्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥११-३४

संभोगचिह्न से अनुमित ईर्ष्यामान उपर्युक्त में है।

मान में प्रेमी युग्म का विच्छेद ही नहीं होता केवल दोनों के मतों के मध्य एक ऐस व्यवधान पड़ जाता है कि संयोग भी वहाँ वियोग (विप्रलम्भ) बन जाता है। जिस भाँति पूर्वराग को वियोग के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करते क्योंकि पूर्वराग योग के पूर्व की स्थिति है। उसमें अभिलाषा की छटपटाहट तो है किन्तु प्रेम का परिपाक वहाँ पर अभी कहाँ ? इसी भाँति मान को विद्वान् संयोग का ही अंग स्वीकार करते हैं। विरहोचित गाम्भीर्य वहाँ कहाँ ? पूर्वराग अथवा मान में प्रवास जैसी अवसाद की वह गम्भीरता वहाँ नहीं है। प्रवास से उत्पन्न विरह गांभीर्य का वर्णन करने में अधिकांश कवि इतने सफल नहीं हुए हैं जितने खँडिता के मान आदि के वर्णनों में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। माघ कवि का षष्ठ व सप्तम सर्ग इसके लिए एक अच्छा उदाहरण है। संयोग में रूपवर्णन तथा मिलन की बातें आती हैं। मिलन में शरीर सुख के विनिमय के साथ विनोद और विहार की भी बातें आती हैं।

सुन्दरता और असुन्दरता की परिभाषा आपेक्षित है। बिहारी कवि ने स्पष्ट कहा है कि जिसका मन जिस वस्तु की ओर अधिक झुका हुआ हो वही वस्तु सुन्दर है। रस-विलास में देव ने रूप के विषय में कहा है—'देखत ही जो मन हरे, सुख अँखियन को देई।'

महाकवि माघ ने अंगों के लावण्य का वर्णन करके रूप का आकर्षक वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

दधत्युरोजद्वयमुर्वशीतलं भुवो गतेव स्वयमुर्वशी तलम् ।
बभौ मुखेनाप्रतिमेन काचन श्रियाधिका तां प्रतिमेनका च न ॥६-८६॥

अतिशय परिणाहवान् वितेनें बहुतरमर्पित रत्नकिंकिणीक ।
अलघुनि जघनस्थले ऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः ॥७,५॥
यानाञ्जनः परिजनैरवतार्यमाणा, राज्ञीर्नेरापनयनाकुल सौविदल्लाः ।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रिय सभयकौपुकमीक्षते स्म ॥५,१७॥

माघ कवि के इस प्रकार के सौन्दर्य वर्णनो मे इन्द्रिय तुष्टि का प्राधान्य रहता है। क्षीण कटि, मोटे-मोटे नितम्ब जिन पर करधनी पडी हो, स्तन विशाल हो, पैरो मे महावर व घुंघरू हो, हाथ मे ककण पहने हुए, लहगे को घुमाती हुई, घूँघट के पट से मुँह को दिखाती हुई माघ की नायिका चल रही है जिससे उसको आनन्द आ रहा है। इन उदाहरणो को रूप वर्णन की श्रेणी मे रक्खा जाता है। सयोग की अगली स्थिति वह है जो उपभोगमूलक होने के कारण वासनामयी होती है। इन वर्णनो मे कवि का रसिक मन अधिक तरगित हुआ है। इन वर्णनो मे वह स्वय उलझे से मालूम होते है। उदाहरणार्थ —

सीमन्त निजमनुबध्नती कराभ्यामालक्ष्य स्तनतटबाहुमूलभागा ।
भर्त्रान्या मुहुरभिलष्यता निदध्यें, नैवाहो विरमति कौतुकप्रियेभ्य. ८,६६॥
प्रस्वेद वारिसविशेष विषक्तमंगे कूर्पासक क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती ।
आविर्भवद्घनपयोधर बाहुमूला शातोदरी युवदृशा क्षणमुत्सवोऽभूत् ॥५,२३॥

ऊपर के श्लोक मे तो कोई सुन्दरी अपने केशपाश को जब हाथो मे बाँध रही थी तब उसके बाहुमूल एव स्तन प्रदेश दिखाई पड रहे थे जिसको उसका प्रियतम उसे अनुरागपूर्वक बार-बार टकटकी लगाये देख रहा था।

नीचे के श्लोक मे पसीने से जो कञ्चुकी भीग गई है उसको कोई नायिका जब निकाल रही थी उस समय मोटे-मोटे स्तन और बाहुमूल भाग जब ही दिखाई दिये कि युवक जनो के लिए क्षणिक उत्सव का कारण बन गई।

देखा न, बाहुमूल केउमड जाने पर तथा विशाल स्तन प्रदेश के दिखलाई पड़ जाने मात्र से नायक व्याकुल होकर टकटकी बाँधे हुए उसके चारो ओर मण्डराता फिर रहा है। इन दोनो श्लोको मे छवि द्वारा व्यजित इन्द्रिय वासना की मादक और भीनी-भीनी मधु गन्ध है। इन्द्रियो के लिए यह एक क्षण भर के लिए पर्व-सा उपस्थित हो गया है।

मिलन की तुष्टि मे प्रेमियो के समस्त मानसिक और शारीरिक व्यापारो की निहिति है। कवि ने नायक नायिकाओ की रस चेष्टाएँ, सुरत, बन विहार, जल-विहार आदि का वर्णन निर्मर्याद होकर किया है। षड्ऋतुवर्णन मे उमडे हुए आनन्द का वर्णन है। कवि प्रेममग्न होकर बदलती हुई ऋतुओ का एक साथ ही वर्णन कर जाते है। इन वर्णनो मे सयोग और वियोग के चित्र अकित होते है। माघ काव्य के छठे और सातवे सर्गो मे सयोग और वियोग के अनेक चित्र मिलते है। नायिकाओ के भेदोपभेदो को स्पष्ट करने वाले बीसियो चित्र वहाँ मिलेगे। कही मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा के चित्र है तो स्वाधीनपतिका, वासक सज्जा, खण्डिता आदि नायिकाओं की अवस्थाओ के चित्र हैं, जो सर्वांग सुन्दर हैं।

ये वर्णन महाकवि के कामशास्त्र सम्बन्धी गहन अध्ययन का परिचय देते है ।

वर्जयन्त्या जनैः सगमेकान्ततस्तर्कयन्त्यासुखसगमे कान्ततः ।
योषयैष स्मरासन्नतापागया सेव्यते ऽनेकया सन्नतापागया ।।४,४२।।
अप्रसन्नमपराद्धरिपत्यौ कोपदीप्तमुररीकृतधैर्यम् ।
क्षालित नु शमित नु वधूना द्रावित नु हृदय मधुवारै. ।।१०,१४।।
उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम् ।
आवरिष्ट विकटेन विवोढुर्वक्षसैव कुचमण्डमन्या ।।१०,४२।।
अशुक हृतवता तनुबाहुस्वस्तिकापिहितमुग्धकुचाग्रा ।
भिन्नशखवलय परिणेत्रापर्यराभ्भि रभसादचिरोढा ।।१०,४३।।
पीडिते पुर उरः प्रतिपेसभर्तरि स्तनयुगेन युवत्याः ।
स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्यास्तन्मयत्वमभवद्धृदयस्य ।।१०,४६।।
दीपितस्मरमुरस्युपपीड वल्लभे घनमभिष्वजमाने ।
वक्रतां न ययतु कुचकुम्भी सुभ्रुवः कठिनतातिशयेन ।।१०,४७।।
ह्रीभरादवनत परिरम्भे रागवानवटुजेष्ववकृष्य ।
अर्पितोष्ठदलमाननपद्मयोषितो मुकुलिताक्षमवाक्षीत् ।।१०,५२।।
केनचिन्मधुरमुल्बणराग बाष्पतप्तमधिक विरहेषु ।
ओष्ठपल्लवमपास्यमुहूर्त सुभ्रवः सरसमक्षिचुचुम्बे ।।१०,५४।।

विश्व में ऐसा कोई प्राणी नही है जिसमे वासना न हो । सृष्टि की उत्पति ही भोग पर अवलबित है । सभोग सुख की मधुरता तथा सरलता बनाये रहने मे सृष्टि का हित है । हमारे आचार्यो तथा ऋषि महर्षियो ने इस बात पर वडा बल दिया है । भरतमुनि कहते है :—

आश्लेषचुम्बननखक्षतकामबोध शीघ्रत्व मैथुनमनन्त सुखप्रबोधम् ।
प्रीतिस्ततोऽपिरसभावनमेवकार्यमेवनितान्त चतुराः सुचिर रमन्ते ।।
आश्लेषचुम्बननख क्षतताडनाति समर्दन प्रसरण खलु शिक्षितानि ।
जिह्वाप्रवेशरसनाग्रहण तुनाभी क्षाभ रत वदति बाह्य रतानि तज्ज्ञः ।।

महाकवि माघ मे इस कथन का प्रतिबिम्ब दर्शनीय है ।

बाहुपीडनकचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्तनिपातैः ।
बोधितस्तनुशयस्तरुणीनमुन्मीमील विशद विषयेषु ।।१०,७२।।

अर्थात् स्त्रियो के शरीर मे रहने वाला कामदेव, निर्दय आलिगन, केशकर्षण, प्रहणन एव दन्त नख क्षतो से जगाये जाने पर जडता रहित होकर जग उठता है ।

भरतमुनि ने वाह्योपचारो का इस भाँति क्रम बतलाया है :

आश्लेषं प्रथमं कुर्माद्द्वितीयं चुम्बनं तथा ।
तृतीयं नखदानं च दंष्ट्राघातं चतुर्थकम् ।।
पंचमं क्षेपणं प्रोक्तं षष्ठं प्रहरणं तथा ।
सप्तमं कण्ठशब्दश्च बन्धाख्यं चाष्टमं रतम् ।।

आचार्य वात्स्यान दस अंग मानते हुए उनका क्रम इस भाँति बता रहे हैं :—

आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तदशन, आसन, प्रहणन, सीत्कार, पुरुषायित, उपसृप्तक, उपरिष्टक ।

आलिंगन करने की भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं जिनसे कामेच्छा जाग्रत होती है । रति क्रिया में इनका व्यवहार आनन्द और विलास का बढ़ाने वाला होता है । आचार्य कहते हैं :-

शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः ।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः ।।

अतः अन्य प्रकार के भी आलिंगन होते हैं, महाकवि माघ के आलिंगन देखिये :—

उत्तरीय विनयात्त्रपमाणारुन्धती किलतदीक्षणमार्गम् ।
आवरिष्ट विकटे न विवोढुर्वक्षसैवकुचमण्डलमन्या ।।१०,४२।।

दोनों ही अन्यमनस्क से खड़े हुए हैं । नायक इतने में ही अपनी नायिका का उत्तरीय अंचल या कुंचकी खींच लेता है । फिर क्या है ? नायिका के स्तन खुल जाते हैं । वह लज्जित होती है । वह भला इस बात को कैसे रुचिकर समझे कि उनके उन खुले हुए कुचों को नायक देखले । इसका वह तुरन्त ही उपाय सोच लेती है । नायक की दृष्टि उसके कुचों पर पड़े इससे पहले ही अपनी छाती को नायक के वक्षःस्थल में चिपका देती है ।

आलिंगन के और भी चित्र देखने योग्य हैं—

प्रियतमेन यया सरुषा स्थितं न सहसा सह सा परिरभ्य तम् ।
श्लथयितुं क्षणमक्षमतांगना न सहसा सहसा कृतवेपथुः ।६,५७।।

शास्त्रकारों ने जिस वृक्षाधिरूढ़क आलिंगन का वर्णन किया है उसका स्वरूप माघ के नीचे के श्लोक से होता है—

विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः ।
रमणमृजुतया पूरः सखीनामकलितचापलदोषमालिलिंग ।।७,४६।।

इसी भाँति का एक दूसरा आलिंगन—

सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयान्या ।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसिरसादवतस्तरेस्तनाभ्याम् ।।७,४७।।

प्रियतमा अपने प्रियतम को आलिंगन करना चाहती है पर प्रियतम इस बात को

समझ ही नहीं पाता अतः फूल के गुच्छे को तोड़ने के बहाने प्रियतमा उसके कन्धे को पकड़ कर ऊँचे उठती है और आलिंगन भी स्वतः हो जाता है। कैसी मधुर कल्पना है।

रमणियों के वेष के सम्बन्ध में आचार्य वात्स्यायन कहते हैं—

प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिरमितमाभरणं सुगन्धितानात्युल्वणमालेपनं तथा शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणीति वैहारिको वेषः।'

महामवि माघ भी अपने शिशुपाल वध महाकाव्य में लिखते हैं—

न नेपथ्यं पथ्यं बहुतरमनंगोत्सवबिधौ।

अनंगोत्सव अर्थात् सुरतकाल में बहुत से वस्त्राभूषणों का प्रयोग उचित नहीं होता। लज्जा स्त्रियों का आभूषण है किन्तु यही लज्जा रतिकाल में विष है। महाकवि माघ ने इस रति-रहस्य को एक उत्तम प्रकरण में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—

'अन्यदाभूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥२,४४॥

महाकवि माघ के अनुसार रमणीयता वह है जो प्रतिक्षण नवीन लगती है—

"क्षणे क्षणे यन्नवता मुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।'

अधिकांश देखा जाता है कि संभोग के समय पुरुष अपनी पत्नी को अपनी इच्छानुसार सचेष्ट न पाकर एक विचित्र सी निराशा का अनुभव करता है। संभोग के समय अपनी स्त्री की निश्चलता एवं स्थिरता से यह समझता है कि उसको आनन्द नहीं आता। वह उसको उस समय अत्यधिक आनन्दित देखना चाहता है। वात्स्यायन ने इसका इलाज बताया है, वह है पुरुषोचित। इसी बात को महाकवि माघ इस रूप में रखते हैं।

'यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसि तत्तदकुर्वन्।
आनुकूलिकतया हि नराणाम क्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः॥१०,७१॥'

रति रहस्य की एक बात और है। देखा जाता है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक स्वार्थी होता है। वह नहीं सोचता कि स्त्री भी उसे चाहती है कि नहीं। इसी को बलात्कार कहते हैं। इसका परिणाम यह होता है दोनों की शक्ति तो क्षीण होती है पर सहसवास से कोई माधुर्य की अनुभूति नहीं होती, महाकवि माघ के पास इस प्रश्न का उत्तर है—

'त्वरयति रन्तुमहो जनमनोभूः।'

महाकवि माघ के श्रृङ्गार के चित्रों को आदि से अन्त तक देख जाने पर शायद ही कोई एक आध चित्र ऐसा होगा जिसमें विप्रलम्भ श्रृङ्गार का वर्णन हो। विप्रलम्भ में श्रृङ्गार के आध्यात्मिक पक्ष की अनुभूति होती है, वही मानव को चिरस्थायी आनन्द की उपलब्धि कराती है। कालिदास और भवभूति की अमरता उनके विप्रलम्भ वर्णन के कारण ही है। चाहे विप्रलम्भ श्रृङ्गार के वर्णन के लिए शिशुपाल वध की कथावस्तु उपयुक्त नहीं है, पर

उसके अभाव में माघ कवि उस ऊँचाई पर नहीं पहुँच सकते जहाँ कालिदास और भवभूति पहुँचे हैं। कई कारणों में एक कारण यह भी है कि माघ कवि आलोचकों की दृष्टि में प्रथम स्थानीय नहीं जँचे।

यह हुआ शृङ्गार रस का भी वर्णन। वीर और शृङ्गार के अतिरिक्त इस महाकाव्य में अन्य रसों का समावेश यत्रतत्र हुआ है। उन रसों के भी कुछ उदाहरण यहाँ संकेतों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं—

बीभत्स रस—

स्फुटमिवोज्ज्वल कांचन कान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥६,५॥
नैरन्तर्याच्छिन्नदेहान्तरालं दुर्भक्षस्य ज्वालिना वाशितेन।
योद्धुर्बाणप्रोतमादीप्य मांसं पाकापूर्वस्वादमादे शिवाभिः १८,७६॥
ग्लानिच्छेदीक्षुत्प्रबोधाय पीप्वा रक्तारिष्टं शोषिताजीर्णशेषम्।
स्वादुंकारं कालखण्डोप दंशंक्रोष्टा डिम्बं व्यष्वणद्व्यस्वनच्च ॥१८॥७७॥
असृग्जनो ऽस्त्रक्षतिमानवमज्जवसादनम्।
रक्षः पिशाचं मुमुदे नवमज्जवसादनम् ॥१९,७८॥

रौद्र रस—

रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।
हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम् ॥१८-१२

रौद्ररस के स्थायीभाव क्रोध के अनुभाव—

शितितारकानुमितताम्रनयनमरुणीकृतं क्रुधा।
बाणवदनमुददीपि भिये जगतः सकीलमिव सूर्यमण्डलम् ॥१५-४८॥

इसी भाँति आगे के ९ श्लोकों में इन अनुभावों का वर्णन है।

हास्य—रभसेन हारपददत्तकांचयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ॥१३,३२॥

महाकवि माघ के व्यभिचारी भावों को भी देख लीजिये जिनका वर्णन उन्होंने शिशुपालवध महाकाव्य में इतस्ततः किया है :—

हर्ष—मन की प्रसन्नता ही हर्ष है। किसी अभिलषित वस्तु की प्राप्ति से यह संभव है। आनन्दाश्रु गिरते हैं, गद्गद् स्वर होता है इसी भाँति अन्य विकार भी होते हैं।

'युगान्तकाल प्रतिसंहृतात्ममो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोवनाभ्यागमसंभवा मुदः॥'

हर्ष का उद्भव मनोरथलाभ, योग्यवस्तु सिद्धि, मित्र संगम, देवता प्रसाद, गुरुप्रसाद राजप्रसाद आदि-आदि से सम्भव है।

विबोध—चेतना की पुनः प्राप्ति ही विबोध है और यह निद्रा के दूर करने वाले कारणों से हुआ करता है। इसमें जंभाई, अंगड़ाई, आँख मींचना, अंगों का देखना आदि आदि हुआ करते हैं।

'चिररति परिखेदप्राप्त निद्रासुखानां
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा,
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः॥

चिरकाल तक रति क्रीड़ा से परिश्रान्त प्रेमियों के सो जाने पर ही प्रेमिकाओं के सोने का अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु इसके पूर्व कि प्रेमी जग जाय, प्रेमिकायें जग पड़ी। वे जाग तो पड़ी किन्तु निद्रित प्रेमियों के भुजालिंगन के शिथिल हो जाने के भय से बिना हिले डुले, जैसे पड़ी थीं वैसे ही पड़ी रहीं;

अपस्मार—चित्त की विक्षिप्तता ही अपस्मार है। ग्रह, भूत, प्रेत आदि के आवेश ही इसके कारण हैं। इसके होने से पृथ्वी पर लोट पड़ना, कँपकँपी, पसीना निकलना, मुँह में झाग भरना, लार टपकना आदि बातें होती हैं—

आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चै लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम्।
फेनायमानं पति मापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के॥"

उपर्युक्त समुद्रवर्णन में अपस्मार के द्वारा कोई रसपरिपोष किया गया प्रतीत नहीं हो रहा है। हेमचन्द्र आचार्य ने काव्यानुशासन में इसी को अपस्मार के अन्तर्गत लेते हुए कहा है 'अयं च प्राय आभासेष्वेव शोभते' इस उपक्रम के साथ यहाँ रसाभास का परिपोषण माना है जो युक्तियुक्त भी है। साहित्य दर्पणकार ने तो इसको अपस्मार के रूप में उद्धृत किया है।

असूया—स्वभाव की उद्धतता के कारण दूसरे की गुण समृद्धि के सहन न कर सकने को असूया कहा जाता है। इसमें दूसरे के दोष का उघद्घोषण किया जाया करता है, भौहें चढ़ जाया करती हैं, दूसरे को तिरस्कृत किया जाया करता है, क्रोधभरी चेष्टायें होने लगती हैं और इसी भाँति के अन्यान्य विकार पैदा हो जाते हैं, शिशुपाल का असूया देखिये—

अथ तत्र पाण्डुतनयेन सदसि विहितं मधु द्विषः
मानमसहत न चेदिपतिः परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम्॥

ग्लानि—लुलित नयनतारा·············वध्व ॥११-२०॥
श्रम—प्राप्यमन्मथ·················केश्यः ॥१०-८६॥
त्रास—त्रस्यन्ती·····················रमण्यः ॥८-२४॥
मद—हावहारि·······················मदेन ॥१०-१३॥
निद्रा—प्रहरकमपनीय···············मनुष्यः ॥११-४॥

कवि माघ ने अपने महाकाव्य में सब ही रसों का सन्निवेश किया है। कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ एक ही श्लोक में तीन-तीन रसों की ध्वनि है। ५०वें श्लोक में वीर, भयानक और शृङ्गार इन तीन रसों की ध्वनि एक साथ ही व्यक्त होती है। ५३वें श्लोक में वीर और भयानक रस की ध्वनि है।

जैसे माघ काव्य चरितकाव्यों के लिए एक स्रोत है, उसी प्रकार उनके शृङ्गार वर्णनों का भी उत्तरवर्ती संस्कृत और हिन्दी कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। चन्द्रोदय, प्रभात और सूर्यास्त का वर्णन, वन विहार तथा जलविहार आदि के वर्णनों का अध्ययन इस दृष्टि से किया जा सकता है।

भक्ति-भावना—

संस्कृत के साहित्य शास्त्रों में भक्ति को एक स्वतन्त्र रस नहीं माना गया है, उसकी गणना एक भाव के रूप में की गयी है। जैसा पहले कहा जा चुका है, इस महाकाव्य में वीर भावना, शृङ्गारभावना और भक्ति-भावना तीनों ही स्फुट रूप में हैं। वीर भावना चाहे प्रधान है, किन्तु शृङ्गार तथा भक्ति भावना भी अप्रधान नहीं हैं। दूसरे रस और भाव तो गौण हैं। महाकवि माघ भक्त कवि हैं। वह श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन करना चाहते हैं अतः कभी वे नारद के रूप में श्रीकृष्ण के चरित का गुणगान करते हैं तो कभी पाण्डवों तथा उनके पक्ष के लोगों के माध्यम से अपनी भक्ति को व्यक्त करते हैं। नारद के मुख से श्रीकृष्ण के चरित का गान कराना अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक अंग है, नारद स्तुति करते हैं—

"उदीर्णरागप्रतिरोधकंजनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूर्मिनिरपायसंश्रया॥१,३२॥
उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥१३।३३॥
निवेशयामासिथहेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरः सुभूतलम्॥१,०४॥

चौदहवें सर्ग में श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के प्रसंग के बहाने भीष्म के रूप में आगे कवि माघ स्वयं श्रीकृष्ण के चरित्र का गुणगान करते हैं।

इसी भाँति श्रीकृष्ण की लीला के प्रति जो कवि का भाव है और जिसे उसने पांडवपक्षीय लोगों के माध्यम से व्यक्त किया है वह भी बड़ा सुन्दर है।

भाव-पक्ष के अंतर्गत महाकवि की भक्ति का स्वरूप

अधिकांश रूप में देखा गया है कि शृङ्गार और भक्ति का योग होता है। जब शृङ्गार-भावना अपने आराध्य के प्रति समर्पित हो जाती है तो वह भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। इसी तरह युवावस्था की शृङ्गार भावना बहुत बढ़ी हुई अवस्था में भक्ति के रूप में बदल जाती है। शृङ्गारी कवि पहुँचे हुए भक्त भी देखे गये हैं—

हमने इस बात को पाठकों के सम्मुख रखने का बार-बार प्रयास किया है कि महाकवि माघ का शिशुपालवध महाकाव्य लिखने का एक उद्देश्य यह भी था कि वह श्रीकृष्ण के चरित का गुणगान करना चाहते थे इसीलिए "वंशवर्णनम्" के अन्तिम श्लोक में दूसरी पंक्ति में उन्होंने "लक्ष्मीपतेश्चरित कीर्तन चारु माघ" ऐसा लिखा है। यह माघ काव्य लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान् के अवतार श्रीकृष्ण के सुन्दर-सुन्दर चरित्रों के गुणगान से भक्तों के लिए भी ग्राह्य हो गया है। महाकवि माघ की यह भक्ति किस प्रकार की थी?

श्रीमद्‌भागवत में वर्णन की गई नवधा भक्ति के आदर्श स्वरूप प्रह्लाद थे। अपने पिता हिरण्यकशिपु से पूछे जाने पर कि गुरुजी ने आज तक तुमको क्या पढ़ाया है, उन्होंने उत्तर दिया—

> श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
> अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
> इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
> क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ भागवत ७-५-२३-२४।

यहाँ नव प्रकार की भक्ति बताई है श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भगवान् की चरण-सेवा, पूजन, वन्दन, भगवान् में दासभाव सखाभाव तथा अपने को समर्पण कर देने का भाव ये ही नवधा भक्ति के रूप हैं।

१—श्रवण भक्ति—जो भगवान् में पूर्ण प्रेम रखते हैं उन भक्तों के द्वारा कहे हुए भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्व और रहस्य से पूर्ण अमृतमयी कथाओं का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना तथा उन अमृतमयी कथाओं का श्रवण करके उनके प्रेम में मुग्ध हो जाना श्रवणभक्ति है।

माघ काव्य में महाकवि माघ की श्रवण भक्ति का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता है क्योंकि उन्हें भगवान् के नाम को किसके द्वारा सुनना है। उनको तो शिशुपाल

के वध की कथा पाठक अथवा श्रोताओ को सुनानी है । इसके अतिरिक्त वह स्वय पडित एव ज्ञानी है, पुराणो एव शास्त्रो के ज्ञाता है अतः ज्ञान की वा भक्ति की बाते सुनने के लिए उनको अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही हुई ।

२—**कीर्तन भक्ति**—भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्व और रहस्य का श्रद्धा और बडे प्रेम और उत्साह के साथ उच्चारण करते-करते शरीर मे रोमाच, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदय की प्रफुल्लता एव मुग्धता आदि का होना कीर्तन भक्ति कहलाता है।

शिशुपालवध महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य ही भगवान् के चरित का कीर्तन करना है अत जहा-जहाँ भी भगवान् से सम्बन्धित बाते आई है वही-वही पर कवि का हृदय प्रफुल्लित होकर भगवान् के तत्व और रहस्य को श्रद्धा के साथ प्रस्तुत करता है। कथानक मे जहाँ कही भी विश्राम का अवसर मिला वही पर हो सका तो भगवान् का गुणगान करना आरम्भ कर दिया। कही-कही तो माघ ने एक कथावाचक के रूप मे भगवान् श्रीकृष्ण के सगुणरूप का वर्णन किया है।

भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर रहे है उस समय भृत्य वर्ग ने सूर्य की धूप का निवारण करने के लिए उन पर छत्र लगा दिया। उनके दोनो ओर चवर ढुल रहे है मानो आकाश गगा की धारा दोनो ओर से प्रवाहित हो रही हो उनके मस्तक पर मुकुट की मणियाँ रग बिरगी धातुवाली थी, कानो मे मरकत मणि से जडे हुए सुन्दर कुण्डल थे जिनकी पीत किरणे उनके नीले वक्ष स्थल पर पडकर मयूरपिच्छ की भ्रान्ति पैदा करती थी। उनकी दोनो भुजाओ के केयूर थे वह मुक्ता माला धारण किए हुए थे, कौस्तुभ मणि भी उन्होने धारण कर रक्खी थी, पीताम्बर धारी थे, कौमोदकी, नन्दक, शार्ङ्ग, पाचजन्य आदि को अपने हाथो मे धारण करके रथ पर विराजमान हुए प्रस्थान कर रहे थे। इस भाँति तृतीय सर्ग मे श्लोक सख्या दो मे श्लोक सख्या २२ तक भगवान् श्रीकृष्ण की उस साकार मूर्ति का वर्णन कवि ने किया है जो पढने योग्य है। रथ पर चढकर श्रीकृष्ण अपनी सेना के सहित द्वारकापुरी से बाहर निकल रहे है उसी मे भक्त कवि को भगवान् द्वारा बनाई हुई तथा वेदो, पुराणो व शास्त्रो मे वर्णित सृष्टि का स्मरण हो आता है वह आनन्दविभोर होकर कह बैठता है—

> प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः ।
> मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः ।।३-६५।।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते', 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुराजन्य कृत' इत्यादि श्रुतियो का निचोड कवि ने यहाँ सुन्दरता पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है।

रैवतक पर्वत से इन्द्रप्रस्थ की ओर श्रीकृष्ण अपनी सेना के साथ चले जा रहे है। कवि मार्ग मे चलती हुई उस सेना के कार्य-कलापो, मनोविनोदो का वर्णन करता है। अश्वो, ऊँटो, रथों आदि के चलने के साथ-साथ गजो के चलने पर व्याकुल रमणियो का वर्णन करते हुए ही कवि श्रीकृष्ण के गुणगान मे लग जाता है। आगे चलते है तो गोपमडली गप्पें लगा

रही है। गोपो के साथ श्रीकृष्ण के साहचर्य का स्मरण हो आता है। नीचे के श्लोको मे श्रीकृष्ण का कीर्तन बडा सुन्दर हुआ है—

आगच्छतोऽनूचि गजस्य घण्टयो. स्वन समाकर्ण्य समाकुलाङ्गना ।
दूरादपावर्तितभारवाहणा. पथोऽपसस्रुस्त्वरित चमूचरा: ।।१२-३४।।
ओजस्विवर्णोज्ज्वलवृत्तशालिन: प्रसादिनोऽनुज्झितगोत्रसविद: ।
श्लोकानुपेन्द्रस्य पुर स्म भूयसो गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति बन्दिन: ।।३५।।
नि.शेषमाक्रान्तमहीतलोजलैश्चलन्समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम् ।
ग्रामेषु सैन्यैरकरोदवारितै: किमव्यवस्था चलितोऽपि केशव ।। ३६।।
गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्सनादमुत्थाय मुहु: सवल्गत: ।
ग्राम्यानपश्यत्कपिश पिपासत: स्वगोत्रसकीर्तनभावितात्मन ।।३८।।

श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ मे प्रविष्ट हो जाने पर तो कवि युधिष्ठिर के रूप उनके गुणो का गायन करता हुआ अघाता नही है। फिर श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के बहाने भीष्म के रूप मे भी कवि भक्ति मे विभोर होकर कीर्तन करने मे तल्लीन है। चौदहवाँ सर्ग इस कीर्तन से भरा पडा है। कुछ श्लोक यहाँ प्रस्तुत किये जाते है—

आदितामजननाय देहिनामन्ततां च दधतेऽनपायिने ।
बिभ्रते भुवमध: सदाथ च ब्रह्मणोऽप्युपरितिष्ठतेनम. ।।१४-६५।।
केवलं दधति कर्तृवाचिन. प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।
धातव: सृजति सहृशास्तय: स्तौतिरत्र विपरीत कारक. ।।६६।।
पूर्वमेप किल सृष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ ।
तच्चकारणमभूद्धिरण्मय ब्रह्मणोऽसृजदसाविद जगत् ।।६ ।।
सत्यवृत्तमपि मायिन जगद्वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम् ।
जन्म बिभ्रतमज नव बुधा य पुराणपुरुप प्रचक्षते ।।७०।।

फिर कवि प्राय सभी अवतारो का समाहार श्रीकृष्ण मे करता हुआ आनन्द मे मग्न होकर भीष्म के रूप मे ही युधिष्ठिर को साधुवाद देता है जिसके समक्ष भगवान् स्वय आकर उपस्थित होगए है, देखिये—

धन्योऽसि यस्य हरिरेष समक्ष एव, दूरादपिक्रतुषु यज्वभिरिज्यते य: ।
दत्वार्घमत्रभवते भुवनेषु यावत्ससारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम् ।।८७।।

शिशुपाल जैसे दुष्ट का वध कर लेने से ही श्रीकृष्ण के चरित्र की समाप्ति नही हो जाती नर रूप के अतिरिक्त उनका एक रूप और भी है जिसकी अभिव्यक्ति तथा कथित चौतीस प्रक्षिप्त श्लोको मे प्रतीयमान अर्थ के रूप मे हुई है—उदाहरणार्थ—

न महानयं न च विभर्ति गुणसमतया प्रधानताम् ।
स्वस्य कथयति चिराय पृथग्जनतां जगत्यनमिमानतां दधत् ।।१५-२ प्रक्षिप्त।।
क्षणमेष राजसतयैव जगदुदयदर्शितोद्यतिः ।
सत्वहितकृतमतिः सहसा तमसा विनाशयति सर्वमावृतः ।।१५-१३ प्रक्षिप्त।।

अर्थ—यह कृष्ण न तो सर्वोत्कृष्ट है और न गुणों के समूहों से युक्त होने के कारण ही कोई प्रमुखता रखता है। अपने को अहंकार विहीन बतलाकर जगत् में चिरकाल तक यह अपनी हीनता को ही प्रमुखता प्रकट करता है।

प्रतीयमान अर्थ—न तो वह महान् या महत्व हैं और न प्रधान ही है। अहंकार से रहित होने के कारण यह इस जगत में साधारण जनों से पृथ्क अपनी सत्ता रखते हैं, एवं पंचतन्मात्रा तथा पंचभूतों से भी यह परे हैं। अर्थात् न तो यह महान् हैं, न प्रधान हैं, न भूत हैं, न तन्मात्रा हैं, न अहंकार हैं प्रत्युत इन सब से (चौबीसों से) परे पचीसवें पदार्थ परम पुरुष हैं।

दूसरे श्लोक में भी प्रतीयमान अर्थ में ब्रह्म, विष्णु और शिव रूप में इन्हें बताया है।

कीर्तन के रूप में गुणगान का एक और अवसर भी आया है। शिशुपाल सेना सहित श्रीकृष्ण के साथ रण संग्राम में लड़ना चाहता है, किन्तु युद्ध के नियमों के अनुसार दूत के द्वारा संवाद तो भेजना चाहिए। इसी क्षत्रियोचित परंपरा के पालन के लिए शिशुपाल सात्यकि को दूत बनाकर भेजता है। वहाँ पहुँचकर सात्यकि का दूत-कृत्य एक संवाद में बदल जाता है। कवि को कीर्तन का यह एक अच्छा अवसर मिल जाता है। कवि की इस संवाद में स्तुति निन्दा में पर्यवसित होती है। स्तुति रूप अर्थ कीर्तन ही है। उदाहरणार्थ—

अधिवह्नि पतंगतेजसो नियतस्वान्तसमर्थकर्मणः ।
तव सर्वं विधेयवर्तिनः प्रणतिं बिभ्रति केन भूभृतः ।।१६-५।।
जनतां भयशून्यधीः परैरभिभूतामवलम्बसे यतः ।
तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दधत्यगण्यताम् ।।१६-६।।

युद्धभूमि में श्रीकृष्ण को युद्ध कराते हुए भी कवि उन्हीं के कीर्तन में इस भाँति लग जाता है—

चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः संधिषु लीनसर्वसिन्धोः ।
उदगुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः ।।२०-६६।।

शास्त्रोक्त बात है—

यस्य केशेषु जीमुतानद्यः सर्वांगसन्धिषु ।
कुक्षौसमुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ।।

यह तो हुआ साकार ईश्वर का कीर्तन। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन प्रथम सर्ग में निराकार रूप में इस भाँति कवि नारद के मुख से हुआ है—

उदीर्णरागप्रतिरोधक जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाति दुर्गमम् ।
उपयेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूर्मिनिरपाय सश्रया ॥३२॥
उदासितारनिगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथचन ।
बहिर्विकार प्रकृते. पृथग्विदु· पुरातनं त्वा पुरुष पुराविदः ॥३३॥

इस भाँति माघ निराकार रूप का कीर्तन करते हुए फिर साकार रूप (सगुण रूप) का कीर्तन करने लग जाते है—

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्व मुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसुभूतलम् ॥ १-३३॥
अनन्यगुर्वास्तिव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते ।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरै· करोत्यध. ॥३५॥

३—स्मरण भक्ति—प्रभु के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला तत्व और रहस्य का प्रेम मे मुग्ध होकर मनन करना और इस भाँति मनन करते-करते भगवान् के स्वरूप मे तल्लीन हो जाना ही स्मरण भक्ति है ।

महाकवि माघ के कीर्तन मे स्मरण भी समाविष्ट है। भगवान् श्रीकृष्ण को बारम्बार स्मरण करने का तो मानो उनका स्वभाव ही बन गया था। वह सदैव सर्वगुणसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप लावण्य संयुक्त स्वरूप का विशेष रूप से स्मरण किया करते थे ।

४—पाद-सेवन, (५) अर्चन, (६) बन्दन इन भक्ति भेदो का इस काव्य मे प्रसग नही आया।

७—दास्य भक्ति—प्रभु को स्वामी और अपने को सेवक समझना दास्य भक्ति के लक्षण है। माघ की भक्ति कुछ-कुछ इसी रूप की है। (८) श्रीकृष्ण के प्रति युधिष्ठिर आदि पाडवो का जो भाव है वह कुछ-कुछ सख्य भक्ति से मिलता जुलता है ।

९—आत्मनिवेदन भक्ति—इसमे तन-मन-धन सहित अपने आपको तथा कर्मो को श्रद्धापूर्वक और प्रेमपूर्वक भगवान् के समर्पण कर देना है ।

कवि ने जहाँ श्रीकृष्ण को पूज्यतम भक्ति बताया है, वहाँ यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति का सारा श्रेय श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया है। पाडवो ने श्रीकृष्ण के परामर्श को स्वीकार करके अपना सारा चित्रण, नीति धर्म आदि ईश्वरार्पित कर दिये है ।

कवि ने जैसा इसकी जीवनी से विदित होता है, ईश्वर की विभूतियो के रूप मे आये हुए अतिथियो तथा याचको को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है ।

उपर्युक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का जो स्वरूप प्रदर्शित किया है वह प्रमुखतया दूसरी और तीसरी प्रकार की भक्ति के अन्तर्गत है ।

इस भाँति हम देखते है कि चाहे महाकाव्य मे कलापक्ष मुखरित है तब भी भावपक्ष ही प्रबल है ।

प्रकृति-वर्णन

"प्रकृति ईश्वरीय विभूति है। उसकी सुषमा नवनवोन्मेषशालिनी है। मानवीय कल्पना तो प्रकृति के बीच विकसित होती ही है, साथ ही साथ मानवीय अनुभूतियों के लिए भी प्रकृति एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती है। कवित्व अनुभूतियों पर आधारित, कल्पना के द्वारा प्रसारित होता हुवा प्रकृति की गोद में अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलीभूत होता है वाल्मीकि से लेकर आज तक जितने भी कवि हुए हैं उन्होंने प्रकृति का वर्णन कई रूपों में किया है। कभी उसे मानवीय रूप में देखता है, वह उसे विराट् पुरुष के रूप में प्रतिभासित करता है, तो कभी वह उसे अपने वर्णनीय विषय के अप्रस्तुत विधान के लिए उपयोगी समझता है। जिस कवि की जितनी पहुँच है, प्रकृति उसके लिए उतनी ही ऊँचाई के साथ अपनी ओर खींच सकी है। इसीलिए प्रकृति चित्रण की प्रणालियाँ भी विभिन्न हैं। चित्रात्मक प्रणाली कवि प्रकृति के रूप का विस्तृत विवरण चित्रित करता है, संवेदनात्मक प्रणाली में प्रकृति और पुरुष की एकात्मकता अंकित होती है। इसमें कवि की भावना प्रकृति के नाना रूपों को रंग में रंग देती है और कवि को प्रकृति के रूप में अपनी प्रतिकृति दिखाई पड़ती है। प्रकृति और पुरुष का यह सामंजस्य भाव है जहाँ प्रकृति पुरुष पर आकर्षित होकर रीझती है तो पुरुष प्रकृति पर। अलंकारात्मक प्रणाली में प्रकृति का अप्रस्तुत के रूप में प्रयोग होता है। अलंकार योजना प्रभाव प्रस्तुत के साथ और प्रस्तुत के साम्य के आधार पर की जाती है। प्रकृति केवल देखने की ही वस्तु हो ऐसा तो नहीं है उससे तो विभिन्न प्रकार की शिक्षा भी प्राप्त की जा सकती है। अतः कभी-कभी प्रकृति को कवि उपदेशक के रूप में प्रस्तुत करता है।

प्रकृति के विभन्न स्वरूपों का चित्रण कवि इसी प्रकार की प्रणालियों से करता रहा है। यह चित्रण कभी मानव सापेक्ष और मानव निरपेक्ष होता है। प्रकृति के यथार्थ रूप का वर्णन करना एक बात है तथा उसको भावों से संलिष्ट करना दूसरी बात है।

महाकवि माघ ने बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। बाह्य प्रकृति के चित्रण में कवि की अन्तरात्मा मानो प्रत्येक दृश्य के साथ रम सी गई है। दृश्यों का ऐसा ब्योरेवार और संश्लिष्ट चित्रण है कि चित्र इन आँखों के सम्मुख नृत्य सा करने लगता है। नीचे ऐसा ही एक दृश्य प्रस्तुत है—

उदय शिखरि शृङ्ग प्रांगणेष्वेव रिंगन् सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः
विततमृदु कराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ॥११॥

जैसे कोई बालक आंगन में खेल रहा है, स्नेहशील माँ उसे पुकार रही है, और वह हंसते हुए अपने कोमल हाथ फैलाकर उसकी गोद में जा गिरता है, उसी भाँति यह बाल सूर्य उदयाचल के शिखर रूपी आंगन में थिरकता हुआ, खिले कमल-मुखों से हंसती हुई पद्मिनियों को देखते-देखते अपने कोमल करों (किरणों) को फैलाकर, पक्षियों के कलरव के व्याज से पुकारती हुई अपनी आकाश रूपी माता की गोद में लीला-पूर्वक उचक रहा है।

उदय होते हुए बाल सूर्य का यह वर्णन कितना अजीब सालंकार है। प्रस्तुत प्रकृति अप्रस्तुत मानवीय सम्बन्धों की स्नेहमयी अनुभूति की कैसी तीव्र संवेदना कराती है। चतुर्थ सर्ग में जहाँ रैवतक पर्वत को एक विशाल हाथी का रूप दिया है वह भी माननीय है—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुची हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बि-घंटा-द्वय-परिवारित-वारणेन्द्र-लीलाम् ॥४-२०॥

रैवतक पर्वत की प्रातःकालीन सुषमा का यह सजीव वर्णन है। ऊपर फैली हुई किरण रूपी रज्जु से युक्त सूर्य एक ओर उदित हो रहा है और दूसरी ओर चन्द्रमा अस्त हो रहा है। जान पड़ता है कि यह रैवतक उस गजेन्द्र की शोभा धारण कर रहा है जिसके दोनों ओर दो उज्ज्वल घंटे लटक रहे हों।

पर्वत की हाथी से तथा उसके दोनों ओर लटकने वाले सूर्य तथा चन्द्र की घंटा से तुलना कितनी सुन्दर है। आलोचकों को यह कल्पना इतनी रुचिकर लगी कि मुग्ध होकर उन्होंने माघ को "घंटामाघ" की उपाधि दे डाली।

रूप चित्रण का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है। आकाश से फैले काले-काले मेघों के नीचे कर्पूर पांडुर महर्षि नारद का यह रूप-चित्र है—

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढ़ कर्पूरपराग पांडुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना ॥

नवीन और विस्तृत काले-काले बादलों के नीचे वे नारदजी कपूर के चूर्ण की ढेर की भाँति अत्यन्त गौरवर्ण के दिखाई पड़ रहे थे। उस समय (काले-काले बादलों के अत्यन्त निकट होते समय) क्षण भर के लिए उनकी शोभा तांडव नृत्य के समय हाथी का काला चमड़ा पीठ पर ओढ़े हुए एवं शरीर पर श्वेत भस्म लपेटे हुए शंकर के समान दिखाई पड़ रही थी।

तृतीय सर्ग में श्लोक संख्या ४ से ११ तक श्रीकृष्ण का रूप चित्र है जिसमें वह मुकुटधारी है। उनकी श्याम काया पर मोतियों की माला है तथा पैरों पर लटकती हुई लंबी माला है, वह यज्ञोपवीत और पीताम्बर धारण किये हुए हैं, कानों में कुंडल मस्तक पर मयूर-पंख तथा भुजाओं पर केयूर।

माघ ने रूप चित्रों को बड़ी सावधानी से चित्रित किया है।

संवेदनात्मक रूप में भी महाकवि ने मानव सापेक्ष प्रकृति-चित्रण का चित्रण किया

है। रैवतक से प्रवाहित होने वाली नदियों के वर्णन में एक प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति दर्शनीय है।

अपशंकमंक परिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ।। ५-४७ ।।

पर्वतीय नदियाँ कल-कल शब्द करती हुई प्रवाहित हो रही हैं। ये निर्भय होकर उसी की गोद में लोट-पोट होती रहती हैं। अतः वे रैवतक की पुत्रियाँ हैं। आज वे अपने पति समुद्र से मिलने के लिए जा रही हैं, इस कारण रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर से रोता हुआ मानो अपने वात्सल्य को प्रकट कर रहा है। कन्या के पति गृह जाने के समय पिता का हृदय आर्द्र हो ही जाता है चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो 'पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेष दु:खैर्नवैः' रैवतक भी पक्षियों के करुण स्वर से कन्याओं के गमन के अवसर पर रुदन कर रहा है।

चतुर्थ सर्ग में प्रकृति की नैसर्गिक छटा के चित्र एक स्थान पर नहीं अनेक स्थानों पर हैं। कहीं पर चित्रात्मक प्रणाली का आश्रय लेकर कवि प्रकृति के बाह्य रूप का विस्तृत वर्णन करता है तो कहीं संवेदनात्मक प्रणाली से पाठक को भावों में विभोर कर देता है। अलंकारात्मक प्रणाली का आश्रय तो कवि ने इसी सर्ग में नहीं अपितु सभी सर्गों में किया है। इनके प्रकृति वर्णन में कल्पना की रंगीन छाया के साथ ही अलंकारों के सौन्दर्य की छटा है। कल्पना और अलंकारों के मध्य वह प्रकृति के सहज सौन्दर्य को कभी खण्डित नहीं होने देते।

ऋतु-वर्णन भी प्रकृति-वर्णन का ही एक रूप है। चतुर्थ सर्ग के रैवतक वर्णन में छठे सर्ग में छहों ऋतुओं का सविस्तार वर्णन हुआ है। मनुष्य सौन्दर्योपासक प्राणी है। कला सौन्दर्य की अनुभूति ही नहीं करती अपितु नवीन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है। कविता सौन्दर्य का मूर्तिमान् रूप है। सौन्दर्य को अपनी कविता का मूर्त रूप देना कवि अपने और समस्त संसार के एकत्व की स्थापना करते हैं। एक अर्थ में कविता विश्व-व्यापिनी सौन्दर्योपासना है। जन साधारण के कथन की अपेक्षा कवियों के कथन में कुछ विलक्षणता होती है। जिन आँखों से कवि प्रकृति को देखते हैं वे आँखें कुछ और ही होती हैं। देखिये महाकवि माघ ने पर्वतों पर वर्षा का आगमन कुछ पहले ही हो जाता है इस बात को कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसे कोई चंचल नयना एवं उन्नतस्तना नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा करने में समर्थ न होकर निर्दिष्ट समयसे पूर्व ही अभिसरण करती है, उसी भाँति चमकती हुई बिजली और उमड़े हुए श्यामकाय मेघों से युक्त वर्षा ऋतु भी अपने प्रियतम रैवतक पर्वत के समीप समय के कुछ ही पूर्व आ पहुँची है। इसका अधोलिखित श्लोक देखिए—

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ।। ६-२५ ।।

हिन्दी के कवियों ने भी जिसमें सेनापति और बिहारी प्रमुख हैं उत्प्रेक्षा द्वारा इस प्रकार का वर्णन किया है। बिहारी 'लू' का वर्णन करते हुए कहते हैं—

अरी न यह पावक प्रबल लुएँ चलति चहुँ पास ।
मानहुँ विरह बसन्त के ग्रीषम लेति उसाँस ।।

कवि माघ का यह वर्णन देखिए—

अवचित कुसुमा विहाय वल्लीर्युवतिषु कोमलमाल्यमालिनीषु ।
पदमुपदधिरे कुलान्यलीनां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ।। ७-६१ ।।

भ्रमरबृन्द उन (रिक्त) लताओं को, जिनसे युवतियों ने सब फूल चुन लिए थे छोड़कर कोमल मालाओं के धारण करने वाली युवतियों के ऊपर आंकर बैठ गए। सत्य है मलिन आत्मा अथवा काली देह वालों से चिरकाल का भी परिचय व्यर्थ होता है। हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य तुलसी की यह पंक्ति इससे मिलती जुलती है—

"दामिनि दमक रही घन मांही, खल की प्रीति यथा थिर नांही।"

महाकवि माघ ने शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए एक सुन्दर उपदेश भी दे डाला है, देखिए—

समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम् ।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम् ।। ६-४४ ।।

इस पद्य में उत्प्रेक्षा द्वारा कहा गया है कि समय ही शरीर धारियों को बलवान् और निर्बल बनाता है। ऐसे वर्णन माघ ने अन्यत्र भी किये हैं—जैसे अस्त होते हुए सूर्य में अपनी वृद्धावस्था के लक्षण देखकर प्रभावित होना, सर्ग ६, ३ में नदियों के बहकर जाने में पुत्री के सुसराल जाने का दुःख, आदि। अन्य उद्दीपनों की भाँति शृंगार के भी उद्दीपन दो भाँति के होते हैं एक मानव व्यापारों में मुस्कराहट, गीत, वाद्य, दूती आदि की चेष्टा में है और प्राकृतिक सुषमा में चन्द्र, चाँदनी, नदी, पुलिन, कमल, बकुल, मौलसरी कोयल की कूक, पलास के पुष्प, पाटल पुष्प, मेघ का घनगर्जन, चपला की चमक आदि है। हिन्दी के कवि मतिराम ने प्राकृतिक उद्दीपनों को इस भाँति गिनाया है—

चन्द्र कमल चंदन अगर, ऋतु वन बाग विहार।
उद्दीपन शृंगार के ये उज्ज्वल शृंगार।।

ऋतुओं का सम्बन्ध शृंगार के संयोग वियोगात्मक दोनों पक्षों से है। महाकवि माघ के ऋतु वर्णन में ये सब मिलते हैं।

दलितकोमलपाटलकुड्मले निजवधूश्वसितानुविधायिनी ।
मरुतिवाति विलासिभिरुन्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ।। ६-२३ ।।
अरुणिताखिल शैलवना मुहु विदधतीपथिकान् परितापिनः
विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुदवहद्वहव्यवहाश्रियम् ।। ६-२१ ।।
गजकदम्बमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
अभिससार न वल्लभमंगना न चकमे च कमेकरसं रहः ।। ६-२६ ।।

ऋतु वर्णन के साथ-साथ यमकादि आलंकारिक चमत्कार भी कवि ने दिखाया है —

जगद्वशीकर्तुमिमाः स्मरस्य प्रभावनीके तनवै जयन्तीः ।
इत्यस्य तेने कदलीर्मधुश्रीः प्रभावनी केतनवैजयन्तीः ।। ६-६६ ।।

यमकों का ऐसा चमत्कार तो श्लोक संख्या ६६ से सर्ग की समाप्ति तक मिलता है। इसी तरह ऋतु वर्णन के साथ सूक्तियों का योग भी श्लोक संख्या ४३, ४४, ४५ में है।

माघ की प्रकृति संभोग श्रृंगार के उद्दीपन पक्ष की है किन्तु कहीं-कहीं पर वियोग के चित्र भी हैं। कवि ने प्रकृति पर मानवोचित श्रृंगारी चेष्टाओं का आरोप अधिक किया है। देखिए ६ सर्ग का १०वां श्लोक और ११वें सर्ग का ४५वां श्लोक। किन्तु माघ के अधिकांश प्रयोग संयोग पक्ष के ही हैं। माघ के प्रकृति को अप्रस्तुत विधान के रूप में वर्णन करने के प्रसंग बड़े सुन्दर बन पड़े हैं।

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत महाकवि माघ का प्रभात वर्णन :—

कवि ने प्रभात के दृश्यों को अपनी कुशल तूलिका से चित्रित किया है। स्वाभाविकता एवं सरसता के कारण इन प्रातःकालीन रंगीन दृश्यों में अपूर्व सौन्दर्य है—

स्फुटतर मुपरिष्टादल्पमूर्तेर्ध्रुवस्य, स्फुरति सुरमुनीनां मंडलं व्यस्तमेतत् ।
शकटमिव महीयः शैशवे शार्ङ्गपाणेश्चपलचरणकाब्जप्रेरणोत्तुंगिताग्रम् ।। ११।

रात अब बहुत ही थोड़ी रह गई है। प्रातःकाल होने में कुछ ही क्षण शेष हैं, सप्तर्षि आकाश में लम्बे पड़े हुए हैं। उनका पिछला भाग तो नीचे को झुका सा है और अगला ऊपर को। अधोभाग की ओर छोटा सा ध्रुवतारा कुछ-कुछ चमक रहा है। सप्तर्षियों का आकार गाड़ी के सदृश है ऐसी गाड़ी के सदृश जिसका जुवा ऊपर उठ गया हो। इसी से उनके और ध्रुवतारे के दृश्य को देखकर श्री कृष्ण के बाल्यकाल की एक घटना स्मृति पटल पर चित्रित हो जाती है। शिशु श्री कृष्ण को मारने के लिए एक बार गाड़ी का रूप बनाकर शकटासुर नाम का एक दानव उनके निकट आया था। श्री कृष्ण ने पालने में पड़े हुए खेलते-खेलते उसके लात मार दी। उसके आघात से उसका अग्रभाग ऊपर को उठ गया और पश्चात् भाग नीचे की ओर झुक गया। श्री कृष्ण उसके तले आ गये। यही दृश्य इस समय सप्तऋषियों की अवस्थिति का है। उपमा द्वारा एक पौराणिक कथा को कवि ने यहाँ चित्र के समान सामने ला दिया है—

प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां दददपि गिरमन्तबुध्यते नो मनुष्यः ।

यह कैसा सरस दृश्य है। कदाचित् चार बज चुके हैं अतः अपने पहरे के समय को बिताकर शयन करने के इच्छुक किसी पहरेदार ने जब अपने जोड़ीदार को उठो जागो ऐसा बार-बार ऊँचे स्वर से पुकारा तब वह प्रगाढ़ निद्रा के कारण अस्पष्ट स्वर में (जागने के समान) कुछ बोलता तो रहा किन्तु वास्तव में जाग नहीं सका। कैसा यथार्थ चित्र है। इससे कवि का सूक्ष्म अवेक्षण अभिव्यक्त होता है।

प्रात काल होने पर मन्दिरो तथा राज प्रासादो मे वाक्य-विशेष मधुर-मधुर शब्द से बज रहे थे। उनकी सुरीली ध्वनि इस बात का सकेत करती थी कि प्रात.काल का समय हो गया है, भगवान् उठ गये है। नगर निवासियों को भी अब ब्राह्म मुहूर्त मे उठ जाना है। संगीत के माध्यम से यह वर्णन बडा मधुर हो गया है—

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पचम पीडयन्तः सततमृषभहीन भिन्नकीकृत्यषड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकठ. परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय।
॥ ११-११ ॥

गतमनुगतवीणैरेकता वेणुनादै. कलमविकलताल गायकैर्बोधहेतोः
असकृत नवगीत गीतमाकर्णयन्त. सुखमुकुलितनेत्रा यान्ति निन्द्रा नरेन्द्रा.
॥ १-१० ॥

पूर्व दिशा मे ज्योति फूट रही है। पश्चिमाकाश मे चन्द्रमा की प्रभा कुछ फीकी सी पड़ी हुई है क्योकि सवेरा हो रहा है। इसको लेकर कवि ने कहा है—

उदयमुदितदीप्तिर्यातियः सगतौ मे पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेषगत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्य. साभ्यसूय प्रभेति, स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठागनायाः

पूर्व दिशा रूपिणी स्त्री की प्रभा इस समय बहुत ही भली प्रतीत हो रही है। वह हँस सी रही है। वह यह सोचती सी है कि यह चन्द्रमा जब तक मेरी सगति मे रहा तब तक उदित ही नही रहा, इसकी दीप्ति भी खूब बढी। परन्तु वही चन्द्रमा अब पश्चिम दिशा-रूपिणी स्त्री की ओर जाते ही दीप्तिहीन होकर पतित हो रहा है। पूर्व दिशा इस अवस्था मे चन्द्रमा को देखकर प्रभा के बहाने हर्ष से मुसका सी रही है। परन्तु चन्द्रमा को उसकी हंसी की कुछ भी परवा नही। वह अपने ही रग मे मस्त मालूम होता है। अस्त समय होने के कारण उसका बिम्ब तो लाल है, पर किरणे उसकी पुराने कमल की नाल के कटे हुए टुकड़ो के तुल्य सफेद है। स्वयं सफेद होकर भी बिम्ब की अरुणता के कारण, वे कुछ-कुछ लाल भी है। कुकुम मिश्रित सफेद चदन के सदृश उन्ही लालिमा मिली हुई सफेद किरणो से चन्द्रमा पश्चिम दिक् वधू का शृ गार सा कर रहा है। उसे प्रसन्न करने के लिए उसके मुख पर चन्दन का लेप सा समा रहा है।

मदिरा के स्वाद को प्राप्त करने वाली रमणियों का मुख लाल हो जाता है। वे निर्लज्ज हो जाती है तथा घूघट हटा देती है। प्रकृति की ओट मे कवि ने इस दृश्य का भी स्मरण दिलाया है—

मदरुचिमरुणेनोद्गच्छता लम्भितस्य, त्यजत इव चिरायस्थायिनीमाशु लज्जाम्।
वसनमिव मुखस्य स्रंसते सप्रतोदं, सितकरकरजालं वासवाशायुवत्याः ॥११-१६॥

मद्यपान करने से नशे के कारण स्त्रियो के मुख पर लालिमा आ जाती है। इस दशा मेमदमाती स्त्रियो की स्वाभाविकी लज्जा जाती रहती है। वे अपने मुँह से घूंघट हटा देती

हैं। अरुणोदय हो जाने के कारण पूर्व दिशा रूपिणी स्त्री का भी मुख इस समय मदमाती स्त्री ही के मुख के सदृश लाल हो रहा है। घूंघट हटाने का काम चन्द्रमा ने कर दिया।

इसी के ऊपर के श्लोक संख्या १५ में कवि ने प्रात:काल का अपूर्व दृश्य दिखलाया है:—

दधदसकलमेकं खंडितामानमद्भिः श्रियमपरमपूर्णामुच्छसद्भिः पलाशैः

कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः कुमुदकमलषंडे तुल्यरूपामवस्थाम् ॥ ११-१५

यह तो मानी हुई बात है कि कमल के शोभित होने पर कुमुद शोभित नहीं होते तथा कुमुद के शोभित होने पर कमल नहीं। इस भाँति दोनों की दशा बहुधा एक सी नहीं रहती किन्तु इस समय प्रात:काल दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुदबन्द होने को है पर अभी पूरे बन्द नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं, पर अभी पूरे नहीं खिले। एक की शोभा आधी ही रह गई है और दूसरे को आधी ही शोभा प्राप्त हुई है। रहे भ्रमर सो अभी दोनों पर ही मंडरा रहे हैं और गुँजित ध्वनि के बहाने दोनों ही की प्रशंसा के गीत से गा रहे हैं। इसी से इस समय कुमुद और कमल दोनों ही समता को प्राप्त हो रहे हैं।

माघ कवि रसिक जो ठहरे इनको प्रकृति के उपकरणों में शृंगार भावना उदित हो जाती है। समासोक्ति के द्वारा अभिसार का वर्णन नीचे के श्लोक में दर्शनीय है—

शिशिरकिरणकान्तं वासरान्ते ऽभिसार्य, श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सत्वरेव।
व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखांगरागैः, परिमलितमनिन्द्यैरम्बरान्तं वहन्ती ॥ ११-२१ ॥

यह रजनी दिवस की समाप्ति पर चन्द्रमा रूपी अंगराग से व्याप्त अपने वस्त्र को सम्भालती हुई आकाश की ओर शीघ्रता के साथ चली जा रही है।

जो अभिसारिका रात्रि के समय अपने प्रियतम के साथ अभिसरण करती है, वह प्रात:काल होने के पूर्व ही अपने अंगराग से व्याप्त सुगन्धित वस्त्रों को सम्भालती हुई शीघ्र ही अपने घर की ओर वापस कैसी भागती है इसका यह चित्र है। अब एक और समासोक्ति को प्रस्तुत की जाती है—

नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसंगादधिकरुचिरशेषामप्युषां जागरित्वा
अयमपरदिशोऽङ्के मुंचति स्रस्तहस्तः शिशयिषुरिव पाण्डु म्लानमात्मानमिन्दुः
॥ २२ ॥

सायंकाल जिस समय चन्द्रमा का उदय हुआ था उस समय वह बहुत ही लावण्य-मय था। क्रम-क्रम से उसकी दीप्ति उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई। वह ठहरा रसिक। उसने सोचा यह इतनी बड़ी रात वैसे ही कैसे कटेगी, क्यों न खिली हुई नवीन कुमुदनियों (कोका-बेलियों) के साथ हास्य विनोद किया जाय। अतएव वह उनकी शोभा के साथ हास परिहास करके उनका विकास करने लगा। इस भांति खेलते कूदते समस्त रात्रि बीत गई। वह थक भी गया, शरीर पीला पड़ गया, कर (किरणपाल) स्रस्त अर्थात् शिथिल हो गए इससे वह दूसरी दिगंगना (पश्चिम दिशा) की गोद में जा गिरा। यह कदाचित् उसने इसलिए किया कि रात्रि भर के जगे हैं। आओ उसकी गोद में आराम से सो जायं। चतुर नायक रात भर

अपनी प्रेयसी के साथ विहार कर जब थक जाते हैं तो इसी प्रकार प्रात: दूसरी के अंक में जाकर सो जाते हैं।

श्लोक संख्या २५ और ४० में प्रभातकालीन संध्या का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

अन्धकार के लिए भयंकर शत्रु महाराज अंशुमाली अभी तक दिखाई भी नहीं दिये फिर भी उनके सारथि अरुण ही ने, उनके अवतीर्ण होने के पूर्व ही, थोड़े ही नहीं, समस्त अन्धकार का समूल नाश कर दिया है। क्यों न हो, प्रतापी पुरुष अपने तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं। उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते, स्वामी को श्रम न देकर वे स्वयं ही उसके विपक्षियों का नाश कर डालते हैं। इस भाँति अरुण के द्वारा समस्त अंधकार का नाश होते ही बेचारी रात पर यह सब पहाड़ सहसा टूट पड़ता है। इस दशा में वह ठहर ही कैसे सकती थी। निरुपाय होकर वह भाग चली। रह गयी दिन और रात की संधि अर्थात् प्रात:कालीन संध्या। अरुण कमल ही मानो इस अल्प-वयस्क सुता सदृश संध्या के लाल और अतिशय कोमल हाथ थे। मधु माला से छाये हुए नील कमल ही मानो काजल लगी हुई इसकी आँखें थी। पक्षियों का कल-कल शब्द मानो इसकी तोतली बोली थी। ऐसी संध्या ने जब देखा कि रात्रि इस लोक से प्रस्थान कर रही है तब पक्षियों के कोलाहल के बहाने यह कहती हुई कि अम्मा मैं भी आती हूँ, यह भी उसी के पीछे दौड़ गई। प्रकृति के द्वारा मानवीय संवेदना का कैसा सुन्दर प्रकाश हुआ है।

निम्न लिखित श्लोक भी अपने ढँग का एक ही है—

वितत पृथुवरत्रातुल्य रूपैर्मयूखै: कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाण:
कृत चपलविहंगालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्क: ॥४४॥

चारों ओर फैली हुई, मोटी रस्सियों के समान, किरणों के द्वारा खेंचा जाता हुआ बड़े भारी कलश के तुल्य यह सूर्य दिशा रूपी नारियों के समुद्र के जल से निकाला जा रहा है। जिस भाँति कलश रस्सियों की सहायता से बाहर निकाला जाता है उसी भाँति पूर्व समुद्र में डूबे हुए सूर्य को दिशायें किरण रूपी रस्सियों से खींच कर निकाल रही हैं। जिस भाँति घड़े को जल से निकालने के समय महान् कल-कल होता है उसी भाँति प्रात:काल होते ही चिड़ियाँ चहचहाने लगती हैं।

सूर्योदय का यह सुन्दर वर्णन है। सूर्य का बिम्ब मानो एक घड़ा है, दिग्वधुयें जोर लगाकर समुद्र के भीतर से उसे खींच रही हैं। सूर्य की किरणें लंबी-लंबी मोटी रस्सियाँ हैं। खींचते समय पक्षियों के कलरव के बहाने, वे यह कह कर शोर मचा रही हैं कि खींच लिया है, खींच लिया है, कुछ ही बाकी है ऊपर आना ही चाहता है, जरा और जोर लगाना।

सूर्य अब ऊपर निकला है। उसका वर्ण ताम्र है। किन्तु दिगांगनाओं के द्वारा खींच खाँच कर किसी भाँति सागर की सलिल राशि से बाहर निकाले जाने पर यह सूर्य बिम्ब इस भाँति का क्यों है। कवि ने कल्पना की है। वह समस्त रात्रि भर समुद्र के जल के

भीतर जब यह पड़ा था तब वाडवाग्नि की ज्वाला ने इसे खूब तपाया होगा। यही तो कारण है कि खैर (खदिर) के जले हुए कुन्दे के अंगार के सदृश लालिमा लिपे हुए यह इतना ताम्र दिखाई दे रहा है। अन्यथा इसके ऐसा होने का और क्या कारण हो सकता है यही भाव इस श्लोक में है—

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमंगमुध्यन्दधाति ज्वलितखदिरकाष्ठांगारगौरं विवस्ववान् ॥४५॥

नीचे के श्लोक में प्रकृति का वात्सल्य भाव अनुभूति के योग्य है। उदयाचल के शिखर रूप आंगन के बाल सूर्य को खेलते हुए धीरे-धीरे रेंगते देख पद्मिनियों को बड़ा प्रमोद हुआ। सुन्दर बालक को आंगन में जानु पाणि चलते देख स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है अतएव उन्होंने अपने कमल मुख के विकास के बहाने हँस हँसकर उसे बड़े ही प्रेम से देखा। यह दृश्य देखकर माँ के सदृश अन्तरिक्ष देवता का हृदय भर आया। वह पक्षियों के कलरव के बहाने बोल उठी आ जा, आजा, आ बेटा आ। फिर क्या था, बाल सूर्य बाल-लीला दिखाता हुआ तुरन्त ही अपने मृदुल कर (किरणें) फैलाकर अन्तरिक्ष की गोद में कूद गया। उदयाचल पर उदित होकर कुछ ही क्षणों में वह आकाश में आ गया। श्लोक यह है—

उदयशिखरिश्रृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतित दिवोंकेहेलया बालसूर्यः ॥११-४७॥

सूर्योदय का एक वर्णन और है—

परिणतमदिराभं भास्करेणांसुबाणैः स्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः
रुधिरमिववहन्त्यो भान्ति बालातपेनच्छुरितमुभयरोधौवारितं वारि नद्यः ॥११-४॥

आकाश में सूर्य के दिखाई देते ही नदियों ने विलक्षण ही रूप धारण किया है। दोनों तटों या कगारों के मध्य से प्रवाहित होते हुए जल पर सूर्य की लाल-लाल प्रातःकालीन धूप जो पड़ी तो वह जल मदिरा के रंग सदृश हो गया, अतएव ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सूर्य ने अपने किरणबाणों से अन्धकार रूपी हथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बह-बह कर नदियों में आ गया हो और उसी के मिश्रण से उनका जल लाल हो गया हो। यहाँ कवि ने एक ओर तो मदिरा का यथार्थ चित्रण कर दिया दूसरी ओर रणभूमि का भी एक दृश्य उपस्थित कर दिया। दोनों ही कल्पनाओं का आधार उसकी स्वयं की अनुभुति है। निम्न श्लोक में सूर्य देव का राजसी ठाठ दर्शनीय है—

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नायलोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिप्यमाण : क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ॥११४८॥

जिस भाँति कोई महाराजा सिंहासन पर बैठकर थोड़ी देर तक प्रणतजनों को आदर देकर तुरन्त ही अपने सम्पूर्ण राज्य को देखने के लिए चल पड़ता है उसी भाँति सूर्य ने भी

पहले धरती पर अपने पैर रक्खे (किरणें फैल गयी) और फिर प्रणत लोगों को सन्तुष्ट कर समग्र धरातल को देखने की अभिलाषा से उदयाचल के सिंहासन से उत्थान कर दिया। जिसने राज्य दरबार में रहकर बातें देखी हो वह पुरुष ही ऐसे भाव प्रदर्शित कर सकता है। इससे ज्ञात होता है महाकवि माघ राज्याश्रयी थे। राजालोग प्रातः सायं मुजरा लिया करते थे फिर अपने प्रात: समय के फरियाद को सुनने अथवा किसी ऐसे कार्य में व्यस्त हो जाते थे जिसका जनता से संबंध होता था। कवि ने प्रकृति वर्णन के साथ-साथ राजा के दैनिक जीवन की एक झाँकी भी प्रस्तुत कर दी है। कुशल वही है जो प्रजा को संतुष्ट रक्खे। राजा होगा वहाँ पर शत्रु भी तो होंगे अत: उसके साथ क्या नीति होनी चाहिए इसका वर्णन नीचे के श्लोक में हैं—

अवतमसमिदायै भास्वताभ्युद्गतेन प्रसभमुडुगणोऽसौ दर्शनीयोऽप्यपास्तः।
निरासितुमरिमिच्छोर्ये तदीयाश्रयेण श्रियमधिगतवन्तस्तेऽपिहन्तव्यपक्षे ॥११-५७॥

तारों का समुदाय देखने में बहुत सुन्दर मालूम होता है, यह सत्य है। यह भी सत्य है कि भले व्यक्तियों को न कष्ट ही देना चाहिए और न उनको उनके स्थान से च्युत ही करना चाहिए। परन्तु सूर्य का उदय अंधकार का नाश करने ही के लिए होता है और तारों की श्रीवृद्धि अन्धकार ही के कारण है। इसीसे दुखी होकर सूर्य को अन्धकार के साथ ही तारों का भी विनाश करना पड़ा उसे उनको भी बलात् निकाल बाहर करना पड़ा। बात यह है कि शत्रु के साथ उसके आत्मीयों का भी विनाश करना ही पड़ता है। न करने से भय का कारण बना ही रहता है। राजनीति यही कहती है।

कवि का ज्ञान अपरिसीम है। वैसे प्रकृति वर्णन में पौराणिक प्रसंगों की उद्भावना के उदाहरण पहले भी दिये जा चुके हैं। एक और यहाँ दिया जाता है—

महा महिमा भगवान् मधुसूदन जिस समय कल्पान्त में समस्त लोकों का प्रलय बात की बात में कर देते हैं उस समय अपनी समाधि की अनुरागवती श्री (लक्ष्मी) को धारण करके उन्हें साथ लेकर क्षीर सागर में अकेले ही विराजते हैं। दिन चढ़ आने पर महिमामय भगवान् भास्कर भी, उसी भाँति, एक क्षण में, समस्त तारालोक का संहार करके, अपनी अतिशायिनी श्री (शोभा) के सहित, क्षीर सागर ही के समान आकाश में अकेले ही मौज कर रहे हैं। श्लोक है—

प्रलयमखिलतारा लोकमह्नाय नीत्वा श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागां दधानः
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते ॥११-६६॥

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत प्रभात का यह रंगीन दृश्य कितना सजीव तथा यथार्थ है। इसमें कहीं व्यवहारों का वर्णन प्रकृति के क्रिया कलापों से कराया गया है तो कहीं पर मानवीय सम्बन्धों की पहुँच (एप्रोच टू ह्यूमैन रिलेशन्स) प्रकृति तक प्रदर्शित की है, किन्तु यह एक महान् आश्चर्य की बात है कि प्रकृति के इस कमनीय वर्णन में कवि ने (क्या चेतन प्रकृति क्या अचेतन प्रकृति का वर्णन करने कथा के प्रवाह में किसी भाँति की बाधा उपस्थित नहीं होने दी।

अबतक मानवेतर प्रकृति के सुन्दर रंगीन चित्र प्रस्तुत किये गए। कवि के मानवीय प्रकृति के वर्णन भी उसी तरह बड़े सुन्दर हैं। कवि ने मानव के भावों उनके सुख दुःख, करुणा, हर्ष विवाद आदि को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

चतुर्थ सर्ग के ५७वें श्लोक को पहले उद्धृत किया जा चुका है, इसमें कवि ने करुणा-पूर्ण वात्सल्य प्रदर्शित किया है। पति जब अपनी वधू को उसके पितृगह से साथ लेकर चलने लगता है तो पिता का वात्सल्य छलक पड़ता है। कवि ने नदी रैवतक और पक्षियों के कूंजन के माध्यम से पिता, पुत्री, पति तथा जाते समय पिता का क्रन्दन इन सबका एक करुणामय योग बैठा दिया है। रैवतक पर्वत रूपी पिता अपनी नदी रूपी पुत्री के श्वसुर गृह जाने पर रुदन कर रहा है। ११वें सर्ग के ४७वें श्लोक में जो प्रभात का वर्णन है उसमें भी वात्सल्य भाव बड़ी विशिष्टता से अभिव्यक्त हुआ है।

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हाक्षपाऽपि क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः
इति दयित कलत्रश्चिंतयन्नंगमिन्दुर्वहति कृशमशेषं भ्रष्ट शोभं शुचेव ॥ ११-२४ ॥

इस श्लोक में बताया गया है कि पत्नियों को प्राणों के तुल्य प्रेम करने वाला पति उनकी मृत्यु पर दुःख से परिपूर्ण होकर मुखमलीन एवं क्षीण हो ही जाता है। पतियों को पत्नी के न रहने पर जो कष्ट आ पड़ता है उसे मुक्तभोगी अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। अन्तरात्मा के ऐसे ही दुःख सुख का वर्णन जब कवि करता है तो किस सहृदय का चित्त उस ओर आकर्षित नहीं होता। कवि का प्रभात वर्णन बाह्य प्रकृति, अन्तः प्रकृति वर्णन का अनूठा उदाहरण है जिसमें अर्थ-गाम्भीर्य की छटा अपूर्व है।

इन श्लोकों के अतिरिक्त कवि ने अष्टम और नवम सर्गों में भी प्रभात को मानवीय रूप में (मानवीय भावनाओं से ओत प्रोत) प्रस्तुत किया है—

प्रतिकूलतामुपगतेहि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः कर-सहस्रमपि ॥ ९-६ ॥
अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम्।
निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ॥ ९-१० ॥
रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः
ज्वलनंत्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥ ९-१३ ॥

हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक एवं कवि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'बाह्य' प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। संसार से दृष्टि हटाकर कवि भक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। माघ के प्रकृति-वर्णन के लिए द्विवेदी जी की यह उक्ति ठीक उतरती है। उनके प्रकृति वर्णन में बहिर्जगत के साथ अन्तर्जगत के संगठन का निर्वाह हुआ है, और उसके साथ-साथ भी आगे बढने का अवसर मिलता गया है, सहज और मन्थरगति से। एक कुशल फोटोग्राफर जिस भाँति कैमरे की सहायता से चित्र उतारने में समर्थ होता है महाकवि माघ ने भी प्रकृति

चित्रण से लगभग वैसा ही कार्य किया है। अन्तर इतना ही है कि उनमें भाव-स्पन्दन को लिये हुए सजीवता मौजूद है। युद्ध वाले सर्गों में भावना-प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है।

इसी तरह उनके पशु प्रकृति के वर्णन भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण के कारण यथार्थता से युक्त हुए हैं। ऊँट का जो राजस्थान का एक विशिष्ट प्राणी (पशु) है, वर्णन देखिये—

साधं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः
दासेरकः सपदि संवलितं निषादैर्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥५-६६॥

ऊँट आम का पत्ता नहीं खाता है यह बात माघ को उनके यह सूक्ष्म निरीक्षण से ही विदित हुई। पौराणिक कथा ने इस वर्णन का संवेदना में वृद्धि करदी है।

उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघ सौहित्यनिःसहतरेण तरोरँधस्तात्
रोमन्थमन्थर चलद् गुरु सास्नमासां चक्रे निमीलदल सेक्षणमौक्षकेण ॥५-६२॥
ऋज्वीर्दधानैरवतत्य कंधराश्चलावचूड़ाः कलघर्घरारवैः।
भूमिर्महत्यप्यविलम्बितक्रमं क्रमेलकैस्तत्क्षणमेव चिच्छिदे ॥१२-१८॥
अभ्याजतोऽभ्यागततूर्णतर्णकान्निर्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः
वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यतीमरिर्मधोरैक्षत गोमतल्लिकाम् ॥१२-४१॥
उत्खाय दर्पचलितेन सहैवरज्वा कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्णमश्वेति विद्रुतमनुद्रवताश्वमन्यम् ॥५-५६॥
मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान् भंक्त्वा परानन्डुहो मुहुराहवेन।
ऊर्ज्जस्वलेन सुरभीनु निः सपत्नं जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा ॥५-६४॥

इन श्लोकों में पशुजगत की प्रकृति व्यापारों का यथार्थ चित्रण हुआ है। चित्र उपस्थित कर रहे हैं देखिये—

उपजीवतिस्म सततं दधतः परिमुग्धतां वाणिगिवोडुपतेः
घनवीथिवीथिमवतीर्णवतो निधिरम्भसामुपचयाय कलाः ॥६-३२॥

मानवीय व्यापारों का चित्रण भी कवि ने यत्र तत्र किया है। उसका मानवीय प्रकृति से निकट का सम्बन्ध होने से यहाँ संकेत कर देना समीचीन है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। व्यापारियों के शोषक व्यापार का परिचय इसमें है।

रजनीमवाप्य रुचमाप शशीसपदि व्यभूषयदसावपिताम्।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥६-३३॥

इस श्लोक में महापुरुषों के उपकारी स्वभाव की ओर संकेत है।

न च तं तदेति शपमानमपि यदुनृपाः प्रचुक्रुधुः।
शौरिसमयनिगृहीत धियः प्रभुचित्त मेव हि जनोऽनुवर्तते ॥१५-४१

धृतधौतासयः प्रष्ठाः प्रातिष्ठन्त क्षमाभृताम्
शौर्यानुरागनिकषः सा हिवेलानुजीविनाम् ॥१६-३०॥

सैव्य-सेवक भाव सम्बन्ध का यहाँ अच्छा दर्शन हुआ है। इसी भाँति राजा प्रजा का, पति पत्नि का तथा स्वजनों का सम्बन्ध बताकर कवि ने अपने व्यापक ज्ञान का परिचय दिया है।

मानव प्रकृति के वर्णन के इन विवरणों को पढ़ने से यह कहा जा सकता है कि कवि ने प्रकृति का सर्वांगीण वर्णन किया है और यह वर्णन अपने सीमित क्षेत्रों में एक काव्योचित वैशिष्ट्य को लिये हुए है।

माघ की विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता :—

महाकवि माघ की कविता को लेकर हमने उनके काव्य सौष्ठव पर प्रकाश डालते हुए शब्द योजना, पद-योजना तथा अलंकार योजना आदि पर विचार किया—शक्ति का स्वरूप प्रकृति चित्रण के प्रसंग को लेकर प्रस्तुत किया। यहाँ पर हम उनकी विद्वत्ता एवं व्यापक बहुज्ञता के विषय में कुछ लिखेंगे। महाकवि माघ की ख्याति एक पंडित के रूप में जितनी फैली है उतनी ख्याति एक कवि के रूप में नहीं। उन्हें पंडित कवि कहना अधिक उपयुक्त है। कवि के लिये शास्त्र-ज्ञान आवश्यक है। किसी विद्वान् का कथन है कि कवि प्रकृति का पुरोहित होता है। पुरोहित के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह यजमान के समस्त कुलाचारों को जानता हुआ विधि-विधान का मर्मज्ञ हो। यही बात कवि के लिए भी है। उसका अनुभव अंत: प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण से बनता है। इस सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति का जैसा स्वरूप वह अंकित कर सकता है वैसा दूसरे विद्वान् अथवा वैज्ञानिक नहीं कर सकते। इसमें सहृदयों का मानस प्रमाण है। विविध कलाओं तथा शास्त्रों में पारंगत संवेदनाशील कवि जब रचना करता है तो इसमें उसकी बहुज्ञता का परिचय स्वत: मिल जाता है। ऐसे ही कवियों के लिए कहा गया है—

"न स शब्दो न तदवाच्यं न स न्यायो न सा कल।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥"

न ऐसा कोई शब्द है, न ऐसा अर्थ है, न ऐसा कोई न्याय है और न कोई ऐसी कला है, जो काव्य का अंग न बन सके। कितना बड़ा भार है उसपर। राजशेखर ने कहा है— "सकल-विद्या-स्थानैकायतनं पंचदशं विद्यास्थानं काव्यम्। अर्थात् काव्य पन्द्रहवां विद्या-स्थान है। इस सब भार को चतुरता के साथ अपनी लेखनी की नौक पर उठाने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति ही महाकवि हो सकता है।

जो कुछ हमने ऊपर लिखा है वह सब माघ पर घटित होता है। उनके महाकाव्य शिशुपाल वध को आदि से अन्त तक पढ़ लेने पर हमको ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति का संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर कितना असाधारण अधिकार रहा होगा। वह न केवल मानव-प्रकृति को ही समझते थे, अपितु अश्व, गज, आदि पशुओं की प्रकृति के भी ज्ञाता थे। अचे-

तन प्रकृति में चेतना का स्फुरण कराने की अद्भुत क्षमता तो उनके प्रकृतिवर्णन के प्रसंग में बता ही दी गयी है। 'नवसर्ग गते माघे नव-शब्दो न विद्यते' अथवा 'काव्येषु माघ: कवि कालिदास:' ये उक्तियाँ निराधार नहीं हैं। इनसे उनकी शास्त्रज्ञता सम्बन्धी लोकमान्यता प्रकट होती है। महाकवि माघ की प्रतिभा बहुमुखी थी। उस प्रतिभा का उपयोग जिस दिशा में भी हुआ वही दिशा कवित्व के अद्भुत् आलोक से प्रतिभासित हो गयी। 'भिन्न रुचिर्हिलोक:, किसी को महाकवि माघ की यमक योजना सुन्दर प्रतीत होती है तो किसी को उनके अर्थालंकार। कोई उनके वर्णन वैचित्र्य पर आकर्षित होता है तो कोई उनके भाव सौष्ठव पर। कोई उनकी किसी कल्पना से मुग्ध होता है तो किसी को उनके पांडित्य पर आश्चर्य होता है। यहाँ उनकी बहुज्ञता का परिचय अभीष्ट है।

महाकवि माघ का श्रुति-विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रात:काल के समय इन्होंने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। नीचे का श्लोक देखिये—

प्रतिशरणमशीर्ण ज्योतिरगन्याहितानां। विधिविहितविरिब्धैः सामधेनीरधीत्य
कृत गुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सांनाय्यमग्निः॥ ११-४१॥

अग्नि का आधान करने वाले अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचंड ज्वाला के साथ अग्नि जलने लगी है। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण लोग उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के उच्चारण के साथ गंभीर पापों के नाश करने वाले, समिधा छोड़ने के मन्त्रों का पाठ करके शास्त्रानुमोदित विधि से हवि डालने लगे हैं और अग्नि की लपटें उसका आस्वादन करने लगी हैं।

उपर्युक्त में हवन कर्म में आवश्यक सामधेनी की विशेषता वाली ऋचाओं का उल्लेख किया गया है। उनका वैदिक स्वरों की विशेषता का ज्ञान भी इससे भली भाँति प्रकट होता है। स्वरभेद से किसी प्रकार अर्थभेद हो जाया करता है, इसे चौदहवें सर्ग के २४वें श्लोक में देखा जा सकता है।

संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहंव्यवससुः स्वरेण ते॥ १४-२४

इसका तातपर्य यह कि संदिग्ध समासों से विपरीत अर्थ की संभावना बनी रहती है, जैसे वृत्रासुर के यज्ञ में पुरोहितों ने इन्द्र शत्रु, शब्द के लिये षष्ठीत त्पुरुष समास तथा बहुब्रीहि समास में स्वर भेद करके अपने यजमान का विनाश ही कर दिया है। अतः व्याकरण शास्त्र के पंडित पुरोहित लोग अपने यजमान युधिष्ठर के अनुकूल पड़ने वाले अर्थ के अनुसार स्वर का पाठ कर रहे थे। यज्ञ सम्बन्धी बातों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था तथा वेद की ऋचायें स्वर सहित कैसे बोली जाती थीं इससे भी वे पूर्ण परिचित थे। अधोलिखित श्लोकों से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

सप्तभेदकरकल्पित स्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ।
तत्र सूनृत गिरश्च सूरयः पुण्य मृग्यजुषमध्यगीषत॥ १४ २१॥

'उदात्त स्वर अनुदात्तपदमेकवर्ज्यम्' इस परिमाण से अनुदात्त और स्वरित स्वर को एक ही पद में नीचा कर देता है। अर्थात् एक पद में होने वाली उदात्त स्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना डालता है। एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर निपात हो जाते हैं। इस स्वर विषयक प्रसिद्ध नियम का प्रतिपादन माघ ने शिशुपाल के वर्णन में कितनी सुन्दर रीति से किया है। आचार्य की तरह एक नियम को ही समझा है और भाव सौन्दर्य तो बढ़ ही गया है।

चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का जैसा विस्तृत वर्णन मिलता है इससे तो पूर्णतया स्पष्ट है कि महाकवि माघ एक अच्छे कर्मकांडी पंडित थे और हो सकता है उन्होंने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किया हो। राजसूय यज्ञ में दान आदि पुण्य कृत्यों के प्रसंगों को लेकर माघ ने अपनी सहृदयता से युधिष्ठिर के चरित्र का विकास किया है।

कवि का दर्शन विषयक ज्ञान का आरम्भ सांख्य से किया जाता है। सांख्य के तत्वों का उल्लेख स्थलों पर किया गया है।

प्रथम सर्ग में नारद ने श्रीकृष्ण चन्द की इस प्रकार स्तुति की है—

उदासितारंनिगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथक् विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥ १ ३३ ॥

योगी लोग अपनी चित्त वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म दृष्टि से किसी भाँति आपका दर्शन करते हैं। वे आपको संसार उदासीन महत आदि विकारों से पृथक् सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों से लिप्त फिर भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानघन आदि पुरुष के रूप में जानते हैं। इस प्रकार का मत कपिल आदि ऋषियों का है। सांख्य-सिद्धान्त का उल्लेख वहाँ भी मिलता है जहाँ राजसूय यज्ञका वर्णन है। युधिष्ठिर के लिये बताया है कि वह स्वयं कुछ कार्य नहीं कर रहे थे, पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे। श्लोक है—

तस्य सांख्य पुरुषेणतुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजी करणे यथार्त्विजि ॥ १४-१९ ॥

जिस भाँति सांख्य मत में पुरुष अपने आप पुण्य पाप आदि कोई काम नहीं करता, बुद्धि ही सब कार्य करती है, तब भी पुरुष उन सब कार्यों का साक्षी होता है और वही कर्ता कहलाता है, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नहीं कर रहे थे, पुरोहित लोग सब कार्य कर रहे थे और युधिष्ठिर उन सब क्रियाओं की देख भाल ही कर रहे थे, फिर भी वही उस यज्ञ के करता थे।

बलराम की उक्ति में सांख्य शास्त्र का प्रतिपादन कितना स्पष्ट है—

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ॥ २-५९ ॥

सांख्य मत में जिस भाँति आत्मा साक्षी रहकर फल का भागी होता है और बुद्धि सुख

दुखादि का मांग करती है उसी प्रकार तुम (श्रीकृष्ण) साक्षी मात्र बने रहकर फल के भागी बनोगे और यादवों की सेना विजय लाभ करेगी। तुम उद्घोषणामात्र कर दो।

मीमांसा दर्शन का परिचय राजसूय यज्ञ के प्रसंग में मिलता है। वहाँ एक श्लोक आता है—

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाकालक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽ त्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ॥१४-२०॥

योग-शास्त्र की चर्चा नीचे लिखे श्लोक में है यहाँ सांख्य दर्शन की बात आगयी है—

मैत्र्यादिचित्त परिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाऽधिगम्य वांछन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ॥४-५५॥

इस श्लोक में प्रयुक्त,मैत्रयादि-चित्त-परिकर्म-सबीजयोग'सत्वपुरुषान्यतया ख्याति'क्लेश:' आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली है मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ये चार चित्त की शोषक वृत्तियाँ हैं। पुण्यकर्ताओं के लिए मैत्री, दुखियों के लिए करुणा, सुखियों के लिए मुदिता अर्थात् उनका अनुमोदन, एवं पापियों के लिए उपेक्षावृत्ति का विधान है।

क्लेश पाँच हैं 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: पंच क्लेशा:। अनित्य वस्तुओं में नित्यता का बोध अविद्या, जैसे नश्वर शरीर में आत्मबुद्धि का भान। अहंकार का नाम अस्मिता है। अभिमत विषय में अभिलाषा राग है। अनभिमत विषयों में क्रोध द्वेष है। कार्य और अकार्य में आग्रह अभिनिवेश है ये पाँच क्लेश के कारण हैं। प्रकृति और पुरुष के विवेक को न जानने से संसार में भटकना पड़ता है। और जो इनके पार्थक्य को जान लेते हैं उन्हें मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह है कि यह रैवतक केवल भोग विलास की ही भूमि नहीं प्रत्युत मोक्ष-प्राप्ति की भी भूमि है। जहाँ पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चारों चित की शोधक वृत्तियों को भली भाँति जानकर अविद्या, आस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों क्लेशों को दूर कर देते हैं और फिर बीज युक्त योग को प्राप्त कर प्रकृति तथा पुरुष की ख्याति (अर्थात् ज्ञान को पृथक् रूप में जानकर) को भी दूर करने की अभिलाषा करते हैं।

मैत्री आदि चित्तवृत्तियाँ, पंचक्लेश, अविद्या, ज्ञान इत्यादि सांख्यदर्शन की अनेक रहस्यपूर्ण बातों का जानना इस श्लोक को समझने के लिए आवश्यक है।

दूसरा श्लोक और है—

सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः
क्लेश कर्म फल भोग वर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥ १४-६२॥

उपर्युक्त श्लोक में योग-शास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से परमात्मा की विशिष्ट संज्ञाओं अथवा विशेषणों की चर्चा की गई है। यहाँ ज्ञानी पुरुष से कवि का तात्पर्य योगी पुरुष से है।

अद्वैत वेदान्त के तत्वों का प्रतिपादन भी कई स्थानों पर है। संसार को मिथ्या माया स्वीकार कर ब्रह्म अथवा परमात्मा का ही एकमात्र सत्य बताने की बात तथा केवल ब्रह्म

ज्ञान की प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा को माघ ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है। वेदान्त के कुछ अन्यान्य सिद्धान्तों की भी उन-उन अवसरों पर चर्चा आयी है। नीचे एक श्लोक प्रस्तुत है—

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गवेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ॥ १४-६४ ॥

नीचे के श्शोक में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया है—

उदीर्णराग प्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥ १-३२ ॥

इसमें बताया है कि मोक्ष इच्छुकों को भी उसी एक ब्रह्म रूप श्री कृष्ण की शरण में जाना पड़ता है। श्रुति का कथन है 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय' तथा न स पुनरावर्तते।

माघ ने अपने समय के बौद्ध तथा जैन दर्शन शास्त्रों का भी पूर्ण अध्ययन किया था। एक प्रसंग में उल्लेख हुआ है—

सर्व-कार्य-शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्ध-पंचकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्तिमंत्रो महीभृताम् ॥ २-२८ ॥

इसी श्लोक में बौद्ध दर्शन भरा पड़ा है। बौद्ध शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते। वे शरीर को पाँच स्कन्धों से युक्त मानते हैं। रूप-स्कंध, वेदना-स्कंध, विज्ञान-स्कंध, संज्ञा-स्कंध और संस्कार स्कंध। इस चराचर जगत् में दृश्यमान सभी वस्तुओं का आकार रूप स्कन्ध है। धारा प्रवाह रूप का ज्ञान विज्ञान स्कन्ध है। चैतन्य अथवा वस्तु समूह का नाम संज्ञा स्कन्ध है। चित्त पर पड़ी हुई छाया संस्कार स्कन्ध है। इन पाँचों स्कन्धों के अतिरिक्त जिस भाँति शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु बौद्धों के लिए नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के लिए पंचांग युक्त मंत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मंत्र नहीं है। राजाओं के वे पंचांग मंत्र ये हैं, कार्य के आरम्भ करने के उपाय, कार्य को सिद्ध करने में उपयोगी द्रव्य का संग्रह, देश और काल का विचार, विपत्तियों को दूर करने के उपाय और कार्य की सिद्धि। बलराम ने अपने कथन को पंच स्कन्ध के साम्य से बड़ी स्पष्टता से पुष्ट किया है।

महाकवि ने इसी तरह एक और जगह कहा है कि जिस तरह जींवात्मा पूर्व शरीर की पाँचों इन्द्रियों के साथ नवीन देह में प्रविष्ट करता है, उसी भाँति पाँचों राजपुत्रों के साथ भगवान् श्री कृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया—

इस श्लोक में पुनर्जन्म का एक सनातन रूप बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है।

असकृद् गृहीत बहु देह सम्भवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम्।
पुरुषः पुरं प्रविशति स्म पंचभिः सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्रसूनुभिः ॥१३-२८॥

इन थोड़े उदाहरणों से यह विदित हो जाता है वेद कि माघ और दर्शनों के रहस्य को बारीकी से समझते थे।

पौराणिक ज्ञान

पौराणिक ज्ञान भी कवि का असीम था। प्रतीत होता है कि कवि को समस्त पुराणों, महाभारत, भागवत, गीता आदि की पूर्ण जानकारी थी। काव्य को आदि से अन्त तक पढ़ लेने पर ज्ञात होता है कि पौराणिक कथायें तो माघ की जिह्वा पर नाचती सी हैं। पद-पद पर किसी न किसी कथा का उल्लेख है और इस तरह वहाँ अनेक पुराणों की कथायें आ गई हैं। शिशुपाल वध काव्य के पास-पास के कोई पाँच श्लोक देख जाइये उनमें कोई न कोई पौराणिक कथा अवश्य मिलेगी। उदाहरणार्थ यह कहना है कि श्री कृष्ण ने नारद की ओर देखा तो माघ इस भाँति कहेंगे—**'चिरन्तनः मुनिः 'हिरण्यगर्भांगभुवं'** मुनिं ददर्श। चिरन्तन मुनि कौन थे, प्राचीन काल में विष्णु ने नारायण रूप से बदरिका वन में तपस्या की थी। हिरण्यगर्भ कौन ? ब्रह्मा। क्यों ? देखिए सोऽभिधाय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधा प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासुबीजमवासृजत्॥ तदण्डमभद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभं, तस्मिन्यते स्वयं ब्रह्मा सर्व लोक पितामहः। उनका अंगभूत कौन ? नारद। क्यों ? क्योंकि उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षो ऽगुष्ठास्वयंभुवः।

इसी भाँति सूर्य के लिए अनूरुसारथि : श्री कृष्ण के लिए मुरद्विट् शिशुपाल के लिए सात्वतीसूनुः सुतस्रवसः सुतः, बलराम के लिए 'सीरपाणि' रौहिणेय रेवतीजानिः, राहु के लिए सैंहिकेयो इत्यादि शब्दों का प्रयोग पौराणिक वार्ताओं की ओर संकेत करता है। यहाँ पर तो हम कुछ ही नमूने रख रहे हैं—

सार्धं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादैं विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार॥ ५-६६॥

इसमें पुराणों की एक कथा के अनुसार पूर्व काल में गरुड़ ने म्लेच्छों से अप्रसन्न होकर उन्हें जब निगलना प्रारम्भ किया तो सहसा उनका गला जलने लगा। जब उन्होंने उगला तो देखा कि वह म्लेच्छ नहीं एक ब्राह्मण था—

गतया निरन्तर निवासमध्युरः परिनाभि नूनमवमुच्य वारिजम्।
कुरुराज निर्दयनिपीडनाभयान्मुखमध्यरोहि मुरविद्विषः श्रिया॥ १३-११॥

इस श्लोक में भगवान् के नाभि कमल की कथा आई है तथा वक्षःस्थल में निवास करने वाली लक्ष्मी की भी कथा है।

शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने छलवामनं विनयवामनं तदा।
यशसेव वीर्यं विजितामरद्रुमप्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः॥ १३-१२॥

पौराणिक कथाओं के अनुसार पूर्व समय में भगवान श्री कृष्ण ने सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए बलपूर्वक इन्द्रलोक से पारिजात को उखाड़कर अपने भवन में लगा लिया था।

प्रजाइवांगादरविन्दनाभेः शंभोर्जटाजूटतटादिवापः
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिदध्वजिन्यः॥ ३-६५॥

अर्थ—कमलनाभि भगवान् श्रीकृष्ण के अग से प्रजा वर्ग की भाँति, शम्भु के जटाजूट से (गगा) जल की भाँति विधाता के मुख से श्रुतियो की भाँति भगवान् श्री कृष्ण की सेना, द्वारकापुरी से बाहर निकली।

समस्त जगत् के प्राणी भगवान् के अगो से उत्पन्न हुए है। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' अथवा ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादि श्रुतियाँ इसकी साक्षी है।

उपर्युक्त मे कमल नाभि भगवान् की कथा आ गयी, गगा की उत्पत्ति की कथा आगयी, विधाता के मुख से श्रुतियाँ कैसे आईं इसकी भी कथा आ गयी और इससे भी परे श्रुतियो मे कही हुई बात परोक्ष रूप मे 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' के रूप मे आगई। प्रस्तुत चित्र अप्रस्तुत चित्रो की पृष्ठभूमि मे मानो खिल उठे।

इस भाँति हम देखते हैं कि महाकवि ने पुराणो की कथा का आश्रय लेकर न केवल अपने पौराणिक ज्ञान का ही परिचय दिया है किन्तु उन कथाओ से अर्थ को अभिव्यक्त करने मे तथा उसमे चमत्कार लाने मे उनको सफलता मिली है।

साहित्यिक ज्ञान—

महाकवि माघ को साहित्य के विभिन्न अंगो का पूर्ण ज्ञान था अत· क्या अलकार शास्त्र, क्या छन्द शास्त्र तथा क्या रस-सिद्धान्त सब ही साहित्यिक बातो की चर्चा उनके काव्य मे आ गयी है। इस प्रसग को महाकवि की काव्य पद्धति मे विस्तार से लिख लिया गया है।

सामरिक ज्ञान—

युद्ध—विषयक बातो की इस काव्य मे आश्चर्यकारी चर्चा हुई है। कवि ने महाकाव्य मे न केवल सैनिक प्रमाण के यथावत वर्णनो से युद्ध सम्बन्धी बातो का परिचय दिया है, किन्तु युद्धस्थल का भी रोमाचकारी तथा यथावत् वर्णन किया है। इन दृश्यो को पढने से यह अनुमान होने लगता है कि कवि को रणभूमि का प्रत्यक्ष अनुभव है। युद्ध के ऐसे विपुल वर्णन काव्यो मे अन्यत्र दुर्लभ है। वन विहार, जल विहार, चन्द्रोदय वर्णन, नायिकाओ के उपालभ आदि शृ गार सम्बन्धी बातो से पाठको को मुग्ध करके कवि उन्हे एक यज्ञ मे सम्मिलित कर देता है और फिर सहसा एक युद्ध का दृश्य उनके सामने आ जाता है। बात ही बात मे एक घमासान युद्ध हो जाता है, जिसमे विभिन्न अस्त्रो-शस्त्रो आँखो के सामने नाचने लगते है कवि की यह वर्णन चारुता पाठको को अवाक् कर देती है।

सगीत शास्त्र का ज्ञान—

साहित्य शास्त्र की अन्य बातो पर जैसे कवि का अधिकार था वैसा ही अधिकार सगीत एव अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओ पर भी था। गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध मे कवि की अधिकार पूर्ण उपमाये एवं उक्तियाँ सिद्ध करती है कि महाकवि संगीत प्रेमी थे। उनकी सगीत निपुणता निम्नलिखित श्लोको से प्रकट होती है—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वत पृथग्विभिन्न श्रुति-मडलै. स्वरै ।
स्फुटीभवद्ग्राम-विशेषमूर्च्छनामवेक्षमाण महती मुहुर्मुहु ॥ १-१० ॥

वायु के आघात की पृथक् ध्वनि मे (वीणा के तारो की झनझनाहट मे) पृथक्-पृथक् सुनाई देने वाले स्वर (सप्त-स्वर सा रे, ग, म, प, ध, नी,) द्वारा तीनो ग्राम (षड्ज मध्यम, और गान्धार) तथा मूर्च्छना (आरोह, अवरोह) के क्रम भेद को बताने वाली महती नाम वाली वीणा को बार-बार देखते हुए नारद को देखा ।

उपर्युक्त मे स्वरो के ग्राम का अर्थ है स्वरो का समूह । सगीतशास्त्र मे कहा गया 'यथा कुटुम्बिन सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि । तथा स्वराणा सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते' ये ग्राम तीन होते हैं । मूर्च्छनाओ की सख्या इक्कीस होती है । स्वरो के उतार चढाव तथा आरोह अवरोह को मूर्च्छना कहते है । एक-एक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएँ कुल मिलाकर इक्कीस होती है । **सप्तस्वरस्त्रतो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।**

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पचम पीडयन्त. सततमृषभहीन भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकठा परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय ॥ ११-१॥

उपर्युक्त श्लोक मे कवि ने अपने विशिष्ट सगीत ज्ञान का परिचय दिया है । स्वरो के आरम्भिक अवयव को श्रुति कहते है । कहा गया है —

प्रथम श्रवणाच्छन्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रिकः । सा श्रुतिः सपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा ॥

षड्ज, पचम, और मध्यम मे चार श्रुतिया होती है जैसा कहा गया है—

चतुश्चतु श्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा, द्वे द्वे निषाद गान्धारी त्रीस्त्रीनृषभधैवतौ

सगीत शास्त्र के नियमानुसार प्रात काल के समय इन तीन स्वरो को निषिद्ध माना गया है । पचम के सबध मे भरत मनि का मत है—

प्रभाते सुतरानिन्द्यः ऋषभः पचमो ऽपि च । जनयेत् प्रधन ह्यक्षा पचत्व पचमोऽपिच
पचमस्य विशेषोऽय कथितः पूर्वं सूरिभिः । प्रगे प्रगीतो जनयेत् दर्शनस्य विपर्ययम् ॥

तात्पर्य यह है कि पचम और ऋषभ स्वर प्रात काल मे नही गाया जाना चाहिये यह वर्जित है । पचम के गाने से मृत्यु भी हो सकती है । कुछ का तो मत है कि पचम के प्रात. गान से दात टेढे हो जाते है अत महाकवि माघ बन्दीजनो द्वारा ऋषभ, पचम तथा षड्ज स्वर को छोडकर मधुर आलाप मे प्रात काल का इस भाँति वर्णन किया ।

उपर्युक्त दोनो श्लोको से ज्ञात होता है कि महाकवि माघ सगीत शास्त्र मे गहरे उतरे हुए थे । वह यह जानते थे कि कौन से स्वर से कब गाना चाहिए और कौन से कब ।

नाटय शास्त्र का ज्ञान—

नाटय शास्त्र का भी इन्हे पूर्ण ज्ञान था । इन्होने विभिन्न नाट्यागों की उपमा बडी सुन्दरात से नीचे के श्लोक मे दी है—

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशाला :
भरतज्ञ कवि प्रणीत काव्य ग्रथिताका इव नाटक प्रपचा : ।।२०-४४।।

नाटको की मुख सधि को विस्तृत एव अन्यान्य प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श निवर्हण, सधियो को क्रमश सूक्ष्म रखना चाहिए इसका वर्णन सर्पो पर घटाकर किस कमनीय रूप मे किया है—

स्वादयन्रसमनेकसस्कृतप्राकृतैरकृतपात्रसकरै :
भावशुद्धिविहितैर्मुदजनो नाटकैरिव बभार भोजनै : ।।१४-५०।।

जिस भाँति दर्शक गण नाटको को देखते समय शृङ्गार आदि नवो रसो का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी भाँति युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे आए हुए लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहो रसो के व्यजनो का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक मे जिस भाँति सस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओ का व्यवहार होता है उसी भाँति उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों मे भी बहुत पदार्थ सस्कृत अर्थात् पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् वैसे ही रखे गये थे। जिस भाँति नाटक मे एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नही करता उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नही मिलता था। नाटक मे जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है, उसी प्रकार यज्ञ के भोज्य पदार्थों मे भी स्वाभाविक शुद्धि थी।

उपर्युक्त श्लोक से महाकवि की नाटयविषयक जानकारी प्रमाणित होती है।

कवि का राजनीति विषयक ज्ञान—

कवि की राजनीतिज्ञता का परिचय सक्षेप मे देना सभव नही है। द्वितीय सर्ग के श्रीकृष्ण उद्धव बलराम सवाद से तथा राजसूय यज्ञावसर पर युधिष्ठिर और भीष्म द्वारा कहे गये वाक्यो से महाकवि माघ के गभीर राजनीतिक ज्ञान का पता चलता है। राजनीति पारंगत उस कवि ने अपने उस काव्य मे बहुत से राजनीतिक तत्व हमारे सम्मुख रक्खे है। राजा के क्या क्या कर्तव्य होने चाहिये, राजा की सेना सबधी नीति क्या होनी चाहिए सधि, विग्रह आदि के प्रयोग किस तरह किये जाने चाहिये आदि सामान्य और विशेष बातो को अपनी युक्तिया देकर, तर्क की कसौटी पर रखकर उन्होने पाठको के लिए सुबोध तथा सरल बना दिया है। इनको पढते समय आनन्द आता है। जिन जटिल राजनीतिक समस्याओ का समाधान करना अति कठिन है उनको इस भाँति स्पष्ट कर दिया है कि आज के इस युग मे भी वे बाते कार्य रूप में परिणत करने योग्य समझी जाती है। कवि की राजनीति महलों तक ही सीमित रहने वाली थी ऐसी कोई बात न थी किन्तु वह राजतत्र की पूर्ण समर्थक थी। वह पाठको के सम्मुख आकर राजा के उस उदार स्वरूप को व्यक्त करती है। जिस की आज्ञा सर्वतोमुखी हित-रक्षा से सबध रखती है। महाकाव्य मे वर्णित राजनीति भारतीय सभ्यता एव सस्कृति की पृष्ठभूमि मे ही विकसित हुई है। दैनिक कार्यो मे भी राजनीति के ज्ञान की आवश्यकता को सुभाषोक्तियों के द्वारा यत्र तत्र समझाया

गया है। राजनीति संबंधी विशिष्ट ज्ञान का जैसा परिचय माघ काव्य में मिला उसको देखकर ही हमने" माघ की राजनीति" इस शीर्षक से एक अलग ही परिच्छेद लिखना आवश्यक समझा। यहाँ तो कुछ उदाहरण देकर कवि के राजनीतिक ज्ञान का संक्षिप्त परिचय दे देना पर्याप्त होगा।

स्वशक्त्युपचये केचित्परस्य व्यसनेऽपरे।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ।।२-५७।।

कामन्दकीय नीति सार" में कामन्दक ने इस बात को यों कहा है—

प्रायेण सन्तो व्यसने रिपूणां यातव्यमित्येव समादिशन्ति।
तथा विपक्षे व्यसनानपेक्षी क्षमोद्विषन्तं मुदितः प्रतीयात्।

मनु महाराज कहते हैं "तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः।"

माघ के एक श्लोक को और देखिये—

सर्व कार्य शरीरेषुमुक्त्वाऽङ्गस्कन्ध पंचकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम् ।।२-२७।।

कामन्दक ने भी कहा है—

सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयो।
विपतेश्च प्रतीकारो मंत्रः पंचांग इष्यते।।"

इसी प्रकरण में माघ ने कहा है—

उतिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ।।२-१०।।

कैसी नीति बतायी है कि शत्रु की वृद्धि व्याधि की भाँति उपेक्षणीय नहीं है। भारवि कवि ने भी कहा है।

अल्पीयसोऽप्यरे वृद्धिर्महानर्थाय रोगवत्।
अतस्तस्यानुपेक्ष्यत्वादुभयानुस्मृतिः कृतः।।

राजनीति के पारिभाषिक शब्दों में प्रयोग नीचे की पंक्ति में द्रष्टव्य है—

षडगुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः ।।२-२६।।

उपर्युक्त में छः गुण, तीन शक्ति और तीन उदय, तीन सिद्धियाँ आदि पारिभाषिक शब्दों का सुन्दर प्रयोग है।

आयुर्वेद का ज्ञान—

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र का महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था क्योंकि तत्सम्बन्धी

सूक्ष्म बातों तक का उल्लेख हम शिशुपाल वध में इधर-उधर पाते हैं। यही नहीं कहीं-कहीं तो वह एक वैद्य के रूप में भी उपस्थित होते दिखलाई पड़ते हैं।

चतुर्थोपायसाध्येतु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिंचति ।।२-५४।।

जिस भाँति तरुण ज्वर में, जिसमें पसीना होने पर ही शान्ति हो सकती है, जल से स्नान करा देने पर रोगी का ज्वर बिगड़ जाता है उसी प्रकार दण्डनीय शत्रु के साथ सन्धि की बात करने से वह भी बिगड़ जाता है। यह तो भावार्थ निकला।

अर्थ—चतुर्थ उपाय अर्थात् दण्ड से साध्य होने वाले शत्रु के साथ नीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है। कौन बुद्धिमान पसीने से (अर्थात् ऐसे उष्ण उपचार द्वारा जिससे रोगी को पसीना आये) साध्य होने वाले अपरिपक्व (तरुण) ज्वर को जल से सींचता है (अर्थात् कोई नहीं)

आयुर्वेद के ज्वर सिद्धान्त का कविता के रूप में कितना मनोहर प्ररूपण है। इस सिद्धान्त के सहारे अपने काम की बात एक सुन्दर काव्य शैली में यहाँ प्रस्तुत की गयी है। नीति की कही हुई बात कदाचित् शुष्क हो जाती, समझ में न आती कि माघ कवि उसे अप्रस्तुत विधान के रूप में काम में न लाते। यह संसार है, यहाँ सीधे, सच्चे और भोले व्यक्तियों को वैसे ही गुजारा नहीं तो फिर शत्रु के साथ तो उनका निर्वाह हो ही कैसे सकता है? शत्रु तो तरुण ज्वर के समान है। तरुण ज्वर एक भयंकर रोग है। शीतलोपचार से वह नहीं हो सकता, उसके लिए तो घर्मोपचार ही चाहिए।

एक और श्लोक में देखिये।

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति ।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ।।२-९६।।

यह चेदिराज अकेला है, अतः जीता जाने योग्य है, ऐसी बात मत सोचना क्योंकि वह तो राजाओं के एक समूह है, ठीक उसी तरह का जैसे राजयक्ष्मा (रोगों के एक समूह का नाम)।

जिस भाँति ज्वर, खाँसी, रक्त पित्तादि के प्रकोप इन अनेक रोगों के समूह का नाम राज्यक्ष्मा है उसी भांति शिशुपाल अनेक राजाओं का समूह है, वह अकेला नहीं है, उसका जीतना बहुत सरल नहीं है। शिशुपाल अकेला प्रतीत हो रहा है किन्तु ऐसी बात नहीं है। उसके साथ छोटे-मोटे सहायक अन्य राजा भी हैं जिनकी सहायता से आज वह प्रबल है।

वाग्भट्ट ने कहा है—

अनेक रोगानुगतो बहुरोग पुरसरः ।
राजयक्ष्मा क्षयःशोषो रोगरागाद्धिति स्मृतः ।।
नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ।।

राजयक्ष्मा रोग दीखने में एकाकी होता है किन्तु उसके सहायक छोटे-मोटे अन्य रोग भी तो हैं जैसे ज्वर, रक्तपित्तादि का दूषित हो जाना, फिर खाँसी के रूप में सब के सम्मुख आना। रोगी को जब खांसी हो जाती है तो वैद्य कहने लगते हैं, इसको राजयक्ष्मा रोग लग गया। प्रथम तथा द्वितीय सीढ़ी तक का रोगी जो रोग से मुक्त हो सकता है किन्तु तृतीय सीढ़ी अन्तिम अवस्था है। उस को प्राप्त हुआ रोगी बच नहीं सकता। उसके सम्पर्क में आने वाले रोगियों को भी छूत की बीमारी लग जाती है तो वह भी उसके पश्चात् ही समाप्त हो जाता है। अतः ऐसे रोगी को या तो मधुर रूप में दूर-दूर ही समाप्त कर देना चाहिए जिससे एक के नाश से अन्य व्यक्तियों के प्राण संकट में न पड़े या ऐसी औषधि दी जाय कि वह छूत के फैलाये बिना जीवित रहे।

माघ के आयुर्वेद ज्ञान को बताने वाले इन श्लोकों को भी देखिये—

कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा ॥ २-८४ ॥

अर्थ—जिस भाँति रोग कुपथ्य सेवन करने पर भी पहले कोई विकार नहीं प्रकट करता परन्तु शरीर की शक्ति के क्षीण हो जाने पर वही असाध्य हो जाता है और प्रचण्ड कोप करता है, उसी भाँति बुद्धिमान पुरुष शत्रुओं से तिरस्कृत होने पर भी अपने चित्त के विकारों को मन में ही छिपाये रखते हैं और जब शत्रु को किंचित्मात्र भी आपद्ग्रस्त देखते हैं तो उस पर क्रोध प्रकट करते हैं—

षाड्गुण्यमुपयुंजीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमंगानि स्थास्नूनि बलवन्ति च ॥ २-६३ ॥

अर्थ—शक्ति को चाहने वाले (प्रभाव, उत्साह, मन्त्र) राजा को षड्गुण सन्धि विग्रहादि रूपी रसायन का सेवन करना चाहिए, ऐसा करने पर इस प्रयोग करने वाले राजा के अंग (स्वामी, जनपद, अमात्य, कोष, दुर्ग, सेना और मित्र) दृढ़ और बलवान होते हैं।

एक श्लोक में दो बातें एक साथ ही परस्पर साधिका होकर आगयी हैं, स्पष्टीकरण आयुर्वेद सिद्धान्त से और आयुर्वेद सिद्धान्त का समाधान नीति से।

यह प्रसिद्ध है कि वैद्य लोग जब शरीर दुर्बल होने लगता है तो रसायन औषध का सेवन कराते हैं जिससे अंग प्रत्यंग शक्तिशाली होकर कार्य करने योग्य हो जायें।

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरंगिनाम्।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसंपदः ॥ २-६४ ॥

यहाँ, व्यायाम की उपयोगिता बतायी गयी है, आयुर्वेद भी व्यायाम पर बल देता है। शक्ति के अनुसार व्यायाम करना चाहिए जिससे शरीर की वृद्धि होती है किन्तु विपरीतावस्था में तो यही व्यायाम क्षय का कारण होकर देह को दुर्बल और रोगों का घर बना देता है। यहाँ आयुर्वेद का पुट देकर कवि ने सुन्दर शैली में अपनी बात को पुष्ट किया है।

फिर देखिये ज्वरादि में निपुण वैद्य उपवास कराना हितकर समझता है, इस भाव को कवि यहाँ प्रकट करता है—

स्रस्तांगसंधौ विगताक्षपाटवे, रुजा निकामं विकलीकृते रथे ।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं, प्रचक्रमे लंघनपूर्वकः क्रमः ॥ १२-२५ ॥

मृगी के रोगी का चित्र भी दर्शनीय है—

आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकारबृहत्तरंगम् ।
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशंके ॥ ३-७२ ॥

निम्न श्लोक में कवि यहाँ वैद्यराज के रूप में भी उपस्थित है—

इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार प्रकुपित इव रोगः क्षिप्रकारी विकारम् ।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदेव ॥ २०-७६ ॥

ज्योतिष ज्ञान—

कवि ने आयुर्वेद की तरह ज्योतिष शास्त्र का भी अध्ययन किया था। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः सर्वासु दिक्ष्व प्रतिषिद्ध मार्गम् ।
महारथी पुष्परथं रथांगी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढ़ः ॥ ३-२१ ॥

अर्थ—चक्रधारी महारथी श्री कृष्ण जो सदैव अभिलषित वस्तुओं का सम्पादन करने वाले हैं जिनका मार्ग सब दिशाओं में बाधा रहित है, तथा जिनकी गति तीव्र है, आज अपने पुष्प रथ में उसी तरह अवस्थित हैं जैसे पुष्य नक्षत्र में अवस्थित चंद्रमा हों।

कवि ने अपनी कला से पुष्परथ को पुष्य नक्षत्र बतला कर कार्यसिद्धि की सूचना दी है। ज्योतिष शास्त्र का कथन है कि पुष्य नक्षत्र में किया हुआ कार्य कभी निष्फल नहीं होता। वह अर्थ-सिद्धि सम्पादन करता है। इष्ट सिद्धि दायक तथा सर्व दिक् गमन में प्रशस्त वह पुष्य नक्षत्र रूपी क्रीड़ारथ भी वैसा ही था, उसमें श्री कृष्ण चन्द्र के बैठते ही कार्य सिद्धि का विश्वास हो गया।

प्रथम सर्ग के अन्तिम श्लोक की अन्तिम पंक्ति में—

व्योम्नीव भ्रकुटिच्छेलन वदने केतुश्चकारास्पदम् ।

श्री कृष्ण के मुखाकाश पर शत्रुओं के नाश का भृकुटि केतु का उदय होता है ज्योतिष शास्त्र कहता है 'चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत्'।

ज्योतिष शास्त्र में जब चन्द्रमा सूर्य के अतिरिक्त किन्हीं दो ग्रहों के मध्य में स्थित होता है तब दुरुधरा योग होता है (अनफा सुनफा दुरुधरा)। इस बात को नीचे के श्लोक में दिया गया है—

पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा ।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तर स्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना ॥ १३-२२ ॥

इस तरह अन्यत्र भी ज्योतिष सम्बन्ध कई प्रसंग आये हैं जिनमें कवि के ज्योतर्विद् होने का प्रमाण मिलता है। श्लोक २-८४, २-९३, २-९४, १२-२५ द्रष्टव्य हैं।

पशु विद्याओं का ज्ञान

महाकवि माघ को पशु प्रकृति का जैसा निकट का परिचय था वैसा कदाचित् ही किसी और कवि का हो। उन्होंने हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, साँडों आदि का यथावत् वर्णन किया है।

नीचे के श्लोक में गजविद्या का परिचय है—

सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षाग्रांगीं शोभामाप्नुवन्तश्चतुर्थिम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चंडं गंडशैला इवेभाः ॥१८-६॥

उपर्युक्त में हाथी की आयु कितनी मानी जाती है इस बात का पूर्ण ज्ञान अंग की चतुर्थी शोभा धारण करने वाले कह कर कराया है। हाथियों की पूर्ण आयु १२० वर्ष की मानी जाती है। कुल दशायें १२ होती हैं अतः उनकी चतुर्थी दशा चालीस वर्ष की आयु में आती है। इस श्लोक में यह भी स्पष्ट किया है कि चतुर्थी शोभा को धारण करने वाला यह गजराज अत्यन्त सघन चमड़े वाला है इससे प्रतीत हो रहा है कि ४० वर्ष की वय में हाथी युवावस्था में आता है। तब उसके अंग प्रत्यंग का पूर्ण विकास होता है अतः उसकी गति भी बहुत तीव्र होती है, इसी लिए कवि ने इस अवस्था का चित्र उसकी गति को बताकर चित्रित किया है। कवि कहता है जैसे प्रलयकाल के अवसर पर वायु से प्रेरित बड़ी-बड़ी शिलायें चलती हैं उसी भाँति वे हाथी भी अत्यन्त तीव्रगति से चलने लगे।

इसी सम्बन्ध में एक दूसरा श्लोक और है—

मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधा गजांजनः शमितरजश्चयानधः
उपर्यवस्थितघनपांशुमंडलानलोकयत्ततपटमंडपानिव ॥१७-६८॥

उपर्युक्त में हाथियों के मद टपकाने की बात कही गयी है। वे सातों स्थानों से मद बहाते हैं। वे सात स्थान गज विद्या के अनुसार ये हैं दोनों नेत्र, दोनों कपोल,, सूंड, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय। गज विद्या में इसी बात को यों कहा गया है—

चक्षुषी च कपौलौ च करो मेढ्ं गुदस्तथा।
सप्त स्थानानि मातंग-मदस्य स्रुति हेतव. ॥१७-६८॥

समय को देखकर हाथी को कैसे अंकुश द्वारा वश में किया जाता है यह बात नीचे के श्लोक में अंकित है—

प्रत्यन्यनागं चलितस्त्वारावता निरस्य मंकुंठं दधताप्यमंकुशम्।
मूर्धानमूर्ध्वायितदन्तमंडलं धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना ॥१२-१२॥

दूसरे प्रतिद्वंदी हाथी की ओर दौड़ने पर दन्तमंडलों समेत मुख को ऊपर फैलाये हुए

गजराज को महावत ने शीघ्रता के साथ पहले कुंठित अंकुश को निकाल कर जब अन्य तीक्ष्ण अंकुश से मारा तब वह रुक गया और अपने मस्तक को हिलाने लग गया। महावत के गज पर चढ़ने का एक दृश्य है—

उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः
आकुंचितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् ॥१२-५॥

अर्थ—शरीर के प्रथम भाग को ऊपर करके मानो आकाश को लांघने का इच्छुक एवं विशाल पर्वत का अनुकरण करने वाले विशाल गजराज अपने पिछले पैरों को झुका कर अपने ऊपर उसी के सहारे महावत को चढ़ाने लगा।

गज विद्या की निपुणता का एक नमूना और है—

जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने, संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः
गंभीर वेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे, मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः ॥५-४६

अर्थ—एक गम्भीर वेदी गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पर्वत चाबुक लगाये जाने पर भी आँखें मूंदकर अब खड़ा ही रह गया और उसने अपना ग्राम भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि सचमुच जो महान् पुरुष होते हैं वे मन्दशक्ति होने पर भी बलात्कारपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते अथवा बलवान् व्यक्ति चाहे वहमूर्ख भी हो तो भी कष्ट पहुँचाकर साध्य नहीं किए जा सकते।

यहाँ 'मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः' इस सुभाषोक्ति से गज विद्या का सुन्दर मेल बैठाया गया है। 'गम्भीरवेदी' गजराज वह है जो मन्द बुद्धि अथवा मदोमन्दत होता है और चाबुक मारने पर सीधे नहीं चलता अथवाबहुत सिखाने पर भी नहीं सीखता। गज विद्या में कहा गया है कि 'त्वग्भेदात् शोणितस्रावात् मांसस्य च्यवनादपि। आत्मानं यो न जानाति तस्य गम्भीर वेदिता ॥' गम्भीर वेदी गज का एक लक्षण और मिलता है—

चिरकालेन यो वेत्ति शिक्षां परिचितामपि।
गंभीरवेदी विज्ञेयः स गजो गजवेद्भिः ॥

गज विद्या में गज के इतने भेद कहे गये हैं—'मद्रो मन्दो मृगश्चेति विज्ञेयास्त्रिविधा गजाः' कवि ने 'मन्द' का लक्षण पाठकों के सम्मुख रक्खा है। गम्भीरं मन्दं वेत्तीति गम्भीर वेदी गम्भीर वेदी का लक्षण एक आचार्य ने यह कहा है—

त्वग्भेदाच्छोणितस्रावादामांसच्यवनादपि
संज्ञां न लभते यस्तु प्रोक्तोगंभीरवेद्यसौ ॥

गज प्रकृति के तो माघ काव्य में बीसियों उदाहरण मिलेंगे। एकाध यहाँ भी प्रस्तुत किया जाता है।

क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकांडं नापेक्षते स्म निकटोपगतां करेणुम्।
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम् ॥५-५०॥

कैसा सुन्दर चित्र है। गजराज सामने डाले गये ईख के टुकड़े को ग्रहण नहीं कर रहा है और न ही सामने आई हुई हथिनि की अपेक्षा करता है, वह तो निरन्तर आंख बन्द किए हुए वनवास कालिक स्वेच्छा विहार के महान् आनन्द का ही स्मरण करता रहा है।

यह तो सिद्धान्त की बात कवि ने कह डाली। वास्तव में ही वन में जाने वाले गजों को राजगृह (प्रसाद) से वन हीं सुखद होता है, कहा भी है—

महावृष्टचवधूतस्य मृगयूथस्य धावतः
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामः कदानस्तद् भविष्यतीति ॥

एक दो श्लोक और हैं—

गंडूष मुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्ध परवारण मारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथु प्रतिमान भागरुद्धोरुदन्त मुसल प्रसरं निपेते ॥३६॥
स्तंमं महान्तमुचितं सहसाभुमोच दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः
बद्धापरीणि परितो निगडान्यलावितस्तातन्व्यमुज्वलमवाप करेणुराजः ॥

अश्व विद्या ज्ञान—

तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा सम्यक् कशात्रयविचारवता नियुक्तः
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चैश्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन ॥५-१०॥

अर्थ—वेग को रोकने वाली लगाम को थामने में सावधान तीनों प्रकार की—उत्तम, मध्यम, और अधम-चाबुकों के प्रयोग जानने वाले घुड़सवारों से भली-भाँति हाँके गये ऊँचे आरट्ट (अरब) देश में उत्पन्न घोड़े अपने विचित्र पाद—विक्षेप द्वारा कभी चंचल और कभी कठोर भाव के मंडलाकार गति विशेष से चल रहे थे।

उपर्युक्त श्लोक के कहने से तो स्पष्ट रूप में कवि शालिहोत्री से प्रतीत होते हैं। घोड़े की गति एवं चाबुक के प्रयोगों के यहाँ शास्त्रीय लक्षण दिये गये हैं। घोड़े को तीन भाँति के चाबुकों से चलाया जाता है। कभी तो वह कठोर चाबुकों से चलाया जाता है तो कभी साधारण और कभी अति साधारण चाबुकों से संकेत मात्र से ही चलाया जाता है और इन्हीं के अनुसार गति में भी भेद हो जाता है ये घोड़े कभी अत्यन्त वेग पूर्वक टपटप करते हुए आगे की ओर दौड़ते, लपकते से चलते हैं तो कभी मध्य गति का अनुसरण करते हैं और कभी अत्यंत ही मन्द गति से चलते हैं। शालिहोत्रग्रन्थ में भोजराज लिखते हैं—

तजो निसर्गजं सत्वं वाजिनां स्फुरणं रजः।
क्रोधस्तम् इति ज्ञेया स्त्रयोऽपि सहजा गुणाः
मृदुनैकेनघातेन दंडकालेषु ताडयेत्।
तीक्ष्णं मध्ये पुनर्द्वाभ्यां जघन्यं निष्ठुरैस्त्रिभिः ॥

माघ ने एक जगह अश्व संचालन का वर्णन करते हुए वल्गा के कुशल प्रयोग की बात कही है—

अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्मधाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपा : ।
सिद्ध मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्व वल्गाविभाग कुशलो गमयाबभूव ॥५ ६०॥

इसी सबध मे हल लीलालवती मे कहा गया है—

उत्क्षिप्ता शिथिला तयोतरवती मदाच वैहायसी
विक्षिप्तैक करार्धन्कन्धरँसमाकीर्णा विभक्ता तथा ।
अत्युत्क्षिप्ततलोद्धृते खलु तथा व्यागूढगोकर्णिके
वाहाना कथिताश्चतुर्दशविधा वल्गाप्रभेदा अमी ॥

भोज भी इस सबध मे लिखते है—

वाहन प्रतिवाहाना पडविध प्रेरण विदु :
रागवल्गाकशापार्ष्णि प्रतोदरवभेदतः ॥

रेवतोत्तर मे कहा है—

सृक्काधरोष्ठसिफेनलवाभिरामफूत्कारवायुपदमुन्नतकन्धराग्रम् ।
नीत्वोपकु चितमुख नवलोहसाम्यमश्व चतुष्कसमये मुखसिद्धमाहुः ॥

धारागति भेदा:—

अश्वाना तु गतिर्धारा विभिन्नासा च पचधा ।
आस्कन्दितं धौरितक रेचित वल्गित प्लुतम् ॥ "

कवि ने अश्वो का जो वर्णन किया है वह शास्त्र सगत है । केवल शास्त्र सगत ही नही अश्वारोहियो के अनुभावो से भी सगत है । इन वर्णनोको पढकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कवि माघ एक कुशल अश्वारोही थे और भी देखिये—

दन्तालिकाधरणनिश्चलपाणियुग्ममर्धोदितो हरिरिवोदयशैलमूर्ध्नः ।
स्तोकेन नाक्रमत वल्लभपालमुच्चैः श्री वृक्षकी पुरुषकोन्नमिताग्रकाय' ॥५ ५६

अश्व विद्या मे इसी प्रसग को नीचे लिखे श्लोक मिलते है—

पश्चिमेनाग्रपादेन भुवि स्थित्वाग्रपादयो :
ऊर्ध्वंवप्रेरणायाः स्थानमश्वानां पुरुषः स्मृतः ॥

श्री वृक्षकी के लिए कहा गया है—

वक्षोभवावर्तचतुष्टय च कंठे भवेद्यस्य च रोचमानः
श्री वृक्षकीनाम हय· स भर्तुः श्रीपुत्रपौत्रादिविवृद्धये स्यात्॥

बैजयन्ती में कहा है',—श्री वृक्षकी वक्षसि चेद्रोमावर्तो मुखेऽपि च ।

माघ काव्य मे घुड दौडों के वर्णन बडे सुन्दर है । एक श्लोक है—

गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः स्वैरं समाचक्रषिरे भुवि वेल्लनाय ।
दर्पोदयोल्लसितफेनजलानुसारसंलक्ष्यपल्ययनवर्ध्र पदास्तुरंगाः ॥५.५३॥

अश्वारोहण का वर्णन नीचे के श्लोक में चित्रोपम हुआ है—

स्वैरंकृतास्फालनलालितान्पुरःस्फुरत्तनून्दर्शितलाघवक्रियाः
वंकावलग्नैकसवल्गपाणयस्तुरंगमानारुरुहुस्तुरंगिणः ॥१२. ६॥

यहाँ स्वभावोक्ति ने वर्णन में सजीवता उत्पन्न करदी है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि गजों और अश्वों के संबंध में कवि ने जो परिचय दिया है वह शास्त्रानुमोदित, अनुभव संचित और काव्योचित है ।

गजों और अश्वों को ही क्यों लिया जाय उसने अपने काव्य में खच्चरों और ऊँटों से लेकर बैलों तथा गदहों के स्वभावों तथा उनके कार्यों की भी बातें लिखी हैं । कहीं कहीं तो इन पशुओं, ऊँटों और जंगली सांड़ों और बैलों की प्रकृति का इतना बारीकी से स्वाभाविक तथा सुन्दर वर्णन किया है कि मानों कवि एक चित्रकार के रूप रेखाचित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हो जिस में केवल रंग भर कर प्राण प्रतिष्ठा भर करना शेष रह गया हो । कवि ने जो प्रमाण दिये उनके फलस्वरूप उनकी कवि-दृष्टि बड़ी पैनी और विस्तीर्ण होगयी, तभी तो वह दूध दुहती हुई ग्वालिनियों, खेतों की रखवाली करती हुई स्त्रियों गज, अश्व ऊँट, और खच्चर चलाने वाले सैनिकों आदि के चित्रों का यथार्थता के साथ खेंचने में समर्थ हो सके । उनकी स्वाभावोक्तियाँ बड़ी मार्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न हैं ।

नीचे कुछ श्लोक दिये जाते हैं जिनमें कवि ने ऊँटों की वृत्तियों और उनके कार्यों का वर्णन कर अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय दिया है ।—

उत्थातुमिच्छन्विधृतः पुरोबलान्निधीयमाने भरभाजि यन्त्रके ।
अर्धोज्झितोद्गारविभर्झरस्वरः स्वनाम निन्ये रवणः स्फुटार्थताम् ॥१२.९॥

उस दृश्य में ऊँट की नकेल खिंचते ही ऊँट आधी चबाई हुई नीम आदि की पत्तियों के रस को बाहर निकालने के साथ-साथ जोर ज़ोर से बलबलाने लगता है और अपने नाम रवण (ऊँट) को सार्थक कर रहा है ।

अह्नाय यावन्न चकार भूयसे निषेदिवानासनबन्धमध्वने ।
तीव्रोत्थितास्तावदसह्यरंहसो विश्रृंखलं शृंखलकाः प्रतस्थिरे ॥१२-७॥

ऊँट पर जैसे ही बैठने के लिये पागड़े में एक पैर रखकर दूसरे पैर को दूहरी ओर रख करबैठना ही चाहते हैं कि इसी मध्य ऊँट कर नकेल की कोई चिन्ता न करके वेग से जाने के लिए तैयार हो जाता है ।

सार्धं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलंम्रदीयः
दासेरकः सपदितं संवलितं निषादैर्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥५-६६॥

ऊंट नीम के पत्तों को तो खाता ही है किन्तु धोखे से आम का जो कोमल पत्ता

उसके मुख में उन नीम के पत्तों के साथ चला गया कि उसने तुरन्त ही उसी प्रकार अपने मुख में चटपट उगेल कर बाहर निकाल दिया जैसे गरुड़ ने पूर्वकाल में म्लेच्छों का भक्षण करते समय जब धोखे से ब्राह्मण निगलने लगे तो तुरन्त ही उस ब्राह्मण को उगल कर बाहर ला पटका। स्वभाव का कितना सुन्दर वर्णन है। पौराणिक कथा के आश्रय से भाव और भी निखर आया। एक दृश्य और प्रस्तुत है—

बिभ्राणमायतिमतीमवृथा शिरोधिं प्रत्यग्रतामतिरसामधिकंदधन्ति
लोलोष्ठमौष्ट्रकमुदग्रमुखं तरूणामभ्रंलिहानि लिलिहे नवपल्लवानि ॥६-६५॥

नव पल्लवों को स्पर्श करने समय होठों की क्रिया दर्शनीय है। नीचे बैल का वर्णन भी दर्शनीय है—

उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघसौहित्यनिःसहतरेण तरोरधस्तात्
रौमन्थमन्थरचलद् गुरुसास्नमासांचक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण ॥५-६२॥

बैलों के आलस्यमय बैठकर जुगाली करते का, जुगाली करने समय उनकी विस्तृत गलकम्बल के धीरे-धीरे हिलने का तथा दोनों आंखों को आलस्य के मारे बन्द किये रहने का वह चित्र स्वभावोक्ति का एक सुन्दर निदर्शन है। सांड़ों का यह दृश्य भी मनोरम है।

मृत्पिंडशेखरितकोटिभिरर्धचन्द्रं शृङ्गैः शिखाग्रगतलक्ष्ममलं हसद्भिः
उच्छृङ्गितान्यवृषभाः सरितां नदन्तो रोधांसि धीरमवचस्करिरे महोक्षाः ॥५-६३॥

सांड़ गीली मिट्टी को देखकर सींगों से उसको ऊपर उठाकर फेंका करते हैं। अगले छोरों पर उनके मिट्टी लगी रहती है। ऐसा अधिकांश उस समय करते हैं जब दूसरा साँड दिखलाई पड़ता है और जोर जोर से गरजता है।

कालिदास ने इस वप्रक्रीड़ा का रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में इस भाँति वर्णन किया है—

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः
बध्नाति मे वन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥४७॥

एक चित्र और है—

मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान् भंक्त्वा परानन‍डुहोमुहुराहवेन।
ऊर्जस्वलेन सुरभीरनुनिःसपत्नं जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा ॥५-६४॥

गायों के पीछे साँडों के भागने का और एक साँड का दूसरे साँड को पराजित करने का यह एक अच्छा चित्र है।

गधे का चित्र वैसे काव्योचित नहीं माना जाता, पर वह भी इस दृष्टि की विचित्रता में वृद्धि करता है, उसका अपना एक स्थान है, एक काम है। कवि उसको नहीं भूलता और वर्णन करता है—

त्रस्तःसमस्त जनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयांचकार।
यावच्चलासन विलोलनितम्बबिम्बविस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात ॥५-७॥

दुहाती हुई गायों का यह एक मनोहारी दृश्य है—

प्रीत्या नियुक्तांल्लिहतीः स्तनंधयान्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः ।।१२-४०।।

ऐसा ही एक दूसरा दृश्य और भी है—

अभ्याजतो ऽभ्यागततूर्णतर्णकान्निर्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः
वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यतीमरिर्मधोरैक्षतगोमतल्लिकाम् ।।१२-४१।।

तोते और मृग किस प्रकार आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं इसे नीचे के श्लोक में देखा जा सकता है।

स व्रीहिणां यावदपासितु' गताः शुकान्मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम् ।
केदारिकाणामभितः समाकुलाः सहासमालोकयति स्म गोपिकाः ।।१२-४२।।

इस श्लोक में तोतों और मृगों का धान के खेतों में जाकर धान खाने का दृश्य देखकर गोपियाँ उन्हें भगाने के लिए इकट्ठी हो गयी हैं। नीचे के चित्र में स्तब्ध होकर स्त्रियों के गायन को सुन रहे हैं, उन्होंने खेत को हानि पहुँचाना छोड़ दिया है—

व्यासेद्धुमस्मानवधानतः पुराचलत्यसावित्युपकर्णयन्नसौ
गीतानि गोप्याःकलमं मृगव्रजो न नूनमत्तीति हरिर्व्यलोकयत् ।।१२-४३।।

मधु मक्खियाँ भी कवि की दृष्टि से ओझल न हो सकीं—

श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरोर्गजेन गंडं कषता विधूनिते ।
क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराकुलं विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे ।।१२-५४।।

मधु का छत्ता मानों वृक्ष की दाढ़ी है जो डाल में लगा हुआ है। गजराज ने आकर अपना गंडस्थल जैसे ही उस वृक्ष से खुजलाया कि धक्का लगने के कारण वह छत्ता हिल गया और उसमें से निकल मधु की बड़ी बड़ी मक्खियाँ भिन भिनाती हुई लोगों को काटने लगीं, सेना के लोग व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगे।

मानव सृष्टि को छोड़ कर शेष जंगल सृष्टि का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ साथ माघ काव्य के ५वें और १२वें सर्गों में तो विशेषकर हुआ ही है, पर अन्य सर्गों में भी यत्र तत्र वह बिखरा पड़ा है। विस्तारभय से यहाँ संकेत मात्र कर दिया गया है।

व्याकरण शास्त्र के महापण्डित माघ—

माघ कवि व्याकरण के विशेष पण्डित थे। अपने समय में वे महा वैयाकरण कहलाते थे, और इसमें संदेह नहीं वे इस पद के सर्वथा योग्य थे। शिशुपाल वध का एक-एक श्लोक उनके व्याकरण के पाण्डित्य का साक्षी है। इसीलिए कुछ आलोचकों को यह भी भ्रम हुआ कि भट्टी काव्य की भाँति शिशुपावध भी व्याकरण के नियमों को समझाने के लिए रचा गया है। यह एक सत्य है कि शिशुपालवध व्याकरण सिखाने के लिये नहीं रचा गया। वह तो

पूर्णतया एक महाकाव्य है। व्याकरण सम्बन्धी श्लोकों को यहाँ देना प्रसंग प्राप्त है। नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

उद्धतान् द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थे रुधिरं धातो रक्षार्थे भुवनं शराः ॥१६-१०३॥

गर्वोद्धत शत्रुओं को मारने वाले उन भगवान् श्री कृष्ण के बाण (या धातु के) पान करने के अर्थ में तो शत्रुओं के रक्त का पान कर रहे थे और रक्षा करने के अर्थ में जगत् की रक्षा कर रहे थे।

उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया जाता है इसका उत्तर नीचे के श्लोक में है—

सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदंगे।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ॥१०-१५॥

मदिरा के उत्कट नशे ने स्त्रियों के अंगों में विद्यमान किन्तु चिरकालतक अप्रयुक्त होने के कारण अप्रकाशित विलास को इस भाँति प्रकट कर दिया जैसे धातु में विद्यमान् अर्थों को उपसर्ग प्रकट कर देता है।

उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि प्रमदाओं के शरीर में प्रच्छन्न रूप से यद्यपि शृङ्गार चेष्टाएँ पहले ही विद्यमान् थीं किन्तु मधुमद (शराब का नशा) का आश्रय प्राप्त करते ही वे शृंगार-चेष्टाएँ पहले ही प्रमदाओं के अंगों में चमकने लगीं। जिस प्रकार धातुओं के अर्थ तो पहले से ही वर्तमान रहते हैं, ज्योंहि उपसर्गों का सान्निध्य मिलता है, वे प्रकाशित होने लगते हैं। कवि माघ ने इस पद में बड़े कौशल से 'उपसर्ग द्योतका एवं न वाचकाः' इस व्याकरण नियम को समझाया है। वैयाकरण भूषण में भी कहा गया है—

द्योतकाः प्रादयो येन निपाताश्चादयस्तथा।
उपास्येते हरिहरौ लकारौ दृश्यते यथा ॥

उपर्युक्त कारिका में प्रादि उपसर्गों के द्योतक होने में युक्ति दी गई है कि यदि उपसर्गों को अर्थ विशेष का द्योतक तथा धातु को अर्थ विशेष का वाचक न माना जायगा तो 'उपास्येते हरिहरौ' इसमें कर्मणि लकार की सिद्धि न होगी। अभिप्राय यह है कि प्रकृत प्रयोग में कर्मवाची लट् लकार तब हो जब आस् धातु सकर्मक का लक्षण स्वार्थफल-व्यधिकरण व्यापार वाचकत्वम् 'अर्थात् भिन्न-भिन्न आश्रय वाले स्थल और व्यापार का वाचक धातु सकर्मक होता है। प्रकृत में उपासना रूप फल यदि धात्वर्थ नहीं तो धातु सकर्मक सिद्ध न हो सकेगा फिर कर्मवाची लकार भी नहीं हो सकेगा इस कारण से यह मानना चाहिये कि उपासना धातु का ही अर्थ है। यह उपसर्ग केवल द्योतक है वाचक नहीं। इतनी बात समझ में आने के बाद पाठक 'धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम्' का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

नीचे के श्लोक में दिखाया गया है कि वह राजनीति किस काम की जिसमें सब कुछ रहते हुए भी पस्पश (अर्थात वर्णन करने वाला मर्मज्ञ गुप्तचर) नहीं है। इसमें शब्दविद्या और राजनीति दोनों का उपमानोपमेय भाव दिखाते हुए कवि ने अपने व्याकरण ज्ञान को प्रदर्शित

किया है, देखिये 'अपस्पशा' के शब्दश्लेष, 'सद्वृत्ति' 'सन्निबन्धना के अर्थश्लेष, 'अनुत्सूत्र-पदन्यास' के उभयश्लेष और 'शब्द विद्येव' के पूर्णोपमा की छटा को :—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सदवृतिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥२-११२॥

शास्त्रीय सिद्धान्त के विरुद्ध एक चरण भी जिसमें नहीं रखा गया है एवं राजकर्मचारियों के लिये अच्छी-अच्छी वृत्तियों तथा (सन्निबन्धना) अच्छे-अच्छे निबन्धनों (पारितोषिक आदि) की भी जिसमें व्यवस्था है फिर भी यदि वह राजनीति (अपस्पशा) यथार्थ वर्णन करने वाले मर्मज्ञ गुप्तचरों से शून्य है तो उसकी शोभा उसी भाँति नहीं होती जैसे (अनुत्सूत्र-पदन्यासा) पाणिन्यादि सूत्र के विरुद्ध शब्द विन्यास जिसमें है और (सद्वृत्ति) काशिकादि अच्छे-अच्छे ग्रन्थ जिसमें बने हैं तथा (सन्निबन्धना) पातंजल महाभाष्यादि जैसे निबन्धों वाली है ऐसी सद्विद्या (व्याकरण विद्या) अपस्पशा, पस्पश रहित होने पर शोभा नहीं देती है। यहाँ पर पस्पश का अर्थ व्याकरण रहस्य है और महा भाष्य के उस प्रकरण का नाम है जो प्रारम्भिक है तथा प्रथम दिन में बड़े उत्साह से महर्षि पतंजलि द्वारा लिखा गया है। 'न्यास' काशिका' और 'महाभाष्य' पाणिनीयव्याकरण के प्राचीन ग्रंथ हैं।

निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम् ।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत् समराजिरम् ॥१६-७५॥

अर्थ— जिस पर मित्र, स्वामी, चाचा, भाई तथा मामा सभी सगे सम्बन्धी मारे गये ऐसी उस रणभूमि को वीर और बुद्धिमान लोगों ने पाणिनि के उस अष्टाध्यायी व्याकरण की भाँति देखा जिसमें सुहृद, स्वामी, पितृव्य, भ्रातृ तथा मातुल ये सब निपात संज्ञारूप में माने गये।

नीचे परिभाषा का लक्षण काव्योपयोगी रूप से प्रस्तुत हुआ है—

परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम् ।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा ॥१६-८०॥

जिस भाँति व्याकरण शास्त्र के "इकोगुणवृद्धिः" इत्यादि परिभाषा सूत्र यद्यपि थोड़े अक्षरों वाले होते हैं तथापि उनका अर्थ बहुत होता है, उसकी सभी परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति चलती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, कहीं उसका अवरोध नहीं होता, उसी भाँति हमारे राजा शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि स्वल्पाक्षरों वाली होती है तथापि उसका अर्थ बहुत प्रभावकारी होता है, सब स्थानों में वह प्रतिष्ठा पाती है और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती।

इस भाँति कहीं पर वार्तिकों को समझाया है तो कहीं पर काशिका वृत्ति को ला कर रखा है। देखिये—

नांजसा निगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरासमे
तत्र कर्मणि विपर्यणीनन् मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः ॥ १४-२३ ॥

संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति ।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते ।।१४-२४।।

व्याकरण शास्त्र का इतना पक्का ज्ञान था कि उन्नीसवें सर्ग में ही कहीं द्व्यक्षर श्लोक लिखे हैं तो कहीं एकाक्षर में ही समाप्त होने वाले, कहीं गूढ़ अर्थ वाले हैं तो कहीं युग्मों और कुलकों का प्रयोग है । व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के बिना इस प्रकार की रचना नहीं हो सकती । व्याकरण शास्त्र के परिचय का एक दूसरा दृष्टान्त और है—

त्वक्साररन्ध्र परिपूरणलब्धगीति-रस्मिन्नसौ मृदितपक्ष्मलरल्लकांगः ।
कस्तूरिकामृगविमर्दसुगन्धिरेति रागीव सक्तिमधिकां विषयेषु वायुः ।।४-६१।।

"उपर्युक्त श्लोक में कस्तूरिकाविमर्दसुगन्धि" पंक्ति विचारणीय है । वार्त्तिक "गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम्" के अनुसार "इ" न होकर सुगन्धः होना चाहिये । कैयट, नागोजी भट्ट, भट्टोजि आदि वैयाकरणों की "गन्धस्येत्वे" में भिन्न-भिन्न संमतियाँ हैं । कविगण निरंकुश होते हैं । वे अपनी इच्छानुसार जब जैसा चाहें शब्द बना भी सकते हैं । पर यहाँ माघ कवि ने ऐसा नहीं किया है । श्री वल्लभदेव का कथन है कि—"गन्धशब्दोऽत्र गुणवचनो न द्रव्याभिधायी इति इत्वं भवत्येव" "गन्धस्येदुत्पूतिमुसुरभिभ्यः" इति ।

नीचे का श्लोक भी इस दृष्टि से विचारणीय है—

केवलं दधति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।
धातवः सृजतिसंहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः ।।१४-६६।।

सृजन करना, संहार करना तथा शासन करना अर्थात् पालना करना ये तीनों ही क्रियाएँ इन भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में केवल कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती हैं, कर्म वाच्य में नहीं । किन्तु इनके विषय में स्तुति करना यह क्रिया सदैव कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होती है ।

उपर्युक्त का अभिप्राय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सदा सृजति, संहरति, शास्तीति ये क्रियाएँ लगती हैं जिसका अर्थ यह होता है कि यही एक मात्र स्वयं सृजन करते हैं, सहांर करते हैं तथा पालन करते हैं । दूसरे शब्दों में यही ब्रह्मा, शिव, तथा विष्णु स्वरूप हैं । किन्तु स्तुति करना यह क्रिया कर्मवाच्य में अर्थात् इनके साथ "स्तूयते" ही क्रियापद उचित होता है जिसका अर्थ है कि सभी के द्वारा इनकी स्तुति की जाती है, और यह किसी की स्तुति नहीं करते ।

इस भाँति का दूसरा श्लोक और है—

दर्शनानुपदमेव कामतः स्वं वनीयकजनेऽधिगच्छति ।
प्रार्थनार्थरहितं तदाभवद् दीयतामिति वचोऽतिसर्जने ।।१४-४८।।

(याचकगण राजा युधिष्ठिर का दर्शन करने के पश्चात् बिना माँगे ही) जब यथेच्छ धन प्राप्त कर लेते थे तब "दीयताम्" अर्थात् मुझे दीजिये यह शब्द याचना के अर्थ में ही

नहीं रह जाता था प्रत्युत वह त्याग के अर्थ में (अर्थात् इनसे अधिक धन का क्या होगा, दूसरों को दे दीजिये याचकों में भी ऐसा विचार) हो जाता था।

यहाँ, 'दा' धातु का याचना परक अर्थ और त्याग परक अर्थ इन दोनों अर्थों को निभाया है।

व्याकरण ज्ञान से शुद्ध उच्चारण आ जाता है, मन्त्रों में शुद्ध उच्चारण अति आवश्यक है। आचार्य पाणिनि ने मन्त्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में बड़ी चेतावनी देते हुए कहा है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥ पाणिनीय शिक्षा

माघ ने इसी लिये इस व्याकरण सम्बन्धी बात को समक्ष रखते हुए कहा है—

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥१४-२०॥

इस तरह माघ काव्य में स्थान-स्थान व्याकरणनिष्ठ प्रयोगों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, यहाँ पर कुछ ही के उदाहरण संकेत रूप में और प्रस्तुत हैं—

(पर्यपूपुजत) (१. १४) अभिन्यवीविशत्) (१. १५) अचूचुरत् (१. १६), पारेजालं (३. ७०), मध्ये समुद्रं (३.३३), पारे मध्ये षष्ठ्या वा सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्ष-मिच्छाविहारवनवास महोत्सवानाम् (५. ५०) अधीगर्थदयेषां कर्मणि॥

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनंमुषाण रत्नानि हरामरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्यमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।
क्रियासमभिहारे लट्

ऊपर के विवेचन से हमको माघ के महा वैयाकरण होने के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता। उनके नवीनतम प्रयोगों तथा सिद्धान्तों के उल्लेखों को देख कर सहज ही अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिए एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा। व्याकरण की परिभाषाएँ अतिनीरस हुआ करती हैं किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और उनका संयोग भी अति मनोहर बन पड़ा है। व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का उन्होंने कहीं उल्लंघन नहीं किया। कदाचित एक आध ही स्थल ऐसा करना पड़ा हो यह तो स्पष्ट ही है कि व्याकरण चर्चा अप्रस्तुत विधान के रूप में आयी है। अलंकार रूप में उसके रहने से काव्य की शोभा बढ़ी ही है, घटी नहीं।

महाकवि माघ का आचार्यत्व :—

कई स्थानों पर इस बात का उल्लेख किया गया है कि महाकवि माघ पण्डित थे। उनका पाण्डित्य अगाध था। वह आज भी कवि के रूप में इतने प्रख्यात नहीं हैं जितने पण्डित

के रूप में। राजस्थान में "माघजी पण्डितजी" का प्रयोग, "कवि माघ" अथवा "माघ कवि" के प्रयोग से अधिक व्यापक है। 'काव्येषु माघ: कवि कालिदास: यह उक्ति साहित्यज्ञों में प्रसिद्ध है। शास्त्र-युक्त बातों से कविताबद्ध किया हुआ कथानक काव्य कहलाता है। काव्य में एक ओर लेखक कवि-पद्धति को सुव्यवस्थित रूप में रखता है तो दूसरी ओर उसको पुराण, श्रुति, वेद, वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष आदि के ज्ञान से उसे परिपुष्ट करता है। इस उक्ति के अनुसार जितने भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं उन सब में प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन माघ काव्य में है जैसे कवित्व का स्वाभाविक विलास कालिदास के काव्यों में है। हमें यहाँ माघ के आचार्यत्व के विषय में कुछ कहना है।

माघ एक उच्च कोटि के कवि तो थे ही, किन्तु उनके कवित्व से कहीं अधिक ऊँचा था उनका पाण्डित्य। कवि तो इनसे उच्चकोटि के और भी मिलते हैं, पर विद्वत्ता में श्री हर्ष को छोड़ कर और कोई इनकी बराबरी करने वाला नहीं। भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि से कालिदास को कवि और महाकवि की पदवियाँ दी गई हैं पर माघ के लिये कहीं पर कवि शब्द का प्रयोग न करके पण्डित शब्द का ही प्रयोग किया गया है। इससे तो यही विदित होता है कि उक्त ग्रन्थकारों की दृष्टि में माघ की विद्वत्ता उनकी कवित्व शक्ति की अपेक्षा कहीं बढ़ी चढ़ी थी।

माघ, जैसा कहा गया है, कवि ही नहीं हैं, आचार्य भी हैं। वैसे रसों के विषय में माघ से पूर्व के विद्वानों ने भी बहुत कुछ लिखा है किन्तु काव्य लक्षण में रस-सिद्धान्त का समावेश प्राय: इनके बाद हुआ। हम नीचे के श्लोकों को देखें तो उनसे यह बात और भी स्पष्ट होगी—

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा: संचारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृत: ॥२-८६॥

इस श्लोक में "सरसौ" यह विशेषण निकलता है। 'शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते' इससे शब्दार्थौ 'यह विशेष्य निकलता है।" नैकमोज: प्रसादो वा कालज्ञस्य महीपते: "इस श्लोक से भंग्यन्तर से "सगुणौ" इस विशेषण को निकाला जा सकता है। निम्नलिखित श्लोकों के द्वारा कवि ने प्रकारान्तर से काव्य लक्षण में "अदोषौ" विशेषण की सूचना दी है—

"स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञ: कोऽम्भसा परिसिंचति"
"असाध्य: कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा"
समौ हि शिष्टैराम्नातो वर्त्स्यन्त वामय: स च"
"यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम्।
वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम् ॥२-२२॥

इस भाँति माघ के मत से काव्य का लक्षण "अदोषौ सगुणौ सालंकारौ सरसौ शब्दार्थौ काव्यम्" बन जाता है। इसके अनुसार माघ ने अपने काव्य की रचना भी की। सर्व प्रथम मंगलाचरण में भगवद् विषयक रत्याख्य भाव ध्वनि स्पष्ट रूप में सन्निविष्ट है, फिर आगे चल कर नारद विषयक रत्याख्य भाव ध्वनि है। फिर आगे प्रथम सर्ग के श्लोक संख्या ४८, ४६ में वीर रस और ५० में वीर, भयानक, शृङ्गार, ५२ में भयानक ५३ में वीर और भयानक रस हैं। इस भाँति माघ में भाव ध्वनि व रस ध्वनि, रसवदादि अलंकार गुणीभूत व्यंग्य इन सब का पर्याप्त सन्निवेश है। माघ का जो स्वयं का काव्य-लक्षण है उसका अपने महाकाव्य में उन्होंने उचित रीति से निर्वाह किया है। यह हो सकता है कि माघ के समय में काव्य लक्षण की चर्चा में दोष, गुण, अलंकार, रस, शब्द और अर्थ आदि की चर्चा होने लगी हो, पर वह निश्चित ही आनन्दवर्धन आदि के पूर्ववर्ती हैं अतः इस दिशा में उनके पथ-प्रदर्शक भी हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन वामनादि में जो शब्दगम्य और अर्थगम्य २० गुण माने हैं वे हमारे आचार्य माघ को अभीष्ट नहीं हैं। माघ केवल तीन ही गुणों को स्वीकार करते हैं इसीलिये दो गुणों का तो उन्होंने स्पष्ट रूप से निर्देश भी कर दिया है— "नैकमोजः प्रसादो वा रसभाव विदः कवेः"। तीसरा माधुर्य गुण प्रकारान्तर से कवि ने सुचारु रूप से स्वीकृत किया है, "यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः"

इसी भाँति "सालंकारौ" यह भी काव्य लक्षण में माघ को उपादेय हैं अतः काव्य शरीर की सुचारुता के लिए यत्र तत्र शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उपमालंकारों का प्रयोग उन्होंने किया है।

इन्होंने काव्य के तीनों भेद माने हैं उत्तम, मध्यम, और अधम और एक ही महाकाव्य में तीनों प्रकार के काव्य की रचना उन्होंने की है।

जहाँ जहाँ रस-ध्वनि अथवा भाव-ध्वनि है वहाँ वहाँ उत्तम काव्य है। जहाँ भाषा प्रधानता अथवा अलंकार प्रधानता है वहाँ मध्यम काव्य है और जहाँ यमकादिकों तथा बंधों का आग्रह है वहाँ अधम या चित्र काव्य है।

मम्मटाचार्य ने भी काव्य के यही तीन भेद किये हैं।

प्रौढ़ पाण्डित्य से उनका आचार्यत्व और भी सबल हुआ है। बहुज्ञता के प्रकरण में उनके पाण्डित्य पर पर्याप्त प्रकाश डाल दिया गया है। संगीत, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण आदि सभी विषयों में से सारभूत तत्वों को काव्योपयोगी ढंग से प्रस्तुत करना यह उनका काम है। यह काम एक आचार्य का ही हो सकता है। इस तरह साहित्य शास्त्र के क्षेत्र में उनका नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के साथ लिया जा सकता है।

माघ के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक ही है कि वह न केवल एक सरल कवि थे किन्तु अनेक शास्त्रों के सर्वमान्य विद्वान् भी थे। ऐसी विद्वत्ता दूसरे संस्कृत कवियों में बहुत कम देखने को मिलेगी। भारवि में राजनीति दक्षता और श्री हर्ष में दार्शनिक पटुता

अवश्य है किन्तु माघ अनेक शास्त्रों में पारंगत होने से इन से कहीं आगे बढ़ जाते हैं। क्या हिन्दू दर्शन, क्या बौद्ध दर्शन, क्या नाट्य शास्त्र, अलंकार शास्त्र, व्याकरण, संगीत, काव्य, आयुर्वेद, अश्व विद्या, गज विद्या, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, अथवा क्या पुराण, ज्योतिष, स्मृति, वेद, वेदांग, आदि शास्त्र इन सबका उत्कृष्ट उन्हें ज्ञान प्राप्त था। माघ ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान को कविता देवी के चरणों में अर्पित कर दिया था। इस समर्पण का जो परिणाम निकला वह एक महाकाव्य के रूप में सहृदय-समाज के समक्ष प्रस्तुत है।

उन्होंने पांडित्य को कवित्व का अंग बनाया, कवित्व को पांडित्य का नहीं, इससे यह कहना अधिक युक्ति-संगत होगा कि कवित्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने एक बड़ी साधना की वह कवि प्रथम थे और आचार्य बाद में।

माघ की शैली

लेखक की भाषा के व्यक्तिगत प्रयोग का, जिसमें वह अपने भाव, विचार और कल्पना को दूसरों पर प्रकट करना चाहता है, शैली कहते हैं। यह शैली ही रचयिता की रचना का चमत्कार है।

प्रकाण्ड पंडित और महाकवि की रचनाशैली के सम्बन्ध में विचार प्रकट करना सरल कार्य नहीं है। उसके लिए आलोचक स्वयं जब तक कुछ उनसे भी अधिक विषयों का मर्मज्ञ न हो और साथ में कवि-हृदय न हो तब तक माघ जैसे महाकवि के प्रति वह सहानुभूति नहीं हो सकती जिसके अभाव में आलोचना एक विडम्बना बन जाया करती है। माघ की शैली का ठीक ठीक मूल्यांकन जो अब तक नहीं हो पाया है उसके पीछे आलोचकों की यही अपूर्णता है। शैली के गुण और दोष एक परम्परा के अनुसार गिनाये जा सकते हैं। पर ऐसी गिनती शैली का विवेचन नहीं हो सकती। फिर गुण और दोष किसमें नहीं होते। दोषों के सहारे ही तो मानवीयता ऊपर को उठती है। व्यक्तित्व का विकास होता है। इसीलिए तो तुलसी ने ठीक ही कहा है :—

जड़-चेतन गुण-दोष मय विश्व कीन्ह करतार।
सन्त-हंस गुण गहहि पय परिहरि वारि-विकार।।

अब तक माघ के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं उनका सम्बन्ध उनकी कविता के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के स्वरूपों से है। उनका कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों उनकी शैली को एक रूप देते हैं। उसी रूप का हमें यहाँ विचार करना है।

शैली में कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। यदि व्यक्तित्व की झलक उसमें न हो तो फिर शैली नाम की वस्तु का कवि के साथ प्रयोग हो ही नहीं सकता। फिर या तो कवि ने जो कुछ लिखा है वह अनुकरण मात्र है अथवा अनुवाद मात्र। वैसे तो अनुकरण और अनुवाद दोनों में भी अनुकर्त्ता और अनुवक्ता का अपना पूर्ण या अपूर्ण रूप सामने आजाता है और उस अर्थ में हम अनुवाद अथवा अनुकरण की सफलता असफलता की चर्चा करते हैं, फिर भी कवि न तो अनुवाद ही कर सकता है और न अनुकरण ही।

माघ ने प्रचलित काव्य-परम्पराओं को अपने महाकाव्य में लाने का प्रयत्न किया। यह एक ऐसा वास्तविक तथ्य है जिसके लिए दो रायें नहीं हो सकतीं। इसमें भी सचाई है कि भारवि का आदर्श ही नहीं उनका समूचा महाकाव्य किरातार्जुनीय माघ के लिए एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम करते रहे हैं। कथा का ढांचा, वर्णन की प्रणालियाँ, चरित्र का

विकास, वीर भावना के साथ भक्ति का योग सभी चीजें वही की वही हैं। पर इस साम्य को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि माघ काव्य किरातार्जुनीय का अनुकरण अथवा अनुवाद मात्र है। यही अनुवाद का प्रचलित अर्थ अपेक्षित नहीं है।

माघ की शैली को समझने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उस काव्य के साहित्यिक स्वरूप को समझा जाय। मौलिक कविता का, जिसे दूसरे शब्दों में शुद्ध कविता, सहज कविता, प्रतिभा-प्रधान कविता का युग समाप्त हो चुका था। कवि ने भी राज्याश्रय स्वीकार कर लिया था। राज्याश्रय का अर्थ था कवित्व के साथ चमत्कार का योग। यह चमत्कार पांडित्य जन्य होता था। पांडित्य के साथ विजिगीषा का योग होता है। इसी युग में इस पांडित्य के प्रभाव से ही कविता के तत्वों का विश्लेषण हुआ, काव्य के वर्णनीय विषय छाँटे गये, काव्य के नायक नायिका और उनके प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक और दोनों के सहायक कौन कौन हो सकते हैं, उनका स्वरूप कैसा होना चाहिए और कैसा नहीं होना चाहिए इसकी मीमांसा हुई। शब्द और अर्थ पर गम्भीर विवेचना की गई। इसी तरह विषय की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से, कला की दृष्टि से तथा विस्तार की दृष्टि से कुछ सिद्धान्त स्थिर होते गये और इन सिद्धान्तों ने काव्य की मर्यादाएँ बाँधी। फिर जैसा ऊपर कहा गया है कवित्व से पांडित्य का योग हुआ, सरल को गूढ़ और गूढ़ को क्लिष्ट बनाया गया। बहुज्ञता का अनेक विषयों की जानकारी का सहारा पाकर यह सरलता, गूढ़ता और क्लिष्टता कवित्व के योग से उत्तरोत्तर चमत्कारवती बनती गई। रस की अपेक्षा चमत्कार को समादर मिलने लगा। प्रसंग की उद्भावना, उक्ति और युक्ति दोनों का श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट करने में उपयोग होने लगा। अब श्रोताओं की वाहवाही स्वान्तः सुख का साधन बन गयी। राज दरबारों में कवि सभाएँ जुड़तीं, इन सभाओं में राज-समादृत्त रत्न होते, कवि अपनी अपनी रचना सुनाते उस पर किसी की कविता उत्तम रही और किसी की नहीं इस प्रकार के निर्णय होते। यह सब होता।

ऐसे युग में माघ कवि हुए थे। माघ युग के निर्माता कवि नहीं थे। वह तो युगानुसारी कवि थे। फिर भी एक युग के वे निर्माता बन ही गये। वह कैसे? इसी में उनकी शैली की उत्कृष्टता का रहस्य है।

ऊपर युग की कविता सम्बन्धी जिन बातों की चर्चा आयी है वह सब माघ-काव्य में एक एक करके हैं। महाकाव्य के लक्षण का आदि से अन्त तक निर्वाह हुआ है। कथानक उसका छोटा सा है। वर्णनों के सहारे वह बड़ा है। नीति राजनीति की चर्चा उसमें है। वीर-रस प्रधान काव्य होते हुए भी श्रृङ्गार की उसमें प्रमुखता है। श्रृङ्गार के आलंबन, उद्दीपन अनुभाव, सात्विक भाव तथा संचारी भावों का सम्मिलित और पृथक् पृथक् रूप से उसमें वर्णन हैं। नायक और नायिकाओं के विविध स्वरूप उसमें अंकित हैं। ऋतुवर्णन, वनविहार, जलविहार आदि सभी के दृश्य वहाँ हैं। स्थावर और जंगम प्रकृति का मानवीय भावों के साथ अपने शुद्ध रूप में तथा मानवीय रूप में वहाँ संगम हुआ है। यह भी है। छन्दों की उछल कूद, शब्दयोजना के खेल, अनेकों बंध, ये भी वहाँ हैं। वीर और श्रृङ्गार के साथ भक्ति का योग करके महाकाव्य को एक पवित्र रूप भी मिल गया है। इन वर्णनों को

पृथक् पृथक् करके पढ़ा जाय तो मुक्तक काव्य का सा आनन्द मिलता है और मिलाकर पढ़ने से तो वह प्रबन्ध काव्य है ही। इन सब बातों से आलोचकों की यही धारणा बनी है कि माघ की अलंकार प्रधान शैली है।

अब यदि हम इस दृष्टि से देखें कि इस सबके बीच कवि की अपनी दृष्टि क्या है तो उसकी शैली का रहस्य समझ में आ जायेगा। कवि के जीवन को आद्योपान्त पढ़ने के पश्चात् हमें इस बात को समझने में देर नहीं लगेगी कि वह किस चीज के लिए जूझता रहा वह वस्तु उसकी सारी श्री सम्पन्नता और त्यागमयीवृत्ति के होने पर भी उसे अपने जीवन काल में न मिली। इसलिए शृङ्गार और वीर दोनों ही एक तरह से कवि के जीवनोद्देश्य को प्राप्त कराने में असफल रहे। उसे इन दोनों को भक्ति की सरिता में डुबा देना पड़ा। यह भक्ति प्रधानता कवि की अपनी चीज है जो जीवन भर की साधना के फल स्वरूप उसे मिली है। इसलिए माघ की रचना में अलंकारमयता के होते हुए भी भाव की प्रधानता है।

जितने भी वर्णन हैं उनमें कवि की अपनी अनुभूतियाँ बोल रही हैं। कल्पना की उड़ान और अनुभूति की गहनता कवि की अपनी है। चाहे काव्य का ढाँचा दूसरों का है। इन दोनों बातों के सम्बन्ध में पहले काफी विचार से प्रकाश डाला जा चुका है।

जिस माघ में कविता उद्भूत हुई है वह भाषा भी कवि की अपनी है - उसका उस पर अधिकार है, नवीन शब्दों की प्रसंगानुसार रचना का उसमें बाहुल्य है, फिर पदयोजना का सौष्ठव भी उसका अपना है।

अप्रस्तुत विधान परंपरागत है, फिर भी उद्भावना उसकी अपनी है। चित्रण में जो रंग भरे गये हैं उसमें माघ की अपनी छाया है। कौनसा रंग कहाँ कितना होना चाहिए इसका निर्णय माघ ने स्वयं किया है।

दुर्भाग्यवश माघ ने शृङ्गार का जो स्वरूप लिया वह संयोग शृङ्गार है। संयोग पक्ष में अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्त नहीं होती, संवेदना मार्मिक नहीं बन पाती, उसमें क्षणिकता अधिक रहती है, इसीलिए उसका शृङ्गार-वर्णन कालिदास और भवभूति के समकक्ष नहीं हो सका। यदि इन्हीं कवियों के संयोग पक्ष ही को देखें और इस दृष्टि से माघ के शृङ्गार वर्णन की तुलना करें तो माघ का पलड़ा निश्चय रूप से भारी पड़ जायेगा। इसे माघ के विषय चयन का दोष माना जा सकता है।

जिन प्रकरणों में पांडित्य की दौड़ हुई है, होड़ बढ़कर कवि सामने आया है, वहाँ पर प्राप्त की हुई विजय भी सहृदयता के प्रांगण में करारी हार के रूप में ही प्रकट हुई है। कवित्व की दृष्टि से उसका समाधान नहीं होता और न उसका समाधान करना ही चाहिए।

बहुत सी बातों को एक जगह जोड़ देने से जो विरूपता आजाती है, संतुलन का ह्रास होजाता है वह भी माघ काव्य में है।

इस सबके साथ सबसे बड़ा दोष यदि उसकी शैली का है तो वह यह है कि उसका समझने वाला सहृदय मात्र न होकर भावुक विद्वान् ही हो सकता है। जिस विषय को वहाँ छेड़ा है या जिस विषय का सहारा लेकर कवि अपने वर्णनीय को प्रस्तुत करता है उसे

समझने के बाद उसकी कविता आनन्ददायिनी बन जाती है, ऐसा हृदयों का अनुभव है।

इस तरह से उपर्युक्त तीन दोषों से समवेत माघ कवि की रचना शैली में वे सब गुण हैं जिनका वर्णन ऊपर दिया जा सकता है। माघ कवि ने सारा काव्य लोकमानस को संतुष्ट करने के ढंग से लिखा, पर उसके साथ स्वान्तः सुख को मिलाया, इस विषय में उसने अपने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की रक्षा की, जिससे उनका व्यक्तित्व शतप्रतिशत उनकी शैली में मुखरित हुआ।

इसके साथ ही साथ आगे आने वाले संस्कृत तथा हिन्दी कवि समाज के लिए वर्णनों की दृष्टि से माघ ने जो आदर्श रखा वह आदर्श प्रेरणा का अक्षय स्रोत बनकर सामने आया।

आज के आलोचकों की यह मान्यता है कि परवर्ती संस्कृत काव्य पर माघ कवि का प्रभाव है। वे ह्रासोन्मुख काल के काव्यों के पथप्रदर्शक रहे हैं। उनकी कृत्रिम आलंकारिक शैली की ओर पश्चात् के रचे गये महाकाव्य जितने आकृष्ट हुए, उतने उनकी सुन्दर काव्य-शक्ति की ओर नहीं। श्री हर्ष के नैषधीयचरित को देख लेने पर माघ की बहुत सी बातें मस्तिष्क में चक्र काटती रहती हैं। माघ का प्रभाव वहाँ पर स्पष्ट है। भारवि का स्मरण दिलाकर यह बताया जाता है कि माघ पर उसका प्रभाव है जबकि माघ कवि के विषय में इस प्रकार के स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है। तब शैली के सभी दोषों के होते हुए भी आखिर कोई चीज तो माघ की अपनी है जो अनायास ही उन्हें आगे आनेवाले युग का निर्माता अथवा कम से कम पथ-प्रदर्शक तो बना ही गयी। वह चीज क्या है—संक्षेप में इसका उत्तर है उनके जीवन के संघर्षमय क्षणों की दिव्य अनुभूतियाँ जो उनकी रचना में कहीं वर्णन के रूप में और कहीं सूक्तियों के रूप में यत्र तत्र व्याप्त हो गयी हैं। उन्होंने महाकवि को अमर बना दिया है।

यही है वह दृष्टि जो उनकी शैली को समझने और समझाने में सहायक हो सकती है।

शिशुपालवध काव्य में प्रतिबिंबित राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन

(क) राजनैतिक जीवन

सर विनसेण्ट स्मिथ का कहना है कि हर्ष भारत का अन्तिम महान् सम्राट् था। गुप्त काल के पश्चात् उत्तरी भारत को साम्राज्यवादी विचारधारा के द्वारा एक शासनतन्त्र में बांध देने वाले तथा भारत और चीन के मध्य सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्पर्क को स्थिर रखने वाले सम्राट् हर्ष का जैसे ही इस संसार से प्रस्थान हुआ, इस देश की राजनैतिक एकता फिर विच्छिन्न होगयी। पृथकत्व और विभेद का युग पुनः प्रवृत्त हुआ। इतना विशालकाय साम्राज्य उनकी मृत्यु के पश्चात् ही उनके मंत्रियों के हाथ में पड़कर आन्तरिक कलह से अराजक-अवस्था को प्राप्त हो गया। चीन का हस्तक्षेप नैपाल और तिब्बत की सहायता से कुछ समय तक भारत पर रहा। इन सब के भी ऊपर भारतीय सभ्यता और संस्कृति के शत्रु मुसलमानों के आक्रमण फिर से भारत भूमि पर होने लगे। अरब की सेनायें भारत के उत्तर और पश्चिम की सीमा में प्रवेश कर गयीं। हर्ष के समय में पैगम्बर महमूद ने मक्का और मदीना में इस्लाम धर्म का उपदेश दिया। उनकी मृत्यु ६३२ ई० में हुई। उनकी मृत्यु के पश्चात् १०० वर्षों में ही अरबों ने भारत के बहुत से प्रदेशों पर विजय प्राप्त करली थी। आश्चर्य है कि इस पारस्परिक आन्तरिक कलह से सन् ७११ में इस्लाम का साम्राज्य चीन की सीमा से लेकर अटलांटिक तक फैल गया था। सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में अरब उत्तरी भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे पर उस समय वे असफल रहे। सिन्ध में चच का राज्य था फिर उसके पुत्र वीर दाहिर का राज्य रहा। दाहिर भी शक्तिशाली था किन्तु हर्ष के पश्चात् ब्राह्मण मंत्रियों में राज्य के लिए कलह हुआ, उससे पृथकत्व की भावना को पोषण मिला। फिर पड़ौसी राज्यों के आक्रमणों ने और ब्राह्मण राज्य के प्रति बौद्ध संन्यासियों की उदासीनता ने अरब के सिन्ध पर आक्रमण को अन्त में सफलीभूत कर ही दिया। दाहिर बेचारा करता भी क्या? मोहम्मद बिन कासिम के आगे उसको पराजित होना पड़ा। शनैः शनैः अरब मध्य एशिया और पश्चिमी सीमा की ओर बढ़ते गये। चीन की सहायता से यद्यपि काश्मीर ७५१ ई० तक स्वतन्त्र बना रहा किन्तु चीन के जनरल (सीन ची) की अन्त में पराजय से अरबों का मार्ग और भी सुगम हो गया।

अरबों की इस विजय ने भारत की राजनैतिक स्थिति पर तो अधिक नहीं, पर सामाजिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला। शासक और शासित वर्ग में भेद होने लगा। शनैः शनैः लोगों की न्याय-विधि में भी अन्तर पड़ा। शनैः शनैः ये लोग भारत के रहनेवालों में

मिल जुल गए और इन विदेशियों ने भारतीय स्त्रियों के साथ विवाह करना प्रारंभ कर दिया। आगे चलकर तो इन्होंने भारत की वेशभूषा और रीति रिवाज भी अपना लिये। पर हिन्दू इन्हें आत्मसात् नहीं कर सके, जिसका फल यह हुआ कि भारत में भारतीय मुसलमानों की नवीन जाति का उदय हुआ। समुद्री बंदरगाहों से मध्य एशिया, लंका और चीन को वस्तुओं का आना जाना प्रारंभ हुआ। जिससे इस देश का व्यापार बढ़ा। अरबों ने भारत की ज्योतिष विद्या और आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। चरक संहिता और पंचतन्त्र का अनुवाद अरबी में हुआ।

निष्कर्ष निकला कि राजनैतिक दृष्टि से सिन्ध की अरब विजय का अधिक प्रभाव देखने में आया, पर उसका सांस्कृतिक प्रभाव दोनों देशों पर पड़ा। भारत से अरबों ने विभिन्न विद्याएँ प्राप्त कीं और फिर पाश्चात्य देशों में उन का प्रसार किया। भारत में एक अजीब सी निराशा घर जमाने लगी जिससे यहाँ के समाज की सहिष्णुता का (पाचनशक्ति का) अन्त सा हो गया। भारतीय मुस्लिम संस्कृति को अपनी संस्कृति का अंग नहीं बना सके। नवीन मुसलमानों का उदय आगे बढ़ने वाली दासता का संकेत-चिह्न था, इसे भारतीय समझ नहीं पाये।

आठवीं शताब्दी का सबसे महान् राजनैतिक परिवर्तन जो हुआ वह है राजपूतों का उदय। अरबों की हलचल का वर्णन हमने ऊपर किया है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इस्लामी-सेना के शिकार ये भारतीय बड़ी आसानी से नहीं हुए। विदेशी आक्रमणों के साथ टक्कर लेने वाली एक नवीन शक्ति का उदय हुआ और वह थी राजपूत शक्ति। राजपूतों ने अपने राज्य बनाने आरम्भ किये। इनके चार बड़े राज्य थे। प्रतिहार गुर्जर ही इन शक्तियों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे। ये पंजाब की सीमा तथा भारत के मैदान तक के स्वामी हो चुके थे। लगभग दो शताब्दियों तक इन्होंने मुसलमानों के आक्रमणों से टक्कर ली तथा भारत के मध्य तथा पश्चिमीय भाग पर अपना आधिपत्य जमाए रखा। इन चारों शक्तियों की परस्पर में प्रतिस्पर्धा रहती, जिससे आपस में युद्ध होते रहते। दूसरे छोटे राज्य परस्पर न लड़ कर अपनी सहायता उस राजा को देते रहते जो सबसे अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होता। गुर्जर प्रतिहार मुसलमानी आक्रमणों को रोकने में सिद्ध हस्त रहे। उनके ह्रास के बाद ही भारत में मुसलमानी सत्ता जमने लगी।

इस तरह हर्ष की मृत्यु के कुछ काल पश्चात ही देश छोटे मोटे अनेक शक्तिशाली राज्यों में विभक्त हो गया। इन राज्यों की संख्या बढ़ती गयी जिससे भारत की राजनैतिक एकता को गहरी क्षति पहुँची। इसका तुरन्त परिणाम यह हुआ कि निराश जनता ने अपने जीवन की बागडोर राजाओं के हाथों में सौंप दी। इस तरह जनजीवन का मानो लोप ही हो गया। अब राजा का जीवन ही जनता का जीवन बन गया, राजा की जीत प्रजा की जीत और राजा की हार, प्रजा की हार बन गयी। इसलिए भारतीय राजनीति का ह्रास के साथ ही साथ राजा और उसके साथ ही प्रजा के जीवन में चरित्रहीनता, उदासीनता, ईर्ष्या, कलह आदि असामाजिक दुर्गुण फैल गये। जनता की शक्ति के हट जाने से राजाओं की शक्ति बढ़ी तो अवश्य पर वह देश के शत्रुओं को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकी।

राजनीति के पतनावस्था पर पहुँचने पर मस्तिष्क शक्ति का भी पतन हुआ फिर तो इसका प्रभाव सामाजिक व धार्मिक भावनाओं में भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। चारों ओर से अब भारत में संकीर्ण प्रवृत्तियाँ घर करने लग गयीं। प्रगतिशीलता, मौलिकता एवं नवीनता तथा उदारशीलता की भावनाओं के स्थान पर प्रतिगामी भावनायें घर करने लगीं। इसका प्रभाव भारतीय काव्य पर भी पड़ा।

अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग वाले इस युग में केवल प्रतिहार गुर्जरों के शासन की रीति ही सराहनीय थी जो प्रजा की भलाई के लिए प्रयत्न करती। इन प्रतिहार गुर्जरों में प्रतिहार भोज सबसे महान रहे हैं।

ऊपर निर्दिष्ट की हुई राजनैतिक पृष्ठभूमि मे माघ काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह युग ही संघर्ष एवं युद्धों का था जिसमें प्राचीन राजवंश तो समाप्त हो रहे थे और उनके स्थान पर नवीन नवीन राज्यों का तथा नवीन वंशों का अभ्युदय हो रहा था। कई छोटे मोटे राजे एक शक्तिशाली राजा के आधीन रह कर उसी की भलाई में रहते और उसी के हित की बातें सोचा करते। जनता की कोई स्वतंत्र भावना न थी। राजा के अनुसार जनता चलती। राजा के कष्ट होजाने पर बेचारे व्यक्ति का कोई अस्तित्व न रहता। युद्ध में स्वामिभक्ति दिखाने के ही लिए वह अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देता। उस समय के राजा वीर अवश्य होते और वीर होने के नाते उनमें या तो क्रोध आता ही नहीं और यदि क्रोध भड़क उठता तो फिर उस क्रोध को शान्त करना कठिन होता। राज्य युद्ध-राजनीति के सहारे ही पलते हैं। माघ-काव्य की राजनीति-चर्चा आगे आने वाले युद्धों को उत्पन्न करने तथा दिशा देने वाली है। इस राजनीति में जो विचार विमर्श हुआ है वह अपने युद्ध रूप में हुआ है। दोनों पक्षों के तर्क सही तरीके से रखे गये हैं। निर्णय सही लिया गया है और उस निर्णय से दोनों पक्ष ही सन्देश सुनाते हैं। शिशुपाल भरी सभा में क्रोध करके अपने साथियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के राज मार्गों को पार करता हुआ निकल जाता है। कोलाहल हो जाता है कि अब कुछ न कुछ होने वाला है। शिशुपाल चाहता तो बिना किसी भाँति से सावधान किए भी वह श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ता और श्रीकृष्ण भी चाहते तो उसे वहाँ से जाने ही क्यों देते। नियमानुसार दूत आता है और अपने स्वामी का सन्देश शिष्टता पूर्वक कहता है। उस सन्देश को न मानने पर युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में रथी के साथ रथी, पैदल के साथ पैदल आदि का लड़ना तो प्राचीन युद्धनीति के अनुसार है।

युद्ध का वह समय था अत: नगरी के भी परकोटे हैं। पहरा भी वहाँ पर लगा रहता है। नियत समय पर प्रहरी बदले जाते हैं, ब्राह्ममुहूर्त में ब्राह्ममुहूर्त को सूचित करने वाली शहनाई, मृदंग, तुरई आदि बजा करती थी, गायक गाया करते थे सप्त स्वरों को मिलाकर। मंगल वाद्य सुनकर राजा लोग जाग उठते थे। फिर से यदि युद्ध का समय न हुआ तब प्रथम अपने दरबारियों से मिलते और सलाम, आशीर्वाद, मुजरा आदि स्वीकार करते।

छोटे मोटे मांडलिक राजा थे। गणतन्त्र राज्य था। युद्ध की विभीषिका थी ही किन्तु फिर भी कृषि, गोपालन तथा व्यापार की अवस्था उन्नत थी। ग्राम, नगर व देश धनी था। राजनैतिक मतभेद भी रहा करते थे किन्तु फिर उचित बात स्वीकार करली जाती थी।

कूटनीति खेली जाती थी। सैन्य संचालन होता रहता। संधिविग्रह के नियमों से राजा परिचित रहते थे। श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम तथा युधिष्ठिर और भीष्म के संवादों से उस समय की राजनीति की बातों का पता चलता है। कहीं-कहीं माघ ने अपनी विद्वत्ता का परिचय भी दिया है। जैसे—

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रियः ॥२-२६॥
उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विवकल्पते ।२-८१॥

सेना का विभाग, उप विभाग, दुर्ग रचना, अभियान, युद्धकला, शस्त्रास्त्र आदि बातों से कवि परिचित है।

इन सब बातों का निष्कर्ष यह निकला कि माघ काव्य में भारतीय राजनीति का अति सुन्दर वर्णन हुआ है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् देश, एक बहुत बड़ा साम्राज्य छोटे-मोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था और वे सब छोटे-मोटे राजा चक्रवर्तित्व के स्वप्न देखा ही करते थे। इस भाँति राज्यव्यवस्था में सर्वत्र अशांति थी किन्तु उस अशान्ति को दूर करने का तथा सब जगह शान्ति स्थापित करने वाले प्रतिहार वंशी उस समय वहाँ थे। उन्होंने समस्त उपद्रवों को दूर करने का तथा सब जगह शान्ति व सुव्यवस्था के रखने का पूर्ण प्रयास किया था। माघ काव्य में इसका अच्छा वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण शान्ति की व्यवस्था करते हुए द्वारिकापुरी में रहते थे। कहीं कोई उपद्रवकारी शिशुपाल जैसों का संकेत हुआ तो वे सेना सहित उस उपद्रवकारी शासक के शासन को नष्ट करने के लिए चल पड़ते अन्यथा सर्वत्र शांति विराजमान थी। यही अवस्था प्रतिहार भोज के समय में थी। नागभट्ट प्रथम के पूर्व समय तक तो इधर-उधर के उपद्रव, युद्ध, अशांति तथा अव्यवस्था सी रही जिसको दूर करने के लिए नागभट्ट ने भरसक प्रयत्न किया था। आगे चलकर जिस प्रकार साम्राज्य-विस्तार देश में हुआ उसी का प्रतिरूप माघ काव्य में अंकित है। कहीं युद्ध है, तो कहीं बंदियों को मुक्त किया जा रहा है, तो कहीं महाराजाधिराज के निकट दरबारी प्रातःकाल मुजरा सलाम आशीर्वाद आदि के लिए आ रहे हैं[1] मित्र और शत्रु के साथ बरती जाने वाली नीति का वर्णन द्वितीय तथा ग्यारहवें सर्गों में हुआ है। इन युद्धों के वर्णनों से पता चलता है कि सेना और प्रतिरक्षा की व्यवस्था राजा करता था। वह नगर में पहरे लगवाता, नगर में दुर्ग परिघा आदि का निर्माण कराता। माघ काव्य में इन सबके वर्णन यथास्थान आये हैं। द्वारका का वर्णन इस सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय की युद्ध कला का दिग्दर्शन १८वें और १९वें सर्गों में है। युद्ध के वास्तविक वर्णन को देखकर ऐसा लगता है मानो माघ कवि ने स्वयं कितने ही युद्ध अपनी आँखों देखे हैं। यह भी हो सकता है किसी

१. सेना प्रयाण के वर्णन में रैवतक पर्वत के लिए जब श्रीकृष्ण जा रहे हैं उस भाग को देखें। कारागार के फाटक तोड़ कर परिजनों को मुक्त करने की बात सर्ग ११ के ६० और ६१ श्लोक में देखें। चक्रवर्तित्व की इच्छा का उल्लेख इसी सर्ग के ४८वें श्लोक में है।

युद्ध में उन्होंने कोई भाग भी लिया हो। युद्ध कला का जो वर्णन है वह मिश्रित रूप का है तो कहीं कहीं वह महाभारत के युद्धों जैसा है। माघ के युग में गरुडास्त्र, नागास्त्र, वरुणास्त्र आदि का कोई प्रयोग न था और जहाँ हाथी, घोड़ों और ऊँटों पर बैठकर वीर पुरुषों के युद्ध का वर्णन हुआ है वह उस काल के युद्धों जैसा है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि माघ कालीन राजनैतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब शिशुपाल वध काव्य में है।

(ख) सामाजिक जीवन

बाहरी आक्रमणों के फलस्वरूप राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक जीवन पर भी एक दूसरे ही प्रकार का प्रभाव लक्षित होने लगा था। माघ ने अपने काव्य में तत्कालीन भारतीजीवन का तो एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया ही है किन्तु साथ ही साथ स्थानीय जीवन की भी उसमें कई झाँकियाँ हैं। पता चलता है कि उस समय वर्ण व्यवस्था पर बहुत बल दिया जाने लगा था। वर्ण संकरों का समाज में आदर नहीं होता था। अधिकांश घरों में संध्या वंदना और हवन आदि धार्मिक कृत्य हुआ करते थे। मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती थीं और मन्त्रों के जाप हुआ करते थे, देखिये—

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्-याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य। कृतगुरु दुरितौघध्वंसमध्वर्यु वर्यै
हु तमयमुपलीढे साधु सांनाय्यभग्निः ॥११-४१॥
प्रकृतजपविधीनामास्यमुद्रश्मिदन्तं मुहुरपिहितमोष्ठ्यैरक्षरैर्लक्ष्यमन्यैः।
अनुकृतिमनुवेलं घट्टितोद्घट्टतस्य व्रजति नियमभाजां मुग्धमुक्तापुटस्य ॥११-४२॥

यह वैदिक जीवन का चित्र है। यज्ञ दक्षिणा आदि का विस्तृत वर्णन कवि ने राजसूय यज्ञ के प्रसंग में किया है। कुछ श्लोक यहाँ दिये जाते हैं—

तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवदवृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि ॥१४-१९॥
शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ॥१४-२०
सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ ॥
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ॥१४-२१॥
बद्धदर्भमयकांचिदामया वीक्षितानि यजमानजायया।
शुष्मणि प्रणयनादि संस्कृते तैर्हवींषि जुहवांबभूविरे ॥१४-२२॥
दक्षिणीयमवगम्य पंक्तिशः पंक्तिपावनमथ द्विजव्रजम्।
दक्षिणः क्षितिपतिर्व्यशिश्रणद्दक्षिणाः सदसि राजसूयकीः ॥१४-३३॥

त्रिकाल संध्या का विधान था। यज्ञोपवीत द्विजगण धारण करते थे। अतिथि-सत्कार जातीय जीवन का विशेष अंग था। बड़ों के आगमन पर अपने आसन से उठकर यथायोग्य सत्कार के पश्चात् आसनासीन कराया जाता था, फिर मधुरवाणी से उनकी कुशल क्षेम पूछी जाती थी और अपने आपको सेवा के लिए समर्पित करने की बात कही जाती थी। प्रथम सर्ग में नारद के आगमन पर श्रीकृष्ण ने, और इन्द्रप्रस्थ की सीमा पर श्रीकृष्ण के पहुँचने पर युधिष्ठिर ने जो आतिथ्य किया है, उससे उनके समय के अतिथि-सत्कार का पता चलता है। जनता में कदाचित शिव और विष्णु दोनों के प्रति ही अधिक भक्ति थी यद्यपि अन्य देवताओं तथा अवतारों की भी वह यथावसर पूजा करती थीं। माघ ने श्रीकृष्ण को कहीं पर तो शिव, कहीं पर विष्णु, कहीं पर बुद्ध, और कहीं पर महावीर आदि का रूप देकर जनता की समन्वयात्मिका भक्ति की ओर भी संकेत किया है।

गृहस्थ लोग अपने धर्म का यथाविधि पालन करते थे। स्त्रियाँ पुरुषों के पश्चात् रात्रि को शयन करने जातीं और पुरुषों के पूर्व ही ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाया करती थीं। वे अपने पातिव्रत्य का पूर्णतया पालन करती थीं। सती-प्रथा उस समय कदाचित् जोरों पर थी। माघ के वर्णनों से इस बात की पुष्टि होती है—

> रुचिरधाम्निभर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।
> ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥९-१३॥
> बलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
> सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥१-७२॥

जनता पौराणिक बातों में विश्वास करती थी। अवतार पूजा तो उस समय तक बद्ध मूल हो ही चुकी थी। तीर्थों का जल पवित्र माना जाता था। उस समय शकुन अपशकुन का विचार भी लोगों में बहुत था। लोग पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वासी थे और वे यह भी मानते थे कि जब-जब भी पृथ्वी पर पाप, अधर्म अथवा अत्याचार बढ़ता है तो किसी न किसी रूप में भगवान् का अवतार हो ही जाता है।

एक गोत्र में विवाह नहीं होता था इसी लिए पति गोत्रभिद् कहलाता है। विवाह के समय नव विवाहिता पुत्री का पिता और नव-पुत्र-वधू को श्वसुर अपनी गोद में बैठा कर पहनने का आभूषण दिया करते थे। माघ ने इस प्रथा का उल्लेख किया है—

> रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
> प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरंकभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ॥३-३६॥

विवाहित लड़कियाँ जब पतिगृह जाती थीं तो विदा के समय माता पिता, सगे संबंधी, आस पास के पड़ोसी, भाई बहिन ये सब लगभग ग्राम की सीमा तक पहुँचाने जाया करते थे। लड़की गले में गला डालकर रोकर मिलती थी। माता पिता भी उसकी विदाई पर रुदन करते। एक करुणामय दृश्य बन जाता। यह प्रथा आज भी हमारे यहाँ प्रचलित है। माघ ने एक स्थान पर इसी भाव को व्यक्त किया है—

अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ॥४-४७॥

ये स्त्रियाँ पतिगृह में जाकर पर्दे में रहती थीं । अवगुण्ठन भी मुख पर हुआ करता था । लज्जा ही उनका सर्वोपरि भूषण समझा जाता था । एक ओर पर्दा-प्रथा का वर्णन माघ ने किया है और दूसरी ओर इन्होंने बताया है कि समरांगण में अपने पति की मृत्यु पर वीरांगनाओं ने वीरता पूर्वक अपने प्राणों की आहुति दी है। राजस्थान के जौहर के दृश्यों को माघ काव्य में पढ़कर स्त्रियों के एक अद्भुत् कर्म का दर्शन होता है। विश्वास के इस प्रकार के अखण्डरूप संसार में अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं।

स्त्रियों को बाल्यकाल में शास्त्र-शिक्षा के साथ शस्त्र-शिक्षा भी दी जाती थी जिससे वे समय पर अपनी तथा अपने कुल की मर्यादाओं की रक्षा कर सकें और यदि आवश्यकता हो तो मैदानों में शत्रु से भी मोर्चा लें । ऐसे सामाजिक अवसर भी होते थे जहाँ स्त्री-पुरुष मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्बाध रूप से प्रवृत्त हुआ करते थे । रैवतक की उपत्यका के दृश्य इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं ।

स्त्रियों की वेशभूषा का वर्णन माघ-काव्य में अनायास ही हो गया है। इस सम्बन्ध में पहले काफी लिखा जा चुका है । संक्षेप में यहाँ दुहराया जा सकता है कि वे कानों में कर्ण-फूल पहनती थीं तथा पैरों में नूपुर । करधनी, मोतियों की माला तथा कंकण उनके आभूषणों में प्रमुख थे । उस समय यह प्रथा अवश्य थी कि स्त्रियाँ पति के विदेश चले जाने पर अपना कंकण उतार देती थीं । (देखिये सर्ग ३ का ६९वां श्लोक) । पैरों में महावर का प्रयोग एक साधारण बात थी । शरीर पर कभी लाल चन्दन का लेप भी वे करती थीं । शरीर पर अंगराग का तो वर्णन कई जगह आया है । स्त्रियाँ ललाट पर तिलक लगाती थीं । होठों पर अलते का रंग, कपोलों पर लोध्रपुष्प की रज तथा नेत्रों में अंजन लगाने की प्रथा दिखलाई पड़ती है (देखिये सर्ग ९ का ४६वां श्लोक) स्त्रियों का वेश भी सुन्दर था । वे कुसुमल रंग की बहुत ही बारीक साड़ियाँ पहिनना अधिक पसन्द करती थीं जो धनी अथवा राजघराने की होतीं । ताम्बूल खाती तथा धूप से बचने के लिए कभी-कभी छाता भी लगातीं । कंचुकी (काँचलियां) तथा लहंगा पहिनतीं । लहंगे, ओढनी, काँचली, आभूषण, काजल, टीकी, तांबूल कणकती (करधनी) आदि की प्रथा राजपूत काल की ही देन है। स्त्रियों को इसी वेश-भूषा में माघ ने चित्रित किया है । वेश्यागमन तथा मदिरा-पान उस समय के विलास का चिह्न माना जाता था । युद्ध हुआ ही करते थे और इन युद्धों में सेना के प्रयाण के समय वेश्याएँ और मदिरा भरी गाड़ियाँ भी चला करती थीं । इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेश्याओं का भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन में एक विशेष प्रकार का योग रहा है । उस युग में बहु-विवाह की तथा उपपत्नी रखने की प्रथा प्रचलित थी और उच्चकुलीनता एवं शालीनता का सामाजिक चिह्न माना जाता था ।

माघ के काव्य को देखने से यह भी पता लगता है कि नगरों के रहने वाले लोग उद्योग, व्यापार करते थे या राज-सेवा पर अवलंबित थे किन्तु गाँवों में तो कृषि ही प्रधान थी । ग्रामीणों का जीवन उस समय आनन्द प्रद था । वे गोचरभूमि में मंडलाकार बैठे हुए

विभिन्न रूप से मनोविनोद किया करते थे। आपस में गप्पें लड़ाते वा नाच-कूद और संगीत गोष्ठि में भाग लेते थे। भजन आदि का भी लोगों को बहुत शौक था।

पुरुषों की वेशभूषा के लिए माघ ने कहा है कि वे कन्धे पर दुपट्टा रखते और अधोवस्त्र में एक धोती होती थी। पुरुष भी आभूषण धारण करते थे। उनके गले में मोतियों की माला होती। द्विज यज्ञोपवीत धारण करते थे। शरीर पर सिला हुआ वस्त्र धारण करते थे या नहीं इसका कहीं पर भी माघ कवि ने उल्लेख नहीं किया है और न ही शिरोवस्त्र (पगड़ी या साफे) का वर्णन किया है। उन दिनों पुरुष दाढी मूंछ रखाया करते थे और सिर पर शिखा (चोटी) होती थी।

जैसे स्त्रियों में सती-प्रथा थी उसी भाँति पुरुष भी वानप्रस्थ आश्रम में ऊँचे शिखर से शिला पर कूद कर इस कामना से प्राण त्यागते थे कि उन्हें स्वर्ग में अप्सराओं से विहार मिलेगा। चतुर्थ सर्ग के २३वें श्लोक में इस प्रथा का संकेत है।

उस समय रजस्वला स्त्री की ओर पुरुष देखा तक नहीं करते थे, स्पर्श करना तो दूर रहा। रजस्वला स्त्री को उन चार-पाँच दिनों प्राय: एकान्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

इस सबसे पता चलता है कि समाज में पुरुष का जीवन स्वतन्त्र था, वे स्त्रियों पर उस अर्थ में निर्भर नहीं थे, जिस रूप में स्त्रियाँ पुरुषों पर निर्भर थीं।

आदान प्रदान

(क) महाकवि माघ पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

मानव मात्र आदान प्रदान के सहारे अपना विकास करता है। विशेषकर वे लोग जो सामाजिक होते हैं, समाज के लिये बिना समाज को कुछ दे भी नहीं सकते। इन लोगों की आदान-प्रदान की युक्तियाँ निराली होती हैं। इनका आदान प्रदानोन्मुख होता है। कवि तो समाज से ही संवेदना को पाता है यह संवेदना उसकी अनुभूति बनती है और अपनी अनुभूति को वह समाज की संवेदना बनाता है। माघ तो कवि ही नहीं, महाकवि थे। अत: उन पर इनसे पूर्व के दार्शनिकों, तथा कवियों का प्रभाव होना ही चाहिए। वह पण्डित भी थे, कवि ही नहीं। इसका अर्थ यही है कि वह दूसरों के विचारों और भावनाओं को यथोचित रूप में अपने विचारों और भावनाओं का अंग बनाते थे, उनका यथावसर प्रकाश भी करते थे। इससे तो स्पष्ट है कि माघ पर अपने पूर्ववर्ती विचारकों और कवियों का प्रचुर परिमाण में प्रभाव था। यहाँ इसी प्रभाव को बतलाना हमारा प्रयोजन है।

कालिदास के पश्चात् कवियों में भारवि, भट्टी तथा कुमारादास के ही नाम प्रमुखता से लिये जाते हैं। उनमें माघ के साथ भारवि और भट्टी का ही नाम अधिक लिया जाता है। कालिदास के रीति-पक्ष (कला-पक्ष) को उनके पीछे आने वाले प्राय: सब ही कवियों ने अपनाया है वैसे उनकी अभिव्यंजना शैली से तो सभी प्रभावित रहे हैं। माघ ने कालिदास, भारवि दोनों की रचनाओं का सम्यक अध्ययन किया था। इस अध्ययन की छाया उनकी रचनाओं पर पड़ी है। कहीं-कहीं तो उन्होंने संशोधन भी करना चाहा है। उदाहरणार्थ माघ का संशोधन है 'किमु मुहुर्मुहुर्गतभर्तृका:'। व्याकरण प्रयोग में वे भट्टी से अधिक प्रभावित हुए हैं।

माघ कालिदास से पूर्णत: प्रभावित हैं। शिशुपाल वध के ११वें और १३वें सर्गों में यह प्रभाव स्पष्टतया देखने को मिल सकता है। रघुवंश का पाँचवां सर्ग जिस किसी ने देखा है उसको सहसा माघ के प्रभातवर्णन को पढ़ते ही रघुवंश का ५वां सर्ग स्मृतिपथ में अवतीर्ण हो जाता है। ऐसा लगता है मानो प्रभात वर्णन प्रेरणा का स्रोत रघुवंश का पंचम सर्ग है। (१) १३वें सर्ग में पुर सुन्दरियों का जो वर्णन आया है उसको देखकर कुमार सम्भव और रघुवंश के सातवें सर्ग की स्मृति हो आती है जहाँ पर शिव तथा अज

देखिये—माघ ११. ७ तथा रघुवंश ५. ७२, ७३।

के दर्शनों की उत्सुक स्त्रियाँ आई हुई हैं। इनमें भावों में ही समानता हो ऐसा नहीं है किन्तु पदों की भी समानता है। भारवि और भट्टि के तो माघ ऋणी हैं ही। भारवि भट्टि माघ को कलापक्ष की ओर प्रवृत्त कर सके तो भट्टी ने उन्हें काव्य में बहुज्ञता के प्रकाश की ओर झुका दिया। यदि हम इन तीन महाकवियों के प्रभाव तक ही सीमित रहें तो यह सरलता से कह सकते हैं कि माघ पर कालिदास की रस प्रवणता का, भारवि के भाषा सौन्दर्य का, और भट्टि की बहुज्ञता का प्रभाव है। इस प्रभाव की चर्चा माघ की तुलनात्मक समीक्षा में स्वत: हो जायगी अत: यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है।

[ख] महाकवि माघ का परवर्ती संस्कृत तथा हिंदी काव्य पर प्रभाव—

(१) महाकवि माघ की विलक्षण प्रतिभा, गम्भीर अध्ययन, सारग्राहिणी प्रवृत्ति तथा माघ का सौन्दर्य इन सबका परवर्ती कवियों पर आश्चर्यकारी प्रभाव पड़ा है।

नवम शती के अन्त में तथा दशवीं शती के पूर्वार्द्ध में काश्मीर में संस्कृत कवियों की एक बाढ़-सी आ गयी थी। मातृगुप्त जो स्वयं कवि थे उनके समय में भर्तृमेण्ठ ने हयग्रीववध लिखा, भौमक जो मेण्ठ के कुछ ही समय पश्चात् हुए उन्होंने भट्टि काव्य की शैली पर रावणार्जुनीय महाकाव्य लिखा, तथा शिव स्वामी ने कप्फणाभ्युदय महाकाव्य लिखा। इन्हीं शिव स्वामी के समकालीन हरविजय महाकाव्य के रचयिता रत्नाकर हुए हैं। इन उपर्युक्त कवियों पर भारवि और माघ दोनों की छाप स्पष्ट रूप में है। महाकवि माघ की प्रसिद्धि उनकी जीवितावस्था में ही पांडित्य, कवित्व एवं दानशीलता की कथाओं के कारण हो चुकी थीं। काश्मीर के पण्डित तो माघ से परिचित इसलिए भी थे कि ये काश्मीर में थोड़े दिन रह चुके थे। रत्नाकर का स्वयं का कहना है कि माघ के काव्य को पढ़ लेने पर अकवि शिशु भी कवि हो सकता है और कवि तो महाकवि बन ही सकता है (अपि शिशुरकवि: कविः प्रसादाद्भवति कविश्च महाकवि: क्रमेण)। अलंकार विमर्श के रचयिता ने रत्नाकर की प्रशंसा करते समय माघ के सम्बन्ध में भी यह लिखा है—

माघः शिशुपालवधं विदधत् कविमदवधं विदधे।
रत्नाकरः स्वविजयं हरविजयं वर्णयन् व्यवृणोत्॥

मुरारि कवि ने अनर्घराघव नाटक को सात अंकों में लिखा है जिसमें ताडका वध से लेकर राज्याभिषेक तक की बातें दी गई हैं। इस नाटक में पाण्डित्य का प्राधान्य है। मुरारि महाकवि भवभूति के अनुगामी थे किन्तु उन्होंने भवभूति से पदविन्यास ही लिया शेष बातें महाकवि माघ से ही इनको मिली हैं। माघ उच्च श्रेणी के कवि-हृदय थे अत: इस क्षेत्र में वे भारवि को परास्त कर सके। उनके नाटक को पढ़कर कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि माघ की ही भाँति मुरारि कवि भी व्याकरणसिद्ध पदों का तथा गीतात्मक शब्दालंकारों का प्रयोग करते हैं।

रघु ७. ७ व माघ १३. १३। रघु ७. ९ तथा माघ १३. ४४ रघु ६. २१ तथा माघ १४. ३०। किरात १. १ तथा माघ १. १।

शिवस्वामी के कप्फणाभ्युदय (बौद्ध महाकाव्य) में काव्यकला का पूरा प्रसार माघ के शिशुपालवध जैसा है। माघ की कृति की मानों वह एक प्रतिच्छाया ही है। शिशुपालवध ने सामीप्य के कारण जैसे इस युग के अन्य ब्राह्मण साहित्यकारों के काव्यों को प्रभावित किया है वैसे ही जैन और बौद्ध काव्यों को भी प्रभावित किया।

हरिश्चन्द्र कवि के "जीवननधर चम्पू" का जो कथानक है उस पर भी माघ का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने में आता है। हरिश्चन्द्र के 'धर्मशर्माभ्युदय' पर भी इसी तरह माघ की शैली का पूर्ण प्रभाव है। इस काव्य के १९ वें सर्ग में माघ की ही भाँति चित्रालंकारों की भरमार है। राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज के समसामयिक त्रिविक्रमभट्ट ने 'नलचम्पू' तथा 'मदालसा चम्पू' लिखे हैं। इन चम्पू ग्रन्थों में शाब्दी क्रीड़ा विशेष है। इस क्रीडा पर माघ का प्रभाव दिखाई पड़ता है। श्री हर्ष का नैषधीय चरित २२ सर्गों में नल दयमन्ती के प्रेम और विवाह की कथा का वर्णन करता है। इस महाकाव्य की गणना वृहत्त्रयी में की जाती है। इनकी रचना शैली माघ की शैली से मिलती जुलती है। 'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः" इस उक्ति से भी माघ का प्रभाव झलकता है। श्री हर्ष के पश्चात् भी माघ का प्रभाव चलता आ रहा है। कलावादी कवियों की सफलता माघ काव्य के अध्ययन से ही हुई है।

आज भी महाकवि माघ से प्रेरणा पाते हैं। उदाहरणार्थ डाक्टर भोलाशंकर व्यास के शुम्भवध काव्य को देखा जा सकता है।[1]

(२) माघ काव्य का प्रभाव हिन्दी काव्य पर भी पड़ा है। हिन्दी के कवियों ने जो संस्कृत साहित्य के अच्छे विद्वान् थे माघ की देखा देखी अपने काव्यों में वैसे ही भाव और वैसी ही शैली का लाना प्रारम्भ कर दिया। नीचे हम उन कवियों की कविताओं को उद्धृत करते हैं जिससे उन पर माघ काव्य का प्रभाव उनके काव्य पर विदित होता है। माघ कवि ने स्त्रियों की कमर के लिए कहा है—

आमृशद्भिरभितो वलिवीचिर्लोलिमानविततांगुलिहस्तैः।
सुभ्रुवामनुभवात्प्रतिपेदे मुष्टिमेयमिति मध्यमभीष्टैः ।।१०. ५९।।

नायिका की कटि इतनी सूक्ष्म है कि दिखलाई नहीं पड़ती। त्रिवली को चारों ओर से जब ढूंढा तब कहीं प्रियतमों को ज्ञात हुआ कि यह तो मुठ्ठी बराबर है।

नीचे के दोहे में बिहारी महाकवि माघ की ही भाँति कमर को अलग बता कर कहते हैं—

बुधि अनुमान प्रमानश्रुति किये नीठि ठहराई।
सूछम कटि पर ब्रह्मलों अलख लखी नहिं जाई।।

महाकवि केशवदास, घनानन्द, तथा सेनापति पर माघ शैली का खूब प्रभाव पड़ा है। रामचन्द्रिका का एक कवित्त है—

---

१. काश्मीर-जामृगमदोल्लसितं शरीरं नीत्वा सुरं धनपते गृंहिणी सुवेरम्।
हित्वा कुबेरमनुरंजयति स्म नु सौन्दर्य वर्यं मृगयाभिरता रमण्य ।।१. १५।।
शम्भूवधम् डा० भोला शंकर व्यास।

दीरघ दरीन बसे केशोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बनकरी ज्यों चपत है।
वासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत

शिशुपाल वध काव्य के इस श्लोक से इसका भाव मिलता है—

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम्।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ॥१.५३॥

'कौशिक' शब्द को महाकवि ने द्व्यर्थक किया है महेन्द्र और उलूक परक अर्थ ऊपर आया हुआ भाव साम्य हो जाता है।

सेना-पति पर भी माघ का प्रभाव है—

कुशलव रस करि गाइ सुर धुनि कहि, भाइ मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाय कीनों यहै भौ उतारन कौ, विसद वरन जाकी सुधा सम वानी है।
भुवपति रूपधारी पुन्न सीलहरि, आई सुरपुर से धरनि सियरानी है।
तीरथ सब शिरोमणि सेनापति जानी, राम की कहानी गंगाधारासी बखानी है।

उपर्युक्त में सेनापति कवि ने राम की कथा को गंगा जी की धारा के समान वर्णन किया है। एक अर्थ तो रामकथा की तरफ लगता है और दूसरा अर्थ गंगा के पक्ष में है।

महाकवि माघ ने भी चतुर्थ सर्ग के ५६वें श्लोक में रैवतक पर्वत की बड़ी-बड़ी झील का साम्य वाल्मीकि की वाणी रामायण से किया है।

सेना-पति का एक और कवित्त है—

द्विजन की जाये मरजाद छुटिजात भेष, पहिले वरन कौन तन को निदान है।
अंग छवि लीन स्तुतिधुनि सुनिये न मुख, लागी अब लार है न नाकहूं को ज्ञान है॥
देखिये जवन शोभा धनी जुगलीन मांझ, नामहूँ सौनाते कृष्ण के सौ कों जहान है।
सेनापति जाये जग आसा ही सौ भटकत, याहि तें बुढ़ापो कलिकाल के समान है॥

उपर्युक्त में बुढ़ापे को कलिकाल के तुल्य बतलाया है माघ ने निम्न श्लोक में तटी को वृद्धांगना का रूप दिया है—

अयमति जरठाः प्रकामगुर्वीरलघुविलंबिपयोधरोपरुद्धाः।
सततमसुमतामगम्यरूपाः परिणत दिक्करिकास्तटीर्बिभर्ति ॥ ४-२६ ॥

उपर्युक्त में तटी के किनारे के विशेषणों से वृद्धांगना की भी प्रतीति एक ही साथ हो जाती हैं।

माघ कवि का नीचे का श्लोक देखिये—

धूमाकारं दधति पुरः सौवर्णे वर्णेनाग्नेः सदृशितटे पश्यामी।
श्यामीभूताः कुसुम समूहेऽलीनां, लीनामालीमिह तरवो बिभ्राणाः ॥४-३०॥

और उस सेनापति के इस कवित्त से मिलाइये—

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विसाल संग, स्याम रंग भटि मानों मसि में मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुँज मलय पवन उपवन वन धाए हैं ।।
सेनापति माधव महीना में पलास तरु, देखि देखि भाव कविता के मन आए हैं।
आधे अनुसुलगि सुलगि रहे आधे मानों विरही दहन काम क्वेला पर चाए हैं ।।

बिहारी कवि ने भी फिर घर को नूतन पथिक''''''फूल्यो देखि पलास बन समुहै समुझे दवागि। कह कर आग का लगना बताया है।

अब माघ कवि के इस श्लोक को देखिये—

रभसेन हारपददत्त कांचयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ।। १३-३२ ।।

श्री कृष्ण को देखने की शीघ्रता में किसी स्त्री ने मुक्ता माला के स्थान पर करधनी पहनली थी। किसी ने केशों पर कान के आभूषण पहिन लिए थे, किसी ने ओढ़ने के दुपट्टे को पहन कर पहनने की साड़ी ओढ़ ली थी, किसी ने स्तनों को ढकने वाली चोली को जाँघों में पहिन लिया था तो किसी ने कान के कुण्डल को कंकण के स्थान पर पहन लिया था। अब यही भाव हिन्दी कविता में देखिए—

कोउ कंचुकि अंचल ओढि चलीं, कोउ जाति अनंचलहू न लजी।
गर मेखला डारि कसे कटि हार, कपोलन अंजन रेख अंजी ।।
मन मोहिन मोहिनी सी जुवती, भइ मोहित मोहन रूप रंजी।
कुलकानि तजी सब जातिभजी, जब कान्हर की बन बेनुबजी ।।

कहना न होगा कि रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने जो नायिकाओं के तथा ऋतुओं के वर्णन किये हैं उन पर माघ कवि का ही विशेष प्रभाव है।

आधुनिक काल में भी जयशंकर प्रसाद ने माघ कवि के समान ही बिजली में पुष्प की समता कराई है, देखिए माघ में—

द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षित व्यवहिता विटपैरिव मंजरी।
नवतमालनिभस्य नमस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदैः ।। ६-२८ ।।

प्रसादजी ने अपनी कामायनी में भी श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि नीले वस्त्र में लिपटा हुआ उसका वह नाजुक और सुन्दर अर्धस्फुटित शरीर इस भाँति झाँक रहा था जैसे बादलों के कानन में बिजली का गुलाबी फूल खिला हो।

नीलपरिधान''''''''''''छविधाम (देखिये कामायनी)

इस तरह परवर्ती संस्कृत और हिन्दी के कवियों पर महाकवि माघ की छाया व्यापक रूप से पड़ी है। जिस तरह माघ ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों तथा कवियों से विचार और भाव प्राप्त किये उससे उत्तरवर्ती साहित्यकों को भी अपनी रचना का लाभ दिया। इस प्रकार के आदान-प्रदान का साहित्य-रचना के क्षेत्र में बड़ा मूल्य है।

माघ काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि

माघ और अश्वघोष

वैसे कई स्थानों पर इससे भी पूर्व भी दूसरे कवियों से माघ कवि की तुलना के प्रसंग उपस्थित हुए हैं, पर वहाँ जानबूझ कर संक्षेप से इसलिए काम लिया गया कि हमें माघ कवि की दूसरे कवियों की तुलना के लिए एक अलग ही भाग प्रस्तुत करना था। इस भाग में हम माघ के समकक्ष कवियों के साथ उसकी तुलना करेंगे। इन कवियों में हमने अश्वघोष, कालिदास, भारवि, भट्टी, कुमारदास और श्रीहर्ष को विशेष रूप से लिया है। हम इसी क्रम से यहाँ अपनी समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

अश्वघोष का बुद्धचरित २८ सर्गों में विभक्त एक महाकाव्य है। इसमें भगवान् बुद्ध के जीवन चरित को उनके उपदेश तथा सिद्धान्तों का आश्रय लेकर लिखा गया है। काव्य की दृष्टि से इसके प्रथम पाँच सर्ग और फिर अष्टम और त्रयोदश सर्ग के कुछ अंश बड़े सुन्दर और महत्त्वपूर्ण हैं। शेष सर्गों में धार्मिक बातें हैं।

सौन्दरनन्द १८ सर्गों का एक महाकाव्य है। इसमें काव्य बुद्धचरित की अपेक्षा अधिक भावमय है। इस काव्य में भी धार्मिक बातें अधिक हैं।

अश्वघोष ने इन दोनों ही महाकाव्यों की रचना की थी।

काव्य के क्षेत्र में अश्वघोष की स्थिति कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष से भिन्न प्रकार की है। कालिदास शुद्ध रसवादी कवि हैं, भारवि, तथा उनके पश्चात् के कवि माघ को छोड़कर कलावादी अलंकारवादी या चमत्कारवादी हैं। अश्वघोष इन दोनों श्रेणियों में नहीं जाते। इनके काव्यों का उद्देश्य धार्मिक है। कालिदास की भाँति वे काव्यानन्द को साध्य न मानकर साधन ही स्वीकार करते हैं। बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों को साधारण से साधारण व्यक्ति तक सुगमता से पहुँचाने के लिए उन्होंने काव्य शैली का आश्रय लिया है। सौन्दरनन्द में वह लिखते हैं देखिए सौन्द १८, ६३ मैंने मोक्ष के सिद्धान्तों को काव्य के व्याज से इसलिए प्रस्तुत किया है कि साधारण व्यक्ति भी सरस काव्य के सहारे धार्मिक बातों को ग्रहण कर सकें। कटु औषध को शहद में मिलाकर खाने से वह सरलता से शरीर में पहुँच कर रोग को दूर कर देती है अत: अश्वघोष के काव्य का लक्ष्य ही 'व्युपशान्तये' है न कि 'रतये'। शैली भले ही कालिदास जैसी है 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनां'। इससे स्पष्ट है कि अश्वघोष अलंकार तथा कलात्मक शैली में अधिक रुचि रखने वाले कवि नहीं हैं।

इनकी कला उपदेशमयी अवश्य थी किन्तु वह कोरी नीति के श्लोकों अथवा सूक्तियों जैसों नहीं थी। उन्होंने कवि का हृदय पाया था। काव्य में जीवन का जैसा उदात्त दृष्टिकोण होना चाहिए वह इनके महाकाव्यों में है। धार्मिक-मर्यादाओं के कारण इन्होंने जीवन के कुछ भाग को ही एक विशेष प्रकार का रंग देकर अपने काव्य में स्थान दिया है। इस पृष्ठ भूमि में माघ के साथ इनकी तुलना सब अंगों से नहीं हो सकती।

अश्वघोष की शैली वाल्मीकि की शैली की भाँति अति सरस है और उन्हीं की भाँति उन्होंने अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। माघ की शैली सरस तो है पर सरल नहीं। उन्होंने भी द्वितीय और उन्नीसवें सर्गों में अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग किया है। सम्पूर्ण शिशुपालवध में अन्य छन्दों की अपेक्षा अनुष्टुप् छन्द की श्लोक संख्या अधिक है। यह संख्या २२७ है। अश्वघोष के महाकाव्यों के कथानक प्रवाह विस्तीर्ण एवं अक्षुण्ण है। किन्तु माघ का कथानक छोटा है और वर्णनों तथा चित्रणों से विस्तार को प्राप्त हुआ है। अश्वघोष को मूलतः शान्त रस का ही कवि समझा जाता है, दूसरे रस भी उनके काव्य में अंग बनकर आये हैं। बुद्धचरित के तृतीय सर्ग के आरम्भ में तथा चतुर्थ और पंचम सर्गों में, इसी तरह सौन्दरनन्द के चतुर्थ सर्ग तथा दशम सर्गों में शृंगार रस का प्रधान्य है। इनके शृंगार रस के चित्र बड़े प्रभावोत्पादक हैं। इन चित्रों में शृंगार का आध्यात्मिक पक्ष अधिक मुखरित है। माघ के शृंगार के चित्र ऐन्द्रिय विलासमय को लिये हुए हैं।

अश्वघोष के बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द दोनों में करुण रस का वर्णन है। माघ के शिशुपाल वध में करुण रस के लिए युद्धोत्तर काल ही एक अवसर है। इस अवसर का उन्होंने करुण रस के लिए यथेष्ट उपयोग नहीं लिया। वीर रस के वर्णन दोनों के काव्यों में प्रायः समान है।

अश्वघोष की भाषा कोमल तथा सरल है। उसमें चार पाँच शब्दों से अधिक लम्बे समास नहीं हैं। माघ के समास भी प्रायः चार पाँच शब्दों के हैं, कहीं-कहीं ८-१० शब्दों के भी हैं, पर उनकी पदरचना अपेक्षाकृत कठिन है। जिस तरह अश्वघोष को प्रहर्षिणी और रुचिरा छन्दों के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है उसी तरह माघ को मालिनी छन्द के प्रयोग में विशेष सफलता मिली है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अश्वघोष महाकाव्य के क्षेत्र में आरंभिक परम्पराओं के प्रवर्तकों में गिने जाते हैं, उसी तरह माघ भी कुछ नई परम्पराओं के प्रवर्तकों में से एक हैं।

माघ और कालिदास

महाकवि कालिदास ऋतुसंहार, मेघदूत, कुमारसम्भव, रघुवंश आदि रचनाओं के निर्माता हैं। इनमें कुमारसम्भव और रघुवंश ये दोनों महाकाव्य हैं। कुमारसम्भव में १७ सर्ग हैं जिनमें अन्तिम ६ सर्गों की प्रामाणिकता के विषय में कुछ विद्वानों का संदेह है। इस महाकाव्य में कवि ने मानवी रूप में शिव-पार्वती की प्रणय गाथा गायी है। रघुवंश में २५ सर्ग बताये जाते हैं किन्तु १६ सर्ग ही देखने को मिलते हैं।

माघ और कालिदास दोनों को पौराणिक मान्यताएं अभिमत हैं। वर्णाश्रम धर्म में इनकी आस्था है। पौराणिकों के अनुसार विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनों एक ही अव्यक्त सत्ता के अंश हैं। विष्णु और शिव के भक्त होते हुए भी ये दोनों सर्वदेवमयी उदार रूपा भक्ति के विश्वासी थे। इसी प्रकार की भक्ति कवि में हो भी सकती है। उसमें अपने आराध्य को समष्टि में व्याप्त देखने की तथा समष्टि को एक व्यक्ति में निहित करने की विशालता तथा समता होती है। जिस प्रकार कालिदास ने राम विष्णुत्व को अवतीर्ण किया है, देखिये रघुवंश का दशम सर्ग तथा रघुवंश के तेरहवें सर्ग का प्रथम श्लोक—'रामाभिधानो हरिरित्युवाच' उसी प्रकार माघ ने भी श्रीकृष्ण में विष्णुत्व की अवतारणा की है देखिये शिशुपालवध में नारद तथा भीष्म की विक्तृताएं। कालिदास ने जैसे वराह, कृष्ण आदि अवतारों का यथावसर वर्णन किया है, माघ ने भी नृसिंह, वराह और राम आदि अवतारों का यथावसर वर्णन किया है।

दोनों कवियों का अध्ययन गम्भीर था अतः दोनों ही के काव्यों में बहुज्ञता का परिचय मिलता है। दोनों की रचनाओं में शक्तित्रय षड्गुण आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है देखिये रघु ३, १३, ८, १६, २१, माघ २, २६ अन्तर इतना ही है कि कालिदास में यह प्रयोग सहज प्रतीत होता है और माघ में प्रयत्नसाध्य। कालिदास शुद्ध रसवादी हैं किन्तु माघ रसालंकारवादी हैं। कालिदास का वस्तुसंधान में सन्तुलन है, माघ का वस्तु संविधान काव्य कौशल का सहायक है। एक में स्वाभाविकता अधिक है तो दूसरे में कृत्रिमता अधिक।

माघ और कालिदास दोनों का प्रकृति वर्णन अपने-अपने ढंग की सुन्दरता को लिये हुए हैं। दोनों ने ही प्रकृति को आलंबन, उद्दीपन तथा अप्रस्तुत विधान के रूप में चित्रित किया है। कालिदास के रघुवंश के द्वितीय सर्ग तथा कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का हिमालय-वर्णन प्रकृति के आलंबन रूप का अच्छा उदाहरण है। माघ ने भी रैवतक तथा प्रभात के वर्णन आलंबन के रूप में किये हैं। कालिदास और माघ में अन्तर यह है कि कालिदास के प्रकृति वर्णनों में अनलंकृत सौन्दर्य का निखार है और माघ के प्रकृति वर्णनों में अलंकृत सौन्दर्य का जगमगाहट है। इसके अतिरिक्त माघ के वर्णनों में कहीं-कहीं अधिक स्थानों पर प्रकृति वर्णन दुरूह और कल्पनाओं तथा यमक, श्लेष तथा वाक्यों के प्रयोगों से क्लिष्टता आ गई है पर रघुवंश के नवमसर्ग में जो वसंत वर्णन है उसमें कालिदास भी यमक के प्रयोगों में थोड़ी देर के लिए फँस से गये हैं। माघ अधिक फँस गये।

माघ और कालिदास के काव्यों में संवादों का भी अपना एक स्थान है। माघ ने नारद श्रीकृष्ण संवाद प्रथम सर्ग में, दूत-सात्यकि संवाद तथा युधिष्ठिर-भीष्म संवाद, अर्घदान के समय में कराये हैं। कालिदास के रघुवंश में द्वितीय सर्ग में सिंह-दिलीप संवाद, तृतीय में रघु-इन्द्र संवाद, पंचम में कौत्स-रघु संवाद, सौलहवें में कुश अयोध्या संवाद है और कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा-देव संवाद तथा पंचम सर्ग में शिव-पार्वती संवाद है। कालिदास न केवल कवि ही हैं किन्तु वह एक सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी हैं अतः उनके संवादों में नाटकीयता का जो आकर्षण है वह अप्रतिम है। माघ के संवादों में वह आकर्षण नहीं है।

दोनों ही कवियों के समय में काव्य रूढियाँ कवि-समय स्थिर हो चुकी थीं। पुर स्त्रियों का वर्णन जैसे अश्वघोष के काव्यों में मिलता है वैसे ही कालिदास तथा माघ के काव्यों में मिलता है।[1]

रघुवंश के सप्तम सर्ग में इंदुमती का स्वयंवर प्रकरण है। स्वयंवर के पश्चात् शास्त्र-विधि से विवाह के लिए वर यात्रा के अवसर पर राजमार्ग से जाते हुए महाराज अज को समस्त युवतियाँ अपने महलों के झरोखों से देखने लगीं। कोई मुग्धा अपनी दासी से अलंकृत किये जाते खुले केशपाश को छुड़वाकर उन्हें देखने के लिए चल पड़ी। कोई शीघ्रता से आधी लगी मेंहदी को छोड़कर चल पड़ी तो भी तुरन्त ही उसको त्याग कर कोई एक आँख में अंजन लगाये हुए सामने आ खड़ी हुई। श्लोक हैं—

प्रसाधिकालाम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकांकां पदवीं ततान ॥७-७॥
जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ॥७-९॥
अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रसना तदानीमंगुष्ठ मूलार्पितसूत्रशेषा ॥७-१०॥

माघ काव्य में भगवान् श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत से प्रस्थान कर यमुना पार हो चुके हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित श्रीकृष्ण की आगमनी के लिए तैयार हैं। श्रीकृष्ण वहाँ आते हैं। उनके साथ सब लोग इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हो रहे हैं। श्रीकृष्ण को देखने के लिए समस्त कार्यों को त्याग कर स्त्रियाँ प्रत्येक राजमार्ग तथा गली में एकत्र हो गयीं। उनमें कुछ स्त्रियाँ तो आधा ही शृङ्गार किए हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए चल पड़ी थीं। उनकी साड़ी खिसकी जा रही थी जिसे संभालने के लिए वे अपने हाथों से नीवी पकड़े हुए थीं। अति शीघ्रता के कारण किसी स्त्री ने मुक्तामाला के स्थान पर करधनी पहनली थी, किसी ने केशों पर कान के आभूषण पहन लिए थे, किसी ने ओढने के दुपट्टे को पहन कर पहनने की साड़ी ओढ ली थी, किसी ने स्तनों को ढकनेवाली चोली को जंघों में पहन लिया था। एक सुन्दरी तो भगवान् श्रीकृष्ण को देखने की शीघ्रता में अपना शृङ्गार करनेवाली दूती के हाथों से अपने पैर को छुड़ाकर भगवान शंकर की अर्धांगिनी पार्वती की भाँति गीले ही महावर से रंगे हुए एक पैर से धरतीतल पर चिह्न बनाती हुई आकर खड़ी हो गई थी। कुछ स्त्रियाँ तो करधनी के इधर उधर हिलने और बजने से परेशान होती हुई ऊपर चढ़ गई थीं देखिये, शिशुपालवध—१३वें सर्ग सें श्लोक ३० से ३४ तक। माघ ने भी कालिदास की ही भाँति हड़बड़ाहट का एक दृश्य पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है—

व्यतनोदपास्य चरणं प्रसाधिकाकरपल्लवाद्रसवशेन काचन।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनिं पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम् ॥१३-३३॥

---

१. यह आज भी विवाद का विषय है कि अश्वघोष कालिदास के पूर्ववर्ती हैं अथवा कालिदास अश्वघोष के।

कालिदास ने भी महावर लगाने की बात कही है और माघ ने भी किन्तु पौराणिक कथा का आश्रय लेने से माघ की रचना अधिक चमत्कृत हो गयी। अर्थ का चमत्कार यहाँ अधिक है। दूसरा श्लोक और देखिये—

अभिवीक्ष्य मामिकृतमंडनं यतीः कररुद्धनीविगलदंशुकाः स्त्रियः।
दधिरेऽधिभित्ति पटहप्रतिस्वनैः स्फुटमट्टहासमिव सौधपंक्तयः ।।१३-३१।।

कालिदास के "न बबन्ध नीवीम्" से माघ के यह "कररुद्धनीवीगलदंशुकाः स्त्रियः" में कहीं अधिक सौन्दर्य है। एक और देखिये—

रभसेन हारपददत्तकांचयः प्रतिमूर्धजं निहित कर्णपूरकाः।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपू काः स्त्रियः ।।१३-३२।।

इस श्लोक में हड़बड़ाहट का बड़ा सुन्दर चित्र है। कवि ने यहाँ भाव के अनुकूल वातावरण भी उपस्थित कर दिया है जिसका कालिदास में अभाव है।

कालिदास अज के पुरी में प्रविष्ट होने का वर्णन कर रहे हैं और उधर माघ ने भी श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ नगरी में प्रविष्ट होने का वर्णन किया है। इन दोनों के वर्णनों में महाकवि माघ का वर्णन अपेक्षाकृत अच्छा है। कालिदास ने इस वर्णन में ७ श्लोकों का आश्रय लिया है, उनमें केवल उपर्युक्त तीन ही श्लोकों में इसका वर्णन है और उसमें भी वह यह कह कर समाप्त कर रहे हैं—

ताः राघवंदृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ।।७-१२।।

किन्तु महाकवि माघ ने पुरी प्रवेश के वर्णन को १८ श्लोकों में समाप्त किया है। प्रत्येक श्लोक में यथावत् चित्रांकन तथा भावांकन है। स्त्रियों की सहज प्रवृत्तियों का वहाँ शुद्ध औत्सुक्य को लेकर वर्णन है। भाव में पूर्ण समर्थन होता है अपूर्ण नहीं। महाकवि माघ महाकवि कालिदास से, इस तरह वर्णन कौशल में, पीछे नहीं पड़ते।

कालिदास की उपमाएँ सुन्दर हैं। 'उपमा कालिदासस्य' इस कथन में जरा भी अत्युक्ति नहीं। महाकवि माघ भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर अप्रस्तुत विधान करते हैं। कालिदास रघुवंश के द्वितीय सर्ग में लिखते हैं—

तस्याः खुरन्यास पवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।।२-२।।

इसकी तुलना में महाकवि माघ के शिशुपालवध महाकाव्य के तृतीय सर्ग का यह श्लोक प्रस्तुत है।

उद्धृत्यमेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव संप्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम् ।।३-७५।।

मेघों की मुनियों के साथ, जल की वेदार्थ के साथ, नदियों की स्मृतियों के साथ और समुद्र की वेदों के साथ इस श्लोक में कितनी सुस्पष्ट एवं सुन्दर उपमा है। मुनियों ने भिन्न-भिन्न स्मृतियों को मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि वेदों में जो कुछ वर्णन किया गया है उन्हीं के अर्थों के आधार पर ही तो रचा है। जिस भाँति उनकी अन्तिम परिणति वेदों में ही होती है उसी भाँति मेघों ने समुद्र से ही जल ले लेकर वर्षा द्वारा जिन नदियों की रचना की है, वे भी अन्त में उसी समुद्र में लीन हो जाती हैं। यहाँ माघ कालिदास से आगे बढ़ गये हैं।

इस भाँति न केवल उपमा के प्रयोग में कहीं-कहीं पर माघ कवि कालिदास की समकक्षता रखते हैं किन्तु यमक व स्वभावोक्तियों के प्रयोग में भी वह अपनी अद्‌भुत् कुशलता दिखाते हैं। सब मिलाकर कालिदास निश्चय ही माघ से बढ़कर हैं, पर माघ कविता के क्षेत्र में उनसे सर्वथा हीन हों यह कहना माघ के प्रति अन्याय है।

माघ और भारवि

'भावेररर्थ गौरवम्' इस उक्ति के साथ महाकवि भारवि संस्कृत काव्य जगत् में प्रसिद्ध हैं। किरातार्जुनीय महाकाव्य भारवि की कीर्ति को आज भी प्रशस्त किये हुए हैं। किरातार्जुनीय जिस भाँति भारवि का एक मात्र काव्य है उसी भाँति शिशुपालवध भी माघ का एक मात्र काव्य है। इन दोनों काव्यों को आद्योपान्त पढ़ डालने पर पाठक के हृदय में स्वतः यह भावना उदित होती है कि माघ कवि पर भारवि का जितना प्रभाव पड़ा है, उतना और किसी कवि का नहीं पड़ा।

माघ का अध्ययन गहन था। सुकवि कीर्ति के इच्छुक माघ ने पूर्वाचार्यों से जीवन-दर्शन, कालिदास से भाव व्यंजना, भारवि से भाषा सौष्ठव, भट्टि से पांडित्य, दंडी से पद लालित्य की प्रेरणा प्राप्त की और इस प्रेरणा के फलस्वरूप इन गुणों से समन्वित शिशुपाल वध महाकाव्य की रचना की। इस अर्थ में माघ भारवि के भी ऋणी हैं। भारवि भी प्रकाण्ड पंडित थे। उनकी कविता में पांडित्य का जो स्वरूप दिखायी देता है वह माघ की कविता में चरम विकास को प्राप्त हुआ है।

यह बात समझने योग्य है कि माघ भारवि को अपदस्थ करना चाहते थे और इसी-लिए उन्होंने भारवि की कला का अध्ययन सुचारु रूप से किया। कवि अपने समय की स्थिति सामाजिक वा राजनैतिक का एक कुशल चित्रकार होता है अतः इन दोनों कवियों के काव्यों में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब है। उसे देखने से ज्ञात होता है कि भारवि के समाज की अपेक्षा माघ का समाज अधिक विलासी है। दोनों के समय की राजनैतिक स्थिति में भी थोड़ा सा अन्तर है। भारवि में पांडित्य प्रदर्शन के वे पैंतरे नहीं हैं जो माघ के काव्य में हैं। भारवि की रुचि शब्द-चित्रों की ओर है। किरात के पाँचवें सर्ग में यमकों की तथा पन्द्रहवें सर्ग में गोमूत्रिकादि बन्धों की रचना में कवि ने अपना वैदुष्य दिख-लाया है। कवि के यत्न के बिना सहज भाव से जो शब्दालंकार रचना में आ जाते हैं उनके तो रस का व्याघात नहीं होता पर जहाँ यमकादि रचना प्रयत्न साध्य होती है वहाँ इसकी प्रमुखता नहीं रहती। भारवि की रचना में दोनों ही बातें मिलती हैं, इसलिए कुछ भाग में इसकी प्रमुखता है तो कुछ में उसकी गौणता ही नहीं विलुप्ति भी। महाकवि माघ के विषय में भी यही बात है। रैवतक पर्वत के वर्णन का कुछ भाग यमकों में है। षष्ठ सर्ग में पूरा यमक है। उन्नीसवाँ सर्ग चित्रबंध काव्य के नमूनों से भरा पड़ा है। ऐसे स्थलों में या तो माघ कवि ने भारवि से होड़ लगा कर बाजी जीतने का सा प्रयत्न किया है, और उन्होंने

बाजी मार भी ली है। बाजी जीतने का एक रहस्य यह भी है कि ये शब्द-चित्र कहीं-कहीं भारवि से अधिक भावमय बन पड़े हैं। माघ ने भारवि से इसी कलाबाजी में होड़ क्यों लगायी इसका उत्तर यह है कि माघ का समाज अधिक चमत्कार तथा कला का प्रेमी था। माघ को लोक रंजन से ही प्रसिद्धि प्राप्त करनी थी इसलिए उन्होंने ऐसा किया। भारवि भी जो इस ओर झुके उसका भी कारण यही था। भारवि ने तो स्पष्ट ही इस बात की ओर संकेत किया है—

स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसंपदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।
इति स्थितायां प्रति पुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥१४-५॥ किरात—

'भिन्न रुचिर्हि लोकः' कोई अर्थ सम्पत्ति की प्रशंसा करता है, कोई शब्द के ही सौन्दर्य की स्तुति करता है। ऐसी स्थिति में सर्वमनोरम वाणी का होना अत्यन्त दुर्लभ है।

दरबारी कवि तो दोनों ही रहे होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है किन्तु माघ के युग का समाज इतना उदार न था जैसा भारवि के युग का समाज था। माघ राज दरबार की चहार-दीवारी तथा काव्य गोष्ठियों की सीमा में अपने काव्य का प्रसार करते थे।

दोनों के काव्यों के कथानक बहुत छोटे हैं और वे कई बातों में मिलते-जुलते से हैं। दोनों कवियों ने इन छोटे-छोटे कथानकों की सजावट में खूब समय लगाया है। फिर भी शैली, कल्पना, भाव, उद्भावना, शब्द समूह आदि सभी दृष्टियों से माघ भारवि से आगे बढ़े हुए हैं। दोनों कवियों की काव्य प्रतिभा प्रायः एकसी प्रेरणाओं से विकसित हुई हैं। दोनों ही कवि कलावादी हैं किन्तु माघ शब्द, अर्थ तथा उसके औचित्य के विषय में जितने सावधान हैं, उतने भारवि नहीं। उनके सम्बन्ध में 'नवसर्ग गते माघे नव शब्दो न विद्यते' यह उक्ति अक्षरशः ठीक है।

कहा जाता है कि प्रबन्ध काव्य की इतिवृत्त निर्वाहकता में माघ असफल ही रहे हैं। इस पर यह युक्ति दी जाती है कि माघ का ध्यान वर्णनों की ओर ही था इतिवृत्त की ओर नहीं के बराबर था। डा० व्यास का कहना है कि माघ में कथा के कलेवर तथा प्रासंगिक वर्णनों का संतुलन नहीं मिलता जो प्रबंध काव्य के लिए अति आवश्यक है। उनका कहना है कि शिशुपालवध की मूल कथावस्तु (थीम) में चतुर्थ सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक का वर्णन आवश्यकता से अधिक बढ़ा दिया गया है। मूल कथा पहले, दूसरे और चौदहवें से बीसवें सर्ग में पाई जाती है और वहाँ पर भी कई अप्रासंगिक गौण वर्णनों पर कवि ने अधिक ध्यान दिया है ऐसा प्रतीत होता है। यह वीर रस पूर्ण इतिवृत्त है उसमें अप्रासंगिक शृङ्गार लीलाओं का पूरे ६ सर्ग में विस्तार से वर्णन ऐसा लगता है मानो रेशमी थेकली लगा दी हो। माघ का शृङ्गार प्रबन्ध प्रकृति का न होकर मुक्तक प्रकृति का अधिक है जिससे जबरदस्ती प्रबन्ध काव्य में 'फिट इन' कर दिया गया है। वह एक सफल मुक्तक कवि हो सकते थे। रैवतक का पड़ाव जो एक रात का था उसमें विहार, क्रीड़ा, ऋतु वर्णन कैसे समा सकता था। डा० व्यास की उपर्युक्त ये बातें कोई नई नहीं हैं। उनसे भी पूर्व के आलोचक माघ के लिए ये ही बातें कहते आये हैं। उत्तर में हमको यहाँ पर केवल यही कहना है कि श्री कृष्ण न केवल राजसूय यज्ञ में ही सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे किन्तु उन्हें तो शिशुपाल के साथ

युद्ध भी तो करना था। अतः यदुवंशियों का जो रैवतक पर पड़ाव डाला वह पहले तो प्रायः आधे दिन और एक रात का है और इस पड़ाव में सैनिकों के मनोविनोद से सम्बन्ध रखने वाली बातें अधिक हैं। इन बातों की उस समय की मनःस्थिति को देखते हुए एक सामरिक महत्त्व है। फिर इन सबसे प्रबन्ध काव्य के लक्षणों की संगति हुई है। इन्हीं वर्णनों के सहारे माघ भारवि को पीछे ढकेलने में भी समर्थ हुए हैं। इस विषय में विस्तृत प्रकाश पहले डाला जा चुका है।

माघ और भारवि दोनों ने वीर रस को प्रधान और शृङ्गार रस को गौण रूप में लिया है। शिशुपाल वध में वासनामय शृङ्गार का रस सैनिकों के मनोविनोद की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है जबकि भारवि का शृङ्गार वर्णन परिस्थिति के अनुसार जितना आवश्यक था उससे कहीं अधिक विस्तार पा गया है। वह अर्जुन को लक्ष्यभ्रष्ट करने के उद्देश्य से विरत सा भी हो गया जान पड़ता है। दोनों काव्यों के अध्ययन से इन शृङ्गार चित्रों में भारवि की अपेक्षा माघ की अनुभूति की तीव्रता अधिक स्पन्दित हुई है। चित्रांकन की दृष्टि से, जैसा पहले कहा गया है, माघ का प्रकृति वर्णन न केवल भारवि से बल्कि दूसरे और भी बड़े कवियों से अधिक सूक्ष्मता को लिये हुए है।

'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'। महाकवि माघ में कालिदास और भारवि के दोनों के गुणों का होना कुछ विद्वानों ने बतलाया है, यही नहीं किन्तु दोनों में माघ को ही विशिष्ट भी कहा है। महाकवि माघ के जैसे उच्च कोटि का पदलालित्य अन्यत्र नहीं मिलता। माघ के संयोग शृङ्गार के वर्णन, उनका वैचित्र्य, उनमें व्याप्त विलासों की व्यंजना, पद-झंकृति आदि ऐसी बातें हैं जिन्हें भारवि की रचना में ढूंढना व्यर्थ सा है। हाँ, महाकवि भारवि का सा अर्थ गाम्भीर्य, जो विशेषकर पहले तीन सर्गों में है, महाकवि माघ में अधिक नहीं मिलता। द्रोपदी, भीम एवं युधिष्ठिर के से संवाद सचमुच ही अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। केवल इस बात को छोड़कर दूसरी बातों में माघ भारवि से कहीं आगे बढ़े हुए हैं।

इसी प्रसंग में माघ और भारवि के साम्य की ओर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। किरातार्जुनीय में पाण्डवों के निकट वेदव्यास आते हैं और पाण्डवों को कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हैं, शिशुपाल वध काव्य में भी माघ के नारद कृष्ण के समीप आते हैं और शिशुपाल को मारने की बात कहते हैं। किरात में द्रोपदी, युधिष्ठिर और भीम के संवादों में राजनीति भर दी है तो शिशुपाल वध काव्य में भी कृष्ण, बलराम और उद्धव के संवाद में राजनीति की ही चर्चा है। भारवि ने हिमालय पर्वत के वर्णन में यमक की छटा दिखलाई है तो महाकवि माघ ने भी रैवतक पर्वत के वर्णन में एक से एक निराले यमकों का प्रयोग किया है। शिशुपाल वध में भारवि कृत किरात की ही भाँति सभी ऋतुओं का एक ही साथ प्रादुर्भाव हुआ है। किरातार्जुनीय काव्य में अर्जुन के निकट किरातवेषधारी शिव का दूत संदेशार्थ आता है तो शिशुपाल वध में श्री कृष्ण के निकट शिशुपाल का दूत आता है इस बात का संदेश देने के लिए कि आपको युद्ध अभीष्ट है अथवा शिशुपाल के साथ संधि करना। किरात का पन्द्रहवाँ और शिशुपाल वध का उन्नीसवाँ सर्ग दोनों ही चित्रकाव्य हैं। किरातार्जुनीय के आरम्भ में 'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्' और शिशुपाल वध के प्रारम्भ में 'श्रियः पतिः श्रीमति

शासितुं जगत्' लिखकर दोनों ने 'श्री' शब्द को अपनाया है। यही नहीं भारवि की ही भाँति महाकवि माघ ने भी प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में लक्ष्मीवाचक शब्द 'श्री' का प्रयोग किया है। इसी तरह दोनों महाकाव्यों में शत्रु वर्णन, मंत्र वर्णन, प्रवासवर्णन, पर्वत सौन्दर्य वर्णन, पुष्पाचय वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन, सायंकाल वर्णन, रात्रि वर्णन, सुरतक्रीड़ा वर्णन वासना प्रधान ही हैं। इन वर्णनों को क्रमानुसार दोनों महाकाव्यों में इस तरह देखा जा सकता है।

१. किरात १ १-२५ श्लोक शिशुपाल १
२. किरात १ १, २, ३ शिशुपालवध २
३. किरात ४, ६ शिशुपाल ४
४. किरात ५ शिशुपाल ४
५. किरात ८ से २६ श्लोक शिशुपाल ७
६. किरात ८ २ से ३७ श्लोक शिशुपाल ८
७. किरात ९ १ से ५० श्लोक शिशुपाल ९
८. किरात ९ ५१ से ७८ श्लोक शिशुपाल १०

इस साम्य[१] से यह पता चलता है कि माघ भारवि को इन्हीं के जैसे प्रकरण लेकर अपने वर्णन वैभव से श्रीविहीन करना चाहते थे। इसे नकल न कहकर प्रतिस्पर्धा कहना ही अधिक संगत होगा। भारवि जैसे कवि की रचना को हतप्रभ करना माघ जैसे अनुभवी और विद्वान् कवि के लिए ही सम्भव था। नीचे के कुछ श्लोक इसी कथन की पुष्टि में प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें वैसे तो ऐसा दिखलाई पड़ता है मानों माघ ने भारवि से आशय ही ग्रहण नहीं किया किन्तु थोड़े से हेर-फेर के साथ भारवि की पदावली को अविकल रूप में वैसा ही रख दिया है। रसज्ञ ही बता सकेंगे कि इस हेर-फेर में चमत्कार है, औचित्य है तथा प्रस्तुत करने की शैली भी कुछ और ही है—

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥ माघ १-२९॥

निरास्पदं प्रश्नकुतूहलित्वमस्मास्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम्।
तथापि कल्याणकरीं गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरी करोति ॥भारवि ३-९॥

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतैः शुभैः।
शरीरभाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥माघ १-२६॥

श्रियं विकर्षत्यपहन्त्यघानि श्रेयः परिस्नोति तनोति कीर्त्तिम्।
संदर्शनं लोकगुरोरमोघं तवात्मयोनेरिव किं न धत्ते ॥भारवि ३-७॥

विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम्।
श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ॥६-४९माघ॥

---

*कालिदास के कुमारसंभव से भी शिशुपालवध के कुछ श्लोक भारवि-माघ के श्लोकों के अंशों की भाँति मिल रहे हैं, देखिये—कुमार ३-५७ और माघ १-१३, कुमार ६-५९ और माघ १-२५, कुमार ६-७७ और माघ १-३३।

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ सुरक्तगोपीजनगीतनिःस्वने ।
इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं न शस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ।।भारवि-३३।।

माघ और भारवि दोनों की तुलना में बल इस बात पर दिया जाना चाहिए कि भारवि के क्षेत्र में प्रवेश करके कवि ने जो कुछ किया है उसका क्या और कितना मूल्य है, कवित्व की दृष्टि से, कलाकार की दृष्टि से और एक महापंडित की दृष्टि से माघ भारवि से आगे बढ़ने में कितने और कहाँ तक सफल हुए हैं। वस्तुसाम्य और विषय-साम्य तो एक आधार है जिसे महाकवि माघ ने जान बूझकर अपनाया है। [1]

माघ और भट्टि

हमने पहले कहा है कि जिन कवियों से माघ को प्रेरणा मिली उनमें रावणवध महाकाव्य के रचयिता भी एक थे। इसलिए माघ की रचना में भट्टि की रचना का प्रतिबिंब पड़ा है, जो बिलकुल स्वाभाविक है। नीचे इसी बिम्ब प्रतिबिंब को स्पष्ट किया गया है। भट्टि का एक श्लोक है—

क्व स्त्री विषह्याः करजाः क्ववक्षो दैत्यस्य शैलेन्द्र शिलाविशालम् ।
संपश्यतैतद् द्युसदां सुनीतं बिभेद तैस्तन्नरसिंहमूर्तिः ।।१२-५६।।

अर्थ—स्त्रियों से सहे जा सकने वाले नख कहाँ ? और श्रेष्ठ पर्वत के पत्थर के तुल्य हिरण्यकशिपु की छाती कहाँ ? फिर भी देवताओं की इस योजना को देखो नृसिंह की मूर्ति वाले हरि ने वैसे नखों से वैसे वक्षःस्थल को विदीर्ण कर डाला।

माघ ने भी इसी भाव को नीचे के श्लोक में प्रकट किया है :—

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया
स मुग्ध कान्तास्तनसंग भंगुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ।।१-४७।।

अर्थ—हे नृसिंह। आपने अति विशाल सिंह का शरीर धारण कर अपनी जटाओं से बालों को छिन्न-भिन्न करके अपने नखों से उन नखों के जो विलास समय में स्त्रियों के कठोर स्तनों के मर्दन करने पर टूट जाते थे, उस दैत्य के वक्षःस्थल को चीर डाला।

इन दोनों श्लोकों में भाव-साम्य है - इस साम्य के होते हुए भी उपस्थापन शैली एक भिन्न ही प्रकार की है। भट्टि में हिरण्यकशिपु के वध का श्रेय उन हारे हुए देवों की सुयोजना को दिया, जबकि माघ ने जिसको श्रेय प्राप्य है उसी को पूरी श्रद्धा के साथ दिया है। माघ में वर्णन से श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति की व्यंजना होती है। जो श्री कृष्ण विलास में विभोर रह सकते हैं वही समय पड़ने पर उग्र रूप धारण कर दैत्यों का संहार भी कर सकते हैं वही भक्तों को इस उक्ति से अधिक विश्वास होता है, उनको अपने आराध्य की महामहिमता का बोध होता है।

---

१ काव्य के स्रोत वाले प्रकरण में दोनों की तुलना के योग्य पर्याप्त सामग्री है।

यह कहना ठीक ही है, भट्टि सहज कवि न थे। वह तो महावैयाकरण थे। उन्होंने भट्टिकाव्य की रचना भी इसी उद्देश्य से की थी कि विद्यार्थी सरलता से व्याकरण को सीख लें। उनकी रचना से कुछ उदारहण प्रस्तुत किये जाते हैं—

> प्रयास्यतः पुण्यवनाय **जिष्णो** रामस्य **रोचिष्णु** मुखस्य धृष्णुः।
> त्रैमातुरः कृत्स्नजितास्त्रशास्त्रः सध्र्यङ् रतः श्रेयसि लक्ष्मणोऽभूत् ॥१-२५॥
> सोऽ**ध्येष्ट** वेदांस्त्रिदशानय**ष्ट** पितॄनताप्र्सीत् **सममंस्त** बन्धून्।
> **व्यजेष्ट** षड्वर्गं **भरंस्त** नीतौ समूलघातं **न्यवधी**दरींश्च ॥१-२॥
> बलि **र्बबंधे** जलधि**र्ममन्थे**, **जह्रे**ऽमृतं दैत्यकुलं **विजिग्ये**।
> कल्पान्तदुःस्था वसुधा **तथोहे**, येनैष भारोऽति गुरुर्न तस्य ॥२-२६॥
> **ललुः** खङ्गान् **ममार्जुश्च** **ममृजुश्च** परश्वधान्।
> **अलंचक्रे समालेभेववसे बुभुजे पपे** ॥१३-६२॥
> रामस्य **शयितुं भुक्तं जल्पितं** हसितं **स्थितम्**।
> **प्रकान्तं** च मुहुः पृष्ट्वा हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥१८-१२५॥
> **अमृडित्वा** सहस्राक्षं **क्लिशित्वा** कौशलैर्निजैः।
> **उदित्वालं** चिरं यत्नात् सैका धात्रा विनिर्मिता ॥७-६६॥
> **मुषित्वा धनदं** पापो यां **गृहीत्वावसद्** द्विषन्।
> तां **रुदित्वेव** शक्रेण यात लंकामुपेक्षिताम् ॥७-६७॥

ऊपर जिष्णोः जिष्णु का षष्ठी ए.ब, रोचिष्णु, धृष्णुः रूप क्रमानुसार जि, रुच् घृष् धातुओं के साथ ग्स्नु, इष्णुच् तथा प्रत्ययों से हुये हैं। इन तीनों का प्रयोग ताच्छील्य अर्थ में किया जाता है। वास्तविक भेद को दिखाने के लिए ही कदाचित् भट्टि ने ऐसा किया है। यही इस श्लोक का व्याकरण के अनुसार लिखने का भट्टि का वैशिष्ट् है। 'सामान्यभूते लुङ्' का प्रयोग भी दूसरे श्लोक में देखने ही योग्य है जहाँ पर मन् और रम् धातु एक ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं क्योंकि धातु और तिङ् प्रत्यय के मध्य 'इ' का प्रयोग न होने से न् और म् दोनों अनुस्वार में परिणत हो जाते हैं। इसी भाँति यज् धातु से यजिष्ट न होकर अयष्ट होगा। 'अताप्र्सीत्' रूप हुआ। उनतीसवें श्लोक में सभी क्रिया रूप कर्मवाच्य के 'परोक्षभूते लिट्' हैं। प्रत्ययों का प्रयोग भी करके दिखाया है जहाँ पर तुमुन् क्त और क्त्वा के प्रयोग आये हैं।

इस भाँति महाकवि भट्टि के महावैयाकरण होने की बात पाठकों के सम्मुख रखी है। भट्टि काव्य में इस भाँति स्थान स्थान पर व्याकरण संबंधी बातों के नाम, प्रकृति, प्रत्यय, नाम, धातु तथा समास आदि उदाहरण दिये। यह प्रशंसा की बात है कि इस तरह व्याकरण को मुख्य स्थान देकर तथा कथा को गौण रखते हुए भी भट्टि ने अपने काव्य में नीरसता नहीं आने दी। भट्टि ने तो व्याकरण के वैदुष्य का ही अपने महाकाव्य में अधिक प्रयोग किया है, किन्तु माघ ने शिशुपालवध काव्य में उनसे प्रेरणा प्राप्त करके व्याकरण का ही नहीं अनेक

अन्य शास्त्रों का प्रयोग किया है। उन्नीसवें सर्ग में चित्र काव्य में उनको शब्दों के बनाने में व्याकरण को व्याकरण का आश्रय लेना पड़ा है। उन्होंने भट्टि की भाँति व्याकरण को समझाने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उनका उद्देश्य भिन्न था। वह था एक ऐसे महाकाव्य की रचना करना जो जिस तरह और कवियों की रचना से प्रशस्त हो उसी तरह भट्टि जैसे कवियों की रचना से भी उत्तम हो। माघ की भट्टि से यह विशेषता और है कि जहाँ भट्टि ने किसी प्रयोग को किया कर दिया, उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं रही, जबकि माघ ने काव्य शैली में उसे समझाया है, उदाहरणार्थ—

उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः ।।१९-१०३।।

यहाँ 'पानार्थे' इस शब्द से सारी चीज समझा दी गयी है।

निपातित सुहृत्स्वामिपितृव्य भ्रातृ मातुलम्।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत्समराजिरम् ।।१९-७५।।

इसी तरह यहां 'निपातित' शब्द सारी चीज को समझाता है। इस प्रसंग में कवि के व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उसको यहाँ पर भी जोड़ा जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भट्टि महाकाव्य लिख कर भी वैयाकरण ही कहलाते हैं, जबकि माघ वैयाकरण होते हुए भी महाकवि के प्रशस्त पद पर आसीन हैं।

माघ और कुमारदास

जानकी-हरण काव्य के रचयिता कुमारदास के जीवन के सम्बन्ध में अभी इतिहासज्ञ ठीक-ठीक जानकारी नहीं दे पाये हैं। कहा जाता है वह कालिदास के मित्र थे। सिंहली अनुश्रुति के अनुसार कुमारदास इसी नाम का सिंहल का एक राजा था। कुमारदास नाम के एक राजा ने निस्संदेह वहाँ पर ५१७ से ५२६ ई० तक राज्य किया था। यह भी अनुश्रुति है कि कालिदास का देहावसान सिंहल में हुआ और इस मित्र-क्षय के फलस्वरूप कुमारदास ने सजीव चितारोहण किया।

कुमारदास के महाकाव्य जानकी-हरण पर महाकवि कालिदास की काव्यकला का प्रभाव स्पष्ट है। उनकी शैली तथा वस्तु-विन्यास कालिदास की शैली और वस्तु-विन्यास से मिलते हैं। जानकी-हरण के अनेक स्थल रघुवंश के १२ वें सर्ग से मिलते हुए हैं। इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि कुमारदास को काशिकावृत्ति का ज्ञान था जो ६५० ई० के आस-पास लिखी गई थी। वामन को कुमारदास का ज्ञान था क्योंकि वामन् ८०० ई० के लगभग ने कुमारदास के काव्य में मिलने वाले 'खलु' शब्द के आरम्भ में प्रयोग की निन्दा की है। उसने जिस श्लोक को उद्धृत किया वह कदाचित् जानकी-हरण के उस भाग का है जो अब मिलता नहीं है। यह संभव है कि कुमारदास माघ का पूर्ववर्ती हो क्योंकि माघ के एक श्लोक में

जानकी-हरण के एक श्लोक की प्रति-ध्वनि है,[1] पर काल कल्पना से यह बात संगत नहीं मालूम देती। राजशेखर जो लगभग ९०० ई० तक थे अपने काव्य में लिखते हैं—

जानकीहरणं कुर्त्तुं रघुवंशे स्थिते सति। कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः।

राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में कुमारदास को अन्ध लिखा है।

जानकी-हरण २० सर्गों में वैदर्भी शैली में लिखा गया है।

२. जानकी-हरण में कुमारदास ने संयत होकर अनुप्रासों का प्रयोग किया है। माघ कवि की भाँति वहाँ शब्दालंकारों का बाहुल्य नहीं है। यमक के एक प्रयोग का उदाहरण है—

अतनुनातनुना घनदारुभिः स्मरहितं रहितं प्रदिधक्षुणा।
रुचिरभाचिरभासितवर्त्मना प्रखचिता खचिता ननुदीपिता ॥ कुमारदास ॥

माघ के नीचे के दो श्लोकों में आये यमकों से इसकी तुलना की जा सकती है—
क्रान्तंरुचा कांचनवप्रभाजा नवप्रभाजालभृतां मणीनाम्।
श्रितं शिलाश्यामलताभिरामं लताभिरामन्त्रितषट्पदाभिः ॥ ४-३ माघ ॥
राजीवराजीवशलोलभृंगं मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तलकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥ ४-९ माघ ॥

कुमारदास का काव्य-सौन्दर्य कहीं-कहीं अति उत्कृष्ट है। उनकी शैली में अद्भुत् सरलता तथा छन्द में अनुपम रमणीयता है। पढ़ने पर ऐसा लगता है मानो रस की वर्षा हो रही हो। राम के बालकपन का चित्र है—

न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः।
निज हस्तपुटावृताननो विदधेऽलीक निलीनमर्भकः ॥

नीचे के श्लोकों में कालिदास की छाया दर्शनीय है—

पुष्परत्नविभवैर्यथेप्सितं सा विभूषयति राजनन्दने।
दर्पणं तु न चकांक्ष योषितां स्वामिसम्मद फलं हि मण्डनम् ॥
कैतवेन कलहेषु सुप्तया स क्षिपन्वसनामात्तसाध्वसः।
चोर इत्युदित हासविभ्रमं सप्रगल्भवखंडितोऽधरे ॥

कुमारदास के वितर्क का एक उदाहरण है—

पश्यन्हतो मन्मथवाणपातैः शक्तो विधातुं न मिमील चक्षुः।
ऊरू विधात्रा हि कृतौ कथं तावित्यास तस्यां सुमतेर्वितर्कः ॥

नीचे के श्लोकों में भारवि का प्रभाव है—

---

१. जानकी-हरण ३.३४ माघ ५. २९। १।११वां सर्ग की ४५वां श्लोक।

प्रालेयकालप्रियविप्रयोगग्लानेव रात्रिः क्षयमाससाद ।
जगाम मन्दं दिवसो वसन्तक्रूरातपश्रान्त इव क्रमेण ।।
वासन्ति कस्यांशुचयेन भानोर्हेमन्तमालोक्य हृतप्रभावम् ।
सरोरुहामुद्धत कंठकेन प्रीत्येव रम्यं जहसे वनेन ।।

खलु और इव का प्रयोग पंक्ति में प्रथम ही लाना दोष पूर्ण माना गया है। वामन ने खलु के प्रयोग के लिए इस भाँति निन्दा भी की है।[1]

दूसरे, छठे और दसवें में जानकी-हरण में अनुष्टुप् का प्रयोग है। ग्यारहवें में द्रुत-विलम्बित, तेरहवें में प्रमिताक्षर। इन्द्रवज्रा की उपजाति शाखा पहले, तीसरे और सातवें में प्रयुक्त है। पाँचवें, नवें, बारहवें और तीसरे में वंशस्थ, वैतालीय चौथे और रथोद्धता आठवें में है। इनके अतिरिक्त शार्दूल विक्रीडित, वसन्ततिलका, अवितिथ, शिखरिणी, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, का भी इधर उधर प्रयोग है।

कुमारदास माधुर्य और रस के प्रवाह में कालिदास के अति निकट हैं किन्तु वैसे देखा जाये तो भारवि से पश्चात् के और माघ के पूर्व के हैं।[2] यत्र-तत्र शब्दालंकारों का प्रयोग तथा छन्दों की विविधता में तो माघ का कुमारदास से साम्य है। जो सरसता और सरलता कुमारदास में है वह माघ में नहीं है, और जो पांडित्य तथा रसालंकारमयता माघ में है उसका कुमारदास में अभाव है।

माघ और श्री हर्ष

श्री हर्ष के सम्बन्ध में यह सूक्ति संस्कृतिज्ञों के मुख पर रहती है—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।' श्री हर्ष महाकवि माघ के बहुत ही पश्चात् के कवि हैं।

इनके युग के विषय में किसी भाँति की उलझन नहीं है। उन्होंने अपने काव्य में कान्यकुब्जेश्वर राजा जयचन्द्र राठौर के लिये लिखा है कि 'तांबूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' इससे यही सिद्ध होता है कि श्री हर्ष कवि सन् ११६९-९५ ई० तक तो थे ही। महाकवि माघ के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् यह काव्य जगत् में प्रविष्ट हुए थे। इनकी ८, ९ रचनायें हैं। यह अच्छे पंडित थे। इनका यश काश्मीर में इनकी जीवितावस्था में ही प्रसारित हो चुका था।

नैषध में २२ सर्ग में नल दमयंती के प्रेम और विवाह की कथा सरस शैली में कही गयी है। नैषध में शब्द और अर्थ की विविधता है। काव्य में मुख्य नियम की अपेक्षा आनुषंगिक विषयों के वर्णन की ओर कवि का ध्यान अधिक रहा है। कहीं-कहीं दो भावों की पुनरावृत्ति दो-दो बार भी हुई है। काव्य प्रकाश के लेखक मम्मट ने इस काव्य के विषय में

---

१. जानकी हरण १३ का ३९ किन्तु माघ २ का ७० में प्रयोग बिल्कुल ठीक है क्योंकि वहाँ पर खलु का रूप अलम् के तुल्य है।

२. वाल्टर इन्डिया ३ का ३२ : माघ २० का ४७ : जानकी-हरण १ का ४।

एक बार कहा था कि यदि काव्य प्रकाश के सप्तम उल्लास जिसमें दोषों का वर्णन है, को लिखने के पूर्व यह ग्रन्थ मिल गया होता तो दोषों के उदाहरण ढूंढने में मुझको इतना प्रयास नहीं करना पड़ता। उदाहरण सरलता से मिल जाते। इस कथन में अत्युक्ति है। यह बात अवश्य है कि नैषध काव्य की बहुत सी त्रुटियों के कारण आदर्श महाकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि उसमें तो शृङ्गार का एकांगी स्वरूप ही देखने को मिलता है। मानव जीवन के बहुविध स्वरूपों की अभिव्यक्ति उसमें नहीं है। कथावस्तु तथा चरित्र चित्रण भी उच्च कोटि के नहीं हैं। मौलिकता उसमें नहीं के बराबर है। अत्युक्तियाँ तथा दुरूह कल्पनाओं से यह काव्य और भी जटिल हो गया है। इन त्रुटियों के होते हुए भी इस महा-काव्य को वृहत्त्रयी में गिनाना उसकी विशालकायता का प्रभाव ही माना जाना चाहिये।

इस महाकाव्य पर माघ काव्य की छाप स्पष्ट है। इस विषय में यहाँ लिखना अभीष्ट है। महाकवि माघ ने पदलालित्य का जैसा स्वरूप छठे सर्ग में दिखाया है अन्यत्र मिलना कठिन है। श्री हर्ष ने भी पद-विन्यास और छंद कौशल दिखलाये हैं। कुछ विद्वान् 'दंडिनः पदलालित्यं' न कह कर 'नैषधे पदलालित्यं' कह कर इनके पद लालित्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वह कुछ अंशों तक सही भी है। अनुप्रास का चमत्कार तो वास्तव में नैषधीयचरित में ही देखने को मिलता है। ग्यारहवें सर्ग से तीन श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तत्रावनीन्द्रचयचन्दन चंद्रलेपनेपथ्य गन्ध वहगन्धवहप्रवाहम्।
आलीभिरापतदनंगशरानुसारी संरुध्य सौरभमगाहत भृंगवर्गः ॥११-५॥
उत्तुंगमंगलमृदंगनिनादभंगीसर्वानुवाद विधिबोधितसाधामेधाः।
सौधस्रजः प्लुतपताकतयाभिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजतांडवपंडितत्वम् ॥११-६॥
लोकेशकेशव शिवानापि यश्चकार शृङ्गारसान्तरभृशान्तरशान्तभावान्।
पंचेन्द्रियाणि जगतामिषुपंचकेन संक्षोभयन्वितनुतां वितनुर्मुदं वः ॥११-२५॥

इन श्लोकों के पद साहित्य की तुलना माघ के पद लालित्य से नहीं हो सकती। वह अनूठापन यहाँ नहीं है। माघ के सम्मुख यह पद लालित्य फीका पड़ जाता है। इस विषय में पहले विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। माघ का समासान्तपदविन्यास उनकी शैली को और अधिक गम्भीर तथा उदात्त बना देता है। नैषध काव्य के २६ वें सर्ग में पुरस्त्रियों का जो वर्णन है वह माघ के १३ वें सर्ग के वर्णन से मिलता है। माघ और श्री हर्ष दोनों श्लेष के बड़े प्रेमी हैं, पर यहाँ भी माघ के श्लेषों में ही वैशिष्ट् है।

उदाहरणार्थ—

हस्तस्थिताखंडितचक्रशालिनं द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया।
सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शांर्गिणमन्वयासिषु ॥१२-३॥ माघ
देवः पतिर्विदुषि। नैषधराजगत्या निर्णीयते च किमु न व्रियते भवत्या।
नायं नलः खलु तवाति महानलाभो यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते॥
॥ १३-३४॥ नैषध

इन दोनों श्लोकों में माघ के श्लेष का स्वरूप कुछ और ही है । माघ में शब्द विन्यास का अपना पृथक् ही सौन्दर्य है जिसे श्री हर्ष में ढूँढना व्यर्थ है । माघ के अलंकार प्राय: श्लेष का सहारा लेकर आते हैं फिर भी माघ में शुद्ध श्लेषों के भी पर्याप्त उदाहरण मिलेंगे ।

प्रभात वर्णन में माघ ने जैसी कवित्व शक्ति का परिचय कराया है नैषध के प्रभात वर्णन में वह बात नहीं । राजाओं के यहाँ पर बंदीगण किस ढंग से प्रभात वेला का वर्णन करते हैं वैसा वर्णन नैषधकार ने किया है । माघ भी रूप वही उपस्थित कर रहे हैं किन्तु दोनों की भिन्नता तथा श्रेष्ठता को तो सहृदय भावुक ही जान सकेंगे । तुलना के लिए दो उदाहरण हैं—

निशि दशमितामालिंगन्त्यां विधवोविधित्सुभिर्निषधवसुधामीनांकस्य प्रियांकमुपेयुषः।
श्रुति मधुपदस्रग्वैदग्धी विभावितभाविकस्फुटरसभृशाभ्यक्ता वैतालिकैर्जगिरे गिरः
।।१९-१।। नैषध ।

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकंठाः परिणतिमिति रात्रेमागधा माधवाय
।। ११-१ ।। माघ

श्री हर्ष मूल में शृङ्गार-कला सज्जा के कवि हैं । माघ में विलासिता के वे वासना-मय शृङ्गार के चित्र हैं जिनमें भाव का आधिक्य है । श्री हर्ष ने वात्स्यायन के कामसूत्रों का खूब अच्छी तरह अध्ययन किया है यह तो उनकी रचना से स्पष्ट हो जाता है, पर उसके जीवन में किस तरह उतार कर रखा जाता है इसमें वह कम कुशल हैं । नैषध के १८ वें सर्ग में रति क्रीडाओं के अतिरिक्त काम विलास के बहुत से चित्र हैं, और सप्तम सर्ग में नखशिख वर्णन भी प्राय: इसी प्रकार का है । सोलहवें स र्मेग अश्लीलता अधिक है । नैषध काव्य में विप्रलंभशृङ्गार का वर्णन हुआ है पर उसकी संवेदना मर्मस्पर्शी नहीं करती । माघ में तो विप्रलंभ के अवकाश है ही नहीं ।

श्री हर्ष के प्रथम सर्ग के घोड़ों का वर्णन माघ के अश्व वर्णन से नीचे ढंग का है । अश्व शास्त्र का वहाँ परिचय अधिक है और अश्वों का वर्णन बहुत कम । माघ की स्वभावोक्तियाँ और सूक्तियाँ दोनों ही श्री हर्ष से ऊँची हैं । इसी तरह श्री हर्ष ने १९ वें सर्ग में सूर्योदय तथा २२ वें सर्ग में सूर्यास्त वर्णन जो किया है उससे स्पष्ट है कि इन वर्णनों में वह माघ के ऋणी हैं । २१ वें सर्ग में दशावतार का जो वर्णन है वह माघ के १४ वें सर्ग में भीष्म द्वारा दी गयी कृष्ण की स्तुति प्रसंग में किये गये अवतारों के वर्णन का अनुकरण सा है ।

संक्षेप में चाहे माघ की अपेक्षा श्री हर्ष का कथानक बहुत बड़ा है और उसमें शृङ्गार के संयीग और वियोग दोनों पक्षों के लिए पर्याप्त अवकाश है फिर भी श्री हर्ष उसका लाभ नहीं उठा पाये । माघ रस और अलंकार दोनों ही क्षेत्रों में श्री हर्ष से कहीं अधिक ऊँचे उठे हुए हैं ।

माघ पर अनुकरण का दोष

कुछ आलोचकों की सम्मति में महाकवि माघ की रचना मौलिक न होकर अनुकरणात्मक है। यह सम्मति विचारणीय है।

महाकवि माघ विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने साहित्य शास्त्र के अतिरिक्त पुराण, महाभारत, गीता आदि अनेक ग्रन्थों का सविधि अध्ययन किया था। माघ के युग में कवि बनने के पूर्व कवि को अनेक शास्त्रों अथवा काव्यों या महाकाव्यों का गहन अध्ययन वा अवलोकन आवश्यक होता था तभी कोई कवि पंडित समाज में आदर पा सकता था। कवियों में कालिदास का नाम अग्रगण्य है और काव्यों में माघ काव्य शिशुपालवध का नाम। एक अच्छे कवि में जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है कदाचित् उन्हीं गुणों से युक्त होने के कारण कालिदास ही कवि शिरोमणि अथवा कविकुल गुरु कहलाये और काव्य में जिन गुणों का होना अनिवार्य है वे सब गुण माघ कवि के काव्य में हैं अतः माघ काव्य की प्रसिद्धि हुई।

जब शास्त्रज्ञता एक कवि से अपेक्षित हो तो उसके काव्य में उसका परिचय स्वाभाविक रूप से होगा। काव्य में इस प्रकार का परिचय अनुकरण नहीं कहलाता। शिशुपालवध में महाकवि माघ की अध्ययनशीलता का परिचय है। भारवि के किरातार्जुनीय को तो उन्होंने अक्षरशः पढ़ा है। उनकी शैली, उनकी सी कथावस्तु लेकर उनको अपदस्थ करना उनका ध्येय सा मालूम होता है। वह भारवि का अनुकरण नहीं, भारवि का एक प्रकार से संशोधन सा है। भारवि के शब्दों अथवा अर्थों, भावों अथवा अलंकारों को लेकर माघ ने उनमें एक अपूर्व चमत्कार पैदा किया है। यदि केवल इसीलिए माघ को भारवि का अनुकर्त्ता कहा जायगा तो फिर यह दोष तो बड़े-बड़े कवियों के सिर पड़ेगा। क्या संस्कृत, क्या हिन्दी, क्या उर्दू तथा क्या विदेशी भाषाएँ सभी भाषाओं के कवि इस दोष से लांछित न होंगे? तुलसी के रामचरितमानस में अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत्, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, गीता, अगस्त्यरामायण, आनन्द रामायण, उत्तर रामचरित, कुमारसंभव, चंपूरामायण, चाणक्य-नीति, भर्तृहरिशतक, शुक्रनीति, हितोपदेश आदि ग्रन्थों के अनेक श्लोकों का अनुवाद सा है। उदाहरणार्थ—

सद्य पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी, सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि गत्वा।
गन्तव्यमद्य कियदित्यसकृद् ब्रूवाणा, रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥६-३४॥

बालरामायण

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी यही बात लिखी है—

पुरतेनिकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भालकनीं जलकी, पुट सूख गये मधुराधर ह्वै ।।
फिर बूझति है, चलनो अब केतिक ? पर्ण कुटी करिहौं कित ह्वे ?
तिय कीं लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वे
।। कवितावली ।।

यहाँ भाव साम्य है, किन्तु जैसा औचित्य तुलसी के भाव में है वह बाल रामायण में कहाँ ? यहाँ पर औचित्य ने ही मौलिकता प्रदान की है ।

अमरुशतक का एक श्लोक है—

क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे, प्राणाधिपो वसति यत्र निजः प्रियो मे ।
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले ! नन्वस्ति पुंखितशरो मदनस्सहायः ।।

कवि पद्माकर ने इसी श्लोक के भाव तथा पदों को अपनाते हुए कविता प्रस्तुत की—

कौन है तू चली जाति कितै, बलि बीति निशा अधि राति प्रमाने ।
हौं पद्माकर भावति में निज भावते पै अब ही मोहि जाने ।।
तौ अलबेलि अकेली डरे किन, क्यों डरूं मेरी सहाय न आने ।
है मम संग मनोभव सौ भट, कान लौं बान सरासर तानें ।:

नीचे एक और श्लोक है जिसका भाव साम्य सूरदास के एक दोहे में है —

निर्बलं मे महाबाहो करमुच्छिद्य निर्गतः ।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ।।
बाँह छुड़ाये जात हो निवल जान के मोयि ।
हिरदे ते जब जावेंगे मरद बदोंगो तोय ।।

केशवदास जी के दोहे और साथ वाले श्लोक में भी भाव-साम्य है—

'केशव केशन अस करी, जस अरि हूँ न करांहि ।
चन्द्र वदनि मृग लोचनी, वाबा कहि कहि जाय ।।'
'आपांडुरा शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दंतावली विगलिता न च मे विषदः ।
एणादृशो युवतयः पथि मां विलोक्य,
तातेति भाषणपरा इति वज्रपातः ।।'

संस्कृत के कवियों के भाव उर्दू कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं—

अधरोऽयमधीराक्ष्या, बन्धुजीव प्रभाहरः ।
अन्यजीव प्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ।।

बंधु जीव को दुखद है, असन अधर नव बाल ।
दास देत यह क्यों डरे पर जीवन दुख जाल ।।
इतने मीठे हैं तेरे लब कि रकीब ।
गालियाँ खाके बेमज़ा न हुआ ।। गालिब ।।

'He jests at scars that never felt a wound'

ही ज्यस्ट्स अैट स्कार्स दैटनैवर फयल्ट अ वुण्ड-शेक्सपियर ने रोमियों से कहलाया था ।

'Teacher, Comrade, wife a fellow farer true through life.'

टीचर, कामरेड, वाइफ अ फेलो फेयरर ट्रू थ्रू लाइफ

कालिदास ने अज से कहलाया—'गृहिणी सचिवः सखी मिथ प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ।'

एक शेर है—

मन तू शुदम् तू मन शुदी, मन जाँ शुदम् तू मन शुदी ।
तो कस न गोयद बाद अज्ईं, मन दीगरम् तू दीगरी ।। फारसी

मैं तू हुआ तू मैं हुई, मैं जाँ हुआ तू तन हुई । अब तो न कोई फिर कहे, मैं दूसरा तू दूसरी ।

संस्कृत के कवियों का और भी निकटता का है—

तां सुन्दरीं चेन्न लभेत नन्दः सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः ।
द्वन्द्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभेतान्योन्यहीनाविव रात्रिचंद्रौ ।। ४-७ ।। कुमारसम्भव
परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ।।कुमार ७-६६ ।।
तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सो निश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः ।। ४-४२ ।। सोन्दनंद
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेवसिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।।५-८५।।
कुमार

आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते, नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च ।। १०-२३ ।। बु० च०
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं, नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।। २-४७ ।। रघु
मोघं श्रमं नार्हसि मार कर्तुं ।। १३-५७ ।। बु० च०
अलं महीपाल तव श्रमेण ।। ४-३४ ।। रघु
प्रमदानामगतिर्न विद्यते ।। ८-४४ ।। सौ० नं०
मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।। ५-६४ ।। कुमार
गुणाः पूजा स्थानं, गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।। उत्तर ४ ।।
गुणे हि सर्वत्र पदं निधीयते ।। रघु० ३ ।।

शरीर निर्माण सदृशो ननु अस्य अनुभावः ।। वीर० १ ।।
न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ।। मृच्छकटिक ६ ।।

इस तरह शब्द-साम्य और भाव-साम्य दोनों ही कवियों की रचना में मिलते हैं। फिर ये कवि भी साधारण नहीं हैं, महाकवि हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्रीयचर्चा में जाना भी समीचीन होगा।

महाकवि क्षेमेन्द्र अपनी औचित्यविचार चर्चा में औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

उचित स्थान विन्यासादलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्यादच्युतानित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः।।
किं तदा औचित्यं इति आह—
उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।।
पदेवाक्ये प्रबंधार्थे गुणेऽलंकरणे रसे।
क्रियायां कारके लिंगे वचने च बिशेषणे।
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते।
तत्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे।
प्रतिभायामवस्थायां बिचारे नाम्न्यथाशिषि।
काव्यस्यांगेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापजीवितम् ।।

ऊपर जिस औचित्य का विवरण दिया गया है उसका महाकवि माघ की रचना में यथा स्थान सद्भाव है। भारवि और माघ के साम्य की बात दूसरे प्रकार की है इसका स्पष्टीकरण पहले भी दो जगह हो चुका है। महाकवि माघ स्वयं औचित्य के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपने शिशुपाल काव्य में लिखा है—

तेजः क्षमा वा नैकान्तं, कालज्ञस्य महीपतेः
नैकमौजः प्रसादो वा, रसभावविदः कवेः ४-८३ ।।

बल्लभ देव के अनुसार पाठान्तर 'रसभागविदः' है, यहाँ 'भाग' का अर्थ है 'विषय'। रस के विषय का ज्ञाता कवि एक ही गुण का आश्रय नहीं लेता, प्रत्युत विषय के औचित्य से कभी ओज का और कभी प्रसाद का उपयोग करता है।

साहित्याचार्य डा० बलदेव उपाध्याय अपने भारतीय साहित्य शास्त्र में इस श्लोक की पुष्टि इस भाँति करते हैं। राजा को देश काल का ज्ञाता होना चाहिए। उचित देश और काल का निरीक्षण कर उसे अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए। उसे एक ही नीति का दास बनकर कथमपि शोभा नहीं देता। तेज और क्षमा, पराक्रम और दया दोनों निस्संदेह सुन्दर गुण हैं परन्तु इनमें से एक ही को स्वीकार करना ठीक नहीं है। कवि की भी ऐसी ही दशा

है। उसे रस और भाव का मर्मज्ञ होना चाहिए। रस के परिपोषक होने पर ही कवि को चाहिए कि ओजगुण या प्रसाद गुण को स्वीकार करे। आदि से अन्त तक यदि ओज ही ओज या प्रसाद ही प्रसाद गुण लायेगा तो वह कवि कहलाने योग्य नहीं है। शृङ्गार की प्रधानता होने पर रचना भी कोमल सुकुमार हो तो ठीक है जो प्रसाद गुण है। वीर तथा रौद्र के लिए ओज और दीप्ति।

यही नहीं, माघ कवि ने वस्तु औचित्य और अलंकार औचित्य पर भी, जो रस आनन्द प्राप्ति के केवल बाह्य परिधान है, ध्यान दिया है। उनका छन्द सम्बन्धी औचित्य ग्यारहवें सर्ग में देखने ही योग्य है। औचित्य ही काव्य को स्थिर जीवनी शक्ति प्रदान करता है। यह ठीक ही है कि आत्मा के बिना जीवन जिस भाँति असम्भव है उसी भाँति रस के बिना औचित्य की सत्ता अर्थ नहीं रखती क्योंकि काव्य की आत्मा रस है और औचित्य काव्य का जीवन है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को जाति सूक्ष्मतत्व तथा उसके विचार को महाकवियों को भी अत्यन्त हर्ष देने वाला स्वीकार किया है—

महाकवेरप्यति सूक्ष्मतत्व, विचार हर्षप्रदमेतदुक्तम् ॥ सुवृत्तितिलक ३-३४ ॥

यह तो हुई औचित्य की बात, अब मौलिकता पर भी विचार कर लिया जाय। विज्ञान वाले मौलिकता का दूसरा नाम नवीन उद्भावना बताते हैं किन्तु साहित्य में तो दृष्टिकोण अथवा विवेचन की नवीनता ही मौलिकता कहलाती है। केवल भाव साम्य अथवा प्रभाव ग्रहण से मौलिकता नष्ट नहीं होती। साहित्य के आचार्यों ने इस विषय में पर्याप्त लिखा है। उनमें आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त तथा राजशेखर प्रमुख हैं। कौन नहीं जानता कि भाव और विचार तो सार्वजनिक वस्तु हैं। उनकी अभिव्यक्ति कवि की अपने ढंग की होती है। अतः यदि कोई कवि इतने शास्त्रों, ग्रन्थों व समसामयिक पुस्तकों को देखकर अपने पूर्ववर्ती कवियों के भाव ग्रहण कर उनको अपनी अनुभूति के अनुसार अभिव्यक्त करता है तो उससे उसकी मौलिकता ही व्यक्त होती है। ऐसा भी होता ही है कि समान परिस्थितियों में अनेक व्यक्तियों की किसी बात के प्रति एक सी ही प्रतिक्रिया होती है। इसका कारण यह है मानव में मानवीयता का मूलतत्व समान है। भाव साम्य उस अवस्था में भी अवश्य मिलेगा जहाँ सामाजिक वातावरण तथा परिस्थिति के साथ हम लोगों के संस्कार व विचार-पद्धति भी मिलती-जुलती होगी फिर काव्य विषय और काव्य सामग्री के निश्चित होने पर तो भाव-साम्य अवश्य ही मिलेगा। किसी युग में कोई विशिष्ट रीति अथवा कोई काव्य ग्रन्थ प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं तो उस काल की रचना में उनके भावों का साम्य होगा ही। शास्त्रावलोकन तथा ग्रन्थों के अध्ययन बिना जब सत् कवि बनना सम्भव नहीं तो पूर्ववर्ती साहित्य का गम्भीरता से अध्ययन करने वाला व्यक्ति अधीत साहित्य के विचारों और भावों से संस्कारवान् भी बनेगा ही। विद्वानों की सम्मति में कवि वही है जो दूसरों के काव्यों की छाया को स्वीकार करता है अर्थात् उनके सत्पथ को ग्रहण करता है और असत् पक्ष को छोड़ देता है। कवि अर्थ या भाव का अपहरण करता है वह कुकवि है, जो पद वाक्यादि का अपहरण करता है वह चोर है। कवि कंठाभरण में भी लिखा है—

छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी सकलोपजीवी।
भवदेथ प्राप्त कवित्वजीवी स्वोन्वेषतो वा भुवनोपजीव्यः ॥

उपर्युक्त में ६ प्रकार के कवि कहे गये हैं। दूसरे के काव्य की छाया मात्र लेकर जो कविता करे, एक आध पद लेकर, श्लोक का एक पाद लेकर और समग्रश्लोक को लेकर। इस तरह कवि शिक्षा प्राप्त करके उसके सहारे कविता करे। अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के बल कविता करे।

मानव सनातन है। उसके भाव और विचार भी सनातन हैं। पर्वत, नदी आदि प्रकृति के स्वरूप सनातन है। इनका वर्णन भी सनातन है। वर्णन की दृष्टियों में भेद होते हुए भी उनमें का अभेद सनातन है। यदि यह अभेद न हो तो किसी कवि की, किसी विचारक की बात मानवों को—समाज को—सहृदयों को ग्रहण ही कैसे होगी। कवि के लिए सामाजिक होना पहली शर्त है। साधारणीकरण कविता का आवश्यक गुण है। जब संसार में वस्तुएँ सनातन हैं और उनके प्रत्यक्ष से होने वाली प्रतिक्रिया सनातन है, नवीन बात होती ही नहीं, वे ही पहिचानी हुई, सुनी हुई, देखी हुई अनुभूत बातें होती हैं तो कवि नई चीज क्या लायेगा। कवि तो इन्हीं सब चीजों को अपनी प्रतिभा बल से, अपनी व्युत्पत्ति और अभ्यास से, अपने ढंग से प्रस्तुत करते आये हैं। ढंगों की विविधता नवीनता कहलाती है। कवि की कला का निखार, उन्हीं पुरानी बातों में उक्ति वैचित्र्य से अपने ढंग से प्रदर्शित करना, कहलाता है। आनन्दवर्धनाचार्य का यह कहना युक्तियुक्त है—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रस परिग्रहात्।
सर्वेनवा इवा भांति मधुमास इव द्रुमाः॥

अर्थ—वे ही पुराने वृक्ष हैं पर बसन्त के रस-संचार से उन्हें नवीन रूप मिल जाता है। किसी में नवीन कोंपलें निकल आती हैं, किसी में पुष्पों का विलास हो जाता है, किसी में फल आने लगते हैं, किसी का रूप-रंग ही चित्ताकर्षक हो जाता है तो किसी में मनोमुग्ध-कारी सुगन्ध महकने लगती है। यह प्रकृति का नवीन रूप है। ठीक यही अवस्था कवि की है। वह भी तो प्रकृति रूपी उद्यान को विकसित करने वाला बसन्त ही है। वह किसी पुराने कविता-द्रुम में रस, ध्वनि, रूप, मधुर, फल लाकर अलंकार ध्वनि रूप सुन्दर पुष्प लगा-कर वस्तुध्वनि के मनोहारी रूप-रंग का चित्र खेंच कर उस जीर्ण-शीर्ण शुष्क कविता कानन को पल्लवित करके ऐसा सजीव कर देती है कि सहृदय रूपी कोकिल उस पर बैठकर कूकने लगते हैं—भाव-विभोर हो जाते हैं।

औचित्य और मौलिकता पर विचार करने के बाद उसको माघ काव्य पर घटित करने के उद्देश्य से नीचे कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं जिसमें भाव साम्य होते हुए भी औचित्य है, मौलिकता है।

शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में माघ का एक श्लोक है—

संकीर्णकीचकवनस्खलितैकवाल विच्छेदकातरधियश्चलितुं चमर्यः।
अस्मिन् मृदुश्वसनगर्भतदीय रन्ध्रनिर्यत्स्वनश्रुतिमुखादिव नोत्सहन्ते ॥४-४३ माघ॥

किरात के द्वादश सर्ग में भारवि का एक श्लोक है—

चमरीगणैर्गणबलस्य बलवति भयेऽप्युपस्थिते ।
वंशवितितिषु विषक्त पृथुप्रियबालवालधिभिराददे धृतिः ।।१२-४७।। किरात

माघ ने चमरियों के रुकने का कारण सुख विशेष बताया है, जबकि भारवि ने अपने वालों का मोह बताया है । एक भयजनक स्थिति का भी संकेत कर दिया है ।

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।१-२६।। माघ
श्रियं विकर्षत्यपहन्त्यघानि श्रेयः परिस्नौति तनोति कीर्त्तिम् ।
संदर्शनं लोकगुरोरमोघं तवात्मयोनेरिव किं न धत्ते ? ।।३-७।। किरात

माघ में दर्शन का फल अचिंत्य तथा त्रिकाल व्यापी बताया है जबकि भारवि ने कुछ फल गिनाकर ही सन्तोष पा लिया है ।

विलोकनेनैव तवाधुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा ।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ।।१-२९।। माघ
निरास्पदं प्रश्नकुतूहलित्वमस्मास्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम् ।
तथापि कल्याण॰री गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरीकरोति ।।१३-९।। किरात

माघ ने यहाँ नारद के दर्शन मात्र से संदेश दे दिया है तथा एक अर्थान्तरन्यास से नारद को कुछ कहने का अवसर भी दे दिया है जबकि भारवि ने व्यास को निःस्पृह कह कर एक तरह से उनके आगमन की व्यर्थता सी बता दी है । हाँ, दूसरी पंक्ति में फिर उनको कुछ कहने के लिए अवसर अवश्य दे दिया है ।

इस तरह माघ के कथन की मौलिकता तथा औचित्य स्पष्ट ही सामने आ जाते हैं । दूसरे कवियों के साथ माघ के भाव साम्य के भी एक-दो उदाहरण और दिये जाते हैं—

पर्यायसेवामुत्सृज्य, पुष्पसम्भारतत्पराः ।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते ।।२-३६।। कुमारसम्भव कालिदास
तपेनवर्षाः शरदा हिमागमो बसन्नलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ।।१-६।। माघ

यदि कालिदास ने ऋतु विपर्यय करके तारकासुर के आतंक की चर्चा की है, तो माघ ने ऋतुक्रम को बनाये रखते हुये एक पारिवारिक भाव को व्यक्त किया है—

वीज्यते स हि संसुप्तः श्वाससाधारणानिलैः ।
चामरैःसुरबन्दीनाम् वाष्पसीकर वर्षिभिः ।।२-४२।। कुमारसंभव-कालिदास
स चन्दनाम्भः कणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ।।१-६५।। माघ

प्रकरण के हिसाब से दोनों स्थलों में वीजना करती हुई स्त्रियों की भी भिन्नता है उनका अपना एक औचित्य है । उपर्युक्त में भाव साम्य है, पर उसके प्रतिपादन के अवसर

और बोलियाँ विभिन्न हैं। कुमारसम्भव में बलात् हरण कर कैद में रक्खी हुई देवांगनायें प्रियतम् वियोग के दु:ख से गरम-गरम नि:श्वास को छोड़ती हुई, आँखों से आँसू टपकाती हुई, सोये हुये तारकासुर को चामरों से हवा करती है। माघ काव्य में कामज्वर से संतप्त उस रावण की देह, देवराज इन्द्र की वंदिनी स्त्रियों के अत्यन्त उष्ण नि:श्वास की वायु है जिस प्रकार शीतल होता था, उस प्रकार चन्दन मिश्रित जल के कणों से युक्त होने के कारण मृदुल एवं जल से सिंचित ताड़ के पंखों से की जाती हुई हवा से शीतल नहीं होता था। देव-विजय का अभियान जो है।

रघुवंश और शिशुपालवध का माघ-साम्य—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुंजेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥२-१२॥ रघुवंश
संकीर्ण कीचकवनस्खलितैकवाल, विच्छेदकातरधियश्चलितुं चमर्यः।
अस्मिन् मृदुश्वसनगर्भतदीय रन्ध्र निर्यत्स्वनश्रुतिसुखादिव नोत्सहन्ते ॥४-४३॥ माघ
शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः, संसक्ताभिः त्रिपुर विजयोगीयते
किन्नरीभिः।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनि स्यात्
संगीतार्थो ननु पशुपतेः तत्र भावी समग्रः ॥६०॥ मेघ पूर्व
यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तान प्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥१-८॥ कुमार
चमरीगणैर्गण बलस्यबलवति भयेऽप्युपस्थिने।
वंशविततिषु विषक्तपृथु प्रिय बालवालधिभिराददे घृतिः ॥१२-४७॥ किरात
उद्धृत्यमेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव संप्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्ती नंदीः स्मृती वेंदमिवाम्बुराशिम् ॥३-७५॥ माघ काव्य
तस्याः खुरन्यास पवित्र पांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वर धर्मपत्नी श्रुते रिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥२-२॥ रघुवंश

इन श्लोकों का भाव साम्य और उसके उपस्थापन की विभिन्न युक्तियाँ स्वतः संवेद्य हैं।

दशकुमारचरित और माघ काव्य का भाव साम्य—

परस्परस्पर्धिपराध्यंरूपाः पौरस्त्रियो यत्र विधाय वेधाः।
श्रीनिर्मितिप्राप्त घुणाक्षतैकबर्णोपमावाच्यमलं ममार्ज ॥३-५८॥ माघ काव्य
इमं ललना जनं सृजता बिधात्रा नूनमेषाघुणाक्षरन्यायेन निर्मिता।

नोचेत् अब्जभूरेवंविध निर्माण निपुणो यदि स्यात् तर्हि समान लावण्यं अन्यां तरुणीं किं न करोति—दशकुमार चरित

घुणाक्षरन्याय को दोनों कवियों ने अपने-अपने ढंग से बड़ी सुन्दरता से प्रयुक्त किया है।

चतुर्थ सर्ग में माघ—

फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतंगकान्तैः।
शशंस यः पात्र गुणाद्गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम् ।।४-१६।। माघ

मालविकाग्निनाटक में कालिदास—

पात्र विशेषेन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातोः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ।।

अभिज्ञान शाकुन्तल में—

"स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति।"

किरात के नवम सर्ग में भारवि—

प्राप्यते गुणवतापि गुणानां व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः।
तत्तथाहि दयिताननदत्तं व्यानशे मधु रसातिशयेन ।।५८।।

वैराग्यशतक में श्री भर्तृहरि—

यत् अचेतनः अपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिकान्तः।

उत्तर रामचरित के षष्ठ अंक में भवभूति—

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां प्रसहते,स तस्य स्वोभावः प्रकृति नियतात्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः, किमाग्नेयोग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ।।१४।।

उपर्युक्त श्लोकों में गुण पात्र में जाकर किस भाँति देदीप्यमान हो जाता है यह भाव साम्य है, किन्तु प्रत्येक कवि के कहने की शैली भिन्न है। प्रत्येक का सौन्दर्य अपने-अपने ढंग का है।

ऐसे उदाहरण सहस्रों दिये जा सकते हैं। इन उदाहरणों में यह स्पष्ट होता है कि भावसाम्य एक मानवीय प्रक्रिया है। उसे काव्य में आने से रोका नहीं जा सकता। आनंदवर्धनाचार्य ने इस भाँति के भाव साम्य के तीन भेद बतलाये हैं—

क. प्रतिबिंबवत् ख. तुल्यदेहिवत् ग.आलेख्यवत्।

राजशेखर ने तीनों को स्वीकार करते हुए एक चौथा भेद परपुरप्रवेशप्रतिम और बनाया है। उनमें से कौन उपादेय है और कौन हेय है इसका निर्णय तो प्राचीन शास्त्रकार भी न दे सके। उन शास्त्रकारों ने उदारता का परिचय देते हुये कह दिया—

नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः।
स नन्दति बिना वाच्यं यो जानाति निगूहितम् ।।

शब्दार्थोक्तिषु यः पश्येदिह किंचन्न नूतनम् ।
उल्लिखेत् किंचनवाच्य मन्यतां स महाकविः ।।

अपहरण कवि और वणिक् व्यापारी जन परार्थापहरण पराङ् मुख होते प्रायः देखे नहीं गये । ध्वन्यालोक के निर्माता ने भी यही निर्णय देते हुए, कहा है—

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित्,
स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ।
अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्,
सुकविरुपनिबध्नन् निंद्यतां नोपयाति ।।४-१६।।

ध्वन्यालोक में एक और बात इसी विषय में सुन्दरता से कही गयी है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं, विभाति लावण्यमिवांगनासु ।।१-४।।

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने महाकवीनाम् पद की इस रूप में व्याख्या की है—

प्रतीयमानानुप्राणित काव्य निर्माण निपुण प्रतिभाभाजनत्वेनैव महाकवि व्यपदेशो भवतीतिभावः ।

इन निर्णयों के बाद माघ जैसे आत्माभिमानी महाकवि पर अनुकरण अथवा अपहरण का दोष लगाना एक दुराग्रह मात्र है । भारवि का भाव साम्य माघ में अधिक है, इसका कारण फिर से दुहरा देना आवश्यक है, वह यह है कि माघ भारवि से अधिक प्रसिद्धि पाना चाहते थे ।

माघ की क्षमता अद्भुत है, उनकी रचना में मौलिक उद्भावना है तथा शास्त्रसम्मत औचित्य है ।

माघ के विषय में प्रचलित सम्मतियाँ

१. नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।
२. माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।
३. मेघे माघे गतं वयः ।
४. काव्येषु माघः कवि कालिदासः ।
५. पुष्पेषु जाती नगरीषु कांची, नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः ।
नदीषु गंगा नृपतौ च रामः, काव्येषु माघः कवि कालिदासः ।।
६. माघेन विघ्नोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
७. मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु ।
८. तावद् भा रवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः
९. माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ।
१०. माघः शिशुपालं विदधन् कविमदवधं विदधे ।

प्राचीनकाल में आधुनिक ढंग की आलोचनाओं का अभाव था । साहित्यशास्त्र की चर्चा, सिद्धान्तों की समीक्षा तो हुआ करती थी पर किसी कवि विशेष की सर्वांगीण विशद आलोचना एक ग्रन्थ के रूप में अथवा प्रबन्ध के रूप में नहीं होती थी या तो किसी कवि की विशेषता को लेकर सूक्ति के रूप में सम्मति प्रकट कर दी जाती थी, या काव्य-सिद्धान्तों के उदाहरणों के रूप कवियों के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते थे । उपरिलिखित सूक्तियाँ माघ कवि की विशेषताओं की ओर संकेत करती हैं, जो सम्मतियों के रूप में विद्वानों ने समय-समय पर कह डालीं । ये सम्मतियाँ एकाँगी हैं और किसी अंश में अत्युक्ति भी । इन सम्मतियों के सम्बन्ध में नीचे क्रम से विवेचना की जाती है ।

१. नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते

महाकवि माघ का संस्कृत भाषा पर पूर्णरूप से स्वाभित्व था । वे चलते-फिरते एक रूप से शब्द कोष से थे । उनकी रचना में एक शब्द के कई पर्यायवाची शब्द उस प्रसंग विशेष में फलते हुए मिलेंगे । एक शब्द से उन्होंने कहीं-कहीं पर एक वाक्य का काम लिया और उनके शब्दों की व्यंजना शक्ति अद्भुत रही है । व्याकरण के प्रकांडपंडित होने के कारण उन्हें किसी शब्द के लिए रुकना नहीं पड़ा । नवीन शब्दों की आवश्यकतानुसार सृष्टि की और इस तरह संस्कृत भाषा को समृद्ध किया । यमक और श्लेष अलंकार तो शब्दों की अर्थ

महिमा के सहारे ही चलते है। उदाहरणार्थ 'गोत्रभिद्' इन्द्र के लिए आता है किन्तु 'गोत्र को भेदने वाला' पति भी तो होता है अथवा गोत्रभिद् का अर्थ पति हुआ। लकारार्थ प्रक्रिया के उदाहरण इन श्लोको में लीजिये। १-३७, १-३८, १-४७, १-५१। माघ काव्य के नवम सर्ग तक आते-आते पाठक के पास पर्याप्त शब्दावली का सग्रह हो जाता है। उसे ऐसा भान होने लगता है मानो अब नये शब्द रहे ही न होगे। कविता के क्षेत्र मे माघ ही सभवत: ऐसे कवि है जिनकी रचना मे नवीन शब्दो की भरमार है। लोगो के इस कथन मे थोड़ी अत्युक्ति है पर अभिप्राय यह है कि श्लेष, यमक तथा चित्रबन्धो आदि मे शब्दो की अनेकार्थता व्युत्पत्तिगम्य अर्थता शब्दो के नये रूपो का निर्माण करती है। शब्दो के जो प्राचीन अर्थ है उनके स्थान पर नवीन अर्थ उनसे निकलते है। यही इस सम्मति से अभीष्ट है।

२. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

और सम्मतियो की अपेक्षा यह सम्मति विद्वानो मे अधिक प्रचलित है। कालिदास की अत्यधिक प्रसिद्धि उनकी उपमाओ से है, महाकवि भारवि अपने अर्थ गौरव को लेकर इस ससार मे सिद्ध हो चुके है और पदलालित्य का आनन्द महाकवि दण्डी को रचना मे मिलता है। माघ मे इन तीनो का समन्वय है। सच पूछा जाय तो कालिदास-कालिदास ही है। माघ काव्य मे उन जैसी उपमाएँ सामान्यत: नही मिलती। फिर भी महाकाव्य मे सुन्दर उपमाएँ हैं तो अवश्य। कुछ यहाँ प्रस्तुत की जाती है—

विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथंचिच्छ्रुत्वापिदुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः।
श्रेयान् द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्ष गूढार्थमेष निधिमन्त्रगण बिभर्ति ॥४-३९॥
दधानमम्भोरुह केसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिगास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्र व्रततीततीरिव ॥१-५॥
सित सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लभयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ॥१-२५॥
अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबधना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।२-११२॥
प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद् ध्वजिन्य. ॥३-६५॥
सार्ध कथचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदल म्रदीय:
दासेरकः सपदि सवलित निषादैर्विप्र पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥५-६६॥
उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगगापयसः पतेताम्।
तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ॥३-८॥
उद्धृत्यमेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव संप्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदी स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम् ॥३-७५॥

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः ।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम् ।।१६-४१।।

उपर्युक्त ६५ वे श्लोक मे 'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते' अथवा 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' की झलक स्पष्ट है। इसी भाँति श्लोक ७५ वे मे कालिदास का 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छित्' अथवा 'तत प्रतस्थे कौबेरी' का स्मरण हो जाता है।

ग्यारहवे सर्ग का छठा, बीसवा, तीसरा तथा नवम सर्ग का उनतालीसवा भी उपमा के लिए देखिए। एक स्थान पर तो माघ कवि प्रात काल की चिडिया का जो कलरव होता है उसको जल मे डूबे घडे के शब्द के समान बताते है—

विततपृथुवरत्रा तुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः ।
कृतचपल विहगालापकोलाहलाभिर्जलनिधि जलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ।।११-४४।।
उदयशिखरिशृङ्ग प्रागणेष्वेष रिगन् सकमलमुखहास वी क्षतः पद्मिनीभिः ।
विततमृदुकराग्र शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्य
।। ११-४७ ।।

साम्य मूलक अलकारो का प्रयोग करने मे माघ की कुशलता सर्व विदित है। माघ के अर्थ गौरव के उदाहरणो की भी कमी नही है—

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलंबनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।।९-६।।
अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधत वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकासयद्रविमपेत वसु वियदालयादपरदिग्गणिका ।।९-१०।।
रुचिधाम्नि भर्तरि भृश विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलन त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ।।९-१३।।
अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमाला कज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्त्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्व संध्या सुतेव
।। ११-४० ।।

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताःसमस्ताः ।
इति दयित कलत्रश्चिन्तयन्नगमिन्दुर्वहति कृशमशेष भ्रष्टशोभं शुचेव ।।११-२४।।

इन श्लोको मे प्रत्येक पद अपना विशिष्ट अर्थ रखता है।

पद लालित्य के कई श्लोको को हमने महाकवि माघ का काव्य सौन्दर्य प्रकरण मे उद्धृत किया है। यहाँ पर फिर कुछ उदाहरण दिये जाते है—

यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहैः,
समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः ।

वनं बबाधे विषपावकोत्था,
विपन्नगानामविपन्नगानाम् ॥४-१५॥
कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं,
त्यजतिमुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं,
हत विधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥११-६४॥

नीचे के श्लोकों में उपमा की वैचित्र्य के साथ लोकोत्तर पदविन्यास है—

रथांगपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्त्तेरिव नक्तमंशवः ॥१-२१॥
प्रफुल्लता पिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपांडुभिः
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥१-२२॥

छठे सर्ग में दूसरा और बीसवां जो पद लालित्य के लिये प्रसिद्ध है पहले लिख दिया गया है । उन्हें वहाँ पर देखें । ग्यारहवें सर्ग का उन्नीसवां तथा प्रथम का भी उन्नीसवां पद लालित्य के लिये देखें ।

अतः इस कथन में सचाई है कि माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।

(३) मेघे माघे गतं वयः—

माघ साधारण श्रेणी के कवि एवं विद्वान् तो थे नहीं जिससे उनकी कविता बिना किसी प्रयास या विद्वत्ता के ही सरलता से समझ में आ जाय । माघ की पांडित्यपूर्ण रचना का परिशीलन करने में बहुत समय लगता है । पाठक तथा सहृदय व्यक्ति इस काव्यरूपी महासागर में गहरे उतर कर ही बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त कर सकते हैं । कालिदास का मेघदूत भी वैसे एक छोटी-सी रचना है, पर उसको समझने के लिए जीवन का अनुभव चाहिए । मेघदूत की समता यहाँ माघ के महाकाव्य के साथ इसीलिए दी गई है उनके समझने के पूर्व विद्वत्ता, अध्ययनशीलता, धैर्य शालिना और इन सबसे अधिक जीवन व्यापी अनुभव अपेक्षित है । अतः माघकाव्य को समझने के लिए तो पाठक में बहुज्ञता भी होनी चाहिए । बहुज्ञता के लिए वर्षों के अध्ययन की और अध्ययन के पश्चात् मनन की आवश्यकता है । स्पष्ट है कि यह सम्मति माघ के बहुश्रुत होने की ओर इंगित करती है ।

(४) काव्येषु माघः कवि कालिदासः

यह सम्मति साधारण विद्वानों की नहीं है । इसमें काव्य और कवि का भी सूक्ष्म भेद किया गया है । कवि कालिदास का अर्थ है कविषु कालिदासः । सब ही कवि शिशुपाल वध जैसे काव्यकार नहीं हो सकते और न कालिदास जैसे कवि ही । कवियों के सहज गुणों की चर्चा जब की जाय और किसी एक व्यक्ति में उन गुणों की स्थिति ढूंढी जाय तो ऐसा व्यक्ति संस्कृत साहित्य में तो क्या विश्वसाहित्य में कालिदास के समान शायद ही मिले ।

इसी तरह काव्य संभवों की संपूर्ण अन्विति यदि किसी एक ही काव्य में ढूँढी जाय तो संस्कृत साहित्य में तो शिशुपालवध के अतिरिक्त दूसरा काव्य नहीं मिल सकता। जिस प्रकार कवित्व क्षेत्र में माघ कालिदास का स्थान नही ले सकते उसी प्रकार शास्त्रसम्मत लक्षणों से युक्त महाकाव्य के क्षेत्र में शिशुपालवध का स्थान कालिदास नहीं ले सकते।

इस सम्मति में कई उपमानों से माघ के शिशुपालवध का काव्य क्षेत्र में जो स्थान है उसे निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र की दृष्टि से इस उक्ति में दोष अवश्य हैं, पर उसके पीछे जो समझ है वह ठीक है। "काव्येषुमाघः कवि कालिदासः" किसी श्लोक का एक भाग है। इसकी व्याख्या वहाँ कर दी गई है।

(६) मुरारि-पद चिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु—

यह सम्मति वही व्यक्ति दे सकते हैं, जिन्होंने माघ के जीवन का अध्ययन करने के साथ-साथ उनके काव्य का भी अध्ययन किया है। हमने देखा है कवि ने वीर और शृङ्गार दोनों को भक्ति में पर्यवसित किया है। राजाश्रयी होते हुए भी महाकवि माघ अन्त में एक महान् भक्त के रूप में सामने आये हैं। सारा का सारा काव्य जिसको बनाने में या पूर्ण करने में उनकी युवावस्था और वृद्धावस्था का मूल्यवान् समय लगा श्री कृष्ण के चरणों में समर्पित है। युधिष्ठिर के रूप में, भीष्म के रूप में कवि ने अपने भक्त स्वरूप का परिचय दिया है और जिस प्रकार एक भक्त अपने आराध्य के विरोधियों को सहन नहीं कर सकता उसी प्रकार वह शिशुपाल का वध उनके भक्त हृदय की बहुत बड़ी विजय है। भक्ति के जो स्वरूप उनके महाकाव्य में आये हैं उनकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है।

(७) तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय :—

यह सम्मति तुलनात्मक है, तुलनात्मक आलोचना का सद्भाव प्रयोग भारत में इसी प्रकार से था। भारवि और माघ की तुलना के प्रसंग में यह बात स्पष्ट की गयी है कि माघ काव्य की रचना के पीछे भारवि की फैली हुई कीर्ति प्रेरणा के रूप में (प्रतिस्पर्धा के रूप में भी) काम कर रही थी। भारवि के वस्तु विन्यास, उनकी शैली, तथा उनसे ही पात्रों के द्वारा माघ ने शिशुपाल के रूप में मानो किरातार्जुनीय का एक संशोधन प्रस्तुत किया, ऐसा संशोधन जो विद्वानों को मान्य हुआ। इस सम्मति में एक उपमा के द्वारा भारवि की श्री विहीनता की ओर संकेत किया गया है। वह उपमा है—सूर्य की दीप्ति माघ मास के पूर्व ही प्रखर होती है, माघ के आने पर वह मन्द पड़ जाती है। सहृदय अनुमान कर सके हैं कि इस उपमा का औचित्य माघ और भारवि की रचनाओं के साथ ठीक बैठता है अथवा नहीं।

(८) माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते—

इस सम्मति में माघ की उद्भट विद्वत्ता की ओर संकेत है। सामान्य कवि उनके सामने टिक नहीं सकते, सामान्य विद्वान् उनकी कविता को समझने का दम्भ अधिक देर तक नहीं रख सकते। जहाँ माघ पहुँच जाते वहाँ विद्वानों में, कवियों में, एक खलबली सी मच जाती है।

(९) माघेनविघ्नोत्साहानोत्सहन्ते पदक्रमे—

माघ का पदलालित्य अपनी प्राँजल और तीव्र गति से काव्य के आरम्भ से अन्त तक चलता है। माघ की शक्ति के कारण कोई विघ्न बाधा सामने आने का भी साहस नहीं करती। इस सम्मति मे सचाई है। जहाँ पदलालित्य का विचार किया गया है वहाँ इस सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश मिल सकेगा। यह सम्मति 'माघे सन्ति त्रयो गुणा.' के एक अश का विशेष रूप से कथन है।

(१०) माघः शिशुपालवध विदधन् कविमदवध विदधे—

इस सम्मति मे जहाँ माघ को कवियो मे विजयी बताया है, वहाँ माघ कालीन कविता की ओर भी सकेत किया गया है। माघ के युग मे कवि प्रायः प्रतिभाहीन, विद्वत्ता से दूर, और श्रमभीरु होते थे, तभी तो इस युग मे कवि मानी तो मिलते है, पर कवि नही। जब माघ कविता के क्षेत्र मे आये तो जैसा 'माघेनैवच माघेन कम्प कस्य न जायते' इस सम्मति की व्याख्या मे कहा गया है, कवियो को कप कपी होने लगी। उनके सामने नतमस्तक होकर रहने मे ही उनको अपना भला दीखने लगा।

इन दसो सम्मतियो से माघ के सम्बन्ध मे विद्वान् आलोचकों ने ये बाते बतायी है—

क—माघ की रचना मे औपम्य, अर्थगाम्भीर्य और पदलालित्य के सुन्दर समन्वय है।

ख—माघ बडे परिश्रमी कवि है, वह विघ्नो से घबडाना नही जानते।

ग—माघ भक्त कवि है।

घ—माघ काव्य शास्त्र-सम्मत लक्षणो से युक्त हैं।

च—भारवि की तुलना मे ही नही दूसरे कवियो की तुलना मे भी माघ का स्थान प्रशंसनीय है।

छ—माघ के पाण्डित्य से कवि और विद्वान् पराभूत है। माघ को समझने के लिए विद्वत्ता और जीवन व्यापी अनुभव चाहिए।

ज—माघ का भाषा पर अमित अधिकार है।

———

संस्कृत के महाकवियों में माघ का स्थान

सस्कृत का कविता-साहित्य एक महासागर है। लगभग तीन सहस्र वर्षो से हजारो कवियो की रचनाएँ इस महासागर मे आकर मिलती रही है। आश्चर्य तो यह है कि उपलब्धा महाकाव्यो की सख्या अधिक से अधिक तीन अको मे गिनी जा सकती है। भारतवर्ष जैस महान् और पुराना देश, उसकी ऊँची सस्कृति, वैज्ञानिक भाषा, ऐसी भाषा जिसमे मानव के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल विचार, भाव तथा कर्म के प्रकाशन के लिए न केवल अटूट शब्द भडार ही है, वरन् नवीन शब्दो की निरन्तर रचना करते रहने की पूरी क्षमता भी है और एक ओर इस बात को देखकर और दूसरी ओर महाकाव्यो की कमी को देखकर केवल यही कहा जा सकता है हमारे काव्य साहित्य के सहस्रो ग्रथ ऐतिहासिक घटनाओ के थपेडो से नष्ट हो गए। पर फिर भी तो कुछ हमारे पास बचा है वह हमारे अतीत के आभामय स्वरूप की एक ऐसी झाँकी तो प्रस्तुत कर ही देता है, जिससे हम अपने आपको दूसरी जातियो के सामने कम-से-कम हीन तो नही मान सकते। हमारे आत्म सम्मान के लिए प्राप्त यह थोड़ी सी सामग्री भी पर्याप्त है।

जहाँ तक काव्य के क्षेत्र मे महाकवि माघ के स्थान का सम्बन्ध है, महाकाव्यो की सख्या की कभी इस स्थान के निर्धारण मे विशेष कठिनाई नही है। प्राप्त महाकाव्यो मे पाँच महाकाव्यो के नाम विद्वानो के द्वारा बडे आदर के साथ लिए जाते है। वे महाकाव्य है— रघुवश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध और नैषधीय चरित। इनमे दो महाकाव्य महाकवि कालिदास के, एक महाकवि भारवि का, एक महाकवि माघ का और एक महाकवि श्री हर्ष का है। कालिदास की रचना शैली मे और शेष तीन की रचना शैली मे भेद है, उसी भेद को ध्यान मे रखते हुए काव्य मे भाव-पक्ष के स्थान पर कलापक्ष की प्रमुखता को पसन्द करने वाले विद्वानो ने इन पाँच महाकाव्यो मे से भी किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध और नैषधीय चरित को चुनकर इनको वृहत्त्रयी की सज्ञा दी है।

एक तरह से तो विद्वानो ने ये दो श्रेणी बनाकर माघ को उनमे से एक श्रेणी मे स्थान दे दिया है। सरलता और रस-प्रधानता इन दो आधारो से मिलकर पहली श्रेणी बनती है, और जटिलता तथा अलकार प्रधानता दूसरी श्रेणी के प्रमुख आधार है। जटिलता का सम्बन्ध विद्वत्ता तथा बहुज्ञता के प्रौढ प्रकाशन से है। स्पष्ट है कि माघ के महाकाव्य मे दूसरी श्रेणी की रचना का सद्भाव है।

अब भारवि, माघ और श्रीहर्ष इन तीनों मे महाकवि माघ का स्थान कौन सा है यह

विचार करना है। भारवि पूर्व के कवि हैं और हर्ष बाद के। बताया जा चुका है कि भारवि माघ से बढ़कर हैं और यह भी बताया जा चुका है कि श्री हर्ष की शैली पर माघ का पर्याप्त प्रभाव है। जिस प्रकार भारवि से आगे बढ़ सकने के लिए माघ को अवसर था, श्री हर्ष को भी माघ से आगे बढ़ने के लिए वैसा ही अवसर था। इस अवसर का उपयोग एक विशाल महाकाव्य की रचना में तो हो गया, पर यह रचना श्री हर्ष की मौलिक प्रतिभा को प्रकाशित न कर सकी।

अतः यह भी सरलता से निष्कर्ष निकल आता है कि महाकवि माघ वृहत्त्रयी में सर्व श्रेष्ठ हैं।

इस निर्णय पर आने में विद्वान आलोचकों की सम्मतियाँ जिनका उल्लेख इससे पूर्व के प्रकरण में हो चुका है, बड़ी सहायक है। सबसे पहली बात तो यह है कि कवियों में कालिदास का सर्वप्रथम स्थान निश्चित होने के साथ ही साहित्य-शास्त्र द्वारा सम्मत लक्षणों से पूर्ण माघ का ही महाकाव्य है। लक्षणों की इतनी सम्पूर्णता दूसरे महाकाव्यों में नहीं है। दूसरी बात यह है कि माघ अपने युग के सबसे बड़े चाहे न हों, पर बड़े प्रतिनिधि अवश्य हैं। उनका महा काव्य तो निश्चय उस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है, ऐसी रचना जिसमें रस पक्ष, कला पक्ष और पाण्डित्य पक्ष तीनों की बड़ी जबर्दस्त अन्विति उनके कवि-मद से बढ़ाने वाली न होकर अपने आराध्य के प्रति समर्पण के भाव से लिखे हुए है। तीसरी बात यह है कि आगे आने वाले संस्कृत कवि ही नहीं, अपभ्रंशों तथा उत्तर भारतीय आधुनिक आर्य भाषाओं के आरम्भिक महा कवियों की रचना शैली पर जितना व्यापक प्रभाव महाकवि माघ का पड़ा है, उतना किसी दूसरे महा कवि का नहीं पड़ा।

इन सब बातों को सन्तुलित दृष्टि से देखने पर यदि कोई यह निर्णय दे दे कि महाकवि माघ कवियों में महा कवि कालिदास के बाद प्रथम स्थानीय है तो इसमें हमारी दृष्टि में कोई अनौचित्य नहीं है। वैसे आलोचकों ने उनके महा काव्य को प्रथम स्थान भी दिया है, उसके लिए उनके पास सबल प्रमाण और प्रबल युक्तियाँ भी हैं, पर कालिदास के काव्यों की आभा कुछ और ही है, कहीं-कहीं कालिदास की उक्तियों से चाहे माघ की उक्तियाँ विशिष्ट हैं, पर सर्वांगीण दृष्टि से (महा काव्य की आलोचना के लिए तो उसके स्वरूप के अनुरूप सर्वांगीण दृष्टि की आवश्यकता है।) यदि देखें तो माघ को कालिदास से बढ़कर कह देना न केवल कालिदास के प्रति अन्याय है, वरन् वह तो सहृदयता से आप्लावित मानवता का भी तिरस्कार है। ऐसा तिरस्कार जो आत्म-प्रवंचना से प्रसूत होकर आत्मघात् के महा पाप में अवसित होता है।

प्रस्तुत विवेचना के आधार पर यह स्थिर होता है कि महाकवि कालिदास के बाद संस्कृत के महा कवियों में महा कवि माघ का स्थान न केवल सर्व प्रथम है, अपितु सर्वश्रेष्ठ भी है।

चाहे महा कवि माघ युगानुसारी थे, युग-निर्माता नहीं, पर समय और परिस्थितियों ने उन्हें युगान्तरकारी बना ही दिया।

(परिशिष्ट भाग)

१

महा काव्य की परम्परा

विश्व-साहित्य में संस्कृत-साहित्य ही अति प्राचीन है। इस साहित्य में सर्व प्रथम यदि कहीं पर हमको काव्य की झलक दिखलाई पड़ती है तो वह ऋग्वेद में है जिसमें मन्त्र के रचयिता कहीं-कहीं कवि का रूप पा लेते हैं। वैदिक साहित्य, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में भी कहीं-कहीं पर काव्य का सा आनन्द आता है। इतिहास और पुराणों के आख्यानों में सर्वत्र तो नहीं पर कई स्थलों में कविता का स्वरूप प्रकट हुआ है। वैसे पुराणों की रचना छन्दों में हुई है, पर उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। उनका उद्देश्य दूसरा है। संस्कृत का आदि काव्य या महाकाव्य तो वाल्मीकि कृत रामायण ही है। रामायण की भाँति महाभारत में भी कहीं-कहीं पर काव्य शैली की आभा देखने को मिलती है किन्तु उसका भी मुख्य विषय काव्य न होकर इतिहास ही है। इतिहास में महाभारत की गणना की गयी है। महाभारत में महा काव्य के समस्त लक्षण[1] घटित नहीं होते हैं किन्तु फिर भी वह एक महा काव्य जैसा है और अपने आप में पूर्ण एक समग्र साहित्य है।

---

(१) महाकाव्य के लक्षण अग्नि पुराण के अनुसार—

सर्गबन्धो महाकाव्यं आरब्धं संस्कृतेन यत्।
इतिहासकथोद्भूतं इतरं वा सदाश्रयम्॥
मंत्रदूतप्रयाणाजि नियतं नातिविस्तरम्।
शक्वर्याति जगत्यातिशक्वर्या त्रिष्टुभा तथा॥
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्राभिजनैश्चारुभिः समैः।
मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम्॥
अतिशक्वरिकाष्टाभ्यामेकसंकीर्णकैः परः।
मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः॥
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम्।
दूती वचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः॥
तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः॥
सर्ववृत्ति प्रवृत्तं च सर्वभावप्रभावितम्॥

आदि कवि वाल्मीकि से ही भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का श्रीगणेश हो जाता है। इस रामायण द्वारा भारतीय जीवन में असीम रस और जीवन का संचार हुआ है। रामायण राम राज्य का आदर्श चित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित करती है। इसमें रामायण से जो काव्य धारा निकली उसने विभिन्न काव्यों अथवा महा काव्यों रूपी स्रोतों में विभक्त होकर न केवल संस्कृत कविता को किन्तु प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कविता का रस-सिक्त किया है।

महाभारत के कर्त्ता व्यासदेव के भी प्रायः समस्त काव्य ऋणी हैं जिससे विभिन्न आख्यायिकाओं को लेकर काव्यकार अपने काव्य के लिए कथावस्तु लेते रहे हैं। महाभारत में व्यासजी ने जीवन के भौतिक पक्ष की असीम उन्नति को चित्रित करके उसकी नश्वरता तथा तथ्यहीनता को प्रदर्शित किया है। हिन्दू समाज की नैतिक, धार्मिक सामाजिक आदर्शों का इस महाभारत में बहुत सूक्ष्म तथा विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ को भारतीय संस्कृति का विश्वकोष भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। महाभारत में मानव जीवन की सुन्दरतम तथा पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः।
अतएव महाकाव्यं तत्कर्त्ता च महाकविः॥ (अ ३३, २४।३२)

महाकाव्य के लक्षण दंडी के काव्यादर्श के अनुसारः

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमन्यद्वापि सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्॥
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरं जनम्।
काव्यं कल्पोत्तरस्थायि जायेत सदलंकृति॥

महाकाव्य के लक्षण विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण के अनुसार—

सर्गबंधो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगार वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥

रामायण और महाभारत—

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का रामायण तथा महाभारत से होता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की जो रचना हुई वह प्रायः उपलब्ध नहीं है। कई शताब्दियों बाद अश्वघोष की रचना हमारे सामने आती है। अश्वघोष को कालिदास का परवर्ती कवि माना जाता रहा है किन्तु अब अधिकांश विद्वान् उन्हें कालिदास से पूर्ववर्ती मानते हैं। यह मान्यता अभी तक पूर्णतया खंडित नहीं हो सकी है कि वह कालिदास के परवर्ती महाकवि हैं।

महाकवि अश्वघोष ने दो महाकाव्यों की रचना की है। सौन्दरानन्द में १८ सर्ग हैं जिसमें बुद्ध के उपदेश से उनके कनिष्ठ भ्राता नन्द अपनी प्रिय पत्नी सुन्दरी तथा सांसारिक सुखों को त्यागकर बौद्धधर्म की दीक्षा लेते हैं। इस भाँति एक रोचक काव्य शैली में महाकवि ने बौद्धधर्म के उच्च सिद्धान्तों को समझाया है।

बुद्धचरित २८ सर्गों का महाकाव्य है जिनमें केवल १७ ही उपलब्ध हैं। इनमें गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र का विस्तृत वर्णन है, यत्र तत्र बौद्ध उपदेश तथा सिद्धान्तों का भी प्रस्पण है। काव्य की दृष्टि से इस महाकाव्य के पहले पाँच, तथा आठवाँ सर्ग और तेरहवें सर्ग के मार-विजय का कुछ भाग बहुत ही सुन्दर है। शेष अंश धार्मिक तथा दार्शनिक बातों से इतना दब गया है कि वह सौन्दरनन्द को नहीं प्राप्त कर सका। अश्वघोष निःसन्देह एक महाकवि हैं।

अङ्गानि सर्वेऽपिरसाः सर्वे नाटकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गा : : स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्तेभाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
संध्यासूर्येन्दुर जनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तु वनसागराः।
संभोगविप्रलंभौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना अन्यकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

यदि अश्वघोष के पूर्ववर्तित्व की बात पूर्णतया खंडित हो जाय तो कालिदास ही प्रथम तथा सर्वप्रमुख महाकवि हैं। कालिदास का स्थितिकाल आज तक भी विद्वानों के लिए एक जटिल एवं विवादग्रस्त[1] विषय है।

रघुवंश और कुमारसंभव कालिदास के दो महाकाव्य हैं। कुमारसंभव की रचना रघुवंश के पूर्व की है। कुमार संभव में १७ सर्ग हैं किन्तु ऐसा भी माना जाता है कि कालिदास ने केवल ८ सर्ग ही बनाये शेष नवसर्ग किसी बाद के कवि के द्वारा जोड़ दिये गये हैं। कुमारसम्भव में कवि ने शिव पार्वती की मानवीय रूप में प्रणय-लीला दिखलायी है। इसमें हिमालय का सजीव वर्णन हुआ है, फिर तीसरे सर्ग का बसन्त वर्णन, चौथे सर्ग का रति-विलाप और पांचवें सर्ग का पार्वती ब्रह्मचारी संवाद बहुत ही मार्मिक हैं। इस महाकाव्य में कविकालिदास ने यौवन की सरस क्रीडा का वर्णन किया है।

रघुवंश का क्षेत्र विशाल है जिसमें कालिदास की सम्पूर्ण कला की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इतिहास के कई दृश्य पाठकों के सम्मुख आये हैं। कहा जाता है रघुवंश में २५ सर्ग थे किन्तु आज १९ सर्ग ही प्राप्त हैं।

अश्वघोष और कालिदास के महाकाव्यों की शैली अत्यन्त सरल तथा मधुर हैं। उपमाएँ बड़ी सुन्दर और रोचक हैं। स्थान-स्थान पर प्राकृतिक वर्णन बड़े सजीव हैं। भाषा की सरलता, भावों की कोमलता, वर्णन की सजीवता देखने योग्य है। ये महाकाव्य वैदर्भी शैली के है जिनमें भाव और भाषा दोनों का मधुर सामंजस्य है। कथानक सन्तुलित रूप से आगे बढ़ता है।

कालिदासोत्तर महाकाव्य—

अश्वघोष तथा कालिदास के पश्चात् के महाकाव्यों का कथानक अधिकतर रामायण अथवा महाभारत से लिया गया है। महाकाव्य में अभी तक तो मानव-जीवन का विस्तृत

१. जनश्रुति के आधार पर ये विक्रम के नवरत्नों में से थे—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टखर्पर कालिदासाः।
ख्यातो वाराहमिहिरो नृपतेः सामायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

कालिदास के नाटकों से भी इस बात की पुष्टि होती है। अपने द्वितीय नाटक विक्रमोर्वशीय के नाम द्वारा तथा उसकी कतिपय उक्तियों, जैसे दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान्, अनुत्सुकः खलु विक्रमालंकारः। के द्वारा कालिदास अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य का नाम व्यंजित करते हैं। अतः कालिदास के स्थितिकाल का प्रश्न सम्राट् विक्रमादित्य के स्थितिकाल से पूर्णतया सम्बद्ध है। पर यह विक्रम कौन थे इसमें अभी तक सन्देह है। विभिन्न मतों से कालिदास की सत्ता छठी शताब्दी से प्रथम शताब्दी ईस्वी के बीच में कहीं है। कालिदास नामधारी कवि अनेक हुए हैं, इनमें से कौन से कालिदास विक्रम के साथ के हैं, यह भी एक विचारणीय विषय है। यहाँ हमारा तात्पर्य उन कालिदास से है जिन्होंने रघुवंश और कुमारसंभव महाकाव्यों की रचना की थी। सुना जाता है यह कालिदास चन्द्रगुप्त के समकालीन थे।

सर्वांगीण चित्रण की प्रमुखता से होता था किन्तु अब महाकाव्य केवल पांडित्य अथवा कला-प्रदर्शन का आधार बन गया। बाद के महाकाव्यों में शृङ्गारिकता अत्यधिक बढ़ी और भाषा भी क्लिष्ट तथा दीर्घ समासों से युक्त हो गयी। पूर्व के महाकाव्यों की सरलता तथा स्वाभाविकता के स्थान पर पीछे के महाकाव्यों में क्लिशष्टता और कृत्रिमता अधिकतर लक्षित होने लगी। अलंकार, श्लेष-योजना एवं शब्द-विन्यास चातुरी प्रदर्शित करना ही मानो उनका कार्य रहा। काव्य में धीरे-धीरे बहुज्ञता का प्रदर्शन फैलता गया। राजाओं के यहाँ कवियों का राज्याश्रित होना इसका कारण था। राजाओं की रुचि के अनुसार उनके दरबारियों की रुचि भी बदली। काव्यों के रचयिता राजाओं के आश्रित कवियों ने भी अपने राजाओं को प्रसन्न करने के लिए कवित्व के स्थान पर वैदग्ध्य का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया। राजा स्वयं विद्वान् और साहित्यिक रुचि के होते थे अतः उनमें वास्तविक गुणों की परीक्षा करने की क्षमता होती थी। धीरे-धीरे कविता के लक्षण और नियम बढ़ने लगे। उनका कड़ाई से पालन होने लगा। कविता का स्वरूप बदलता गया। काव्य मानों सूक्तियों के संग्रह बनने लगे।

एक और बात देखने योग्य हुई। साधारणतः संस्कृत कवियों की दृष्टि अब वर्णन प्रधान हो गई। वे कथानक के उस पहलू को लेने लगे जो उनको चन्द्रोदय का, वन बिहार का, बसन्त शोभा का, स्त्रियों की सुन्दरता का या केलि कलाप का ज्ञान करने में सहायक हो सके। भारवि और माघ तक संस्कृत-काव्यों में अर्थ—गाम्भीर्य का प्रयत्न बना रहा परन्तु माघोत्तर कालीन कवियों में क्रमशः व्याकरण और अलंकार शास्त्र आदि का ज्ञान प्रधान होता गया। बाह्य रूप प्रधान बनता गया। वक्तव्य वस्तु गौण, बाह्य रूप अधिक आकर्षक बनता गया और आन्तरिक सौन्दर्य की शून्यता होने लगी। प्राचीन कवियों में सौषम्य रक्षा की चिन्ता रहती थी, परवर्ती कवियों में वह उत्तरोत्तर कम होती गई।

कालिदास के बाद भारवि का नाम महाकवियों की गणना में आता है। भारवि की प्रसिद्धि का कथानक महाभारत के वन पर्व से लिया गया है। संस्कृत काव्यों की बृहत्त्रयी (किरात, शिशुपालवध और नैषध) में इसका नाम ऐतिहासिक क्रम से प्रथम आता है। यह महाकाव्य ओजः प्रधान है। इसमें १८ सर्ग हैं। किरातार्जुनीय में प्रधान रस वीर है। शृंगार तथा अन्य रस गौण हैं। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्री' शब्द से हुआ है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिमश्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त है। यह महाकाव्य अर्थ गौरव[1] (अल्प शब्दों में

---

(१) भारवि के अर्थ गौरव और शैली सौन्दर्य के प्रदर्शनार्थ कुछ उद्धरण नीचे के श्लोकों में दिये जा रहे हैं—

राजा की कुशलता का परिचायक श्लोक देखिये—

कृतप्रमाणस्य महीम्महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्यमनो न हि प्रियम्प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषाहितैषिणः॥

नीचे के श्लोक में दुर्योधन की सुन्दरता प्रशंसा है—

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोप विजिह्ममाननम्।
गुणानुरोगेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्॥

विपुल अर्थ का सन्निवेश) के लिए प्रसिद्ध है। महाकाव्य का कथानक शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने—इन्द्र तथा शिव के लिए की गई तपस्या है। किरातार्जुनीय के आठवें, नवें, तथा दसवें सर्ग मे कई सरस स्थल है। आलम्बन तथा उद्दीपन दोनो रूपों मे प्रकृति का सुन्दर वर्णन इसमे है। इस काव्य मे सूक्तियाँ, व्यग्य तथा पाडित्य भरपूर है। भारवि का स्थिति काल ६०० ई० के आस-पास है।

भट्टिकाव्य—महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य की रचना श्रीधरसेन के राज्य काल मे सौराष्ट्र की वल्लभी नगरी मे की। भट्टि महाकाव्य मे २२ सर्ग है जिसमे रामायणी कथा का सारगर्भित रूप से दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि व्याकरण के नियमो का विशदीकरण ही महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य है फिर भी इससे कथा मे कही शिथिलता या अरोचकता आई हो ऐसा प्रतीत नही होता। कविता का भी अभाव नही। अवसर प्राप्त होते ही कवि की कवित्वशक्ति ने भी अपना चमत्कार प्रदर्शित किया है। अलकारो के भेदोपभेद १०वें सर्ग मे है। यह एक शास्त्र-काव्य है।

प्रिय दर्शन से विकृत आत्मचेष्टा का रमणीय वर्णन कैसा है

प्रियेऽपरा यच्छति वाचमुन्मुखी निबद्धदृष्टि. शिथिलाकुलोच्चया।
समादधे नांशुकमाहितं वृथा विवेद पुष्पेषु न पाणिपल्लवम्॥

सश्लिष्ट रूपयोजनात्मककल्पना का यह श्लोक देखिये—

मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः शिखाः पिशङ्गी. कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति॥४।३६॥

दिन का अन्त समय है रात्रि का उधर आगमन है। सूर्यास्त और चन्द्रोदय का यह वर्णन—

अंशुपाणिभिरतीव पिपासुः पद्मजं मधु भृशं रसयित्वा।
क्षीबतामिव गतः क्षितिमेष्यल्लोहितं वपुरुवाह पतङ्गः॥

रात्रि और चन्द्रमा का दूसरा और नयनाभिराम दृश्य देखिये—

संनिधातुमभिषेकमुदासे मन्मथस्य लसदंशुजलौघः।
यामिनी वनितया ततचिह्नः सोत्पलो रजतकुम्भ इवेन्दुः॥

शिशिरवर्णन मे ऋतु संहार का स्मरण हो आता है—

कतिपयसहकारपुष्परम्यस्तनुतुहिनोऽल्पविनिद्रसिन्दुवारः।
सुरभिमुखहिमागमान्तशंसी समुपययौ शिशिर. स्मरैकबन्धुः॥

जलविहार का वर्णन भी कैसा शोभनीय है—

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः॥७४॥

भारवि ने दीर्घकाय समासों का प्रयोग नही किया है। दुर्योधन के प्रति जनता की राज भक्ति कैसी थी उसका सुबोध वर्णन देख लीजिये—

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भेदवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्॥१।१९॥

भट्टि को श्रीभर्तृहरि के नाम से भी लोग कहते हैं। इनका स्थितिकाल ६५० ई० के लगभग माना जा रहा है। शिलालेखों में श्रीधर सेन नाम वाले चार राजाओं का उल्लेख आता है, प्रथम ५०२ ई० के हैं, द्वितीय ६१० ई० के हैं जिनके शिलालेख में किसी भट्टि नामक विद्वान् को कुछ भूमि देने का उल्लेख है और अन्तिम राजा का सन् ६४१ ई० का उल्लेख है। अतः यह सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में अवश्य होंगे।

जानकीहरण—कुमारदास ही जानकीहरण महाकाव्य के रचयिता हैं। सिंहल की जनश्रुति के आधार पर ५१७।५२६ ई० तक ये वहाँ के राजा रहे। इनके महाकाव्य में काशिकावृत्ति (६५० ई०) का उल्लेख है, और वामन ८०० ई० ने अपने ग्रन्थ में जानकी-हरण से उद्धरण दिये हैं, अतः इनका स्थितिकाल ६५० ई० से ७५० ई० के मध्य ही होना चाहिये।

जानकीहरण महाकाव्य २५ सर्गों में है किन्तु उपलब्ध केवल १५ सर्ग ही हैं। वर्णन शैली सुन्दर है। वैदर्भी रीति में है। अनुप्रास इनको प्रिय प्रतीत होते हैं। कुमार दास ने कालिदास को अपना आदर्श माना है।

शिशुपालवध—शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ हैं। उनका स्थिति काल सन् ७१४ से ८८० तक का हो सकता है। इनका जन्म सन् ७४४ से ८८० ई० के मध्य में होना चाहिये। महाकवि माघ तक आते-आते महाकाव्यों के स्वरूप में परिवर्तन-सा दीख पड़ने लगा। कालिदासोत्तर काव्य में जो पांडित्य प्रदर्शन प्रवृत्ति और कलात्मक सौष्ठव का पक्ष दीख पड़ता है वह माघ के युग में आकर पूर्ण विकास को पा गया। भट्टि वैयाकरण तथा अलंकार शास्त्री थे। महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में कालिदास की भावतरलता, भारवि की कलाप्रवीणता और भट्टि के व्याकरण पांडित्य तथा अलंकार कौशल तीनों का अद्भुत् समन्वय प्रस्तुत किया।

शिशुपाल वध में २० सर्ग हैं। कथानक यद्यपि छोटा है किन्तु २० सर्गों में जो सजीव वर्णन हुए हैं उनमें अलंकारों की छटा तथा कल्पना की उड़ान देखने योग्य हैं। यह वीर रस का काव्य है, शृङ्गार इसका अंग बनकर आया है तथा अन्य रसों के भी छींटे यत्र तत्र हैं। वीर रस की व्यंजना को देखने पर चरितकाव्यों का स्मरण हो आता है। माघ चरित-कवि तो नहीं हैं किन्तु चरित काव्यों (विक्रमांक देव चरित, नवसाहसांक चरित, राष्ट्रौढवंश महा-काव्य) की वर्णन परम्परा के बीज इसमें विद्यमान हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य में प्रकृति का वर्णन भारवि से बहुत ही अधिक सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने मानवोचित शृङ्गारी चेष्टायें प्रकृति के उपकरणों में ला कर भरदी हैं। अप्रस्तुत विधानों में भी उन्होंने अपने शृङ्गारी पांडित्य का तथा अलंकृत उक्तियों का अच्छा परिचय दिया है। माघ का कोई श्लोक ऐसा नहीं है जिसमें अलंकार न हो और कोई अलंकार ऐसा नहीं है जिसमें चमत्कार न हो, रस न हो, औचित्य न हो।

माघ के समय तक आते-आते कविता चमत्कार-प्रधान हो गयी थी। ये कवि शब्दों के चमत्कार पर अधिक ध्यान देने लगे थे। महाकवि माघ ने आने वाले कवियों का पथ-प्रदर्शन इस रूप में किया। श्री हर्ष, जिन्होंने नैषधीय चरित लिखा है, तक ये बातें चलती रहीं। श्री हर्ष के पश्चात् महाकाव्य की परम्परा प्रायः क्षुण्ण हो गयी।

परिशिष्ट २

शिशुपालवध महाकाव्य के छन्द और अलंकार

महाकवि माघ का वैदग्ध्य छन्दों के कुशल प्रयोग में भी स्पष्ट है। शिशुपालवध महाकाव्य में श्लोकों की कुल संख्या १६८४ है। मल्लिनाथ ने पन्द्रहवें सर्ग में ३४ श्लोकों को तथा कविवंश वर्णन के ५ श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। इस सम्बन्ध में पहले विचार हो चुका है। प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् कर दिया जाय तो यह संख्या १६४५ रह जाती है। इस महाकाव्य में कौन-कौन से छंद कितनी बार आये हैं, यह नीचे दिये हुए विवरण से छन्दवार संख्या का परिचय मिल जायगा और आगे विवरण में सर्ग वार संख्या का परिचय मिलेगा—

क्रम छन्द नाम	संख्या	क्रम छन्द नाम	संख्या
१. अनुष्टुप	२२६	१६. मंजुभाषिणी	६८
२. उपजाति	१८५	१७. उद्गता	१२६
३. स्वागता	९२	१८. शार्दूलविक्रीडित	५
४. वसंततिलका	८९	१९. मंदाक्रान्ता	३
५. रथोद्धता	८६	२०. इन्द्रवज्रा	२
६. प्रमिताक्षरा	८७	२१. मत्तमयूर	२
७. औपच्छन्दसिक	८१	२२. दोधक	१
८. शालिनी	८१	२३. अतिशायिनी	१
९. वैतालीय	७९	२४. महामालिका	१
१०. पुष्पिताग्रा	७८	२५. हरिणी	१
११. वंशस्थ	७५	२६. रमणयिक	१
१२. प्रहर्षिणी	७६	२७. स्त्रग्धरा	१
१३. मालिनी	७२	२८. सर्वतोभद्र	१
१४. द्रुतविलंबित	७१	२९. मुरजबन्ध	१
१५. रुचिरा	६८	३०. गोमूत्रिकाबंध	१

क्रम छन्द नाम	संख्या	क्रम छन्द नाम	संख्या
३१. अर्धभ्रमक	१	४१. जलोद्धतगति	१
३२. वैश्वदेवी	१	४२. आर्यागीति	१
३३. समुद्ग	१	४३. भ्रमरविलसित	१
३४. मेघविस्फूर्जिता	१	४४. पृथ्वी	१
३५. धृत श्री पंचकावली रुचिरा	१	४५. वंशपत्रपतित	१
३६. पथ्या	१	४६. शिखरिणी	१
३७. जलधरमाला	१	४७. प्रभा	१
३८. कुररीरुदिता	१	४८. तोटक	१
३९. स्रग्विणी	१	४९. कुटजा	१
४०. वियोगिनी	१		कुल संख्या १६८४

परिशिष्ट ३

शिशुपालवध का अलंकार

कालिदास और अश्वघोष के पश्चात् के कवियों में शृङ्गारिक वर्णन की ओर प्रवृत्ति शनैः-शनैः बढ़ती गई। लोग ठाट-बाट से जैसे-जैसे रहते गये उनके प्रत्येक कार्य में भी जैसे ही ठाट-बाट और शान-शौकत का प्रदर्शन होने लगा। महाकवि माघ का युग राजपूत काल का था जिसमें मांडलिक गणतन्त्र राजाओं का आधिक्य शृङ्गारिक को ही प्रधानैता दी जाती थी। जनता में भी यह शृङ्गार भावना बढ़ने लगी। शान-शौकत के लिए एक विशेष प्रकार का मान प्रचलित हुआ। फलतः कवियों की रचनाओं में भी अलंकारों का प्रयोग बढ़ने लगा। भारवि, दण्डी और बाण कवियों ने अलंकृत रचना का मनोहर स्वरूप प्रस्तुत किया। माघ ने भी अपनी कविता कामिनी को अधिक से अधिक सुन्दर दिखाने के लिए और बातों के साथ-साथ अलंकारों से सुसज्जित किया। विकृत अथवा बोझल नहीं। उनकी रचना में प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का समावेश हो गया है। साथ में दिये हुए विवरण से स्पष्ट उनकी अलंकार-सज्जा का सर्गवार परिचय मिल जायगा।

प्रथम सर्ग :—

छन्द:—

(१) वंशस्थवृत्त इस सम्पूर्ण सर्ग में है।
(२) पुष्पिताग्रा—७४
(३) शार्दूलविक्रीडितम्—अन्त में है।

अलंकार :—

(१) अधिक और विरोध अर्थालंकार, वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास शब्दालंकार—१.
(२) पदार्थ हेतुक काव्यलिंग—३
(३) व्यतिरेक—२, २७
(४) उपमा—६, १६
(५) तद्गुण—६
(६) छेकानुप्रास व वृत्यनुप्रास की संसृष्टि—११
(७) उत्प्रेक्षा—१२, २२, ६०
(८) अतिशयोक्ति—१३, २३, ६२, ६६
(९) अर्थान्तिरन्यास—१४, १७, ६७, ७२
(१०) निदर्शना—१६
(११) पदार्थ हेतुक, काव्यलिंग तथा उपमा के अंगागिभाव का संकर—२४
(१२) उपमा और अतिशयोक्ति की संसृष्टि—२५
(१३) वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग—२६
(१४) श्लेष—२८, ५५
(१५) श्लिष्ट परंपरित रूपक—३४
(१६) छेकानुप्रास—३५
(१७) विरोधाभास—३६
(१८) प्रतिवस्तूपमा—३८
(१९) श्लिष्ट परंपरित रूपक तथा उपमा का अंगागिभाव संकर—३९
(२०) पदार्थ हेतुक काव्यलिंग—४१
(२१) परिवृत्ति—५०
(२२) समुच्चय—५१
(२३) शब्द श्लेष—५३

(२४) विषम—५६, ६५
(२५) विरोध—५७
(२६) समासोक्ति—५८, ६३
(२७) अतिशयोक्ति तथा वृत्यनुप्रास—७४
(२८) निदर्शना, उपमा, अपह्नव—७५ ।

दूसरा सर्ग :—

छंद :—

(१) इस सर्ग में अनुष्टुप् छन्द है ।
(२) औपच्छन्दसिक वृत्त—११६
(३) द्रुतविलंबित—११७
(४) मालिनी छन्द अन्त में है ११८

अलंकार :—

(१) रूपक—३, ८९, ९२, ११७
(२) उत्प्रेक्षा—४, ६७
(३) उपमा—५, १०,१८,२४,२८,२९,३३,३९,५०,७२,७८,८४,८६,८७,९१
(४) प्रतिवस्तूमा—८.
(५) अर्थान्तरन्यास—१२,१३,३५,४०,५१,६२,६५,७०,८०,८५,१००,१०४
(६) उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि—१४
(७) विरोधाभास—१६
(८) असंबंध में संबंध रूप अतिशयोक्ति—१७
(९) निदर्शना—१९, ४२
(१०) तद्गुण—२०
(११) तद्गुण तथा अपह्नव का संकर—२१
(१२) दृष्टान्त—२३, २७, ३४, ५४, ८३
(१३) विशेष तथा अतिशयोक्ति—२५
(१४) दृष्टान्त शब्द के आ जाने से उपमा अलंकार हो गया है एवं पुनरुक्ति के होने से एकावली—३५
(१५) रूपक तथा अर्थान्तरन्यास की संतुष्टि—३८
(१६) व्यतिरेक,४६, ४८
(१७) अप्रस्तुतप्रशंसा, ४९, ५३
(१८) समासोक्ति, ५२
(१९) पर्यायोक्ति, ६३
(२०) श्लेषानुप्राणित, उपमा, ७४, ८९, ९७

(२१) परिणाम, ७७
(२२) पूर्णोपमा, ८०
(२३) अतिशयोक्ति, ८२
(२४) श्लिष्ट परंपरित रूपक ६३, १११
(२५) काव्यलिंग, १०७
(२६) दीपक, १०६
(२७) रूपक और अनुप्रास, ११८

तृतीय सर्ग—

छन्द—

(१) उपजाति (इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण) समस्त सर्ग में है।
(२) पंचकावली रुचिरा अथवा धृत श्री अन्त में।

अलंकार—

(१) उपमा, १,४,५६,७५
(२) निदर्शना औरअतिशयोक्ति, ३
(३) उत्प्रेक्षा, ५,७,६.१०,२३,२६,३५,४०,४१,४२,४६,४६,७३,७७, ८
(४) अतिशयोक्ति, ६,८,१२,१३,१४,२५,३८,४४,५८,५६
(५) समासोक्ति और उत्प्रेक्षा का संकर, १५
(६) काव्यलिंग—१६,५२,७६,८१
(७) श्लेषानुप्राणित उपमा—२०,३६,६२
(८) समासोक्ति—२८
(९) स्वभावोक्ति—३०
(१०) अर्थान्तरन्यास—३१
(११) काव्यलिंग—३२,६१
(१२) उत्प्रेक्षा और रूपक का संकर—३६
(१३) सामान्य और उत्प्रेक्षा का संकर—४३
(१४) सामान्य और निदर्शना का संकर—४७
(१५) भ्रान्तिमान् ४८, ५१
(१६) विरोधाभास—५०
(१७) तुल्ययोगिता—५३, ५४, ६०
(१८) अर्थाश्लेष—५७
(१९) श्लेषोपमा—६३
(२०) मालोपमा—६५

(२१) स्वभावोक्ति—६६, ६८
(२२) उपमा तथा उत्प्रेक्षा का संकर—६९
(२३) श्लेष संकीर्ण उत्प्रेक्षा—७१
(२४) स्वभावोक्ति और अनुप्रास—८०
(२५) व्यतिरेक—८२

चतुर्थ सर्ग—

छन्द—

(१) उपजाति छन्द १ से १८ श्लोक तक, २७, ६३
(२) बसन्ततिलका—१९, २२, २५, ४९, ५२, ६१, ६४
(३) पुष्पिताग्रा—२०, २९, ५०, ५६
(४) द्रुतविलंबित—२१, ६०
(५) शालिनी छन्द—२३
(६) पथ्या छन्द—२४
(७) प्रहिषणी—२६, ५३, ५९
(८) जलधरमाला—३०
(९) द्रुतबिलंबित ३२
(१०) वंशस्थ—३३
(११) प्रमिताक्षरा—३६
(१२) प्रहर्षिणी—३८
(१:) मत्तमयूर—४४
(१४) दोधक—४५
(१५) स्कंधक अथवा अष्टगण आर्यागीति—४८
(१६) आर्यागीति—५१
(१७) जलोद्धतगति—५४
(१८) रथोद्धता—५७
(१९) भ्रमरविलसित—६२
(२०) मालिनी—६५, ६८
(२१) पृथ्वी—६६
(२२) वंशपत्रपतित—६७

अलंकार—

(१) उत्प्रेक्षा—२, ४, ७, २५, ३२, ४३, ४७, ५८
(२) यमक—३, ९, १२, १५, १८, २१, २७, ३३, ४२, ४५, ६३
(३) यमक और रूपक का संकर—६

(४) उपमा—५, ८, ११, ४६, ५१, ५६, ६१
(५) अतिशयोक्ति—१०, २२, ४१, ६७
(६) शब्दश्लेषमूलक विरोधालंकार—१२
(७) निर्दशना—१३, ५६, ६५, २०, २८
(८) तद्गुण—१४
(९) वृत्यनुप्रास—१६, ६८
(१०) काव्यलिंग—१७
(११) अर्थान्तरधीकृत् ध्वनि है, तुल्ययोगिता, समासोक्ति और श्लेष नहीं—१६
(१२) सद्गुणोत्थापित निदर्शना—२६
(१३) समासोकित—२६. ३४, ३७
(१४) श्लेषोत्थापित तुल्ययोगिता—४०
(१५) निदर्शना और काव्यलिंग का संकर—४४
(१६) अतिशयोक्ति से भ्रान्तिमान् की व्यंजना—४६
(१७) रूपक और उत्प्रेक्षा ५०
(१८) उत्प्रेक्षा, रूपक और निदर्शना का संकर—५२
(१९) भ्रान्तिमान और विभावना—५३
(२०) परिणाम—५४
(२१) उदात्त और यमक—६०
(२२) व्यतिरेक—६४
(२३) निदर्शना से अनुप्राणित प्रान्तिमान एवं उत्प्रेक्षा का संकर—६८

पाँचवाँ सर्ग—

छन्द—

(१) वसन्ततिलका छन्द सम्पूर्ण सर्ग में है।
(२) शिखरिणी छन्द अन्त में।

अलंकार—

(१) उपमा और यमक की संसृष्टि—१
(२) निदर्शना, उत्प्रेक्षा एवं श्लेष का संकर—२
(३) उत्प्रेक्षा से अनुप्राणित समासोक्ति—३
(४) अर्थश्लेष और उपमा का संकर—४
(५) स्वभावोक्ति—५, ५८, ५६, ६१, ६३
(६) अर्थान्तिरन्यास—६, ३७, ४१, ४२. ४४, १४, ४७. ४६
(७) उत्प्रेक्षा। १०, ३८. ३६, २०, ३१, ५२, ५४, ५५, ६६
(८) उपमा—१६, ३५, ५६. ५७, ६८

(९) उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास का संकर—९
(१०) तुल्ययोगिता—२१
(११) हेतूत्प्रेक्षा और काव्यलिंग का संकर—२६
(१२) समुच्चय और काव्यलिंग—२८
(१३) काव्यलिंग—२९
(१४) उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान का अंगागिभाव से संकर—३२
(१५) परिवृत्ति ४०
(१६) प्रकृतश्लेष—४५
(१७) रूपक—४६
(१८) काव्यलिंग—५०
(१९) विरोधाभाष प्रथम चरण में—५३
(२०) अतिशयोक्ति—६३

छठा सर्ग—

छन्द—

(१) द्रुतविलंबित छंद पूरे सर्ग में है
(२) प्रभावृत—६७
(३) स्वागतावृत्त—६८
(४) उपजातिवृत्त—६९
(५) औपच्छन्दसिक वृत्त—७०, ७२, ७५
(६) तोटकवृत्त—७१
(७) कुटजा छंद—७३
(८) उपजाति छंद—७४
(९) मत्तमयूरवृत्त—७६
(१०) वसन्तिलका—७७, ७९
(११) द्रुतविलंवित—७८

अलंकार—

यमक का प्रयोग तो सम्पूर्ण सर्ग में है।
(१) उपमा—४, ९, २८
(२) उत्प्रेक्षा–५, ६, ७, ८, ३४, ३६, ३९, ४४, ५३, ६२, ६४, ६५ ६६, ७८, ७९
(३) भ्रान्तिमान–११
(४) उपमा, अनुप्रास और यमक की विजातीय संसृष्टि–१२
(५) यमक–१३, १५, २२, २३, २६, ६९
(६) स्वभावोक्ति तथा अनुप्रास और यमक की संसृष्टि–१४

(७) अनुप्रास और यमक २०
(८) निदर्शना–२१
(९) दो उपमानों से अनुप्राणित उपमा—३५
(१०) मीलन–४०
(११) अर्थान्तरन्यास–४३, ६३
(१२) गुणहेतूत्प्रेक्षा तथा कारण से कार्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास का संकर–४५
(१३) उपमा और रूपक का संकर–४६
(१४) समाधि–४९
(१५) उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार का संकर–५०, ५४, ५८
(१६) उत्प्रेक्षा और रूपक की संसृष्टि—५१
(१७) रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा—५२, ७०
(१८) अतिशयोक्ति—५६
(१९) समुच्चय—७२
(२०) प्रेय—७४
(२१) रसवत् अलंकार—७५

सातवाँ सर्ग—

छन्द—

(१) पुष्पिताग्रा छन्द पूरे सर्ग में है।
(२) मंदाक्रान्ता छन्द है—७४
(३) मालिनी अन्त में

अलंकार—

(१) अर्थान्तरन्यास—१, २७, ३८, ४३, ५०, ५२, ६१
(२) काव्यलिंग—२, ५४
(३) तुल्ययोगिता तथा एकावली—३
(४) अपह्नव—६
(५) रूपक और उपमा का संकर—२३
(६) श्लेष—२३
(७) भ्रान्तिमान—२४
(८) रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा—२५
(९) गम्योत्प्रेक्षा—२६
(१०) काव्यलिंग और उत्प्रेक्षा—२८
(११) समासोक्ति—२९
(१२) हेतूत्प्रेक्षा—३१, ६०, ६४
(१३) व्यतिरेक—३९

(१४) स्वभावोक्ति—४८
(१५) काव्यलिंग तथा श्लेषोत्थापित अभेदरूपातिशयोक्ति का संकर—५५
(१६) तुल्ययोगिता—५६
(१७) रूपकानुप्राणित विभावना का संकर—५७
(१८) विरोधाभास—५६, ७०
(१६) उत्प्रेक्षाओं की संसृष्टि—६२
(२०) अर्थापत्ति—६८
(२१) पर्याय—६६
(२२) श्लेषानुप्राणित रूपक—७४
(२३) वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग—७५

आठवां सर्ग—

छन्द :—

(१) इस सर्ग में प्रहर्षिणी छन्द है।
(२) अतिशायिनीवृत्त अन्त में है।

अलंकार—

(१) स्वभावोक्ति—१
(२) अशियोक्ति—२
(३) हेतूत्प्रेक्षा - ३, ८, ६२
(४) क्रियास्वरूपोत्प्रेक्षा—४, २३
(५) विरोधाभास—५
(६) अर्थान्तरन्यास—७, १०, १२, ६०
(७) पूर्णोपमा—६
(८) असम्बन्ध में सम्वन्ध रूप अतिशयोक्ति—१३
(६) रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा की संसृष्टि—१४
(१०) श्लेष की प्रतिभा से उत्थापित अतिशयोक्ति से अनुप्राणित फलोत्प्रेक्षा—१५
(११) स्वरूपोत्प्रेक्षा—१६
(१२) श्लेष से उत्थापित उपमा - १७
(१३) श्लेषमूलातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास और महेभकुम्भश्रीभाजा में निदर्शना—१८
(१४) अर्थान्तिरन्यास—२०, ५५, ६६
(१५) अभेदमूलक अतिशयोक्ति, रूपक, समासोक्ति और अर्थान्तिरन्यास—२२
(१६) अर्थापत्ति—२४
(१७) सांग रूपक—२५, ४६
(१८) प्रतीयमान अभेदातिशयोक्ति से अनुप्राणित समासोक्ति का संकर—२६

(१६) अतिशयोक्ति तथा रूपक का संकर—२७
(२०) श्लेषमूलक अभेदरूपातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास —२६
(२१) सन्देह—२६
(२२) तुल्ययोगिता—३०
(२३) अतिशयोक्ति से उपजीवित सहोक्ति—३१
(२४) पदार्थहेतुक काव्यलिंग—३२
(२५) रूपकानुप्राणित प्रतीयमानोत्प्रेक्षा का संकार—३३
(२६) जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा—३४
(२७) अतिशयोक्ति से उत्थापित असंगति का संकर—३८
(२८) निरवयव रूपक ३६
(२६) गम्योत्प्रेक्षा—४०, ५०
(३०) विषम—४१
(३१) वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग—४३, ५६
(३२) श्लेषप्रतिभोत्थापित अतिशयोक्ति से अनुप्राणित विभवाना का संकर—४४
(३३) श्लेषमूलाभेदातिशोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास—४५
(३४) श्लेषमूलातिशोक्ति तथा हेतूत्प्रेक्षा की संसृष्टि—४८
(३५) उत्प्रेक्षा—४६, ६६, ७१
(३६) उत्प्रेक्षा और सामान्य अलंकार का संकर—५१
(३७) उपमा—५२, ६१
(३८) श्लेषानुप्राणित अतिशयोक्ति से उपजीवित उत्प्रेक्षा—५३
(३६) श्लेषमूलातिशयोक्ति तथा विशेष से सामान्य का समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का संकर—५४
(४०) उपमा और स्मरण…६४
(४१) अतिशयोक्ति और विषय…६५
(४२) काव्यलिंग ७०
(४३) विशेषोक्ति…६८

नवाँ सर्ग—

छन्द—

(१) प्रमिताक्षरा पूरे सर्ग में है।
(२) वंशस्थ…८६
(३) मंदाक्रान्ता…अन्तिम छन्द है।

अलंकार—

(१) उत्प्रेक्षा…१, ४, ८, १७, २६, ३०, ४०, ६६, ८४
(२) प्रेय…२

(३८) दोनों पदों में यमक की संसृष्टि तथा अतिशयोक्ति—८६

(३९) प्रथम दो पदों में समासोक्ति तथा उत्तरार्ध दो पदों में परिणाम—८७

दसवां सर्ग—

छन्द—

(१) स्वागता छन्द पूरे सर्ग में है।

(२) मालिनीवृत्त अन्त में

अलंकार—

(१) पदार्थहेतुक काव्यलिंग—३, ८३

(२) तुल्ययोगिता—४, ८, ३९, ७१

(३) भ्रान्तिमान तथा श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित अर्थान्तरन्यास का अंगागिभाव संकर ५

(४) श्लेषमूलातिशयोक्ति से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा तथा अर्थापति की ध्वनि—६

(५) उत्प्रेक्षा - ७, ४५, ४८, ४९' ५२, ६२, ७४, ७५, ७७, ८४, ८५

(६) अतिशयोक्ति—१०, ४७, ५७, ५९, ६५

(७) परिणाम से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा—११

(८) उपमा और समुच्चय का संकर—१३

(९) यथासंख्य एवं संशय का संकर—१४

(१०) उपमा—१५, ५५, ६४, ८१, ८२

(११) अर्थान्तरन्यास—१८, २१, २८, ३५, ७९

(१२) श्लेषमूलातिशयोक्ति से संकीर्ण उपमा—२५

(१३) समाधि—२०

(१४) वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग—२२, २३

(१५) श्लेषमूलातिशयोक्ति से संकीर्ण उपमा—२५

(१६) मीलन—२६,४२

(१७) पूर्वार्ध में विशेषोक्ति तथा उत्तरार्द्ध में विभावना—२७

(१८) सामान्य और निदर्शना की संसृष्टि—३१

(१९ एकावली—३३

(२०) उत्प्रेक्षा और यथा संख्य का संकर—३४

(२१) समुच्चय—३६

(२२) परिणाम—३७,६७

(२३) समासोक्ति—३८,५१,७२

(२४) श्लेष से अनुप्राणित समासोक्ति—४०

(२५) असंगति से उपजीवित उत्प्रेक्षा—४६

(२६) रूपक—५२,५८,७८

(२७) काव्यलिंग—६१,६६,८८
(२८) अतिशयोक्ति से अनुप्राणित समुच्चय—६३
(२९) विरोधाभास तथा समुच्चय—६८
(३) विरोधाभास—७०,८७,८९
(३१) पदार्थहेतुक काव्यलिंग तथा अतिशयोक्ति का संकर—७३
(३२) अतद्गुण—७६
(३३) प्रेय—८०
(३४) विरोधाभास, तद्गुण, श्लेष तथा अतिशयोक्ति का संकर—८६
(३५) यमक और काव्यलिंग—९०

ग्यारहवाँ सर्गः—

छन्द:—

(१) इस सर्ग में मालिनी छन्द है।
(२) महामालिका छन्द अन्त में है।

अलंकार :—

(१) वृत्यनुप्रास—१,१०,१९,४१
(२) पदार्थहेतुक काव्यलिंग—२
(३) उपमा—३,१४,४०,४२,६५,६६
(४) विरोधाभास—४
(५) काव्यलिंग और अतिशयोक्ति का संकर—५
(६) पूर्णोपमा—६,८
(७) स्वभावोक्ति—७,११
(८) उत्प्रेक्षा—१२,१८,२४,३ ४३,४९,५३,६,६१,६२,६३
(९) काव्यलिंग—१५,२३,३४
(१०) निदर्शना तथा उत्प्रेक्षा का संकर—१६
(११) श्लेष—२०
(१२) एकांगी रूपक—२१
(१३) उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का संकर—२२
(१४) अर्थान्तरन्यास—२५,३३,३५,५७,५९,६४
(१५) ऊर्जस्वी—२६
(१६) व्यतिरेक—२७
(१७) अतिशयोक्ति—२८,५८
(१८) विरोधाभास—२९,३१
(१९) सामान्य—३२
(२०) उदात्त—३६

(२१) रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर—३८
(२१) प्रेय—३६
(२३) निदर्शना—५
(२४) उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान—५१
(२५) भ्रान्तिमान्—५२
(२६) काव्यलिंग और उपमा का संकर—५४
(२७) उपमा, विरोधाभास और काव्यलिंग का संकर—५५
(२८) उपमा भी है और श्लेक्ष भी—५६

बारहवां सर्गः—

छन्द :—

(१) उपजाति छन्द पूरे सर्ग में है।
(२) हरिणी छन्द अन्त में।

अलंकार :—

(१) काव्यलिंग—१,२६,४२,७७
(२) श्लेष और उपमा का संकर—२,४,११
(३) शब्दश्लेष—३
(४) स्वभावोक्ति—५,६,७,६,१०,१२,१८,२२,३१,३४,३८,४०,४१,४७,७४
(५) शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष—८
(६) उपमा—२१,५५
(७) व्यतिरेक—२३
(८) काव्यलिंग और स्वभावोक्ति का संकर—२४
(६) श्लेष—२५
(१०) श्लेषमूलातिशयोक्ति और काव्यलिंग का संकर—२७,६१,६२, ६५
(११) स्वभावोक्ति और काव्यलिंग का संकर—२८
(१२) श्लेषमूलाभेदातिशयोक्ति से उत्थापित पदार्थ हेतुक काव्यालिंग—२६
(१३) संशय—३०
(१४) अर्थान्तिरन्यास—३२,५२
(१५) विरोधाभास—३३
(१६) श्लेषोत्थापित तुल्ययोगिता—३५,४५
(१७) व्यतिरेक उपमा और स्वभावोक्ति का संकर—३७,४६,४८
(१८) विशेषोक्ति—३६
(१६) उत्प्रेक्षा—४३,५०,६३,६४,७५
(२०) उपमा और काव्यलिंग का संकर—४४
(२१) रूपक

(२२) स्वभावोक्ति और वृत्यनुप्रास की संसृष्टि—५१
(२३) श्लेषोत्थपित काव्यलिंग—५३
(२४) उपमा और स्वभावोक्ति की संसृष्टि—५४,७३
(२५) श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित विरोधाभास का संकर—५६
(२६) अतिशयोक्ति—५७ ५८,६०,७२
(२७) श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित समासोक्ति—५९
(२८) विरोध—६७
(२९) उत्प्रेक्षा और उपमा का संकर—६८

तेरहवां सर्ग :—

छन्द—

(१) मंजुभाषिणी वृत्त पूरे सर्ग में
(२) रमणीयक वृत्त अन्त में

अलंकार :—

(१) उत्प्रेक्षा—२,१२,२५,२६,३०,३९(गम्योत्प्रेक्षा),३१,३६,३७,४८,५१,५७,६७
(२) काव्यलिंग—३
(३) उपमा—५,१५,१८,२०,२१,२२,२४,२७,२९,३३,३५,४१,५२,६१
(४) अर्थान्तरन्यास—६,१७,६८
(५) विचित्र, विरोधाभास, वृत्युनुप्रास की संसृष्टि—८
(६) श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित पर्याप्त तथा उत्प्रेक्षा का संकर—११
(७) विभावना और निदर्शना का शंकर—१३
(८) उपमा और अतिशयोक्ति—१९
(९) मालोपमा—२३,६५
(१०) श्लेष और उपमा का संकर—२८,३८
(११) भ्रान्तिमान्—३२,४९,६०
(१२) वृत्यनुप्रास—३४
(१३) अधिक—४०
(१४) विलास भाव और उपमा—४२
(५) अतिशयोक्ति—४३,६२,६३,६४
(१६) विलास भाव है। भ्रान्तिमान् की व्यंजना—४४
(१७) प्रेय से उत्थापित उत्प्रेक्षा—४६
(१८) श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित काव्यालिंग का संकर—४८
(१९) उदात्तालंकार—५०,५८,५९
(२०) सामान्य—५३
(२१) विरोध, श्लेष, एकांगी रूपक का संकर—५४

(२२) विरोधाभास—५५
(२३) भ्रान्तिमान् और उत्प्रेक्षा का संकर—५६
(२४) रूपक—६६

चौदहवां सर्ग —

छन्द —

(१) इस सर्ग में रसोद्धता छंद है।
(२) वसन्त तिलका छन्द अन्त से प्रथम।
(३) प्रहर्षिणी छन्द अन्त में

अलंकार —

(१) उत्प्रेक्षा और वृत्यनुप्रास की संसृष्टि—१
(२) काव्यलिंग—४, २३, २४, २६, ३, ३८, ५७, ५६, ६१, ७६, ८२, ८७
(३) अतिशयोक्ति—५, ३०, ४०, ४२
(४) दृष्टान्त—८, १३, १४, ४६
(५) अपह्नव—१२
(६) अतिशयोक्ति और काव्यलिंग का अंगागिभाव से संकर—१५, २६
(७) रूपक—१६, ६३
(८) उपमा—१६, ७३, ८५
(९) स्वभावोक्ति—२०
(१०) वृत्युनुप्रास—२१, ३३, ५३, ६७
(११) अनुप्रास—२२
(१२) काव्यलिंग तथा अतिशयोक्ति का संकर—२७
(१३) फलोत्प्रेक्षा—२८, ७१ (उत्प्रेक्षा)
(१४) काव्यलिंग, अतिशयोक्ति तथा समुच्चय का संकर—३१
(१५) काव्यलिंग और तुलययोलिता का संकर—३२
(१६) रूपक और उपमा का संकर—३४
(१७) उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि—३६
(१८) श्लेष संकीर्ण सहोक्ति—३७
(१९) परिणाम एवं उदात्त—३६
(२०) परिसंख्या—४१, ४८, ५४, ५८
(२१) व्यतिरेक—४३, ६५
(२२) श्लेष संकीर्ण उपमा—४४, ५०
(२३) विशेषेक्ति—४५, ४७
(२४) तुलययोगिता—४६, ५५, ५६, ८३ ५२
(२५) पदार्थ हेतुक काव्यलिंग न ५१

(२६) उपमा तथा उत्प्रेक्षा का संकर—५२, ७६, ७७
(२७) विरोधाभास—६०, ७०, ७२, ७४, ८१, ८८
(२८) विरोधाभास और काव्यलिंग का संकर—६२
(२९) विरोध और रूपक का संकर—६९
(३०) अधिक—७५
(३१) प्रत्यनीक—७८
(३२) श्लेष प्रतिभोत्थापित अभेदातिशयोक्ति से अनुप्राणित सांग रूपक—८०
(३३) श्लेष, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, यथासंख्य का संकर ८६

पन्द्रहवां सर्ग :—

छन्द—

(१) उद्गता छन्द इस सर्ग में है।
(२) स्रग्धरा छंद अन्त में।

अलंकार—

(१) अर्थान्तरन्यास—१, ४०, ४३, ८९
(२) उपमा—२,४,५,१३,१५,३३,३५,४४,५०,५५,५८,६२,७३,७५,८०,९२
(३) उपमा और काव्यलिंग का संकर—६
(४) उत्प्रेक्षा—७, ८, ४७, ५१, ५६, ९०, ९४
(५) उपमा और समासोक्ति का संकर—९
(६) काव्यलिंग—११, १८, २१, २२, २३, ३१, ३२, ३६, ३८, ४२, ४५, ५३
५९, ७७, ८१, ८१, ८५, ९३, ९५, ९६
(७) सांग रूपक—१२
(८) वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग—१४, ७०.
(९) विषम्—१६
(१०) दृष्टान्त—१७
(११) विशेशोक्ति और काव्यलिंग का संकर—१९
(१२) विभावना—२४, ८२
(१३) अतिशयोक्ति—२५, २६, २७, २८, २९, ५४, ७६, ८४
(१४) विरोध और अतिशयोक्ति का संकर—३०
(१५) वृत्यनुप्रास और काव्यलिंग की संसृष्टि—३७
(१६) वक्रश्लेष—१ (प्रक्षिप्त श्लोक)
(१७) स्वभावोक्ति—३९
(१८) अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग का संकर—४१
(१९) तद्गुण और उपमा का संकर—४८
(२०) रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा—४९, ७९

(२१) उपमा और अतिशयोक्ति का संकर—५२, ७४
(२२) काव्यलिंग और रूपक की संसृष्टि—५७
(२३) रूपक और निदर्शना का संकर—६०
(२४) समुच्चय—६१
(२५) काव्यलिंग और परिकर का संकर—६८
(२६) उपमा से वस्तु की ध्वनि—६९
(२७) उपमा और उत्प्रेक्षा का संकर—८६
(२८) भ्रान्तिमान्—९१

सोलहवां सर्ग—

छन्द—

(१) वैतालीय छन्द इस सर्ग में।
(२) प्रहर्षिणी छन्द—८२
(३) शार्दूलविक्रीडित छन्द—८४
(४) औपच्छन्दसिक वृत—८५, ८०
(५) मालिनी छन्द—८३

अलंकार—

(१) श्लेषा—२ द्व्यर्थक १५ तक, ८४
(२) उपमा—१८, ४३, ५३, ८०
(३) दृष्टान्त—२०, २५, ३५, ४५ ४७, ५१, ५७
(४) अप्रस्तुतप्रशंसा—२१, २२, २३, २६, २८, २९, ३०, ३२, ४०
(५) दृष्टान्त और अप्रस्तुतप्रशंसा का संकर—२७
(६) काव्यलिंग और अप्रस्तुतप्रशंसा का संकर—३६
(७) अर्थान्तिरन्यास—३४, ४१, ४४, ४६
(८) उपमा और वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग का संकर—५२
(९) श्लेष से संकीर्ण निदर्शना—५८
(१०) काव्यलिंग—६०, ८५
(११) प्रतीप तथा अतिशयोक्ति का संकर—६१
(१२) समासोक्ति—६२
(१३) अतिशयोक्ति मूलक सहोक्ति—६३
(१४) उल्लेख और उपमा का संकर—६४
(१५) श्लेष संकीर्ण उपमा—६५
(१६) विरोधाभास—६६, ७९
(१७) शिलष्ट परंपरित रूपक—६७
(१८) व्यतिरेक—७०, ८२

(१६) श्लेष मूलाशियोक्ति से संकीर्ण व्यतिरेक—७१
(२०) श्लेषमूलातियशयोक्ति से उत्थापित उत्प्रेक्षा से संकीर्ण व्यतिरेक ८३

सत्रहवां सर्ग—

छन्द—

(१) सर्ग में रुचिरा छन्द है।
(२) शार्दूलविक्रीडित छन्द अन्त में है।

अलंकार—

(१) उपमा—१, २८, १७, २६, ४४, ४६, ४८, ५६
(२) उत्प्रेक्षा—३, ४, ६, १४, १६. २६, ३१, ४६, ५१, ५५, ५८, ६०, ६५
(३) तद्गुण—४
(४) काव्यलिंग—६, ३४
(५) अतिशयोक्ति—८, १५, ६२, ६३, ६४
(६) उत्प्रेक्षा द्वारा वस्तु की ध्वनि—१०
(७) निदर्शना—१२, ३०
(८) दृष्टान्त—१८, ४०
(९) परिकर—२१
(१०) तुल्ययोगिता—२२
(११) समासोक्ति—२४, ३७, ३६
(१२) श्लेष से संकीर्ण उपमा—२५
(१३) काव्यलिंग और अतिशयोक्ति का संकर—३३,६६
(१४) स्वभावोक्ति—३५
(१५) उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति—३६
(१६) रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर—४१
(१७) विरोधाभास, विशेषोक्ति और विषम—४२
(१८) विरोधाभास—४५, ६७
(१९) अधिक—४७
(२०) अर्थान्तरन्यास—५०, ५६
(२१) अतिशयोक्ति और उपमा का संकर—५२
(२२) काव्यालिंग और विरोधाभास का संकर—५२
(२३) श्लेषोत्थापित व्यतिरेक—५४
(२४) शिलष्ट परंपरित सांग रूपक—५७, ६१
(२५) रूपक—६६

अठारहवाँ सर्ग—

छन्द—

(१) अत्र सर्गे शालिनी वृत्तम्
(२) मन्दाक्रान्ता छन्द अंत में

अलंकार—

(१) उत्प्रेक्षा—१,५,७,८,१०,४१,४३,४८,६३,६७,६८,६६,७३,७६,७५,७८,७६
(२) उपमा—२,४,६,१२,२०,२५,३१,३६,४०,५०,५७,७१
(३) काव्यालिंग और उपमा का संकर—३
(४) तुल्ययोगिता—६,५५,६२
(५) अनुप्रास—११
(६) पदार्थहेतुक काव्यलिंग—१३
(७) समासोक्ति—१४,१६
(८) परिवृत्ति—१५
(६) काव्यलिंग—१६,१७,२१,५६,६१
(१०) विरोधाभास—२२
(११) अर्थान्तरन्यास २३,६४,६६
(१२) अतिशयोक्ति—२६, २६, ३०, ४५, ४७, ४६, ६०, ६५, ७६
(१३) विरोधाभास—२८
(१४) स्वभावोक्ति—३२, ५२
(१५) काव्यलिंग और सामान्य का संकर—३४
(१६) रूपक और श्लेष से संकीर्ण उपमा—३५
(१७) अतिशयोक्ति और सहोक्ति का संकर—३६
(१८) संशय—४२
(१६) स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति की संसृष्टि—४६
(२०) भ्रान्तिमान—५३
(२१) अतिशयोक्ति और काव्यलिंग का संकर—५८
(२२) उपमा और रूपक का संकर—५६, ७२
(२३) व्यतिरेक—७०
(२४) श्लेष—७४
(२५) उपमा और श्लेष—८०

उन्नीसवाँ सर्ग—

छन्द—

(१) सर्गेऽस्मिन् अनुष्टुप छन्दःचित्रबन्धेन सहितम्

(२) शार्दूलविक्रीडितम्—१२०, उपेन्द्रवज्रा ११८, वैश्वदेवी १ ९
(३) सर्वतोभद्र—२७
(४) मुरजबन्ध—२९
(५) अर्धभ्रमक:—७२
(६) चक्रबन्ध:—१२०
(७) समुद्ग—११८
(८) अर्थत्रयवाची—११६
(९) एकाक्षर:—११४
(१०) अतालव्य:—११०
(११) द्व्यक्षर:—१०८, १०६, १०४, १०२, १००, ९८, ९९, ९४, ८६, ८७, ८४, ८५, ६६
(१२) गूढचतुर्थ:—९६
(१३) प्रतिलोम—९०, ३४, ३३
(१४) गत प्रत्यागतम्—८८, ८९
(१५) असंयोग—६८
(१६) समुद्गयकम्—५८
(१७) गोमूत्रिकाबन्ध—४६
(१८) प्रतिलोमानुलोमपाद:—४०
(१९) प्रतिलोमार्ध:—४४
(२०) एकाक्षरपाद :—३

अलंकार—

(१) रूपक—१, ३९
(२) उपमा—२, ४, ६, १०, १२, ३२, ४१, ४३, ४५, ५५, ६१, ६५, ७९, ८३
(३) अनुप्रास देखने योग्य है—चार पद क्रम से, ज, त, भ, र शब्दों झड़ी से शोभनीय है।
(४) यमक—१, ५, ९, ५९, १३, १५, १७, १९, ३६, ८२
(५) यमक, उपमा—७
(६) श्लेष—८, ७७
(७) उपमा और रूपक की संसृष्टि, निरौष्ठ्य चित्रबन्ध (ओष्ठवाला कोई शब्द नहीं) —११
(८) तुल्योगिता और व्यतिरेक का संकर—१८
(९) अन्योन्य...२०
(१०) यमक और वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकार की संसृष्टि—२१
(११) विरोधाभास और यमक की संसृष्टि—२३, ५६
(१२) उत्प्रेक्षा—२४, २८, ८१

(१६) विरोधाभास और काव्यलिंग का संकर—३६
(१६) दृष्टान्त—४०
(१८) स्वभावोक्ति—४२, ५२, ६७
(१९) उत्प्रेक्षा—४५, ४८
(२०) निदर्शना और उपमाका संकर—५४
(२) निदर्शना—५०, ५६
(२२) अतिशयोक्ति—६३
(२३) अर्थान्तरन्यास—७४
(२४) रूपक और निदर्शना—७५
(२५) व्यतिरेक और रूपक—७७
(२६) पर्यायोक्ति—७८
(२७) भाविक—७९

कविवंश वर्णन में अलंकार—

(१) विरोध ४।

माघ के चित्रबन्ध

जहाँ पद्य रचना में अपनी निपुणता द्वारा कवि ऐसे अक्षर, शब्द तथा वाक्य रखता है जिनसे अनेक चित्र एवं अंतर्लापिका आदि अनेक प्रकार की मनोरंजक कविताएँ बन जाती हैं जो अलंकारों में चित्रालंकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहित्यशास्त्री ऐसे विकट बन्धों में की गई कविता को अधम काव्य की संज्ञा देते हैं।

कविराज विश्वनाथ अपने साहित्य दर्पण में लिखते हैं —'काव्यान्तर्गड्डुभूतया तु नेह प्रपंच्यते' काव्य में यह सर्वतोभद्र आदि शब्दचित्र तो ऐसा भद्दा प्रदर्शन व गोरखधन्धा है जैसे किसी के गले में माँस फूलकर खरबूजे की भाँति लटक पड़ता है। उस लटके हुए मांस से उस पुरुष की कुछ शोभा नहीं हो पाती, उलटी उस पुरुष की कुरूपता बढ़ जाती है और भार ऊपर से.। इसलिए यह सर्वतोभद्र आदि विकटबंध काव्य का गड्डु सा प्रतीत होता है। इसके विषय में काव्य प्रकाशकार मम्मट भट्ट ने भी ऐसी ही उपेक्षा की बातें की हैं। रस गंगाधर प्रणेता पंडितराज जगन्नाथ ने तो बहुत ही आड़े हाथों लिया है। हिन्दी के महाकवि देव ने इसके लिए कहा है:—

> सरस वाक्य पद अरथ तजि, शब्द चित्र समुहात।
> दधि घृत मधु पायस तजय, वायस चाम चबात ।।

शब्दों के निबन्धन से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाना, शब्दों को किसी वांछित क्रम से बैठाना, समान अक्षर वाले पद बनाना, एकाक्षरी, द्व्यक्षर, गतप्रत्यागत, समुद्गयमक, गूढ़, अतालव्य, चक्रबंध आदि कविता का रचना मानसिक कौशल दिखाना है क्योंकि ऐसा करने में शब्दों को बहुत कुछ तोड़ने मरोड़ने की भी आवश्यकता पड़ती है अतएव इसमें स्वाभाविकता का बहुत कुछ नाश अवश्य हो जाता है किन्तु जब एक ही अक्षर में जो कवि अनूठे भावों को भर दे तब फिर उस कवि की आप क्या प्रशंसा न करेंगे? यद्यपि ऐसा करने में सब स्थानों पर कवित्व रस का मुक्त प्रवाह दोषमय हो जाता है, श्लिष्ट कल्पनाओं और बलपूर्वक ग्रहण की जाने वाली अर्थशक्ति की सुन्दरता कुछ क्षीण हो जाती है किन्तु जब कवि के पांडित्य तथा अद्भुत कवित्व शक्ति को हम समझ जाते हैं तब तो हमारी प्रसन्नता और कवि के प्रति विद्वत्ता प्रदर्शित करने से बार-बार के हमारे भाव ही उस कविता को सुन्दर कहने में योग देते हैं।

जैसा हमने माघ भारवि लिखते समय बताया है कि भारवि ने जब ऐसी कलाबाजियाँ अपनी कविता में लगाईं तो भारवि के स्पर्द्धालु माघ क्यों चूकते। प्रश्न है कि माघ ने भारवि

से इसी कलाबाजी में होड़ क्यों लगाई ? इसका उत्तर वहाँ पर पूर्णतया दे दिया गया है। यहाँ संक्षेप में दे देना आवश्यक है। माघ का समाज इसी शब्द चित्र को चाहता था क्योंकि राज दरबारों में वही विद्वान् व पण्डित कहलाता था जिसकी कविता में शब्दों की जादूगरी हो और भाव भी हो। लोकरंजन के लिए माघ को ऐसा करना पड़ा।

आइये अब माघ के इन चित्रों को देखते चाहिए चित्र

१—सा सेना गमनारम्भे
रसेनासीदनारता।
तारनादंजनामत्त
धीरनागमनामया ॥१६-२६॥

यह माघ का मुरजबंध नामक चित्र बंध है। इसके अक्षरों को चारों पंक्तियों में अलग-अलग लिखकर फिर प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पंक्ति के क्रमानुसार, आदि से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर पढ़ें तो 'सा सेना गमनारम्भे' पंक्ति बनेगी। इस भाँति यदि हम देखेंगे तो यह तीन वर्गाकार चित्र बनाता हुआ उन वर्गों को आधे पर काटता हुआ मुरज का रूप धारण कर लेता है। दूसरा चित्र देखिए—

२—सकारनानारकास
कायसाददसायका।
रसाहवावाहसार
नादवाददवादना ॥१६-२७॥

यह सर्वतोभद्र वाला श्लोक है। इस श्लोक की चारों पंक्तियों को अलग-अलग अक्षरों में सीधी लिखें तत्पश्चात् उल्टी पंक्तियों को चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम एक सीध में लिखें तो यह सर्वतोभद्र चित्र बन जाता है। इसे अब चाहे जिस ओर से पढ़िये वही श्लोक बनेगा। चार कोने के चौसठ कोष्ठों से युक्त बंध में क्रमशः एक-एक अक्षर लिखकर पढ़ने से इसका सर्वतोभद्र रूप समझ में आ जायेगा।

तीसरा चित्र देखिये—

१—प्रवृत्तंविकसद्ध्वानं साधनेप्यविषादिभिः।
ववृत्तेविकसद्दानंयुधमाप्यविषाणिभिः ॥ १६-४६ ॥

---

१. उस सेना के वीर सैनिक गण सिंहनाद कर रहे थे। पीड़ा किस वस्तु का नाम है उसमें यह कोई जानता ही नहीं था। युद्धार्थ गमन के आरम्भ में वे युद्ध के उत्साह से भरे हुए थे और उनके साथ निर्दोष किन्तु मदोन्मत हाथियों के समूह चल रहे थे॥१६-२६॥

२. उत्साह युक्त अनेक प्रकार के शत्रु समूहों की गति एवं उनके शरीरों के नाश करने वाले बाणों से युक्त वह शिशुपाल की सेना रण में अनुरक्त होकर श्रेष्ठ घोड़ों की हिन-हिनाहट एवं खटपट के साथ विवाद करने वाली अपने विविध वाद्यों की ध्वनियों से व्याप्त थी ॥ १६-२७ ॥

यह गोमूत्रिका बंध है। ऊपर और नीचे के सोलहों कोष्ठों में दोनों पंक्तियों के एक-एक अक्षर को छोड़कर पढ़ने से भी यही श्लोक बन जाता है।

चौथा चित्र देखिये—

२—अभीकमतिकेनेद्धे, भीतानन्दस्यनाशने।
कनत्सकामसेनाके, मन्दकामकमस्यति ॥१६-७२॥

यह अर्धभ्रमक बंध है। इसके आदि के चारों चरणों के अक्षर क्रमानुसार सीधे पढ़ें तथा अन्त के चारों चरणों के अक्षर उल्टे पढ़ें तो पहला पद बन जाता है और इसी प्रकार सब पद क्रमानुसार दूसरे, तीसरे तथा चौथे अक्षरों के पढ़ने से बन जाते हैं।

माघ के प्रतिलोम यमक को भी देखिए जिसके वाक्यों को उलट कर पढ़ने से वही अर्थ फिर होता है। माघ का यह श्लोक कितना उच्च कोटि का चमत्कार है जिसके रखने पर कथा प्रवाह में भी कोई बाधा उपस्थित न हुई। सरस्वती कंठाभरण ने भी श्लोक संख्या २६ में इसी को लिया है:—

३—विदितं दिवि केऽनीके तं यातं निजिताजिति।
विगदं गवि रोद्धारो योद्धा यो नतिमेति नः ॥१६-६०॥

नीचे का द्व्यक्षर माघ लिखित है जो सरस्वती कंठाभरण का चतुर्थ श्लोक है—

४। भूरिभिर्भारिभिर्भीरैर्भूभारैरभिरेभिरे।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः ॥१६-६६॥

दूसरा चरण को उलट देने से दूसरा चरण बन जाता है ऐसे माघ के अर्थप्रतिलोभ को नीचे देखिये—

५। वारणागगभीरा सा साराऽभीगगणारवा।
कारितारिवधा सेना नासेधा वारितारिका ॥१६-४४॥

---

१. भीषण ध्वनि के साथ आघात होने पर भी विचलित न होने वाले हाथियों ने युद्धभूमि में जमे रहकर प्रभूत मदजल की वर्षा की ॥१६–४६॥

२. वह भयानक युद्ध निर्भय चित्त वाले वीरों से सुशोभित था भयभीतों के आनन्द का नाश करने वाला था। विजय की भावना से भरी हुई सेनाओं से युक्त था तथा लोगों के मन्द उत्साह को दूर करने वाला था ॥१६–७२

३. जो परमवीर भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओं के सम्मुख कभी विनम्र नहीं हुए, जो युद्ध को जीतने वाले सैनिकों के साथ युद्धार्थ आये थे और जो स्वर्ग में भी प्रख्यात हैं, उन निरामय अर्थात् रोग-दोष रहित भगवान् श्रीकृष्ण को इस पृथ्वी पर अवरोध करने वाला दूसरा कौन था अर्थात् कोई नहीं ॥१६-६०॥

४, अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भाँति भयानक शब्द करने वाले बादलों के समान काले एवं निर्भीक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से भिड़ गये!

५. यदुवंशियों की वह सेना हाथी रूपी पर्वतों से दुर्गगम थी, उसमें अत्यन्त बलवान एवं निर्भय जतुन्ओं के स्वर गूंज रहे थे, वह शत्रुओं का संहार करने वाली थी, उसकी गति

प्रतिलोमानुलोमपाद का भी उदाहरण देखिये जिसमें एक चरण को उलटने से दूसरा चरण बन जाता है—

६। नानाजाववजानाना सा जनौघघनौजसा।
परानिहाऽह्यनिराप तान्वियाततयाऽन्विता ।।१६-४०।।

समुद्ग यमक और समुद्ग श्लोकों—

७। अयशोभिदुरालोके कोपधाम रणाहते।
अयशोभिदुरा लोके कोपधा मरणाहृते ।। १६-५८।।

८। सदैव संपन्नवपू रणेषु स दैव संपन्नवपूरणेषु
महो दधेऽस्तारि महानितान्तं महोदधेस्तारिमहा नितान्तम् ।।१६-११८

इसकी पूर्वपद की पर पद में आवृत्ति है किन्तु नीचे समुद्ग में प्रथम और तृतीय चरण ही भंगि के साथ द्वितीय और चतुर्थ चरण बन जाता है।

इसमें केवल एक अक्षर 'द' का प्रयोग है अतः एकाक्षर है, देखिये—

६। दाददो दुद्दुद्दादी दादादो दूददीददोः।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः ।। १६-११४।।

नीचे का अतालव्य है—

१०। नामाक्षराणां मलना मा भूद्भर्तु रतः स्फुटम्।
अगृह्णात परांगानामसूनस्त्रं न मार्गणाः ।।१६-११०।।

गूढ चतुर्थ भी देखिये जिसके केशवच्छल नीरदः एक-एक अक्षर तीनों में छिपे हैं—

को कोई रोक नहीं सकता था और वह अपने शत्रुओं में लड़ने की ही स्वयं इच्छा कर रही थी।

६. सैनिक समूहों से युक्त शिशुपाल की वह सेना उस अनेक प्रकार से होने वाले विचित्र युद्ध में अपने तेज द्वारा शत्रुओं की अवज्ञा कर निर्भयता एवं ढिटाई के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर जाकर जुट गयी।

७. भाग्यवान् एवं तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य तथा रण राग से क्रोधान्ध वीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त अनादर रूपी अपयश को मिटाने के लिए इस समय प्राण त्यागने के सिवा और अन्य उपाय ही क्या था ?

८. सर्वदा ही सम्पूर्ण शुभलक्षणों से युक्त शरीर वाले, एवं शत्रुओं के तेज का दलन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैवी सहायता से युक्त रण में वह प्रचण्ड तेज धारण किया, जो महा समुद्र के पार तक पहुंच गया था।

६. दानशील, दुष्टों को दुःख देने वाले, संसार को पवित्र करने वाले, दुष्टों का विनाश करने वाली भुजाओं को धारण करने वाले, दाता तथा अदाता—दोनों को देने वाले तथा बकासुर एवं पूतना आदि आततायियों को नष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शत्रुओं पर भीषण अस्त्र चलाना शुरू किया।

११। शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः ।
नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः ॥१६६॥

अभी तक हमने माघ के विकट बंधों को लिया है। अब भारवि के चित्रबंध के उदाहरण पाठकों के मनोविनोदार्थ तथा निर्णयार्थ रख रहे हैं, एकाक्षर पद देखिये—

१। स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललोऽलोलः शशीशशिशुशीः शशन् ॥१५-५॥

भारवि का गौमूत्रिका बंध भी देखिये—

२। नासुरोऽयं न वा नागो धरसंस्थो न राक्षसः ।
नासुखोऽयं नवाभोगो धरणिस्थो हि राजसः ॥१५-१२॥

यह है भारवि का प्रसिद्ध एकाक्षर—

३। न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥१५-१४॥

समुद्गक और प्रतिलोमानुलोमपाद नीचे लिखे हैं—

४। स्यन्दना नो चतुरगाः सुरेभा वाविपत्तयः ।
स्यन्दना नो च तुरगाः सुरेभा वा विपत्तयः ॥१५-१६॥

---

१०. हमारे प्रभु के नाम के अक्षर कहीं मलिन न हो जाएँ मानो इसी कारण से भगवान् श्री कृष्ण के बाण शत्रुओं के प्राणों को तो ले लेते थे किन्तु उनके रक्त को नहीं ग्रहण करते थे।

११. उस समय बाणों की वृष्टि करते हुए, जोर से सिंहनाद करने वाले, चमकते हुए धनुष तथा ध्वजा से सुशोभित एवं नीले रंग के शरीर वाले भगवान् श्रीकृष्ण जल की वर्षा करने वाले, जोर से गरजने वाले, चमकते हुए इन्द्र धनुष से सुशोभित नीले मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे।

१. तलवार, बाण तथा धनुष से युक्त होकर, यानसाध्य तथा अयानसाध्य लाभ को प्राप्त करने वाले, शोभा सम्पन्न स्थिर प्रकृति वाले अर्जुन ने जिसने चन्द्र के स्वामी के पुत्र को हरा दिया था, पुत्रगति से युक्त होकर अपूर्व शोभा को प्राप्त किया।

२. यह पुरुष दानव,नाग, पहाड़ और राक्षस इनमें से कोई नहीं है। महान् उत्साहशाली होने की आशंका हो तो यह भी नहीं है किन्तु भूमिचारी रजोगुणी मनुष्य है अतएव वह सरलतापूर्वक विजित किया जा सकता है।

३. नीच मनुष्य द्वारा घायल किया जाने वाला पुरुष पुरुष नहीं और न वही पुरुष कहलाने योग्य है जो नीच मनुष्य को घायल करता है। यदि स्वामी को किसी प्रकार की क्षति न पहुंची तो घायल मनुष्य भी वास्तव में अक्षत है। बुरी तरह से घायल मनुष्य को मार डालने वाला भी अपराधी नहीं है।

४. इस पुरुष के पास वेगशाली रथ, अच्छी चाल का घोड़ा, सुन्दर गर्जनकारी ऐरावत हाथी तथा सुसज्जित पैदल सिपाही इन सबमें से एक भी नहीं है।

५। वेत्रशाककुजे शैलेऽलेशैजेऽकुकशात्रवे ।
याति किं विदिशो जेतुं तुंजेशो दिवि किंतया ॥१५-१८॥

यह है भारवि का सर्वतोभद्र श्लोक, देखिये—

६। देवकानिनि कावादे वाहिकास्वस्वकाहि वा ।
काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि ॥१५-२५॥

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारवि और माघ के इस प्रकार के विकटबंध वाले चित्रकाव्य के प्रयोग से उन दोनों का काव्य कठिन अवश्य हो गया है जो नारिकेलफल के तुल्य है किन्तु जिसका प्रारम्भ भारवि से हुआ, महाकवि माघ ने उसको अपनाया और जिस दृष्टिकोण से कवि ने यह कठिन कार्य अपने हाथ में लिया उसमें उसकी ऐसी पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई कि माघ के पश्चात् कवियों ने फिर शब्दों और वाक्यों के साथ खूब खिलवाड़ करते हुए जनता के मन को आह्लादित किया, जनता इस भाँति की कविता में अधिक रुचि रखने लगी अतः पश्चात् के कवियों की शैली कुछ ऐसी हो गई जिसके प्रवर्तक हमारे महाकवि माघ हैं। कविता में चमत्कार न हो तो वह कविता भी कौन-सी ? अत: द्विरर्थक, वक्रोक्तिमूलक, श्लेषात्मक कविताओं का भी जोर अधिक रहा। रीतिकाल के संस्कृत-हिन्दी कवियों तक यह प्रणाली चलती ही रही। केशव और सेनापति हिन्दी में प्रमुख हैं।

---

५. बाँस, फलशाली वृक्ष और भी अनेक प्रकार के व्यर्थ के वृक्षों से भरे हुए, रेणुमात्र भी टस से मस न करने वाले पहाड़ पर जहाँ शत्रु कुछ नहीं कर सकता, क्या विदिशाओं को जीतने के लिए तो नहीं भागे जा रहे हो ? स्वर्ग में आप लोग ने दैत्यों को भी परास्त किया है। इस समय कायर क्यों बन रहे हो।

६. रणस्थल देवताओं को भी प्रोत्साहित कर देता है। इसमें वाक्कलह बहुत थोड़ा-थोड़ा होता है। दूसरे लोग भी जी छोड़कर इसमें कार्य करते हैं। मदस्रावी हाथियों की घटा से संग्राम स्थल व्याप्त रहता है। इसमें उत्साही निरुत्साही दोनों प्रकार के लोगों को जी जान से लड़ना पड़ता है।

परिशिष्ट—४

काम शास्त्र तथा उसका काव्य पर प्रभाव

प्राणीमात्र को सुख की लालसा रहती है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त मनुष्य इसी सुख की प्राप्ति के विविध प्रयत्न करता रहता है। यह सुख क्या है, उसकी प्राप्ति किस भाँति हो सकती है इन बातों पर प्राचीन ऋषि, मुनि, ज्ञानी, एवं संन्यासी लोगों ने कई रीतियों से विचार किया है। उन आप्त पुरुषों का कहना है कि जीव की संसार यात्रा के दो ही मार्ग हैं, एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र हैं—धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र। इनमें बताये मार्ग से चलकर मानव अभ्युदय की प्राप्ति करता है। इसी को सांसारिक सुख कहते हैं। निवृत्ति मार्ग का वर्णन दर्शन शास्त्र, योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र में मिलता है। इस मार्ग पर चलने से मानव को निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। इसे मुक्ति, निर्वाण अथवा अपवर्ग भी कहते हैं। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र में अभ्युदय के बाद निःश्रेयस की ओर ही मानव को उन्मुख करते हैं। मनुष्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति करता हुआ अन्त में मोक्ष द्वारा अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त करे यही उनका भी अभिप्रेत है।

हम संसार के शरीरधारी जीवों में से वे जीव हैं जिनमें अन्य समस्त जीवों से ज्ञान अत्यधिक है। जीव मात्र का सुख और दुःख भी इन्द्रियों के विषयों के द्वारा ही होता है। अतः जिस जीव को इन इन्द्रियों के विषय का सम्यक् ज्ञान हो वह नाना भाँति से आनन्द को लूटता हुआ इतना सुखी रहता है कि जिसकी सीमा नहीं है। जिस जीव को इस सुख की कोई कामना नहीं उसका तो इस संसार में रहने का कोई तात्पर्य भी नहीं है। वह प्रवृत्ति मार्ग को अपनायेगा ही क्यों ? क्यों नहीं, शुकदेवजी की भाँति, ध्रुव की भाँति प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग में ही अपने चरण रक्खेगा। पर ऐसे जीव संसार में विरले ही होते हैं। अधिकतर संसारी जीव ही हैं, जो धर्म, अर्थ और काम के सहारे मोक्ष की ओर जाना चाहते हैं। मानव को छोड़ कर शेष प्राणी भी संसारी ही हैं। जीवधारी केवल मनुष्य ही नहीं होता। गाय, बैल, भैंस, सिंह, गज, अश्व, श्वान, कपोत, कीर, मर्कट, चीटी आदि छोटे से मोटे समस्त प्राणधारियों में काम सुख सामान्य है। अर्थ और धर्म की ओर अधिक उन्मुखता मनुष्य में ही होती है। अर्थ और धर्म मनुष्येतर प्राणियों का प्रयोजन नहीं के बराबर होता है। अपने निवास स्थान के लिये बिल, मांद, खोतें, पेड़, चरने के स्थान आदि के लिए जब जब हम उनमें बड़ी-बड़ी लड़ाइयों को देखते हैं और फिर अन्त में अव्यक्त रूप

में नाना भाँति की सन्धियाँ, नियम, मर्यादा आदि देखते हैं तब समझ पड़ता है कि इन प्राणियों में भी धर्म और अर्थ की भावना है। अर्थ: पुरुषार्थः अर्थ्यते याच्यते इच्यते आदि बातों में आता है। जो पुरुषार्थ द्वारा चाहा जाय, माना जाय वही तो अर्थ है। हमने देखा कि उन पशुओं तक में बिना उपायों, धर्म, कानून, कायदा, मर्यादा के अर्थ और धर्म की ओर भी उनकी प्रवृत्ति होती है। अतः अर्थ और धर्म की काम के साथ-साथ परम आवश्यकता है। इसलिए प्रवृत्ति मार्ग का प्रधान अर्थ काम सुख ही है। उसके लिए अर्थ (साधन सम्पत्ति) और धर्म (उनकी सुव्यवस्था) अपने आप आवश्यक हो जाते हैं। स्मरण रखना है कि मनुष्य के जीवन में उसमें इन्द्रिय सुखों में संस्कार, परिष्कार अन्य जीवधारियों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। संस्कारों से संस्कृत मनुष्य वास्तविक मनुष्य है अन्यथा वह तो पशु है, तब ही तो कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषां अधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।

शारीरिक आवश्यकताएँ सबकी समान हैं, पर मानव में धर्म ही अधिक होता है। यदि वह उसमें न हो, तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। काम शब्द का एक अर्थ तो है कर्म। किसी काम को नहीं। इसका विवेचन धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के ग्रन्थों में किया है। काम का दूसरा अर्थ है स्त्री पुरुष विषयक रति। इसके अभाव में सांसारिक जीवन शुष्क सा बन जाता है। यहाँ हमारा प्रयोजनीय अर्थ यही रचनात्मक संबंध है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में इसका प्ररूपण मनोवैज्ञानिक शैली से किया है। उनके अनुसार पाँच ज्ञानन्द्रियों के विषयों के उपभोग से जिस सुख की प्राप्ति होती है। काम-शास्त्रियों ने उस सुख का नाम काम कहा है। काम का नाम "पंचसायक" है। इसका अर्थ है स्थूल और सूक्ष्म शरीर चित्त और देह दोनों के समस्त विषयों में स्त्री पुरुष के मिथुन का एक दूसरे के लिए अपने सर्वस्व का समर्पण। यह कामानन्द भी ब्रह्मानन्द से क्या कम है। ब्रह्म में लीन हुआ भक्त एकाकार करके जिस सुख की प्राप्ति करता है वही सुख पुरुष और स्त्री दोनों में एकाकार होकर प्राप्त करते हैं। भक्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में जो अनुभूति है न वैसी अनुभूति इस आनन्द में होती है। यहाँ भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को दूसरे में खोया हुआ पाता है। इन्द्रिय निग्रह अथवा आत्म संयम रखना अति कठिन है अतः इसी काम को कंदर्प (कन्दर्पयति) कहा गया है जो यथार्थ है क्योंकि इसके उत्पन्न हो जाने पर आत्म संयम का दर्प समूल नष्ट हो जाता है। शिव, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तक विचलित हो उठे तो फिर मनुष्यों की तो क्या कथा? यह वास्तव में ही कंदर्प (कं न दर्पयति) है। यह सब ही के मन को मथ डालने वाला मन्मथ है। जीवमात्र इसके मद से मत्त (मस्त) हो जाता है। यही मदन (मदयति इति मदनः) संसार का सर्वस्व है। यह काम सुख उन्हीं को प्राप्त हो सकता है जो ब्रह्मचर्य के गुणों को जानकर उस अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहें। ब्रह्म का नाम शुक्र अथवा वीर्य भी है। ब्रह्म अनन्त ज्ञान अथवा परमात्मा को भी कहते हैं जिससे यहाँ हमारा कोई तात्पर्य नहीं। अतः उस ब्रह्म (शुक्र अथवा वीर्य) की प्राप्ति वृद्धि संचय करने वाली चर्या जब हमको सुचारू रूप में समझ में आ जायगी तो हम पूर्ण ब्रह्मचर्य से रह कर फिर गृहस्थावस्था में

प्रविष्ट कर सच्चे गृहस्थी के रूप से संसार के सुख को भोगते हुए सांसारिक सुख प्राप्त कर सकेंगे। कामशास्त्र में संयत जीवन का बड़ा महत्व बताया है। संयत ब्रह्मचारी ही काम सुख के वास्तविक भोगी होते हैं। गृहस्थ जीवन के रहस्य को समझने के लिए कामशास्त्र के पढ़ने की अति आवश्यकता है। हमारे भारत में कामशास्त्र की शिक्षा कोई नवीन बात हो ऐसी कोई बात नहीं। प्राचीन काल में वयस्क ब्रह्मचारियों को काम शास्त्र की संपूर्ण कलाओं के साथ शिक्षा दी जाती थी। जो गार्हस्थ्य जीवन भोगना चाहता है तथा जिसको संसार के वास्तविक सुख की कामना है उन स्त्री पुरुषों के लिए काम-शास्त्र की शिक्षा उपादेय ही नहीं, आवश्यक भी है। काम शास्त्र में वे सब ही बातें आ जाती हैं जिनसे हमारे शरीर का संबंध है। यह शास्त्र तीन अंगों में विभक्त है। १. ज्ञानांग, २. रसांग, ३. कामांग। इसमें काम, रति, प्रीति, सौन्दर्य, यौन, वीर्य के तात्विक स्वरूप का वर्णन शरीर स्थान, स्त्री-पुरुष के प्रजनन इन्द्रियों का, उनके सूक्ष्म अवयवों का, एक एक के विशेष विशेष रसों का, गर्भाधान संतान उत्पत्ति में उपयोगों का वर्णन है तथा इनके रोगों के कारणों का रोगों से बचाये रखने के उपायों का भी वर्णन है। इस संबंध में औषधि वनस्पति वृक्ष-गुच्छ गुल्म तृण प्रतानवल्ली रूप, ऋतुचर्या, विवाद के प्रकारों, वधू वर के परस्पर आश्वासन, अनुरंजन, प्रणयवर्धन, अनुकूलन, कामोद्दीपन और संभोग के उपायों और प्रकारों का वर्णन है। इस भाँति तन मिलाने से पूर्व मन मिलाने को प्राथमिकता देकर फिर संयोग, आलिंगन, शृङ्गार आदि-आदि विभिन्न विधियाँ आदि देकर उस शास्त्र को ऐसा पूर्ण किया गया है कि जिसके देखे बिना, पढ़े बिना, मनन किये बिना, कार्य रूप में परिणत किये बिना किसी सांसारिक सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती।

प्राचीन विद्वान् कामशास्त्र का भी अध्ययन करके संसार में प्रविष्ट होते थे अतः उनके ग्रन्थों में काम शास्त्र के सिद्धान्तों का उल्लेख अनायास ही हो जाता है। उनकी कला में भित्ति चित्रों, चित्रकलाओं, मूर्तियों आदि में काम सौन्दर्य का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भास, कालिदास, भारवि, माघ, नैषध आदि सब ही विद्वान् कवियों ने अपने कामशास्त्र के अध्ययन का परिचय दिया है। महाकवि माघ सर्व शास्त्रज्ञ थे। कामशास्त्र का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था इसीलिए वे इस अभिज्ञता को अपनी रचना में व्यक्त किए बिना न रह सके—

सीत्कृतानि भणितं करुणोक्तिः स्निग्ध मुक्तमलमर्थवचांसि।
हासभूषणरवाश्च रमण्याः कामसूत्र-पदतामुपजग्मुः ॥१०-७५॥

उपर्युक्त में वात्स्यायन के काम सूत्र का स्पष्ट परिचय है। कवि ने नायक नायिकाओं का उनके हास परिहास, केलि क्रीड़ा, संयोग वियोग आदि का यथा स्थान वर्णन कर अपनी चतुरता एवं दक्षता का पूर्ण परिचय दिया है साहित्य में ये बातें शृङ्गार के नाम से आया करती हैं। हमने इन बातों का कवि के रस-भाव पक्ष वाले तथा बहुज्ञता वाले प्रकरणों में समावेश कर दिया है।

———

माघ काव्य में पौराणिक कथायें

प्रथम सर्ग—

१. हिरण्यगर्भ
२. मुनिम् (नारद के लिए)
३. अनूरुसारथे: (सूर्य)
४. कृत्तिवासस् (गजचर्मधारी शिव)
५. जातवेदस: (वडवानल)
६. कैटभद्विषः
७. हिरण्यकशिपु:
८. दशमुख रावण
९. नमुचिद्विषः (इंद्र)
१०. कौशिक: (इंद्र)
११. प्रचेतसा (वरुण)
१२. रावणनाम
१३. परेतभर्तु
१४. यम के भैंसे के सींगों को रावण ने तोड़ने की कथा
१५. एकदन्त (गणेश)
१६. शिशुपालसंज्ञया
१७. नीलाम्बरधारी बलराम कथा
१८. दिग्गज नाम।
१९. चिरन्तमुनि (नर नारायण) कथा

द्वितीय सर्ग—

१. मुरं द्विषन्
२. जरासंध वध कथा
३. रेवती कथा
४. राहु कथा
५. हिडिम्बा
६. जरासन्ध कथा

७. कालयवन कथा
८. समुद्रमंथन पर अमृतपान कथा

तृतीय सर्ग—

१. कौबेर दिक् और आगस्त्य दिक्
२. बाणासुर संग्राम में शम्भु की शक्ति के क्षय की कथा
३. बाणासुर की तपस्या

चतुर्थ सर्ग—

१. रैवतक पर्वत की कथा
२. हलधर
३. विन्ध्यपर्वत सूर्यमार्ग में बाधक कथा

पाँचवाँ सर्ग—

१. पर्वत का पक्षधारी रूप
२. गरुड म्लेच्छ कथा
३. गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाना
४. कद्रू और विनता की कथा

आठवाँ सर्ग—

समुद्र मंथन से १४ रत्न निकालने की कथा

नवाँ सर्ग—

१. ब्रह्मा ने संध्या को अपनी मूर्ति बनाया भविष्य पुराण की कथा
२. कुएँ में सिंह की परछायी
३. गोत्रभिद् (इन्द्र)

बारहवाँ सर्ग—

१. सगरपुत्र और गंगा सागर की कथा
२. घोड़ों के पंख की कथा

तेरहवाँ सर्ग—

१ श्रीकृष्ण और सत्यभामा की कथा
२. पर्वत पक्षधारी थे
३. परशुराम के रक्त के पांच सरोवर बनाने की कथा
४. खांडव दाह कथा और मय दानव

५. ब्रह्मा ने त्रिपुरासुर पर अभिमान करने वाले शंकर के रथ के घोड़ों की लगाम पकड़ी जिसकी कथा

चौदहवां सर्ग—

१. वाराहावतार कथा
२. नरसिंहावतार कथा
३. बलि कथा
४. सहस्र बाहु कथा
५. कार्तवीर्य अर्जुन कथा
६. कश्यप पुत्र कथा
७. शिशुपाल की जन्म की तीन आँख वाली कथा
८. कृष्ण का इन्द्र गर्व हरण कथा
९. वृत्रासुर वध कथा
१०. मधुकैटभ वध कथा
११. सती अनुसूया कथा
१२. कार्तवीर्य परशुराम कथा
१३. सत्यभामा की प्रार्थना पर पारिजात के लाने की कथा

पन्द्रहवां सर्ग—

१. गंगापुत्र भीष्म कथा
२. मधुसूदन कथा
३. नग्नजित राजा की कन्या सत्यभामा के साथ कृष्ण का प्रेम
४. राजा ययाति व यदु कथा
५. जरासन्ध व कृष्ण की कथा भूमि छीनने की
६. नरकासुर कथा
७. यमलार्जुन कथा
८. पूतना की कथा
९. शकटासुर कथा
१०. कंस वध कथा
११. पर्वतमहोत्सव कथा
१२. कुवलयापीड कथा
१३. अश्वमेध यज्ञ कथा
१४. पांडव कुन्ती के क्षेत्रज संतान कथा
१५. भीष्म कथा
१६. मुचुकुन्द कथा
१७. वामनावतार कथा

१८. गोवर्धन धारण कथा
१९. अरिष्टासुर कथा
२०. केशी वध कथा
२१. चाणूर वध कथा

सोलहवाँ सर्ग—

१. अरिष्टासुर कथा
२. प्रलयकाल में भगवान् का क्षीर सागर शयन कथा
३. मैनाक पर्वत कथा
४. समुद्र मर्यादा हीन होने पर प्रलयकालीन कथा

सत्तरहवाँ सर्ग—

शंकर गंगा को सिर पर धारण करते हैं, विष्णु चरणों में रखते हैं इसकी कथा

अठारहवाँ सर्ग—

१. प्रलयकालीन वायु की कथा
२. वसुदेव की कथा
३. मार्कण्डेय मुनि की कथा

उन्नीसवाँ सर्ग—

१. दक्ष यज्ञ ध्वंस कथा
२. राम-बाली कथा

बीसवाँ सर्ग—

१. कश्यपपत्नी एवं दक्ष प्रजापति की कन्या कद्रू और विनता की कथा
२. गरुड़ के द्वारा अपनी माता विनता की दासता से मुक्ति कथा
३. समुद्र मन्थन कथा
४. सुमेरू पर्वत कथा
५. प्रलय समय योग निद्रा वाले विष्णु भगवान् की कथा
६. गरुड़ का धरती के भीतर प्रविष्ट होना

परिशिष्ट-५

शब्द परिचय

१. **अवतार**—२४ माने गये हैं। (१) सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन। (२) वाराह, (३) नारद देवर्षि, (४) नर-नारायण, (५) कपिल, (६) दत्तात्रेय, (७) यज्ञ पुरुष, (८) ऋषभदेव, (९) पृथु, (१०) मत्स्य, (११) कच्छप, (१२) धन्वन्तरि, (१३) मोहिनी रूप, (१४) नरसिंह, (१५) बामन, (१६) परशुराम, (१७) व्यास, (१८) रामचन्द्र, (१९) कृष्ण, (२०) बलराम, (२१) बुद्ध, (२२) कल्कि, (२३) हंस, (२४) हयग्रीव।

२. **अग्नि**—दावाग्नि (जंगल व घर की), जठराग्नि (पेट), वडवाग्नि (जल)।

३. **अग्नित्रय**—दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय।

४. **अवस्था**—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय या बाल, युवा और वृद्ध।

५. **अविद्या**—ईश्वर की मोहमाया शक्ति।

६. **अष्टसिद्धि**—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व।

७. **आकर**—जरायुज (योनि से मनुष्य पशु), अण्डज (अंडे से प्राणी), स्वेदज (लीख, जुएँ), उद्भिज (वृक्ष वनस्पति)।

८. **अथिरण**—नूपुर, चूड़ी, हार, कंकण, अंगूठी, बाजूबन्द, बेसर, बिरिया, टीका, शीशफूल, तागड़ी, कंठश्री।

९. **आश्रम**—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।

१०. **उपवेद**—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, स्थापत्य वेद।

११. **ऋतु**—शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त।

१२. **कल्प**—चार युगों की एक चौकड़ी और हज़ार चौकड़ी का एक कल्प।

१३. **गुण**—रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण।

१४. **गुरु**—माता, पिता, आचार्य (अध्यापक)।

१५. **चतुरंगिणी सेना**—हाथी, रथ, घोड़ा, पैदल।

१६. **चतुर्गण**—साम, दाम, दंड, भेद।

१७. **चतुर्युग**—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर, कलियुग।

१८. **चतुर्वर्ग**—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

१९. **चार वर्ण**—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

२०. त्रिताप—दैहिक, दैविक, भौतिक, (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) ।
२१. त्रिविधकर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण ।
२२. दिक्पाल—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव ।
२३. नवरस—शृङ्गार, करुण, हास्य, वीर, रौद्र, बीभत्स, भयानक, शांत, अद्भुत ।
२४. पंचपवन—प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ।
२५. भक्ति—श्रवण, कीर्त्तन, अर्चन, वन्दन, चरणसेवा, स्मरण, आत्मनिवेदन, दासत्व, सख्य ।
२६. भक्त—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान, निवास ।
२७. वेद वेदांग—ऋक्, यजु, साम, अथर्व, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिष ।
२८. शास्त्र—सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. किरातार्जुनीय चौखम्बा संस्कृत सिरीज
२. शिशुपालवध रामप्रताप शास्त्री त्रिपाठी
३. हिन्दी शिशुपाल भूपनारायण दीक्षित
४. महाभारत
५. श्रीमद्भागवत
६. पद्म महापुराण
७. अग्नि महापुराण
८ विष्णु महापुराण
९. ब्रह्मवैवर्त माहपुराण
१०. आगम
११. संस्कृत साहित्य का इतिहास सीताराम जयराम जोशी
१२. संस्कृत साहित्य की रूप रेखा
१३. साहित्य विवेचन क्षेमेन्द्र सुमन मल्लिक
१४. रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता डा० नगेन्द्र
१५. आलोचना अंक भाग २, ४, ५
१६. कवि रहस्य महामहोपाध्याय गंगानाथ झा
१७. काव्य प्रकाश मम्मट
१८. साहित्य दर्पण विश्वनाथ
१९. कवि कंठाभरण क्षेमेन्द्र
२०. काव्यादर्श आचार्य दण्डी
२१. दशकुमार चरित दंडी
२२. हिन्दी विश्वभारती
२३. साहित्य दर्पण
२४. विविध जनविस्तार जिल्द २३ नं० ९
२५. हिन्दू पोलिटी एण्ड पोलिटीकल थियोरीज भाग पहला और दूसरा नारायण चन्द्र वंद्योपाध्याय
२६. संस्कृत कवि दर्शन डॉ भोला शंकर व्यास

———